पद्मपुराण

रविषेणाचार्य

[तृतीय भाग]

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

ज्ञान मन्दिर
न्यू सेण्ट्रल जूट मिल्स कम्पनी लिमिटेड,
बजबज, चौवीस परगना
की ओर से
श्री सिद्धचक्रविधान महोत्सव के
सानन्द सम्पन्न होने के उपलक्ष में
सादर भेंट

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क–२६]

श्रीमद्रविषेणाचार्यप्रणीतं

पद्मपुराणम्

[पद्मचरितम्]

तृतीयो भागः

हिन्दीभाषानुवादसहितः

—सम्पादक—

पण्डित पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

भा र ती य ज्ञा न पी ठ, का शी

प्रथम आवृत्ति
११०० प्रति

मार्गशीर्ष, वीर नि० २४८६
वि० सं० २०१६
नवम्बर १९५९

मूल्य
दस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ. हीरालाल जैन,
एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये,
एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक—बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि० २४७०

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सन् १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

स्वर्गीय मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहू शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHĀMALĀ
SANSKRIT GRANHTA, No. 26

PADMA PURĀṆA

[VOL. III]

of

RAVIṢEṆĀCĀRYA

WITH

HINDI TRANSLATION

EDITOR

Pandit PANNĀLĀL JAIN Sāhityāchārya

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA, KĀSHĪ

First Edition
1100 Copes

MARGASHIRSH, VIRA SAMVAT 2486
V. S. 2016
NOVEMBER 1959

Price
Rs. 10/-

BHĀRĀTĪYA JÑĀNAPĪTHA Kāshi

FOUNDED BY

SĀHUSHĀNTI PRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTI DEVĪ

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪTHA MŪRTI DEVĪ
JAIN GRANTHAMĀLĀ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PAURAṆIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., WILL BE PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED.

General Editors
Dr. Hiralal Jain, M. A., D Litt.
Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

Publisher
Secy., Bharatiya Jnanapitha,
Durgakund Road, Varanasi

Founded on
Phalguna krishna 9.
Vira Sam. 2470

Vikrama Samvat 2000
18 Febr. 1944.

विषयानुक्रमणिका

छयासठवाँ पर्व

सतसठवाँ पर्व

अड़सठवाँ पर्व

उनहत्तरवाँ पर्व

सत्तरवाँ पर्व

स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि जो नियम लेकर जिनमन्दिरमें बैठा है उसपर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? 'राम तो महापुरुष हैं वे अधर्ममें प्रवृत्ति नहीं करेंगे' ऐसा निश्चय कर विद्याधर राजा स्वयं तो नहीं गये परन्तु उन्होंने अपने कुमारोंको उपद्रव हेतु लंकाकी ओर रवाना कर दिया। कुमारोंने लंकामें घोर उपद्रव किया जिससे लोग भयभीत हो जिनालयमें आसीन रावणकी शरणमें गये परन्तु रावण ध्याननिमग्न था। लोग भयभीत थे इसलिए जिनालयके शासनदेवोंने विक्रिया द्वारा कुमारोंको रोका। उधर रामचन्द्रजी के शिविरमें जो जिनालय थे उनके शासनदेवोंने रावणके शान्ति जिनालयसम्बन्धी शासन देवोंके साथ युद्धकर उन्हें रोकनेका प्रयत्न किया। तदनन्तर पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक यक्षेन्द्र रावणके ऊपर आगत उपद्रवका निवारणकर कुमारोंको खदेड़ देते हैं और रामचन्द्रजीको उनके कुकृत्यका उलाहना देते हैं। सुग्रीव यथार्थ बात कहता है। और अर्घावतरण कर उन्हें शान्त करता है। तदनन्तर लक्ष्मणके कहनेसे दोनों यक्ष यह स्वीकृत कर लेते हैं कि आप नगरवासियोंको अणुमात्र भी कष्ट न देकर रावणको ध्यानसे विचलित करनेका प्रयत्न कर सकते हो। १६–२३

इकहत्तरवाँ पर्व

यक्षेन्द्रको शान्त देख अङ्गद लङ्का देखनेके लिए उद्यत हुआ। स्कन्द तथा नील आदि कुमार भी उसके साथ लग गये। इन समस्त कुमारोंका लंकामें प्रवेश होना है। अङ्गदकी सुन्दरता देख लङ्काकी स्त्रियोंमें हलचल मच जाती है। रावणके भवनमें कुमारोंका प्रवेश होता है। रावणके भवनका अद्भुत वैभव उन्हें आश्चर्यचकित कर देता है। वे सब शान्ति-जिनालयमें जिनेन्द्र-वन्दना करते हैं। शान्तिनाथ भगवान्‌के सम्मुख अर्धपर्यङ्कासनसे बैठकर रावण विद्या सिद्ध कर रहा है। अङ्गदके द्वारा नाना प्रकारके उपद्रव किये जानेपर भी रावण अपने ध्यानसे विचलित नहीं होता है और उसी समय उसे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो जाती है। रावणको विद्या सिद्ध देख अङ्गद आदि आकाशमार्गसे उड़कर रामचन्द्रजीकी सेनामें जा मिलते हैं। २४–३०

बहत्तरवाँ पर्व

रावणकी अठारह हजार स्त्रियाँ अङ्गदके द्वारा पीड़ित होनेपर रावणकी शरणमें जा अपना दुःख प्रकट करती हैं। रावण उन्हें सान्त्वना देता है। दूसरे दिन रावण बड़े उल्लासके साथ प्रमदवनमें प्रवेश करता है। सीताके पास बैठी विद्याधरियाँ उसे रावणकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न करती हैं। सीता रावणकी बलवत्ता देख अपने दौर्भाग्यकी निन्दा करती है। रावण सीताको भय और स्नेहके साथ अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है पर सीता रावणसे यह कहकर कि हे दशानन! युद्धमें बाण चलानेके पूर्व रामसे मेरा यह संदेश कह देना कि आपके बिना भामण्डलकी बहिन घुट-घुटकर मर गई है''' मूर्च्छित हो जाती है। रावण सीता और रामके निकाचित स्नेह बन्धनको देख अपने कुकृत्यपर पश्चात्ताप करता है परन्तु युद्धकी उत्तेजनाके कारण उसका वह पश्चात्ताप विलीन हो जाता है और वह युद्धका दृढ़ निश्चय कर लेता है। ३१–३८

तेहत्तरवाँ पर्व

सूर्योदय हुआ। रावणका मन्त्रिमण्डल उसकी हठपर किंकर्तव्यविमूढ़ है। पट्टरानी मन्दोदरी भी पतिके इस दुराग्रहसे दुःखी है। रावण अपनी शस्त्रशालामें जाता है वहाँ नाना प्रकारके अपशकुन होते हैं। मन्दोदरी मन्त्रियोंको प्रेरणा देती है कि आप लोग रावणको समझाते

चौहत्तरवाँ पर्व

पचहत्तरवाँ पर्व

छिहत्तरवाँ पर्व

सतहत्तरवाँ पर्व

अठहत्तरवाँ पर्व

राम कहते हैं कि 'विद्वानोंका वैर तो मरण पर्यन्त ही रहता है अतः अब रावणके साथ वैर किस बातका। चलो उसका दाह-संस्कार करें।' रामकी बातका सब समर्थन करते हैं और रावणके संस्कारके लिए सब उसके पास पहुँचते हैं। मन्दोदरी आदि रानियाँ करुण विलाप करती हैं। सब उन्हें सान्त्वना देकर रावणका गोशीर्ष आदि चन्दनोंसे दाह-संस्कार कर पद्म सरोवर जाते हैं। वहाँ भामण्डल आदिके संरक्षणमें भानुकर्ण, इन्द्रजित् तथा मेघवाहन लाये जाते हैं। ये सभी अन्तरङ्गसे मुनि बन जाते हैं। राम और लक्ष्मणकी ये प्रशंसा करते हैं। राम लक्ष्मणभी इन्हें पहलेके ही समान भोग भोगनेकी प्रेरणा करते हैं पर ये भोगाकांक्षासे उदासीन हो जाते हैं। लङ्कामें सर्वत्र शोक और निर्वेद छा जाता है। जहाँ देखो वहाँ अश्रुधारा ही प्रवाहित दिखती है। दिनके अन्तिम प्रहरमें अनन्तवीर्य नामक मुनिराज लंकामें आते हैं। वे कुसुमोद्यान नामक उद्यानमें ठहर जाते हैं। छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनिराज उनके साथ रहते हैं। रात्रिके पिछले पहरमें अनन्तवीर्य मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। देवोंके द्वारा उनका केवलज्ञान महोत्सव किया गया। भगवान् मुनिसुव्रत जिनेन्द्रका गद्यकाव्यद्वारा पञ्चकल्याणक वर्णनरूप संस्तवन होता है। केवलीकी दिव्यध्वनि खिरती है। इन्द्रजित्, मेघवाहन, कुम्भकर्ण और मन्दोदरीने उनके अपने भवान्तर पूछे। अन्तमें इन्द्रजित्, मेघवाहन, भानुकर्ण तथा मय आदिने निर्ग्रन्थदीक्षा धारण की। मन्दोदरी तथा चन्द्रनखा आदिने भी आर्यिकाके व्रत ग्रहण किये। ७७–८७

उन्न्यासीवाँ पर्व

राम और लक्ष्मण महावैभवके साथ लङ्कामें प्रवेश करते हैं। रामके मनोमुग्धकारी रूपको देखकर स्त्रियाँ परस्पर उनकी प्रशंसा करती हैं। सीताके सौभाग्यको सराहती हैं। राजमार्गसे चलकर राम उस वाटिकामें पहुँचते हैं जहाँ विरहव्याधिपीडिता दुर्बलशरीरा सीता स्थित थी। सीता रामके स्वागतके लिए खड़ी हो जाती हैं। राम बाहुपाशसे सीताका आलिङ्गन करते हैं। लक्ष्मण विनीतभावसे सीताके चरणयुगलका स्पर्शकर सामने खड़े हो जाते हैं। सीताके नेत्रोंसे वात्सल्यके अश्रु निकल आते हैं। आकाशमें खड़े देव विद्याधर, राम और सीताके समागमपर हर्ष प्रकट करते हुए पुष्पाञ्जलि तथा गन्धोदककी वर्षा करते हैं। 'जय सीते! और जय राम।' की ध्वनिसे आकाश गूँज उठता है। ८८–९२

अस्सीवाँ पर्व

सीताको साथ ले श्री राम हाथीपर सवार हो रावणके महलमें गये। वहाँ श्री शान्तिनाथ जिनालयमें उन्होंने शान्तिनाथ भगवान्की भक्तिभावसे स्तुति की। विभीषण तथा रावण परिवारको सान्त्वना दी। विभीषण अपने घर गया और उसने अपनी विदग्धा रानीको भेजकर श्रीरामको निमन्त्रित किया। श्रीराम सपरिवार उसके घर गये। विभीषणने अर्घावतारणकर उनका स्वागत किया तथा समस्त विद्याधरों और सेनाके साथ उन्हें भोजन कराया। विभीषणने राम और लक्ष्मणका अभिषेक करना चाहा, तब उन्होंने कहा—पिताके द्वारा जिसे राज्य प्राप्त हुआ था ऐसा भरत अभी अयोध्यामें विद्यमान है उसीका राज्याभिषेक होना चाहिए। राम-लक्ष्मणने वनवासके समय विवाहित स्त्रियोंको बुला लिया और आनन्दसे लंकामें निवास करने लगे। लंकामें रहते हुए उन्हें छह वर्ष बीत गये। मुनिराज इन्द्रजित और मेघवाहन मोक्ष पधारे। मय मुनिराजके माहात्म्यका वर्णन। ९३–१०८

इक्यासीवाँ पर्व

ब्यासीवाँ पर्व

तेरासीवाँ पर्व

चौरासीवाँ पर्व

पचासीवाँ पर्व

छयासीवाँ पर्व

सत्तासीवाँ पर्व

अठासीवाँ पर्व

नवासीवाँ पर्व

नब्बेवाँ पर्व

एकानबेवाँ पर्व

बानबेवाँ पर्व

तेरानबेवाँ पर्व

चौरानबेवाँ पर्व

पञ्चानबेवाँ पर्व

छयानबेवाँ पर्व

संतानबेवाँ पर्व

सीताको जिनमन्दिरोंके दर्शन करानेके बहाने अटवीमें भेज देते हैं। अटवीमें जाकर कृतान्तवक्त्र अपनी पराधीन वृत्तिपर बहुत पश्चात्ताप करता है। गङ्गानदीके उस पार जाकर कृतान्तवक्त्र सेनापति सीताको रामका आदेश सुनाता है। सीता वज्रसे ताड़ित हुईके समान मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़ती है। सचेत होनेपर आत्मनिरीक्षण करती हुई रामको सन्देश देती है कि जिस तरह लोकापवादके भयसे आपने मुझे छोड़ा इस तरह जैन धर्मको नहीं छोड़ देना। सेनापति वापिस आ जाता है। सीता विलाप करती है उसी समय पुण्डरीकपुरका राजा वज्रजङ्घ सेना सहित वहाँसे निकलता है और सीताका विलाप सुन उसकी सेना वहीं रुक जाती है। २०२–२१६

अठानबेवाँ पर्व

सेनाको रुकी देख वज्रजङ्घ उसका कारण पूछता है। जबतक कुछ सैनिक सीताके पास जाते हैं तब तक वज्रजङ्घ स्वयं पहुँच जाता है। सैनिकोंको देख सीता भयसे काँपने लगती है। उन्हें चोर समझ आभूषण देने लगती है पर वे सान्त्वना देकर राजा वज्रजङ्घका परिचय देते हैं। सीता उन्हें अपना सब वृतान्त सुनाती है और वज्रजङ्घ उसे धर्मबहिन स्वीकृत कर सान्त्वना देता है। २१७–२२४

निन्यानबेवाँ पर्व

सुसज्जित पालकीमें बैठकर सीता पुण्डरीकपुर पहुँची। भयंकर अटवीको पार करनेमें उसे तीन दिन लग गये। वज्रजङ्घने बड़ी विनय और श्रद्धाके साथ सीताको अपने यहाँ रक्खा। ....कृतान्तवक्त्र सेनापति सीताको वनमें छोड़ जब अयोध्यामें पहुँचा तो रामने उससे सीताका संदेश पूछा। सेनापतिने सीताका संदेश सुनाया कि—जिस तरह आपने लोकापवादके भयसे मुझे छोड़ा है उस तरह जिनेन्द्रदेवकी भक्ति नहीं छोड़ देना...। वनकी भीषणता और सीताकी गर्भदशाका विचारकर राम बहुत दुःखी हुए। लक्ष्मणने आकर उन्हें समझाया। २२५–२३३

सौवाँ पर्व

वज्रजङ्घके राजमहलमें सीताकी गर्भावस्थाका वर्णन। नौ माह पूर्ण होनेके बाद सीताके गर्भसे अनङ्गलवण और लवणाङ्कुशकी उत्पत्ति होती है। इन पुण्यशाली पुत्रोंकी पुण्य महिमासे राजा वज्रजङ्घका वैभव निरन्तर वृद्धिंगत होने लगता है। सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक दोनों पुत्रोंको विद्याएँ ग्रहण कराता है। २३४–२४०

एकसौएकवाँ पर्व

विवाहके योग्य अवस्था होनेपर राजा वज्रजङ्घने अपनी लक्ष्मी रानीसे उत्पन्न शशिचूला आदि बत्तीस पुत्रियाँ लवणको देनेका निश्चय किया और अङ्कुशके लिए योग्य पुत्रीकी तलाशमें लग गया। उसने बहुत कुछ विचार करनेके बाद पृथिवीपुरके राजाकी अमृतवती रानीके गर्भसे उत्पन्न कनकमाला नामकी पुत्री प्राप्त करनेके लिए अपना दूत भेजा। परन्तु राजा पृथुने प्रस्तावको अस्वीकृत कर इनको अपमानित किया। इस घटनासे वज्रजङ्घने रुष्ट होकर उसका देश उजाड़ना शुरू किया। जब तक वह अपनी सहायताके लिए पोदन देशके राजाको बुलाता है तब तक वज्रजङ्घने अपने पुत्रोंको बुला लिया। दोनों ओरसे घनघोर युद्ध हुआ। वज्रजङ्घ विजयी हुए और राजा पृथुने अपनी कनकमाला पुत्री अङ्कुशके लिए दे दी। विवाहके बाद दोनों वीर कुमारोंने दिग्विजयकर अनेक राजाओंको आधीन किया। २४१–२४८

एकसौ दोवाँ पर्व

एकसौ तीनवाँ पर्व

एक सौ चारवाँ पर्व

एक सौ पाँचवाँ पर्व

एक सौ छठवाँ पर्व

एकसौ सातवाँ पर्व

एक सौ आठवाँ पर्व

एक सौ नौवाँ पर्व

एक सौ दशवाँ पर्व

एक सौ ग्यारहवाँ पर्व

एक सौ बारहवाँ पर्व

एक सौ तेरहवाँ पर्व

एक सौ चौदहवाँ पर्व

एक सौ पन्द्रहवाँ पर्व

एक सौ सोलहवाँ पर्व

एक सौ सत्रहवाँ पर्व

एक सौ अठारहवाँ पर्व

एक सौ उन्नीसवाँ पर्व

एक सौ बीसवाँ पर्व

एक सौ इक्कीसवाँ पर्व

एक सौ बाईसवाँ पर्व

राम तपश्चर्यामें लीन हैं। सीताका जीव अच्युत स्वर्गका प्रतीन्द्र जब अवधिज्ञानसे यह जानता है कि ये इसी भवसे मोक्ष जानेवाले हैं तब रामसे प्रेरित हो उन्हें विचलित करनेका प्रयत्न करता है। परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। महामुनि राम क्षपक श्रेणी प्राप्त कर केवली हो जाते हैं। ४०४–४०६

एक सौ तेईसवाँ पर्व

सीताका जीव नरकमें जाकर लक्ष्मण जीवको संबोधता है। धर्मोपदेश देता है उसके दुःखसे दुःखी होता है तथा उसे नरकसे निकालनेका प्रयत्न करता है परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ जाता है।···नरकसे निकलकर सीतेन्द्र राम केवलीकी शरणमें जाता है और उनसे दशरथका जीव कहाँ उत्पन्न हुआ है? भामण्डलका क्या हाल है? लक्ष्मण तथा रावण आदिका आगे क्या हाल होगा? यह सब पूछता है। राम केवली अपनी दिव्य ध्वनिके द्वारा उसका समाधान करते हैं। राम केवली निर्वाण प्राप्त करते हैं।···अन्तमें ग्रन्थकर्ता रविषेणाचार्य अपनी प्रशस्ति लिखते हैं। ४१०–४२५

श्रीमद्रविषेणाचार्यप्रणीतं

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षट्षष्टितमं पर्व

अथ [1]लक्ष्मीधरं स्वन्तं विशल्याचरितोचितम् । चारेभ्यो रावणः श्रुत्वा जज्ञे विस्मयमत्सरी ॥१॥
जगाद च स्मितं कृत्वा को दोष इति मन्दगीः । ततोऽगादि मृगाङ्काद्यैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ॥२॥
यथार्थं भाष्यसे देव ! सुपथ्यं कुप्य तुष्य वा । परमार्थो हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभिः ॥३॥
सैंहगारुडविद्ये तु रामलक्ष्मणयोस्त्वया । दृष्टे यत्नाद्विना लब्धे पुण्यकर्मानुभावतः ॥४॥
बन्धनं कुम्भकर्णस्य दृष्टमात्मजयोस्तथा । शक्तेरनर्थकत्वं दिव्यायाः परमौजसः ॥५॥
सम्भाव्य सम्भवं शत्रुस्त्वया जीयेत यद्यपि । तथापिं भ्रातृपुत्राणां विनाशस्तव निश्चितः ॥६॥
इति ज्ञात्वा प्रसादं नः कुरु नाथाभियाचितः । अस्मदीयं हितं वाक्यं भग्नं पूर्वं न जातुचित् ॥७॥
त्यज सीतां भजात्मीयां धर्मबुद्धिं पुरातनीम् । कुशली जायतां लोकः सकलः पालितस्त्वया ॥८॥
राघवेण समं सन्धि कुरु सुन्दरभाषितम् । एवं कृते न दोषोऽस्ति दृश्यते तु महागुणः ॥९॥
भवता परिपाल्यन्ते मर्यादाः सर्वविष्टपे । धर्माणां प्रभवस्त्वं हि रत्नानामिव सागरः ॥१०॥

अथानन्तर रावण, गुप्तचरोंके द्वारा विशल्याके चरितके अनुरूप लक्ष्मणका स्वस्थ होना आदि समाचार सुन आश्चर्य और ईर्ष्या दोनोंसे सहित हुआ तथा मन्द हास्य कर धीमी आवाज से बोला कि क्या हानि है ? तदनन्तर मन्त्र करनेमें निपुण मृगाङ्क आदि मन्त्रियोंने उससे कहा ॥१-२॥ कि हे देव ! यथार्थ एवं हितकारी बात आपसे कहता हूँ आप कुपित हो चाहें संतुष्ट । यथार्थमें सेवकोंको निर्भीक हो कर हितकारी उपदेश देना चाहिए ॥३॥ हे देव ! आप देख चुके हैं कि राम-लक्ष्मणको पुण्य कर्मके प्रभावसे यत्नके विना ही सिंहवाहिनी और गरुड़वाहिनी विद्याएँ प्राप्त हो चुकी हैं ॥४॥ आपने यह भी देखा है कि उनके यहाँ भाई कुम्भकर्ण तथा दो पुत्र बन्धनमें पड़े हैं तथा परम तेजकी धारक दिव्य शक्ति व्यर्थ हो गई है ॥५॥ संभव है कि यद्यपि आप शत्रुको जीत लें तथापि यह निश्चित समझिए कि आपके भाई तथा पुत्रोंका विनाश अवश्य हो जायगा ॥६॥ हे नाथ ! हम सब याचना करते हैं कि आप यह जान कर हम पर प्रसाद करो—हम सब पर प्रसन्न हूजिए । आपने हमारे हितकारी वचनको पहले कभी भग्न नहीं किया ॥७॥ सीताको छोड़ो और अपनी पहले जैसी धर्मबुद्धिको धारण करो । तुम्हारे द्वारा पालित समस्त लोग कुशल-मंगलसे युक्त हों ॥८॥ रामके साथ सन्धि तथा मधुर वार्तालाप करो क्योंकि ऐसा करनेमें कोई हानि नहीं दिखाई देती अपितु बहुत लाभ ही दिखाई देता है ॥९॥ समस्त संसारकी मर्यादाएँ आपके ही द्वारा सुरक्षित हैं—आप ही सब मर्यादाओंका पालन

---

१. लक्ष्मीधरस्वन्तं म० ।

इत्युक्त्वा प्रणता वृद्धाः शिरःस्थकरकुड्मलाः । उत्थाप्य सम्भ्रमादेतांस्तथेत्यूचे दशाननः ॥११॥
मन्त्रविद्भिस्ततस्तुष्टैः सन्दिष्टोऽत्यन्तशोभनः । द्रुतं गमीकृतो दूतः सामन्तो नयकोविदः ॥१२॥
तं निमेषेङ्गिताकूतपरिबोधविचक्षणम् । रावणः संज्ञया स्वस्मै रुचितं द्रागजिग्रहत् ॥१३॥
दूतस्य मन्त्रिसन्दिष्टं नितान्तमपि सुन्दरम् । महौषधं विषेणेव रावणार्थेन दूषितम् ॥१४॥
अथ शुक्रसमो बुद्ध्या महौजस्कः प्रतापवान् । कृतवाक्यो नृपैर्भूयः श्रुतिपेशलभाषणः ॥१५॥
प्रणम्य स्वामिनं तुष्टः सामन्तो गन्तुमुद्यतः । बुद्धयवष्टम्भतः पश्यन् लोकं गोष्पदसम्मितम् ॥१६॥
गच्छतोऽस्य बलं भीमं नानाशस्त्रसमुज्ज्वलम् । बुद्ध्येव निर्मितं तस्य बभूव भयवर्जितम् ॥१७॥
तस्य तूर्यरवं श्रुत्वा क्षुब्धा वानरसैनिकाः । खमीक्षाञ्चक्रिरे भीता रावणागमशङ्किनः ॥१८॥
तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते पुरुषान्तरवेदिते । विस्रब्धतां पुनर्भेजे बलं प्लवगलक्षणम् ॥१९॥
दूतः प्राप्तो विदेहाज[1]प्रतीहारनिवेदितः । आप्तैः कतिपयैः सार्कं बाह्यावासितसैनिकः ॥२०॥
दृष्ट्वा पद्मं प्रणम्यासौ कृतदूतोचितक्रियः । जगौ क्षणमिव स्थित्वा वचनं क्रमसङ्गतम् ॥२१॥
पद्म ! मद्वचनैः स्वामी भवन्तमिति भाषते । श्रोत्रावधानदानेन प्रयत्नः क्रियतां क्षणम् ॥२२॥
यथा किल न युद्धेन किञ्चिदत्र प्रयोजनम् । बहवो हि क्षयं प्राप्ता नरा युद्धाभिमानिनः ॥२३॥

करते हैं। यथार्थमें जिस प्रकार समुद्र रत्नोंकी उत्पत्तिका कारण है उसी प्रकार आप धर्मोंकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥१०॥ इतना कह वृद्ध मन्त्रीजनोंने शिरपर अञ्जलि बाँधकर रावणको नमस्कार किया और रावणने शीघ्रतासे उन्हें उठाकर कहा कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा। ।११॥

तदनन्तर मन्त्रके जाननेवाले मन्त्रियोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त शोभायमान एवं नीति-निपुण सामन्तको सन्देश देकर शीघ्र ही दूतके रूपमें भेजनेका निश्चय किया ॥१२॥ वह दूत दृष्टिके संकेतसे अभिप्रायके समझनेमें निपुण था इसलिए रावणने उसे संकेत द्वारा अपना रुचिकर सन्देश शीघ्र ही ग्रहण करा दिया—अपना सब भाव समझा दिया ॥१३॥ मन्त्रियोंने दूतके लिए जो सन्देश दिया था वह यद्यपि बहुत सुन्दर था तथापि रावणके अभिप्रायने उसे इस प्रकार दूषित कर दिया जिस प्रकार कि विष किसी महौषधिको दूषित कर देता है ॥१४॥ तदनन्तर जो बुद्धिके द्वारा शुक्राचार्यके समान था, महा ओजस्वी था, प्रतापी था, राजा लोग जिसकी बात मानते थे और जो कर्णप्रिय भाषण करनेमें निपुण था, ऐसा सामन्त सन्तुष्ट हो स्वामीको प्रणाम कर जानेके लिए उद्यत हुआ। वह सामन्त अपनी बुद्धिके बलसे समस्त लोकको गोष्पदके समान तुच्छ देखता था ॥१५-१६॥ जब वह जाने लगा तब नाना शस्त्रोंसे देदीप्यमान एक भयङ्कर सेना जो उसकी बुद्धिसे ही मानो निर्मित थी, निर्भय हो उसके साथ हो गई ॥१७॥

तदनन्तर दूतकी तुरहीका शब्द सुनकर वानर पक्षके सैनिक क्षुभित हो गये और रावणके आनेकी शङ्का करते हुए भयभीत हो आकाशकी ओर देखने लगे ॥१८॥ तदनन्तर वह दूत जब निकट आ गया और यह रावण नहीं किन्तु दूसरा पुरुष है, इसप्रकार समझमें आ गया तब वानरोंकी सेना पुनः निश्चिन्तताको प्राप्त हुई ॥१९॥ तदनन्तर भामण्डलरूपी द्वारपालने जिसकी खबर दी थी तथा डेरेके बाहर जिसने अपने सैनिक ठहरा दिये थे, ऐसा वह दूत कुछ आप्तजनोंके साथ भीतर पहुँचा ॥२०॥ वहाँ उसने रामके दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया। दूतके योग्य सब कार्य किये। तदनन्तर क्षणभर ठहर कर क्रमपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहे ॥२१॥ उसने कहा कि हे पद्म ! मेरे वचनों द्वारा स्वामी रावण, आपसे इस प्रकार कहते हैं सो आप कर्णोंको एकाग्रकर क्षणभर श्रवण करनेका प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ वे कहते हैं कि मुझे इस विषयमें युद्धसे कुछ भी प्रयोजन

१. विदेहाजः म०, ज० ।

प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः । असिद्धिश्च महान् दोषः सापवादाश्च सिद्धयः ॥२४॥
दुर्वृत्तो नरकः शङ्खो धवलाङ्गोऽसुरस्तथा । निधनं[1] शम्बराद्याश्च सङ्ग्रामश्रद्धया गताः ॥२५॥
प्रीतिरेव मया सार्द्धं भवते नितरां हिता । ननु सिंहो गुहां प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ॥२६॥
महेन्द्रदमनो येन समरेऽमरभीषणः । सुन्दरीजनसामान्यं बन्दीगृहमुपाहृतः ॥२७॥
पाताले भूतले व्योम्नि गतिर्यस्येच्छया कृता । सुरासुरैरपि क्रुद्धैः प्रतिहन्तुं न शक्यते ॥२८॥
नानानेकमहायुद्धवीरलक्ष्मीस्वयंग्रही । सोऽहं दशाननो जातु भवता किं तु न श्रुतः ॥२९॥
सागरान्तां महीमेतां विद्याधरसमन्विताम् । लङ्कां भागद्वयोपेतां राजन्नेष ददामि ते ॥३०॥
अद्य मे सोदरं प्रेष्य[2] तनयौ च सुमानसः । अनुमन्यस्व[3] सीतां च ततः क्षेमं भविष्यति ॥३१॥
न चेदेवं[4] करोषि त्वं ततस्ते कुशलं कुतः । एतांश्च समरे बद्धानानेष्यामि बलादहम् ॥३२॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचन्न मे राज्येन कारणम् । न चान्यप्रमदाजेन भोगेन महताऽपि हि ॥३३॥
एष प्रेष्यामि ते पुत्रौ भ्रातरं च दशानन । सम्प्राप्य परमां पूजां सीतां प्रेष्यसि मे यदि ॥३४॥
एतया सहितोऽरण्ये मृगसामान्यगोचरे । यथासुखं भ्रमिष्यामि महीं त्वं भुङ्क्ष्व पुष्कलाम् ॥३५॥
गत्वैवं ब्रूहि दूत त्वं तं लङ्कापरमेश्वरम् । एतदेव हि पथ्यं ते कर्तव्यं नान्यथाविधम् ॥३६॥
सर्वैः प्रपूजितं श्रुत्वा पद्मनाभस्य तद्वचः । सौष्ठवेन समायुक्तं सामन्तो वचनं जगौ ॥३७॥
न वेत्सि नृपते[5] कार्यं बहुकल्याणकारणम् । यदुलङ्घ्याम्बुधिं भीममागतोऽसि भयोज्झितः ॥३८॥

नहीं है क्योंकि युद्धका अभिमान करनेवाले बहुतसे मनुष्य क्षयको प्राप्त हो चुके हैं ॥२३॥ कार्यकी उत्तम सिद्धि प्रीतिसे ही होती है, युद्धसे तो केवल नरसंहार ही होता है, युद्धमें यदि सफलता नहीं मिली तो यह सबसे बड़ा दोष है और यदि सफलता मिलती भी है तो अनेक अपवादोंसे सहित मिलती है ॥२४॥ पहले युद्धकी श्रद्धासे दुर्वृत्त, नरक, शङ्ख, धवलाङ्ग तथा शम्बर आदि राजा विनाशको प्राप्त हो चुके हैं ॥२५॥ हमारे साथ प्रीति करना ही आपके लिए अत्यन्त हितकारी है, यथार्थमें सिंह महापर्वतकी गुफा पाकर ही सुखी होता है ॥२६॥ युद्धमें देवोंको भय उत्पन्न करने वाले राजा इन्द्रको जिसने सामान्य स्त्रियोंके योग्य बन्दीगृहमें भेजा था ॥२७॥ पाताल, पृथिवीतल तथा आकाशमें स्वेच्छासे की हुई जिसकी गतिको, कुपित हुए सुर और असुर भी खण्डित करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२८॥ नाना प्रकारके अनेक महायुद्धोंमें वीर लक्ष्मीको स्वयं ग्रहण करने वाला मैं रावण क्या कभी आपके सुननेमें नहीं आया ॥२९॥ हे राजन् ! मैं विद्याधरोंसे सहित यह समुद्र पर्यन्तकी समस्त पृथिवी और लङ्काके दो भाग कर एक भाग तुम्हारे लिए देता हूँ ॥३०॥ तुम आज अच्छे हृदयसे मेरे भाई तथा पुत्रोंको भेजकर सीता देना स्वीकृत करो, उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥३१॥ यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो तुम्हारी कुशलता कैसे हो सकती है ? क्योंकि सीता तो हमारे पास है ही और युद्धमें बाँधे हुए भाई तथा पुत्रोंको हम बलपूर्वक छीन लावेंगे ॥३२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि मुझे राज्यसे प्रयोजन नहीं है और न अन्य स्त्रियों तथा बड़े-बड़े भोगों से मतलब है ॥३३॥ यदि तुम परम सत्कारके साथ सीताको भेजते हो तो हे दशानन ! मैं तुम्हारे भाई और दोनों पुत्रोंको अभी भेज देता हूँ ॥३४॥ मैं इस सीताके साथ मृगादि जन्तुओंके स्थानभूत वनमें सुखपूर्वक भ्रमण करूँगा और तुम समग्र पृथिवीका उपभोग करो ॥३५॥ हे दूत ! तू जाकर लङ्काके धनीसे इस प्रकार कह दे कि यही कार्य तेरे लिए हितकारी है, अन्य कार्य नहीं । ३६॥ सबके द्वारा पूजित तथा सुन्दरतासे युक्त रामके वे वचन सुन सामन्त दूत इस प्रकार बोला कि ॥३७॥ हे राजन् ! यतश्च तुम भयङ्कर समुद्रको लाँघ कर निर्भय हो यहाँ

---

१. निधानं म० । २. प्रेक्ष्य म० । ३. अनुमन्यस्य म० । ४. न चेदं म० । ५. नृपतेः म० ।

न शोभना नितान्तं ते प्रत्याशा जानकीं प्रति । [1]लङ्केन्द्रे सङ्गते कोपं त्यजाऽऽशामपि जीविते ॥३९॥
नरेण सर्वथा स्वस्य कर्त्तव्यं बुद्धिशालिना । रक्षणं सततं यत्नाद्दारैरपि धनैरपि ॥४०॥
प्रेषितं तार्क्ष्यनाथेन यदि वाहनयुग्मकम् । यदि वा छिद्रतो बद्धा मम पुत्रसहोदराः ॥४१॥
तथाऽपि नाम कोऽमुष्मिन् गर्वस्तव समुद्यतः । नैतावता कृतित्वं ते मयि जीवति जायते ॥४२॥
विग्रहे कुर्वतो यत्नं न ते सीता न जीवितम् । मा भूरुभयतो भ्रष्टस्त्यज सीतानुबन्धिताम् ॥४३॥
[2]लब्धवर्णाः समस्तेषु शास्त्रेषु परमेश्वराः । सुरेन्द्रप्रतिमा नीताः खेचरा निधनं मया ॥४४॥
पश्याष्टापदकूटाभानिमान् कैकससञ्चयान् । उपेयुषां क्षयं राज्ञां मदीयभुजवीर्यतः ॥४५॥
इति प्रभाषिते दूते क्रोधतो जनकात्मजः । जगाद विस्फुरद्वक्त्र[3]ज्योतिर्ज्वलितपुष्करः ॥४६॥
आः पाप दूत गोमायो ! वाक्यसंस्कारकूटक । दुर्बुद्धे भाषसे व्यर्थं किमित्येवमशङ्कितः ॥४७॥
सीतां प्रति कथा केयं पद्माधिक्षेपमेव वा । को नाम रावणो रक्षः पशुः कुत्सितचेष्टितः ॥४८॥
इत्युक्त्वा सायकं यावज्जग्राह जनकात्मजः । केकयीसूनुना तावन्निरुद्धो नयचक्षुषा ॥४९॥
रक्तोत्पलदलच्छाये नेत्रे जनकजन्मनः । कोपेन दूषिते जाते सन्ध्याकारानुहारिणी ॥५०॥
स्वैरं स मन्त्रिभिर्नीतः [4]शमं साधूपदेशतः । मन्त्रेणेव महासर्पः स्फुरद्विषकणद्युतिः ॥५१॥
नरेन्द्र ! त्यज संरम्भं समुद्गतमगोचरे । अनेन [5]मारितेनापि कोऽर्थः प्रेषणकारिणा ॥५२॥

आये हो इससे जान पड़ता है कि तुम कहुकल्याणकारी कार्यको नहीं जानते हो ॥३८॥ सीताके प्रति तुम्हारी आशा बिलकुल ही अच्छी नहीं है । अथवा सीताकी बात दूर रही, रावणके कुपित होनेपर अपने जीवनकी भी आशा छोड़ो ॥३९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको अपने आपकी रक्षा सदा स्त्रियों और धनके द्वारा भी सब प्रकारसे करना चाहिए ॥४०॥ यदि गरुडेन्द्रने तुम्हें दो वाहन भेज दिये हैं अथवा छल पूर्वक तुमने मेरे पुत्रों और भाईको बाँध लिया है तो इतनेसे तुम्हारा यह कौन-सा बड़ा-चढ़ा अहंकार है ? क्योंकि मेरे जीवित रहते हुए इतने मात्रसे तुम्हारी कृत-कृत्यता नहीं हो जाती ॥४१-४२॥ युद्धमें यत्न करने पर न सीता तुम्हारे हाथ लगेगी और न तुम्हारा जीवन ही शेष रह जायगा । इसलिए दोनों ओरसे भ्रष्ट न होओ सीता सम्बन्धी हठ छोड़ो ॥४३॥ समस्त शास्त्रोंमें निपुण इन्द्र जैसे बड़े-बड़े विद्याधर राजाओंको मैंने मृत्यु प्राप्त करा दी है ॥४४॥ मेरी भुजाओंके बलसे क्षयको प्राप्त हुए राजाओंके जो ये कैलासके शिखरके समान हड्डियोंके ढेर लगे हुए हैं इन्हें देखो ॥४५॥

इस प्रकार दूतके कहने पर, मुखकी देदीप्यमान ज्योतिसे आकाशको प्रज्वलित करता हुआ भामण्डल क्रोधसे बोला कि अरे पापी ! दूत ! शृगाल ! बातें बनानेमें निपुण ! दुर्बुद्ध ! इस तरह व्यर्थ ही निःशंक हो, क्यों बके जा रहा है ॥४६-४७॥ सीताकी तो चर्चा ही क्या है ? रामकी निन्दा करनेके विषयमें नीच चेष्टाका धारी पशुके समान नीच राक्षस रावण है ही कौन ? ॥४८॥ इतना कहकर ज्योंही भामण्डलने तलवार उठाई त्योंही नीति रूपी नेत्रके धारक लक्ष्मणने उसे रोक लिया ॥४९॥ भामण्डलके जो नेत्र लाल कमलदलके समान थे वे क्रोधसे दूषित हो सन्ध्याका आकार धारण करते हुए दूषित हो गये—सन्ध्याके समान लाल-लाल दिखने लगे ॥५०॥ तदनन्तर जिस प्रकार विषकणोंकी कान्तिको प्रकट करनेवाला महासर्प मन्त्रके द्वारा शान्त किया जाता है उसी प्रकार वह भामण्डल मन्त्रियोंके द्वारा उत्तम उपदेशसे धीरे-धीरे शान्तिको प्राप्त कराया गया ॥५१॥ मन्त्रियोंने कहा कि हे राजन् ! अयोग्य विषयमें प्रकट हुए क्रोधको छोड़ो । इस दूतको यदि मार भी डाला तो इससे कौनसा प्रयोजन

---

१. लङ्केन्द्रसंगते म० । २. लब्धवर्णाः म० । ३. वक्त्र-म० । ४. समं म० । ५. महितेनापि म० ।

प्रावृषेण्यघनाकारगजमर्दनपण्डितः । [1]नाखौ संक्षोभमायाति सिंहः प्रचलकेसरः ॥५३॥
प्रतिशब्देषु कः कोपः छायापुरुषकेऽपि वा । तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रबिम्बेषु वा सताम् ॥५४॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसौ शान्तोऽभूज्जनकात्मजः । अभ्यधाच्च पुनर्दूतः पद्मं साध्वसवर्जितः ॥५५॥
सचिवापसदैर्भूयः सम्प्रमूढैस्त्वमीदृशैः । संयोज्यसे दुरुद्योगैः संशये दुर्विदग्धकैः ॥५६॥
[2]प्रतार्यमाणमात्मानं प्रबुद्ध्यस्व त्वमेतकैः । निरूपय हितं स्वस्य स्वयं बुद्ध्या प्रवीणया ॥५७॥
त्यज सीतासमासङ्गं भवेन्द्रः सर्वविष्टपे । भ्रम पुष्पकमारूढो यथेष्टं विभवान्वितः ॥५८॥
मिथ्याग्रहं विमुञ्चस्व मा श्रौषीः क्षुद्रभाषितम् । कर्णाये मनो दत्स्व भृशमेधि महासुखम् ॥५९॥
क्षुद्रस्योत्तरमेतस्य को ददातीति जानके[3] । तूष्णीं स्थितेऽथ दूतोऽसावन्यैर्निर्भर्त्सितः परम् ॥६०॥
स विद्धो वाक्शरैस्तीक्ष्णैरसत्कारमलं श्रितः । जगाम स्वामिनः पार्श्वे मनस्यत्यन्तपीडितः ॥६१॥
स उवाच तवाऽऽदेशान्नाथ रामो मयोदितः । क्रमेण नयविन्यासकारिणा त्वत्प्रभावतः ॥६२॥
नानाजनपदाकीर्णामाकूपारनिवारिताम् । बहुरत्नाकरां क्षोणीं[4] विद्याभृत्यसमन्विताम्[5] ॥६३॥
ददामि ते महानागांस्तुरगांश्च रथांस्तथा । कामगं पुष्पकं यानमप्रधृष्यं सुरैरपि ॥६४॥

सिद्ध होनेवाला है ? ॥५२॥ वर्षाऋतुके मेघके समान विशाल हाथियोंके नष्ट करनेमें निपुण चञ्चल केसरोंवाला सिंह चूहे पर क्षोभको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ प्रतिध्वनियों पर, लकड़ी आदिके बने पुरुषाकार पुतलों पर, सुआ आदि तिर्यञ्चों पर और यन्त्रसे चलनेवाली मनुष्याकार पुतलियों पर सत्पुरुषोंका क्या क्रोध करना है ? अर्थात् इस दूतके शब्द निजके शब्द नहीं हैं ये तो रावणके शब्दोंकी मानो प्रतिध्वनि ही हैं। यह दीन पुरुष नहीं है, पुरुष तो रावण है और यह उसका आकार मात्र पुतला है, जिस प्रकार सुआ आदि पक्षियोंको जैसा पढ़ा दो वैसा पढ़ने लगता है। इसी प्रकार इस दूतको रावणने जैसा पढ़ा दिया वैसा पढ़ रहा है और कठपुतली जिस प्रकार स्वयं चेष्टा नहीं करती उसी प्रकार यह भी स्वयं चेष्टा नहीं करता—मालिककी इच्छानुसार चेष्टा कर रहा है अतः इसके ऊपर क्या क्रोध करना है ? ॥५४॥ इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर भामण्डल शान्त हो गया। तदनन्तर निर्भय हो उस दूतने रामसे पुनः कहा कि ॥५५॥ तुम इस प्रकार मूर्ख नीच मन्त्रियोंके द्वारा अविवेकपूर्ण दुष्प्रवृत्तियोंसे संशयमें डाले जा रहे हो अर्थात् खेद है कि तुम इन मन्त्रियोंकी प्रेरणासे व्यर्थ ही अविचारित रम्य प्रवृत्ति कर अपने आपको संशयमें डाल रहे हो ॥५६॥ तुम इनके द्वारा छले जानेवाले अपने आपको समझो और स्वयं अपनी निपुण बुद्धिसे अपने हितका विचार करो ॥५७॥ सीताका समागम छोड़ो, समस्त लोकके स्वामी होओ, और वैभवके साथ पुष्पक विमानमें आरूढ़ हो इच्छानुसार भ्रमण करो ॥५८॥ मिथ्या हठको छोड़ो, क्षुद्र मनुष्योंका कथन मत सुनो, करने योग्य कार्यमें मन लगाओ और इस तरह महा सुखी होओ ॥५९॥ तदनन्तर इस क्षुद्रका उत्तर कौन देता है ? यह सोचकर भामण्डल तो चुप बैठा रहा परन्तु अन्य लोगोंने उस दूतका अत्यधिक तिरस्कार किया—उसे खूब धौंस दिखायी ॥६०॥

अथानन्तर वचन रूपी तीक्ष्ण बाणोंसे बिंधा और परम असत्कारको प्राप्त हुआ वह दूत मनमें अत्यन्त पीड़ित होता हुआ स्वामीके समीप गया ॥६१॥ वहाँ जाकर उसने कहा कि हे नाथ ! आपका आदेश पा आपके प्रभावसे नय-विन्याससे युक्त पद्धतिसे मैंने रामसे कहा कि मैं नाना देशोंसे युक्त, अनेक रत्नोंकी खानोंसे सहित तथा विद्याधरोंसे समन्वित समुद्रान्त पृथिवी, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रथ, देव भी जिसका तिरस्कार नहीं कर सकते ऐसा पुष्पक विमान, अपने-

१. नासौ म०, नखौ ज० । २. प्रतीर्यमाण-म० । ३. जनकस्यापत्यं पुमान् जानकः तस्मिन् भामण्डले इत्यर्थः । ४. क्षीणां म० । ५. विद्याभृत्पृतनान्विताम् म० ।

सहस्रत्रितयं चारुकन्यानां परिवर्गवत् । सिंहासनं रविच्छायं छत्रं च शशिसन्निभम् ॥६५॥
भज निष्कण्टकं राज्यं सीता यदि तवाऽऽज्ञया । मां वृणोति किमन्येन भाषितेनेह भूरिणा ॥६६॥
वयं वेत्रासनेनैव सन्तुष्टाः स्वल्पवृत्तयः । भविष्यामो मदुक्तं चेत् करोषि सुविचक्षण ॥६७॥
एवमादीनि वाक्यानि प्रोक्तोऽपि स मया मुहुः । सीताग्राहं न तत्यजे मुञ्चते रघुनन्दनः ॥६८॥
साधोरिवातिशान्तस्य चर्या सा तस्य भाषिता । अशक्यमोचना दानात् त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी ॥६९॥
अवीत्येवं च रामस्त्वां यथा तव दशानन । न युक्तमीदृशं वक्तुं सर्वलोकविगर्हितम् ॥७०॥
तवैवं भाषमाणस्य नृणामधमजन्मनः । रसनं न कथं यातं शतधा पापचेतसः ॥७१॥
अपि देवेन्द्रभोगैर्मे न कृत्यं सीतया विना । भुंक्ष्व त्वं पृथिवीं सर्वामाश्रयिष्याम्यहं वनम् ॥७२॥
पराङ्गनां समुद्दिश्य यदि त्वं मर्तुमुद्यतः । अहं पुनः कथं स्वस्याः प्रियाया न कृते तथा ॥७३॥
सर्वलोकगताः कन्यास्त्वमेव भज सुन्दर । फलपर्णादिभोजी तु सीतयाऽमा भ्रमाम्यहम् ॥७४॥
शाखामृगध्वजाधीशस्त्वां प्रहस्याभणीदिदम् । यथा किल ग्रहेणाऽसौ भवत्स्वामी वशीकृतः ॥७५॥
वायुना वाऽतिचण्डेन विप्रलापादिहेतुना । येनेदं विपरीतत्वं वराकः समुपागतः ॥७६॥
नूनं न सन्ति लङ्कायां कुशला [1]मन्त्रवादिनः । पक्वतैलादिवायेन[2] क्रियते तच्चिकित्सितम् ॥७७॥
आवेशं सायकैः कृत्वा क्षिप्रं सङ्ग्राममण्डले । लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽस्य रुजः सर्वा हरिष्यति ॥७८॥
ततो मया तदाक्रोशवह्निज्वलितचेतसा । शुना द्विप इवाक्रुष्टो वानरध्वजचन्द्रमाः ॥७९॥

अपने परिकरोंसे सहित तीन हजार सुन्दर कन्याएँ, सूर्यके समान कान्तिवाला सिंहासन और चन्द्रतुल्य छत्र देता हूँ। अथवा इस विषयमें अन्य अधिक कहनेसे क्या? यदि तुम्हारी आज्ञासे मुझे सीता स्वीकृत कर लेती है तो इस समस्त निष्कण्टक राज्यका सेवन करो ॥६२–६६॥ हे विद्वान्! यदि हमारा कहा करते हो तो हम थोड़ी-सी आजीविका लेकर एक बेंतके आसनसे ही संतुष्ट हो जावेंगे ॥६७॥ इत्यादि वचन मैंने यद्यपि उससे बार-बार कहे तथापि वह सीताकी हठ नहीं छोड़ता है उसी एकमें उसकी निष्ठा लग रही है ॥६८॥ जिस प्रकार अत्यन्त शान्त साधुकी अपनी चर्या प्रिय होती है उसी प्रकार वह सीता भी रामको अत्यन्त प्रिय है। हे स्वामिन्! आपका राज्य तो दूर रहा, तीन लोक भी देकर उस सुन्दरीको उससे कोई नहीं छुड़ा सकता ॥६९॥ और रामने आपसे इस प्रकार कहा है कि हे दशानन! तुम्हें ऐसा सर्वजन निन्दित कार्य करना योग्य नहीं है ॥७०॥ इस प्रकार कहते हुए तुझ पापी नीच मनुष्यकी जिह्वाके सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये ॥७१॥ मुझे सीताके बिना इन्द्रके भोगोंकी भी आवश्यकता नहीं है। तू समस्त पृथिवीका उपभोग कर और मैं वनमें निवास करूँगा ॥७२॥ यदि तू पर-स्त्रीके उद्देश्यसे मरनेके लिए उद्यत हुआ है तो मैं अपनी निजकी स्त्रीके लिए क्यों नहीं प्रयत्न करूँ? ॥७३॥ हे सुन्दर! समस्त लोकमें जितनी कन्याएँ हैं उन सबका उपभोग तुम्हीं करो, मैं तो फल तथा पत्तों आदिका खानेवाला हूँ, केवल सीताके साथ ही घूमता रहता हूँ ॥७४॥ दूत रावणसे कहता जाता है कि हे नाथ! वानरोंके अधिपति सुग्रीवने तुम्हारी हँसी उड़ा कर यह कहा था कि जान पड़ता है तुम्हारा वह स्वामी किसी पिशाचके वशीभूत हो गया है ॥७५॥ अथवा बकवादका कारण जो अत्यन्त तीव्र वायु है उससे तुम्हारा स्वामी ग्रस्त है। यही कारण है कि वह बेचारा इस प्रकार विपरीतताको प्राप्त हो रहा है ॥७६॥ जान पड़ता है कि लंकामें कुशल वैद्य अथवा मन्त्रवादी नहीं हैं अन्यथा पक्व तैलादि वायुहर पदार्थोंके द्वारा उसकी चिकित्सा अवश्य की जाती ॥७७॥ अथवा लक्ष्मणरूपी विषवैद्य संग्रामरूपी मण्डलमें शीघ्र ही बाणों द्वारा आवेश कर इसके सब रोगोंको हरेगा ॥७८॥ तदनन्तर उसके कुवचन रूपी अग्निसे जिसका चित्त प्रज्वलित हो रहा

---

१. मन्त्रिवादिनः म० । २. पक्वतैलादिना येन म० ।

सुग्रीव ! पद्मगर्वेण नूनं त्वं मर्तुमिच्छसि । अधिक्षिपसि यत् क्रुद्ध[1] विद्याधरमहेश्वरम् ॥८०॥
ऊचे विराधितश्च त्वां यथा ते शक्तिरस्ति चेत् । आगच्छतु ममैकस्य युद्धं यच्छ किमास्यते ॥८१॥
उक्तो दाशरथिर्भूयो मया राम ! रणाजिरे । रावणस्य न किं दृष्टस्त्वया परमविक्रमः ॥८२॥
यतः क्षमान्वितं वीरं राजखद्योतभास्करम् । सामप्रयोगमिच्छन्तं भवत्पुण्यानुभावतः ॥८३॥
वदान्यं त्रिजगत्ख्यातप्रतापं प्रणतप्रियम् । नेतुमिच्छसि संक्षोभं कैलासक्षोभकारिणम् ॥८४॥
चण्डसैन्योर्मिमालाढ्यं शस्त्रयादोगणाकुलम् । तर्तुमिच्छसि किं दोर्भ्यां दशग्रीवमहार्णवम् ॥८५॥
वयुद्विपमहाव्यालां पदातिद्रुमसङ्कटाम् । विवक्षसि कथं दुर्गां दशग्रीवमहाटवीम् ॥८६॥

वंशस्थवृत्तम्

न पद्मवातेन सुमेरुरुह्यते न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।
गवेन्द्रशृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशाननः ॥८७॥

उपजातिः

इति प्रचण्डं मयि भाषमाणे भामण्डलः क्रोधकषायनेत्रः ।
यावत् समाकर्षदसिं प्रदीप्तं तावत् सुमित्रातनयेन रुद्धः ॥८८॥
प्रसीद वैदेह ! विमुञ्च कोपं न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।
गजेन्द्रकुम्भस्थलदारणेन क्रीडां स मुक्तानिकरैः[2] करोति ॥८९॥
नरेश्वरा ऊर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु ।
न ब्राह्मणं न श्रमणं न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशुं न दूतम् ॥९०॥

था, ऐसे मैंने उस सुग्रीवको इस प्रकार घौंसा जिस प्रकार कि श्वान हाथीको घौंसता है ॥७९॥ मैंने कहा कि अरे सुग्रीव ! जान पड़ता है कि तू रामके गर्वसे मरना चाहता है, जो कुपित हुए विद्याधरोंके अधिपतिकी निन्दा कर रहा है ॥८०॥ हे नाथ ! विराधितने भी आपसे कहा है कि यदि तेरी शक्ति है तो आ, मुझ एकके लिए ही युद्ध प्रदान कर। बैठा क्यों है ? ॥८१॥ मैंने रामसे पुनः कहा कि हे राम ! क्या तुमने रणाङ्गणमें रावणका परम पराक्रम नहीं देखा है ? ॥८२॥ जिससे कि तुम उसे क्षोभको प्राप्त कराना चाहते हो। जो राजा रूपी जुगनुओंको दबानेके लिए सूर्यके समान है, वीर है और तीनों जगत्में जिसका प्रताप प्रख्यात है, ऐसा रावण, इस समय आपके पुण्य प्रभावसे क्षमा युक्त है। साम—शान्तिका प्रयोग करनेका इच्छुक है, उदार-त्यागी है, एवं नम्र मनुष्योंसे प्रेम करनेवाला है ॥८३-८४॥ जो बलवान् सेना रूपी तरङ्गोंकी मालासे युक्त है तथा शस्त्र रूपी जल-जन्तुओंके समूहसे सहित है ऐसे रावण रूपी समुद्रको तुम क्या दो भुजाओंसे तैरना चाहते हो ? ॥८५॥ घोड़े और हाथी ही जिसमें हिंसक जानवर हैं तथा जो पैदल सैनिक रूपी वृक्षोंसे संकीर्ण हैं ऐसी दुर्गम रावण रूपी अटवीमें तुम क्यों घुसना चाहते हो ? ॥८६॥ मैंने कहा कि हे पद्म ! वायु के द्वारा सुमेरु नहीं उठाया जाता, सूर्यकी किरणोंसे समुद्र नहीं सूखता, बैलकी सींगोंसे पृथिवी नहीं काँपती और और तुम्हारे जैसे लोगोंसे दशानन नहीं जीता जाता ॥८७॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक मेरे कहनेपर क्रोधसे लाल-लाल नेत्र दिखाता हुआ भामण्डल जबतक चमकती तलवार खींचता है तबतक लक्ष्मणने उसे मना कर दिया ॥८८॥ लक्ष्मणने भामण्डलसे कहा कि हे विदेहासुत ! क्रोध छोड़ो, सिंह सियार पर कोध नहीं करता, वह तो हाथीका गण्डस्थल चीरकर मोतियोंके समूहसे क्रीड़ा करता है ॥८९॥ जो राजा अतिशय बलिष्ठ शूरवीरोंकी चेष्टाको धारण करनेवाले हैं वे कभी न भयभीत पर, न ब्राह्मण पर, न मुनि पर, न निहत्थे पर, न स्त्रीपर, न बालकपर, न पशुपर

---

[1] क्षुद्र म०, । [2] मुक्त्वा निकरैः म० ।

इत्यादिभिर्वाक्यैर्विवहैः सुयुक्तैर्यदा स लक्ष्मीधरपण्डितेन ।
नीतः प्रबोधं शनकैरमुञ्चत् क्रोधं तथा दुःसहदीप्तिचक्रः ॥६१॥
निर्भर्त्सितः क्रूरकुमारचक्रैः वाक्यैरलं वज्रनिघाततुल्यैः ।
अपूर्वहेतुप्रलघूकृतात्मा [1]स्वं मन्यमानः [2]तृणतोऽप्यसारम् ॥६२॥
नभः समुत्पत्य भयार्दितोऽहं त्वत्पादमूलं पुनरागतोऽयम् ।
लक्ष्मीधरोऽसौ यदि नाऽभविष्यद्ध्रुवं हतो देव ! ततोऽमरिष्यम् ॥६३॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति गदितमिदं यथाऽनुभूतं रिपुचरितं तव देव ! निर्विशङ्कम् ।
कुरु यदुचितमत्र साम्प्रतं वचनकरा हि भवन्ति मद्विधास्तु ॥६४॥
बहु विदितमलं सुशास्त्रजालं नयविषयेषु सुमन्त्रिणोऽभियुक्ताः ।
अखिलमिदमुपैति मोहभावं पुरुषरवौ घनमोहमेघरुद्धे ॥६५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणदूतागमागमाभिधानं नाम षट्षष्टितमं पर्व ॥६६॥

और न दूतपर प्रहार करते हैं ॥६०॥ इस प्रकार युक्तियुक्त वचनोंसे जब लक्ष्मण रूपी पण्डितने उसे समझाया तब कहीं दुःसह दीप्तिचक्रको धारण करनेवाले भामण्डलने धीरे-धीरे क्रोध छोड़ा ॥६१॥ तदनन्तर दुष्टता भरे अन्य कुमारोंने वज्र प्रहारके समान क्रूर वचनोंसे जिसका अत्यधिक तिरस्कार किया तथा अपूर्व कारणोंसे जिसकी आत्मा अत्यन्त लघु हो रही थी, ऐसा मैं अपने आपको तृणसे अधिक निःसार मानता हुआ भयसे दुःखी हो आकाशमें उड़कर आपके पादमूलमें पुनः आया हूँ। हे देव ! यदि लक्ष्मण नहीं होता तो मैं आज अवश्य ही भामण्डलसे मारा जाता ॥६२-६३॥ हे देव ! इस प्रकार मैंने शत्रुके चरित्रका जैसा कुछ अनुभव किया है वह निःशङ्क होकर आपसे निवेदन किया है। अब इस विषयमें जो कुछ उचित हो सो करो क्योंकि हमारे जैसे पुरुष तो केवल आज्ञा पालन करनेवाले होते हैं ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्हें अनेक शास्त्रोंके समूह अच्छी तरह विदित हैं, जो नीतिके विषयमें सदा उद्यत रहते हैं तथा जिनके समीप अच्छे-अच्छे मन्त्री विद्यमान रहते हैं ऐसे मनुष्य भी पुरुष रूपी सूर्यके मोह रूपी सघन मेघसे आच्छादित हो जाने पर मोह भावको प्राप्त हो जाते हैं ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके दूतका रामके पास जाने और वहाँसे आनेका वर्णन करने वाला छयासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥

---

१. स्वमन्यमानः म० । २. शृणुतो- म० ।

सप्तषष्टितमं पर्व

स्वदूतवचनं श्रुत्वा राक्षसानामधीश्वरः । क्षणं सन्मन्त्रणं कृत्वा मन्त्रज्ञैः सह मन्त्रिभिः ॥१॥
कृत्वा पाणितले गण्डं कुण्डलालोकभासुरम् । अधोमुखः स्थितः किञ्चिदिति चिन्तामुपागतः ॥२॥
नागेन्द्रवृन्दसङ्घट्टे युद्धे शत्रुं जयामि चेत् । तथा सति कुमाराणां प्रमादः परिदृश्यते ॥३॥
सुप्ते शत्रुबले दत्त्वा समास्कन्दमवेदितः । आनयामि कुमारान् किं किं करोमि कथं शिवम् ॥४॥
इति चिन्तयतस्तस्य मागधेश्वरशेमुषी । इयं समुद्गता जातो यया सुखितमानसः ॥५॥
साधयामि महाविद्यां बहुरूपामिति श्रुताम् । प्रतिव्यूहितुमुद्युक्तैरशक्यां त्रिदशैरपि ॥६॥
इति ध्यात्वा समाहूय किङ्करानशिषद् द्रुतम् । कुरुध्वं शान्तिगेहस्य शोभां सत्तोरणादिभिः ॥७॥
पूजां च सर्व[1]चैत्येषु सर्वसंस्कारयोगिषु । सर्वश्चायं भरो न्यस्तो मन्दोदर्यां [2]सुचेतसि ॥८॥
विंशस्य देवदेवस्य वन्दितस्य सुरासुरैः । मुनिसुव्रतनाथस्य तस्मिन् काले महोदये ॥९॥
सर्वत्र भरतक्षेत्रे सुविस्तीर्णे महायते । अर्हच्चैत्यैरियं पुण्यैर्वसुधाऽऽसीदलङ्कृता ॥१०॥
राष्ट्राधिपतिभिर्भूपैः श्रेष्ठिभिर्ग्रामभोगिभिः । उत्थापितास्तदा जैनाः प्रासादाः पृथुतेजसः ॥११॥
अधिष्ठिता भृशं भक्तियुक्तैः शासनदैवतैः । सद्धर्मपक्षसंरक्षाप्रवणैः शुभकारिभिः ॥१२॥
सदा जनपदैः स्फीतैः कृताभिषवपूजनाः । रेजुः स्वर्गविमानाभा भव्यलोकनिषेविताः ॥१३॥
पर्वते पर्वते चारौ ग्रामे ग्रामे वने वने । पत्तने पत्तने राजन् हर्म्ये हर्म्ये पुरे पुरे ॥१४॥

अथानन्तर राक्षसोंका अधीश्वर रावण अपने दूतके वचन सुनकर क्षणभर मन्त्रके जानकार मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करता रहा। तदनन्तर कुण्डलोंके आलोकसे देदीप्यमान गण्डस्थलको हथेली पर रख अधोमुख बैठ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि ॥१-२॥ यदि हस्तिसमूहके संघट्टसे युक्त युद्धमें शत्रुओंको जीतता हूँ तो ऐसा करनेसे कुमारोंकी हानि दिखाई देती है ॥३॥ इसलिए जब शत्रुसमूह सो जावे तब अज्ञात रूपसे धावा देकर कुमारोंको वापिस ले आऊँ ? अथवा क्या करूँ ? क्या करनेसे कल्याण होगा ? ॥४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! इस प्रकार विचार करते हुए उसे यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि उसका हृदय प्रसन्न हो गया ॥५॥ उसने विचार किया कि मैं बहुरूपिणी नामसे प्रसिद्ध वह विद्या सिद्ध करता हूँ कि जिसमें सदा तत्पर रहनेवाले देव भी विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ॥६॥ ऐसा विचार कर उसने शीघ्र ही किंकरोंको बुला आदेश दिया कि शान्तिजिनालयकी उत्तम तोरण आदिसे सजावट करो ॥७॥ तथा सब प्रकारके उपकरणोंसे युक्त सर्वमन्दिरोंमें जिनभगवान्‌की पूजा करो। किङ्करोंको ऐसा आदेश दे उसने पूजाकी व्यवस्थाका सब भार उत्तमचित्तकी धारक मन्दोदरीके ऊपर रक्खा ॥८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वह सुर और असुरों द्वारा वन्दित बीसवें मुनिसुव्रत भगवान्‌का महाभ्युदयकारी समय था। उस समय लम्बे-चौड़े समस्त भरत क्षेत्रमें यह पृथ्वी अर्हन्तभगवान्‌की पवित्र प्रतिमाओंसे अलंकृत थी ॥९-१०॥ देशके अधिपति राजाओं तथा गाँवोंका उपभोग करनेवाले सेठोंके द्वारा जगह-जगह देदीप्यमान जिन-मन्दिर खड़े किये गये थे ॥११॥ वे मन्दिर, समीचीन धर्मके पक्षकी रक्षा करनेमें निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासन-देवोंसे अधिष्ठित थे ॥१२॥ देशवासी लोग सदा वैभवके साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे, ऐसे वे जिनालय स्वर्गके विमानोंके समान सुशोभित होते थे ॥१३॥ हे राजन् ! उस समय पर्वत पर्वतपर, अतिशय सुन्दर गाँव

१. वृद्ध म० । २. स्वचेतसि म० ।

सङ्गमे सङ्गमे रम्ये चत्वरे चत्वरे पृथौ । बभूवुश्चैत्यसङ्घाता महाशोभासमन्विताः ॥१५॥
शरच्चन्द्रसितच्छायाः सङ्गीतध्वनिहारिणः । नानातूर्यस्वनोद्भूतक्षुब्धसिन्धुसमस्वनाः ॥१६॥
त्रिसन्ध्यं वन्दनोद्युक्तैः साधुसङ्घैः[1] समाकुलाः । गम्भीरा विविधाचार्याश्चित्रपुष्पोपशोभिताः ॥१७॥
विभूत्या परया युक्ता नानावर्णमणित्विषः । सुविस्तीर्णाः समुत्तुङ्गा महाध्वजविराजिताः ॥१८॥
जिनेन्द्रप्रतिमास्तेषु हेमरूप्यादिमूर्तयः । पञ्चवर्णा भृशं रेजुः परिवारसमन्विताः ॥१९॥
पुरे च खेचराणां च स्थाने स्थानेऽतिचारुभिः । जिनप्रासादसत्कूटैर्विजयार्द्धगिरिर्वरः ॥२०॥
नानारत्नमयैः कान्तैरुद्यानादिविभूषितैः । व्याप्तं जगदिदं रेजे जिनेन्द्रभवनैः शुभैः ॥२१॥
महेन्द्रनगराकारा लङ्काऽप्येवं मनोहरा । अन्तर्बहिश्च जैनेन्द्रैर्भवनैः पापहारिभिः ॥२२॥
यथाष्टादशसङ्ख्यानां सहस्राणां सुयोषिताम् । पद्मिनीनां सहस्रांशुः स चिक्रीड दशाननः ॥२३॥
प्रावृट्मेघदलच्छायो नागनासा महाभुजः । पूर्णेन्दुवदनः कान्तो बन्धूकच्छदनाधरः ॥२४॥
विशालनयनो नारीमनःकर्षणविभ्रमः । लक्ष्मीधरसमाकारो दिव्यरूपसमन्वितः ॥२५॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

तस्मिन्नाश्रितसर्वलोकनयने प्रासादमालावृते
नानारत्नमये दशाननगृहे चैत्यालयोद्भासिते ।
हेमस्तम्भसहस्रशोभि विपुलं मध्ये स्थितं भासुरं
तुङ्गं शान्तिगृहं स यत्र भगवान् शान्तिजिनः स्थापितः ॥२६॥

गाँवमें, वन वनमें पत्तन पत्तनमें, महल महलमें, नगर नगरमें, संगम संगममें, तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे चौराहे पर महाशोभासे युक्त जिनमन्दिर बने हुए थे ॥१४-१५॥ वे मन्दिर शरदृऋतुके चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त थे, संगीतकी ध्वनिसे मनोहर थे, तथा नाना वादित्रोंके शब्दसे उनमें क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द हो रहे थे ॥१६॥ वे मन्दिर तीनों संध्याओंमें वन्दनाके लिए उद्यत साधुओंके समूहसे व्याप्त रहते थे, गम्भीर थे, नाना आचार्योंसे सहित थे और विविध प्रकारके पुष्पोंके उपहारसे सुशोभित थे ॥१७॥ परम विभूतिसे युक्त थे, नाना रङ्गके मणियोंकी कान्तिसे जगमगा रहे थे, अत्यन्त विस्तृत थे, ऊँचे थे और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे सहित थे ॥१८॥ उन मन्दिरोंमें सुवर्ण, चाँदी आदिकी बनी छत्रत्रय चमरादि परिवारसे सहित पाँच वर्णकी जिनप्रतिमाएँ अत्यन्त सुशोभित थीं ॥१९॥ विद्याधरोंके नगरमें स्थान-स्थानपर बने हुए अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिरोंके शिखरोंसे विजयार्ध पर्वत उत्कृष्ट हो रहा था ॥२०॥ इस प्रकार यह समस्त संसार बाग-बगीचोंसे सुशोभित, नानारत्नमयी, शुभ और सुन्दर जिनमन्दिरोंसे व्याप्त हुआ अत्यधिक सुशोभित था ॥२१॥ इन्द्रके नगरके समान वह लङ्का भी भीतर और बाहर बने हुए पापापहारी जिनमन्दिरोंसे अत्यन्त मनोहर थी ॥२२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि वर्षाऋतुके मेघसमूहके समान जिसकी कान्ति थी, हाथीकी सूँड़के समान जिसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ थीं, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, दुपहरियाके फूलके समान जिसके लाल-लाल ओंठ थे, जो स्वयं सुन्दर था, जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे, जिसकी चेष्टाएँ स्त्रियोंके मनको आकृष्ट करनेवाली थीं, लक्ष्मीधर-लक्ष्मणके समान जिसका आकार था और जो दिव्यरूपसे सहित था, ऐसा दशानन, कमलिनियोंके साथ सूर्यके समान अपनी अठारह हजार स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करता था ॥२३-२५॥ जिसपर सब लोगोंके नेत्र लग रहे थे, जो अन्य महलोंकी पंक्तिसे घिरा था, नानारत्नोंसे निर्मित था और चैत्यालयोंसे सुशोभित था, ऐसे दशाननके घरमें सुवर्णमयी हजारों खम्भोंसे सुशोभित, विस्तृत, मध्यमें स्थित, देदीप्यमान और

---

१. समाकुलः म० ।

वन्द्यानां त्रिदशेन्द्रमौलिशिखरप्रस्फुरद्रत्नस्फुरत्-
स्फीतांशुप्रकरात्प्रसारिचरणप्रोत्सर्पिनख्यंत्विषाम्[1]
ज्ञात्वा सर्वमशाश्वतं परिदृढामाधाय धर्मे मतिं
धन्याः सद्युति कारयन्ति परमं लोके जिनानां गृहम् ॥२७॥

उपजातिवृत्तम्

वित्तस्य जातस्य फलं विशालं वदन्ति सुज्ञाः सुकृतोपलम्भम् ।
धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिञ्जगत्यभीष्टस्य रविप्रकाशे ॥२८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शान्तिगृहकीर्तनं नाम सप्तषष्टितमं पर्व ॥६७॥

अतिशय ऊँचा वह शान्तिजिनालय था कि जिसमें शान्तिजिनेन्द्र विराजमान थे ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उत्तम भाग्यशाली मनुष्य, धर्ममें दृढ़ बुद्धि लगाकर तथा संसारके सब पदार्थोंको अस्थिर जानकर जगत्में उन जिनेन्द्र भगवान्के कान्तिसम्पन्न, उत्तम मन्दिर बनवाते हैं जो सबके द्वारा वन्दनीय हैं तथा इन्द्रके मुकुटोंके शिखरमें लगे रत्नोंकी देदीप्यमान किरणोंके समूहसे जिनके चरणनखोंकी कान्ति अत्यधिक वृद्धिगत होती रहती है ॥२७॥ बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं कि प्राप्त हुए विशाल धनका फल पुण्यकी प्राप्ति करना है और इस समस्त संसारमें एक जैनधर्म ही उत्कृष्ट पदार्थ है, यही इष्ट पदार्थको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाला है ॥२८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शान्ति जिनालयका वर्णन करने वाला सड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६७॥

---

१. नखत्विषाम् म० ।

अष्टषष्टितमं पर्व

अथ फाल्गुनिके मासे गृहीत्वा धवलाष्टमीम् । पौर्णमासीं तिथिं यावज्जातो नन्दीश्वरो महः ॥१॥
नन्दीश्वरमहे तस्मिन् प्राप्ते परमसम्मदः[1] । बलद्वयेऽपि लोकोऽभून्नियमग्रहणोद्यतः ॥२॥
एवं च मानसे चक्रुः सर्वे सैनिकपुङ्गवाः । सुपुण्यानि दिनान्यष्टावेतानि भुवनत्रये ॥३॥
नैतेषु विग्रहं कुर्मो न चान्यदपि हिंसनम् । यजामहे यथाशक्ति स्वश्रेयसि परायणाः ॥४॥
भवन्ति दिवसेष्वेषु भोगादिपरिवर्जिताः । सुरा अपि जिनेन्द्राणां सेन्द्राः पूजनतत्पराः ॥५॥
क्षीरोदवारि सम्पूर्णैः कुम्भैरम्भोजशोभिभिः । [2]शातकुम्भैरलं भक्ताः स्नपयन्ति जिनान् सुराः ॥६॥
अन्यैरपि जिनेन्द्राणां प्रतिमाः प्रतिमोज्झिताः । भावितैरभिषेक्तव्याः पलाशादिपुटैरपि ॥७॥
गत्वा नन्दीश्वरं भक्त्या पूजयन्ति जिनेश्वरान् । देवेश्वरा न ते पूज्याः क्षुद्रकैः किमिहस्थितैः ॥८॥
अर्चयन्ति सुराः पद्मै रत्नजाम्बूनदात्मकैः । जिनास्ते भुवि निर्वित्तैः पूज्याश्चित्तदलैरपि ॥९॥
इति ध्यानमुपायाता लङ्काद्वीपे मनोरमे । जनाश्चैत्यानि सोत्साहाः पताकाद्यैरभूषयत् ॥१०॥
सभाः प्रपाश्च मञ्चाश्च पट्टशाला मनोहराः । नाट्यशाला विशालाश्च वाप्यश्च रचिताः शुभाः ॥११॥
सरांसि पद्मरम्याणि भान्ति सोपानकैर्वरैः । तटोद्भासितवज्रादिचैत्यकूटानि भूरिशः ॥१२॥
कनकादिरजश्चित्रमण्डलादिविराजितैः । रेजुश्चैत्यानि सद्द्वारैर्वरम्भादिभूषितैः ॥१३॥
घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः कलशाः कमलाननाः । मुक्तादामादिसत्कण्ठा रत्नरश्मिविराजिताः ॥१४॥

अथानन्तर फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे लेकर पौर्णमासी पर्यन्त नन्दीश्वर-अष्टाह्निक महोत्सव आया ॥१॥ उस नन्दीश्वर महोत्सव के आने पर दोनों पक्षकी सेनाओंके लोग परम हर्षसे युक्त होते हुए नियम ग्रहण करनेमें तत्पर हुए ॥२॥ सब सैनिक मनमें ऐसा विचार करने लगे कि ये आठ दिन तीनों लोकोंमें अत्यन्त पवित्र हैं ॥३॥ इन दिनोंमें हम न युद्ध करेंगे और न कोई दूसरी प्रकारकी हिंसा करेंगे, किन्तु आत्म-कल्याणमें तत्पर रहते हुए यथा-शक्ति भगवान् जिनेन्द्र की पूजा करेंगे ॥४॥ इन दिनोंमें देव भी भोगादिसे रहित हो जाते हैं तथा इन्द्रोंके साथ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमें तत्पर रहते हैं ॥५॥ भक्त देव, क्षीर समुद्रके जलसे भरे तथा कमलोंसे सुशोभित स्वर्णमयी कलशोंसे श्रीजिनेन्द्रका अभिषेक करते हैं ॥६॥ अन्य लोगोंको भी चाहिए कि वे भक्तिभावसे युक्त हो कलश न हों तो पत्तों आदिके बने दोनोंसे भी जिनेन्द्र देवकी अनुपम प्रतिमाओंका अभिषेक करें ॥७॥ इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप जाकर भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं, तो क्या यहाँ रहनेवाले क्षुद्र मनुष्योंके द्वारा जिनेन्द्र पूजनीय नहीं हैं ? ॥८॥ देव रत्न तथा स्वर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं तो पृथ्वी पर स्थित निर्धन मनुष्योंको अन्य कुछ न हो तो मनरूपी कलिका द्वारा भी उनकी पूजा करना चाहिए ॥९॥ इस प्रकार ध्यानको प्राप्त हुए मनुष्योंने बड़े उत्साहके साथ मनोहर लङ्का द्वीपमें जो मन्दिर थे उन्हें पताका आदि से अलंकृत किया ॥१०॥ एकसे एक बढ़कर सभाएँ, प्याऊ, मञ्च, पट्टशालाएँ, मनोहर नाट्य शालाएँ तथा बड़ी-बड़ी वापिकाएँ बनाई गईं ॥११॥ जो उत्तमोत्तम सीढ़ियोंसे सहित थे तथा जिनके तटों पर वज्रादिसे निर्मित जिनमन्दिर शोभा पा रहे थे, ऐसे कमलोंसे मनोहर अनेक सरोवर सुशोभित हो रहे थे ॥१२॥ जिनालय, स्वर्णादिकी परागसे निर्मित नाना प्रकारके मण्डलादिसे अलंकृत एवं वज्र तथा कदली आदिसे सुशोभित उत्तम द्वारोंसे शोभा पा रहे थे ॥१३॥ जो घी, दूध आदिसे भरे हुए थे, जिनके मुख पर कमल ढके हुए थे,

१. सम्पदः म० । २. सौवर्णैः । ३. तटैर्भासित म० ।

जनबिम्बाभिषेकार्थमाहृता भक्तिभासुराः । दृश्यन्ते भोगिगेहेषु शतशोऽथ सहस्रशः ॥१५॥
नन्दनप्रभवैः फुल्लैः कर्णिकारातिमुक्तकैः । कदम्बैः सहकारैश्च चम्पकैः पारिजातकैः ॥१६॥
मन्दारैः सौरभाबद्धमधुव्रतकदम्बकैः । स्रजो विरचिता रेजुश्चैत्येषु[1] परमोज्ज्वलाः ॥१७॥
[2]जातरूपमयैः पद्मै रजतादिमयैस्तथा । मणिरत्नशरीरैश्च पूजा विरचिता परा ॥१८॥
पटुभिः पटहैस्तूर्यैर्मृदङ्गैः काहलादिभिः । शङ्खैश्चाशु महानादै[3]श्चैत्येषु समजायत ॥१९॥
प्रशान्तवैरसम्बद्धैर्महानन्दसमागतैः । जिनानां महिमा चक्रे लङ्कापुरनिवासिभिः ॥२०॥
ते विभूतिं परां चक्रुर्विद्येशा भक्तितत्पराः । नन्दीश्वरे यथा देवा जिनबिम्बार्चनोद्यताः ॥२१॥

आर्याच्छन्दः

अयमपि राक्षसवृषभः पृथुप्रतापः सुशान्तिगृहमभिगम्य ।
पूजां करोति भक्त्या बलिरिव पूर्वं मनोहरां शुचिर्भूत्वा ॥२२॥
समुचितविभवयुतानां जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
पूजयतां पुरुषाणां कः शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ॥२३॥
भुक्त्वा देवविभूतिं लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
रवितोऽपि तपस्तीव्रं कृत्वा जैनं व्रजन्ति मुक्तिं परमाम् ॥२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे फाल्गुनाष्टाह्निकामहिमविधानं नामाष्टषष्टितमं पर्व ॥६८॥

जिनके कण्ठमें मोतियोंकी मालाएँ लटक रही थीं, जो रत्नोंकी किरणोंसे सुशोभित थे, जो नाना प्रकारके बेलबूटोंसे देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओंके अभिषेकके लिए इकट्ठे किये गये थे ऐसे सैकड़ों हजारों कलश गृहस्थोंके घरोंमें दिखायी देते थे ॥१४–१५॥ मन्दिरोंमें सुगन्धिके कारण जिन पर भ्रमरोंके समूह मँडरा रहे थे, ऐसे नन्दन-वनमें उत्पन्न हुए कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजातक, तथा मन्दार आदिके फूलोंसे निर्मित अत्यन्त उज्ज्वल मालाएँ सुशोभित हो रही थीं ॥१६–१७॥ स्वर्ण चाँदी तथा मणिरत्न आदिसे निर्मित कमलोंके द्वारा श्री जिनेन्द्र देवकी उत्कृष्ट पूजा की गई थी ॥१८॥ उत्तमोत्तम नगाड़े, तुरही, मृदङ्ग, शङ्ख तथा काहल आदि वादित्रोंसे मन्दिरोंमें शीघ्र ही विशाल शब्द होने लगा ॥१९॥ जिनका पारस्परिक वैरभाव शान्त हो गया था और जो महान् आनन्दसे मिल रहे थे, ऐसे लङ्कानिवासियोंने जिनेन्द्र देवकी परम महिमा प्रकट की ॥२०॥ जिस प्रकार नन्दीश्वर द्वीपमें जिन-बिम्बकी अर्चा करनेमें उद्यत देव बड़ी विभूति प्रकट करते हैं उसी प्रकार भक्तिमें तत्पर विद्याधर राजाओंने बड़ी विभूति प्रकट की थी ॥२१॥ विशाल प्रतापके धारक रावणने भी श्री शान्ति-जिनालयमें जाकर पवित्र हो पहले जिस प्रकार बलि राजाने की थी, उस प्रकार भक्तीसे श्री जिनेन्द्र देवकी मनोहर अर्चा की ॥२२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो योग्य वैभवसे युक्त हैं तथा उत्तम भक्तिके भारको धारण करने वाले हैं ऐसे श्री जिनेन्द्र देवकी पूजा करने वाले पुरुषोंके पुण्य-समूहका निरूपण करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ ऐसे जीव देवोंकी सम्पदाका उपभोग कर तथा चक्रवर्तीके भोगोंका सुयोग पा कर और अन्तमें सूर्यसे भी अधिक जिनेन्द्र प्रणीत तपश्चरण कर श्रेष्ठ मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें फाल्गुनमासकी अष्टाह्निकाओंकी महिमाका निरूपण करने वाला अड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६८॥

---

१. चैत्यादि म० । २. स्वर्णमयैः । ३. महानादै-म० ।

एकोनसप्ततितमं पर्व

अथ शान्तिजिनेन्द्रस्य भवनं शान्तिकारणम् । कैलासकूटसङ्काशं शरदभ्रचयोपमम् ॥१॥
स्वयम्प्रभासुरं दिव्यं प्रासादालीसमावृतम् । जम्बूद्वीपस्य मध्यस्थं महामेरुमिवोत्थितम् ॥२॥
विद्यासाधनसंयुक्तमानसः स्थिरनिश्चयः । प्रविश्य रावणः पूजामकरोत् परमाद्भुताम् ॥३॥
अभिषेकैः सवादित्रैर्माल्यैरतिमनोहरैः । धूपैर्बल्युपहारैश्च सद्वर्णैरनुलेपनैः ॥४॥
चक्रे शान्तिजिनेन्द्रस्य शान्तचेता दशाननः । पूजां परमया युत्या शुनासीर इवोद्यतः ॥५॥
चूडामणिहस[1]द्बद्धकेशमौलिर्महाद्युतिः । शुक्लांशुकधरः पीनकेयूरार्चितसद्भुजः ॥६॥
कृताञ्जलिपुटः क्षोणीं पीडयन् जानुसङ्गमात् । प्रणामं शान्तिनाथस्य चकार त्रिविधेन सः ॥७॥
शान्तेरभिमुखः स्थित्वा निर्मले धरणीतले । पर्यङ्कार्धनियुक्ताङ्गः पुष्परागिणि कुट्टिमे ॥८॥
बिभ्रत्स्फटिकनिर्माणामक्षमालां करोदरे । बलाकापङ्क्तिसंयुक्तनीलाम्भोदचयोपमः ॥९॥
एकाग्रध्यानसम्पन्नो नासाग्रस्थितलोचनः । विद्यायाः साधनं धीरः प्रारेभे राक्षसाधिपः ॥१०॥
दत्ताज्ञा पूर्वमेवाथ नाथेन प्रियवर्तिनी । अमात्यं यमदण्डाख्यमादिदेश मयात्मजा ॥११॥
दाप्यतां घोषणा स्थाने यथा लोकः समन्ततः । नियमेषु नियुक्तात्मा जायतां सुदयापरः ॥१२॥
जिनचन्द्राः प्रपूज्यन्तां शेषव्यापारवर्जितैः । दीयतां धनमर्थिभ्यो यथेष्टं हृतमत्सरैः ॥१३॥
यावत्समाप्यते योगो नायं भुवनभोगिनः । तावत् श्रद्धापरो भूत्वा जनस्तिष्ठतु संयमी ॥१४॥

अथानन्तर जो शान्तिका कारण था, कैलासके शिखरके समान जान पड़ता था, शरद्-ऋतुके मेघमण्डलकी उपमा धारण करता था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य अर्थात मनोहर था, महलोंकी पंक्तिसे घिरा था और जम्बूद्वीपके मध्यमें स्थित महामेरुके समान खड़ा था—ऐसा श्रीशान्तिजिनेन्द्रके मन्दिरमें, विद्या साधनकी इच्छासे युक्त रावणने दृढ़ निश्चयके साथ प्रवेश कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी परम अद्भुत पूजा की ॥१–३॥ जो उत्कृष्ट कान्तिसे खड़े हुए इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसे शान्तचित्त दशाननने वादित्र सहित अभिषेकों, अत्यन्त मनोहर मालाओं, धूपों, नैवेद्यके उपहारों और उत्तमवर्णके विलेपनोंसे श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्रकी पूजा की ॥४–५॥ जिसके बँधे हुए केश चूडामणिसे सुशोभित थे तथा उनपर मुकुट लगा हुआ था, जो महाकान्तिमान था, शुक्ल वस्त्रको धारण कर रहा था, जिसकी मोटी-मोटी उत्तम भुजाएँ बाजूबन्दोंसे अलंकृत थीं, जो हाथ जोड़े हुए था, और घुटनोंके समागमसे जो पृथ्वीको पीड़ा पहुँचा रहा था ऐसे दशाननने मन, वचन, कायसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्को प्रणाम किया ॥६–७॥

तदनन्तर जो निर्मल पृथ्वीतलमें पुष्परागमणिसे निर्मित फर्सपर श्रीशान्तिनाथ भगवान्के सामने बैठा था, जो हाथोंके मध्यमें स्फटिकमणिसे निर्मित अक्षमालाको धारण कर रहा था, और इसीलिए बलाकाओंकी पंक्तिसे युक्त नीलमेघोंके समूहके समान जान पड़ता था, जो एकाग्र ध्यानसे युक्त था, जिसने अपने नेत्र नासाके अग्रभाग पर लगा रक्खे थे, तथा जो अत्यन्त धीर था ऐसे रावणने विद्याका सिद्ध करना प्रारम्भ किया ॥८–१०॥ अथानन्तर जिसे स्वामीने पहले ही आज्ञा दे रक्खी थी ऐसी प्रियकारिणी मन्दोदरीने यमदण्डनामक मन्त्रीको आदेश दिया कि जगह-जगह ऐसी घोषणा दिलाई जावे कि जिससे लोग सब ओर नियम—आखड़ियोंमें तत्पर और उत्तम दयासे युक्त होवें ॥११–१२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर जिनचन्द्रकी पूजा की जावे और मत्सरभावको दूर कर याचकोंके लिए इच्छानुसार धन दिया जावे ॥१३॥ जबतक जगत्के

---

१. हंसद्रंध-म० ।

निकारो यद्युदारोऽपि कुतश्चिन्नीचतो भवेत् । निश्चितं सोऽपि सोढव्यो महाबलयुतैरपि ॥१५॥
क्रोधाद्विकुरुते किञ्चिद्दिवसेष्वेषु यो जनः । पिताऽपि किं पुनः शेषः स मे वध्यो भविष्यति ॥१६॥
युक्तो [१]बोधिसमाधिभ्यां संसारं सोऽन्तवर्जितम् । प्रतिपद्येत यो न स्यात् समादिष्टस्य कारकः ॥१७॥

वंशस्थवृत्तम्

ततो यथाऽऽज्ञापयसीति सम्भ्रमी मुदा तदाज्ञां शिरसा प्रतीच्छ्य सः ।
चकार सर्वं गदितं जनैश्च तथा कृतं संशयसङ्गवर्जितैः ॥१८॥
जिनेन्द्रपूजाकरणप्रसक्ता प्रजा बभूवापरकार्यमुक्ता ।
रविप्रभाणां परमालयानामन्तर्गता निर्मलतुङ्गभावा ॥१९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते लोकनियमकरणाभिधानं नामैकोनसप्ततितमं पर्व ॥६९॥

स्वामी—दशाननका यह योग समाप्त नहीं होता है तबतक सब लोग श्रद्धामें तत्पर एवं संयमी होकर रहें ॥१४॥ यदि किसी नीच मनुष्यकी ओरसे अत्यधिक तिरस्कार भी होवे तो भी महा-बलवान् पुरुषोंको उसे निश्चित रूपसे सह लेना चाहिये ॥१५॥ इन दिनोंमें जो भी पुरुष क्रोधसे विकार दिखावेगा वह पिता भी हो, फिर शेषकी तो बात ही क्या है ? मेरा वध्य होगा ॥१६॥ जो मनुष्य इस आदेशका पालन नहीं करेगा वह बोधि और समाधिसे युक्त होने पर भी अनन्त संसारको ही प्राप्त होगा—उससे छूटकर मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥१७॥

तदनन्तर 'जैसी आपकी आज्ञा हो' इस प्रकार शीघ्रतासे कहकर तथा हर्ष पूर्वक मन्दोदरीकी आज्ञा शिरोधार्यकर यमदण्ड मन्त्रीने घोषणा कराई और सब लोगोंने संशयसे रहित हो घोषणाके अनुसार ही सब कार्य किये ॥१८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि सूर्यके समान कान्तिवाले उत्तमोत्तम महलोंके भीतर विद्यमान तथा निर्मल और उन्नत भावोंको धारण करने वाली लङ्काकी समस्त प्रजा, अन्य सब कार्य छोड़ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमें ही लीन हो गई ॥१९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लोगोंके नियम करनेका वर्णन करने वाला उनहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६९॥

---

१. रोधिसमाधिभ्याम् म० ।

सप्ततितमं पर्व

[1]स वृत्तान्तश्चरास्येभ्यस्तत्र परबले श्रुतः । ऊचुश्च खेचराधीशा जयप्राप्तिपरायणाः ॥१॥
किल शान्तिजिनेन्द्रस्य प्रविश्य [2]शरणं सुधीः । विद्यां साधयितुं लग्नः स लङ्कापरमेश्वरः ॥२॥
चतुर्विंशतिभिः सिद्धिं वासरैः प्रतिपद्यते । बहुरूपेति सा विद्या सुराणामपि भञ्जनी ॥३॥
यावन्नगवती तस्य सा सिद्धिं न प्रपद्यते । तावत् कोपयत क्षिप्रं तं गत्वा नियमस्थितम् ॥४॥
तस्यां सिद्धिमुपेतायां देवेन्द्रैरपि शक्यते । न स साधयितुं कैव क्षुद्रेष्वस्मासु सङ्कथा ॥५॥
ततो विभीषणेनोक्तं कर्त्तव्यं चेदिदं ध्रुवम् । द्रुतं प्रारभ्यतां कस्माद्भवद्भिरवलम्ब्यते ॥६॥
सम्प्रधार्य समस्तैस्तैः पद्मनाभाय वेदितम् । गदितं च यथा लङ्काप्रस्तावे गृह्यतामिति ॥७॥
बाध्यतां रावणः कृत्यं क्रियतां च यथेप्सितम् । इत्युक्तः स जगौ धीरो महापुरुषचेष्टितः ॥८॥
भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्तं विहिंसनम् । किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ॥९॥
नैषा कुलसमुत्थानां क्षत्रियाणां प्रशस्यते । प्रवृत्तिर्गर्वतुङ्गानां खिन्नानां शस्त्रकर्मणि ॥१०॥
महानुभावधीर्देवो विधर्मे न प्रवर्त्तते । इति प्रधार्य ते चक्रुः कुमारान् गामिनो रहः ॥११॥
श्वो [3]गन्तास्म इति प्राप्ता अपि बुद्धिं नभश्चराः । अष्टमात्रदिनं कालं सम्प्रधारणया स्थिताः ॥१२॥
पूर्णमास्यां ततः पूर्णशशाङ्कसदृशाननाः । पद्मायतेक्षणा नानालक्षणध्वजशोभिनः ॥१३॥

अथानन्तर 'रावण बहुरूपिणी विद्या साध रहा है ।' यह समाचार गुप्तचरोंके मुखसे रामकी सेनामें सुनाई पड़ा सो विजय प्राप्त करनेमें तत्पर विद्याधर राजा कहने लगे कि ऐसा सुननेमें आया है कि लङ्काका स्वामी रावण श्री शान्ति-जिनेन्द्रके मन्दिरमें प्रवेश कर विद्या सिद्ध करनेमें लगा हुआ है ॥१-२॥ वह बहुरूपिणी विद्या चौबीस दिनमें सिद्धिको प्राप्त होती है तथा देवोंका भी मद भञ्जन करनेवाली है ॥३॥ इसलिए वह भगवती विद्या जब तक उसे सिद्ध नहीं होती है तब तक शीघ्र ही जाकर नियममें बैठे रावणको क्रोध उत्पन्न करो ॥४॥ बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो जाने पर वह इन्द्रोंके द्वारा भी नहीं जीता जा सकेगा फिर हमारे जैसे क्षुद्र पुरुषोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥५॥ तब विभीषणने कहा कि यदि निश्चित ही यह कार्य करना है तो शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाय । आप लोग विलम्ब किसलिए कर रहे हैं ॥६॥ तदनन्तर इस प्रकार सलाह कर सब विद्याधरोंने श्रीरामसे कहा कि 'इस अवसर पर लङ्का ग्रहण की जाय' ॥७॥ रावणको मारा जाय और इच्छानुसार कार्य किया जाय । इस प्रकार कहे जाने पर महा-पुरुषोंकी चेष्टासे युक्त धीर वीर रामने कहा कि जो मनुष्य अत्यन्त भयभीत हैं उन आदिके ऊपर भी जब हिंसापूर्ण कार्य करना योग्य नहीं है तब जो नियम लेकर जिन-मन्दिरमें बैठा है उस पर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? ॥८-९॥ जो उच्चकुलमें उत्पन्न हैं, अहङ्कारसे उन्नत हैं तथा शस्त्र चलानेके कार्यमें जिन्होंने श्रम किया है ऐसे क्षत्रियोंकी यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं है ॥१०॥

तदनन्तर 'हमारे स्वामी राम महापुरुष हैं, ये अधर्ममें प्रवृत्ति नहीं करेंगे' ऐसा निश्चय कर उन्होंने एकान्तमें अपने-अपने कुमार लङ्काकी ओर रवाना किये ॥११॥ 'तत्पश्चात् कल चलेंगे' इस प्रकार निश्चय कर लेने पर भी विद्याधर आठ दिन तक सलाह ही करते रहे ॥१२॥ अथानन्तर पूर्णिमाका दिन आया तब पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखके धारक, कमलके समान दीर्घ नेत्रोंसे

---

१. सद्वृत्तान्तश्चरा-ज० । २. गृहम् । ३. गताः स्म म० ।

सिंहव्याघ्रवराहेभशरभादियुतान् रथान् । विमानानि तथाऽऽरूढा गृहीतपरमायुधाः ॥१४॥
कुमाराः प्रस्थिता लङ्कां शङ्कामुत्सृज्य सादराः । रावणक्षोभणाकूता भवनामरभासुराः ॥१५॥
मकरध्वजसाटोपचन्द्राभरतिवर्द्धनाः । वातायनो गुरुभरः सूर्यज्योतिर्महारथः[1] ॥१६॥
प्रीतिङ्करो दृढरथः समुन्नतबलस्तथा । नन्दनः सर्वदो दुष्टः सिंहः सर्वप्रियो नलः ॥१७॥
नीलः सागरनिस्वानः ससुतः पूर्णचन्द्रमाः । स्कन्दश्चन्द्रमरीचिश्च जाम्बवः सङ्कटस्तथा ॥१८॥
समाधिबहुलः [2]सिंहकटिरिन्द्राशनिर्बलः । तुरङ्गशतमेतेषां प्रत्येकं योजितं रथे ॥१९॥
शेषाः सिंहवराहेभव्याघ्रयानैर्मनोजवैः । पदातिपटलांतस्थाः प्रस्थिताः परमौजसः ॥२०॥
नानाचिह्नातपत्रास्ते नानातोरणलाञ्छनाः । चित्राभिर्वैजयन्तीभिर्लक्षिता गगनाङ्गणे ॥२१॥
सैन्यार्णवसमुद्भूतमहागम्भीरनिःस्वनाः । आस्तृणाना दिशो मानमुद्वहन्तः समुन्नताः ॥२२॥
प्राप्ता लङ्कापुरीबाह्योद्देशमेवमचिन्तयन् । आश्चर्यं किमिदं लङ्का निश्चिन्तेयमवस्थिता ॥२३॥
स्वस्थो जनपदोऽमुष्यां सुचेताः परिलक्ष्यते । अवृत्तपूर्वसङ्ग्रामा इव चास्यां भटाः स्थिताः ॥२४॥
अहो लङ्केश्वरस्येदं धैर्यमत्यन्तमुन्नतम् । गाम्भीर्यं तथा सत्त्वं श्रीप्रतापसमुन्नतम् ॥२५॥
बन्दिग्रहणमानीतः कुम्भकर्णो महाबलः । इन्द्रजिन्मेघनादश्च दुर्धरैरपि दुर्धराः ॥२६॥
अक्षाद्या बहवः शूरा नीता निधनमाहवे । न तथापि विभोः शङ्का काचिदस्योपजायते ॥२७॥
इति सञ्चिन्त्य कृत्वा च समालापं परस्परम् । विस्मयं परमं प्राप्ताः कुमाराः शङ्किता इव ॥२८॥

युक्त एवं नाना लक्षणोंकी ध्वजाओंसे सुशोभित विद्याधर कुमार सिंह, व्याघ्र, वाराह, हाथी और शरभ आदिसे युक्त रथों तथा विमानों पर आरूढ़ हो निशङ्क होते हुए आदरके साथ लङ्काकी ओर चले। उस समय उत्तमोत्तम शस्त्रोंको धारण करने वाले तथा रावणको कुपित करनेकी भावनासे युक्त वे वानर कुमार भवनवासी देवोंके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥१३–१५॥ उन कुमारोंसे कुछके नाम इस प्रकार हैं। मकरध्वज, साटोप, चन्द्राभ, वातायन, गुरुभर, सूर्यज्योति, महारथ, प्रीतिङ्कर, दृढ़रथ, समुन्नतबल, नन्दन, सर्वद, दुष्ट, सिंह, सर्वप्रिय, नल, नील, समुद्रघोष, पुत्र सहित पूर्णचन्द्र, स्कन्द, चन्द्ररश्मि, जाम्बव, सङ्कट, समाधिबहुल, सिंहजघन, इन्द्रवज्र और बल। इनमेंसे प्रत्येकके रथ में सौ-सौ घोड़े जुते हुए थे ॥१६–१९॥ पदातियोंके मध्यमें स्थित, परम तेजस्वी शेषकुमार मनके समान वेगशाली सिंह वराह हाथी और व्याघ्र रूपी वाहनोंके द्वारा लङ्काको ओर चले ॥२०॥ जिनके ऊपर नाना चिह्नोंको धारण करने वाले छत्र फिर रहे थे, जो नाना तोरणोंसे चिह्नित थे, आकाशाङ्गणमें जो रङ्ग-विरङ्गी ध्वजाओंसे सहित थे, जिनकी सेनारूपी सागरसे अत्यन्त गम्भीर शब्द उठ रहा था, जो मानको धारण कर रहे थे, तथा अतिशय उन्नत थे ऐसे वे सब कुमार दिशाओंको आच्छादित करते हुए लङ्कापुरीके बाह्य मैदानमें पहुँचकर इस प्रकार विचार करने लगे कि यह क्या आश्चर्य है? जो यह लङ्का निश्चिन्त स्थित है ॥२१–२३॥ इस लङ्काके निवासी स्वस्थ तथा शान्तचित्त दिखाई पड़ते हैं और यहाँके योद्धा भी ऐसे स्थित हैं मानो इनके यहाँ पहले युद्ध हुआ ही नहीं हो ॥२४॥ अहो लङ्कापतिका यह विशाल धैर्य, यह उन्नत गाम्भीर्य, और यह लक्ष्मी तथा प्रतापसे उन्नत सत्त्व-बल धन्य हैं ॥२५॥ यद्यपि महाबलवान् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् तथा मेघनाद बन्दीगृहमें पड़े हुए हैं, तथा प्रचण्ड बलशाली भी जिन्हें पकड़ नहीं सकते थे ऐसे अक्ष आदि अनेक शूर वीर युद्धमें मारे गये हैं तथापि इस धनी को कोई शङ्का उत्पन्न नहीं हो रही है ॥२६–२७॥ इस प्रकार विचार कर तथा परस्पर वार्तालाप कर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए कुमार कुछ शङ्कितसे हो गये ॥२८॥

---

१. द्योतिमहारथः ज० । सूर्यो ज्योतिर्महारथः म० । २. सिंहः कटि म० ।

अथ वैभीषणिर्वाक्यं ख्यातो नाम्ना सुभूषणः । जगाद धैर्यसम्पन्नं निर्भ्रान्तं मातलायनम् ॥२९॥
भयासङ्गं समुत्सृज्य क्षिप्रं लङ्कां प्रविश्य ताम् । लोलयामि इमान् सर्वान् परित्यज्य कुलाङ्गनाः ॥३०॥
वचनं तस्य सम्पूज्य ते विद्याधरदारकाः । महाशौर्यसमुद्दण्डा दुर्दान्ताः कलहप्रियाः ॥३१॥
आशीविषसमाश्चण्डा उद्धताश्चपलाश्चलाः[1] । भोगदुर्ललिता नानासङ्ग्रामोद्भूतकीर्तयः ॥३२॥
ग्रसमाना इवाशेषां नगरीं तां समास्तृणन् । महासैन्यसमायुक्ताः शस्त्ररश्मिविराजिताः ॥३३॥
सिंहेभादिरवोन्मिश्रभेरीदुन्दुभिनिस्वनम् ॥ श्रुत्वातिभीषणं लङ्का परमं कम्पमागता ॥३४॥
सहसा चकितत्रस्ता विलोलनयनाः स्त्रियः । स्वनद्गलद्दलङ्काराः प्रियाणामङ्कमाश्रिताः ॥३५॥
विद्याभृन्मिथुनान्युच्चैर्विह्वलानि नभोऽङ्गणे । बभ्रमुश्चक्रवद्भ्रान्त्या चलद्वासांसि सस्वनम् ॥३६॥
भवने राक्षसेन्द्रस्य महारत्नांशुभासुरे । स्वनन्मङ्गलगम्भीरवीरतूर्यमृदङ्गके ॥३७॥
अव्युच्छिन्नसुसङ्गीतनृत्यनिष्णातयोषिति । जिनपूजासमुद्युक्तकन्याजनसमाकुले ॥३८॥
विलासैः परमस्त्रीणामप्युन्मादितमन्मथे । क्रूरतूर्यस्वनं श्रुत्वा क्षुब्धेऽन्तःपुरसागरे ॥३९॥
उदयौ निःस्वनो रम्यो भूषणस्वनसङ्गतः । समन्तादाकुलो मन्द्रो वल्लकीनामिवायतः ॥४०॥
विह्वलाऽचिन्तयत् काचित् कष्टं किमिदमागतम् । मर्तव्यमद्य किं क्रूरे कृते कर्मणि शत्रुभिः ॥४१॥
अन्या दध्यौ भवेत्पापैः[2] किं नु बन्दिग्रहो मम । किंवा विवसनीभूता क्षिप्ये लवणसागरे ॥४२॥
एवमाकुलतां प्राप्ते समस्ते नगरीजने । विह्वलेषु प्रवृत्तेषु निःस्वनेषु समन्ततः ॥४३॥

तदनन्तर सुभूषण नामसे प्रसिद्ध विभीषणके पुत्रने, धैर्यशाली, भ्रान्तिरहित वातायनसे इस प्रकार कहा कि ॥२९॥ भय छोड़ शीघ्र ही लङ्कामें प्रवेश कर कुलाङ्गनाओंको छोड़ इस समस्त लोगोंको अभी हिलाता हूँ ॥३०॥ उसके वचन सुन विद्याधरोंके कुमार समस्त नगरीको ग्रसते हुए के समान सर्वत्र छा गये। वे कुमार महाशूरवीरतासे अत्यन्त उद्दण्ड थे, कठिनतासे वशमें करने योग्य थे, कलह-प्रिय थे, आशीविष-सर्पके समान थे, अत्यन्त क्रोधी थे, गर्वीले थे, बिजलीके समान चञ्चल थे, भोगोंसे लालित हुए थे, अनेक संग्रामोंमें कीर्तिको उपार्जित करनेवाले थे, बहुत भारी सेनासे युक्त थे तथा शस्त्रोंकी किरणोंसे सुशोभित थे ॥३१-३३॥ सिंह तथा हाथी आदिके शब्दोंसे मिश्रित भेरी एवं दुन्दुभी आदिके अत्यन्त भयङ्कर शब्दको सुन लङ्का परम कम्पनको प्राप्त हुई—सारी लङ्का काँप उठी ॥३४॥ जो आश्चर्यचकित हो भयभीत हो गई थीं, जिनके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे और जिनके आभूषण गिर-गिरकर शब्द कर रहे थे ऐसी स्त्रियाँ सहसा पतियोंकी गोदमें जा छिपीं ॥३५॥ जो अत्यन्त विह्वल थे तथा जिनके वस्त्र वायुसे इधर-उधर उड़ रहे थे ऐसे विद्याधरोंके युगल आकाशमें बहुत ऊँचाई पर शब्द करते हुए चक्राकार भ्रमण करने लगे ॥३६॥ रावणका जो भवन महारत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान था, जिसमें मङ्गलमय तुरही तथा मृदङ्गोंका गम्भीर शब्द हो रहा था, जिसमें रहनेवाली स्त्रियाँ अविरल उत्तम संगीत तथा नृत्यमें निपुण थीं, जो जिनपूजामें तत्पर कन्याजनोंसे व्याप्त थी और जिसमें उत्तम स्त्रियोंके विलासोंसे भी काम उन्मादको प्राप्त नहीं हो रहा था ऐसे रावणके भवनमें जो अन्तःपुररूपी सागर विद्यमान था वह तुरहीके कठोर शब्दको सुन क्षोभको प्राप्त हो गया ॥३७-३९॥ सब ओरसे आकुलतासे भरा भूषणोंके शब्दसे मिश्रित ऐसा मनोहर एवं गम्भीर शब्द उठा जो मानो वीणाका ही विशाल शब्द था ॥४०॥ कोई स्त्री विह्वल होती हुई विचार करने लगी कि हाय हाय यह क्या कष्ट आ पड़ा। शत्रुओंके द्वारा किये हुए इस क्रूरतापूर्ण कार्यमें क्या आज मरना पड़ेगा ? ॥४१॥ कोई स्त्री सोचने लगी कि न जाने मुझे पापी लोग बन्दीगृहमें डालते हैं या वस्त्ररहित कर लवणसमुद्रमें फेंकते हैं ॥४२॥ इस प्रकार जब नगरीके समस्त लोग आकुलताको

---

१. चपलाश्चलाः म० । २. पापः म०, ब० ।

क्रुद्धो मयमहादैत्यः पिनद्धकवचो द्रुतम् । सन्नद्धैः सचिवैः सार्द्धं समुन्नतपराक्रमः ॥४४॥
युद्धार्थमुद्यतो दीप्तः प्राप लङ्केशमन्दिरम् । श्रीमान् हरिणकेशीव सुनाशीरनिकेतनम् ॥४५॥
ऊचे मन्दोदरी तं च कृत्वा निर्भर्त्सनं परम् । कर्त्तव्यं तात नैतत्ते दोषार्णवनिमज्जनम् ॥४६॥
समयो घोष्यमाणोऽसौ जैनः किं न त्वया श्रुतः । प्रसादं कुरु वांछा चेदस्ति स्वश्रेयसं प्रति ॥४७॥
दुहितुः स्वहितं वाक्यं श्रुत्वा दैत्यपतिर्मयः । प्रशान्तः संजहारास्त्रं रश्मिचक्रं यथा रविः ॥४८॥
दुर्भेदकवचच्छन्नो मणिकुण्डलमण्डितः । हारराजितवक्षस्को विवेश स्वं जिनालयम् ॥४९॥
उद्वेलसागराकाराः कुमारास्तावदागताः । प्राकारं वेगवातेन कुर्वन्तः शिखरोज्झितम् ॥५०॥
भग्नवज्रकपाटं च कृत्वा गोपुरमायतम्[1] । प्रविष्टा नगरीं धीरा महोपद्रवलालसाः ॥५१॥
इमे प्राप्ता द्रुतं नश्य[2] क्व यामि प्रविशालयम् । हा मातः किमिदं प्राप्तं तात तात निरीक्ष्यताम् ॥५२॥
त्रायस्व भद्र हा भ्रातः किं किं ही ही कथं कथम् । आर्यपुत्र निवर्त्तस्व तिष्ठ हा हा महद्भयम् ॥५३॥
एवं प्रवृत्तनिस्वानैराकुलैर्नगरीजनैः । सन्त्रस्तैर्दशवक्त्रस्य भवनं [3]परिपूर्यता ॥५४॥
काचिद्विगलितां काञ्चीमाक्रम्यात्यन्तमाकुला । स्वेनैव चरणेनान्ते जानुखण्डं गता भुवि ॥५५॥
हस्तालम्बितविर्स्रस्तवसनान्यतिविह्वला । गृहीतपृथुका तन्वी चकम्पे गन्तुमुद्यता ॥५६॥
सम्भ्रमत्रुटितस्थूलमुक्तानिकरवर्षिणी । मेघरेखेव काचित्तु प्रस्थिता वेगधारिणी ॥५७॥

प्राप्त थे तथा सब ओरसे घबड़ाहटके शब्द सुनाई पड़ रहे थे तब क्रोधसे भरा एवं उन्नत पराक्रमका धारी, मन्दोदरीका पिता मयनामक महादैत्य कवच पहिनकर, कवच धारण करनेवाले मन्त्रियोंके साथ युद्धके लिए उद्यत हो देदीप्यमान हुआ रावणके भवनमें उस प्रकार पहुँचा जिस प्रकार कि श्रीसम्पन्न हरिणकेशी इन्द्रके भवन आता है, ॥४३-४५॥ तब मन्दोदरीने पिताको बड़ी डाँट दिखाकर कहा कि हे तात ! इस तरह आपको दोषरूपी सागरमें निमज्जन नहीं करना चाहिए ॥४६॥ जिसकी घोषणा की गई थी ऐसा जैनाचार क्या तुमने सुना नहीं था। इसलिए यदि अपनी भलाई चाहते हो तो प्रसाद करो-शान्त होओ ॥४७॥ पुत्रीके स्वहितकारी वचन सुनकर दैत्यपति मयने शान्त हो अपना शस्त्र उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि सूर्य अपनी किरणोंके समूहको संकोच लेता है ॥४८॥ तदनन्तर जो दुर्भेद्य कवचसे आच्छादित था, मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत था और जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था ऐसे मयने अपने जिनालयमें प्रवेश किया ॥४९॥

इतनेमें ही उद्वेलसागरके समान आकारको धारण करनेवाले कुमार, वेग सम्बन्धी वायुसे प्राकारको शिखर रहित करते हुए आ पहुँचे ॥५०॥ महान् उपद्रव करनेमें जिनकी लालसा थी ऐसे वे धीर वीर कुमार, लम्बे-चौड़े गोपुरके वज्रमय किवाड़ तोड़कर नगरीके भीतर घुस गये ॥५१॥ उनके पहुँचते ही नगरीमें इस प्रकारका हल्ला मच गया कि 'ये आ गए', 'जल्दी भागो' 'कहाँ जाऊँ ?' 'घरमें घुस जाओ' 'हाय मातः यह क्या आ पड़ा है ?' 'हे तात ! तात ! देखो तो सही' 'अरे भले आदमी बचाओ' हे भाई ! 'क्या क्या' 'ही ही' क्यों क्यों' हे आर्य पुत्र ! लौटो, ठहरो, हाय हाय बड़ा भय है' इस प्रकार भयसे व्याकुल हो चिल्लाते हुए नगर-वासियोंसे रावणका भवन भर गया ॥५२-५४॥ कोई एक स्त्री इतनी अधिक घबड़ा गई थी कि वह अपनी गिरी हुई मेखलाको अपने ही पैरसे लाँघती हुई आगे बढ़ गई और अन्तमें पृथ्वीपर ऐसी गिरी कि उसके घुटने टूट गये ॥५५॥ खिसकते हुए वस्त्रको जिसने हाथसे पकड़ रक्खा था, जो अत्यन्त घबड़ाई हुई थी, जिसने बच्चेको उठा रक्खा था और जो कहीं जानेके लिए तैयार थी ऐसी कोई दुबली-पतली स्त्री भयसे काँप रही थी ॥५६॥ हड़बड़ाहटके कारण हारके टूट

१. मायनम् म० । २. नश्यत् म० । ३. परिपूर्यताम् म० । ४. विग्रस्त-म० ।

सन्त्रस्तहरिणीनेत्रा स्रस्तकेशकलापिका । वक्षः प्राप्य प्रियस्यान्या बभूवोत्कम्पितोज्झिता ॥५८॥
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा लोकं भयपरायणम् । शासनान्तर्गता देवाः शान्तिप्रासादसंश्रिताः ॥५९॥
स्वपक्षपालनोद्युक्ता करुणासक्तमानसाः । प्रातिहार्यं द्रुतं कर्तुं प्रवृत्ता भावतत्पराः ॥६०॥
उत्पत्य भैरवाकाराः शान्तिचैत्यालयाद्‌भी । गृहीतविविधा कल्पा दंष्ट्रालीसङ्कटाननाः ॥६१॥
मध्याह्नार्कदुरीक्षाक्षाः क्षुब्धाः क्रोधोद्गमद्विषाः । दष्टाधरा महाकाया नानावर्णमहारवाः ॥६२॥
देहदर्शनमात्रेण विकारैर्विषमैर्युताः । वानराङ्कबलं भङ्क्त्वा निन्युरत्यन्तविह्वलम् ॥६३॥
क्षणं सिंहाः क्षणं वह्निः क्षणं मेघाः क्षणं द्विपाः । क्षणं सर्पाः क्षणं वायुस्ते भवन्ति क्षणं नगाः ॥६४॥
अभिभूतानिमान् ज्ञात्वा देवैः शान्तिगृहाश्रयैः । जिनालयकृतावासास्तेषामपि हिते रताः ॥६५॥
देवाः समागता योद्धुं विकृताकारवर्त्तिनः । निजस्थानेषु तेषां हि ते वसन्त्यनुपालकाः ॥६६॥
प्रवृत्ते तुमुले क्रूरे गीर्वाणानां परस्परम् । आसीद्भाव[1]स्वभावेऽपि सन्देहो विकृतिं प्रति ॥६७॥
सीदतः स्वान् सुरान् दृष्ट्वा बलिनश्च परामरान् । कपिकेतूंश्च संदृष्टान्पुनर्लङ्कामुखं स्थितान् ॥६८॥
महान्तं क्रोधमापन्नः प्रभावपरमः सुधीः । यक्षेशः पूर्णभद्राख्यो मणिभद्रमिदं जगौ ॥६९॥
एतान्पश्य कृपामुक्तान् शाखाकेसरिकेतनान् । जानन्तोऽपि समस्तानि शास्त्राणि विकृतिं गता ॥७०॥
स्थित्याचारविनिर्मुक्तान् त्यक्ताहारं दशाननम् । योगसंयोजितात्मानं देहेऽपि रहितस्पृहम् ॥७१॥

जानेसे जो मोतियोंके समूहकी वर्षा कर रही थी ऐसी कोई एक स्त्री मेघकी रेखाके समान बड़े वेगसे कहीं भागी जा रही थी ॥५७॥ भयभीत हरिणीके समान जिसके नेत्र थे, तथा जिसके बालोंका समूह बिखर गया था ऐसी कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थलसे जब लिपट गई तभी उसकी कँपकँपी छूटी ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमें लोगोंको भयभीत देख शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहने वाले शासन देव, अपने पक्षकी रक्षा करनेमें उद्यत तथा दयालु चित्त हो भाव पूर्ण मनसे शीघ्र ही द्वार-पालपना करनेके लिए प्रवृत्त हुए अर्थात् उन्होंने किसीको अन्दर नहीं आने दिया ॥५९॥ जिनके आकार अत्यन्त भयङ्कर थे, जिन्होंने नाना प्रकारके वेष धारण कर रक्खे थे, जिनके मुख दाँढ़ोंकी पङ्क्तिसे व्याप्त थे, जिनके नेत्र मध्याह्नके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य थे, जो क्षुभित थे, क्रोधसे विष उगल रहे थे, ओंठ चाप रहे थे, डील-डौलके बड़े थे, नाना वर्णके महाशब्द कर रहे थे—और जो शरीरके देखने मात्रसे विषम विकारोंमे युक्त थे ऐसे वे शासन देव शान्ति जिनालयसे निकलकर वानरोंकी सेना पर ऐसे झपटे कि उसे अत्यन्त विह्वल कर क्षण भरमें खदेड़ दिया ॥६०–६३॥ वे शासन देव क्षण भरमें सिंह, क्षण भरमें अग्नि, क्षण भर में मेघ, क्षण भरमें हाथी, क्षण भरमें सर्प, क्षण भरमें वायु और क्षण भरमें पर्वत बन जाते थे ॥६४॥ शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहने वाले देवोंके द्वारा इन वानरकुमारोंको पराभूत देख; वानरोंके हितमें तत्पर रहने वाले जो देव शिबिरके जिनालयोंमें रहते थे वे भी विक्रियासे आकार बदल कर युद्ध करनेके लिए आ पहुँचे सो ठीक ही है क्योंकि जो अपने स्थानों में निवास करते हैं देव लोग उनके रक्षक होते हैं ॥६५–६६॥ तदनन्तर देवोंका परस्पर भयङ्कर युद्ध प्रवृत्त होने पर उनकी विकृति देख परमार्थ स्वभावमें भी सन्देह होने लगा था ॥६७॥

अथानन्तर अपने देवोंको पराजित होते, दूसरे देवोंको बलवान् होते और अहङ्कारी वानरोंको लङ्काके सन्मुख प्रस्थान करते देख महाक्रोधको प्राप्त हुआ परमप्रभावी बुद्धिमान पूर्णभद्र नामका यक्षेन्द्र मणिभद्र नामक यक्षसे इस प्रकार बोला ॥६८–६९॥ कि इन दया हीन वानरोंको तो देखो जो सब शास्त्रोंको जानते हुए भी विकारको प्राप्त हुए हैं ॥७०॥ ये लोक मर्यादा

---

१. भावः स्वभावेऽपि म०, ज०, ख० ।

प्रशान्तहृदयं हन्तुमुद्यतान्पापचेष्टितान् । रन्ध्रप्रहारिणः क्षुद्रान् त्यक्तवीरविचेष्टितान् ॥७२॥
मणिभद्रस्ततोऽवोचत्पूर्णभद्रसमोऽपरः । सम्यक्त्वभावितं वीरं जिनेन्द्रचरणाश्रितम् ॥७३॥
चारुलक्षणसम्पूर्णं शान्तात्मानं महाद्युतिम् । रावणं न सुरेन्द्रोऽपि नेतुं शक्तः पराभवम् ॥७४॥
ततस्तथाऽस्त्विति प्रोक्ते पूर्णभद्रेण तेजसा । गुह्यकाधिपयुग्मं तज्जातं विघ्नस्य नाशकम् ॥७५॥
यक्षेश्वरौ परिक्रुद्धौ दृष्ट्वा योद्धुं समुद्यतौ । लज्जान्विताश्च भीताश्च गताः स्वं स्वं परामराः ॥७६॥
यक्षेश्वरौ महावायुप्रेरितोपलवर्षिणौ । युगान्तमेघसङ्काशौ जातौ घोरोरुगर्जितौ ॥७७॥
तयोर्जङ्घासमीरेण सा नभश्चरवाहिनी । प्रेरितोदारवेगेन शुष्कपर्णचयोपमा ॥७८॥
तेषां पलायमानानां भूत्वानुपदिकाविमौ । उपालम्भकृताकूतावेकस्थौ पद्ममागतौ ॥७९॥
अभिनन्द्य च तं सम्यक् पूर्णभद्रः सुधीर्जगौ । राज्ञो दशरथस्य त्वं श्रीमतस्तस्य नन्दनः ॥८०॥
अश्लाघ्येषु निवृत्तात्मा श्लाघ्यकृत्येषु चोद्यतः । तीर्णः शास्त्रसमुद्रस्य पारं शुद्धगुणोन्नतः ॥८१॥
ईदृशस्य सतो भद्र किमेतत्सदृशं विभोः । तव सेनाश्रितैः पौरजनो ध्वंसमुपाहृतः ॥८२॥
यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समार्जितम् । स तस्य हरते प्राणान् बाह्यमेतद्धि जीवितम् ॥८३॥
अनर्घवज्रवैडूर्यविद्रुमादिभिराचिता । लङ्कापुरी परिध्वस्ता त्वदीयैराकुलाङ्गना ॥८४॥
प्रौढेन्दीवरसंकाशस्ततो गरुडकेतनः । जगाद तेजसा युक्तं वचनं विधिकोविदः ॥८५॥
एतस्य रघुचन्द्रस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । महागुणधरी पत्नी शीलालङ्कारधारिणी ॥८६॥
दुरात्मना छलं प्राप्य हृता सा येन रक्षसा । अनुकम्पा त्वया तस्य रावणस्य कथं कृता ॥८७॥

और आचारसे रहित हैं। देखो, रावण तो आहार छोड़ ध्यानमें आत्माको लगा शरीरमें भी निस्पृह हो रहा है तथा अत्यन्त शान्तचित्त है फिर भी ये उसे मारनेके लिए उद्यत हैं, पाप पूर्ण चेष्टा युक्त हैं, छिद्र देख प्रहार करने वाले हैं, क्षुद्र हैं और वीरोंकी चेष्टासे रहित हैं ॥७१–७२॥ तदनन्तर जो दूसरे पूर्णभद्रके समान था ऐसा मणिभद्र बोला कि जो सम्यक्त्वकी भावनासे सहित है, वीर है, जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंका सेवक है, उत्तम लक्षणोंसे पूर्ण है, शान्त चित्त है और महा दीप्तिका धारक है ऐसे रावणको पराभव प्राप्त करानेके लिए इन्द्र भी समर्थ नहीं है फिर इनकी तो बात ही क्या है ? ॥७३–७४॥ तदनन्तर तेजस्वी पूर्णभद्रके 'तथास्तु' इस प्रकार कहने पर दोनों यक्षेन्द्र विघ्नका नाश करने वाले हुए ॥७५॥ तत्पश्चात् क्रोधसे भरे दोनों यक्षेन्द्रोंको युद्धके लिए उद्यत देख दूसरे देव लज्जासे युक्त तथा भयभीत होते हुए अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥७६॥ दोनों यक्षेन्द्र तीव्र आँधीसे प्रेरित पाषाणोंकी वर्षा करने लगे तथा अत्यन्त भयंकर विशाल गर्जना करते हुए प्रलय कालके मेघके समान हो गये ॥७७॥ उन यक्षेन्द्रोंकी अत्यन्त वेगशाली जंघाओंकी वायुसे प्रेरित हुई विद्याधरोंकी सेना सूखे पत्तोंके ढेरके समान हो गई अर्थात् भयसे इधर-उधर भागने लगी ॥७८॥ उन भागते हुए वानरोंका पीछा करते हुए दोनों यक्षेन्द्र उलाहना देनेके अभिप्रायसे भी रामके पास आये ॥७९॥ उनमेंसे बुद्धिमान् पूर्णभद्र रामकी अच्छी तरह प्रशंसाकर बोला कि तुम श्रीमान् राजा दशरथके पुत्र हो ॥८०॥ अप्रशस्त कार्योंसे तुम सदा दूर रहते और शुभ कार्योंमें सदा उद्यत रहते हो। शास्त्रों रूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो तथा शुद्ध गुणोंसे उन्नत हो ॥८१॥ हे भद्र ! इस तरह सामर्थ्यवान् होने पर भी क्या यह कार्य उचित है कि आपकी सेनाके लोगोंने नगरवासी जनोंको नष्ट-भ्रष्ट किया है ॥८२॥ जो जिसके प्रयत्न पूर्वक कमाये हुए धनका हरण करता है वह उसके प्राणोंको हरता है क्योंकि धन बाह्य प्राण कहा गया ॥८३॥ आपके लोगोंने अमूल्य हीरा वैडूर्य मणि तथा मूंगा आदिसे व्याप्त लंका पुरीको विध्वस्त कर दिया है तथा उसकी स्त्रियोंको व्याकुल किया है ॥८४॥

तदनन्तर सब प्रकारकी विधियोंके जाननेमें निपुण, प्रौढ़ नीलकमलके समान कान्तिको धारण करने वाले लक्ष्मणने ओज पूर्ण वचन कहे ॥८५॥ उन्होंने कहा कि जिस दुष्ट राक्षसने इन

किं तेऽपकृतमस्माभिः किं वा तेन प्रियं कृतम् । कथ्यतां गुह्यकाधीश किञ्चिदप्यणुमात्रकम् ॥८८॥
कुटिलां भृकुटीं कृत्वा भीमां सन्ध्यारुणेऽलिके[1] । क्रुद्धोऽसि येन यक्षेन्द्र विना कार्यं समागतः ॥८९॥
अर्घं काञ्चनपात्रेण तस्य दत्त्वातिसाध्वसः । कपिध्वजाधिपोऽवोचत् कोपो यक्षेन्द्र ! मुच्यताम् ॥९०॥
पश्य त्वं समभावेन मद्बलस्य निजां स्थितिम् । लङ्काबलार्णवस्यापि साक्षादीतित्वमीयुषः ॥९१॥
तथाप्येव प्रयत्नोऽस्य वर्त्तते रक्षसां विभोः । केनायं पूर्वकः साध्यः किं पुनर्बहुरूपया ॥९२॥
संक्रुद्धस्य मृधे तस्य स्खलन्त्यभिमुखा नृपाः । जैनोक्तिलब्धवर्णस्य प्रवादे वादिनो यथा ॥९३॥
तस्मात्क्षमार्पितात्मानं क्षोभयिष्यामि रावणम् । यत्साधयति नो विद्यां यथा सिद्धिं कुदर्शनः ॥९४॥
तत्तुल्यविभवा भूत्वा येन नाथेन रक्षसाम् । समं युद्धं करिष्यामो विषमं जायतेऽन्यथा ॥९५॥
पूर्णभद्रस्ततोऽवोचदस्त्वेवं किं[2] तु पीडनम् । कृत्यं नाण्वपि[3] लङ्कायां साधो जीर्णतृणेष्वपि ॥९६॥
क्षेमेण रावणाङ्गस्य वेदनाद्यविधानतः । क्षोभं कुरुत मन्ये तु दुःखं क्षुभ्यति रावणः ॥९७॥
[4]एवमुक्त्वा प्रसन्नाक्षौ तौ भव्यजनवत्सलौ । भक्तौ श्रमणसङ्घस्य वैयावृत्त्यसमुद्यतौ ॥९८॥
शशाङ्कवदनौ राजन् यक्षाणां परमेश्वरौ । अभिनन्दितपद्माभावन्तर्द्धिं सानुगौ गतौ ॥९९॥

रामचन्द्रकी प्राणों की अधिक, महागुणोंकी धारक एवं शीलव्रत रूपी अलंकारको धारण करने वाली प्रियाको छलसे हरा है उस रावणके ऊपर तुम दया क्यों कर रहे हो ? ॥८६–८७॥ हम लोगोंने तुम्हारा क्या अपकार किया है और उसने क्या उपकार किया है सो हे यक्षराज ! कुछ थोड़ा भी तो कहो ॥८८॥ जिससे संध्याके समान लाल लाल ललाट पर कुटिल तथा भयंकर भृकुटि कर कुपित हुए हो तथा विना कार्य ही यहाँ पधारे हो ॥८९॥ तदनन्तर अत्यन्त भयभीत सुग्रीवने सुवर्णमय पात्रसे उसे अर्घ देकर कहा कि हे यक्षराज ! क्रोध छोड़िए ॥९०॥ आप समभावसे हमारी सेना तथा साक्षात् ईतिपनाको प्राप्त हुए लंकाके सैन्य सागरकी भी स्थिति देखिए। देखिए दोनोंमें क्या अन्तर है ॥९१॥

इतना सब होने पर भी राक्षसोंके अधिपति रावणका यह प्रयत्न जारी है। यह रावण पहले भी किसके द्वारा साध्य था ? और फिर बहुरूपिणी विद्याके सिद्ध होने पर तो कहना ही क्या है ? ॥९२॥ जिस प्रकार जिनागमके निपुण विद्वान्के सामने प्रवादी लोग लड़खड़ा जाते हैं उसी प्रकार युद्धमें कुपित हुए रावणके सामने अन्य राजा लड़खड़ा जाते हैं ॥९३॥ इसलिए इस समय मैं क्षमाभावसे बैठे हुए रावणको क्षोभयुक्त करूंगा क्योंकि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य सिद्धिको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार क्षोभयुक्त साधारण पुरुष भी विद्याको सिद्ध नहीं कर पाता ॥९४॥ रावणको क्षोभित करनेका हमारा उद्देश्य यह है कि हम तुल्य विभवके धारक हो उसके साथ युद्ध करेंगे अन्यथा हमारा और उसका युद्ध विषम युद्ध होगा ॥९५॥

तदनन्तर पूर्णभद्रने कहा कि ऐसा हो सकता है किन्तु हे सत्पुरुष ! लङ्कामें जीर्णतृणको भी अणुमात्र भी पीड़ा नहीं करना चाहिए ॥९६॥ वेदना आदिक न पहुँचा कर रावणके शरीरकी कुशलता रखते हुए उसे क्षोभ उत्पन्न करो। परन्तु मैं समझता हूँ कि रावण बड़ी कठिनाईसे क्षोभको प्राप्त होगा ॥९७॥ इस प्रकार कह कर जिनके नेत्र प्रसन्न थे, जो भव्य जनोंपर स्नेह करने वाले थे, भक्त थे, मुनि संघकी वैयावृत्य करनेमें सदा तत्पर रहते थे, और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखके धारक थे ऐसे यक्षोंके दोनों अधिपति रामकी प्रशंसा करते हुए

---

१. अलिके = भाले । २. किं नु म० । ३. नाद्यापि म० । ४. एवमुक्तौ म० ।

आर्याच्छन्दः

सम्प्राप्योपालम्भं लक्ष्मणवचनात् सुलज्जितौ तौ हि ।
सञ्जातौ समचित्तौ निर्व्यापारौ स्थितौ येन ॥१००॥
तावद्भवति जनानामधिका प्रीतिः समाश्रयासक्ता ।
यावन्निर्दोषत्वं रविमिच्छति कः सहोत्पातम् ॥१०१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सम्यग्दृष्टिदेवप्रातिहार्यकीर्तनं नाम सप्ततितमं पर्व ॥७०॥

सेवकोंके साथ अन्तर्हित हो गये ॥९८-९९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, जो यक्षेन्द्र उलाहना देने आये थे वे लक्ष्मणके कहनेसे अत्यन्त लज्जित होते हुए समचित्त होकर चुपचाप बैठ रहे ॥१००॥ जब तक निर्दोषता है तभी तक निकटवर्ती पुरुषोंमें अधिक प्रीति रहती है सो ठीक ही है क्यों कि उत्पात सहित सूर्यकी कौन इच्छा करता है ? अर्थात् कोई नहीं। भावार्थ—जिस प्रकार लोग उत्पात रहित सूर्यको चाहते हैं उसी प्रकार दोष रहित निकटवर्ती मनुष्यको चाहते हैं ॥१०१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सम्यग्दृष्टि देवोंके प्रातिहार्य-पनेका वर्णन करने वाला सत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७०॥

एकसप्ततितमं पर्व

शान्तं यक्षाधिपं ज्ञात्वा सुतारात्मजसुन्दरः । दशाननपुरीं द्रष्टुमुद्यतः परमोर्जितः ॥१॥
उदाराम्बुदवृन्दाभं [1]मुक्तामाल्यविभूषितम् । धवलैश्चामरैर्दीप्तं महाघण्टानिनादितम् ॥२॥
किष्किन्धकाण्डनामानमारूढो वरवारणम् । रराज मेघपृष्ठस्थ[2]पौर्णमासीशशाङ्कवत् ॥३॥
तथा स्कन्देन्द्रनीलाद्या महर्द्धिपरिराजिताः । तुरङ्गादिसमारूढाः कुमारा गन्तुमुद्यताः ॥४॥
पदातयो महासंख्याश्चन्दनार्चितविग्रहाः । ताम्बूलरागिणो नानामुण्डमालामनोहराः ॥५॥
कटकोद्भासिबाह्वन्ताः स्कन्धन्यस्तासिखेटकाः । चलावतंसकाश्चित्रपरमांशुकधारिणः ॥६॥
हेमसूत्रपरिक्षिप्तमौलयश्चारुविभ्रमाः । अग्रतः प्रसृता गर्वकृतालापाः सुतेजसः ॥७॥
वेणुवीणामृदङ्गादिवादित्रसदृशं वरम् । पुरो जनः प्रवीणोऽस्य चक्रे श्रृङ्गारनर्तनम् ॥८॥
[3]मन्द्रस्तूर्यस्वनश्चित्रो मनोहरणपण्डितः । शङ्खनिःस्वनसंयुक्तः [4]काहलावत् समुद्ययौ ॥९॥
विविशुश्च कुमारेशाः सविलासविभूषणाः । लङ्कां देवपुरीतुल्यामसुरा इव चञ्चलाः ॥१०॥
महिम्ना पुरुणा [5]युक्तं दशास्यनगरीं ततः । प्रविष्टमङ्गदं वीक्ष्य जगावित्यङ्गनाजनः ॥११॥
यस्यैषा ललिता कर्णे विमला दन्तनिर्मिता । विराजते महाकान्तिकोमला [6]तालपत्रिका ॥१२॥
ग्रहाणामिव सर्वेषां समवायो महाप्रभः । [7]द्वितीयश्रवणे चायं चपलो मणिकुण्डलः ॥१३॥

अथानन्तर यक्षराजको शान्त सुन अतिशय बलवान् अङ्गद, लंका देखनेके लिए उद्यत हुआ। महामेघ मण्डलके समान जिसकी आभा थी, जो मोतियोंकी मालाओंसे अलंकृत था, सफेद चामरोंसे देदीप्यमान था और महाघण्टाके शब्दसे शब्दायमान था, ऐसे किष्किन्धकाण्ड नामक हाथी पर सवार हुआ अङ्गद मेघपृष्ठ पर स्थित पौर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥१-३॥ इसके सिवाय जो बड़ी सम्पदासे सुशोभित थे ऐसे स्कन्द तथा नील आदि कुमार भी घोड़े आदि पर आरूढ़ हो जानेके लिए उद्यत हुए ॥४॥ जिनके शरीर चन्दनसे अर्चित थे, जिनके ओंठ ताम्बूलके रङ्गसे लाल थे, जो नाना प्रकारके मस्तकोंके समूहसे मनोहर थे, जिनकी भुजाओंके अन्त प्रदेश अर्थात् मणिबन्ध कटकोंसे देदीप्यमान थे, जिन्होंने अपने कन्धों पर तलवारें रख छोड़ी थीं, जिनके कर्णाभरण चञ्चल थे, जो चित्र-विचित्र उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके मुकुट सुवर्ण-सूत्रोंसे वेष्टित थे, जो सुन्दर चेष्टाओंके धारक थे, जो दर्प पूर्ण वार्तालाप करते जाते थे, तथा जो उत्तम तेजके धारक थे ऐसे पदाति उन कुमारोंके आगे-आगे जा रहे थे ॥५-७॥ चतुर मनुष्य इनके आगे बाँसुरी वीणा मृदङ्ग आदि वाजोंके अनुरूप श्रृङ्गार पूर्ण उत्तम नृत्य करते जाते थे ॥८॥ जो मनके हरण करनेमें निपुण था तथा शङ्खके शब्दोंसे संयुक्त था, ऐसा तुरहियोंका नाना प्रकारका गम्भीर शब्द काहला—रण तूर्यके शब्दके समान जोर-शोरसे उठ रहा था ॥९॥

तदनन्तर विलास और विभूषणोंसे युक्त उन चपल कुमारोंने स्वर्ग सदृश लंकामें असुर कुमारोंके समान प्रवेश किया ॥१०॥ तत्पश्चात् महा महिमासे युक्त अङ्गदको लंका नगरीमें प्रविष्ट देख वहाँकी स्त्रियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं ॥११॥ हे सखि ! देख, जिसके एक कानमें दन्त निर्मित महाकान्तिसे कोमल निर्मल तालपत्रिका सुशोभित हो रही है और दूसरे कानमें समस्त ग्रहोंके समूहके समान महाप्रभासे युक्त यह चञ्चल मणिमय कुण्डल शोभा पा रहा है तथा जो

---

१. मुक्तामाल ख० । २. पृष्ठस्थः पौर्णमासी-म०, ज० । ३. मन्दस्तूर्य-म० । ४. काहलादिः ब० । ५. युक्तां म० । ६. तले पत्रिका म० । ७. द्वितीयः श्रवणे म० ।

अपूर्वकौमुदीसर्गप्रवीणः सोऽयमुद्गतः । अङ्गदेन्दुर्दशास्यस्य नगर्यां पश्य निर्भयः ॥१४॥
किमनेनेदमारब्धं कथमेतद्भविष्यति । क्रीडेयं [1]ललिताऽमुष्य [2]निरघा किन्नु सेत्स्यति ॥१५॥
रावणालयबाह्यक्ष्मामणिकुट्टिमसङ्गताः । प्राहवत्सरसोऽभिज्ञाद्भासमीयुः पदातयः ॥१६॥
रूपनिश्चलतां दृष्ट्वा निश्चितमणिकुट्टिमाः । पुनः प्रसरणं चक्रुर्भटाः विस्मयपूरिताः ॥१७॥
पर्वतेन्द्रगुहाकारे महारत्नविनिर्मिते । गम्भीरे भवनद्वारे मणितोरणभासुरे ॥१८॥
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशानिन्द्रनीलमयान् गजान् । स्निग्धगण्डस्थलान् स्थूलदन्तानत्यन्तभासुरान् ॥१९॥
सिंहबालांश्च तन्मूर्द्धन्यस्ताङ्घ्रीनूर्ध्ववालधीन् । दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान् ॥२०॥
दृष्ट्वा पादचरास्त्रस्ताः सत्यव्यालाभिशङ्किताः । पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम् ॥२१॥
ततोऽङ्गदकुमारेण तदभिज्ञेन कृच्छ्रतः । प्रबोधिता [3]प्रतीपं ते पदानि निदधुश्चिरात् ॥२२॥
प्रविष्टाश्च चलन्नेत्रा भटाः शङ्कासमन्विताः । रावणस्य गृहं सैंहं पदं मृगगणा इव ॥२३॥
द्वाराण्युल्लङ्घ्य भूरीणि परतो गन्तुमक्षमाः । गहने गृहविन्यासे जात्यन्धा इव बभ्रमुः ॥२४॥
इन्द्रनीलाश्मिका[4] भित्तीः पश्यन्तो द्वारमोहिनः । आकाशाशङ्कयोपेतुं[5] स्फटिकच्छन्नसद्मसु ॥२५॥
शिलाताडितमूर्धानः पतिता रभसात्पुनः । परमाकुलतां प्राप्ता वेदनाकूणितेक्षणाः ॥२६॥
कथञ्चिज्जातसञ्चाराः कक्षान्तरमुपाश्रिताः । व्रजन्तो रभसा सक्ता नभःस्फटिकभित्तिषु ॥२७॥
क्षुण्णाङ्घ्रिजानवस्तोकललाटस्फोटदुःखिताः । निवर्त्तितुं वोऽप्येते न ययुर्निर्गमं पुनः ॥२८॥

अपूर्व चाँदनीकी सृष्टि करनेमें निपुण है ऐसा यह अङ्गद रूपी चन्द्रमा रावणकी नगरीमें निर्भय हो उदित हुआ है ॥१२–१४॥ देख, इसने यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? यह कैसे होगा ? क्या इसकी यह सुन्दर क्रीड़ा निर्दोष सिद्ध होगी ? ॥१५॥

तदनन्तर जब अङ्गदके पदाति रावणके भवनकी मणिमय बाह्यभूमिमें पहुँचे तो उसे मगर-मच्छसे युक्त सरोवर समझकर भयको प्राप्त हुए ॥१६॥ पश्चात् उस भूमिके रूपकी निश्चलता देख जब उन्हें निश्चय हो गया कि यह तो मणिमय फर्स है तब कहीं वे आश्चर्यसे चकित होते हुए आगे बढ़े ॥१७॥ सुमेरुकी गुहाके आकार, बड़े-बड़े रत्नोंसे निर्मित तथा मणिमय तोरणोंसे देदीप्यमान जब भवनके विशाल द्वार पर पहुँचे तो वहाँ, जो अंजनगिरिके समान थे, जिनके गण्डस्थल अत्यन्त चिकने थे, जिनके बड़े-बड़े दाँत थे, तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थे ऐसे इन्द्र-नीलमणि निर्मित हाथियोंको और उनके मस्तकपर जिन्होंने पैर जमा रक्खे थे, जिनकी पूँछ ऊँपरको उठी हुई थी, जिनके मुख दाँढ़ोंसे अत्यन्त भयंकर थे, जिनके नेत्रोंसे भय टपक रहा था तथा जिनकी मनोहर जटाएँ थीं ऐसे सिंहके बच्चोंको देख सचमुचके हाथी तथा सिंह समझ पैदल सैनिक भयभीत हो गये और परम विह्वलताको प्राप्त होते हुए भागने लगे ॥१८–२१॥ तदनन्तर उनके यथार्थ रूपके जानने वाले अङ्गदने जब उन्हें समझाया तब कहीं बड़ी कठिनाईसे बहुत देर बाद उन्होंने उल्टे पैर रक्खे अर्थात् वापिस लौटे ॥२२॥ जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे ऐसे योद्धाओंने रावणके भवनमें डरते-डरते इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार कि मृगोंके झुण्ड सिंहके स्थानमें प्रवेश करते हैं ॥२३॥ बहुतसे द्वारोंको उल्लंघकर जब वे आगे जानेके लिए असमर्थ हो गये तब सघन भवनोंकी रचनामें जन्मान्धके समान इधर-उधर भटकने लगे ॥२४॥ वे इन्द्र-नीलमणि निर्मित दीवालोंको देखकर उन्हें द्वार समझने लगते थे और स्फटिक मणियोंसे खचित भवनोंको आकाश समझ उनके पास जाते थे जिसके फल स्वरूप दोनों ही स्थानोंमें शिलाओंसे मस्तक टकरा जानेके कारण वे वेगसे गिर जाते थे, अत्यधिक आकुलताको प्राप्त होते थे और वेदनाके कारण उनके नेत्र बन्द हो जाते थे ॥२५–२६॥ किसी तरह उठकर आगे बढ़ते थे तो दूसरी कक्षमें पहुँच कर फिर आकाशस्फटिककी दीवालोंमें वेगसे टकरा जाते थे ॥२७॥ जिनके

१. ललिता म० । २. निरर्था म० । ३. प्रतीपन्ते म० । ४. नीलाशिका म० । ५. शंकया पेतुं म० ।

इन्द्रनीलमयीं भूमिं स्मृत्वा काञ्चित्समानया । बुद्ध्या प्रतारिताः सन्तः पेतुर्भूतलवेश्मसु ॥२९॥
तत उद्गतभूच्छेदशङ्कया शरणान्तरे । भूमिष्वथैन्द्रनीलीषु ज्ञात्वा ज्ञात्वा पदं ददुः ॥३०॥
नारीं स्फटिकसोपानानामग्रगमनोद्यताम् । व्योम्नीति विविदुः पादन्यासात्तु पुनरन्यथा ॥३१॥
तां पिपृच्छिषवो यान्तः शङ्किताः पुनरन्तरा । भित्तिष्वापतितास्तस्थुः स्फाटिकीषु सुविह्वलाः ॥३२॥
पश्यन्ति शिखरं शान्तिभवनस्य समुन्नतम् । गन्तुं पुनर्न ते शक्ता भित्तिभिः स्फटिकात्मभिः ॥३३॥
विलासिनि वदाध्वानमिति कश्चित्त्वरान्वितः । करे स्तम्भसमासक्तामगृहीच्छालभञ्जिकाम् ॥३४॥
दृष्टं कश्चित्प्रतीहारं हेमवेत्रलताकरम् । अगाद् शान्तिगेहस्य पन्थानं देशयाऽऽश्विति ॥३५॥
कथं न किञ्चिदुरिसक्तो ब्रवीत्येष विसम्भ्रमः । इति घ्नन् पाणिना वेगादवापाङ्गुलिचूर्णनम् ॥३६॥
कृत्रिमोऽयमिति[1] ज्ञात्वा हस्तस्पर्शनपूर्वकम् । किञ्चित् कक्षान्तरं जग्मुर्द्वारं विज्ञाय कृच्छ्रतः ॥३७॥
द्वारमेतन्न कुड्यं तु महानीलमयं भवेत् । इति ते संशयं प्राप्ताः करं पूर्वमसारयन् ॥३८॥
स्वयमप्यागतं मार्गं पुनर्निर्गन्तुमक्षमाः । शान्त्यालयगतौ बुद्धिं कुटिलभ्रान्तयो दधुः ॥३९॥
ततः कञ्चिन्नरं दृष्ट्वा वाचा विज्ञाय सत्यकम् । कश्चिज्जग्राह केशेषु अगाद च सुनिष्ठुरम् ॥४०॥
गच्छ गच्छाग्रतो मार्गं शान्तिहर्म्यस्य दर्शय । इति तस्मिन् पुरो याति ते बभूवुर्निराकुलाः ॥४१॥

पैर और घुटने टूट रहे थे तथा जो ललाटकी तीव्र चोटसे तिलमिला रहे थे, ऐसे वे पदाति यद्यपि लौटना चाहते थे पर उन्हें निकलनेका मार्ग ही नहीं मिलता था ॥२८॥ जिस किसी तरह इन्द्रनील-मणिमय भूमिका स्मरणकर वे लौटे तो उसीके समान दूसरी भूमि देख उससे छकाये गये और पृथिवीके नीचे जो घर बने हुए थे उनमें जा गिरे ॥२९॥ तदनन्तर कहीं पृथिवी तो नहीं फट पड़ी है, इस शङ्कासे दूसरे घरमें गये और वहाँ इन्द्रनीलमणिमय जो भूमियाँ थीं उनमें जान-जानकर धीरे-धीरे डग देने लगे ॥३०॥ कोई एक स्त्री स्फटिककी सीढ़ियोंसे ऊपर जानेके लिए उद्यत थी उसे देखकर पहले तो उन्होंने समझा कि यह स्त्री अधर आकाशमें स्थित है परन्तु बादमें पैरोंके रखने उठानेकी क्रियासे निश्चय कर सके कि यह नीचे ही है ॥३१॥ उस स्त्रीसे पूछनेकी इच्छासे भीतरकी दीवालोंमें टकराकर रह गये तथा विह्वल होने लगे ॥३२॥ वे शान्ति-जिनालयके ऊँचे शिखर देख तो रहे थे परन्तु स्फटिककी दीवालोंके कारण वहाँ तक जानेमें समर्थ नहीं थे ॥३३॥ हे विलासिनि ! मुझे मार्ग बताओ इस प्रकार पूछनेके लिए शीघ्रतासे भरे किसी सुभटने खम्भेमें लगी हुई पुतलीका हाथ पकड़ लिया ॥३४॥ आगे चलकर हाथमें स्वर्णमयी वेत्रलताको धारण करने वाला एक कृत्रिम द्वारपाल दिखा उससे किसी सुभटने पूछा कि शीघ्र ही शान्ति-जिनालयका मार्ग कहो ॥३५॥ परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो अरे यह अहंकारी तो कुछ कहता ही नहीं है यह कहकर किसी सुभटने उसे वेगसे एक थप्पड़ मार दी पर इससे उसीकी अंगुलियाँ चूर-चूर हो गईं ॥३६॥ तदनन्तर हाथसे स्पर्शकर उन्होंने जाना कि यह सचमुचका द्वारपाल नहीं किन्तु कृत्रिम द्वारपाल है—पत्थरका पुतला है । इसके पश्चात् बड़ी कठिनाईसे द्वार मालूमकर वे दूसरी कक्षमें गये ॥३७॥ 'ऐसा तो नहीं है कि कहीं यह द्वार न हो किन्तु महानीलमणियोंसे निर्मित दीवाल हो' इस प्रकारके संशयको प्राप्त हो उन्होंने पहले हाथ पसारकर देख लिया ॥३८॥ उन सबकी भ्रान्ति इतनी कुटिल हो गई कि वे स्वयं जिस मार्गसे आये थे उसी मार्गसे निकलनेमें असमर्थ हो गये अतः निरुपाय हो उन्होंने शान्ति-जिनालयमें पहुँचनेका ही विचार स्थिर किया ॥३९॥ तदनन्तर किसी मनुष्यको देख और उसकी बोलीसे उसे सचमुचका मनुष्य जान किसी सुभटने उसके केश पकड़कर कठोर शब्दोंमें कहा कि चल आगे चल शान्ति-जिनालयका मार्ग दिखा । इसप्रकार कहनेपर जब वह आगे चलने लगा तब कहीं वे निराकुल हुए ॥४०-४१॥

---

१. कृत्रियोऽय-म० (?) ।

प्राप्ताश्च शान्तिनाथस्य भवनं मदमुद्वहत् । कुसुमाञ्जलिभिः साकं विमुञ्चन्तो जयस्वनम् ॥४२॥
एतानि स्फटिकस्तम्भै रम्यदेशेषु केषुचित् । पुराणि ददृशुर्व्योम्नि स्थितानीव सुविस्मयाः ॥४३॥
इदं चित्रमिदं चित्रमिदमन्यन्महाद्भुतम् । इति ते दर्शयांचक्रुः सचिवास्तु परस्परम् ॥४४॥
पूर्वमेव परित्यक्तवाहनोऽङ्गदसुन्दरः । श्लाघिताद्भुतजैनेन्द्रवास्तुजातपरिच्छदः ॥४५॥
ललाटोपरिविन्यस्तकरराजीवकुड्मलः । कृतप्रदक्षिणः स्तोत्रमुखरं मुखमुद्वहन् ॥४६॥
अन्तरङ्गैर्वृतो बाह्यकक्षस्थापितसैन्यकः । विलासिनीमनःक्षोभदक्षो विकसितेक्षणः ॥४७॥
सुप्तचित्रार्पितं[1] पश्यन् चरितं जैनपुङ्गवम् । भावेन च नमस्कुर्वन्नाद्यमण्डपभित्तिषु ॥४८॥
धीरो भगवतः शान्तेर्विवेश परमालयम् । वन्दनां च विधानेन चकार पुलसम्मदः ॥४९॥
तत्रेन्द्रनीलसङ्घातमयूखनिकरप्रभम् । सम्मुखं शान्तिनाथस्य स्वर्भानुमिव भास्वतः ॥५०॥
अपश्यच्च दशास्यं स सामिपर्यङ्कसंस्थितम् । ध्यायन् विद्यां समाधानीं प्रव्रज्यां भरतो यथा ॥५१॥
जगाद चाधुना वार्त्ता का ते रावण कथ्यताम् । तत्ते करोमि यत् कर्तुं क्रुद्धोऽपि न यमः क्षमः ॥५२॥
कोऽयं प्रवर्त्तितो दम्भो जिनेन्द्राणां पुरस्त्वया । धिक् त्वां दुरितकर्माणं वृथा प्रारब्धसत्क्रियम् ॥५३॥
एवमुक्त्वोत्तरीयान्तदलेन तमताडयत् । कृत्वा कहकहाशब्दं विभ्रमी गर्वनिर्भरम् ॥५४॥
अग्रतोऽवस्थितान्यस्य पुष्पाण्यादाय तीव्रधीः । अताडयदधो वक्त्रे निभृतं प्रमदाजनम् ॥५५॥

तदनन्तर कुसुमाञ्जलियोंके साथ-साथ जय-जय ध्वनिको छोड़ते हुए वे सब हर्ष उत्पन्न करने वाले भी शान्ति-जिनालयमें पहुँचे ॥४२॥ वहाँ उन्होंने कितने ही सुन्दर प्रदेशोंमें स्फटिक मणिके खम्भों द्वारा धारण किये हुए नगर आश्चर्य चकित हो इस प्रकार देखे मानो आकाशमें ही स्थित हों ॥४३॥ यह आश्चर्य देखो, यह आश्चर्य देखो और यह सबसे बड़ा आश्चर्य देखो इस प्रकार वे सब परस्पर एक दूसरेको जिनालयकी उत्तम वस्तुएँ दिखला रहे थे ॥४४॥ अथानन्तर जिसने वाहनका पहलेसे ही त्याग कर दिया था, जो मन्दिरके आश्चर्यकारी उपकरणोंकी प्रशंसा कर रहा था, जिसने हस्त रूपी कमलकी बोडियाँ ललाटपर धारण कर रक्खी थीं, जिसने प्रदक्षिणाएँ दी थीं, जो स्तोत्र पाठ से मुखर मुखको धारण कर रहा था, जिसने समस्त सैनिकोंको बाह्य कक्षमें ही खड़ा कर दिया था जो प्रमुख-प्रमुख निकटके लोगोंसे घिरा था, जो विलासिनी जनोंका मन चञ्चल करनेमें समर्थ था; जिसके नेत्र-कमल खिल रहे थे जो आद्य मण्डपकी दीवालों पर मूक चित्रों द्वारा प्रस्तुत जिनेन्द्र भगवान्‌के चरितको देखता हुआ उन्हें भाव नमस्कार कर रहा था, अत्यन्त धीर था और विशाल आनन्दसे युक्त था, ऐसे अंगदकुमारने शान्तिनाथ भगवान्‌के उत्तम जिनालयमें प्रवेश किया तथा विधिपूर्वक वन्दना की ॥४५–४९॥ तदनन्तर वहाँ उसने श्री शान्तिनाथ भगवान्‌के सम्मुख अर्धपर्यङ्कासन बैठे हुए रावणको देखा। वह रावण, इन्द्रनीलमणियोंके किरण-समूहके समान कान्ति वाला था और भगवान्‌के सामने ऐसा बैठा था मानो सूर्यके सामने राहु ही बैठा हो। वह एकाग्र चित्त हो विद्याका उस प्रकार ध्यान कर रहा था जिस प्रकार कि भरत दीक्षा लेनेका विचार करता रहता था ॥५०–५१॥

उसने रावणसे कहा कि रे रावण! इस समय तेरा क्या हाल है? सो कह। अब मैं तेरी वह दशा करता हूँ जिसे क्रुद्ध हुआ यम भी करनेके लिए समर्थ नहीं है ॥५२॥ तूने जिनेन्द्रदेवके सामने यह क्या कपट फैला रक्खा है? तुझ पापीको धिक्कार है। तूने व्यर्थ ही सत्क्रिया का प्रारम्भ किया है ॥५३॥ ऐसा कह कर उसने उसीके उत्तरीय वस्त्रके एक खण्डसे उसे पीटना शुरू किया तथा मुँह बना कर गर्वके साथ कहकहा शब्द किया अर्थात् जोरका अट्टहास किया ॥५४॥ वह रावणके सामने रखे हुए पुष्पोंको उठा कठोर शब्द करता हुआ नीचे स्थित स्त्री जनों

---

१. स्वप्न म० ।

आकृष्य दारपाणिभ्यां निष्ठुरं कुञ्चितेक्षणः । तापनीयानि पद्मानि चकार जिनपूजनम् ॥५६॥
पुनरागम्य दुःखाभिर्वाग्भिः सञ्चोदयन्मुहुः । अक्षमालां करादस्य गृहीत्वा चपलोऽच्छिनत् ॥५७॥
विकीर्णां तां पुरस्तस्य पुनरादाय सर्वतः । शनैरघटयद् भूयः करे चास्य समर्पयत् ॥५८॥
करे चाकृष्य चिच्छेद पुनश्चापह्यचलः । चकार गलके भूयो निदधे मस्तके पुनः ॥५९॥
ततोऽन्तःपुरराजीवखण्डमध्यमुपागतः । चक्रे ग्रीष्माभितप्तस्य क्रीडां वन्यस्य दन्तिनः ॥६०॥
प्रभ्रष्टदुष्टदुर्दान्त[1]स्थूरीपृष्ठकचञ्चलः । प्रवृत्तः शङ्कया मुक्तः सोऽन्तःपुरविलोलने ॥६१॥
कृतग्रन्थिकमाधाय कण्ठे कस्याश्चिदंशुकम् । गुर्वारोपयति द्रव्यं किञ्चित्स्मितपरायणः ॥६२॥
उत्तरीयेण कण्ठेऽन्यां संयम्यालम्बयत्पुरः । स्तम्भेऽमुञ्चत्पुनः शीघ्रं कृतदुःखविचेष्टिताम् ॥६३॥
दीनारैः पञ्चभिः काञ्चित् काञ्चीगुणसमन्विताम् । हस्ते निजमनुष्यस्य [2]व्यक्रीणात्क्रीडनोद्यतः ॥६४॥
नूपुरौ कर्णयोश्चक्रे केशपाशे च मेखलाम् । कस्याश्चिन्मूर्ध्नि रत्नं च चकार चरणस्थितम् ॥६५॥
अन्योन्यं मूर्द्धजैरन्या बबन्ध कृतवेपना[3]: । चकार मस्तकेऽन्यस्याश्छेकं कूजन्मयूरकम् ॥६६॥
एवं महावृषेणेव गोकुलं परमाकुलम् । कृतमन्तःपुरं तेन सन्निधौ रक्षसां विभोः ॥६७॥
अभ्यागीद्रावणं क्रुद्ध[4]स्त्वया रे राक्षसाधम । मायया सत्त्वहीनेन राजपुत्री तदा हृता ॥६८॥
अधुना पश्यतस्तेऽहं सर्वमेव प्रियाजनम् । हरामि यदि शक्नोषि प्रतीकारं ततः कुरु ॥६९॥

के मुख पर कठोर प्रहार करने लगा ॥५५॥ उसने नेत्रोंको कुछ संकुचित कर दुष्टतापूर्वक स्त्रीके दोनों हाथोंसे स्वर्णमय कमल छीन लिये तथा उनसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५६॥ फिर आकर दुःखदायी वचनोंसे उसे बार-बार खिझाकर उस चपल अंगदने रावणके हाथसे अक्षमाला लेकर तोड़ डाली ॥५७॥ जिससे वह माला उसके सामने बिखर गई। थोड़ी देर बाद सब जगह से बिखरी हुई उसी मालाको उठा धीरे-धीरे पिरोया और फिर उसके हाथमें दे दी ॥५८॥ तदनन्तर उस चपल अंगदने रावणका हाथ खींच वह माला पुनः तोड़ डाली और फिर पिरो कर उसके गले में डाली। फिर निकाल कर मस्तक पर रक्खी ॥५९॥ तत्पश्चात् वह अन्तःपुर रूपी कमल वनके बीचमें जाकर गरमीके कारण संतप्त जंगली हाथीकी क्रीड़ा करने लगा अर्थात् जिस प्रकार गरमीसे संतप्त हाथी कमलवनमें जाकर उपद्रव करता है उसी प्रकार अंगद भी अन्तःपुरमें जाकर उपद्रव करने लगा ॥६०॥ बन्धनसे छुटे दुष्ट दुर्दान्त घोड़ेके समान चञ्चल अङ्गद निःशङ्क हो अन्तःपुरके विलोडन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥६१॥ उसने किसी स्त्रीका वस्त्र छीन उसकी रस्सी बना उसीके कण्ठमें बांधी और उस पर बहुत वजनदार पदार्थ रखवाये। यह सब करता हुआ वह कुछ-कुछ हँसता जाता था ॥६२॥ किसी स्त्रीके कण्ठमें उत्तरीय वस्त्र बाँधकर उसे खम्भेसे लटका दिया फिर जब वह दुःखसे छटपटाने लगी तब उसे शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६३॥ क्रीड़ा करनेमें उद्यत अङ्गदने मेखला सूत्रसे सहित किसी स्त्रीको अपने ही आदमीके हाथमें पाँच दीनारमें बेंच दिया ॥६४॥ उसने किसी स्त्रीके नूपुर कानोंमें, और मेखला केशपाशमें पहिना दी तथा मस्तकका मणि चरणोंमें बाँध दिया ॥६५॥ उसने भयसे काँपती हुई कितनी ही अन्य स्त्रियोंको परस्पर एक दूसरेके शिरके बालोंसे बाँध दिया तथा किसी अन्य स्त्रीके मस्तक पर शब्द करता हुआ चतुर मयूर बैठा दिया ॥६६॥ इस प्रकार जिस तरह कोई सांड़ गायोंके समूहको अत्यन्त व्याकुल कर देता है। उसी तरह उसने रावणके समीप ही उसके अन्तःपुरको अत्यन्त व्याकुल कर दिया था ॥६७॥ उसने क्रुद्ध होकर रावणसे कहा कि अरे नीच राक्षस! तूने उस समय पराक्रमसे रहित होनेके कारण मायासे राजपुत्रीका अपहरण किया था परन्तु इस समय मैं तेरे देखते देखते तेरी सब स्त्रियोंको अपहरण करता हूँ। यदि तेरी शक्ति हो तो

---

१. दुर्दान्तः म० । २. विक्रीणात् म०, ज० । ३. कृतवेपना म० । ४. क्रुद्धिसत्वया म० ।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य पुरोऽस्य मृगराजवत् । महिषीं सर्वतोऽभीष्टां प्राप्तप्रबलवेपथुम् ॥७०॥
विलोलनयनां[1] वेण्यां गृहीत्वाऽत्यन्तकातराम् । आचकर्ष यथा राजलक्ष्मीं भरतपार्थिवः ॥७१॥
जगौ च शूर सेयं ते दयिता जीवितादपि । मन्दोदरी महादेवी ह्रियते गुणमेदिनी ॥७२॥
इयं विद्याधरेन्द्रस्य सभामण्डपवर्तिनः । चामरग्राहिणी चार्वी सुग्रीवस्य भविष्यति ॥७३॥
ततोऽसौ कम्पविस्रंसिस्तनकुम्भतटांशुकम् । समाहितं मुहुस्तन्वी कुर्वती चलपाणिना ॥७४॥
बाध्यमानाधरा नेत्रवारिणानन्तरं स्रुता । चलद्भूषणनिःस्वानमुखरीकृतविग्रहा ॥७५॥
सजन्ती पादयोर्भूयः प्रविशन्ती भुजान्तरम् । दैन्यं परममापन्ना भर्त्तारमिदमभ्यधात् ॥७६॥
त्रायस्व नाथ किन्त्वेतामवस्थां मे न पश्यसि । किमन्य एव जातोऽसि नासि सः स्यात्दशानन ॥
अहो ते वीतरागत्वं निर्ग्रन्थानां समाश्रितम् । ईदृशे सङ्गते दुःखे किमनेन भविष्यति ॥७८॥
धिगस्तु तव वीर्येण किमपि ध्यानमीयुषः । यदस्य पापचेष्टस्य छिनत्सि न शिरोऽसिना ॥७९॥
चन्द्रादित्यसमानेभ्यः पुरुषेभ्यः पराभवम् । नासि सोढाऽधुना कस्मात्सहसे क्षुद्रतोऽमुतः ॥८०॥
लङ्केश्वरस्तु सङ्गाढध्यानसङ्गतमानसः । न किञ्चिदशृणोच्चापि पश्यतिस्म सुनिश्चयः ॥८१॥
अर्द्धपर्यङ्कसंविष्टो दूरस्थापितमत्सरः । मन्दरोरुगुहायातरत्नकूटमहाद्युतिः ॥८२॥
सर्वेन्द्रियक्रियामुक्तो विद्याराधनतत्परः । निष्कम्पविग्रहो धीरः स ह्यासीत्पुस्तकायवत् ॥८३॥
विद्यां विचिन्तयन्नेष मैथिलीमिव राघवः । जगाम मन्दरस्याद्रेः स्थिरत्वेन समानताम् ॥८४॥

प्रतीकार कर ॥६८-६९॥ इस प्रकार कह वह सिंहके समान रावणके सामने उछला और जो उसे सबसे अधिक प्रिय थी, जो भयसे काँप रही थी, जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे और जो अत्यन्त कातर थी ऐसी पट्टरानी मन्दोदरीकी चोटी पकड़कर उस तरह खींच लाया जिस तरह कि राजा भरत राजलक्ष्मीको खींच लाये थे ॥७०-७१॥ तदनन्तर उसने रावणसे कहा कि हे शूर ! जो तुझे प्राणोंसे अधिक प्यारी है तथा जो गुणोंकी भूमि है, ऐसी यह वही मन्दोदरी महारानी हरी जा रही है ॥७२॥ यह सभामण्डपमें वर्तमान विद्याधरोंके राजा सुग्रीवकी उत्तम चमर ढोलनेवाली होगी ॥७३॥ तदनन्तर जो कँपकँपीके कारण खिसकते हुए स्तनतटके वस्त्रको अपने चञ्चल हाथसे बार-बार ठीक कर रही थी, निरन्तर झरते हुए अश्रुजलसे जिसका अधरोष्ठ बाधित हो रहा था और हिलते हुए आभूषणोंके शब्दसे जिसका समस्त शरीर शब्दायमान हो रहा था ऐसी कृशाङ्गी मन्दोदरी परमदीनताको प्राप्त हो कभी भर्तारके चरणोंमें पड़ती और कभी भुजाओंके मध्य प्रवेश करती हुई भर्तारसे इस प्रकार बोली कि ॥७४-७६॥ हे नाथ ! मेरी रक्षा करो, क्या मेरी इस दशाको नहीं देख रहे हो ? क्या तुम और ही हो गए हो ? क्या अब तुम वह दशानन नहीं रहे ? ॥७७॥ अहो ! तुमने तो निर्ग्रन्थ मुनियों जैसी वीतरागता धारण कर ली पर इस प्रकारके दुःख उपस्थित होने पर इस वीतरागतासे क्या होगा ? ॥७८॥ कुछ भी ध्यान करनेवाले तुम्हारे इस पराक्रमको धिक्कार हो जो खड्गसे इस पापीका शिर नहीं काटते हो ॥७९॥ जिसे तुमने पहले कभी चन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी मनुष्योंसे प्राप्त होनेवाला पराभव नहीं सहा सो इस समय इस क्षुद्रसे क्यों सह रहे हो ? ॥८०॥ यह सब हो रहा था परन्तु रावण निश्चयके साथ प्रगाढ़ ध्यानमें अपना चित्त लगाये हुआ था वह मानो कुछ सुन ही नहीं रहा था । वह अर्धपर्यङ्कासनसे बैठा था, मत्सरभावको उसने दूर कर दिया था, मन्दरगिरिकी विशाल गुफाओंसे प्राप्त हुई रत्नराशिके समान उसकी महाकान्ति थी, वह समस्त इन्द्रियोंकी क्रियासे रहित था, विद्याकी आराधनामें तत्पर था, निष्कम्प शरीरका धारक था, अत्यन्त धीर था और ऐसा जान पड़ता था मानो मिट्टीका पुतला ही हो ॥८१-८३॥ जिस प्रकार राम सीताका ध्यान

१. विलोभ-म० ।

ततोऽथ गदतः स्पष्टं द्योतयन्ती दिशो दश । जयेति जनितालापा तस्य विद्या पुरः स्थिता ॥८५॥
जगौ च देव सिद्धाऽहं तवाज्ञाकरणोद्यता । नियोगो दीयतां नाथ साध्यः सकलविष्टपे ॥८६॥
एकं चक्रधरं मुक्त्वा प्रतिकूलमवस्थितम् । वशीकरोमि ते लोकं भवदिच्छानुवर्तिनी ॥८७॥
करे च चक्ररत्नं च तवैवोत्तम वर्तते । पद्मलक्ष्मीधराद्यैर्मे ग्रहणं किमिवापरैः ॥८८॥
मद्विधानां निसर्गोऽयं यन्न चक्रिणि शक्नुमः । किञ्चित्पराभवं कर्तुमन्यत्र तु किमुच्यते ॥८९॥
ब्रूह्यद्य सर्वदैत्यानां करोमि किमु मारणम् । भवत्यप्रियचित्तानां किं वा स्वर्गौकसामपि ॥९०॥
क्षुद्रविद्यात्तगर्वेषु नभस्वत्पथगामिषु । आदरो नैव मे कश्चिद्वराकेषु तृणेष्विव ॥९१॥

उपजातिवृत्तम्

प्रणम्य[1] विद्या समुपासितोऽसौ समाप्तयोगः परमद्युतिस्थः ।
दशाननो यावदुदारचेष्टः प्रदक्षिणं शान्तिगृहं करोति ॥९२॥
तावत्परित्यज्य मनोभिरामां मन्दोदरीं खेदपरीतदेहाम् ।
उत्पत्य खं पद्मसमागमेन गतोऽङ्गदोऽसौ रविवत्सुतेजाः ॥९३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने बहुरूपविद्यासन्निधानाभिधानं नामैकसप्ततितमं पर्व ॥७१॥

करते थे उसी प्रकार वह विद्याका ध्यान कर रहा था। इस तरह वह अपनी स्थिरतासे मन्दर-गिरिकी समानताको प्राप्त हो रहा था ॥८४॥

अथानन्तर जिस समय मन्दोदरी रावणसे उस प्रकार कह रही थी उसी समय दशों दिशाओंको प्रकाशित करती एवं जय-जय शब्दका उच्चारण करती बहुरूपिणी विद्या उसके सामने खड़ी हो गई ॥८५॥ उसने कहा भी कि हे देव ! मैं सिद्ध हो गई हूँ, आपकी आज्ञा पालन करनेमें उद्यत हूँ, हे नाथ ! आज्ञा दी जाय, समस्त संसारमें मुझे सब साध्य है ॥८६॥ प्रतिकूल खड़े हुए एक चक्रधरको छोड़ मैं आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती हुई समस्त लोकको आपके आधीन कर सकती हूँ ॥८७॥ हे उत्तम पुरुष ! चक्ररत्न तो तुम्हारे ही हाथमें है। राम लक्ष्मण आदि अन्य पुरुष मेरा क्या ग्रहण करेंगे अर्थात् उनमें मेरे ग्रहण करनेकी शक्ति ही क्या है ? ॥८८॥ हमारी जैसी विद्याओंका यही स्वभाव है कि हम चक्रवर्तीका कुछ भी पराभव करनेके लिए समर्थ नहीं हैं और इसके अतिरिक्त दूसरेका तो कहना ही क्या है ? ॥८९॥ कहो आज, आपसे अप्रसन्न रहनेवाले समस्त दैत्योंका संहार करूँ या समस्त देवोंका ? ॥९०॥ क्षुद्र विद्याओंसे गर्वीले, तृणके समान तुच्छ दयनीय विद्याधरोंमें मेरा कुछ भी आदर नहीं है अर्थात् उन्हें कुछ भी नहीं समझती हूँ ॥९१॥ इस तरह प्रणाम कर विद्या जिसकी उपासना कर रही थी, जिसका ध्यान पूर्ण हो चुका था, जो परमदीप्तिके मध्य स्थित था तथा जो उदार चेष्टाका धारक था ऐसा दशानन जब तक शान्ति-जिनालयकी प्रदक्षिणा करता है तब तक सूर्यके समान तेजस्वी अङ्गद, खेदखिन्न शरीरकी धारक सुन्दरी मन्दोदरीको छोड़ आकाशमें उड़कर रामसे जा मिला ॥९२-९३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण नामक पद्मायनमें रावणके बहुरूपिणी विद्याकी सिद्धिका वर्णन करनेवाला इकहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७१॥

---

१. विद्यासमुपस्थितासौ म० ।

द्वासप्ततितमं पर्व

ततः स्त्रीणां सहस्राणि समस्तान्यस्य पादयोः । रुदन्त्यः प्रणिपत्योचुः युगपच्चारुनिःस्वनम् ॥१॥
सर्वविद्याधराधीशे वर्तमाने त्वयि प्रभो । बालकेनाङ्गदेनैत्य वयमद्य खलीकृताः ॥२॥
त्वयि ध्यानमुपासीने परमे तेजसास्पदे । विद्याधरकखद्योतो विकारं सोऽपि संश्रितः ॥३॥
पश्यैतकामवस्थां नो विहितां हतचेतसा । सौग्रीविणा विशङ्केन शिशुना भवतः पुरः ॥४॥
श्रुत्वा तद्वचनं तासां समाश्वासनतत्परः । त्रिकूटाधिपतिः क्रुद्धो जगाद विमलेक्षणः ॥५॥
मृत्युपाशेन बद्धोऽसौ ध्रुवं [1]यदिति चेष्टते । देव्यो विमुच्यतां दुःखं [2]भवत प्रकृतिस्थिताः ॥६॥
कान्ताः ! कर्त्तास्मि सुग्रीवं निर्ग्रीवं श्वो रणाजिरे । तमोमण्डलकं तं च प्रभामण्डलनामकम् ॥७॥
तयोस्तु कीदृशः कोपो भूमिगोचरकीटयोः । दुष्टविद्याधरान् सर्वान् निहन्तास्मि न संशयः ॥८॥
भ्रूक्षेपमात्रकस्यापि दयिता मम शत्रवः । गम्याः किमु महारूपविद्यया स्युस्तथा न ते ॥९॥
एवं ताः सान्त्व्य दयिता बुद्धया निहतशात्रवः । तस्थौ [3]देहस्थितौ राजा निष्क्रम्य जिनसद्मनः ॥१०॥
नानावाद्य[4]कृतानन्दश्चित्रनाट्यसमायुतः । जज्ञे स्नानविधिस्तस्य पुष्पायुधसमाकृतेः ॥११॥
राजतैः कलशैः कैश्चित् सम्पूर्णशशिसन्निभैः । श्यामा[5]भिः स्ना[6]प्यते कान्तिज्योत्स्नासम्प्लावितात्मभिः ॥१२॥

अथानन्तर रावणकी अठारह हजार स्त्रियाँ एक साथ रुदन करती उसके चरणोंमें पड़कर निम्नप्रकार मधुर शब्द कहने लगीं ॥१॥ उन्होंने कहा हे नाथ ! समस्त विद्याधरोंके अधिपति जो आप सो आपके विद्यमान रहते हुए भी बालक अङ्गदने आकर आज हम सबको अपमानित किया है ॥२॥ तेजके उत्तम स्थानस्वरूप आपके ध्यानारूढ रहने पर वह नीच विद्याधररूपी जुगनू विकारभावको प्राप्त हुआ ॥३॥ आपके सामने सुग्रीवके दुष्ट बालकने निशङ्क हो हम लोगोंकी जो दशा की है उसे आप देखो ॥४॥ उन स्त्रियोंके वचन सुनकर जो उन्हें सान्त्वना देनेमें तत्पर था तथा जिसकी दृष्टि निर्मल थी ऐसा रावण कुपित होता हुआ बोला कि हे देवियो ! दुःख छोड़ो और प्रकृतिस्थ होओ—शान्ति धारण करो। वह जो ऐसी चेष्टा करता है सो निश्चित जानो कि वह मृत्युके पाशमें बद्ध हो चुका है ॥५-६॥ हे वल्लभाओ ! मैं कल ही रणाङ्गणमें सुग्रीवको निर्ग्रीव—ग्रीवारहित और प्रभामण्डलको तमोमण्डलरूप कर दूँगा ॥७॥ कीटके समान तुच्छ उन भूमिगोचरियों राम लक्ष्मणके ऊपर क्या क्रोध करना है ? किन्तु उनके पक्षपर एकत्रित हुए जो समस्त विद्याधर हैं उन्हें अवश्य मारूँगा ॥८॥ हे प्रिय स्त्रियो ! शत्रु तो मेरी भौंहके इशारे मात्रसे साध्य हैं फिर अब तो बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई अतः उससे वशीभूत क्यों न होंगे ? ॥९॥ इस प्रकार उन स्त्रियोंको सान्त्वना देकर रावणने मनमें सोचा कि अब तो मैंने शत्रुओंको मार लिया। तदनन्तर जिनमन्दिरसे निकलकर वह स्नान आदि शरीर सम्बन्धी कार्य करनेमें लीन हुआ ॥१०॥

अथानन्तर जिसमें नानाप्रकारके वादित्रोंसे आनन्द मनाया जा रहा था तथा जो नानाप्रकारके अद्भुत नृत्योंसे सहित था ऐसा, कामदेवके समान सुन्दर रावणका स्नान-समारोह सम्पन्न हुआ ॥११॥ जो कान्तिरूपी चाँदनीमें निमग्न होनेके कारण श्यामा अर्थात् रात्रिके समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही श्यामा अर्थात् नवयौवनवती स्त्रियोंने पूर्णचन्द्रके समान चाँदीके

---

१. यदि विचेष्टते । २. भवत्यः म० । ३. देहं स्थितो म० । ४. वाद्य म० । ५. 'क्षणदा रजनी भक्तं दोषा श्यामा क्षपा करः' इति धनञ्जयः । ६ स्नाप्यते म०, ज० ।

पद्मकान्तिभिरन्याभिः सन्ध्याभिरिव सादरम् । बालभास्वरसङ्काशैः कलशैर्हाटकात्मभिः ॥१३॥
गारुत्ममणिनिर्माणैः कुम्भैरन्याभिरुत्तमैः । स्त्रीभिः साक्षादिव श्रीभिः पद्मपत्रपुटैरिव ॥१४॥
कैश्चिद्बालातपच्छायैः कदलीगर्भपाण्डुभिः । अन्यैर्गन्धसमाकृष्टमधुव्रतकदम्बकैः ॥१५॥
उद्वर्तनैः सुलीलाभिः स्त्रीभिरुद्वर्तितोऽभजत् । स्नानं नानामणिस्फीतप्रभाभाजि वरासने ॥१६॥
सुस्नातोऽलंकृतः कान्तः प्रयतो भावपूरितः । पुनः शान्तिजिनेन्द्रस्य विवेश भवनं नृपः ॥१७॥
कृत्वा तत्र परां पूजामर्हतां स्तुतितत्परः । चिरं [1]त्रिभिः प्रणामं च भेजे भोजनमण्डपम् ॥१८॥
चतुर्विधोत्तमाहारविधिं निर्माय पार्थिवः । विद्यापरीक्षणं कर्तुमार क्रीडनभूमिकाम् ॥१९॥
अनेकरूपनिर्माणं जनितं तेन विद्यया । विविधं चाद्भुतं कर्म विद्याधरजनातिगम् ॥२०॥
तत् कराहतभूकम्पसमाघूर्णितविग्रहम् । जातं परबलं भीतं जगौ निधनशङ्कितम् ॥२१॥
ततस्तं सचिवाः प्रोचुः कृतविद्यापरीक्षणम् । अधुना नाथ मुक्त्वा त्वां नास्ति राघवसूदनः ॥२२॥
भवतो नापरः कश्चित् पद्मस्य क्रोधसङ्गिनः । [2]इष्वासस्य पुरः स्थातुं समर्थः समराजिरे ॥२३॥
विद्ययाथ महर्द्धिस्थो विकृत्य परमं बलम् । सम्प्रति प्रमदोद्यानं प्रतस्थे प्रतिचक्रभृत् ॥२४॥
सचिवैरावृतो धीरैः सुरैराखण्डलो यथा । अप्रधृष्यः समागच्छन् स रेजे भास्करोपमः ॥२५॥

कलशोंसे उसे स्नान कराया ॥१२॥ कमलके समान कान्तिवाली होनेसे जो प्रातःसंध्याके समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही स्त्रियोंने बालसूर्यके समान देदीप्यमान स्वर्णमय कलशोंसे आदरपूर्वक उसे नहलाया था ॥१३॥ कुछ अन्य स्त्रियोंने नीलमणिसे निर्मित उत्तम कलशोंसे उसे स्नान कराया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलके पत्रपुटोंसे लक्ष्मीनामक देवियोंने ही स्नान कराया हो ॥१४॥ कितनी ही स्त्रियोंने प्रातःकालीन् घामके समान लालवर्णके कलशोंसे, कितनी ही स्त्रियोंने कदली वृक्षके भीतरी भागके समान सफेद रङ्गके कलशोंसे तथा कितनी ही स्त्रियोंने सुगन्धिके द्वारा भ्रमरसमूहको आकर्षित करनेवाले अन्य कलशोंसे उसे नहलाया था ॥१५॥ स्नानके पूर्व उत्तम लीलावती स्त्रियोंने उससे नानाप्रकारके सुगन्धित उबटनोंसे उबटन लगाया था और उसके बाद उसने नाना प्रकारके मणियोंकी फैलती हुई कान्तिसे युक्त उत्तम आसन पर बैठकर स्नान किया था ॥१६॥ स्नान करनेके बाद उसने अलंकार धारण किये और तदनन्तर उत्तम भावोंसे युक्त हो श्रीशान्ति-जिनालयमें पुनः प्रवेश किया ॥१७॥ वहाँ उसने स्तुतिमें तत्पर रहकर चिरकाल तक अर्हन्तभगवानकी उत्तम पूजा की, मन, वचन, कायसे प्रणाम किया और उसके बाद भोजन गृहमें प्रवेश किया ॥१८॥ वहाँ चार प्रकारका उत्तम आहार कर वह विद्याकी परीक्षा करनेके लिए क्रीडाभूमिमें गया ॥१९॥ वहाँ उसने विद्याके प्रभावसे अनेक रूप बनाये तथा नानाप्रकारके ऐसे आश्चर्यजनक कार्य किये जो अन्य विद्याधरोंको दुर्लभ थे ॥२०॥ उसने पृथ्वीपर इतने जोरसे हाथ पटका कि पृथ्वी काँप उठी और उसपर स्थित शत्रुओंके शरीर घूमने लगे तथा शत्रुसेना भयभीत हो मरणकी शंकासे चिल्लाने लगी ॥२१॥ तदनन्तर विद्याकी परीक्षा कर चुकनेवाले रावणसे मन्त्रियोंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपको छोड़ और कोई दूसरा रामको मारनेवाला नहीं है ॥२२॥ रणाङ्गणमें कुपित हो बाण छोड़नेवाले रामके सामने खड़ा होनेके लिए आपके सिवाय और कोई दूसरा समर्थ नहीं है ॥२३॥

अथानन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंसे सम्पन्न रावण, विद्याके प्रभावसे एक बड़ी सेना बना, चक्ररत्नको धारण करता हुआ उस प्रमदनामक उद्यानकी ओर चला जहाँ सीताका निवास था ॥२४॥ उस समय धीर वीर मन्त्रियोंसे घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र ही हो । अथवा जो बिना किसी रोक-टोकके चला आ रहा था ऐसा रावण सूर्यके

---

१. नृभिः म० । त्रिभिः मनोवाक्कायैरित्यर्थः । २. वाणान् मोचयितुः ।

तमालोक्य समायान्तं विद्याधर्यो बभाषिरे । पश्य पश्य शुभे सीते रावणस्य महाद्युतिम् ॥२६॥
पुष्पकादयं श्रीमान् अवतीर्य महाबलः । नानाधातुविचित्राङ्गान् महीभृद्गह्वरादिव ॥२७॥
गजेन्द्र इव सक्षीबः सूर्यांशुपरितापितः । स्मरानलपरीताङ्गः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥२८॥
पुष्पशोभापरिष्वक्तमुपगीतं षडङ्घ्रिभिः । विशति प्रमदोद्यानं दृष्टिरत्र निधीयताम् ॥२९॥
त्रिकूटाधिपतावस्मिन् रूपं निरुपमं श्रिते । सफला जायतां ते दृक् रूपं ह्यस्यैवमुत्तमम् ॥३०॥
ततो विमलया दृष्ट्या तया बाह्यान्तरात्मनः । चापान्धकारितं वीक्ष्य बलमेवमचिन्त्यत ॥३१॥
अदृष्टपारमुद्वृत्तं बलमीदृक् महाप्रभम् । रामो लक्ष्मीधरो वाऽपि दुःखं जयति संयुगे ॥३२॥
अधन्या किं नु पद्माभं किं वा लक्ष्मणसुन्दरम् । हतं श्रोष्यामि सङ्ग्रामे किं वा पापा सहोदरम् ॥३३॥
एवं चिन्तामुपायातां परमाकुलितात्मिकाम् । कम्पमानां परित्रस्तां सीतामागत्य रावणः ॥३४॥
जगाद देवि ! पापेन त्वं मया छद्मना हृता । क्षात्रगोत्रप्रसूतानां किमिदं साम्प्रतं सताम् ॥३५॥
अवश्यम्भाविनो नूनं कर्मणो गतिरीदृशी । स्नेहस्य परमस्येयं मोहस्य बलिनोऽथ वा ॥३६॥
साधूनां सन्निधौ पूर्वं व्रतं भगवतो मया । वन्द्यस्यानन्तवीर्यस्य पादमूले समार्जितम् ॥३७॥
या वृणोति न मां नारी रमयामि न तामहम् । यद्युर्वशी स्वयं रम्भा यदि वाऽन्या मनोरमा ॥३८॥
इति पालयता सत्यं प्रसादापेक्षिणा मया । प्रसभं[1] रमिता नासि जगदुत्तमसुन्दरि ॥३९॥
अधुनाऽऽलम्बने छिन्ने मद्भुजप्रेरितैः शरैः । वैदेहि ! पुष्पकारूढा विहर स्वेच्छया जगत् ॥४०॥

समान सुशोभित हो रहा था ॥२५॥ उसे आता देख विद्याधरियोंने कहा कि हे शुभे ! सीते ! देख, रावणकी महाकान्ति देख ॥२६॥ जो नाना धातुओंसे चित्र-विचित्र हो रहा है ऐसे पुष्पक विमानसे उतरकर यह श्रीमान् महाबलवान् ऐसा चला आ रहा है मानो पर्वतकी गुफासे निकलकर सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त हुआ उन्मत्त गजराज ही आ रहा हो। इसका समस्त शरीर कामाग्निसे व्याप्त है तथा यह पूर्णचन्द्रके समान मुखको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ यह फूलोंकी शोभासे व्याप्त तथा भ्रमरोंके संगीतसे मुखरित प्रमद उद्यानमें प्रवेश कर रहा है। जरा, इसपर दृष्टि तो डालो ॥२९॥ अनुपम रूपको धारण करनेवाले इस रावणको देखकर तेरी दृष्टि सफल हो जावेगी। यथार्थमें इसका रूप ही उत्तम है ॥३०॥ तदनन्तर सीताने निर्मल दृष्टिसे बाहर और भीतर धनुषके द्वारा अन्धकार उत्पन्न करनेवाले रावणका बल देख इस प्रकार विचार किया कि इसके इस प्रचण्ड बलका पार नहीं है। राम और लक्ष्मण भी इसे युद्धमें बड़ी कठिनाईसे जीत सकेंगे ॥३१-३२॥ मैं बड़ी अभागिनी हूँ, बड़ी पापिनी हूँ जो युद्धमें राम लक्ष्मण अथवा भाई भामण्डलके मरनेका समाचार सुनूँगी ॥३३॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त होनेसे जिसकी आत्मा अत्यन्त विह्वल हो रही थी, तथा जो भयसे काँप रही थी ऐसी सीताके पास आकर रावण बोला कि हे देवि ! मुझ पापीने तुम्हें छलसे हरा था सो क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए सत्पुरुषोंके लिए क्या यह उचित है ? ॥३४-३५॥ जान पड़ता है कि किसी अवश्य भावी कर्मकी यह दशा है अथवा परम स्नेह और सातिशय बलवान् मोहका यह परिणाम है ॥३६॥ मैंने पहले अनेक मुनियोंके सन्निधानमें वन्दनीय श्रीभगवान् अनन्तवीर्य केवलीके पादमूलमें यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे नहीं वरेगी मैं उसके साथ रमण नहीं करूँगा भले ही वह उर्वशी, रम्भा अथवा और कोई मनोहारिणी स्त्री हो ॥३७-३८॥ हे जगत्की सर्वोत्तम सुन्दरि ! इस सत्यव्रतका पालन करता हुआ मैं तुम्हारे प्रसादकी प्रतीक्षा करता रहा हूँ और बलपूर्वक मैंने तुम्हारा रमण नहीं किया है ॥३९॥ हे वैदेहि ! अब मेरी भुजाओंसे प्रेरित बाणोंसे तुम्हारा आलम्बन जो राम था सो छिन्न होनेवाला है इसलिए पुष्पक विमानमें आरूढ

---

१. बलात् ।

शिखराण्यगराजस्य चैत्यकूटानि सागरम् । महानदीश्च पश्यन्ती जनयात्मसुखासिकाम् ॥४१॥
कृत्वा करपुटं सीता ततः करुणमभ्यधात् । बाष्पसम्भारसंरुद्धकण्ठा कृच्छ्रेण सादरम् ॥४२॥
दशानन ! यदि प्रीतिर्विद्यते तव मां प्रति । प्रसादो वा ततः कर्तुं ममेदं वाक्यमर्हसि ॥४३॥
क्रुद्धेनापि त्वया संख्ये प्राप्तोऽभिमुखतामसौ । अनिवेदितसन्देशो न हन्तव्यः प्रियो मम ॥४४॥
पद्म भामण्डलस्वस्रा[1] तव सन्दिष्टमीदृशम् । यथा श्रुत्वाऽन्यथा त्वाहं विधियोगेन संयुगे ॥४५॥
महता शोकभारेण समाक्रान्ता सती प्रभो । वात्याहतप्रदीपस्य शिखेव क्षणमात्रतः ॥४६॥
राजर्षेस्तनया शोच्या जनकस्य महात्मनः । प्राणानेषा न मुञ्चामि त्वत्समागमनोत्सुका ॥४७॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छिता भूमौ पपात मुकुलेक्षणा । हेमकल्पलता यद्वद्भग्ना मत्तेन दन्तिना ॥४८॥
तदवस्थामिमां दृष्ट्वा रावणो मृदुमानसः । बभूव परमं दुःखी चिन्तां चैतामुपागतः ॥४९॥
अहो [2]निकाचितस्नेहः कर्मबन्धोदयादयम्[3] । अवसानविनिर्मुक्तः कोऽपि संसारगह्वरे ॥५०॥
धिक् धिक् किमिदमश्लाघ्यं कृतं सुविकृतं मया । यदन्योन्यरतं मीरुमिथुनं सद्वियोजितम् ॥५१॥
पापातुरो विना कार्यं पृथग्जनसमो महत् । अयशोमलमाप्तोऽस्मि सद्भिरत्यन्तनिन्दितम् ॥५२॥
शुद्धाम्भोजसमं गोत्रं विपुलं मलिनीकृतम् । दुरात्मना मया कष्टं कथमेतदनुष्ठितम् ॥५३॥
धिङ्नारी पुरुषेन्द्राणां सहसा मारणात्मिकाम् । किम्पाकफलदेशीयां क्लेशोत्पत्तिवसुन्धराम् ॥५४॥
भोगिमूर्द्धमणिच्छायासदृशी मोहकारिणी । सामान्येनाङ्गना तावत् परस्त्री तु विशेषतः ॥५५॥

हो अपनी इच्छानुसार जगत्में विहार करो ॥४०॥ सुमेरुके शिखर, अकृत्रिम चैत्यालय, समुद्र और महानदियोंको देखती हुई अपने आपको सुखी करो ॥४१॥

तदनन्तर अश्रुओंके भारसे जिसका कण्ठ रुँध गया था ऐसी सीता बड़े कष्टसे आदर-पूर्वक हाथ जोड़ करुण स्वरमें रावणसे बोली ॥४२॥ कि हे दशानन ! यदि मेरी प्रति तुम्हारी प्रीति है अथवा मुझ पर तुम्हारी प्रसन्नता है तो मेरा यह वचन पूर्ण करनेके योग्य हो ॥४३॥ युद्धमें राम तुम्हारे सामने आवें तो कुपित होने पर भी तुम मेरा सन्देश कहे विना उन्हें नहीं मारना ॥४४॥ उनसे कहना कि हे राम ! भामण्डलकी बहिनने तुम्हारे लिए ऐसा सन्देश दिया है कि कर्मयोगसे तुम्हारे विषयकी युद्धमें अन्यथा बात सुन महात्मा राजर्षि जनककी पुत्री सीता, अत्यधिक शोकके भारसे आक्रान्त होती हुई आँधीसे ताड़ित दीपककी शिखाके समान क्षणभरमें शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है। हे प्रभो ! मैंने जो अभीतक प्राण नहीं छोड़े हैं सो आपके समागमकी उत्कण्ठासे ही नहीं छोड़े हैं ॥४५-४७॥ इतना कह वह मूर्छित हो नेत्र बन्द करती हुई उस तरह पृथिवी पर गिर पड़ी जिस तरह कि मदोन्मत्त हाथीके द्वारा खण्डित सुवर्णमयी कल्पलता गिर पड़ती है ॥४८॥

तदनन्तर सीताकी वैसी दशा देख कोमल चित्तका धारी रावण परम दुखी हुआ तथा इस प्रकार विचार करने लगा कि अहो ! कर्मबन्धके कारण इनका यह स्नेह निकाचित स्नेह है— कभी छूटनेवाला नहीं है। जान पड़ता है कि इसका संसार रूपी गर्तमें रहते कभी अवसान नहीं होगा ॥४९-५०॥ मुझे बार-बार धिक्कार है मैंने यह क्या निन्दनीय कार्य किया जो परस्पर प्रेमसे युक्त इस मिथुनका विछोह कराया ॥५१॥. मैं अत्यन्त पापी हूँ बिना प्रयोजन ही मैंने साधारण मनुष्यके समान सत् पुरुषोंसे अत्यन्त निन्दनीय अपयश रूपी मल प्राप्त किया है ॥५२॥ मुझ दुष्टने कमलके समान शुद्ध विशाल कुलको मलिन किया है। हाय हाय मैंने यह अकार्य कैसे किया ? ॥५३॥ जो बड़े-बड़े पुरुषोंको सहसा मार डालती है, जो किंपाक फलके समान है तथा दुःखोंकी उत्पत्तिकी भूमि है ऐसी स्त्रीको धिक्कार है ॥५४॥ सामान्य रूपसे स्त्री मात्र,

---

१. सीतया। २. निकाञ्चितस्नेहः म०। ३.-दहम् म०।

नदीव कुटिला भीमा धर्मार्थपरिनाशिनी । वर्जनीया सतां यत्नात्सर्वाशुभमहाखनिः ॥५६॥
अमृतेनेव या दृष्टा मामसिञ्चन्मनोहरा । अमरीभ्योऽपि दयिता सर्वाभ्यः पूर्वमुत्तमा ॥५७॥
अद्यैव सा परासक्तहृदया जनकात्मजा । विषकुम्भीसमात्यन्तं सञ्जातोद्वेजनी मम ॥५८॥
अनिच्छंत्यपि मे पूर्वमशून्यं याकरोन्मनः । सैवेयमधुना जीर्णतृणानादरमागता ॥५९॥
अधुनाऽन्याहितस्वान्ता यद्यपीच्छेदियं तु माम् । तथापि काऽनया प्रीतिः सद्भावपरिमुक्तया ॥६०॥
आसीद्यदानुकूलो मे विद्वान् भ्राता विभीषणः । उपदेष्टा तदा नैवं शमं दग्धं[1] मनो गतम् ॥६१॥
प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मनः समुपदेशतः । प्रायः पुण्यवतां पुंसां वशीभावेऽवतिष्ठते ॥६२॥
[2]श्वः संग्रामकृतौ सार्धं सचिवैर्मन्त्रणं कृतम् । अधुना कीदृशी मैत्री वीरलोकविगर्हिता ॥६३॥
योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । अहो सङ्कटमापन्नः प्राकृतोऽहमिदं महत् ॥६४॥
यद्यर्पयामि पद्माय जानकीं कृपयाऽधुना । लोको दुर्ग्रहचित्तोऽयं ततो मां वेत्त्यशक्तकम् ॥६५॥
यत् किञ्चित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निर्घृणः । जीवत्यस्मद्विधो दुःखं करुणामृदुमानसः ॥६६॥
हरितार्क्ष्यसमुद्यद्धौ तौ कृत्वाऽऽजौ निरस्त्रकौ । जीवग्राहं गृहीतौ च पद्मलक्ष्मणसंज्ञकौ ॥६७॥
पश्चाद्विभवसंयुक्तो पद्मनाभाय मैथिलीम् । अर्पयामि न मे पापं तथा सत्युपजायते ॥६८॥
महाँल्लोकापवादश्च भयान्यायसमुद्भवः । न जायते करोम्येवं ततो निश्चिन्त[3]मानसः ॥६९॥

नागराजके फणपर स्थित मणिकी कान्तिके समान मोह उत्पन्न करनेवाली है और परस्त्री विशेष रूपसे मोह उत्पन्न करनेवाली है ॥५५॥ यह नदीके समान कुटिल है, भयंकर है, धर्म अर्थको नष्ट करनेवाली है, और समस्त अशुभोंकी खानि है। यह सत्पुरुषोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥५६॥ जो सीता पहले इतनी मनोहर थी कि दिखनेपर मानो अमृतसे ही मुझे सींचती थी और समस्त देवियोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ती थी आज वही परासक्तहृदया होनेसे विषभृत कलशीके समान मुझे अत्यन्त उद्वेग उत्पन्न कर रही है ॥५७-५८॥ नहीं चाहने पर भी जो पहले मेरे मनको अशून्य करती थी अर्थात् जो मुझे नहीं चाहती थी फिर भी मैं मनमें निरन्तर जिसका ध्यान किया करता था वही आज जीर्ण तृणके समान अनादरको प्राप्त हुई है ॥५९॥ अन्य पुरुषमें जिसका चित्त लग रहा है ऐसी यह सीता यदि मुझे चाहती भी है तो सद्भावसे रहित इससे मुझे क्या प्रीति हो सकती है ? ॥६०॥ जिस समय मेरा विद्वान् भाई विभीषण, मेरे अनुकूल था तथा उसने हितका उपदेश दिया था उस समय यह दुष्ट मन इस प्रकार शान्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥६१॥ अपितु उसके उपदेशसे प्रमादके वशीभूत हो उल्टा विकार भावको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि प्रायःकर पुण्यात्मा पुरुषों का ही मन वशमें रहता है ॥६२॥ यह विचार करनेके अनन्तर रावणने पुनः विचार किया कि कल संग्राम करनेके विषयमें मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा की थी फिर इस समय वीर लोगोंके द्वारा निन्दित मित्रता की चर्चा कैसी ? ॥६३॥ युद्ध करना और करुणा प्रकट करना ये दो काम विरुद्ध हैं। अहो ! मैं एक साधारण पुरुषकी तरह इस महान् संकटको प्राप्त हुआ हूँ ॥६४॥ यदि मैं इस समय दया वश रामके लिए सीताको सौंपता हूँ तो लोग मुझे असमर्थ समझेंगे क्योंकि सबके चित्तको समझना कठिन है ॥६५॥ जो चाहे जो करनेमें स्वतन्त्र है ऐसा निर्दय मनुष्य सुखसे जीवन बिताता और जिसका मन दयासे कोमल है ऐसा मेरे समान पुरुष दुःखसे जीवन काटता है ॥६६॥ यदि मैं सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओंसे युक्त राम-लक्ष्मणको युद्धमें निरस्त्र कर जीवित पकड़ लूँ और पश्चात् वैभवके साथ रामके लिए सीताको वापिस सौंपूँ तो ऐसा करनेसे मुझे सन्ताप नहीं होगा ॥६७-६८॥ साथ ही भय और अन्यायसे उत्पन्न हुआ बहुत भारी लोकापवाद

---

१. दग्धं नीचं मनः शमं नैव गतम्। २. स्वसंग्रामकृतौ म०। ३. निश्चितमानसः म०।

मनसा सम्प्रधार्यैवं महाविभवसङ्गतः । ययावन्तःपुराम्भोजखण्डं रावणवारणः ॥७०॥
ततः परिभवं स्मृत्वा महान्तं शत्रुसम्भवम् । क्रोधारुणेक्षणो भीमः संवृत्तोऽन्तकसन्निभः ॥७१॥
बभाण दशवक्त्रस्तद्वचनं स्फुरिताधरः । स्त्रीणां मध्ये ज्वरो येन समुद्दीप्तः सुदुःसहः ॥७२॥
गृहीत्वा समरे पापं तं दुर्ग्रीवं सहाङ्गदम् । भागद्वयं करोम्येष खड्गेन द्युतिहासिना ॥७३॥
तमोमण्डलकं तं च गृहीत्वा दृढसंयतम् । लोहमुद्गरनिर्घातैस्त्याजयिष्यामि जीवितम् ॥७४॥
करालतीक्ष्णधारेण क्रकचेन मरुत्सुतम् । यन्त्रितं काष्ठयुग्मेन पाटयिष्यामि दुर्णयम् ॥७५॥
मुक्त्वा राघवमुद्वृत्तानखिलानाहवे परान् । शस्त्रौघैश्चूर्णयिष्यामि दुराचारान् हतात्मनः ॥७६॥
इति निश्चयमापन्ने वर्तमाने दशानने । वाचो नैमित्तवक्त्रेषु चरन्ति मगधेश्वर ॥७७॥
उत्पाताः शतशो भीमाः सम्प्रत्येते समुद्गताः । आयुधप्रतिमो रूक्षः परिवेषः खरत्विषः ॥७८॥
समस्तां रजनीं चन्द्रो नष्टः क्वापि भयादिव । निपेतुर्घोरनिर्घाता भूकम्पः सुमहानभूत् ॥७९॥
वेपमाना दिशि प्राच्या [१]मुल्काशोणितसन्निभा । पपात विरसं रेटुरुत्तरेण तथा शिवाः ॥८०॥
हेषन्ति कम्पितग्रीवास्तुरङ्गाः प्रखरस्वनाः । हस्तिनो रूक्षनिःस्वाना घ्नंति हस्तेन मेदिनीम् ॥८१॥
दैवतप्रतिमा जाता लोचनोदकदुर्दिनाः । निपतन्ति [२]महावृक्षा विना दृष्टेन हेतुना ॥८२॥
आदित्याभिमुखीभूताः काकाः [३]खरतरस्वनाः । सङ्घातवर्जिनो जाताः स्रस्तपक्षा महाकुलाः ॥८३॥
सरांसि सहसा शोषं प्राप्तानि विपुलान्यपि । निपेतुर्गिरिशृङ्गाणि नभो वर्षति शोणितम् ॥८४॥

भी नहीं होग अतः मैं निश्चिन्त चित्त होकर ऐसा ही करता हूँ ॥६९॥ मनसे इस प्रकार निश्चय कर महा वैभवसे युक्त रावण रूपी हाथी अन्तःपुर रूपी कमल वनमें चला गया ॥७०॥

तदनन्तर शत्रु की ओरसे उत्पन्न महान् परिभवका स्मरण कर रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह स्वयं यमराजके समान भयंकर हो गया ॥७१॥ जिसका ओठ काँप रहा था ऐसा रावण वह वचन बोला कि जिससे स्त्रियोंके बीचमें अत्यन्त दुःसह ज्वर उत्पन्न हो आया ॥७२॥ उसने कहा कि मैं युद्धमें अङ्गद सहित उस पापी दुर्ग्रीवको पकड़ कर किरणोंसे हँसनेवाला तलवारसे उसके दो टुकड़े अभी हाल करता हूँ ॥७३॥ उस भामण्डलको पकड़ कर तथा अच्छी तरह बाँध कर लोहके मुद्गरोंकी मारसे उसके प्राण घुटाऊँगा ॥७४॥ और अन्यायी हनूमान्को दो लकड़ियोंके सिकंजेमें कस कर अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली करोंतसे चीरूँगा ॥७५॥ एक रामको छोड़ कर मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले जितने अन्य दुराचारी दुष्ट शत्रु हैं उन सबको युद्धमें शस्त्र-समूहसे चूर-चूर कर डालूँगा ॥७६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! जब रावण उक्त प्रकारका निश्चय कर रहा था तब निमित्तज्ञानियोंके मुखोंमें निम्न प्रकारके वचन विचरण कर रहे थे अर्थात् वे परस्पर इस प्रकार की चर्चा कर रहे थे कि ॥७७॥ देखो, ये सैकड़ों प्रकारके उत्पात हो रहे हैं। सूर्यके चारों ओर शस्त्रके समान अत्यन्त रूक्ष परिवेष—परिमण्डल रहता है ॥७८॥ पूरी की पूरी रात्रि भर चन्द्रमा भयसे ही मानों कहीं छिपा रहता है, भयंकर वज्रपात होते हैं, अत्यधिक भूकम्प होता है ॥७९॥ पूर्व दिशामें काँपती हुई रुधिरके समान लाल उल्का गिरी थी और उत्तर दिशामें शृगाल नीरस शब्द कर रहे थे ॥८०॥ घोड़े ग्रीवाको कँपाते तथा प्रखर शब्द करते हुए हींसते हैं और हाथी कठोर शब्द करते हुए सूंड़से पृथिवीको ताड़ित करते हैं अर्थात् पृथिवी पर सूंड़ पटकते हैं ॥८१॥ देवताओंकी प्रतिमाएँ अश्रुजलकी वर्षाके लिए दुर्दिन स्वरूप बन गई हैं। बड़े बड़े वृक्ष बिना किसी दृष्ट कारणके गिर रहे हैं ॥८२॥ सूर्यके सन्मुख हुए कौए अत्यन्त तीक्ष्ण शब्द कर रहे हैं, अपने झुण्डको छोड़ अलग-अलग जाकर बैठे हैं, उनके पङ्ख ढीले पड़ गये हैं तथा वे अत्यन्त व्याकुल दिखाई देते हैं ॥८३॥ बड़े से बड़े तालाब भी अचानक

---

१. मुक्ता म० । २. महावृक्षाः म० । ३. कर कर स्वनाः ब० ।

स्वल्पैरेव दिनैः प्रायः प्रभोराचष्टे मृतिम् । विकाराः खलु भावानां जायन्ते नान्यथेदृशाः[1] ॥८५॥
क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् । जनता कर्मतन्त्रेयं गुणभूतं हि पौरुषम् ॥८६॥
लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम् । न काचिच्छूरता दैवे प्राणिनां स्वकृताशिनाम् ॥८७॥
सर्वेषु नयशास्त्रेषु कुशलो लोकतन्त्रवित् । जैनव्याकरणाभिज्ञो महागुणविभूषितः ॥८८॥
एवंविधो भवन् सोऽयं दशवक्त्रः स्वकर्मभिः । वाहितः प्रस्थितः कष्टमुन्मार्गेण विमूढधीः ॥८९॥
मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । न चिन्तयत्ययं पश्य तदप्यत्यन्तगर्वितः ॥९०॥
नक्षत्रबलनिर्मुक्तो ग्रहैः सुकुटिलैः स्थितैः । पीड्यमानो रणक्षोणीमाकांक्षत्येष दुर्मनाः ॥९१॥
प्रतापभङ्गभीतोऽयं वीरैकरसभावितः । कृतखेदोऽपि शास्त्रेषु युक्तायुक्तं न वीक्षते ॥९२॥
अतः परं महाराज[2] दशग्रीवस्य मानिनः । मनसि स्थितमर्थं ते वदामि शृणु तत्त्वतः ॥९३॥
जित्वा सर्वजनं सर्वान् मुक्त्वा पुत्रसहोदरान् । प्रविशामि पुनर्लङ्कामिदं पश्चात्करोमि च ॥९४॥
उद्वासयामि सर्वस्मिन्नेतस्मिन्वसुधातले । क्षुद्रान् भूगोचरान् श्लाघ्यान् स्थापयामि नभश्चरान् ॥९५॥

उपजातिवृत्तम्

येनाऽत्र वंशे सुरवर्त्मगानां त्रिलोकनाथाभिनुता जिनेन्द्राः ।
चक्रायुधा रामजनार्दनाश्च जन्म ग्रहीष्यन्ति तथाऽऽस्मदाद्याः ॥९६॥

सूख गये हैं। पहाड़ोंकी चोटियाँ नीचे गिरती हैं, आकाश रुधिर की वर्षा करता है ॥८४॥ प्रायः ये सब उत्पात थोड़े ही दिनोंमें स्वामीके मरणकी सूचना दे रहे हैं क्योंकि पदार्थोंमें इस प्रकारके अन्यथा विकार होते नहीं हैं ॥८५॥ अपने पुण्यके क्षीण हो जाने पर इन्द्र भी तो च्युत हो जाता है। यथार्थमें जन-समूह कर्मोंके आधीन है और पुरुषार्थ गुणीभूत है—अप्रधान है ॥८६॥ जो वस्तु प्राप्त होनेवाली है वह प्राप्त होती ही है उससे दूर नहीं भागा जा सकता। दैवके रहते प्राणियोंकी कोई शूरवीरता नहीं चलती उन्हें अपने कियेका फल भोगना ही पड़ता है ॥८७॥ देखो, जो समस्त नीति शास्त्रमें कुशल है, लोकतन्त्रको जानने वाला है, जैन व्याख्यानका जानकार है और महागुणोंसे विभूषित है ऐसा रावण इस प्रकारका होता हुआ भी स्वकृत कर्मोंके द्वारा कैसा चक्रमें डाला गया कि हाय, बेचारा विमूढ़ बुद्धि हो उन्मार्गमें चला गया ॥८८–८९॥ संसारमें मरणसे बढ़कर कोई दुःख नहीं है पर देखो, अत्यन्त गर्वसे भरा रावण उस मरणकी भी चिन्ता नहीं कर रहा है ॥९०॥ यह यद्यपि नक्षत्र बलसे रहित है तथा कुटिल-पाप ग्रहोंसे पीड़ित है तथापि मूर्ख हुआ रणभूमिमें जाना चाहता है ॥९१॥ यह प्रतापके भङ्गसे भयभीत है, एक वीर रसकी ही भावनासे युक्त है तथा शास्त्रोंका अभ्यास यद्यपि इसने किया है तथापि युक्त-अयुक्तको नहीं देखता है ॥९२॥ अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे महाराज! अब मैं मानी रावणके मनमें जो बात थी उसे कहता हूँ तू यथार्थमें सुन ॥९३॥ रावणके मनमें था कि सब लोगोंको जीतकर तथा पुत्र और भाईको छुड़ा कर मैं पुनः लंकामें प्रवेश करूँ? और यह सब पीछे करता रहूँ ॥९४॥ इस पृथिवीतलमें जितने क्षुद्रभूमि गोचरी हैं मैं उन सबको यहाँसे हटाऊँगा और प्रशंसनीय जो विद्याधर हैं, उन्हें ही यहाँ बसाऊँगा ॥९५॥ जिससे कि तीनों लोकोंके नाथके द्वारा स्तुत तीर्थंकर जिनेन्द्र, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण तथा

---

१. नान्यथेदृशः म० । २. महाराजन्! म०, ज० ।

निकाचितं कर्म नरेण येन बद्धस्य भुंक्ते सफलं नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ॥९७॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे युद्धनिश्चयकीर्तनाभिधानं नाम द्वासप्ततितमं पर्व ॥७२॥

हमारे जैसे पुरुष इसी वंशमें जन्म ग्रहण करेंगे ॥९६॥ जिस मनुष्यने निकाचित कर्म बाँधा है वह उसका फल नियमसे भोगता है । अन्यथा शास्त्र रूपी सूर्यके देदीप्यमान रहते हुए किस मनुष्य रूपी उलूकके अन्धकार रह सकता है ॥९७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके युद्ध सम्बन्धी निश्चयका कथन करने वाला बहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७२॥

त्रिसप्ततितमं पर्व

ततो दशाननोऽन्यत्र दिने परमभासुरः । आस्थानमण्डपे तस्थावुदिते दिवसाधिपे ॥१॥
कुबेरवरुणेशानयमसोमसमैर्नृपैः । रराज सेवितस्तत्र त्रिदशानामिवाधिपः ॥२॥
[1]वृतः कुलोद्गतैर्वीरैः स्थितः केसरिविष्टरे । स बभार परां कान्तिं निशाकर इव ग्रहैः ॥३॥
अत्यन्तसुरभिर्दिव्यवस्त्रस्रगनुलेपनः । [2]हारातिहारिवक्षस्कः सुभगः सौम्यदर्शनः ॥४॥
सदोऽवलोकमानोऽगादिति चिन्तां महामनाः । मेघवाहनवीरोऽत्र स्वप्रदेशे न दृश्यते ॥५॥
महेन्द्रविभ्रमो नेतः शक्रजिन्नयनप्रियः । इतो भानुप्रभो भानुकर्णोऽसौ न निरीक्ष्यते ॥६॥
नेदं सदःसरः शोभां धारयत्यधुना पराम् । निर्महापुरुषाम्भोजं शेषपुंस्कुमुदाञ्चितम् ॥७॥
उत्फुल्लपुण्डरीकाक्षः स मनोज्ञोऽपि तादृशः । चिन्तादुःखविकारेण कृतो दुःसहदर्शनः ॥८॥
कुटिलभ्रूकुटीबन्धघनध्वान्तालिकाङ्गणम् । सरोषाशीविषच्छायं कृतान्तमिव भीषणम् ॥९॥
[3]गाढदष्टाधरं स्वांशुचक्रमग्नं समीक्ष्य तम् । सचिवेशा भृशं भीताः किङ्कर्तव्यत्वगह्वराः ॥१०॥
ममायं कुपितोऽमुष्य तस्येत्याकुलमानसाः । स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे धरणीगतमस्तकाः ॥११॥
मयोग्रशुकलोकाक्षसारणाद्याः सलज्जिताः । परस्परं विविक्षन्तः क्षितिं च विनताननाः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन दिनकरका उदय होनेपर परम देदीप्यमान रावण सभामण्डपमें विराजमान हुआ ॥१॥ कुबेर, वरुण, ईशान, यम और सोमके समान अनेक राजा उसकी सेवा कर रहे थे जिससे वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्र ही हो ॥२॥ कुलमें उत्पन्न हुए वीर मनुष्योंसे घिरा तथा सिंहासनपर विराजमान रावण ग्रहोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान परम कान्तिको धारण कर रहा था ॥३॥ वह अत्यन्त सुगन्धिसे युक्त था, उसके वस्त्र, मालाएँ तथा अनुलेपन सभी दिव्य थे, हारसे उसका वक्षःस्थल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था, वह सुन्दर था और सौम्य दृष्टिसे युक्त था ॥४॥ वह उदारचेता सभाकी ओर देखता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि यहाँ वीर मेघवाहन अपने स्थानपर नहीं दिख रहा है ॥५॥ इधर महेन्द्रके समान शोभाको धारण करनेवाला नयनाभिरामी इन्द्रजित् नहीं है और उधर सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) भी नहीं दिख रहा है ॥६॥ यद्यपि यह सभा रूपी सरोवर शेष पुरुष रूपी कुमुदोंसे सुशोभित है तथापि उक्त महापुरुष रूपी कमलोंसे रहित होनेके कारण इस समय उत्कृष्ट शोभाको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥७॥ यद्यपि उस रावणके नेत्र कमलके समान फूल रहे थे और वह स्वयं अनुपम मनोहर था तथापि चिन्ताजन्य दुःखके विकारसे उसकी ओर देखना कठिन जान पड़ता था ॥८॥

तदनन्तर टेढ़ी भौंहोंके बन्धनसे जिसके ललाट रूपी आँगनमें सघन अन्धकार फैल रहा था, जो कुपित नागके समान कान्तिको धारण करनेवाला था, जो यमराजके समान भयङ्कर था, जो बड़े जोरसे अपना ओठ डश रहा था, जो अपनी किरणोंके समूहमें निमग्न था ऐसे उस रावणको देख, बड़े-बड़े मन्त्री अत्यन्त भयभीत हो 'क्या करना चाहिये, इस विचारमें गम्भीर थे ॥९-१०॥ 'यह मुझपर कुपित है या उसपर' इस प्रकार जिनके मन व्याकुल हो रहे थे तथा जो हाथ जोड़े हुए पृथिवीकी ओर देखते बैठे थे ॥११॥ ऐसे मय, उग्र, शुक, लोकाक्ष और सारण आदि मन्त्री परस्पर एक दूसरेसे लज्जित होते हुए नीचेको मुख कर बैठे थे तथा ऐसे जान

१. तृतीयचतुर्थयोः श्लोकयोः ब पुस्तके क्रमभेदो वर्तते । २. मुक्तास्रग्मनोहरोरस्कः । ३. गाढदष्टाधरं म० ।

प्रचलत्कुण्डला राजन् ते भटाः पार्श्ववर्तिनः । मुहुर्देव प्रसीदेति त्वरावन्तो बभाषिरे ॥१३॥
कैलासकूटकल्पासु रत्नभासुरभित्तिषु । स्थिताः प्रासादमालासु त्रस्तास्तं[1] ददृशुः स्त्रियः ॥१४॥
मणिजालगवाक्षान्तन्यस्तसम्भ्रान्तलोचना । मन्दोदरी ददर्शैनं समालोडितमानसा ॥१५॥
लोहिताक्षः प्रतापाढ्यः समुत्थाय दशाननः । अमोघरत्नशस्त्राढ्यमायुधालयमुज्ज्वलम् ॥१६॥
वज्रालयमिवेशानः सुराणां गन्तुमुद्यतः । विशतश्च[2] ममैतस्य दुर्निमित्तानि जज्ञिरे ॥१७॥
पृष्ठतः क्षुतमग्रे च छिन्नो मार्गो महाहिना । हाही[3] धिक्त्वां क यासीति वचांसि तमिवावदन् ॥१८॥
वातूलप्रेरितं छत्रं भग्नं वैडूर्यदण्डकम् । निपपातोत्तरीयं च बलिभुग्दक्षिणोऽरटत् ॥१९॥
अन्येऽपि शकुनाः क्रूरास्तं युद्धाय न्यवर्तयन् । वचसा कर्मणा ते हि न कायेनानुमोदकाः ॥२०॥
नानाशकुनविज्ञानप्रवीणधिषणा ततः । दृष्ट्वा पापान्महोत्पातानत्यन्ताकुलमानसाः ॥२१॥
मन्दोदरी समाहूय शुकादीन् सारमन्त्रिणः । जगाद नोच्यते कस्माद्भवद्भिः स्वहितं नृपः ॥२२॥
किमेतच्चेष्ट्यते[4]ऽद्यापि विज्ञातस्वपरक्रियैः । अशक्ताः कुम्भकर्णाद्याः कियद्बन्धनमागताः ॥२३॥
लोकपालौजसो वीराः कृतानेकमहाद्भुताः । शत्रुरोधमिमे प्राप्ताः किं नु कुर्वन्ति वः शमम् ॥२४॥

पड़ते थे मानो पृथिवीमें ही प्रवेश करना चाहते हों ॥१२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनके कुण्डल हिल रहे थे ऐसे वे समीपवर्ती सुभट 'हे देव प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ' इस तरह शीघ्रतासे बार-बार कह रहे थे ॥१३॥ कैलासके शिखरके समान ऊँचे तथा रत्नोंसे देदीप्यमान दीवालोंसे युक्त महलोंमें रहनेवाली स्त्रियाँ भयभीत हो उसे देख रही थीं ॥१४॥ मणिमय झरोखों के अन्तमें जिसने अपने घबड़ाये हुए नेत्र लगा रक्खे थे, तथा जिसका मन अत्यन्त विह्वल था ऐसी मन्दोदरीने भी उसे देखा ॥१५॥

अथानन्तर लाल लाल नेत्रोंको धारण करनेवाला प्रतापी रावण उठकर अमोघ शस्त्ररूपी रत्नोंसे युक्त उज्ज्वल शस्त्रागारमें जानेके लिए उस प्रकार उद्यत हुआ जिस प्रकार कि वज्रालयमें जानेके लिए इन्द्र उद्यत होता है। जब वह शस्त्रागारमें प्रवेश करने लगा तब निम्नाङ्कित अपशकुन हुए ॥१६-१७॥ पीछेकी ओर छींक हुई*, आगे महानागने मार्ग काट दिया, ऐसा लगने लगा जैसे लोग उससे यह शब्द कह रहे हों कि हा, ही, तुझे धिक्कार है कहाँ जा रहा है ॥१८॥ नील मणिमय दण्डसे युक्त उसका छत्र वायुसे प्रेरित हो टूट गया, उसका उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर गया और दाहिनी ओर कौआ काँव काँव करने लगा ॥१९॥ इनके सिवाय और भी क्रूर अपशकुनोंने उसे युद्धके लिए मना किया। यथार्थमें वे सब अपशकुन उसे युद्धके लिए न वचनसे अनुमति देते थे न क्रियासे और न कामसे ही ॥२०॥ तदनन्तर नाना शकुनोंके ज्ञानमें जिनकी बुद्धि निपुण थी ऐसे लोग उन पाप पूर्ण महा उत्पातोंको देख अत्यन्त व्यग्रचित्त हो गए ॥२१॥

तदनन्तर मन्दोदरीने शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर कहा कि आप लोग राजासे हितकारी बात क्यों नहीं कहते हैं ॥२२॥ निज और परकी क्रियाओंको जानने वाले होकर भी आप अभी तक यह क्या चेष्टा कर रहे हैं ? कुम्भकर्णादिक अशक्त हो कितने दिनसे बन्धनमें पड़े हैं ? ॥२३॥ लोकपालोंके समान जिनका तेज है तथा जिन्होंने अनेक आश्चर्यके काम किये हैं ऐसे ये वीर, शत्रुके यहाँ बन्धनको प्राप्त होकर क्या आप लोगोंको शक्ति उत्पन्न कर रहे हैं ? ॥२४॥

---

१. त्रस्तास्तं म० । २. समेतस्य म० । ३. धिङ्मा म० । ४. चेष्टते म०, ज० ।

* शकुन शास्त्रमें छींकका फल इस प्रकार बताया है कि पूर्व दिशामें हो तो मृत्यु, अग्निकोणमें हो तो शोक, दक्षिणमें हानि, नैऋत्यमें शुभ, पश्चिममें मिष्ट आहार, वायुकोणमें सम्पदा, उत्तरमें कलह, ईशानमें धनागम, आकाशमें सर्वसंहार और पातालमें सर्वसम्पदाकी प्राप्ति हो। रावणको मृत्युकी छींक हुई।

प्रणिपत्य ततो देवीमित्याहुर्मुख्यमन्त्रिणः । कृतान्तशासनो मानी स्वप्रधानो दशाननः ॥२५॥
वचनं कुरुते यस्य नरस्य परमं हितम् । न स स्वामिनि ! लोकेऽस्मिन् समस्तेऽप्युपलभ्यते ॥२६॥
या काचिद्भविता बुद्धिर्नॄणां कर्मानुवर्तिनाम् । अशक्या साऽन्यथाकर्तुं सेन्द्रैः सुरगणैरपि ॥२७॥
अर्थसाराणि शास्त्राणि नयमौशनसं परम् । जानन्नपि त्रिकूटेन्द्रः परय मोहेन बाध्यते ॥२८॥
उक्तः स बहुशोऽस्माभिः प्रकारेण न केन सः । तथापि तस्य नो चित्तमभिप्रेतान्निवर्तते ॥२९॥
महापूरकृतोत्पीडः पयोवाहसमागमे । दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदितः ॥३०॥
ईशे तथापि को दोषः स्वयं वक्तुं त्वमर्हसि । कदाचित्ते मतिं कुर्यादुपेक्षणमसाम्प्रतम् ॥३१॥
इत्युदाहृतमाधाय निश्चिन्तस्वान्तधारिणी । परिवेपवती लक्ष्मीरिव सम्भ्रमवर्तिनी ॥३२॥
स्वच्छायतविचित्रेण पयःसादृश्यधारिणा । अंशुकेनावृता देवी गन्तुं रावणमुद्यता ॥३३॥
मन्मथस्यान्तिकं गन्तुं तां प्रवृत्तां रतिं यथा । परिवर्गः समालोक्य तत्परत्वमुपागतः ॥३४॥
छत्रचामरधारीभिरङ्गनाभिः समन्ततः । आपूर्यंत शचीवेन्द्रं व्रजन्ती प्रवरानना ॥३५॥
श्वसन्ती प्रस्खलन्ती च किञ्चिच्छ्थिलमेखला । प्रियकार्यरता नित्यमनुरागमहानदी ॥३६॥
आयान्ती तेन सा दृष्टा लीलावर्तेन चक्षुषा । स्पृशता कवचं मुख्यं शस्त्रजातं च सादरम् ॥३७॥
उक्ता मनोहरे हंसवधूललितगामिनि । रभसेन किमायान्त्यास्तव देवि प्रयोजनम् ॥३८॥

तदनन्तर मुख्य मन्त्रियोंने प्रणाम कर मन्दोदरी से इस प्रकार कहा कि हे देवि ! दशाननका शासन यमराजके शासनके समान है, वे अत्यन्त मानी और अपने आपको ही प्रधान माननेवाले हैं ॥२५॥ जिस मनुष्यके परम हितकारी वचनको वे स्वीकृत कर सकें हे स्वामिनि ! समस्त लोकमें ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता ॥२६॥ कर्मानुकूल प्रवृत्ति करनेवाले मनुष्योंकी जो बुद्धि होनेवाली है उसे इन्द्र तथा देवोंके समूह भी अन्यथा नहीं कर सकते ॥२७॥ देखो, रावण समस्त अर्थ शास्त्र और सम्पूर्ण नीतिशास्त्रको जानते हैं तो भी मोहके द्वारा पीड़ित हो रहे हैं ॥२८॥ हम लोगोंने उन्हें अनेकों बार किस प्रकार नहीं समझाया है ? अर्थात् ऐसा प्रकार शेष नहीं रहा जिससे हमने उन्हें न समझाया हो फिर भी उनका चित्त इष्ट वस्तु—सीतासे पीछे नहीं हट रहा है ॥२९॥ वर्षा ऋतुके समय जिसमें जलका महा प्रवाह उल्लंघ कर बह रहा है ऐसे महानदको अथवा कर्मसे प्रेरित मनुष्यको रोक रखना कठिन काम है ॥३०॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि हम लोग कह कर हार चुके हैं तथापि आप स्वयं कहिये इसमें क्या दोष है ? संभव है कि कदाचित् आपका कहना उन्हें सुबुद्धि उत्पन्न कर सके। उपेक्षा करना अनुचित है ॥३१॥ इस प्रकार मन्त्रियोंका कहा श्रवण कर जिसने रावणके पास जाने का निश्चित विचार किया था, जो भय से काँप रही थी तथा घबड़ाई हुई लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, जो स्वच्छ, लम्बे, विचित्र और जल की सदृशताको धारण करनेवाले वस्त्रसे आवृत्त थी ऐसी मन्दोदरी रावणके पास जानेके लिए उद्यत हुई ॥३२-३३॥ कामदेवके सपीप जानेके लिए उद्यत रतिके समान, रावणके समीप जाती हुई मन्दोदरीको देख परिवारके समस्त लोगोंका ध्यान उसीकी ओर जा लगा ॥३४॥ छत्र तथा चमरोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ जिसे सब ओरसे घेरे हुई थीं ऐसी सुमुखी मन्दोदरी ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके पास जाती हुई शची ही हो—इन्द्राणी ही हो ॥३५॥ जो लम्बी साँस भर रही थी, जो चलती-चलती बीचमें स्खलित हो जाती थी, जिसकी करधनी कुछ-कुछ ढीली हो रही थी, जो निरन्तर पतिका कार्य करनेमें तत्पर थी और जो अनुरागकी मानो महानदी ही थी ऐसी आती हुई मन्दोदरीको रावण ने लीलापूर्ण चक्षुसे देखा। उस समय रावण अपने कवच तथा मुख्य-मुख्य शस्त्रोंके समूहका आदरपूर्वक स्पर्श कर रहा था ॥३६-३७॥ रावणने कहा कि हे मनोहरे ! हे हंसीके समान सुन्दर चालसे चलनेवाली

ह्रियते हृदयं कस्माद्दशवक्त्रस्य भामिनि । सन्निधानमिव स्वप्ने प्रस्तावपरिवर्जितम् ॥३९॥
ततो निर्मलसम्पूर्णशशाङ्कप्रतिमानना । सम्फुल्लाम्भोजनयना निसर्गोत्तमविभ्रमा ॥४०॥
मनोहरकटाक्षेषु विसर्जनविचक्षणा । मदनावासभूताङ्गा मधुरस्खलितस्वना ॥४१॥
दन्ताधरविचित्रोरुच्छायापिञ्जरविग्रहा । स्तनहेममहाकुम्भभारसन्नमितोदरी ॥४२॥
स्खलद्वलित्रयात्यन्तसुकुमाराऽतिसुन्दरी । जगाद प्रणता नाथप्रसादस्यातिभूमिका ॥४३॥
प्रयच्छ देव मे भर्तृभिक्षामेहि प्रसन्नताम् । प्रेम्णा परेग धर्मेण कारुण्येन च सङ्गतः ॥४४॥
वियोगनिम्नगादुःखजले सङ्कल्पवीचिके । महाराज निमज्जन्तीं मकामुत्तम धारय ॥४५॥
कुलपद्मवनं गच्छत्प्रलयं विपुलं परम् । मो [1]पेक्षिष्ठा महाबुद्धे बान्धवव्योमभास्करः ॥४६॥
किञ्चिदाकर्णय स्वामिन् वचः परुषमप्यदः । क्षन्तुमर्हसि मे यस्माद्दत्तमेव त्वया पदम् ॥४७॥
अविरुद्धं स्वभावस्थं परिणामसुखावहम् । वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामौषधं यथा ॥४८॥
किमर्थं संशयतुलामारूढोऽस्य तुलामिमाम् । सन्तापयसि कस्मात्स्वमस्मांश्च निरवग्रहः ॥४९॥
अद्यापि किमतीतं ते सैव भूमिः पुरातनी । उन्मार्गप्रस्थितं चित्तं केवलं देव वारय ॥५०॥
मनोरथः प्रवृत्तोऽयं नितान्तं तव सङ्कटे । इन्द्रियाश्वानियच्छाऽऽशु विवेकदृढरश्मिभृत् ॥५१॥

प्रिये ! हे देवि ! बड़े वेगसे तुम्हारे यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है ? ॥३८॥ हे भामिनि ! स्वप्नमें अकस्मात् प्राप्त हुए सन्निधानके समान तुम्हारा आगमन रावणके हृदयको क्यों हर रहा है ? ॥३९॥

तदनन्तर जिसका मुख निर्मल पूर्णचन्द्रकी तुलनाको प्राप्त था,जसके नेत्र खिले हुए कमलके समान थे, जो स्वभावसे ही उत्तम हाव-भावको धारण करनेवाली थी, जो मनोहर कटाक्षोंके छोड़नेमें चतुर थी, जिसका शरीर मानो कामदेवके रहनेका स्थान था, जिसके मधुर शब्द बीच-बीचमें स्खलित हो रहे थे, जिसका शरीर दाँत तथा ओठोंकी रङ्ग-बिरङ्गी विशाल कान्तिसे पिञ्जरवर्ण हो रहा था, जिसका उदर स्तनरूपी स्वर्णमय महाकलशोंसे झुक रहा था, जिसकी त्रिवलिरूपी रेखाएँ स्खलित हो रहीं थीं, जो अत्यन्त सुकुमार थी, अत्यधिक सुन्दरी थी, और जो पतिके प्रसादकी उत्तम भूमि थी ऐसी मन्दोदरी प्रणाम कर बोली कि ॥४०-४३॥ हे देव ! आप परमप्रेम और दया-धर्मसे सहित हो अतः मेरे लिए पतिकी भीख देओ प्रसन्नताको प्राप्त होओ ॥४४॥ हे महाराज ! हे उत्तम संकल्परूपी तरङ्गोंसे युक्त ! वियोगरूपी नदीके दुःखरूपी जलमें डूबती हुई मुझको आलम्बन देकर रोको-मेरी रक्षा करो ॥४५॥ हे महाबुद्धिमन् ! तुम अपने परिजन रूपी आकाशमें सूर्यके समान हो इसलिए प्रलयको प्राप्त होते हुए इस विशाल कुलरूपी कमल वन की अत्यन्त उपेक्षा न करो ॥४६॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मेरे वचन कठोर हैं तथापि कुछ श्रवण कीजिये । यतश्च यह पद मुझे आपने ही दिया है अतः आप मेरा अपराध क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥ मित्रोंके जो वचन विरोध रहित हैं, स्वभावमें स्थित हैं और फलकालमें सुख देने वाले हैं वे अप्रिय होने पर भी औषधिके समान ग्रहण करनेके योग्य है ॥४८॥ आप इस उपमा रहित संशयकी तुला पर किसलिए आरूढ़ हो रहे हैं ? और किसलिए किसी रुकावटके विना ही अपने आपको तथा हम लोगोंको सन्ताप पहुँचा रहे हो ॥४९॥ आज भी आपका क्या चला गया ? वही आपकी पुरातनी अर्थात् पहलेकी भूमि है केवल हे देव ! उन्मार्गमें गए हुए चित्तको रोक लीजिए ॥५०॥ आपका यह मनोरथ अत्यन्त संकटमें प्रवृत्त हुआ है इसलिए इन इन्द्रियरूपी घोड़ोंको शीघ्र ही रोक लीजिए । आप तो विवेकरूपी मजबूत लगामको धारण

---

१. मा पेक्षिष्टा म० ।

उद्धैर्यत्वं गभीरत्वं परिज्ञातं च तत्कृते । गतं येन कुमार्गेण नाथ केनापि नीयसे ॥५२॥
दृष्ट्वा शरभवच्छायामात्मीयां कूपवारिणि । किं प्रवृत्तोऽसि परमामापदायासदायिनि ॥५३॥
अयशः शाखमुत्तुङ्गं भित्त्वा क्लेशकरं परम् । कदलीस्तम्भनिःसारं फलं किमभिवाञ्छसि ॥५४॥
श्लाघ्यं जलधिगम्भीरं कुलं भूयो विभूषय । शिरोऽर्त्तिं कुलजातानां मुञ्च भूगोचरस्त्रियम् ॥५५॥
विरोधः क्रियते स्वामिन् वीरैः स्वाप्तिप्रयोजनः । मृत्युं च मानसे कृत्वा परेषामात्मनोऽपि वा ॥५६॥
पराजित्यापि संघातं नाथ सम्बन्धिनां तव । कोऽर्थः सम्पद्यते तस्मात्त्यज सीतामयं ग्रहम् ॥५७॥
अन्यदास्तां व्रतं तावत्परस्त्रीमुक्तिमात्रतः । पुमान् जन्मद्वये शंसां सुशीलः प्रतिपद्यते ॥५८॥
कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुपः । मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति ना ॥५९॥
देवैरनुगृहीतोऽपि चक्रवर्त्तिसुतोऽपि[1] वा । परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्त्तिं व्रजेत्पराम् ॥६०॥
योऽन्यप्रमदया साकं कुरुते मूढको रतिम् । आशीविषभुजङ्ग्याऽसौ रमते पापमानसः ॥६१॥
निर्मलं कुलमत्यन्तं मायशोमलिनं कुरु । आत्मानं च करोषि त्वं तस्माद्वर्जय दुर्मतिम् ॥६२॥
धवान्तराबलेच्छातः[2] प्राप्ताः नाशं महाबलाः । सुमुखाशनिघोषाद्यास्ते च किं न गताः श्रुतिम् ॥६३॥
सितचन्दनदिग्धाङ्गो नवजीमूतसन्निभः । मन्दोदरीमथावोचद्रावणः कमलेक्षणः ॥६४॥

करनेवाले हैं ॥५१॥ आपकी उत्कृष्ट धीरता, गम्भीरता और विचारकता उस सीताके लिए जिस कुमार्गसे गई है हे नाथ ! जान पड़ता है कि आप भी किसीके द्वारा उसी कुमार्गसे ले जाये जा रहे हैं ॥५२॥ जिस प्रकार अष्टापद कुएँके जलमें अपनी परिछाई देख दुःखको प्राप्त हुआ उसी प्रकार अत्यन्त दुःख देनेवाली आपत्तियोंमें तुम किसलिए प्रवृत्त हो रहे हो ॥५३॥ अत्यधिक क्लेश उत्पन्न करनेवाले अपयशरूपी ऊँचे वृक्षको भेदन कर सुखसे रहिये । आप केलेके स्तम्भके समान किस निःसार फलकी इच्छा रखते हैं ॥५४॥ हे समुद्रके समान गम्भीर ! अपने प्रशस्त कुलको फिरसे अलंकृत कीजिए और कुलीन मनुष्योंके शिर दर्दके समान भूमिगोचरीकी स्त्री-सीताको शीघ्र ही छोड़िए ॥५५॥ हे स्वामिन् ! वीर सामन्त जो एक दूसरेका विरोध करते हैं सो धनकी प्राप्तिके प्रयोजनसे करते हैं अथवा मनमें ऐसा विचारकर करते हैं कि या तो पर को मारूँ या मैं स्वयं मरूँ । सो यहाँ धनकी प्राप्ति तो आपके विरोधका प्रयोजन हो नहीं सकती क्योंकि आपको धनकी क्या कमी है ? और दूसरा प्रयोजन अपना पराया मरना है सो किसलिए मरना ? पराई स्त्रीके लिए मरना यह तो हास्यकर बात है ॥५६॥ अथवा माना कि शत्रुओंके समूहका पराजित करना विरोधका प्रयोजन है सो शत्रु समूहको पराजित करने पर आपका कौनसा प्रयोजन सम्पन्न होता है ? अतः हे स्वामिन् ! सीतारूपी हठ छोड़िए ॥५७॥ और दूसरा व्रत रहने दीजिए एक परस्त्रीत्याग व्रत के द्वारा ही उत्तम शीलको धारण करनेवाला पुरुष दोनों जन्मोंमें प्रशंसाको प्राप्त होता है ॥५८॥ कज्जलकी उपमा धारण करनेवाली परस्त्रियोंका लोभी मनुष्य, मेरुके समान गौरवसे युक्त होने पर भी तृणके समान तुच्छताको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ देव जिस पर अनुग्रह करते हैं अथवा जो चक्रवर्तीका पुत्र है वह भी परस्त्रीकी आसक्तिरूपी कर्दमसे लिप्त होता हुआ परम अकीर्तिको प्राप्त होता है, जो मूर्ख परस्त्रीके साथ प्रेम करता है मानो वह पापी आशीविष नामक सर्पिणीके साथ रमण करता है ॥६०–६१॥ अत्यन्त निर्मल कुलको अपकीर्तिसे मलिन मत कीजिए । अथवा आप स्वयं अपने आपको मलिन कर रहे हैं सो इस दुर्बुद्धिको छोड़िए ॥६२॥ सुमुख तथा वज्रघोष आदि महाबलवान् पुरुष, परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे नाशको प्राप्त हो चुके सो क्या वे आपके सुननेमें नहीं आये ? ॥६३॥

अथानन्तर जिसका समस्त शरीर सफेद चन्दनसे लिप्त था तथा जो स्वयं नूतन मेघके

१. चक्रवर्तिसमोऽपि वा क० । २. अन्यो धवो धवान्तरः परपुरुषस्तथावला तस्य इच्छा तस्याः परपुरुषवनिताया इच्छामात्रत इति भावः ।

अयि कान्ते किमर्थं त्वमेवं कातरतां गता । भीरुस्त्वाद्भीरुभावासि नाम हीदं सहार्थकम्[1][2] ॥६५॥
सूर्यकीर्तिरहं नासौ न चाप्यशनिघोषकः । न चेतरो नरः कश्चित्किमर्थमिति भाषसे ॥६६॥
मृत्युदावानलः सोऽहं शत्रुपादपसंहतेः । समर्पयामि नो सीतां मा भैषीर्मन्दमानसे ॥६७॥
अनया कथया किं ते रक्षायां त्वं नियोजिता । शक्नोषि[3] रक्षितुं नाथ[4] मह्यमर्पय तां द्रुतम् ॥६८॥
ऊचे मन्दोदरी सार्द्धं तया रतिसुखं भवान् । वाञ्छत्यर्पय मे तामित्येवं च वदतेऽत्रपः ॥६९॥
[5]इत्युक्त्वेर्ष्याभवं क्रोधं वहती विपुलेक्षणा । कर्णोत्पलेन सौभाग्यमतिरेनमताडयत् ॥७०॥
पुनरीर्ष्यां नियम्यान्तर्जगाद वद सुन्दर । किं माहात्म्यं त्वया तस्या दृष्टं तां यदभीच्छसि[6] ॥७१॥
न सा गुणवती ज्ञाता ललामा न च रूपतः । कलासु च न निष्णाता न च चित्तानुवर्तिनी ॥७२॥
ईदृश्याऽपि तया साकं कान्त का ते रतौ मतिः । आत्मनो लाघवं शुद्धं भवस्त्वं नानुबुद्ध्यसे ॥७३॥
न कश्चित्स्वयमात्मानं शंसन्नाप्नोति गौरवम् । गुणा हि गुणतां यांति गुण्यमानाः पराननैः ॥७४॥
तदहं नो वदाम्येवं किं नु वेत्सि त्वमेव हि । वराक्या सीतया किं वा न श्रीरपि समेति मे ॥७५॥
विजहीहि विभोऽत्यन्तं सीतासङ्गेप्सितात्मकम् । माऽनुषङ्गानले तीव्रे प्राप्तो[7] निःपरिहारके ॥७६॥
मदवज्ञाकरो वाञ्छन् भूमिगोचरिणीमिमाम् । शिशुर्वैडूर्यमुत्सृज्य काचमिच्छसि मन्दकः ॥७७॥

समान श्यामल वर्ण था ऐसा कमल-लोचन रावण मन्दोदरीसे बोला कि ॥६४॥ हे प्रिये ! तू क्यों इस तरह अत्यन्त कातरताको प्राप्त हो रही है ? भीरु अर्थात् स्त्री होनेके कारण ही तू भीरु अर्थात् कातर भावको धारण कर रही है। अहो ! स्त्रीका भीरु यह नाम सार्थक ही है ॥६५॥ मैं न अर्ककीर्ति हूँ, न वज्रघोष हूँ और न कोई दूसरा ही मनुष्य हूँ फिर इस तरह क्यों कह रही है ? ॥६६॥ मैं शत्रुरूप वृक्षोंके समूहको भस्म करनेवाला वह मृत्युरूपी दावानल हूँ इसलिए सीताको वापिस नहीं लौटाऊँगा। हे मन्दमते ! भय मत कर ॥६७॥ अथवा इस चर्चासे तुम्हें क्या प्रयोजन है ? तू तो सीताकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त की गई है सो यदि रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है तो मुझे शीघ्र ही वापिस सौंप दे॥६८॥ यह सुन मन्दोदरीने कहा कि आप उसके साथ रति-सुख चाहते हैं इसीलिए निर्लज्ज हो इस प्रकार कह रहे हैं कि उसे मुझे सौंप दो ॥६९॥ इतना कह ईर्ष्या सम्बन्धी क्रोधको धारण करनेवाली उस दीर्घलोचना मन्दोदरीने सौभाग्यकी इच्छासे कर्णोत्पलके द्वारा रावणको ताड़ा ॥७०॥ पुनः मन ही मन ईर्ष्याको रोककर उसने कहा कि हे सुन्दर ! बताओ तो सही कि तुमने उसका क्या माहात्म्य देखा है ? जिससे उसे इस तरह चाहते हो ॥७१॥ न तो वह गुणवती जान पड़ी है, न रूपमें सुन्दर है, न कलाओं में निपुण है और न आपके मनके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाली है ॥७२॥ फिर भी ऐसी सीताके साथ रमण करने की हे वल्लभ ! तुम्हारी कौन बुद्धि है। मेरी दृष्टिमें तो केवल अपनी लघुता ही प्रकट हो रही है जिसे आप समझ नहीं रहे हैं ॥७३॥ कोई भी पुरुष स्वयं अपने आपकी प्रशंसा करता हुआ गौरवको प्राप्त नहीं होता यथार्थमें जो गुण दूसरोंके मुखोंसे प्रशंसित होते हैं वे ही गुणपनेको प्राप्त होते हैं ॥७४॥ इसीलिए मैं ऐसा कुछ नहीं कहती हूँ किन्तु आप स्वयं जानते हैं कि बेचारी सीताकी तो बात ही क्या, लक्ष्मी भी मेरे समान नहीं है ॥७५॥ इसलिए हे विभो ! सीताके साथ समागम की जो अत्यधिक लालसा है उसे छोड़िये, जिसका परिहार नहीं ऐसी अपवादरूपी तीव्र अग्निमें मत पड़िये ॥७६॥ आप मेरा अनादर कर इस भूमिगोचरीको चाह रहे हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मूर्ख बालक वैडूर्यमणिको

---

१. 'भामिनी भीरुरङ्गना' इति धनंजयः। २. महार्थकम् म०। ३. शक्तोऽपि म०। ४. न+अथ इति पदच्छेदः। ५. इत्युक्ते–म०। ६. यदिच्छसि म०। ७. 'प्रस्तो' इति स्यात्, प्रोपसर्गपूर्वकपत्लृ धातोर्लुङ्मध्यमैकवचने रूपम्। मायोगे अडागमनिषेधः।

न दिव्यं रूपमेतस्या जायते मनसि स्थितम् । इमां ग्रामेयकाकारां नाथ कामयसे कथम् ॥७८॥
यथासमीहिताकल्पकल्पनाऽतिविचक्षणा । भवामि कीदृशीं ब्रूहि जाये त्वच्चित्तहारिणी ॥७९॥
पद्मालयारतिः सद्यः श्रीर्भवामि किमीश्वर । शक्रलोचनविश्रान्तभूमिः किं वा शची प्रभो ॥८०॥
मकरध्वजचित्तस्य बन्धनी रतिरेव वा । साक्षाद्भवामि किं देव भवदिच्छानुवर्तिनी ॥८१॥
ततः किंचिदधोवक्त्रो रावणोऽर्धाक्षवीक्षणः । सव्रीडः स्वैरमूचेऽहं परस्त्रीहस्त्वयोदितः ॥८२॥
किं मयोपचितं पश्य परमाकीर्तिगामिना । आत्मा लघूकृतो मूढः परस्त्रीसक्तचेतसा ॥८३॥
विषयाऽऽमिषसक्तात्मन् पापभाजनचञ्चल[1] । धिगस्तु हृदयत्वं ते हृदयक्षुद्रचेष्टिता ॥८४॥
विलक्ष इव चोत्सर्पिमुखेन्दुस्मितचन्द्रिकः । बुद्धाक्षिकुमुदः कान्तामेवमूचे दशाननः ॥८५॥
देवि वैक्रियरूपेण विनैव प्रकृतिस्थिता । अत्यन्तदयिता त्वं मे किमन्यस्त्रीभिरुत्तमे ॥८६॥
लब्धप्रसादया देव्या ततो मुदितचित्तया । भाषितं देव किं भानोर्दीपोद्योताय युज्यते ॥८७॥
दशानन सुहृन्मध्ये यन्मयोक्तमिदं हितम् । अन्यानपि बुधान् पृच्छ वेद्मि नेत्यबला सती ॥८८॥
जानन्नपि नयं सर्वं प्रमादं दैवयोगतः । जन्तुना हितकामेन बोधनीयो न किं प्रभुः ॥८९॥
आसीद्विष्णुरसौ साधुर्विक्रियाविस्मृतात्मकः । सिद्धान्तगीतिकाभिः किं न प्रबोधमुपाहृतः ॥९०॥

छोड़कर काँचकी इच्छा करता है ॥७७॥ इससे आपका मनचाहा दिव्य रूप भी नहीं हो सकता अर्थात् यह विक्रियासे आपकी इच्छानुसार रूप नहीं परिवर्तित कर सकती फिर हे नाथ ! आप इस ग्रामीण स्त्रीको क्यों चाहते हैं ? ॥७८॥ मैं आपकी इच्छानुसार रूपको धरनेमें अतिशय निपुण हूँ सो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कैसी हो जाऊँ । हे स्वामिन् ! क्या शीघ्र ही तुम्हारे चित्तको हरण करनेवाली एवं कमलरूपी घरमें प्रीति धारण करनेवाला लक्ष्मी बन जाऊँ ? अथवा हे प्रभो ! इन्द्रके नेत्रोंकी विश्रामभूमिस्वरूप इन्द्राणी हो जाऊँ ? ॥७९-८०॥ अथवा कामदेवके चित्तको रोकनेवाली साक्षात् रति ही बन जाऊँ ? अथवा हे देव ! आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाली क्या हो जाऊँ ? ॥८१॥

तदनन्तर जिसका मुख नीचे की ओर था, जिसके नेत्र आधे खुले थे, तथा जो लज्जासे सहित था ऐसा रावण धीरे-धीरे बोला कि हे प्रिये ! तुमने मुझे परस्त्रीसेवी कहा सो ठीक है ॥८२॥ देखो मैंने यह क्या किया ? परस्त्रीमें चित्तसे आसक्त होनेसे परम अकीर्तिको प्राप्त होते हुए मैंने इस मूर्ख आत्माको अत्यन्त लघु कर दिया है ॥८२-८३॥ जो विषयरूपी मांसमें आसक्त है, पापका भाजन है तथा चञ्चल है ऐसे इस हृदयको धिक्कार है । रे हृदय ! तेरी यह अत्यन्त नीच चेष्टा है ॥८४॥ इतना कह जिसके मुखचन्द्रकी मुसकान रूपी चाँदनी ऊपर की ओर फैल रही थी, तथा जिसके नेत्ररूपी कुमुद विकसित हो रहे थे ऐसे दशाननने मन्दोदरीसे पुनः इस प्रकार कहा कि ॥८५॥ हे देवि ! विक्रिया निर्मित रूपके विना स्वभावमें स्थित रहने पर भी तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो । हे उत्तमे ! मुझे अन्य स्त्रियोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥८६॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रसन्नता प्राप्त होनेसे जिसका चित्त खिल उठा था ऐसी मन्दोदरीने पुनः कहा कि हे देव ! सूर्यके लिए दीपकका प्रकाश दिखाना क्या उचित है ? अर्थात् आपसे मेरा कुछ निवेदन करना उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह कि सूर्यको दीपक दिखाना ॥८७॥ हे दशानन ! मैंने मित्रोंके बीच जो यह हितकारी बात कही है सो उसे अन्य विद्वानोंसे भी पूछ लीजिये । मैं अबला होनेसे कुछ समझती नहीं हूँ ॥८८॥ अथवा समस्त शास्त्रोंको जाननेवाला भी प्रभु यदि कदाचित् दैवयोगसे प्रमाद करता है तो क्या हित की इच्छा रखनेवाले प्राणीको उसे समझाना चाहिए ॥८९॥ जैसे कि विष्णुकुमार मुनि विक्रिया द्वारा आत्माको भूल गये थे सो क्या उन्हें सिद्धान्तके

१. चञ्चला म० ।

अयं पुमानियं स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् । सर्वतो वचनं साधु समीहन्ते सुमेधसः ॥९१॥
स्वल्पोऽपि यदि कश्चित्ते प्रसादो मयि विद्यते । ततो वदामि ते मुञ्च परस्त्रीरतमार्गणम् ॥९२॥
गृहीत्वा जानकीं कृत्वा त्वामेव च समाश्रयम् । प्रत्यापयामि गत्वाऽहं रामं भवदनुज्ञया ॥९३॥
उपगृह्य सुतौ तेऽहं शक्रजिन्मेघवाहनौ । भ्रातरं चोपनेष्यामि किं भूरिजनहिंसया ॥९४॥
एवमुक्तो भृशं क्रुद्धो रक्षसामधिपोऽवदत् । गच्छ गच्छ द्रुतं यत्र न पश्यामि मुखं तव ॥९५॥
अहो त्वं पण्डितम्मन्या यद्विहायोन्नतिं निजाम् । परपक्षप्रशंसायां प्रवृत्ता दीनचेष्टिता ॥९६॥
त्वं वीरजननी भूत्वा ममाग्रमहिषी सती । या वचि क्लीबमेवं तत्कातरास्ति न ते परा ॥९७॥
एवमुक्ता जगौ देवी शृणु यद्गदितं बुधैः । हलिनां चक्रिणां जन्म तथा च प्रतिचक्रिणाम् ॥९८॥
[1]विजयोऽथ त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठोऽचल एव च । स्वयम्भूरिति च ख्यातस्तथा च पुरुषोत्तमः ॥९९॥
नरसिंह प्रतीतिश्च पुण्डरीकश्च विश्रुतः । दत्तश्चेति जगद्वीरा हरयोऽस्मिन् युगे स्मृताः ॥१००॥
समये तु महावीर्यौ पद्मनारायणौ स्मृतौ । यौ तौ ध्रुवमिमौ जातौ दशानन समागतौ ॥१०१॥
प्रत्यनीका यथुग्रीवतारकाद्या यथा गताः । नाशमेभ्यस्तथा नूनं त्वमस्माद्गन्तुमिच्छसि ॥१०२॥

उपदेश द्वारा प्रबोधको प्राप्त नहीं कराया गया था ॥९०॥ 'यह पुरुष है और यह स्त्री है' इस प्रकारका विकल्प निर्बुद्धि पुरुषोंको ही होता है यथार्थमें जो बुद्धिमान हैं वे स्त्री-पुरुष सभीसे हितकारी वचनोंकी अपेक्षा रखते हैं ॥९१॥ हे नाथ ! यदि आपकी मेरे ऊपर कुछ थोड़ी भी प्रसन्नता है तो मैं कहती हूँ कि परस्त्रीसे रतिकी याचना छोड़ो अथवा परस्त्रीमें रत पुरुषका मार्ग तजो ॥९२॥ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जानकीको ले जाकर रामको आपकी शरणमें ले आती हूँ तथा तुम्हारे इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक दोनों पुत्रों तथा भाई कुम्भकर्णको वापिस लिये आती हूँ । अधिक जनोंकी हिंसासे क्या प्रयोजन है ? ॥९३-९४॥

मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर रावण अत्यधिक कुपित होता हुआ बोला कि जा जा जल्दी जा, वहाँ जा जहाँ कि मैं तेरा मुख नहीं देखूँ ॥९५॥ अहो ! तू अपने आपको बड़ी पण्डिता मानती है जो अपनी उन्नतिको छोड़ दीन चेष्टा की धारक हो शत्रु पक्षकी प्रशंसा करनेमें तत्पर हुई है ॥९६॥ तू वीरकी माता और मेरी पट्टरानी होकर भी जो इस प्रकार दीन वचन कह रही है तो जान पड़ता है कि तुमसे बढ़ कर कोई दूसरी कायर स्त्री नहीं है ॥९७॥ इस प्रकार रावण-के कहने पर मन्दोदरीने कहा कि हे नाथ ! विद्वानोंने बलभद्रों, नारायणों तथा प्रतिनारायणोंका जन्म जिस प्रकार कहा है उसे सुनिये ॥९८॥ हे देव ! इस युगमें अबतक *विजय तथा अचल आदि सात बलभद्र और त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, नृसिंह, पुण्डरीक और दत्त ये सात नारायण हो चुके हैं । ये सभी जगत्में अत्यन्त धीरवीर तथा प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं । इस समय पद्म और लक्ष्मण नामक बलभद्र तथा नारायण होंगे । सो हे दशानन जान पड़ता है कि ये दोनों ही यहाँ आ पहुँचे हैं । जिसप्रकार अश्वग्रीव और तारक आदि प्रतिनारायण इनसे नाशको प्राप्त हुए हैं उसी प्रकार जान पड़ता है कि तुम भी इनसे नाशको प्राप्त होना चाहते

---

१. विनयोऽथ म० ।

*नौ बलभद्र—१ विजय २ अचल ३ भद्र ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ आनन्द ७ नन्दन नन्द, ८ पद्म—राम और ९ बलराम ।

नौ नारायण—१ त्रिपृष्ठ २ द्विपृष्ठ ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम ५ नृसिंह ६ पुण्डरीक ७ दत्त ८ लक्ष्मण और कृष्ण ।

नौ प्रतिनारायण—१ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरुक ४ द्विशम्भु ५ मधु ६ बलि ७ प्रह्लाद ८ रावण और जरासंध ।

तावताशङ्क्यते नाथ वक्तुं तत्त्वं हिते रतम् । यावन्निरूपणीयस्य निश्चयान्तो न दृश्यते ॥१०३॥
तत्कार्यं बुद्धियुक्तेन परत्रेह च यत्सुखम् । न तु[1] दुःखाङ्कुरोत्पत्तिकारणं कुत्सनास्पदम् ॥१०४॥
विषयैः सुचिरं भुक्तैर्यः पुमाँस्तृप्तिमागतः । त्रैलोक्येऽपि यदैकं तं पापमोहित रावण ॥१०५॥
भुक्त्वापि सकलं भोगं मुनित्वं चेन्न सेवसे । गृहिधर्मरतो भूत्वा कुरु दुःखविनाशनम् ॥१०६॥
अणुव्रतासिदीप्ताङ्गो नियमच्छत्रशोभितः । सम्यग्दर्शनसन्नाहः शीलकेतनलक्षितः ॥१०७॥
भावनाचन्दनार्द्राङ्गः सुप्रबोधशरासनः । वशेन्द्रियबलोपेतः शुभध्यानप्रतापवान् ॥१०८॥
मर्यादांकुशसंयुक्तो निश्चयानेकपस्थितः । जिनभक्तिमहाशक्तिर्जय दुर्गतिवाहिनीम् ॥१०९॥
इयं हि कुटिला पापा[2] महावेगा सुदुःसहा । बुधेन जीयते जित्वा तामेतां सुखितो भव ॥११०॥
हिमवन्मन्दराद्येषु पर्वतेषु जिनालयान् । पूजयन् वशाया सार्द्धं जम्बूद्वीपं मया चर ॥१११॥
अष्टादशसहस्त्रस्त्रीपाणिपल्लवलालितः । क्रीड मन्दरकुञ्जेषु मन्दाकिन्यास्तटेषु च ॥११२॥
ईप्सितेषु प्रदेशेषु रमणीयेषु सुन्दर । विद्याधरयुगं स्वेच्छं करोति विहृतिं सुखम् ॥११३॥
लब्धवर्ण न युद्धेन किञ्चिदस्ति प्रयोजनम् । प्रसीद कुरु मे वाक्यं सर्वथैव सुखावहम् ॥११४॥
पवेडवद्दुर्जनं निंद्यं परमानर्थकारणम् । जनवादमिमं मुञ्च किं मज्जस्ययशोंबुधौ ॥११५॥
इति प्रसादयन्ती सा बद्धपाण्यब्जकुड्मला । पपात पादयोस्तस्य वांछन्ती परमं हितम् ॥११६॥

हो ॥९९-१०२॥ हे नाथ ! हित करनेमें तत्पर तत्त्वका निरूपण करनेके लिए तब तक आशंका की जाती है जब तक कि निरूपणादि तत्त्वका पूर्ण निश्चय नहीं दिखाई पड़ता है ॥१०३॥ बुद्धिमान् मनुष्यको वह कार्य करना चाहिए जो इस लोक तथा परलोकमें सुखका देनेवाला हो । दुःखरूपी अङ्कुरको उत्पत्तिका कारण तथा निन्दाका स्थान न हो ॥१०४॥ चिरकाल तक भोगे हुए भोगोंसे जो तृप्तिको प्राप्त हुआ हो ऐसा तीन लोकमें भी यदि कोई एक पुरुष हो तो हे पापसे मोहित रावण ! उसका नाम कहो ॥१०५॥ यदि समस्त भोगोंको भोगनेके बाद भी तुम मुनि पदको धारण नहीं कर सकते हो तो कमसे कम गृहस्थ धर्ममें तत्पर होकर भी दुःखका नाश करो ॥१०६॥ हे नाथ ! अणुव्रत रूपी तलवारसे जिसका शरीर देदीप्यमान है, जो नियमरूपी छत्रसे सुशोभित है, जिसने सम्यग्दर्शन रूपी कवच धारण किया है, जो शीलव्रत रूपी पताकासे युक्त है, जिसका शरीर भावनारूपी चन्दनसे आर्द्र है । सम्यग्ज्ञान ही जिसका धनुष है, जो जितेन्द्रियता रूपी बलसे सहित है, शुभध्यान रूपी प्रतापसे युक्त है, मर्यादा रूपी अङ्कुशसे सहित है, जो निश्चय रूपी हाथी पर सवार है, और जिनेन्द्र भक्ति ही जिसकी महाशक्ति है ऐसे होकर तुम दुर्गति रूपी सेनाको जीतो । यथार्थमें यह दुर्गति रूपी सेना अत्यन्त कुटिल, पापरूपिणी, और अत्यन्त दुःसह है सो इसे जीतकर तुम सुखी होओ ॥१०७-११०॥ हिमवत् तथा मेरु आदि पर्वतों पर जो अकृत्रिम जिनालय हैं उनकी मेरे साथ पूजा करते हुए जम्बू द्वीपमें विचरण करो ॥१११॥ अठारह हजार स्त्रियोंके हस्तरूपी पल्लवोंसे लालित होते हुए तुम मन्दरगिरिके निकुञ्जों और गङ्गा नदीके तटों में क्रीड़ा करो ॥११२॥ हे सुन्दर ! विद्याधर दम्पति अपने अभिलषित मनोहर स्थानोंमें इच्छानुसार सुख पूर्वक विहार करते हैं ॥११३॥ हे विद्वन् ! अथवा हे यशस्विन् ! युद्ध से कुछ प्रयोजन नहीं है । प्रसन्न होओ और सब प्रकारसे सुख उत्पन्न करने वाले मेरे वचन अङ्गीकृत करो ॥११४॥ विषके समान दुष्ट, निन्दनीय, तथा परम अनर्थका कारण जो यह लोकापवाद है सो इसे छोड़ो । व्यर्थ ही अपयश रूप सागरमें क्यों डूबते हो ? ॥११५॥ इस प्रकार प्रसन्न करती तथा उसका परम हित चाहती हुई मन्दोदरी हस्तकमल जोड़कर रावणके चरणोंमें गिर पड़ी ॥११६॥

---

१. ननु म० । २. पाप म० ।

विहसन्नथ तामूचे भीतां भयविवर्जितः । उत्थाप्य भीतिमेवं किं गता त्वं कारणं विना ॥११७॥
मत्तोऽस्ति नाधिकः कश्चिद्वरारोहे नरोत्तमः । अलीका भीरुता केयं स्त्रैणादालंब्यते त्वया ॥११८॥
गदितं यत्त्वयाऽन्यस्य पक्षस्योद्भवसूचनम् । नारायण इति स्पष्टं तव देवि निरूप्यते ॥११९॥
नामनारायणाः सन्ति बलदेवाश्च भूरिशः । नामोपलब्धिमात्रेण कार्यसिद्धिः किमिष्यते ॥१२०॥
तिर्यक् कश्चिन्मनुष्यो वा कृतसिद्धाभिधानकः । वाङ्मात्रतः स किं सैद्धं सुखमाप्नोति कातरे ॥१२१॥
रथनूपुरधामेशो यथेन्द्रोऽनिन्द्रतां मया । नीतस्तथेममीक्षस्व त्वमनारायणं कृतम् ॥१२२॥
इत्यूर्जितमुदाहृत्य प्रतिशत्रुः प्रतापवान् । स्वप्रभापटलच्छन्नशरीरः परमेश्वरः ॥१२३॥
क्रीडागृहमुपाविशन्मन्दोदर्या समन्वितः । श्रियेव सहितः शक्रो यथा कालाश्रितक्रियः ॥१२४॥
सायाह्नसमये तावत्सन्ध्यानिर्गतमण्डलः । सविता संहरत्यंशून्कषायानिव संयतः ॥१२५॥
सन्ध्यावलिविदष्टौष्टपुरुसंरंभलोहितः । निर्भर्त्सयन्निव दिनं गतः क्वापि दिवाकरः ॥१२६॥
बद्धपद्माञ्जलिपुटा नलिन्योऽस्तं गतं रविम् । विरुतैश्चक्रवाकानां दीनमाकारयन्निव ॥१२७॥
अनुमार्गेण च प्राप्ता ग्रहनक्षत्रवाहिनी । विक्षेपेणेव सरितुं मृगांकेन विसर्जिता ॥१२८॥
प्रदोषे तत्र संवृत्ते दीपिकारत्नदीपिते[1] । प्रभाभिर्नगरी लङ्का रेजे मेरोः शिखा यथा ॥१२९॥

अथानन्तर निर्भय रावण ने हँसते हुए उस भयभीत मन्दोदरीको उठाकर कहा कि तू इस तरह कारणके बिना ही भय को क्यों प्राप्त हो रही है ? ।।११७।। हे सुन्दरि ! मुझसे बढ़कर कोई दूसरा उत्तम मनुष्य नहीं है । तू स्त्रीपनाके कारण इस किस मिथ्या भीरुताका आलम्बन ले रही है ? अर्थात् स्त्री होनेके कारण व्यर्थ ही क्यों भयभीत हो रही है ? ॥११८।। 'वे नारायण हैं' इस प्रकार दूसरे पक्षके अभ्युदयको सूचित करनेवाली जो बात तूने कही है सो हे देवि ! तुझे स्पष्ट बात बताऊँ कि नारायण और बलदेव इस नामको धारण करनेवाले पुरुष बहुतसे हैं क्या नामकी उपलब्धिमात्रसे कार्यकी सिद्धि हो जाती है ॥११९–१२०।। हे भीरु ! यदि किसी तिर्यञ्च या मनुष्यका सिद्ध नाम रख लिया जाय तो क्या नाममात्रसे वह सिद्ध सम्बन्धी सुखको प्राप्त हो सकता है ? ।।१२१॥ जिस प्रकार रथनूपुर नगरके अधिपति इन्द्रको मैंने अनिन्द्रपना प्राप्त करा दिया था उसी प्रकार तुम देखना कि मैंने इस नारायणको अनारायण बना दिया है ।।१२२।। इस प्रकार अपनी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था तथा जिसकी क्रियाएँ यमराजके आश्रित थीं ऐसा प्रतापी परमेश्वर रावण, अपनी सबलताका निरूपण कर मन्दोदरीके साथ क्रीड़ा गृहमें उस तरह प्रविष्ट हुआ जिस तरह कि लक्ष्मीके साथ इन्द्र प्रवेश करता है ।।१२३–१२४।।

अथानन्तर सायंकालका समय आया तो संन्ध्याके कारण जिसका मण्डल अस्तोन्मुख हो गया था ऐसे सूर्यने किरणोंको उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि मुनि अपनी कषायोंको संकोच लेता है ।।१२५।। सूर्य लाल-लाल होकर अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो संन्ध्यावलि रूप ओष्ठ जिसमें डसा जा रहा था ऐसे बहुत भारी क्रोधसे लाल-लाल हो दिनको डाँट दिखाता हुआ कहीं चला गया था ।।१२६॥ कमलिनियोंके कमल बन्द हो गये थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमल रूपी अंजलिको बाँधने वाली कमलिनियाँ चक्रवाक पक्षियोंके शब्दके द्वारा अस्त हुए सूर्यको दीनता पूर्वक बुला ही रही थीं ।।१२७।। सूर्यके अस्त होते ही उसी मार्गसे ग्रह और नक्षत्रोंकी सेना आ पहुँची सो ऐसी जान पड़ती थी मानो चन्द्रमाने उसे स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमनेके लिए छोड़ ही दिया था—उसे आज्ञा ही दे रक्खी थी ।।१२८।। तदनन्तर दीपिका रूपी रत्नोंसे प्रकाशित प्रदोष कालके प्रकट होने पर प्रभासे जगमगाती हुई लंका मेरुकी शिखाके

---

१. दीपिता म० ।

प्रियं प्रणयिनी काचिदालिङ्ग्योचे सवेपथुः । अप्येकां शर्वरीमेतां मानयामि त्वया सह ॥१३०॥
उद्गमद्यूथिकाऽऽमोदमधुमत्ता विघूर्णिता । पर्यस्ता काचिदंशाङ्के पुष्पवृष्टिः सुकोमला ॥१३१॥
अब्जतुल्यक्रमा काचित् पीवरोरुपयोधरा । वपुष्मती वपुष्मन्तं दयिता दयितं ययौ ॥१३२॥
जग्राह भूषणं काचित्स्वभावेनैव सुन्दरी । कुर्वन्ती हेमरत्नानां चारुभावा कृतार्थताम् ॥१३३॥
सुविद्याधरयुग्मानि प्रचिक्रीडुर्यथेप्सितम् । भवने भवने भान्ति[1] सदृशं भोगभूमिषु ॥१३४॥
गीतानङ्गमवालापैर्वीणावंशादिनिःस्वनैः । जल्पतीव तदा लङ्का मुदिता क्षणदाऽऽगमे ॥१३५॥
ताम्बूलगन्धमाल्याद्यैरुपभोगैः सुरोपमैः । पिबन्तो मदिरामन्ये रमन्ते दयितान्विताः ॥१३६॥
काचित्स्ववदनं दृष्ट्वा चषकप्रतिबिम्बितम् । ईर्ष्ययेन्दीवरेणेशं प्राप्ता मदमताडयत् ॥१३७॥
मदिरायां परिन्यस्तं नारीभिर्मुखसौरभम् । लोचनेषु निजो रागस्तासां मदिरया कृतः ॥१३८॥
तदेव वस्तु संसर्गाद्धत्ते परमचारुताम् । तथाहि दयितापीतशेषं स्वाद्वभवन्मधु ॥१३९॥
मदिरापतितां काश्चिदात्मीयां लोचनद्युतिम् । गृह्णन्तीन्दीवरप्रीत्या कान्तेन हसिता चिरम् ॥१४०॥
अप्रौढापि सती काचिच्छनकैः पायिता सुराम् । जगाम प्रौढतां बाला मन्मथोचितवस्तुनि ॥१४१॥
लज्जासखीमपाकृत्य तासामत्यन्तमीप्सितम् । कृतं कादम्बरीसख्या प्रियेषु क्रीडितं परम् ॥१४२॥
घूर्णमानेक्षणं भूयः [4]कलस्खलितजल्पितम् । चेष्टितं विकटं स्त्रीणां पुंसां जातं मनोहरम् ॥१४३॥

समान सुशोभित हो उठी ॥१२९॥ उस समय कोई स्त्री पतिका आलिङ्गन कर काँपती हुई बोली कि तुम्हारे साथ यह एक रात तो आनन्दसे बिता लूँ कल जो होगा सो होगा ॥१३०॥ जिसकी चोटीमें गुँथी हुई जुहीकी मालासे सुगन्धि निकल रही थी तथा जो मधुके नशामें मत्त हो झूम रही थी ऐसी कोई एक स्त्री पतिकी गोदमें उस तरह लोट गई मानो अत्यन्त कोमल पुष्प वृष्टि ही बिखेर दी गई हो ॥१३१॥ जिसके चरण कमलके समान थे तथा जिसकी जाँघें और स्तन अत्यन्त स्थूल थे ऐसी सुन्दर शरीरकी धारक कोई स्त्री सुन्दर शरीरके धारक वल्लभके पास गई हो ॥१३२॥ जो स्वभावसे ही सुन्दरी थी तथा सुन्दर हाव-भावको धारण करनेवाली थी ऐसी किसी स्त्रीने सुवर्ण और रत्नोंको कृत-कृत्य करनेके लिए ही मानो उसने आभूषण धारण किये थे ॥१३३॥ विद्याधर और विद्याधरियोंके युगल इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे थे और वे घर-घरमें ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भोगभूमियोंमें ही हों ॥१३४॥ संगीतके कामोत्तेजक आलापों और वीणा बाँसुरी आदिके शब्दोंसे उस समय लंका ऐसी जान पड़ती थी मानो रात्रिका आगमन होने पर हर्षित हो वार्तालाप ही कर रही हो ॥१३५॥ कितने ही अन्य लोग ताम्बूल गन्धमाला आदि देवोपम उपभोगोंसे मदिरा पीते हुए अपनी वल्लभाओंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥१३६॥ नशामें निमग्न हुई कोई एक स्त्री मदिराके प्यालेमें प्रतिबिम्बित अपना ही मुख देख ईर्ष्यावश नील-कमलसे पतिको पीट रही थी ॥१३७॥ स्त्रियोंने मदिरामें अपने मुखकी सुगन्धि छोड़ी थी और मदिराने उसके बदले स्त्रियोंके नेत्रोंमें अपनी लालिमा छोड़ रक्खी थी ॥१३८॥ वही वस्तु इष्ट-जनोंके संसर्गसे परम सुन्दरताको धारण करने लगती है इसी लिए तो स्त्रीके पीनेसे शेष रहा मधु स्वादिष्ट हो गया था ॥१३९॥ कोई एक स्त्री मदिरामें पड़ी हुई अपने नेत्रोंकी कान्तिको नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी सो पतिने उसकी चिरकाल तक हँसी की ॥१४०॥ कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि धीरे-धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गई कि वह कामके योग्य कार्यमें प्रौढ़ताको प्राप्त हो गई अर्थात् प्रौढ़ा स्त्रीके समान कामभोगके योग्य हो गई ॥१४१॥ उस मदिरारूपी सखीने लज्जारूपी सखीको दूर कर उन स्त्रियोंको पतियोंके विषयमें ऐसी क्रीड़ा कराई जो उन्हें अत्यन्त इष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिराके कारण लज्जा छोड़ पतियोंके साथ इच्छानुकूल क्रीड़ा करने लगीं ॥१४२॥ जिसमें नेत्र घूम रहे थे तथा बार-बार मधुर अधकटे

१. भाति ज० । २. इवालापै- म० । ३. पीतं रोष म० । ४. कलै स्खलित म० ।

दम्पती मधु वाञ्छन्तौ पीतशेषं परस्परम् । चक्रतुः प्रसृतोल्लापौ चषकस्य गतागतम् ॥१४४॥
[1]चषके विगतप्रीतिः कान्तामालिङ्ग्य सुन्दरः । गण्डूषमदिरां कश्चित्पपौ मुकुलितेक्षणः ॥१४५॥
आसीद्विद्रुमकल्पानां किञ्चित्स्फुरणसेविनाम् । मधुक्षालितरागाणामधराणां परा द्युतिः ॥१४६॥
[2]दन्ताधरेक्षणच्छायासंसर्गिचषके मधु । [3]शुक्लारुणासिताम्भोजयुक्तं सर इवाभवत् ॥१४७॥
गोपनीयानद[4]र्शयन्त प्रदेशान् सुरया स्त्रियः । वाक्यान्यभाषणीयान्यभाषन्त च गतत्रपाः ॥१४८॥
चन्द्रोदयेन मधुना यौवनेन च भूमिकाम् । आरूढो मदनस्तेषां तासां चात्यन्तमुन्नताम् ॥१४९॥
कृतक्षतं ससीत्कारं गृहीतौष्ठं[5] समाकुलम् । सुरतं भावियुद्धस्य मङ्गलग्रहणायितम् ॥१५०॥
एषोऽपि रक्षसामिन्द्रश्चारुचेष्टितसङ्गतः । सममानयदुग्रश्रीरन्तःपुरमशेषतः ॥१५१॥
मुहुर्मुहुः समालिङ्ग्य स्नेहान्मन्दोदरी विभोः । अपश्यद्वदनं तृप्तिमगच्छन्ती सुलोचना ॥१५२॥
इतः समरसंवृत्तात्परिप्राप्तजयस्य ते । आगतस्य सदा कान्त करिष्याम्यवगूहनम् ॥१५३॥
मोक्ष्यामि क्षणमप्येकं न त्वां भूयो मनोहर । लतेव बाहुबलिनं सर्वाङ्गकृतसङ्गतिः ॥१५४॥
वदन्त्यामेवमेतस्यां प्रेमकातरचेतसि । रुतं [6]ताम्रशिखश्चक्रे समाप्तिं च निशा गता ॥१५५॥
नक्षत्रदीधितिभ्रंशे प्राप्ते संध्यारुणागमे । गीतध्वनिरभूद्रम्यो भवने भवनेऽर्हताम् ॥१५६॥

शब्दोंका उच्चारण हो रहा था ऐसी स्त्रियों और पुरुषोंकी मनको हरण करनेवाली विकट चेष्टा होने लगी ॥१४३॥ पीते-पीते जो मदिरा शेष बच रही थी उसे भी दम्पती पी लेना चाहते थे इसलिए 'तुम पियो तुम पियो' इस प्रकार जोरसे शब्द करते हुए प्यालेको एक दूसरेकी ओर बढ़ा रहे थे ॥१४४॥ किसी सुन्दर पुरुषकी प्रीति प्यालेमें समाप्त हो गई थी इसलिए वह वल्लभाका आलिङ्गनकर नेत्र बन्द करता हुआ उसके मुखके भीतर स्थित कुरलेकी मदिराका पान कर रहा था ॥१४५॥ जो मूँगाके समान थे, जो कुछ-कुछ फड़क रहे थे तथा मदिराके द्वारा जिनकी कृत्रिम लाली धुल गई थी ऐसे अधरोष्ठोंकी अत्यधिक शोभा बढ़ रही थी ॥१४६॥ दाँत, ओष्ठ और नेत्रों की कान्तिसे युक्त प्यालेमें जो मधु रक्खा था वह सफेद लाल और नील कमलोंसे युक्त सरोवरके समान जान पड़ता था ॥१४७॥ उस समय मदिराके कारण जिनकी लज्जा दूर हो गई थी ऐसी स्त्रियाँ अपने गुप्त प्रदेशोंको दिखा रही थीं तथा जिनका उच्चारण नहीं करना चाहिये ऐसे शब्दोंका उच्चारण कर रही थीं ॥१४८॥ चन्द्रोदय, मदिरा और यौवनके कारण उस समय उन स्त्री-पुरुषोंका काम अत्यन्त उन्नत अवस्थाको प्राप्त हो चुका था ॥१४९॥ जिसमें नखक्षत किये गये थे, जो सीत्कारसे सहित था, जिसमें ओष्ठ डँशा गया था तथा जो आकुलतासे युक्त था ऐसा स्त्री-पुरुषोंका संभोग आगे होनेवाले युद्धका मानो मङ्गलाचार ही था ॥१५०॥ इधर सुन्दर चेष्टासे युक्त रावणने भी समस्त अन्तःपुरको एक साथ उत्तम शोभा प्राप्त कराई अर्थात् अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोंको प्रसन्न किया ॥१५१॥ उत्तम नेत्रोंसे युक्त मन्दोदरी बार-बार आलिङ्गनकर बड़े स्नेहसे पतिका मुख देखती थी तो भी तृप्त नहीं होती थी ॥१५२॥ वह कह रही थी कि हे कान्त ! जब तुम विजयी हो यहाँ लौटकर आओगे तब मैं सदा तुम्हारा आलिङ्गन करूँगी ॥१५३॥ हे मनोहर ! मैं तुम्हें एक क्षणके लिए भी न छोड़ूँगी और जिस प्रकार लताएँ बाहुबली स्वामीके समस्त शरीरमें समा गई थीं उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे समस्त शरीरमें समा जाऊँगी ॥१५४॥ इधर प्रेमसे कातर चित्तको धारण करनेवाली मन्दोदरी इस प्रकार कह रही थी उधर मुर्गा बोलने लगा और रात्रि समाप्त हो गई ॥१५५॥

अथानन्तर नक्षत्रोंकी कान्तिको नष्ट करनेवाली सन्ध्याकी लाली आकाशमें आ पहुँची

१. चषकेऽपि गत- म० । २. दन्ताधरक्षणच्छाया- म० । ३. शुक्लारुपासित म० । ४. नदर्शन्त म० । ५. गृहीत्वौष्ठं म० । ६. कुक्कुटः ।

कालाग्निमण्डलाकारो रश्मिभिश्छादयन् दिशः । जगामोदयसम्बन्धं भास्करो लोकलोचनः ॥१५७॥
प्रभातसमये देव्यो व्यग्राः कृच्छ्रेण सान्त्विताः । दयितेन मनस्यूहुः किं किमित्यतिदुःसहम् ॥१५८॥
गम्भीरास्ताडिता भेर्यः शङ्खशब्दपुरःसराः । रावणस्याऽऽज्ञया युद्धसंज्ञादानविचक्षणाः ॥१५९॥
परस्परमहंकारं वहन्तः परमोद्धताः । प्रहृष्टा निर्ययुर्योधा वयुग्द्विपरथस्थिताः ॥१६०॥
असिचापगदाकुन्तभासुराटोपसङ्कटाः । प्रचलच्चामरच्छत्रच्छायामण्डलशोभिनः ॥१६१॥
आशुकारसमुद्युक्ताः सुराकाराः प्रतापिनः । विद्याधराधिपा योद्धुं निर्ययुः प्रवरर्द्धयः ॥१६२॥
तत्र पङ्कजनेत्राणां कारुण्यं पुरयोषिताम् । निरीक्ष्य दुर्जनस्यापि चित्तमासीत्सुदुःखितम् ॥१६३॥
निर्गतो दयितां कश्चिदनुव्रज्यापरायणाम् । अयि मुग्धे निवर्त्तस्व व्रजामि संख्ये[1] सत्यवाक् ॥१६४॥
उष्णीषं भो गृहाणेति व्याजादभिमुखं प्रियम् । चक्रे काचिन्मृगीनेत्रा वक्त्रदर्शनलालसा ॥१६५॥
दृष्टिगोचरतोऽतीते प्रिये काचिद्वराङ्गना । पतन्ती सह बाष्पेण सखीभिर्मूर्च्छिता वृता ॥१६६॥
निवृत्य काचिदाश्रित्य शयनीयस्य पट्टिकाम् । तस्थौ मौनमुपादाय पुस्तोपम[2]शरीरिका ॥१६७॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः शूरः कश्चिदणुव्रती । पृष्ठतो वीक्ष्यते पत्न्या पुरश्चिद्दशकन्यया ॥१६८॥
पूर्वं [3]पूर्णेन्दुवत्सौम्या बभूवुस्तुमुलागमे । शूराः कवचितोरस्काः कृतान्ताकारभासुराः ॥१६९॥
चतुरङ्गेन सैन्येन चापच्छत्रादिसंकुलः । संप्राप्तस्तत्र मारीचो नैगमे चीवतेजसा ॥१७०॥
असौ विमलचन्द्रश्च धनुष्मान् विमलाम्बुदः । सुनन्दानन्दनन्दाद्याः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७१॥

और अरहन्त भगवान्‌के मन्दिर-मन्दिरमें संगीतका मधुर शब्द होने लगा ॥१५६॥ प्रलयकालीन अग्निसमूहके समान जिसका आकार था ऐसा लोकलोचन सूर्य, किरणोंसे दिशाओंको आच्छादित करता हुआ उदयाचलके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ ॥१५७॥ प्रातःकालके समय पति जिन्हें बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना दे रहा था ऐसी स्त्रियाँ व्यग्र होती हुई मनमें न जाने क्या-क्या दुःसह विचार धारण कर रही थीं ॥१५८॥ तदनन्तर रावणकी आज्ञासे युद्धका संकेत देनेमें निपुण शङ्ख फूँके गये और गम्भीर भेरियाँ बजाई गई ॥१५९॥ जो परस्पर अहंकार धारण कर रहे थे तथा अत्यन्त उद्धत थे ऐसे योद्धा घोड़े हाथी और रथोंपर सवार हो हर्षित होते हुए बाहर निकले ॥१६०॥ जो खड्ग, धनुष, गदा, भाले आदि चमकते हुए शस्त्र समूहको धारण कर रहे थे, जो हिलते हुए चमर और छत्रोंकी छायासे सुशोभित थे, जो शीघ्रता करनेमें तत्पर थे, देवोंके समान थे और अतिशय प्रतापी थे ऐसे विद्याधर राजा बड़े ठाट-बाटसे युद्ध करनेके लिए निकले ॥१०१-१६२॥ उस समय निरन्तर रुदन करनेसे जिनके नेत्र कमलके समान लाल हो गये थे ऐसी नगरकी स्त्रियोंकी दीनदशा देख दुष्ट पुरुषका भी चित्त अत्यन्त दुःखी हो उठता था ॥१६३॥ कोई एक योद्धा पीछे-पीछे आनेवाली स्त्रीसे यह कहकर कि 'अरी पगली ! लौट जा मैं सचमुच ही युद्धमें जा रहा हूँ' बाहर निकल आया ॥१६४॥ किसी मृगनयनी स्त्रीको पतिका मुख देखनेकी लालसा थी इसलिए उसने इस बहाने कि अरे शिरका टोप तो लेते जाओ, पतिको अपने सम्मुख किया था ॥१६५॥ जब पति दृष्टिके ओझल हो गया तब अश्रुओंके साथ-साथ कोई स्त्री मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़ी और सखियोंने उसे घेर लिया ॥१६६॥ कोई एक स्त्री वापिस लौट, शय्याकी पाटी पकड़, मौन लेकर मिट्टीकी पुतलीकी तरह चुपचाप बैठ गई ॥१६७॥ कोई एक शूरवीर सम्यग्दृष्टि तथा अणुव्रतोंका धारक था इसलिए उसे पीछेसे तो उसकी पत्नी देख रही थी और आगेसे देवकन्या देख रही थी ॥१६८॥ जो योद्धा पहले पूर्ण चन्द्रके समान सौम्य थे वे ही युद्ध उपस्थित होनेपर कवच धारण कर यमराजके समान दमकने लगे ॥१६९॥ जो धनुष तथा छत्र आदिसे सहित था ऐसा मारीच चतुरङ्गिणी सेना ले बड़े तेजके साथ नगरके बाहर आया ॥१७०॥ धनुषको धारण करनेवाले विमलचन्द्र, विमलमेघ, सुनन्द, आनन्द तथा नन्दको आदि

१. सुखमित्यवाक् म० । २. प्रस्तोपम म० । ३. कर्णेन्दु म० ।

विद्याविनिर्मितैर्दिव्यै रथैर्हुतवहप्रभैः । रेजुरग्निकुमाराभा भासयन्तो दशो दिश ॥१७२॥
केचिद्दीप्तास्त्रसम्पूर्णैर्हिमवत्संनिभैरिभैः । ककुभश्छादयन्ति स्म सविद्युद्भिरिवाम्बुदैः ॥१७३॥
केचिद्वरतुरंगौघैर्दशार्धायुध[1]सङ्कटाः । सहसा ज्योतिषां चक्रं चूर्णयन्तीव वेगिनः ॥१७४॥
बृहद्विविधवादित्रैर्हयानां हेषितैस्तथा । गजानां गर्जितारावैः पदात्याकारितैरपि ॥१७५॥
योधानां सिंहनादैश्च जयशब्दैश्च बन्दिनाम् । गीतैः कुशीलवानां च समुत्साहनकोविदैः ॥१७६॥
इत्यन्यैश्च महानादैरेकीभूतैः समंततः । विननर्देव गगनं युगान्तजलदाकुलम् ॥१७७॥

रुचिरावृत्तम्

अनेशिनोऽश्वरथपदातिसंकुलाः परस्परातिशयविभूतिभासुराः ।
बृहद्भुजाः कवचिततुंगवक्षसस्तडित्प्रभाः प्रववृतिरे जयैषिणः ॥१७८॥
पदातयोऽपि हि करवालचञ्चलाः पुरो ययुः प्रभुपरितोषणैषिणः ।
समैश्च तैर्विविधसमूहिभिः कृतं निरर्गलं गगनतलं दिशस्तथा ॥१७९॥
इति स्थिते विगतभवाभिसञ्चिते शुभाशुभे त्रिभुवनभाजि कर्मणि ।
जनः करोत्यतिबहुधानुचेष्टितं न तं क्षमो रविरपि कर्तुमन्यथा ॥१८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे उद्योगाभिधानं नाम त्रिसप्ततितमं पर्व ॥७३॥

लेकर सैकड़ों हजारों योद्धा युद्धस्थलमें आये सो वे विद्या निर्मित, अग्निके समान देदीप्यमान रथोंसे दशों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो अग्निकुमार देव ही हों ॥१७१-१७२॥ कितने ही सुभट देदीप्यमान शस्त्रोंसे युक्त तथा हिमालयके समान भारी-भारी हाथियोंसे दिशाओंको इस प्रकार आच्छादित कर रहे थे मानो बिजली सहित मेघोंसे ही आच्छादित कर रहे हों ॥१७३॥ पाँचों प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त कितने ही वेगशाली सुभट उत्तम घोड़ोंके समूहसे ऐसे जान पड़ते थे मानो नक्षत्र मण्डलको सहसा चूर-चूर ही कर रहे हों ॥१७४॥ नाना प्रकारके बड़े-बड़े वादित्रों, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंकी गर्जना, पैदल सैनिकोंके बुलानेके शब्द, योद्धाओंकी सिंहनाद, चारणोंकी जयजय ध्वनि, नटोंके गीत तथा उत्साह बढ़ाने में निपुण अन्य प्रकारके महाशब्द सब ओरसे मिलकर एक हो रहे थे इसलिए उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश प्रलयकालीन मेघोंसे व्याप्त हो दुःखसे चिल्ला ही रहा हो ॥१७५-१७७॥ उस समय जो घोड़े रथ तथा पैदल सैनिकोंसे युक्त थे, जो परस्पर—एक दूसरेसे बढ़ी-चढ़ी विभूतिसे देदीप्यमान थे, जिनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं तथा जिन्होंने अपने उन्नत वक्षःस्थलोंपर कवच धारण कर रक्खे थे ऐसे विजयके अभिलाषी अनेक राजा बिजलीके समान जान पड़ते थे ॥१७८॥ जिनके हाथोंमें तलवारें लपलपा रही थीं तथा जो स्वामीके संतोषकी इच्छा कर रहे थे ऐसे पैदल सैनिक भी उन राजाओंके आगे-आगे जा रहे थे, विविध झुण्डोंको धारण करनेवाले उन सब सैनिकोंसे आकाश तथा दिशाएँ ठसाठस भर गई थीं ॥१७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार पिछले पूर्वभवोंमें संचित त्रिभुवन सम्बन्धी, शुभ-अशुभ कर्मके विद्यमान रहते हुए यह प्राणी यद्यपि नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता है तथापि सूर्य भी उसे अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं है ॥१८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें युद्धके उद्योगका वर्णन करने वाला तेहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७३॥

---

१. युत म० ।

चतुःसप्ततितमं पर्व

विधिक्रमेण पूर्वेण सादरो मुदमुद्वहन् । आपृच्छत त्रिकूटेशो दयितामित्यपि प्रियाम् ॥१॥
[1]को जानाति प्रिये भूयो दर्शनं चारुदर्शने । महाप्रतिभये युद्धे[2] किं भवेन्न भवेदिति ॥२॥
ऊचुस्तं दयिता नाथ नन्द नन्द रिपूञ्जय । द्रक्ष्यामः सर्वथा भूयः संख्यतस्त्वां समागतम् ॥३॥
इत्युक्तो दयितानेत्रसहस्रैरभिवीक्षितः । निर्जगाम बहिर्नाथो रक्षसां विकटप्रभः[3] ॥४॥
अपश्यच्च शरद्भानुभास्वरं बहुरूपया । विद्यया कृतनिर्माणमैन्द्रं नाम महारथम् ॥५॥
युक्तं दन्तिसहस्रेण प्रावृषेण्यघनत्विषा । प्रभापरिकरं मेरुं जिगीषन्तमिव स्थितम् ॥६॥
मत्तास्ते करिणो गण्डप्रगलद्दाननिर्झराः । सितपीतचतुर्दंष्ट्राः शङ्खचामरशोभिनः ॥७॥
मुक्तादामसमाकीर्णा महाघण्टानिनादिताः । ऐरावतसमा नानाधातुरागविभूषिताः ॥८॥
दुर्दान्ता विनयाधानभूमयो घनगर्जिताः[4] । विरेजुः कालमेघौघसन्निभाश्चारुविभ्रमाः ॥९॥
मनोहराभकेयूरविदष्टभुजमस्तकः । तमसौ रथमारूढः शुनासीरसमद्युतिः ॥१०॥
विशालनयनस्तत्र स्थितो निरुपमाकृतिः । ओजसा सकलं लोकमग्रसिष्टेव[5] रावणः ॥११॥
सहस्रैर्दशभिः स्वस्य सदृशैः खेचराधिपैः । वियद्वल्लभनाथाद्यैः स्वहितैः कृतमण्डलः ॥१२॥
महाबलैः [6]सुरच्छायैरभिप्रायानुवेदिभिः । क्रुद्धः सुग्रीववैदेहौ प्रत्यभीयाय रावणः ॥१३॥

अथानन्तर पूर्वकृत पुण्योदयसे हर्षको धारण करता हुआ रावण आदरके साथ अपनी प्रिय स्त्री मन्दोदरीसे इस प्रकार पूछता है कि हे प्रिये ! चारुदर्शने ! महा भयकारी युद्ध होना है अतः कौन जाने फिर तुम्हारा दर्शन हो या न हो ॥१-२॥ यह सुन सब स्त्रियोंने कहा कि हे नाथ ! सदा वृद्धिको प्राप्त होओ, शत्रुओंको जीतो। तुम्हें हम सब शीघ्र ही युद्धसे लौटा हुआ देखेंगी ॥३॥ ऐसा कहकर जिसे हजारों स्त्रियाँ अपने नेत्रोंसे देख रही थीं तथा जिसकी प्रभा अत्यन्त विशाल थी ऐसा राक्षसोंका राजा रावण नगरके बाहर निकला ॥४॥ बाहर निकलते ही उसने बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित तथा शरद् ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान ऐन्द्र नामका महारथ देखा ॥५॥ वह महारथ वर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले एक हजार हाथियोंसे जुता था, कान्तिके मण्डलसे सहित था, ऐसा जान पड़ता था मानो मेरु पर्वतको ही जीतना चाहता हो ॥६॥ उसमें जुते हुए हाथी मदोन्मत्त थे, इनके गण्डस्थलोंसे झरने झर रहे थे, उनके सफेद पीले रंगके चार चार खड़े दाँत थे, वे शङ्खों तथा चमरोंसे सुशोभित थे, मोतियोंकी मालाओंसे युक्त थे, उनके गलेमें बँधे बड़े-बड़े घण्टा शब्द कर रहे थे, वे ऐरावत हाथीके समान थे, नाना धातुओंके रंगसे सुशोभित थे, उनका जीतना अशक्य था, वे विनयकी भूमि थे, मेघोंके समान गर्जनासे युक्त थे, कृष्ण मेघोंके समूहके समान थे तथा सुन्दर विभ्रमको धारण करते हुए शोभायमान थे ॥७-९॥ जिसकी भुजाके अग्रभागपर मनोहर बाजूबन्द बँधा हुआ था तथा जिसकी कान्ति इन्द्रके समान थी, ऐसा रावण उस विद्या निर्मित रथपर आरूढ हुआ ॥१०॥ विशाल नयन तथा अनुपम आकृतिको धारण करनेवाला रावण उस रथपर आरूढ हुआ अपने तेजसे मानो समस्त लोकको ग्रस ही रहा था ॥११॥ जो अपने समान थे, अपना हित करनेवाले थे, महा बलवान् थे, देवोंके समान कान्तिसे युक्त थे और अभिप्रायको जाननेवाले थे ऐसे गगन-वल्लभनगरके स्वामीको आदि लेकर दश हजार विद्याधर राजाओंसे घिरा रावण सुग्रीव और

---

१. का जानाति म० । २. युद्धतः । ३. विकटप्रभुः म० । ४. घनवर्जिताः म० । ५. -मग्रसष्टेव म०,ज० ।
६. सुदच्छाये -(?) म० ।

दृष्ट्वा दक्षिणतोऽत्यन्तभीमनिःस्वानकारिणः । मल्लुका गगने गृध्रा भ्रमन्ति छन्नभास्कराः ॥१४॥
जानन्तोऽपि निमित्तानि कथयन्ति महाक्षयम् । शौर्यमानोत्कटाः क्रुद्धा ययुरेव महानराः ॥१५॥
पद्माभोऽपि स्वसैन्यस्थः पर्यपृच्छत् सविस्मयः । भो भो मध्येयमेतस्या नगर्यास्तेजसा ज्वलन् ॥१६॥
जाम्बूनदमयैः कूटैः सुविशालैरलङ्कृतः । सतडिन्मेघसंघातच्छायः किंनामको गिरिः ॥१७॥
पृच्छ्यतेऽस्मै सुषेणाद्या सम्मोहं समुपागताः । न शेकुः सहसा वक्तुमपृच्छच्च स तान्मुहुः ॥१८॥
ब्रूत किं नामधेयोऽयं गिरिरत्र निरीक्ष्यते । अगदञ्जाम्बवाद्यास्तमथो वेपथुमन्थराः ॥१९॥
दृश्यते [1]पद्मनाभायं रथोऽयं बहुरूपया । विद्यया कल्पितोऽस्माकं [2]मृत्युसंज्वरकोविदः ॥२०॥
किष्किन्धराजपुत्रेण योऽसौ गत्वाभिरोषतः । रावणोऽवस्थितः सोऽत्र महामायामयोदयः ॥२१॥
श्रुत्वा तद्वचनं तेषां लक्ष्मणः सारथिं जगौ । रथं समानय क्षिप्रमित्युक्तः स तथाऽकरोत् ॥२२॥
ततः क्षुब्धार्णवस्वाना भीमा भेर्यः समाहताः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्रा शोषवादित्रसङ्गताः ॥२३॥
श्रुत्वा तं निनदं हृष्टा भटा विकटचेष्टिताः । सन्नद्धा बद्धतूणीरा लक्ष्मणस्यान्तिके स्थिताः ॥२४॥
मा भैर्षादयिते तिष्ठ निवर्तस्व शुचं त्यज । अहं लङ्केश्वरं जित्वा प्रत्येम्यद्य तवान्तिकम् ॥२५॥
इति गर्वोत्कटा वीरा समाश्वास्य वराङ्गनाः । अन्तःपुरात् सुसन्नद्धा विनिर्जग्मुर्यथायथम् ॥२६॥
परस्परप्रतिस्पर्द्धावेगचोदितवाहनाः । रथादिभिर्ययुर्योधाः शस्त्रावेक्षणचञ्चलाः ॥२७॥
रथं महेभसंयुक्तं गम्भीरोदारनिस्वनम् । भूतस्वनः समारूढो विरेजे खेचराधिपः ॥२८॥

भामण्डलको देख कुपित होता हुआ उनके सन्मुख गया। रावणकी दक्षिण दिशामें भालू अत्यन्त भयङ्कर शब्द कर रहे थे और आकाशमें सूर्यको आच्छादित करते हुए गीध मँडरा रहे थे ॥१२–१४॥ शूरवीरताके अहंकारसे भरे महासुभट यद्यपि यह जानते थे कि ये अपशकुन मरणको सूचित कर रहे हैं तथापि वे कुपित हो आगे बढ़े जाते थे ॥१५॥

अपनी सेनाके मध्यमें स्थित रामने भी आश्चर्य चकित हो सैनिकोंसे पूछा कि हे भद्र-पुरुषो! इस नगरीके बीचमें तेजसे देदीप्यमान, सुवर्णमयी बड़े-बड़े शिखरोंसे अलंकृत, तथा बिजलीसे सहित मेघ समूहके समान कान्तिको धारण करनेवाला यह कौन सा पर्वत है? ॥१६–१७॥ सुषेण आदि विद्याधर स्वयं भ्रान्तिमें पड़ गये इसलिए वे पूछनेवाले रामके लिए सहसा उत्तर देनेके लिए समर्थ नहीं हो सके। फिर भी राम उनसे बार बार पूछे जा रहे थे कि कहो यह यहाँ कौन सा पर्वत दिखाई दे रहा है? तदनन्तर भयसे काँपते हुए जाम्बव आदिने धीमे स्वरमें कहा कि हे राम! यह बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित वह रथ है जो हम लोगोंको कालज्वर उत्पन्न करनेमें निपुण है ॥१८–२०॥ सुग्रीवके पुत्र अङ्गदने जाकर जिसे कुपित किया था ऐसा वह महामायामय अभ्युदयको धारण करनेवाला रावण इस पर सवार है ॥२१॥ जाम्बव आदिके उक्त वचन सुन लक्ष्मणने सारथिसे कहा कि शीघ्र ही रथ लाओ। सुनते ही सारथिने आज्ञा पालन किया अर्थात् रथ लाकर उपस्थित कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिनके शब्द क्षुभित समुद्रके शब्दके समान थे, जिनके शब्दोंके साथ करोड़ों शङ्खोंके शब्द मिल रहे थे ऐसी भयंकर भेरियाँ बजाई गईं ॥२३॥ उस शब्दको सुनकर विकट चेष्टाओंके धारक योद्धा, कवच पहिन तथा तरकस बाँध लक्ष्मणके पास आ खड़े हुए ॥२४॥ 'हे प्रिये! डर मत, यहीं ठहर, लौट जा, शोक तज, मैं लङ्केश्वरको जीतकर आज ही तेरे समीप वापिस आ जाऊँगा' इस प्रकार गर्वीले वीर, अपनी उत्तम स्त्रियोंको सान्त्वना दे कवच आदिसे तैयार हो यथायोग्य रीतिसे बाहर निकले ॥२५–२६॥ जो परस्परकी प्रतिस्पर्धा वश वेगसे अपने वाहनोंको प्रेरित कर रहे थे, तथा जो शस्त्रोंकी ओर देख देख कर चञ्चल हो रहे थे ऐसे योधा रथ आदि वाहनोंपर आरूढ हो चले ॥२७॥ महागज

१. पद्मनागोऽयं म० । २. मृत्युः स ज्वरकोविदः म० ।

तेनैव विधिनाऽन्येऽपि विद्याधरजनाधिपाः । सहर्षाः प्रस्थिता योद्धुं क्रुद्धा लङ्केश्वरं प्रति ॥२९॥
तं प्रति प्रसृता वीराः क्षुब्धाम्भोधिसमाकृतिम् । संघट्टं परमं प्रापुर्गङ्गातुङ्गोर्मिसंनिभाः ॥३०॥
ततः [1]सितयशोव्याप्तभुवनौ परमाकृती । स्वावासतो विनिष्क्रान्तौ युद्धार्थौ रामलक्ष्मणौ ॥३१॥
रथे सिंहयुते चारौ सन्नद्धकवचो बली । नवोदित इवादित्यः पद्मनाभो व्यराजत ॥३२॥
गारुडं रथमारूढो वैनतेयमहाध्वजः । समुन्नताम्बुदच्छायश्छायाश्यामलिताम्बरः ॥३३॥
मुकुटी कुण्डली धन्वी कवची सायकी कृणी । [2]सन्ध्यासक्ताञ्जनागाभः सुमित्राजो व्यराजत ॥३४॥
महाविद्याधराश्चान्ये भालङ्कारपुरःसुराः । योद्धुं श्रेणिक निर्याता नानायानविमानगाः ॥३५॥
गमने शकुनास्तेषां कृतकोमलनिस्वनाः । आनन्दयन् यथापूर्वमिष्टदेशनिवेशिनः ॥३६॥
तेषामभिमुखः क्रुद्धो महाबलसमन्वितः । प्रययौ रावणो वेगी महादावसमाकृतिः ॥३७॥
गन्धर्वाप्सरसस्तेषां बलद्वितयवर्तिनाम् । नभःस्थिता नृवीराणां पुष्पाणि मुमुचुर्मुहुः ॥३८॥
पादातैः परितौ गुप्ता निपुणाधोरणेरिताः । अञ्जनाद्रिसमाकाराः प्रसस्रुर्मत्तदन्तिनः ॥३९॥
दिवाकररथाकारा रथाः प्रचलवाजिनः । युक्ताः सारथिभिः सान्द्रनादाः परमरंहसः ॥४०॥
ववल्गुः परमं हृष्टाः समुल्लासितहेतयः । पदातयो रणक्षोण्यां सगर्वा बद्धमण्डलाः ॥४१॥

से जुते तथा गम्भीर और उदार शब्द करनेवाले रथ पर सवार हुआ विद्याधरोंका राजा भूतस्वन अलग ही सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ इसी विधिसे दूसरे विद्याधर राजाओंने भी हर्षके साथ क्रुद्ध हो युद्ध करनेके लिए लङ्केश्वरके प्रति प्रस्थान किया ॥२९॥ क्षुभित समुद्रके समान आकृति को धारण करनेवाले रावणके प्रति बड़े वेगसे दौड़ते हुए योद्धा, गङ्गानदीकी बड़ी ऊँची तरङ्गोंकी भाँति अत्यधिक धक्काधूमीको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥

तदनन्तर जिन्होंने धवल यशसे संसारको व्याप्त कर रक्खा था तथा जो उत्तम आकृति को धारण करनेवाले थे ऐसे राम लक्ष्मण युद्धके लिए अपने निवास स्थानसे बाहर निकले ॥३१॥ जो गरुड़के रथपर आरूढ़ थे, जिनकी ध्वजामें गरुड़का चिह्न था, जिनके शरीरकी कान्ति उन्नत मेघके समान थी, जिन्होंने अपनी कान्तिसे आकाशको श्याम कर दिया था, जो मुकुट, कुण्डल, धनुष, कवच, बाण और तरकससे युक्त थे, तथा जो सन्ध्याकी लालीसे युक्त अञ्जनगिरिके समान आभाके धारक थे ऐसे लक्ष्मण अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥३२–३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कान्तिरूपी अलंकारोंसे सुशोभित तथा नाना प्रकारके यान और विमानोंसे गमन करनेवाले अनेक बड़े-बड़े विद्याधर भी युद्ध करनेके लिए निकले ॥३५॥ जब राम लक्ष्मणका गमन हुआ तब पहलेकी भाँति इष्ट स्थानोंपर बैठकर कोमल शब्द करनेवाले पक्षियोंने उन्हें आनन्दयुक्त किया ॥३६॥

अथानन्तर क्रोधसे युक्त, महाबलसे सहित, वेगवान् एवं महादावानलके समान प्रचण्ड आकृतिको धारण करनेवाला रावण उनके सामने चला ॥३७॥ आकाशमें स्थित गन्धर्वों और अप्सराओंने दोनों सेनाओंमें रहनेवाले सुभटोंके ऊपर बार-बार फूलोंकी वर्षा की ॥३८॥ पैदल सैनिकोंके समूह जिनकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे, चतुर महावत जिन्हें चला रहे थे तथा जो अञ्जनगिरिके समान विशाल आकारसे युक्त थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी मद झरा रहे थे ॥३९॥ सूर्यके रथके समान जिनके आकार थे, जिनमें चञ्चल घोड़े जुते हुए थे, जो सारथियोंसे सहित थे, जिनसे विशाल शब्द निकल रहा था तथा जो तीव्र वेगसे सहित थे ऐसे रथ आगे बढ़े जा रहे थे ॥४०॥ जो अत्यधिक हर्षसे युक्त थे, जिनके शस्त्र चमक रहे थे, तथा जिन्होंने अपने झुण्डके झुण्ड बना रक्खे थे ऐसे गर्वीले पैदल सैनिक रणभूमिमें उछलते जा रहे थे ॥४१॥

१. शैत–म० । २. संध्यासक्तां जनांगाभसुमित्राजो म० ।

स्थूरीपृष्ठसमारूढाः खड्गर्ष्टिप्रासपाणयः । खेटकाच्छादितोरस्काः संख्यक्ष्मां विविशुर्भटाः ॥४२॥
आस्तृणंत्यभिधावन्ति स्पर्द्धन्ते निर्जयन्ति च । जीयन्ते घ्नन्ति हन्यन्ते कुर्वन्ति भटगर्जितम् ॥४३॥
तुरगाः क्वचिदुद्दीप्ता भ्रमन्त्याकुलमूर्त्तयः । कचमुष्टिगदायुद्धं प्रवृत्तं गहनं क्वचित् ॥४४॥
केचित्खड्गक्षतोरस्काः केचिद्विशिखताडिताः । केचित्कुंताहताः शत्रुं ताडयन्ति पुनस्तथा ॥४५॥
सततं लालितैः केचिदभीष्टार्थानुसेवनैः । इन्द्रियैः परिमुच्यन्ते कुमित्रैरिव भूमिगाः ॥४६॥
गलदन्त्रचयाः केचिदनाहृत्योरुवेदनाम् । पतन्ति शत्रुणा सार्धं दन्तनिष्पीडिताधराः ॥४७॥
प्रासादशिखरे देवकुमारप्रतिमौजसः । प्रचिक्रीडुर्महाभोगा ये कान्तातनुलालिताः ॥४८॥
ते चक्रकनकच्छिन्नाः संग्रामक्षितिशायिनः । भक्ष्यन्ते विकृताकारा गृध्रगोमायुपंक्तिभिः ॥४९॥
नखक्षतकृताकूता कामिनीव शिवा भटम् । वहन्ती सङ्गमप्रीतिं प्रसुप्तमुपसर्पति ॥५०॥
स्फुरणेन पुनर्ज्ञात्वा जीवतीति ससम्भ्रमा । निवर्तते यथा भीता डाकिनी मन्त्रवादिनः ॥५१॥
शूरं विज्ञाय जीवन्तं बिभ्यती विहगी शनैः । दुष्टनारीव साशङ्का चलनेत्रापसर्पति ॥५२॥
शुभाशुभा च जन्तूनां प्रकृतिस्तत्र लक्ष्यते । प्रत्यक्षादविशिष्टैव भंगेन विजयेन च ॥५३॥
केचित् सुकृतसामर्थ्याद्विजयन्ते बहून्यपि । कृतपापाः प्रपद्यन्ते बहवोऽपि पराजयम् ॥५४॥
मिश्रितं मत्सरेणापि तयोर्यैरर्जितं पुरा । ते जयन्ति विजीयन्ते तत्र प्रलयमागते ॥५५॥

जो घोड़ोंके पीठपर सवार थे, हाथोंमें तलवार बरछी तथा भाले लिये हुए थे और कवचसे जिनके वक्षःस्थल आच्छादित थे ऐसे योद्धाओंने रणभूमिमें प्रवेश किया ॥४२॥ वे योद्धा परस्पर एक दूसरेको आच्छादित कर लेते थे, एक दूसरेके सामने दौड़ते थे, एक दूसरेसे स्पर्धा करते थे, एक दूसरेको जीतते थे, उनसे जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीरगर्जना करते थे ॥४३॥ कहीं व्यग्रमुद्राके धारक तेजस्वी घोड़े घूम रहे थे तो कहीं केश मुट्ठी और गदाका भयंकर युद्ध हो रहा था ॥४४॥ कितने ही वीरोंके वक्षःस्थलमें तलवारसे घाव हो गये थे, कोई बाणोंसे घायल हो गये थे और कोई भालोंकी चोट खाये हुए थे तथा बदला चुकानेके लिए वे वीर भी शत्रुओंको उसी प्रकार ताड़ित कर रहे थे ॥४५॥ अभीष्ट पदार्थोंके सेवनसे जिन्हें निरन्तर लालित किया था ऐसी इन्द्रियाँ कितने ही सुभटोंको इस प्रकार छोड़ रही थीं, जिस प्रकार कि खोटे मित्र काम निकलनेपर छोड़ देते हैं ॥४६॥ जिनकी आँतोंका समूह बाहर निकल आया था ऐसे कितने ही सुभट अपनी बहुत भारी वेदनाको प्रकट नहीं कर रहे थे किन्तु उसे छिपाकर दाँतोंसे ओठ काटते हुए शत्रुपर प्रहार करते थे और उसीके साथ नीचे गिरते थे ॥४७॥ देवकुमारोंके समान तेजस्वी, महाभोगोंके भोगनेवाले और स्त्रियोंके शरीरसे लड़ाये हुए जो सुभट पहले महलोंके शिखरोंपर क्रीड़ा करते थे वे ही उस समय चक्र तथा कनक आदि शस्त्रोंसे खण्डित हो रणभूमिमें सो रहे थे, उनके शरीर विकृत हो गये थे तथा गीध और शियारोंके समूह उन्हें खा रहे थे ॥४८-४९॥ जिस प्रकार समागमकी इच्छा रखनेवाली स्त्री, नख क्षत देनेके अभिप्रायसे सोते हुए पतिके पास पहुँचती है उसी प्रकार नाखूनोंसे लोंचका अभिप्राय रखनेवाली शृगाली रणभूमिमें पड़े हुए किसी सुभटके पास पहुँच रही थी ॥५०॥ पास पहुँचनेपर उसके हलन-चलनको देख जब शृगालीको यह जान पड़ा कि यह तो जीवित है तब वह हड़बड़ाती हुई डरकर इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि मन्त्रवादीके पाससे डाकिनी भागती है ॥५१॥ कोई एक पक्षिणी किसी शूरवीरको जीवित जानकर भयभीत हो धीरे-धीरे इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि कोई व्यभिचारिणी पतिको जीवित जान शंकासे युक्त हो नेत्र चलाती हुई भाग जाती है ॥५२॥ युद्धभूमिमें किसीकी पराजय होती थी और किसीकी हार। इससे जीवोंके शुभ अशुभ कर्मोंका उदय वहाँ समान रूपसे प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा था ॥५३॥ कितने ही सुभट पुण्य कर्मके सामर्थ्यसे अनेक शत्रुओंपर विजय प्राप्त करते थे और पूर्वभवमें पाप करनेवाले बहुतसे योद्धा पराजयको प्राप्त हो रहे थे ॥५४॥ जिन्होंने पूर्वपर्यायमें मत्सर भावसे पुण्य और

धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् । धर्मः सञ्जायते पक्षः धर्मः पश्यति सर्वतः ॥५६॥
रथैरश्वयुतैर्दिव्यैरिभैर्भूधरसन्निभैः । अश्वैः पवनरंहोभिर्भृत्यैरसुरभासुरैः ॥५७॥
न शक्यो रक्षितुं [1]पूर्वसुकृतेनोज्झितो नरः । एको विजयते शत्रुं पुण्येन परिपालितः ॥५८॥
एवं संवति संवृत्ते प्रवीरभटसङ्कटे । योधा व्यवहिता योधैरवकाशं न लेभिरे ॥५९॥
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च भटैरायुधभासुरैः । उत्पातघनसंछन्नमिव जातं नभस्तलम् ॥६०॥
मारीचचन्द्रनिकरवज्राक्षशुकसारणैः । अन्यैश्च राक्षसाधीशैर्बलमुत्सारितं द्विषाम् ॥६१॥
श्रीशैलेन्दुमरीचिभ्यां नीलेन कुमुदेन च । तथा भूतस्वनाद्यैश्च विध्वस्तं रक्षसां बलम् ॥६२॥
कुन्दः कुम्भो निकुम्भश्च विक्रमः क्रमणस्तथा । श्रीजम्बुमालिवीरश्च सूर्यारो मकरध्वजः ॥६३॥
तथाऽशनिरथाद्याश्च राक्षसीया महानृपाः । उत्थिता वेगिनो योधास्तेषां साधारणोद्यताः ॥६४॥
भूधराचलसम्मेदविकालकुटिलाङ्गदाः । सुषेणकालचक्रोर्मितरङ्गाद्याः कपिध्वजाः ॥६५॥
तेषामभिमुखीभूता निजसाधारणोद्यताः । नालक्ष्यत भटः कश्चित्तदा प्रतिभटोज्झितः ॥६६॥
अञ्जनायाः सुतस्तस्मिन्नारुह्य द्विपयोजितम् । रथं क्रीडति पद्माढ्ये सरसीव महागजः ॥६७॥
तेन श्रेणिक शूरेण रक्षसां सुमहद्बलम् । कृतमुन्मत्तकीभूतं यथारुचितकारिणा ॥६८॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रोधसङ्गदूषितलोचनः । प्राप्तो मयमहादैत्यः प्रजहार मरुत्सुतम् ॥६९॥
उद्धृत्य विशिखं सोऽपि पुण्डरीकनिभेक्षणः । शरवृष्टिभिरुग्राभिरकरोद्विरथं मयम् ॥७०॥

पाप दोनोंका मिश्रित रूपसे संचय किया था वे युद्धभूमिमें दूसरोंको जीतते थे और मृत्यु निकट आनेपर दूसरोंके द्वारा जीते भी जाते थे ॥५५॥ इससे जान पड़ता है कि धर्म ही मर्मस्थानोंकी रक्षा करता है, धर्म ही दुर्जेय शत्रुको जीतता है, धर्म ही सहायक होता है और धर्म ही सब ओरसे देख-रेख रखता है ॥५६॥ जो मनुष्य पूर्वभवके पुण्यसे रहित है। उसकी घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य रथ, पर्वतके समान हाथी, पवनके समान वेगशाली घोड़े और असुरोंके समान देदीप्यमान पैदल सैनिक भी रक्षा नहीं कर सकते और जो पूर्वपुण्यसे रक्षित है वह अकेला ही शत्रुको जीत लेता है ॥५७–५८॥ इस प्रकार प्रचण्ड बलशाली योद्धाओंसे परिपूर्ण युद्धके होनेपर योद्धा, दूसरे योद्धाओंसे इतने पिछल जाते थे कि उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता था ॥५९॥ शस्त्रोंसे चमकते हुए कितने ही योद्धा ऊपरको उछल रहे थे और कितने ही मर-मर कर नीचे गिर रहे थे उनसे आकाश ऐसा हो गया था मानो उत्पातके मेघोंसे ही घिर गया हो ॥६०॥

अथानन्तर मारीच, चन्द्रनिकर, वज्राक्ष, शुक, सारण तथा अन्य राक्षस राजाओंने शत्रुओं की सेनाको पीछे हटा दिया ॥६१॥ तब हनूमान्, चन्द्ररश्मि, नील, कुमुद तथा भूतस्वन आदि वानरवंशीय राजाओंने राक्षसोंकी सेनाको नष्ट कर दिया ॥६२॥ तत्पश्चात् कुन्द, कुम्भ, निकुम्भ, विक्रम, श्रीजम्बूमाली, सूर्यार, मकरध्वज तथा वज्ररथ आदि राक्षस पक्ष के बड़े-बड़े राजा तथा वेगशाली योद्धा उन्हें सहायता देनेके लिए खड़े हुए ॥६३–६४॥ तदनन्तर भूधर, अचल, संमेद, विकाल, कुटिल, अंगद, सुषेण, कालचक्र और ऊर्मितरङ्ग आदि वानर पक्षीय योद्धा, अपने पक्षके लोगोंको आलम्बन देनेके लिए उद्यत हो उनके सामने आये। उस समय ऐसा कोई योद्धा नहीं दिखाई देता था जो किसी प्रतिद्वन्दीसे रहित हो ॥६५–६६॥ जिस प्रकार कमलोंसे सहित सरोवरमें महागज क्रीड़ा करता है उसी प्रकार अंजनाका पुत्र हनूमान् हाथियोंसे जुते रथपर सवार हो उस युद्धभूमिमें क्रीड़ा कर रहा था ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इच्छानुसार काम करनेवाले उस एक शूरवीरने राक्षसोंकी बड़ी भारी सेनाको उन्मत्त जैसा कर दिया—उसका होश गायब कर दिया ॥६८॥ इसी बीचमें क्रोधके कारण जिसके नेत्र दूषित हो रहे थे ऐसे महादैत्य मयने आकर हनूमान्पर प्रहार किया ॥६९॥ सो पुण्डरीकके समान नेत्रोंको धारण

---

१. पूर्वं सुकृतेनो म० ।

स रथान्तरमारुह्य पुनर्योद्धुं समुद्यतः । श्रीशैलेन पुनस्तस्य सायकैर्दलितो रथः ॥७१॥
मयं विह्वलमालोक्य विद्यया बहुरूपया । रथं दशमुखः सृष्टं प्रहिणोतिस्म सत्वरम् ॥७२॥
स तं रथं समारुह्य नाम्ना प्रज्वलितोत्तमम् । सम्बाध्य विरथं चक्रे हनूमन्तं महाद्युतिः ॥७३॥
धावमानां समालोक्य वानरध्वजिनीं भटाः । जगुः प्राप्तमिदं नाम कृतात्यन्तविपर्ययम् ॥७४॥
[1]वार्ति व्यस्त्रकृतं दृष्ट्वा वैदेहः समधावत । कृतो विस्यन्दनः सोऽपि मयेन शरवर्षिणा ॥७५॥
ततः किष्किन्धराजोऽस्य कुपितोऽवस्थितः पुरः । निरस्त्रोऽसावपि क्षोणीं तेन दैत्येन लम्भितः ॥७६॥
ततो मयं पुरश्चक्रे सुसंरब्धो विभीषणः । तयोरभूत् परं युद्धमन्योन्यशरताडितम् ॥७७॥
विभिन्नकवचं दृष्ट्वा कैकसीनन्दनं ततः । रक्ताशोकद्रुमच्छायं प्रसक्तरुधिरस्रुतिम् ॥७८॥
निरीक्ष्योन्मत्तभूतं च परित्रस्तं पराङ्मुखम् । कपिध्वजबलं शीर्णं रामो योद्धुं समुद्यतः ॥७९॥
विद्याकेसरियुक्तं च रथमारुह्य सत्वरम् । मा भैषीरिति सस्वानो दधाव विहितस्मितः ॥८०॥
सतडित्प्रावृडम्भोदघनसङ्घसन्निभम् । विवेश परसैन्यं स बालार्कप्रतिमद्युतिः ॥८१॥
तस्मिन् परबलध्वंसं नरेन्द्रे कर्तुमुद्यते । वातिवैदेहसुग्रीवकैकसेया धृतिं ययुः ॥८२॥
शाखामृगबलं भूयः कर्तुं युद्धं समुद्यतम् । रामतो बलमासाद्य त्यक्तनिःशेषसाध्वसम् ॥८३॥
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते सुराणां रोमहर्षणे । लोकोऽन्य इव सञ्जातस्तदालोकविवर्जितः ॥८४॥
ततः पद्मो मयं बाणैर्लग्नश्छादयितुं भृशम् । स्वल्पेनैव प्रयासेन वज्रीव चमरासुरम् ॥८५॥
मयं विह्वलितं दृष्ट्वा नितान्तं रामसायकैः । दधाव रावणः क्रुद्धः कृतान्त इव तेजसा ॥८६॥

करनेवाले हनूमान् ने भी बाण निकालकर तीक्ष्ण बाणवर्षासे मयको रथरहित कर दिया ॥७१॥ मयको विह्वल देख रावणने शीघ्र ही बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित रथ उसके पास भेजा ॥७२॥ महाकान्तिके धारक मयने प्रज्वलितोत्तम नामक उस रथपर आरूढ़ हो हनूमान्‌के साथ युद्ध कर उसे रथरहित कर दिया ॥७२-७३॥ तब वानरोंकी सेना भाग खड़ी हुई। उसे भागती देख रावण पक्षके सुभट कहने लगे कि इसने जैसा किया ठीक उसके विपरीत फल प्राप्त कर लिया अर्थात् करनीका फल इसे प्राप्त हो गया ॥७४॥ तदनन्तर हनूमान्‌को शस्त्ररहित देख भामण्डल दौड़ा सो बाणवर्षा करनेवाले मयने उसे भी रथरहित कर दिया ॥७५॥ तदनन्तर किष्किन्धनगर का राजा सुग्रीव कुपित हो मयके सामने खड़ा हुआ सो मयने उसे भी शस्त्ररहित कर पृथिवीपर पहुँचा दिया ॥७६॥ तत्पश्चात् क्रोधसे भरे विभीषणने मयको आगे किया सो दोनोंमें परस्पर एक दूसरेके बाणोंको काटनेवाला महायुद्ध हुआ ॥७७॥ युद्ध करते-करते विभीषणका कवच टूट गया जिससे रुधिरकी धारा बहने लगी और वह फूले हुए अशोक वृक्षके समान लाल दिखने लगा ॥७८॥ सो विभीषणको ऐसा देख तथा वानरोंकी सेनाको विह्वल, भयभीत पराङ्मुख और बिखरी हुई देखकर राम युद्धके लिए उद्यत हुए ॥७९॥ वे विद्यामयी सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो 'डरो मत' यह शब्द करते तथा मुसकराते हुए शीघ्र ही दौड़े ॥८०॥ रावणकी सेना बिजली सहित वर्षाकालीन मेघोंकी सघन घटाके समान थी और राम प्रातःकालके सूर्यके समान कान्तिके धारक थे सो इन्होंने रावणकी सेनामें प्रवेश किया ॥८१॥ जब राम, शत्रु सेनाका संहार करनेके लिए उद्यत हुए तब हनूमान् भामण्डल, सुग्रीव और विभीषण भी धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ रामसे बल पाकर जिसका समस्त भय छूट गया था ऐसी वानरोंकी सेना पुनः युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुई ॥८३॥ उस समय देवोंके रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाले शस्त्रोंकी वर्षा होनेपर लोकमें अन्धकार छा गया और वह ऐसा लगने लगा मानो दूसरा ही लोक हो ॥८४॥ तदनन्तर राम, थोड़े ही प्रयाससे मयको बाणोंसे आच्छादित करनेके लिए उस तरह अत्यधिक तल्लीन हो गये जिस तरह कि चमरेन्द्रको बाणाच्छादित करनेके लिए इन्द्र तल्लीन हुआ था ॥८५॥ तदनन्तर रामके

---

१. हनुमन्तम् ।

अथ लक्ष्मणवीरेण भाषितः परमौजसा । प्रस्थितः क्व मया दृष्टो भवानद्यापि भो खग ॥८७॥
तिष्ठ तिष्ठ रणं यच्छ क्षुद्र तस्कर पापक । परस्त्रीदीपशलभ पुरुषाधम दुष्क्रिय ॥८८॥
अद्य प्रकारणं तत्ते करोमि कृतसाहसम् । कुर्यान्नवापि यत्क्रुद्धः कृतान्तोऽपि कुमानसः ॥८९॥
अयं राघवदेवोऽद्य समस्तवसुधापतिः । चौरस्य ते वधं कर्तुं समादिशति धर्मधीः ॥९०॥
अवोचल्लक्ष्मणं कोपी विंशत्यर्धाननस्ततः । मूढ ते किं न विज्ञातं लोके प्रख्यातमीदृशम् ॥९१॥
यच्चारु भूतले सारं किञ्चिद्‌द्रव्यं सुखावहम् । अर्होमि तदहं राजा तच्चापि मयि शोभते ॥९२॥
न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते । तदत्र का कथाद्यापि योग्यद्रव्यसमागमे ॥९३॥
त्वया मानुषमात्रेण यत्किंचनविलापिना । विधातुमसमानेन युद्धं दीनेन लज्ज्यते[1] ॥९४॥
विप्रलब्धस्तथाप्येतैर्युद्धं चेत्कर्तुमर्हसि । प्रव्यक्तं काललब्धोऽसि निर्वेदी वासि जीविते ॥९५॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचद्वेद्मि त्वं यादृशः प्रभुः । अद्य ते गर्जितं पाप हरामि किमिहोदितैः ॥९६॥
इत्युक्तो रावणो बाणैः [2]सुवाणैः कैकेयीसुतम् । प्रावृषेण्यघनाकारो गिरिकल्पं निरुद्धवान् ॥९७॥
वज्रदण्डैः शरैस्तस्य विशल्यारमणः शरान् । अदृष्टचापसम्बन्धैरन्तराले न्यवारयत् ॥९८॥
छिन्नैर्विपाटितैः क्षोदं गतैश्च विशिखोत्करैः । द्यौश्च भूमिश्च सञ्जाता विवेकपरिवर्जिता ॥९९॥
कैकयीसूनुना व्यस्त्रः कैकसीनन्दनः कृतः । माहेन्द्रमस्त्रमुत्सृष्टं चकार गगनासनम् ॥१००॥

बाणोंसे मयको विह्वल देख तेजसे यमकी तुलना करनेवाला रावण कुपित हो दौड़ा ॥८६॥ तब परम प्रतापी वीर लक्ष्मणने उससे कहा कि ओ विद्याधर ! कहाँ जा रहे हो ? मैं आज तुम्हें देख पाया हूँ ॥८७॥ रे क्षुद्र ! चोर ! पापी ! परस्त्रीरूपी दीपकपर मर मिटनेवाले शलभ ! नीच पुरुष ! दुश्चेष्ट ! खड़ा रह खड़ा रह मुझसे युद्धकर ॥८८॥ आज साहसपूर्वक तेरी वह दशा करता हूँ जिसे कुपित दुष्ट यम भी नहीं करेगा ? ॥८९॥ यह भी राघव देव समस्त पृथिवीके अधिपति हैं। धर्ममय बुद्धिको धारण करनेवाले इन्होंने तुझ चोरका वध करनेके लिए मुझे आज्ञा दी है ॥९०॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अरे मूर्ख ! क्या तुझे यह ऐसी लोकप्रसिद्ध बात विदित नहीं है कि पृथिवीतलपर जो कुछ सुन्दर श्रेष्ठ और सुखदायक वस्तु है मैं ही उसके योग्य हूँ । यतश्च मैं राजा हूँ अतएव वह मुझमें ही शोभा पाती है अन्यत्र नहीं ॥९१–९२॥ हाथीके योग्य घण्टा कुत्ताके लिए शोभा नहीं देता । इसलिए योग्य द्रव्यका योग्य द्रव्यके साथ समागम हुआ इसकी आज भी क्या चर्चा करनी है ॥९३॥ तू एक साधारण मनुष्य है, चाहे जो बकनेवाला है, मेरी समानता नहीं रखता तथा अत्यन्त दीन है अतः तेरे साथ युद्ध करनेमें यद्यपि मुझे लज्जा आती है ॥९४॥ तथापि इन सबके द्वारा बहकाया जाकर यदि युद्ध करना चाहता है तो स्पष्ट है कि तेरे मरनेका काल आ पहुँचा है अथवा तू अपने जीवनसे मानो उदास हो चुका है ॥९५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि तू जैसा प्रभु है मैं जानता हूँ । अरे पापी ! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? मैं तेरी सब गर्जना अभी हरता हूँ ॥९६॥ इतना कहनेपर रावणने सनसनाते हुए बाणोंसे लक्ष्मणको इस प्रकार रोका जिस प्रकार कि वर्षाऋतुका मेघ किसी पर्वतको आ रोकता है ॥९७॥ इधरसे जिनका वज्रमयी दण्ड था तथा शीघ्रताके कारण जिन्होंने मानो धनुषका सम्बन्ध देखा ही नहीं था ऐसे बाणोंसे लक्ष्मणने उसके बाणोंको बीचमें ही नष्ट कर दिया ॥९८॥ उस समय टूटे-फूटे और चूर-चूर हुए बाणोंके समूहसे आकाश और भूमि भेदरहित हो गई थी ॥९९॥

तदनन्तर जब लक्ष्मणने रावणको शस्त्ररहित कर दिया तब उसने आकाशको व्याप्त करने-

---

१. लज्जते म० । २. स बाणैः म० । सुवाणैः सुशब्दैः इत्यर्थः ।

सम्प्रयुज्य समीरास्त्रमस्त्रक्रमविपश्चिता । सौमित्रिणा परिध्वंसं तन्नीतं क्षणमात्रतः ॥१०१॥
भूयः श्रेणिक संरम्भस्फुरिताननतेजसा । रावणेनास्त्रमाग्नेयं क्षिप्तं ज्वलितसर्वदिक् ॥१०२॥
लक्ष्मीधरेण तच्चापि वारुणास्त्रप्रयोगतः । निर्वापितं निमेषेण स्थितं कार्यविवर्जितम् ॥१०३॥
कैकयेयस्ततः पापमस्त्रं चिक्षेप रक्षसि । रक्षसा तच्च धर्मास्त्रप्रयोगेण निवारितम् ॥१०४॥
ततोऽस्त्रमिंधनं नाम लक्ष्मणेन प्रयुज्यते । इन्धनेनैव तं नीतं रावणेन हतार्थताम् ॥१०५॥
फलासारं विमुञ्चद्भिः प्रसूनपटलान्वितम् । गगनं वृक्षसंघातैरत्यन्तगहनीकृतम् ॥१०६॥
भूयस्तामसबाणौघैरन्धकारीकृताम्बरैः । लक्ष्मीधरकुमारेण छादितो राक्षसाधिपः ॥१०७॥
सहस्रकिरणास्त्रेण तामसास्त्रमपोह्य सः । प्रायुङ्क्त दन्दशूकास्त्रं विस्फुरत्फणमण्डलम् ॥१०८॥
ततस्तार्क्ष्यसमाख्येण लक्ष्मणेन निराकृतम् । पक्षगास्त्रं नभश्चाभूद्धेममासेव पूरितम् ॥१०९॥
संहाराम्बुदनिर्घोषमुरगास्त्रमथो पुनः । पद्मनाभानुजोऽमुञ्चद् विषाग्निकणदुःसहम् ॥११०॥
बर्हणास्त्रेण तद्वीरस्त्रिकूटेन्दुरसारयत् । प्रायोक्षीच्च दुरुत्सारमस्त्रं विघ्नविनायकम्[1] ॥१११॥
विसृष्टे तत्र विघ्नास्त्रे वाञ्छितच्छेदकारिणि । प्रयोगे त्रिदशास्त्राणां लक्ष्मणो मोहमागमत् ॥११२॥
वज्रदण्डान् शरानेव विससर्ज स भूरिशः । रावणोऽपि शरैरेव स्वभावस्थैरयुध्यत ॥११३॥
आकर्णसंहतैर्बाणैरासीद्युद्धं तयोः समम् । लक्ष्मीभृद्रक्षसोर्घोरं त्रिपृष्ठहयकण्ठयोः ॥११४॥

वाला माहेन्द्र शस्त्र छोड़ा ॥१००॥ इधरसे शस्त्रोंका क्रम जाननेमें निपुण लक्ष्मणने पवन बाणका प्रयोगकर उसके उस माहेन्द्र शस्त्रको क्षणभरमें नष्ट कर दिया ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! क्रोधसे जिसके मुखका तेज दमक रहा था ऐसे रावणने फिर आग्नेय बाण चलाया जिससे समस्त दिशाएँ देदीप्यमान हो उठीं ॥१०२॥ इधरसे लक्ष्मणने वारुणास्त्र चलाकर उस आग्नेय बाणको, वह कार्य प्रारम्भ करे कि उसके पूर्व ही निमेष मात्रमें, बुझा दिया ॥१०३॥ तदनन्तर लक्ष्मणने रावणपर पाप नामका शस्त्र छोड़ा सो उधरसे रावणने धर्म नामक शस्त्रके प्रयोगसे उसका निवारण कर दिया ॥१०४॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने इन्धन नामक शस्त्रका प्रयोग किया जिसे रावणने इन्धन नामक शस्त्रसे निरर्थक कर दिया ॥१०५॥ तदनन्तर रावणने फल और फूलोंकी वर्षा करनेवाले वृक्षोंके समूहसे आकाशको अत्यन्त व्याप्त कर दिया ॥१०६॥ तब लक्ष्मणने आकाशको अन्धकार युक्त करनेवाले तामसबाणोंके समूहसे रावणको आच्छादित कर दिया ॥१०७॥ तदनन्तर रावणने सहस्रकिरण अस्त्रके द्वारा तामस अस्त्रको नष्ट कर जिसमें फणोंका समूह उठ रहा था ऐसा दन्दशूक अस्त्र चलाया ॥१०८॥ तत्पश्चात् इधरसे लक्ष्मणने गरुड़बाण चलाकर उस दन्दशूक अस्त्रका निराकरण कर दिया जिससे आकाश ऐसा हो गया मानो स्वर्णकी कान्तिसे ही भर गया हो ॥१०९॥ तदनन्तर लक्ष्मणने प्रलयकालके मेघके समान शब्द करनेवाला तथा विषरूपी अग्निके कणोंसे दुःसह उरगास्त्र छोड़ा ॥११०॥ जिसे धीर वीर रावणने बर्हणास्त्रके प्रयोगसे दूर कर दिया और उसके बदले जिसका दूर करना अशक्य था ऐसा विघ्नविनाशक नामका शस्त्र छोड़ा ॥१११॥ तदनन्तर इच्छित वस्तुओंमें विघ्न डालनेवाले उस विघ्नविनाशक शस्त्रके छोड़नेपर लक्ष्मण देवोपनीत शस्त्रोंके प्रयोग करनेमें मोहको प्राप्त हो गये अर्थात् उसे निवारण करनेके लिए कौन शस्त्र चलाना चाहिये इसका निर्णय नहीं कर सके ॥११२॥ तब वे केवल वज्रमय दण्डोंसे युक्त बाणोंको ही अधिक मात्रामें चलाते रहे और रावण भी उस दशामें स्वाभाविक बाणोंसे ही युद्ध करता रहा ॥११३॥ उस समय लक्ष्मण और रावणके बीच कान तक खिंचे बाणोंसे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ जैसा कि पहले त्रिपृष्ठ और अश्वग्रीवमें हुआ था ॥११४॥

---

१. विघ्नमनायकम् म० ।

उपजातिवृत्तम्

कर्मण्युपेतेऽभ्युदयं पुराणे संप्रेरके सत्यतिदारुणाङ्के ।
तस्योचितं प्राप्तफलं मनुष्याः क्रियापवर्गप्रकृतं भजन्ते ॥११५॥
उदारसंरम्भवशं प्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।
नरा न तीव्रं गणयन्ति शस्त्रं न पावकं नैव रविं न वायुम् ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावण-लक्ष्मणयुद्धवर्णनाभिधानं नाम चतुःसप्ततितमं पर्व ॥७४॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जब प्रेरणा देनेवाले पूर्वोपार्जित पुण्य-पापकर्म उदयको प्राप्त होते हैं तब मनुष्य उन्हींके अनुरूप कार्यको सिद्ध अथवा असिद्ध करनेवाले फलको प्राप्त होते हैं ॥११५॥ जो अत्यधिक क्रोधकी अधीनताको प्राप्त हैं और जिन्होंने अपना चित्त प्रारम्भ किये हुए कार्यकी सिद्धिमें लगा दिया है ऐसे मनुष्य न तीव्र शस्त्रको गिनते हैं, न अग्निको गिनते हैं, न सूर्यको गिनते हैं और न वायुको ही गिनते हैं ॥११६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावण और लक्ष्मणके युद्धका वर्णन करनेवाला चौहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७४॥

पंचसप्ततितमं पर्व

खिन्नाभ्यां दीयते स्वादु जलं ताभ्यां सुशीतलम् । महातर्षाभिभूताभ्यामयं हि समरे विधिः ॥१॥
अमृतोपममन्नं च क्षुधाग्लपनमीयुषोः । गोशीर्षचन्दनं स्वेदसंगिनोर्ह्लादकारणम्[1] ॥२॥
तालवृन्तादिवातश्च हिमवारिकणो रणे । क्रियते तत्परैः कार्यं तथान्यदपि पार्श्वगैः ॥३॥
तथा तयोस्तथाऽन्येषामपि स्वपरवर्गतः । इति कर्तव्यतासिद्धिः सकला प्रतिपद्यते ॥४॥
दशाहोऽतिगतस्तीव्रमेतयोर्युध्यमानयोः । बलिनोर्भङ्गनिर्मुक्तचित्तयोरतिवीर्ययोः ॥५॥
रावणेन समं युद्धं लक्ष्मणस्य बभूव यत् । लक्ष्मणेन समं युद्धं रावणस्य बभूव यत् ॥६॥
यक्षकिन्नरगन्धर्वाप्सरसो विस्मयं गताः । साधुशब्दविमिश्राणि पुष्पवर्षाणि चिक्षिपुः ॥७॥
चन्द्रवर्धननाम्नोऽथ विद्याधरजनप्रभोः । अष्टौ दुहितरो व्योम्नि विमानशिखरस्थिताः ॥८॥
अप्रमत्तैर्महाशंकैः कृत[2]रक्षामहत्तरैः । पृष्टाः संगतिमेताभिरप्सरोभिः कुतूहलात् ॥९॥
का यूयं देवताकारा भक्तिं लक्ष्मणसुन्दरे । दधाना इव वर्तध्वे सुकुमारशरीरिकाः ॥१०॥
सलज्जा इव ता ऊचुः श्रूयतां यदि कौतुकम् । वैदेहीवरणे पूर्वमस्माभिः सहितः पिता ॥११॥
आसीद्गतः तदास्थानं राज्ञां कौतुकचोदितः । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं तत्र ददावस्मै धियैव नः ॥१२॥
ततोऽधिगम्य मात्रातो वृत्तमेतन्निवेदितम् । दर्शनादेव चाऽऽरभ्य मनस्येष व्यवस्थितः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! युद्धकी यह विधि है कि दोनों पक्षके खेदखिन्न तथा महाप्याससे पीड़ित मनुष्योंके लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है। क्षुधासे दुखी मनुष्योंके लिए अमृततुल्य भोजन दिया जाता है। पसीनासे युक्त मनुष्योंके लिए आह्लादका कारण गोशीर्ष चन्दन दिया जाता है। पङ्खे आदिसे हवाकी जाती है। बर्फके जलके छींटे दिये जाते हैं तथा इनके सिवाय जिसके लिए जो कार्य आवश्यक हो उसकी पूर्ति समीपमें रहनेवाले मनुष्य तत्परताके साथ करते हैं। युद्धकी यह विधि जिस प्रकार अपने पक्षके लोगोंके लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्षके लोगोंके लिए भी है। युद्धमें निज और परका भेद नहीं होता। ऐसा करनेसे ही कर्तव्यकी समग्र सिद्धि होती है ॥१-४॥

तदनन्तर जिनके चित्तमें हारका नाम भी नहीं था तथा जो अतिशय बलवान् थे ऐसे प्रचण्ड वीर लक्ष्मण और रावणको युद्ध करते हुए दश दिन बीत गये ॥५॥ लक्ष्मणका जो युद्ध रावणके साथ हुआ था वही युद्ध रावणका लक्ष्मणके साथ हुआ था अर्थात् उनका युद्ध उन्हींके समान था ॥६॥ उनका युद्ध देख यक्ष किन्नर गन्धर्व तथा अप्सराएँ आदि आश्चर्यको प्राप्त हो धन्यवाद देते और उनपर पुष्पवृष्टि छोड़ते थे ॥७॥ तदनन्तर चन्द्रवर्धन नामक विद्याधर राजाकी आठ कन्याएँ आकाशमें विमानकी शिखरपर बैठी थीं ॥८॥ महती आशंकासे युक्त बड़े-बड़े प्रतीहारी सावधान रहकर जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसी उन कन्याओंसे समागमको प्राप्त हुई अप्सराओंने कुतूहलवश पूछा कि आपलोग देवताओंके समान आकारको धारण करनेवालीं तथा सुकुमार शरीरसे युक्त कौन हैं ? ऐसा जान पड़ता है मानो लक्ष्मणमें आपलोग अधिक भक्ति धारण कर रही हैं ॥९-१०॥ तब वे कन्याएँ लज्जित होती हुई बोलीं कि यदि आपको कौतुक है तो सुनिये। पहले जब सीताका स्वयंवर हो रहा था तब हमारे पिता हमलोगोंके साथ कौतुकसे प्रेरित हो सभामण्डपमें गये थे वहाँ लक्ष्मणको देखकर उन्होंने हमलोगोंको उन्हें देनेका संकल्प किया था ॥११-१२॥ वहाँसे आकर यह वृत्तान्त पिताने माताके लिए कहा और

---

१. हृदि म० । २. कृतरक्षमहत्तरैः म० ।

सोऽयं महति संग्रामे वर्तते संशयावहे । भविष्यति कथं त्वेतदिति विद्मो न दुःखिताः ॥१४॥
अस्य मानवचन्द्रस्य हृदयेशस्य या गतिः । लक्ष्मीधरकुमारस्य सैवास्माभिर्विनिश्चिता ॥१५॥
मनोहरस्वनं तासां श्रुत्वा तद्वचनं ततः । चक्षुरूर्ध्वं नियुञ्जानो लक्ष्मणस्ता व्यलोकत ॥१६॥
तद्दर्शनात्परं प्राप्ताः प्रमोदं ताः सुकन्यकाः । सिद्धार्थः सर्वथा नाथ भवेत्युदगिरन् स्वनम् ॥१७॥
सिद्धार्थशब्दनात्तस्मात् स्मृत्वा विहसिताननः । अस्त्रं सिद्धार्थनामानं लक्ष्मणः कृतितां गतः ॥१८॥
स सिद्धार्थमहास्त्रेण क्षिप्रं विघ्नविनायकम् । अस्त्रमस्तगतं कृत्वा सुदीप्तं योद्धुमुद्यतः ॥१९॥
गृह्णाति रावणो यद्यदस्त्रं शस्त्रविशारदः । छिनत्ति लक्ष्मणस्तत्तत्परमास्त्रविशारदः ॥२०॥
ततः पतत्रिसंघातैरस्य पत्रीन्द्रकेतुना । सर्वा दिशः परिच्छन्ना जीमूतैरिव भूभृतः ॥२१॥
ततो भगवतीं विद्यां बहुरूपविधायिनीम् । प्रविश्य रक्षसामीशः समरक्रीडनं श्रितः ॥२२॥
लक्ष्मीधरशरैस्तीक्ष्णैः शिरो लङ्कापुरीप्रभोः । छिन्नं छिन्नमभूद्भूयः श्रीमत्कुण्डलमण्डितम् ॥२३॥
एकस्मिन् शिरसिच्छिन्ने शिरोद्वयमजायत । तयोरुत्कृत्तयोर्वृद्धिं शिरांसि द्विगुणां ययुः ॥२४॥
निकृत्ते बाहुयुग्मे च जाते बाहुचतुष्टयम् । तस्मिन् छिन्ने ययौ वृद्धिं द्विगुणा बाहुसन्ततिः ॥२५॥
सहस्रैरुत्तमाङ्गानां[1] भुजानां चातिभूरिभिः । पद्मखण्डैरगण्यैश्च ज्ञायते रावणो वृतः ॥२६॥
नभःकरिकराकारैः करैः केयूरभूषितैः । शिरोभिश्चाभवत्पूर्णं शस्त्ररत्नांशुपिंजरम् ॥२७॥

उससे हमलोगोंको विदित हुआ । साथ ही स्वयंवरमें जबसे हमलोगोंने इसे देखा था तभीसे यह हमारे मनमें स्थित था ॥१३॥ वही लक्ष्मण इस समय जीवन-मरणके संशयको धारण करनेवाले इस महासंग्राममें विद्यमान है । सो संग्राममें क्या कैसा होगा यह हमलोग नहीं जानतीं इसीलिए दुःखी हो रही हैं ॥१४॥ मनुष्योंमें चन्द्रमाके समान इस हृदयवल्लभ लक्ष्मणकी जो दशा होगी वही हमारी होगी ऐसा हम सबने निश्चित किया है ॥१५॥

तदनन्तर उन कन्याओंके मनोहर वचन सुन लक्ष्मणने ऊपरकी ओर नेत्र उठाकर उन्हें देखा ॥१६॥ लक्ष्मणके देखनेसे वे उत्तम कन्याएँ परम प्रमोदको प्राप्त हो इस प्रकारके शब्द बोलीं कि हे नाथ ! तुम सब प्रकारसे सिद्धार्थ होओ—तुम्हारी भावना सब तरह सिद्ध हो ॥१७॥ उन कन्याओंके मुखसे सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मणको सिद्धार्थ नामक अस्त्रका स्मरण आ गया जिससे उनका मुख खिल उठा तथा वे कृतकृत्यताको प्राप्त हो गये ॥१८॥ फिर क्या था, शीघ्र ही सिद्धार्थ महास्त्रके द्वारा रावणके विघ्नविनाशक अस्त्रको नष्टकर लक्ष्मण बड़ी तेजीसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥१९॥ शस्त्रोंके चलानेमें निपुण रावण जिस-जिस शस्त्रको ग्रहण करता था परमास्त्रोंके चलानेमें निपुण लक्ष्मण उसी-उसी शस्त्रको काट डालता था॥२०॥ तदनन्तर ध्वजामें पक्षिराज—गरुडका चिह्न धारण करनेवाले लक्ष्मणके बाणसमूहसे सब दिशाएँ इस प्रकार व्याप्त हो गईं जिस प्रकार कि मेघोंसे पर्वत व्याप्त हो जाते हैं ॥२१॥

तदनन्तर रावण भगवती बहुरूपिणी विद्यामें प्रवेश कर युद्ध-क्रीड़ा करने लगा ॥२२॥ यही कारण था कि उसका शिर यद्यपि लक्ष्मणके तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था तथापि वह बार-बार देदीप्यमान कुण्डलोंसे सुशोभित हो उठता था॥२३॥एक शिर कटता था तो दो शिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धिको प्राप्त हो जाते थे ॥२४॥ दो भुजाएँ कटती थीं तो चार हो जातीं थीं और चार कटती थीं उससे दूनी हो जाती थीं ॥२५॥ हजारों शिरों और अत्यधिक भुजाओंसे घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो अगणित कमलोंके समूहसे घिरा हो ॥२६॥ हाथीकी सूँडके समान आकारसे युक्त तथा बाजूबन्दसे सुशोभित भुजाओं और शिरोंसे भरा आकाश शस्त्र तथा रत्नोंकी किरणोंसे पिञ्जर वर्ण हो गया ॥२७॥

---

१. शिरसाम् ।

शिरोग्राहसहस्रोग्रस्तुंगबाहुतरंगभृत् । अवर्द्धत महाभीमो राक्षसाधिपसागरः ॥२८॥
बाहुसौदामिनीदण्डप्रचण्डो घोरनिस्वनः । शिरःशिखरसंघातैर्ववृधे रावणाम्बुदः ॥२९॥
बाहुमस्तकसंघट्टनिःस्वनच्छत्रभूषणः । महासैन्यसमानोऽभूदेकोऽपि त्रिककुप्पतिः ॥३०॥
पुराऽनेकेन युद्धोऽहमधुनैकाकिनाऽमुना । युद्धे कथमितीवायं लक्ष्मणेन बहूकृतः ॥३१॥
रत्नशस्त्रांशुसंघातकरजालप्रदीपितः । सञ्जातो राक्षसाधीशो दह्यमानवनोपमः ॥३२॥
चक्रेषुशक्तिकुन्तादिशस्त्रवर्षेण रावणः । [1]सच्छादयितुं बाहुसहस्रैरपि लक्ष्मणम् ॥३३॥
लक्ष्मणोऽपि परं क्रुद्धो विषादपरिवर्जितः । अर्कतुण्डैः शरैः शत्रुं प्रच्छादयितुमुद्यतः ॥३४॥
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि पञ्च षट् दश विंशतिः । शतं सहस्रमयुतं चिच्छेदारिशिरांसि सः ॥३५॥
शिरःसहस्रसंछन्नं पतद्भिः सह बाहुभिः । सोल्कादण्डं पतज्ज्योतिश्चक्रमासीदिवाम्बरम् ॥३६॥
सबाहुमस्तकच्छन्ना रणक्षोणी निरन्तरम् । सनागभोगराजीवखण्डशोभामधारयत् ॥३७॥
समुत्पन्नं समुत्पन्नं शिरोबाहुकदम्बकम् । रक्षसो लक्ष्मणोच्छिन्तकर्मेव मुनिपुङ्गवः ॥३८॥
गलद्रुधिरधाराभिः सन्तताभिः समाकुलम् । वियत्सन्ध्याविनिर्माणं समुद्भूतमिवापरम् ॥३९॥
असंख्यातभुजः शत्रुर्लक्ष्मणेन द्विबाहुना । महानुभावयुक्तेन कृतो निष्फलविग्रहः ॥४०॥
निरुच्छ्वासाननः स्वेदबिन्दुजालचिताननः । [2]सत्त्ववानाकुलस्वांगः संवृत्तो रावणः क्षणम् ॥४१॥
तावच्छ्रेणिक निर्वृत्ते तस्मिन्संख्येऽतिरौरवे । स्वभावावस्थितो भूत्वा रावणः क्रोधदीपितः ॥४२॥

जो शिररूपी हजारों मगरमच्छोंसे भयंकर था तथा भुजाओं रूपी ऊँची-ऊँची तरङ्गोंको धारण करता था ऐसा रावणरूपी महाभयंकर सागर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था ॥२८॥ अथवा जो भुजारूपी विद्युद् दण्डोंसे प्रचण्ड था और भयंकर शब्द कर रहा था ऐसा रावणरूपी मेघ शिररूपी शिखरोंके समूहसे बढ़ता जाता था ॥२९॥ भुजाओं और मस्तकोंके संघटनसे जिसके छत्र तथा आभूषण शब्द कर रहे थे ऐसा रावण एक होने पर भी महासेनाके समान जान पड़ता था ॥३०॥ 'मैंने पहले अनेकोंके साथ युद्ध किया है अब इस अकेलेके साथ क्या करूँ' यह सोच कर ही मानो लक्ष्मणने उसे अनेक रूप कर लिया था ॥३१॥ आभूषणोंके रत्न तथा शस्त्र समूह की किरणोंको देदीप्यमान रावण जलते हुए वनके समान हो गया था ॥३२॥ रावण अपनी हजारों भुजाओंके द्वारा चक्र, बाण, शक्ति तथा भाले आदि शस्त्रोंकी वर्षासे लक्ष्मणको आच्छादित करनेमें लगा था ॥३३॥ और क्रोधसे भरे तथा विषादसे रहित लक्ष्मण भी सूर्यमुखी बाणोंसे शत्रुको आच्छादित करनेमें झुके हुए थे ॥३४॥ उन्होंने शत्रुके एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, दश, बीस, सौ, हजार तथा दश हजार शिर काट डाले ॥३५॥ हजारों शिरोंसे व्याप्त तथा पड़ती हुई भुजाओंसे युक्त आकाश, उस समय ऐसा हो गया था मानो उल्कादण्डोंसे युक्त तथा जिसमें तारा मण्डल गिर रहा है ऐसा हो गया था ॥३६॥ उस समय भुजाओं और मस्तकसे निरन्तर आच्छादित युद्धभूमि सर्पोंके फणासे युक्त कमल समूहकी शोभा धारण कर रही थी ॥३७॥ उसके शिर और भुजाओंका समूह जैसा जैसा उत्पन्न होता जाता था लक्ष्मण वैसा वैसा ही उसे उस प्रकार काटता जाता था जिस प्रकार कि मुनिराज नये नये बँधते हुए कर्मोंको काटते जाते हैं ॥३८॥ निकलते हुए रुधिरकी लम्बी चौड़ी धाराओंसे व्याप्त आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो जिसमें संध्याका निर्माण हुआ है ऐसा दूसरा ही आकाश उत्पन्न हुआ हो ॥३९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, महानुभावसे युक्त द्विबाहु लक्ष्मणने असंख्यात भुजाओंके धारक रावण को निष्फल शरीरका धारक कर दिया ॥४०॥ देखो, पराक्रमी रावण क्षण भरमें क्यासे क्या हो गया ? उसके मुखसे श्वास निकलना बंद हो गया, उसका मुख पसीनाकी बूंदोंके समूहसे व्याप्त हो गया और उसका समस्त शरीर आकुल-व्याकुल हो गया ॥४१॥ हे श्रेणिक ! जब तक वह

१. शक्त म० । २. सत्ववाताकुलस्वाङ्गः म० ।

युगावसानमध्याह्नसहस्रकिरणप्रभम्[1] । परपक्षक्षयक्रीडं[2] चक्ररत्नमचिन्तयत् ॥४३॥
अप्रमेयप्रभाजालं मुक्ताजालपरिष्कृतम् । स्वयंप्रभास्वरं दिव्यं वज्रतुण्डं महाद्भुतम् ॥४४॥
नानारत्नपरीताङ्गं दिव्यमालानुलेपनम् । अग्निप्राकारसङ्काश[3]धारामण्डलदीधिति ॥४५॥
वैडूर्यारसहस्रेण युक्तं दर्शनदुःसहम् । सदा यक्षसहस्रेण कृतरक्षं प्रयत्नतः ॥४६॥
महासंरम्भसंबद्ध[4]कृतान्तानसन्निभम् । चिन्तानन्तरमेतस्य चक्रं सन्निहितं करे ॥४७॥
कृतस्तत्र प्रभास्त्रेण[5] निष्प्रभो ज्योतिषां पतिः । चित्रार्पितरविच्छायमात्रशेषो व्यवस्थितः ॥४८॥
गन्धर्वाऽप्सरसो विश्वावसुतुम्बुरुनारदाः । परित्यज्य रणप्रेक्षां गताः क्वापि विगीतिकाः ॥४९॥
मर्तव्यमिति निश्चित्य तथाप्यत्यन्तधीरधीः । शत्रुं तथाविधं वीक्ष्य पद्मनाभानुजोऽवदत् ॥५०॥
सङ्गतेनामुना किं त्वं स्थितोऽस्येवं[6] कदर्यवत् । शक्तिश्चेदस्ति ते काचित्प्रहरस्व नराधम ॥५१॥
इत्युक्तः परमं क्रुद्धो दन्तदष्टरदच्छदः । मण्डलीकृतविस्फारिप्रभापटललोचनः ॥५२॥
क्षुब्धमेघकुलस्वानं प्रभ्रम्य सुमहाजवम् । चिक्षेप रावणश्चक्रं जनसंशयकारणम् ॥५३॥
दृष्ट्वाऽभिमुखमागच्छत्तदुत्पातार्कसंनिभम् । निवारयितुमुद्युक्तो वज्रास्यैर्लक्ष्मणः शरैः ॥५४॥
वज्रावर्तेन पद्माभो धनुषा वेगशालिना । हलेन [7]चोग्रपोत्रेण भ्रामितेनान्यबाहुना[8] ॥५५॥

अत्यन्त भयंकर युद्ध होता है तब तक क्रोधसे प्रदीप्त रावणने कुछ स्वभावस्थ हो कर उस चक्र रत्नका चिन्तवन किया जो कि प्रलयकालीन मध्याह्नके सूर्यके समान प्रभापूर्ण था तथा शत्रु पक्षका क्षय करनेमें उन्मत्त था ॥४२-४३॥

तदनन्तर-जो अपरिमित कान्तिके समूहका धारक था, मोतियोंकी झालरसे युक्त था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य था, वज्रमय मुखसे सहित था, महा अद्भुत था, नाना रत्नोंसे जिसका शरीर व्याप्त था, दिव्य मालाओं और विलेपनसे सहित था, जिसकी धारोंकी मण्डलाकार किरणें अग्निके कोटके समान जान पड़ती थीं, जो वैडूर्यमणिनिर्मित हजार आरोंसे सहित था, जिसका देखना कठिन था, हजार यक्ष जिसकी सदा प्रयत्न पूर्वक रक्षा करते थे, और जो प्रलय काल सम्बद्ध यमराजके मुखके समान था ऐसा चक्र, चिन्ता करते ही उसके हाथमें आ गया ॥४४-४७॥ उस प्रभापूर्ण दिव्य अस्त्रके द्वारा सूर्य प्रभा हीन कर दिया गया जिससे वह चित्रलिखित सूर्यके समान कान्ति मात्र है शेष जिसमें ऐसा रह गया ॥४८॥ गन्धर्व, अप्सराएं, विश्वावसु, तुम्बुरु, और नारद युद्धका देखना छोड़ गायन भूल कर कहीं चले गये ॥४९॥ 'अब तो मरना ही होगा' ऐसा निश्चय यद्यपि लक्ष्मणने कर लिया था तथापि वे अत्यन्त धीर बुद्धिके धारक हो उस प्रकारके शत्रुकी ओर देख जोरसे बोले कि रे नराधम! इस चक्रको पाकर भी कृपणके समान इस तरह क्यों खड़ा है यदि कोई शक्ति है तो प्रहार कर ॥५०-५१॥ इतना कहते ही जो अत्यन्त कुपित हो गया था, जो दांतोंसे ओठको डश रहा था, तथा जिसके नेत्रोंसे मण्डलाकार विशाल कान्तिका समूह निकल रहा था ऐसे रावणने घुमा कर चक्ररत्न छोड़ा। वह चक्ररत्न क्षोभको प्राप्त हुए मेघमण्डलके समान भयंकर शब्द कर रहा था, महावेगशाली था, और मनुष्योंके संशयका कारण था ॥५२-५३॥

तदनन्तर प्रलय कालके सूर्यके समान सामने आते हुए उस चक्ररत्नको देख कर लक्ष्मण वज्रमुखी बाणोंसे उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५४॥ रामचन्द्रजी एक हाथसे वेगशाली वज्रावर्त नामक धनुषसे और दूसरे हाथ से घुमाये हुए तीक्ष्णमुख हलसे, अत्यधिक क्षोभको धारण करने वाला सुग्रीव गदासे, भामण्डल तीक्ष्ण तलवारसे, विभीषण शत्रुका विघात करने वाले

---

१. किरणप्रभः म०, क० । २. क्षविश् म०, क० । ३. संकाशं धारामण्डलदीधिति म० । ४. संबंध म० । ५. प्रभास्तेन ब०, क० । ६. ऽस्यैवं म० । ७. चोग्रपात्रेण क० । ८. भ्राम्यते नान्यबाहुना म० ।

संभ्रमं परमं बिभ्रत्सुग्रीवो गदया तदा । मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन प्रभामण्डलसुन्दरः ॥५६॥
अरातिप्रतिकूलेन शूलेनासौ विभीषणः । उल्कामुद्गरलांगूलकनकाद्यैर्मरुत्सुतः ॥५७॥
अंगदः परिघेनाङ्गः कुठारेणोरुतेजसा । शेषा अपि तथा शेषैः शस्त्रैः खेचरपुङ्गवाः ॥५८॥
एकीभूय समुद्युक्ता अपि जीवितनिःस्पृहाः । ते निवारयितुं शेकुर्न तत्त्रिदशपालितम् ॥५९॥
तेनाऽऽगत्य परीत्य त्रिर्विनयस्थित[2]रक्षकम् । सुखं शान्तवपुः स्वैरं लक्ष्मणस्य करे स्थितम्[3] ॥६०॥

उपजातिवृत्तम्

माहात्म्यमेतत्सुसमासतस्ते निवेदितं कर्तृ सुविस्मयस्य ।
रामस्य नारायणसङ्गतस्य महर्द्धिकं श्रेणिक ! लोकतुङ्गम् ॥६१॥
एकस्य पुण्योदयकालभाजः सञ्जायते नुः[4] परमा विभूतिः ।
पुण्यक्षयेऽन्यस्य विनाशयोगश्चन्द्रोऽभ्युदेत्येति रविर्यथाऽस्तम् ॥६२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे चक्ररत्नोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमं पर्व ॥७५॥

त्रिशूलसे, हनूमान् उल्का, मुद्गर, लाङ्गूल तथा कनक आदिसे, अङ्गद परिघसे, अङ्ग अत्यन्त तीक्ष्ण कुठारसे और अन्य विद्याधर राजा भी शेष अस्त्र-शस्त्रोंसे एक साथ मिल कर जीवनकी आशा छोड़ उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए पर वे सब मिलकर भी इन्द्रके द्वारा रक्षित उस चक्ररत्नको रोकनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥५४–५६॥ इधर रामकी सेनामें व्यग्रता बढ़ी जा रही थी पर भाग्य की बात देखो कि उसने आकर लक्ष्मणकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, उसके सब रक्षक विनयसे खड़े हो गये, उसका आकार सुखकारी तथा शान्त हो गया और वह स्वेच्छासे लक्ष्मणके हाथमें आकर रुक गया ॥६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैंने तुझे राम-लक्ष्मणका यह अत्यन्त आश्चर्यको करने वाला महा विभूतिसे सम्पन्न एवं लोकश्रेष्ठ माहात्म्य संक्षेपसे कहा है ॥६१॥ पुण्योदयके कालको प्राप्त हुए एक मनुष्यके परम विभूति प्रकट होती है तो पुण्यका क्षय होने पर दूसरे मनुष्यके विनाशका योग उपस्थित होता है । जिस प्रकार कि चन्द्रमा उदित होता है और सूर्य अस्तको प्राप्त होता है ॥६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके चक्ररत्नकी उत्पत्तिका वर्णन करने वाला पचहत्तरवां पर्व पूर्ण हुआ ॥७५॥

---

१. पारदेनांगः म० । २. स्थितिरक्षकम् म० । ३. करस्थितम् म० । ४. पुरुषस्य ।

षट्सप्ततितमं पर्व

उत्पन्नचक्ररत्नं तं वीक्ष्य लक्ष्मणसुन्दरम् । हृष्टा विद्याधराधीशाश्चक्रुरित्यभिनन्दनम् ॥१॥
ऊचुश्चासीत् समादिष्टः पुरा भगवता तदा । नाथेनानन्तवीर्येण योऽष्टमः कृष्णतायुजाम्[1] ॥२॥
जातो नारायणः सोऽयं चक्रपाणिर्महाद्युतिः । अत्युत्तमवपुः श्रीमान् न शक्यो बलवर्णने ॥३॥
अयं च बलदेवोऽसौ रथं यस्य वहन्त्यमी । उद्वृत्तकेसरसटाः सिंहा भास्करभासुराः ॥४॥
नीतो मयमहादैत्यो येन वन्दिगृहं रणे[2] । हलरत्नं करे यस्य भृशमेतद्विराजते ॥५॥
रामनारायणावेतौ तौ जातौ पुरुषोत्तमौ । पुण्यानुभावयोगेन परमप्रेमसङ्गतौ ॥६॥
लक्ष्मणस्य स्थितं पाणौ समालोक्य सुदर्शनम् । रक्षसामधिपश्चिन्तायोगमेवमुपागतः ॥७॥
वन्द्येनानन्तवीर्येण दिव्यं यद्भाषितं तदा । ध्रुवं तदिदमायातं कर्मानिलसमीरितम् ॥८॥
यस्यातपत्रमालोक्य सन्त्रस्ताः खेचराधिपाः । भङ्गं प्रापुर्महासैन्याः पर्यस्तच्छत्रकेतनाः ॥९॥
आकूपारपयोवासा हिमवद्विन्ध्यसुस्तना । दासीवाज्ञाकरी यस्य त्रिखण्डवसुधाभवत् ॥१०॥
सोऽहं भूगोचरेणाजौ जेतुमालोचितः कथम् । कष्टेयं वर्ततेऽवस्था पश्यताद्भुतमीदृशम् ॥११॥
धिगिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् । भक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसंस्तुतान् ॥१२॥
किम्पाकफलवद्भोगा विपाकविरसा भृशम् । अनन्तदुःखसम्बन्धकारिणः साधुगर्हिताः ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे लक्ष्मण सुन्दरको देख कर विद्याधर राजाओंने हर्षित हो उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया ॥१॥ वे कहने लगे कि पहले भगवान् अनन्तवीर्य स्वामीने जिस आठवें नारायणका कथन किया था यह वही उत्पन्न हुआ है। चक्ररत्न इसके हाथमें आया है। यह महाकान्तिमान्, अत्युत्तम शरीरका धारक और श्रीमान् है तथा इसके बलका वर्णन करना अशक्य है ॥२-३॥ और यह राम, आठवां बलभद्र है जिसके रथको खड़ी जटाओंको धारण करने वाले तथा सूर्यके समान देदीप्यमान सिंह खींचते हैं ॥४॥ जिसने रणमें मय नामक महादैत्यको बन्दीगृहमें भेजा था तथा जिसके हाथमें यह हल रूपी रत्न अत्यन्त शोभा देता है ॥५॥ ये दोनों ही पुरुषोत्तम पुण्यके प्रभावसे बलभद्र और नारायण हुए हैं तथा परम प्रीतिसे युक्त हैं ॥६॥

तदनन्तर सुदर्शन चक्रको लक्ष्मणके हाथमें स्थित देख, राक्षसाधिपति रावण इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७॥ वह विचार करने लगा कि उस समय वन्दनीय अनन्तवीर्य केवलीने जो दिव्यध्वनिमें कहा था जान पड़ता है कि वही यह कर्म रूपी वायुसे प्रेरित हो आया है ॥८॥ जिसका छत्र देख विद्याधर राजा भयभीत हो जाते थे, बड़ी बड़ी सेनाएं छत्र तथा पताकाएं फेंक विनाशको प्राप्त हो जाती थीं तथा समुद्रका जल ही जिसका वस्त्र है और हिमालय तथा विन्ध्याचल जिसके स्तन हैं ऐसी तीन खण्डकी वसुधा दासीके समान जिसकी आज्ञाकारिणी थी ॥९-१०॥ वही मैं आज युद्धमें एक भूमिगोचरीके द्वारा पराजित होनेके लिए किस प्रकार देखा गया हूँ ? अहो ! यह बड़ी कष्टकर अवस्था है ? यह आश्चर्य भी देखो ॥११॥ कुलटाके समान चेष्टाको धारण करने वाली इस राजलक्ष्मीको धिक्कार हो यह पापी मनुष्योंका सेवन करनेके लिए चिर परिचित पुरुषोंको एक साथ छोड़ देती है ॥१२॥ ये पञ्चेन्द्रियोंके भोग किंपाक फलके समान परिपाक कालमें अत्यन्त विरस हैं, अनन्त दुःखोंका संसर्ग कराने वाले हैं और साधुजनोंके द्वारा

---

१. नारायणत्वोपेतानां नारायणाना मिति यावत् । कृष्णातायुजान् म०, ज० । २. वशे म० ।

भरताद्याः सधन्यास्ते पुरुषा भुवनोत्तमाः । चक्राङ्कं ये परिस्फीतं राज्यं कण्टकवर्जितम् ॥१४॥
विषमिश्रान्नवत्त्यक्त्वा जैनेन्द्रं व्रतमाश्रिताः । रत्नत्रयं समाराध्य प्रापुश्च परमं पदम् ॥१५॥
मोहेन बलिनाऽत्यन्तं संसारस्फातिकारिणा[1] । पराजितो वराकोऽहं धिङ्मामीदृशचेष्टितम् ॥१६॥
उत्पन्नचक्ररत्नेन लक्ष्मणेनाथ रावणः । विभीषणास्यमालोक्य जगदे पुरुतेजसा ॥१७॥
अद्यापि खगसत्पूज्य समर्प्य जनकात्मजाम् । रामदेवप्रसादेन जीवामीति वचो वद ॥१८॥
ततस्तथाविधैवेयं तव लक्ष्मीरवस्थिता । विधाय मानभङ्गं हि सन्तो यान्ति कृतार्थताम् ॥१९॥
रावणेन ततोऽवोचि लक्ष्मणः स्मितकारिणा । अहो कारणनिर्मुक्तो गर्वः क्षुद्रस्य ते मुधा ॥२०॥
दर्शयाम्यद्य तेऽवस्थां यां तामनुभवाधम । अहं रावण एवाऽसौ स च त्वं धरणीचरः[2] ॥२१॥
लक्ष्मणेन ततोऽभाणि किमत्र बहुभाषितैः । सर्वथाऽहं समुत्पन्नो हन्ता नारायणस्तव ॥२२॥
उक्तं तेन निजाकूताद्यदि नारायणायसे । इच्छामात्रात् सुरेन्द्रत्वं कस्मान्न प्रतिपद्यसे ॥२३॥
निर्वासितस्य ते पित्रा दुःखिनो वनचारिणः । अपत्रपाविहीनस्य ज्ञाता केशवता मया ॥२४॥
नारायणो भवाऽन्यो वा यत्ते मनसि वर्तते । विस्फूर्जितं करोम्येष[3] तव भग्नं[4] मनोरथम् ॥२५॥
अनेनालातचक्रेण किल त्वं कृतितां गतः । अथवा क्षुद्रजन्तूनां खलेनाऽपि महोत्सवम् ॥२६॥
सहामीभिः खगैः पापैः सचक्रं सहवाहनम् । पाताले त्वां नयाम्यद्य कथितेनापरेण किम् ॥२७॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य नवनारायणो रुषा । प्रभ्रम्य चक्रमुद्यम्य चिक्षेप प्रति रावणम् ॥२८॥
वज्रप्रभवमेघौघघोरनिर्घोषभीषणम् । प्रलयार्कसमच्छायं तच्चक्रमभवत्तदा ॥२९॥

निन्दित हैं ॥१३॥ वे संसार श्रेष्ठ भरतादि पुरुष धन्य हैं जो चक्ररत्नसे सहित निष्कण्टक विशाल राज्यको विष मिश्रित अन्नके समान छोड़कर जिनेन्द्र सम्बन्धी व्रतको प्राप्त हुए तथा रत्नत्रयकी आराधाना कर परम पदको प्राप्त हुए ॥१४-१५॥ मैं दीन पुरुष संसार वृद्धिका अतिशय कारण जो बलवान् मोह कर्म है उसके द्वारा पराजित हुआ हूँ। ऐसी चेष्टाको धारण करने वाले मुझको धिक्कार है ॥१६॥

अथानन्तर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे विशाल तेजके धारक लक्ष्मणने विभीषण का मुख देख कर कहा कि हे विद्याधरोंके पूज्य ! यदि अब भी तुम सीताको सौंप कर यह वचन कहो कि मैं भी रामदेवके प्रसादसे जीवित हूँ तो तुम्हारी यह लक्ष्मी ज्यों की त्यों अवस्थित है क्यों कि सत्पुरुष मान भङ्ग करके ही कृतकृत्यताको प्राप्त हो जाते हैं ॥१७-१९॥ तब मन्द हास्य करने वाले रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अहो ! तुझ क्षुद्रका यह अकारण गर्व करना व्यर्थ है ॥२०॥ अरे नीच ! मैं आज तुझे जो दशा दिखाता हूँ उसका अनुभव कर। मैं वह रावण ही हूँ और तू वही भूमिगोचरी है ॥२१॥ तब लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? मैं सब तरहसे तुम्हें मारने वाला नारायण उत्पन्न हुआ हूँ ॥२२॥ तदनन्तर रावणने व्यङ्ग पूर्ण चेष्टा बनाते हुए कहा कि यदि इच्छा मात्रसे नारायण बन रहा है तो फिर इच्छा मात्रसे इन्द्र-पना क्यों नहीं प्राप्त कर लेता ॥२३॥ पिताने तुझे घरसे निकाला जिससे दुखी होता हुआ वन वनमें भटकता रहा अब निर्लज्ज हो नारायण बनने चला है सो तेरा नारायणपना मैं खूब जानता हूँ ॥२४॥ अथवा तू नारायण रह अथवा जो कुछ तेरे मनमें हो सो बन जा परन्तु मैं लगे हाथ तेरे मनोरथको भङ्ग करता हूँ ॥२५॥ तू इस अलातचक्रसे कृत-कृत्यताको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्यों कि क्षुद्र जन्तुओंको तुष्छ वस्तुसे भी महान् उत्सव होता है ॥२६॥ अथवा अधिक कहने से क्या ? मैं आज तुझे इन पापी विद्याधरोंके साथ चक्रके साथ और वाहनके साथ सीधा पाताल भेजता हूँ ॥२७॥ यह वचन सुन नूतन नारायण-लक्ष्मणने क्रोध वश घुमाकर रावणकी ओर चक्र-रत्न फेंका ॥२८॥ उस समय वह चक्र वज्रको जन्म देने वाले मेघ समूहकी घोर गर्जनाके समान

---

१. स्फीति म० । २. धरणीश्वरः म० । ३. करोत्येष म० । ४. भग्नमनोरथं म० ।

हिरण्यकशिपुः क्षिप्तं हरिणेव तदायुधम् । निवारयितुमुद्युक्तः संरब्धो रावणः शरैः ॥३०॥
भूयश्चण्डेन दण्डेन जविना पविना पुनः । तथापि ढौकते चक्रं वक्रं पुण्यपरिक्षये ॥३१॥
चन्द्रहासं समाकृष्य ततोऽभ्यर्णत्वमागतम् । जघान गहनोत्सर्पिस्फुलिङ्गाञ्चितपुष्करम् ॥३२॥
स्थितस्याभिमुखस्यास्य राक्षसेन्द्रस्य शालिनः । तेन चक्रेण निर्भिन्नं वज्रसारमुरःस्थलम् ॥३३॥
उत्पातवातसम्भुग्नमहाञ्जनगिरिप्रभः । पपात रावणः क्षोण्यां पतिते पुण्यकर्मणि ॥३४॥
रतेरिव पतिः सुप्तश्च्युतः स्वर्गादिवामरः । महीस्थितो रराजासौ संदष्टदशनच्छदः ॥३५॥
स्वामिनं पतितं दृष्ट्वा सैन्यं सागरनिस्वनम् । शीर्णं वितानतां प्राप्तं पर्यस्तच्छत्रकेतुकम् ॥३६॥
उत्सारय रथं देहि मार्गमश्वमितो नय । प्राप्तोऽयं पृष्ठतो हस्ती विमानं कुरु पार्श्वतः ॥३७॥
पतितोऽयमहो नाथः कष्टं जातमनुत्तमम् । इत्यालापमलं भ्रान्तं बलं तत्रैव विह्वलम् ॥३८॥
अन्योन्यापूरणाशङ्कान्महाभयविकम्पितान् । दृष्ट्वा निःशरणानेताञ्जनान् पतितमस्तकान् ॥३९॥
किष्किन्धपतिवैदेहसमीरणसुतादयः । न भेतव्यं न भेतव्यमिति साधारमानयन् ॥४०॥
[३]भ्रमितोपरिवस्त्रान्तपल्लवानां समन्ततः । सैन्यमाश्वासितं तेषां वाक्यैः कर्णरसायनैः ॥४१॥

रुचिरावृत्तम्

तथाविधां श्रियमनुभूय भूयसीं कृताद्भुतां जगति समुद्रवारिते ।
परिक्षये सति सुकृतस्य कर्मणः खलामिमां प्रकृतिमितो दशाननः ॥४२॥

भयंकर तथा प्रलयकालीन सूर्यके समान कान्तिका धारक था ॥२९॥ जिसतरह पूर्वमें, नारायण के द्वारा चलाये हुए चक्रको रोकनेके लिए हिरण्यकशिपु उद्यत हुआ था उसी प्रकार क्रोधसे भरा रावण बाणोंके द्वारा उस चक्रको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥३०॥ यद्यपि उसने तीक्ष्ण दण्ड और वेगशाली वज्रके द्वारा भी उसे रोकनेका प्रयत्न किया तथापि पुण्य क्षीण हो जानेसे वह कुटिल चक्र रुका नहीं किन्तु उसके विपरीत समीप ही आता गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणने चन्द्रहास खड्ग खींचकर समीप आये हुए चक्ररत्न पर प्रहार किया सो उसकी टक्करसे प्रचुर मात्रामें निकलने वाले तिलगोंसे आकाश व्याप्त हो गया ॥३२॥ तत्पश्चात् उस चक्ररत्नने सन्मुख खड़े हुए शोभाशाली रावणका वज्रके समान वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ॥३३॥ जिससे पुण्य कर्म क्षीण होने पर प्रलय कालकी वायुसे प्रेरित विशाल अञ्जनगिरिके समान रावण पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३४॥ ओंठोंको डशने वाला रावण पृथिवी पर पड़ा ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कामदेव ही सो रहा हो अथवा स्वर्गसे कोई देव ही आकर च्युत हुआ हो ॥३५॥ स्वामीको पड़ा देख समुद्रके समान शब्द करने वाली जीर्ण शीर्ण सेना छत्र तथा पताकाएँ फेंक चौड़ी हो गई अर्थात् भाग गई ॥३६॥ 'रथ हटाओ, मार्ग देओ, घोड़ा इधर ले जाओ, यह पीछेसे हाथी आ रहा है, विमानको बगलमें करो, अहो ! यह स्वामी गिर पड़ा है, बड़ा कष्ट हुआ' इस प्रकार वार्तालाप करती हुई वह सेना विह्वल हो भाग खड़ी हुई ॥३७-३८॥

तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरे पर पड़ रहे थे, जो महाभयसे कंपायमान थे, और जिनके मस्तक पृथिवी पर पड़ रहे थे ऐसे इन शरण हीन मनुष्योंको देख कर सुग्रीव भामण्डल तथा हनूमान् आदिने 'नहीं डरना चाहिए' 'नहीं डरना चाहिए' आदि शब्द कह कर सान्त्वना प्राप्त कराई ॥३९-४०॥ जिन्होंने सब ओर ऊपर वस्त्रका छोर घुमाया था ऐसे उन सुग्रीव आदि महा पुरुषोंके, कानोंके लिए रसायनके समान मधुर वचनोंसे सेना सान्त्वनाको प्राप्त हुई ॥४१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! समुद्रान्त पृथिवीमें अनेक आश्चर्यके कार्य करने वाली उस प्रकारकी

---

१. हिरण्यकशिपुद्विष्टं म० । २. शक्रान्- म०, क० । ३. भ्रमितोपरिवस्त्रान्तःपल्लवानां म०, ज० ।

धिगीदृशीं श्रियमतिचञ्चलात्मिकां विवर्जितां सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुटं मनसि निधाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजसः ॥४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे दशग्रीववधाभिधानं नाम
षट्सप्ततितमं पर्व ॥७६॥

लक्ष्मीका उपभोग कर रावण, पुण्य कर्मका क्षय होने पर इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ ॥४२॥ इसलिए अत्यन्त चञ्चल एवं पुण्यप्राप्तिकी आशासे रहित इस लक्ष्मीको धिक्कार है। हे भव्य जनो! ऐसा मनमें विचार कर सूर्यके तेजको जीतने वाले तपोधन होओ—तपके धारक बनो ॥४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके
वधका कथन करने वाला छिहत्तरवां पर्व
समाप्त हुआ ॥७६॥

सप्तसप्ततितमं पर्व

सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वितः । क्षुरिकायां करं चक्रे स्ववधाय विभीषणः ॥१॥
वारयन्ती वधं तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा । मूर्च्छा कालं कियन्तं[1] चिच्चकारोपकृतिं पराम् ॥२॥
लब्धसंज्ञो जिघांसुः स्वं तापं दुःसहमुद्वहन् । रामेण विधृतः[2] कृच्छ्रादुत्तीर्य निजतो रथात् ॥३॥
त्यक्तास्त्रकवचो भूम्यां पुनर्मूर्च्छामुपागतः । प्रतिबुद्धः पुनश्चक्रे विलापं करुणाकरम् ॥४॥
हा भ्रातः करुणोदार शूर संश्रितवत्सल । मनोहर कथं प्राप्तोऽस्यवस्थामिति पापिकाम् ॥५॥
किं तन्मद्वचनं नाथ गद्यमानं हितं परम् । न मानितं यतो युद्धे वीक्षे[3] त्वां चक्रताडितम् ॥६॥
कष्टं भूमितले देव विद्याधरमहेश्वर । कथं सुप्तोऽसि लङ्केश भोगदुर्ललितात्मकः ॥७॥
उत्तिष्ठ देहि मे वाक्यं चारुवाक्यं गुणाकर । साधारय कृपाधार मग्नं मां शोकसागरे ॥८॥
एतस्मिन्नन्तरे [4]ज्ञातदशाननिपातनम् । क्षुब्धमन्तःपुरं शोकमहाकल्लोलसङ्कुलम् ॥९॥
सर्वाश्च वनिता बाष्पधारासिक्तमहीतलाः । रणक्षोणीं समाजग्मुर्मुहुःप्रस्खलितक्रमाः ॥१०॥
तं चूडामणिसङ्काशं क्षितेरालोक्य सुन्दरम् । निश्चेतनं पतिं नार्यो निपेतुरतिवेगतः ॥११॥
रम्भा चन्द्रानना चन्द्रमण्डला[5] प्रवरोर्वशी । मन्दोदरी महादेवी सुन्दरी कमलानना ॥१२॥
रूपिणी रुक्मिणी शीला रत्नमाला तनूदरी । श्रीकान्ता श्रीमती भद्रा कनकाभा मृगावती ॥१३॥
श्रीमाला मानवी लक्ष्मीरानन्दानङ्गसुन्दरी । वसुन्धरा तडिन्माला पद्मा पद्मावती सुखा ॥१४॥

अथानन्तर भाईको पड़ा देख महादुःखसे युक्त विभीषणने अपना वध करनेके लिए छुरीपर हाथ रक्खा ॥१॥ सो उसके इस वधको रोकती तथा शरीरको निश्चेष्ट करती मूर्च्छाने कुछ काल तक उसका बड़ा उपकार किया ॥२॥ जब सचेत हुआ तब पुनः आत्मघातकी इच्छा करने लगा सो राम ने अपने रथसे उतर कर उसे बड़ी कठिनाईसे पकड़ कर रक्खा ॥३॥ जिसने अस्त्र और कवच छोड़ दिये थे ऐसा विभीषण पुनः मूर्च्छित हो पृथिवी पर पड़ा रहा। तत्पश्चात् जब पुनः सचेत हुआ तब करुणा उत्पन्न करने वाला विलाप करने लगा ॥४॥ वह कह रहा था कि हे भाई! हे उदार करुणाके धारी। हे शूर वीर! हे आश्रितजनवत्सल! हे मनोहर! तुम इस पाप पूर्ण दशाको कैसे प्राप्त हो गये? ॥५॥ हे नाथ। क्या उस समय तुमने मेरे कहे हुए हितकारी वचन नहीं माने इसीलिए युद्धमें तुम्हें चक्र से ताड़ित देख रहा हूँ ॥६॥ हे देव! हे विद्याधरों के अधिपति! हे लंकाके स्वामी! तुम तो भोगोंसे लालित हुए थे फिर आज पृथिवीतल पर क्यों सो रहे हो? ॥७॥ हे सुन्दर वचन बोलने वाले! हे गुणोंके खानि! उठो मुझे वचन देओ-मुझसे वार्तालाप करो। हे कृपाके आधार! शोक रूपी सागरमें डूबे हुए मुझे सान्त्वना देओ ॥८॥

तदनन्तर इसी बीचमें जिसे रावणके गिरनेका समाचार विदित हो गया था ऐसा अन्तःपुर शोककी बड़ी बड़ी लहरोंसे व्याप्त होता हुआ क्षुभित हो उठा ॥९॥ जिन्होंने अश्रुधारासे पृथिवी तलको सींचा था तथा जिनके पैर बारबार लड़खड़ा रहे थे ऐसी समस्त स्त्रियां रणभूमि में आ गईं ॥१०॥ और पृथिवीके चूड़ामणिके समान सुन्दर पतिको निश्चेतन देख अत्यन्त वेगसे भूमिपर गिर पड़ीं ॥११॥ रम्भा, चन्द्रानना, चन्द्रमण्डला, प्रवरा, उर्वशी, मन्दोदरी, महादेवी, सुन्दरी, कमलानना, रूपिणी, रुक्मिणी, शीला, रत्नमाला, तनूदरी, श्रीकान्ता, श्रीमती, भद्रा, कनकाभा, मृगावती, श्रीमाला, मानवी, लक्ष्मी, आनन्दा, अनङ्गसुन्दरी, वसुन्धरा, तडिन्माला,

---

१. कियन्तं च चकारोप- म० । २. विधृतः म० । ३. वीक्ष्ये ब० । ४. ज्ञातं दशानन- म० । ५. मण्डलाञ्ज म० ।

देवी पद्मावती कान्तिः प्रीतिः सन्ध्यावली शुभा । प्रभावती मनोवेगा रतिकान्ता मनोवती ॥१५॥
अष्टादशैवमादीनां सहस्राणि सुयोषिताम् । परिवार्य पतिं चक्रुराक्रन्दं सुमहाशुचा ॥१६॥
काश्चिन्मोहं गताः सत्यः सिक्ताश्चन्दनवारिणा । समुत्प्लुतमृणालानां पद्मिनीनां श्रियं दधुः ॥१७॥
आश्लिष्टदयिताः काश्चिद्गाढं मूर्च्छामुपागताः । अञ्जनाद्रिसमासक्तसन्ध्यारेखाद्युतिं दधुः ॥१८॥
निर्व्यूढमूर्च्छनाः काश्चिदुरस्ताडनचञ्चलाः । घनाघनसमासक्ततडिन्मालाकृतिं श्रिताः ॥१९॥
विधाय वदनाम्भोजं काचिदङ्के सुविह्वला । वक्षःस्थलपरामर्शकारिणी मूर्छिता मुहुः ॥२०॥
हा हा नाथ गतः क्वासि त्यक्त्वा मामतिकातराम् । कथं नाऽपेक्षसे दुःखनिमग्नं जनमात्मनः ॥२१॥
स त्वं सत्त्वयुतः कान्तिमण्डनः परमद्युतिः । विभूत्या शक्रसङ्काशो मानी भरतभूपतिः ॥२२॥
प्रधानपुरुषो भूत्वा महाराज मनोरमः । किमर्थं स्वपिषि क्षोण्यां विद्याधरमहेश्वरः ॥२३॥
उत्तिष्ठ कान्त कारुण्य-पर स्वजनवत्सल । अमृतप्रतिमं वाक्यं यच्छैकमपि सुन्दरम् ॥२४॥
अपराधविमुक्तानामस्माकं सक्तचेतसाम् । प्राणेश्वर किमित्येवं स्थितस्त्वं कोपसङ्गतः ॥२५॥
परिहासकथासक्तं दन्तज्योत्स्नामनोहरम् । वदनेन्दुमिमं नाथ सकृद्धारय[1] पूर्ववत् ॥२६॥
वराङ्गनापरिक्रीडास्थानेऽस्मिन्नपि सुन्दरे । वक्षःस्थले कथं न्यस्तं पदं ते चक्रधारया ॥२७॥
बन्धूकपुष्पसङ्काशस्तवायं दशनच्छदः । नार्मोत्तरप्रदानाय कथं स्फुरति नाधुना ॥२८॥
प्रसीद न चिरं कोपः सेवितो जातुचित्त्वया । प्रत्युतास्माकमेव त्वमकरोः सान्त्वनं पुरा ॥२९॥

पद्मा, पद्मावती, सुखा, देवी, पद्मावती, कान्ति, प्रीति, सन्ध्यावली, शुभा, प्रभावती, मनोवेगा, रतिकान्ता और मनोवती, आदि अठारह हजार स्त्रियाँ पतिको घेर कर महाशोक से रुदन करने लगीं ॥१२-१६॥ जिनके ऊपर चन्दनका जल सींचा गया था ऐसी मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियाँ, जिनके मृणाल उखाड़ लिये गये हैं ऐसी कमलिनियोंकी शोभा धारण कर रहीं थीं ॥१७॥ पतिका आलिङ्गन कर गाढ़ मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियां अञ्जनगिरिसे संसक्त संध्याकी कान्तिको धारण कर रहीं थीं ॥१८॥ जिनकी मूर्च्छा दूर हो गई थी तथा जो छातीके पीटनेमें चञ्चल थीं ऐसीं कितनी ही स्त्रियां मेघ कौंधती हुई विद्युन्मालाकी आकृतिको धारण कर रही थीं ॥१९॥ कोई एक स्त्री पतिका मुखकमल अपनी गोदमें रख अत्यन्त विह्वल हो रही थी तथा वक्षःस्थलका स्पर्श करती हुई बारबार मूर्च्छित हो रही थी ॥२०॥

वे कह रही थीं कि हाय हाय हे नाथ! तुम मुझ अतिशय भीरुको छोड़ कहाँ चले गये हो? दुःखमें डूबे हुए अपने लोगोंकी ओर क्यों नहीं देखते हो? ॥२१॥ हे महाराज! तुम तो धैर्य गुणसे सहित हो, कान्ति रूपी आभूषणसे विभूषित हो, परम कीर्तिके धारक हो, विभूतिमें इन्द्रके समान हो, मानी हो, भरत क्षेत्रके स्वामी हो, प्रधान पुरुष हो, मनको रमण करने वाले हो, और विद्याधरोंके राजा हो फिर इसतरह पृथिवी पर क्यों सो रहे हो? ॥२२-२३॥ हे कान्त! हे दयातत्पर, हे स्वजनवत्सल! उठो एक बार तो अमृत तुल्य सुन्दर वचन देओ ॥२४॥ हे प्राणनाथ! हम लोग अपराधसे रहित हैं तथा हम लोगोंका चित्त एक आप ही में आसक्त है फिर क्यों इसतरह कोपको प्राप्त हुए हो? ॥२५॥ हे नाथ! परिहासकी कथामें तत्पर और दांतोंकी कान्ति रूपी चांदनीसे मनोहर इस मुख रूपी चन्द्रमाको एक बार तो पहलेके समान धारण करो ॥२६॥ तुम्हारा यह सुन्दर वक्षःस्थल उत्तम स्त्रियोंका क्रीड़ा स्थल है फिर भी इसपर चक्र धाराने कैसे स्थान जमा लिया? ॥२७॥ हे नाथ! दुपहरियाके फूलके समान लाल लाल यह तुम्हारा ओंठ क्रीड़ा पूर्ण उत्तर देनेके लिए इस समय क्यों नहीं फड़क रहा है? ॥२८॥ प्रसन्न होओ, तुमने कभी इतना लम्बा

---

१. सकृद्धारय म० ।

उदपादीव यस्त्वत्तः कल्पलोकात् परिच्युतः । बन्धने मेघवाहोऽसौ दुःखमास्ते तथेन्द्रजित् ॥३०॥
विधाय सुकृतज्ञेन वीरेण गुणशालिना । पद्माभेन सह प्रीतिं भ्रातृपुत्रौ विमोचय ॥३१॥
जीवितेश समुत्तिष्ठ प्रयच्छ वचनं प्रियम् । सुचिरं देव किं शेषे विधत्स्व नृपतेः क्रियाम् ॥३२॥
विरहाग्निप्रदीप्तानि भृशं सुन्दरविभ्रम । कान्त विध्यापयाङ्गानि प्रसीद प्रणयिप्रिय ॥३३॥
अवस्थामेतिकां प्राप्तमिदं वदनपङ्कजम् । प्रियस्य हृदयालोक्य दीर्यते शतधा न किम् ॥३४॥
वज्रसारमिदं नूनं हृदयं दुःखभाजनम् । ज्ञात्वापि यत्तवावस्थामिमां तिष्ठति निर्दयम् ॥३५॥
विधे किं कृतमस्माभिर्भवतः सुन्दरेतरम् । विहितं येन कर्मेदं त्वया निर्दयदुष्करम् ॥३६॥
समालिङ्गनमात्रेण दूरं निर्धूय मानकम् । परस्परार्पणस्वादु नाथ यन्मधुसेवितम् ॥३७॥
यत्रान्यप्रमदागोत्रग्रहणस्खलिते सति । काञ्चीगुणेन नीतोऽसि बहुशो बन्धनं प्रिय[1] ॥३८॥
वतंसेन्दीवराघातात् कोपप्रस्फुरिताधरम् । प्रापितोऽसि प्रभो यत्र किञ्जल्कोच्छ्रसितालिकम् ॥३९॥
प्रेमकोपविनाशाय यत्रातिप्रियवादिना । कृतं पदार्पणं मूर्ध्नि हृदयद्रवकारणम् ॥४०॥
यानि चात्यन्तरम्याणि रतानि परमेश्वर । कान्त चाटुसमेतानि सेवितानि यथेप्सितम् ॥४१॥
परमानन्दकारीणि तदेतानि मनोहर । अधुना स्मर्यमाणानि दहन्ति हृदये भृशम् ॥४२॥
कुरु प्रसादमुत्तिष्ठ पादावेषा नमामि ते । न हि प्रियजने कोपः सुचिरं नाथ शोभते ॥४३॥
एवं रावणपत्नीनां श्रुत्वापि परिदेवनम्[2] । कस्य न प्राणिनः प्राप्तं हृदयं द्रवतामलम्[3] ॥४४॥

क्रोध नहीं किया अपितु हम लोगोंको तुम पहले सान्त्वना देते रहे हो ॥२९॥ जिसने स्वर्ग लोकसे च्युत हो कर आपसे जन्म ग्रहण किया था ऐसा वह मेघवाहन और इन्द्रजित् शत्रुके बन्धनमें दुःख भोग रहा है ॥३०॥ सो सुकृतको जानने वाले गुणशाली वीर रामके साथ प्रीति कर अपने भाई कुम्भकर्ण तथा पुत्रोंको बन्धनसे छुड़ाओ ॥३१॥ हे प्राणनाथ ! उठो, प्रिय वचन प्रदान करो । हे देव ! चिरकाल तक क्यों सो रहे हो ? उठो राजकार्य करो ॥३२॥ हे सुन्दर चेष्टाओंके धारक ! हे कान्त ! हे प्रेमियोंसे प्रेम करने वाले ! प्रसन्न होओ और विरह रूपी अग्निसे जलते हुए हमारे अंगोंको शान्त करो ॥३३॥ रे हृदय ! इस अवस्थाको प्राप्त हुए पतिके मुख कमलको देखकर तू सौ टूक क्यों नहीं हो जाता है ? ॥३४॥ जान पड़ता है कि हमारा यह दुःखका भाजन हृदय वज्रका बना हुआ है इसीलिए तो तुम्हारी इस अवस्थाको जानकर भी निर्दय हुआ स्थित है ॥३५॥ हे विधातः ! हम लोगोंने तुम्हारा कौन सा अशोभनीक कार्य किया था जिससे तुमने यह ऐसा कार्य किया जो निर्दय मनुष्योंके लिए भी दुष्कर है—कठिन है ॥३६॥ हे नाथ ! आलिङ्गन-मात्रसे मानको दूरकर परस्पर—एक दूसरेके आदान-प्रदानसे मनोहर जो मधुका पान किया था ॥३७॥ हे प्रिय ! अन्य स्त्रीका नाम लेनेरूप अपराध होने पर जो मैंने तुम्हें अनेकों वार मेखला-सूत्रसे बन्धनमें डाला था ॥३८॥ हे प्रभो ! मैंने क्रोधसे ओंठको कम्पित करते हुए जो उस समय तुम्हें कर्णाभरणके नील कमलसे ताड़ित किया था और उस कमलकी केशर तुम्हारे ललाटमें जा लगी थी ॥३९॥ प्रणय कोपको नष्ट करनेके लिए मधुर वचन कहते हुए जो तुमने हमारे पैर उठा कर अपने मस्तक पर रख लिये थे और उससे हमारा हृदय तत्काल द्रवीभूत हो गया था, और हे परमेश्वर ! हे कान्त ! मधुर वचनोंसे सहित अत्यन्त रमणीय जो रत इच्छानुसार आपके साथ सेवन किये गये थे । हे मनोहर ! परम आनन्दको करने वाले वे सब कार्य इस समय एक-एककर स्मृति-पथमें आते हुए हृदयमें तीव्र दाह उत्पन्न कर रहे हैं ॥४०-४२॥ हे नाथ ! प्रसन्न होओ, उठो, मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करती हूँ । क्योंकि प्रियजनों पर चिरकालतक रहने वाला क्रोध शोभा नहीं देता ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस तरह रावणकी स्त्रियोंका विलाप सुनकर किस प्राणीका हृदय अत्यन्त द्रवताको प्राप्त नहीं हुआ था ? ॥४४॥

१. प्रियम् म० । २. विलापम् । ३. द्रवताम् + अलम् ।

अथ पद्मामसौमित्री साकं खेचरपुङ्गवैः । स्नेहगर्भं परिष्वज्य बाष्पापूरितलोचनौ ॥४५॥
ऊचतुः करुणोद्युक्तौ परिसान्त्वनकोविदौ । बिभीषणमिदं वाक्यं लोकवृत्तान्तपण्डितौ ॥४६॥
राजन्नलं रुदित्वैवं विषादमधुना त्यज । जानास्येव ननु व्यक्तं कर्मणामिति चेष्टितम् ॥४७॥
पूर्वकर्मानुभावेन प्रमादं भजतां नृणाम् । प्राप्तव्यं जायतेऽवश्यं तत्र शोकस्य कः क्रमः ॥४८॥
प्रवर्तते यदाऽकार्ये जनो ननु तदैव सः । मृतश्चिरं[1]मृते तस्मिन् किं शोकः क्रियतेऽधुना ॥४९॥
यः सदा परमप्रीत्या हिताय जगतो रतः । समाहितमतिर्बाढं प्रजाकर्मणि पण्डितः ॥५०॥
सर्वशास्त्रार्थसम्बोधक्षालितात्मापि रावणः । मोहेन बलिना नीतोऽवस्थामेतां सुदारुणाम् ॥५१॥
असौ विनाशमेतेन प्रकारेणानुभूतवान् । नूनं विनाशकाले हि नृणां ध्वान्तायते मतिः ॥५२॥
रामीयवचनस्यान्ते प्रभामण्डलपण्डितः । जगाद वचनं बिभ्रन्माधुर्यं परमोत्कटम् ॥५३॥
बिभीषण रणे भीमे युध्यमानो महामनाः । मृत्युना वीरयोग्येन[2] रावणः स्वस्थितिं श्रितः ॥५४॥
किं तस्य पतितं यस्य मानो[3] न पतितः प्रभोः । नन्वत्यन्तमसौ धन्यो योऽसून्प्रत्यर्य[4]मुञ्चत ॥५५॥
महासत्त्वस्य वीरस्य शोच्यं तस्य न विद्यते । शत्रुन्दमसमा लोके शोच्याः पार्थिवगोत्रजाः ॥५६॥
लक्ष्मीहरिध्वजोद्भूतो[5] बभूवाक्षपुरे नृपः । अरिन्दम इति ख्यातः पुरन्दरसमश्रिया ॥५७॥
स जित्वा शत्रुसङ्घातं नानादेशव्यवस्थितम् । प्रत्यागच्छन्निजं स्थानं देवीदर्शनकाङ्क्षया ॥५८॥

अथानन्तर जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, जो करुणा प्रकट करनेमें उद्यत थे, सान्त्वना देनेमें निपुण थे, तथा लोक व्यवहारके पण्डित थे ऐसे राम-लक्ष्मण श्रेष्ठ विद्याधरोंके साथ विभीषणका स्नेहपूर्ण आलिङ्गन कर यह वचन बोले ॥४५-४६॥ कि हे राजन् ! इस तरह रोना व्यर्थ है, अब विषाद छोड़ो, आप जानते हैं कि यह कर्मोंकी चेष्टा है ॥४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे प्रमाद करनेवाले मनुष्योंको जो वस्तु प्राप्त होने योग्य है वह अवश्य ही प्राप्त होती है इसमें शोकका क्या अवसर है ? ॥४८॥ मनुष्य जब अकार्यमें प्रवृत्त होता है वह तभी मर जाता है फिर रावण तो चिरकाल बाद मरा है अतः अब शोक क्यों किया जाता है ? ॥४९॥ जो सदा परम प्रीतिपूर्वक जगत्का हित करनेमें तत्पर रहता था, जिसकी बुद्धि सदा सावधान रूप रहती थी, जो प्रजाके कार्यमें पण्डित था, और समस्त शास्त्रों के अर्थ ज्ञानसे जिसकी आत्मा धुली हुई थी ऐसा रावण बलवान् मोहके द्वारा इस अवस्था को प्राप्त हुआ है ॥५०-५१॥ उस रावणने इस अपराधसे विनाशका अनुभव किया है सो ठीक ही है क्योंकि विनाशके समय मनुष्योंकी बुद्धि अन्धकारके समान हो जाती है ॥५२॥

तदनन्तर रामके कहनेके बाद अतिशय चतुर भामण्डलने परमोत्कट माधुर्यको धारण करनेवाले निम्नांकित वचन कहे ॥५३॥ उसने कहा कि हे विभीषण ! भयंकर रणमें युद्ध करता हुआ महामनस्वी रावण वीरोंके योग्य मृत्युसे मर कर आत्मस्थिति अथवा *स्वर्गस्थितिको प्राप्त हुआ है ॥५४॥ जिस प्रभुका मान नष्ट नहीं हुआ उसका क्या नष्ट हुआ ? अर्थात् कुछ नहीं। यथार्थमें रावण अत्यन्त धन्य है जिसने शत्रुके सम्मुख प्राण छोड़े ॥५५॥ वह तो महा धैर्यशाली वीर रहा अतः उसके विषयमें शोक करने योग्य बात ही नहीं है। लोक में जो क्षत्रिय अरिंदमके समान हैं वे ही शोक करने योग्य हैं ॥५६॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि अक्षपुर नामा नगरमें लक्ष्मी और हरिध्वजसे उत्पन्न हुआ अरिंदम नामका एक राजा था जो इन्द्रके समान सम्पत्तिसे प्रसिद्ध था ॥५७॥ वह एक बार नाना देशोंमें स्थित शत्रु समूहको जीत कर अपनी स्त्रीको देखने

१. चिरं मृते म० । २. वीरयोगेन म० । ३. मनः ज० । ४. प्रति+अरि+अमुञ्चत । ५. ध्वजो दूतः म० ।

* स्वस्मिन् स्थितिः स्वस्थितिः ताम् । अथवा स्वः स्वर्गे स्थितिः स्वस्थितिः ताम् 'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इत्यनेन विकल्पेन विसर्गलोपात् । 'रणे निहताः स्वर्गं यान्ति' इति प्रसिद्धिः ।

परमोत्कण्ठया युक्तः केतुतोरणमण्डितम् । पुरं विवेश सोऽकस्मादश्वैर्मानसगत्वरैः ॥५९॥
स्वं गृहं संस्कृतं दृष्ट्वा भूषितां च स्वसुन्दरीम् । अपृच्छद्विदितोऽहं ते कथमेतीत्यवेदितम् ॥६०॥
सा जगौ मुनिमुख्येन नाथ कीर्तिधरेण मे । अवधिज्ञानिना शिष्टं पृष्टेनैतेन पारणाम् ॥६१॥
अथोचदीर्ष्यया युक्तो गत्वाऽसौ मुनिपुङ्गवम् । यदि त्वं वेत्सि तच्चिन्तां मदीयां मम बोधय ॥६२॥
मुनिना गदितं चित्ते त्वयेदं विनिवेशितम् । यथा किल कथं मृत्युः कदा वा मे भविष्यति ॥६३॥
स त्वमस्माद्दिनादह्नि सप्तमे वज्रताडितः । मृत्वा भविष्यसि स्वस्मिन् कीटो विड्भवने महान् ॥६४॥
ततः प्रीतिङ्कराभिख्यमागत्य तनयं जगौ । त्वयाऽहं विड्गृहे जातो [1]हन्तव्यः स्थूलकीटकः ॥६५॥
तथाभूतं स दृष्ट्वा तं तनयं हन्तुमुद्यतम् । विड्मध्यमविशद्दूरं मृत्युभीतिपरिद्रुतः ॥६६॥
मुनिं प्रीतिङ्करो गत्वा पप्रच्छ भगवन् कुतः । संदिश्य मार्यमाणोऽसौ कीटो दूरं पलायते ॥६७॥
उवाच वचनं साधुर्विषादमिह मा कृथाः । योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः ॥६८॥
आत्मनस्तत्कुरु श्रेयो मुच्यसे येन किल्बिषात् । ननु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ॥६९॥
एवं भवस्थितिं ज्ञात्वा परमासुखकारिणीम् । प्रीतिङ्करो महायोगी बभूव विगतस्पृहः ॥७०॥

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं ते विविधा विभीषण न किं ज्ञाता जगत्संस्थिति-
यच्छूरं कृतनिश्चयं विधिवशान्नारायणेनाहतम् ।
सङ्ग्रामेऽभिमुखं प्रधानपुरुषं शोचस्यहो रावणं
स्वार्थे सम्प्रति यच्च चित्तममुना शोकेन किं कारणम् ॥७१॥

की इच्छासे अपने घरकी ओर लौट रहा था ॥५८॥ तीव्र उत्कंठासे युक्त होनेके कारण उसने मनके समान शीघ्रगामी घोड़ोंसे अकस्मात् ही पताकाओं और तोरणोंसे अलंकृत नगरमें प्रवेश किया ॥५९॥ अपने घरको सजा हुआ तथा स्त्रीको आभूषणादिसे अलंकृत देख उसने पूछा कि विना कहे तुमने कैसे जान लिया कि ये आ रहे हैं ॥६०॥ स्त्रीने कहा कि हे नाथ ! आज मुनियोंमें मुख्य अवधिज्ञानी कीर्तिधर मुनि पारणाके लिए आये थे मैंने उनसे आपके आनेका समय पूछा था तो उन्होंने कहा कि राजा आज ही अकस्मात् आवेंगे ॥६१॥ राजा अरिंदमको मुनिके भविष्य-ज्ञान पर कुछ ईर्ष्या हुई अतः वह उनके पास जाकर बोला कि यदि तुम जानते हो तो मेरे मन की बात बताओ ॥६२॥ मुनिने कहा कि तुमने मनमें यह बात रख छोड़ी है कि मेरी कब और किस प्रकार मृत्यु होगी ? ॥६३॥ सो तुम आजसे सातवें दिन वज्रपातसे मर कर अपने विष्ठा-गृहमें महान् कीड़ा होओगे ॥६४॥ वहाँसे आकर राजा अरिंदमने अपने पुत्र प्रीतिंकरसे कहा कि मैं विष्ठागृहमें एक बड़ा कीड़ा होऊँगा सो तुम मुझे मार डालना ॥६५॥

तदनन्तर जब पुत्र विष्ठागृहमें स्थूल कीडाको देखकर मारनेके लिए उद्यत हुआ तब वह कीड़ा मृत्युके भयसे भागकर बहुत दूर विष्ठाके भीतर घुस गया ॥६६॥ प्रीतिङ्करने मुनिराजके पास जाकर पूछा कि हे भगवन् ! कहे अनुसार जब मैं उस कीड़ेको मारता हूँ तब वह दूर क्यों भाग जाता है ? ॥६७॥ मुनिराजने कहा कि इस विषयमें विवाद मत करो । यह प्राणी जिस योनिमें जाता है उसीमें प्रीतिको प्राप्त हो जाता है ॥६८॥ इसीलिए आत्माका कल्याण करनेवाला वह कार्य करो जिससे कि आत्मा पापसे छूट जाय । यह निश्चित है कि सब प्राणी अपने द्वारा किये हुए कर्मका फल प्राप्त करनेमें ही लीन हैं ॥६९॥ इस प्रकार अत्यन्त दुःखको उत्पन्न करनेवाली संसार दशाको जानकर प्रीतिङ्कर निःस्पृह हो महामुनि हो गया ॥७०॥ इस प्रकार भामण्डल विभीषणसे कहता है कि हे विभीषण ! क्या तुझे यह संसारकी विविध दशा ज्ञात नहीं है जो

---

1. हन्तव्यं म० ।

श्रुत्वेमां प्रतिबोधदानकुशलां चित्रस्वभावान्वितां
सत्प्रीतिङ्करसंयतस्य चरितप्रोत्कीर्तनीयां कथाम् ।
सर्वैः खेचरपुङ्गवैरभिहिते साधूदितं साध्विति
भ्रष्टः [1]शुक्तिमिराद्विभीषणरविर्लोकोत्तराचारवित् ॥७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने प्रीतिङ्करोपाख्यानं नाम सप्तसप्ततितमं पर्व ॥७७॥

शूरवीर, दृढ़ निश्चयी एवं कर्मोदयके कारण युद्धमें नारायणके द्वारा सम्मुख मारे हुए प्रधान पुरुष रावणके प्रति शोक कर रहा है। अब तो अपने कार्यमें चित्त देओ इस शोकसे क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार प्रतिबोधके देनेमें कुशल, नाना स्वभावसे सहित, एवं प्रीतिङ्कर मुनिराजके चरितको निरूपण करनेवाली कथा सुनकर सब विद्याधर राजाओंने ठीक ठीक यह शब्द कहे और लोकोत्तर—सर्वश्रेष्ठ आचारको जाननेवाला विभीषण रूपी सूर्य शोकरूपी अन्धकारसे छूट गया अर्थात् विभीषणका शोक दूर हो गया ॥७१-७२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण या पद्मायन नामक ग्रन्थमें प्रीतिङ्करका उपाख्यान करनेवाला सतहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७७॥

१. शोकरूपतिमिरात् ।

अष्टसप्ततितमं पर्व

तत्तो हलधरोऽवोचत् कर्त्तव्यं किमतः परम् । मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥१॥
परलोके गतस्यातो लङ्केशस्योत्तमं वपुः । महानरस्य संस्कारं प्रापयामः सुखैधितम् ॥२॥
तत्राभिनन्दिते वाक्ये विभीषणसमन्वितौ । बलनारायणौ साकं शेषैस्तां ककुभं श्रितौ ॥३॥
यत्र मन्दोदरी शोकविह्वला कुररीसमम् । योषित्सहस्रमध्यस्था विरौति करुणावहम् ॥४॥
अवतीर्य महानागात् सत्वरं बलकेशवौ । मन्दोदरीमुपायातौ साकं खेचरपुङ्गवैः ॥५॥
दृष्ट्वा तौ सुतरां नार्यो रुरुदुर्मुक्तकण्ठकम् । विरुग्णरत्नवलया वसुधापांसुधूसराः ॥६॥
मन्दोदर्या समं सर्वमङ्गनानिवहं बलः । वाग्भिश्चित्राभिरानिन्ये समाश्वासं विचक्षणः ॥७॥
कर्पूरागुरुगोशीर्षचन्दनादिभिरुत्तमैः । संस्कार्य रावणं याताः सर्वे पद्मसरो महत् ॥८॥
उपविश्य सरस्तीरे पद्मेनोक्तं सुचेतसा । कुम्भादयो विमुच्यन्तां सामन्तैः सहिता इति ॥९॥
खेचरेशैस्ततः कैश्चिदुक्तं ते क्रूरमानसाः । हन्यन्तां वैरिणो यद्वा म्रियन्तां बन्धने स्वयम् ॥१०॥
बलदेवो जगौ भूयः क्षात्रं नेदं विचेष्टितम् । प्रसिद्धा वा न विज्ञाता भवद्भिः किमियं स्थितिः ॥११॥
सुप्तबद्धनतत्रस्तदन्तदष्टादयो भटाः । न हन्तव्या इति क्षात्रो धर्मो जगति राजते ॥१२॥
एवमस्त्विति सन्नद्धास्तानानेतुं महाभटाः । नानाऽऽयुधधरा जग्मुः स्वाम्यादेशपरायणाः ॥१३॥
इन्द्रजित्कुम्भकर्णश्च मारीचो घनवाहनः । तथा मयमहादैत्यप्रमुखाः खेचरोत्तमाः ॥१४॥
पूरिता निगडैः स्थूलैरमी खणखणायितैः । प्रमादरहितैः शूरैरानीयन्ते समाहितैः ॥१५॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि अब क्या करना चाहिए ? क्योंकि विद्वानोंके वैर तो मरण पर्यन्त ही होते हैं ॥१॥ अच्छा हो कि हम लोग परलोकको प्राप्त हुए महामानव लङ्केश्वरको सुखसे बढ़ाये हुए उत्तम शरीरका दाह संस्कार करावें ॥२॥ रामके उक्त वचनकी सबने प्रशंसा की । तब विभीषण सहित राम लक्ष्मण अन्य सब विद्याधर राजाओंके साथ उस दिशामें पहुँचे जहाँ हजारों स्त्रियोंके बीच बैठी मन्दोदरी शोकसे विह्वल हो कुररीके समान करुण विलाप कर रही थी ॥३–४॥ राम और लक्ष्मण महागजसे उतर कर प्रमुख विद्याधरोंके साथ मन्दोदरीके पास गये ॥५॥ जिन्होंने रत्नोंकी चूड़ियाँ तोड़कर फेंक दी थीं तथा जो पृथिवीकी धूलिसे धूसर शरीर हो रही थीं ऐसी सब स्त्रियाँ राम लक्ष्मणको देख गला फाड़ फाड़कर अत्यधिक रोने लगीं ॥६॥ बुद्धिमान् रामने मन्दोदरीके साथ साथ समस्त स्त्रियोंके समूहको नाना प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना प्राप्त कराई ॥७॥ तदनन्तर कपूर, अगुरु, गोशीर्ष और चन्दन आदि उत्तम पदार्थोंसे रावणका संस्कार कर सब पद्म नामक महासरोवर पर गये ॥८॥ उत्तम चित्तके धारक रामने सरोवरके तीरपर बैठकर कहा कि सब सामन्तोंके साथ कुम्भकर्णादि छोड़ दिये जावें ॥९॥ यह सुन कुछ विद्याधर राजाओंने कहा कि वे बड़े क्रूर हृदय हैं अतः उन्हें शत्रुओंके समान मारा जाय अथवा वे स्वयं ही बन्धनमें पड़े पड़े मर जावें ॥१०॥ तब रामने कहा कि यह क्षत्रियोंकी चेष्टा नहीं । क्या आप लोग क्षत्रियोंकी इस प्रसिद्ध नीतिको नहीं जानते कि सोते हुए, बन्धनमें बँधे हुए, नम्रीभूत, भयभीत तथा दाँतोंमें तृण दबाये हुए आदि योधा मारने योग्य नहीं हैं । यह क्षत्रियोंका धर्म जगत्में सर्वत्र सुशोभित है ॥११–१२॥ तब 'एवमस्तु' कहकर स्वामीकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर, नाना प्रकारके शस्त्रोंके धारक महायोद्धा कवचादिसे युक्त हो उन्हें लानेके लिये गये ॥१३॥

तदनन्तर इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण, मारीच, मेघवाहन तथा मय महादैत्यको आदि लेकर

विलोक्यानीयमानांस्तान्दिक्कूमतङ्गजसन्निभान् । अजल्पुः कपयः स्वैरं संहतिस्थाः परस्परम् ॥१६॥
प्रज्वलन्तीं चितां वीक्ष्य रावणीयां रुषं यदि । प्रयातीन्द्रजितो जातु[1] कुम्भकर्णनृपोऽपि वा ॥१७॥
अनयोरेककस्यापि ततो विकृतिमीयुषः । कः समर्थः पुरः स्थातुं कपिध्वजबले नृपः ॥१८॥
यो यत्रावस्थितस्तस्मात् स्थानादुत्याति नैव सः । अनयोर्हि बलं दृष्टमेतैः सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥१९॥
भामण्डलेन चात्मीया गदिता भटपुङ्गवाः । यथा नाद्यापि विश्रम्भो विधातव्यो बिभीषणे ॥२०॥
कदाचित् स्वजनानेतान् प्राप्य निर्धूतबन्धनान् । भ्रातृदुःखानुतप्तस्य जायतेऽस्य विकारिता ॥२१॥
इत्युद्भूतसमाशङ्कैर्वैदेहादिभिरावृताः । नीयन्ते कुम्भकर्णाद्या बलनारायणान्तिकम् ॥२२॥
रागद्वेषविनिर्मुक्ता मनसा मुनितां गताः । धरणीं सौम्यया दृष्ट्या वीक्षमाणाः शुभाननाः ॥२३॥
संसारे सारगन्धोऽपि न कश्चिदिह विद्यते । धर्म एको महाबन्धुः सारः सर्वशरीरिणाम् ॥२४॥
विमोक्षं यदि नामास्मात्[3] प्राप्स्यामो बन्धनाद् वयम् । पारणां पाणिमात्रेण करिष्यामो निरम्बराः ॥२५॥
प्रतिज्ञामेवमारूढा रामस्यान्तिकमाश्रिताः । विभीषणं समाजग्मुः कुम्भकर्णादयो नृपाः ॥२६॥
वृत्ते यथायथं तत्र दुःखसम्भाषणेऽगदन् । प्रशान्ताः कुम्भकर्णाद्या बलनारायणाविति ॥२७॥
अहो वः परमं धैर्यं गाम्भीर्यं चेष्टितं बलम् । सुरैरप्यजयो नीतो मृत्युं यद्राक्षसाधिपः[4] ॥२८॥
परं कृतापकारोऽपि मानी निर्व्यूढभाषितः । अत्युन्नतगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥२९॥

अनेक उत्तम विद्याधर जो रामके कटकमें कैद थे तथा खन खन करनेवाली बड़ी मोटी बेड़ियोंसे जो सहित थे वे प्रमाद रहित सावधान चित्तके धारक शूरवीरों द्वारा लाये गये ॥१४–१५॥ दिग्गजोंके समान उन सबको लाये जाते देख, समूहके बीच बैठे हुए विद्याधर इच्छानुसार परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे कि यदि कहीं रावणकी जलती चिताको देखकर इन्द्रजित् अथवा कुम्भकर्ण क्रोधको प्राप्त होता है अथवा इन दोमें से एक भी बिगड़ उठता है तो उसके सामने खड़ा होनेके लिए वानरोंकी सेनामें कौन राजा समर्थ हैं ? ॥१६–१८॥ उस समय जो जहाँ बैठा था उस स्थानसे नहीं उठा सो ठीक ही है क्योंकि ये सब रणके अग्रभागमें उनका बल देख चुके थे ॥१९॥ भामण्डलने अपने प्रधान योद्धाओंसे कह दिया कि विभीषणका अब भी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥२०॥ क्योंकि कदाचित् बन्धनसे छूटे हुए इन आत्मीय जनोंको पाकर भाईके दुःखसे संतप्त रहनेवाले इसके विकार उत्पन्न हो सकता है ॥२१॥ इस प्रकार जिन्हें नाना प्रकारकी शङ्काएँ उत्पन्न हो रही थीं ऐसे भामण्डल आदिके द्वारा घिरे हुए कुम्भकर्णादि राम लक्ष्मणके समीप लाये गये ॥२२॥

वे कुम्भकर्णादि सभी पुरुष राग-द्वेषसे रहित हो हृदयसे मुनिपनाको प्राप्त हो चुके थे, सौम्य दृष्टिसे पृथिवीको देखते हुए आ रहे थे, सबके मुख अत्यन्त शुभ-शान्त थे ॥२३॥ वे अपने मनमें यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि इस संसारमें कुछ भी सार नहीं है एक धर्म ही सार है जो सब प्राणियोंका महाबन्धु है। यदि हम इस बन्धनसे छुटकारा प्राप्त करेंगे तो निर्ग्रन्थ साधु हो पाणि मात्र से ही आहार ग्रहण करेंगे। इस प्रकारकी प्रतिज्ञाको प्राप्त हुए वे सब रामके समीप आये। कुम्भकर्ण आदि राजा विभीषणके भी सम्मुख गये ॥२४–२६॥ तदनन्तर जब दुःखके समयका वार्तालाप धीरे-धीरे समाप्त हो गया तब परम शान्तिको धारण करनेवाले कुम्भकर्णादि ने राम-लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा कि अहो ! आप लोगोंका धैर्य, गाम्भीर्य, चेष्टा तथा बल आदि सभी उत्कृष्ट है क्योंकि जो देवों के द्वारा भी अजेय था ऐसे रावणको आपने मृत्यु प्राप्त करा दी ॥२७–२८॥ अत्यन्त अपकारी, मानी और कटुभाषी होनेपर भी यदि शत्रुमें उत्कृष्ट गुण हैं तो वह विद्वानोंका प्रशंसनीय ही होता है ॥२९॥

---

१. यातु म० । २. स्थातुं म० । ३. नामेति सम्भावनायाम् । ४. मद्राक्षसाधिपः म० ।

परिसान्त्व्य ततश्चक्री वचनैर्हृदयङ्गमैः । जगाद पूर्ववद्यूयं भोगैस्तिष्ठत सङ्गताः ॥३०॥
गदितं तैरलं भोगैरस्माकं विषदारुणैः । महामोहावहैर्भीमैः सुमहादुःखदायिभिः ॥३१॥
उपायाः सन्ति ते नैव यैर्न ते कृतसान्त्वनाः । तथापि भोगसम्बन्धं प्रतीयुर्न मनस्विनः ॥३२॥
नारायणे तथालग्ने स्वयं हलधरेऽपि च । दृष्टिर्भोगे पराचीना तेषामासीद्रवाविव ॥३३॥
भिन्नाञ्जनदलच्छाये तस्मिन् सुसरसो जले । अबन्धनैरिभैः साकं स्नाताः सर्वे सगन्धिनि ॥३४॥
राजीवसरसस्तस्मादुत्तीर्यानुक्रमेण च । यथा स्वं निलयं जग्मुः कपयो राक्षसास्तथा ॥३५॥
सरसोऽस्य तटे रम्ये खेचरा बद्धमण्डलाः । केचिच्छूरकथां चक्रुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३६॥
ददुः केचिदुपालम्भं दैवस्य क्रूरकर्मणः । मुमुचुः केचिदस्राणि[1] सन्ततानि स्वनोज्झितम् ॥३७॥
आपूर्यमाणचेतस्का गुणैः स्मृतिपथं गतैः । रावणीयैर्जनाः केचिद्रुरुदुर्मुक्तकण्ठकम् ॥३८॥
चित्रतां कर्मणां केचिदवोचन्नतिसङ्कटाम् । अन्ये संसारकान्तारं निनिन्दुरतिदुस्तरम् ॥३९॥
केचिद्भोगेषु विद्वेषं परमं समुपागताः । राजलक्ष्मीं चलां केचिदमन्यन्त निरर्थकाम् ॥४०॥
गतिरेषैव वीराणामिति केचिद् बभाषिरे । अकार्यगर्हणं केचिच्चक्रुरुत्तमबुद्धयः ॥४१॥
रावणस्य कथां केचिदभजन् गर्वशालिनीम् । केचित्पद्मगुणानूचुः शक्तिं केचिच्च लाक्ष्मणीम् ॥४२॥
केचिद् बलमस्पृष्यन्तो मन्दकम्पितमस्तकाः । सुकृतस्य फलं वीराः शशंसुः स्वच्छचेतसः ॥४३॥
गृहे गृहे तदा सर्वाः क्रियाः प्राप्ताः परिक्षयम् । प्रावर्तन्त कथा एव शिशूनामपि केवलाः ॥४४॥

तदनन्तर लक्ष्मणने मनोहर वचनों द्वारा सान्त्वना देकर कहा कि आप सब पहले की तरह भोगोपभोग करते हुए आनन्दसे रहिये ॥३०॥ यह सुन उन्होंने कहा कि विषके समान दारुण, महामोहको उत्पन्न करनेवाले, भयङ्कर तथा महादुःख देनेवाले भोगोंकी हमें आवश्यकता नहीं है ॥३१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! उस समय वे उपाय शेष नहीं रह गये थे जिनसे उन्हें सान्त्वना न दी गई हो परन्तु फिर भी उन मनस्वी मनुष्योंने भोगोंका सम्बन्ध स्वीकृत नहीं किया ॥३२॥ यद्यपि नारायण और बलभद्र स्वयं उस तरह उनके पीछे लगे हुए थे अर्थात् उन्हें भोग स्वीकृत करानेके लिए बार-बार समझा रहे थे तथापि उनकी दृष्टि भोगोंसे उस तरह विमुख ही रही जिस तरह कि सूर्यसे लगी दृष्टि अन्धकारसे विमुख रहती है ॥३३॥ मसले हुए अञ्जनके कणोंके समान कान्तिवाले उस सरोवरके सुगन्धित जलमें बन्धनमुक्त कुम्भकर्णादिके साथ सबने स्नान किया ॥३४॥ तदनन्तर उस पद्मसरोवरसे निकलकर सब वानर और राक्षस, यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३५॥ कितने ही विद्याधर इस सरोवरके मनोहर तटपर मण्डल बाँधकर बैठ गये और आश्चर्यसे चकितचित्त होते हुए शूरवीरोंकी कथा करने लगे ॥३६॥ कितने ही विद्याधर क्रूरकर्मा दैवके लिए उपालम्भ देने लगे और कितने ही शब्दरहित–चुपचाप अत्यधिक अश्रु छोड़ने लगे ॥३७॥ स्मृतिमें आये हुए रावणके गुणोंसे जिनके चित्त भर रहे थे ऐसे कितने ही लोग गला फाड़-फाड़कर रो रहे थे ॥३८॥ कितने ही लोग कर्मोंकी अत्यन्त संकटपूर्ण विचित्रताका निरूपण कर रहे थे और कितने ही अत्यन्त दुस्तर संसाररूपी अटवीकी निन्दा कर रहे थे ॥३९॥ कितने ही लोग भोगोंमें परम विद्वेषको प्राप्त होते हुए राज्यलक्ष्मीको चञ्चल एवं निरर्थक मान रहे थे ॥४०॥ कोई यह कह रहे थे कि वीरोंकी ऐसी ही गति होती है और कोई उत्तम बुद्धिके धारक अकार्य–खोटे कार्यकी निन्दा कर रहे थे ॥४१॥ कोई रावणकी गर्वभरी कथा कर रहे थे, कोई रामके गुण गा रहे थे और कोई लक्ष्मणकी शक्तिकी चर्चा कर रहे थे ॥४२॥ जिनका मस्तक धीरे-धीरे हिल रहा था तथा जिनका चित्त अत्यन्त स्वच्छ था ऐसे कितने ही वीर, रामकी प्रशंसा न कर पुण्यके फलकी प्रशंसा कर रहे थे ॥४३॥ उस समय घर-घरमें सब कार्य समाप्त हो गये थे केवल बालकोंमें कथाएँ चल रहीं थीं ॥४४॥ उस

१. -दश्रूणि ।

लङ्कायां सर्वलोकस्य बाष्पदुर्दिनकारिणः। शोकेनैव व्यलीयन्त महता कुट्टिमान्यपि ॥४५॥
शेषभूतव्यपोहेन जलात्मकमिवाभवत्। नयनेभ्यः प्रसृतेन वारिणा भुवनं तदा ॥४६॥
हृदयेषु पदं चक्रुस्तापाः परमदुःसहाः। नेत्रवारिप्रवाहेभ्यो भीता इव समन्ततः ॥४७॥
धिक्धिक्कष्टमहो हा ही किमिदं जातमद्भुतम्। एवं निर्जग्मुरालापा जनेभ्यो बाष्पसङ्गताः ॥४८॥
भूमिशय्यासु मौनेन केचिन्नियमिताननाः। निष्कम्पविग्रहास्तस्थुः पुस्तकर्मगता इव ॥४९॥
बभञ्जुः केचिदस्त्राणि चिक्षिपुर्भूषणानि च। रमणीवदनाम्भोजदृष्टिद्वेषमुपागताः ॥५०॥
उष्णैर्निश्वासवातूलैर्दीर्घिष्ठैः कलुषैरलम्। अमुञ्चदिव तद्दुःखं प्ररोहान्विरलेतरान् ॥५१॥
केचित् संसारभावेभ्यो निर्वेदं परमागताः। चक्रुर्दैगम्बरीं दीक्षां मानसे जिनभाषिताम् ॥५२॥
अथ तस्य दिनस्यान्ते महासङ्घसमन्वितः। [1]अप्रमेयबलः ख्यातो लङ्कां प्राप्तो मुनीश्वरः ॥५३॥
रावणे जीवति प्राप्तो यदि स्यात् स महामुनिः। लक्ष्मणेन समं प्रीतिर्जाता स्यात्तस्य पुष्कला ॥५४॥
तिष्ठन्ति मुनयो यस्मिन् देशे परमलब्धयः। तथा केवलिनस्तत्र योजनानां शतद्वयम् ॥५५॥
पृथिवी स्वर्गसङ्काशा जायते निरुपद्रवा। वैरानुबन्धमुक्ताश्च भवन्ति निकटे नृपाः ॥५६॥
अमूर्तत्वं यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च। महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याह्लादनं तथा ॥५७॥
अनेकाद्भुतसम्पन्नैर्मुनिभिः स समावृतः। यथाऽऽगतस्तथा वक्तुं केन श्रेणिक शक्यते ॥५८॥
सुवर्णकुम्भसङ्काशैः[2] संयतद्वर्यां स सङ्गतः। आगत्याऽऽवासितो धीमानुद्याने कुसुमायुधे ॥५९॥

समय लङ्कामें जब कि सब लोग दुर्दिनकी भाँति लगातार अश्रुओंकी वर्षा कर रहे थे तब ऐसा जान पड़ता था मानो वहाँके फर्स भी बहुत भारी शोकके कारण पिघल गये हों ॥४५॥ उस समय लङ्कामें जहाँ देखो वहाँ नेत्रोंसे पानी ही पानी झर रहा था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो संसार अन्य तीन भूतोंको दूर कर केवल जल रूप ही हो गया था ॥४६॥ सब ओर बहनेवाले नेत्र-जलके प्रवाहोंसे भयभीत होकर ही मानो अत्यन्त दुःसह सन्तापोंने हृदयोंमें स्थान जमा रक्खा था ॥४७॥ धिक्कार हो, धिक्कार हो, हाय-हाय बड़े कष्टकी बात है, अहो हा-ही यह क्या अद्भुत कार्य हो गया, उस समय लोगोंके मुखसे अश्रुओंके साथ-साथ ऐसे ही शब्द निकल रहे थे ॥४८॥ कितने ही लोग मौनसे मुँह बन्दकर पृथ्वीरूपी शय्यापर निश्चल शरीर होकर इस प्रकार बैठे थे मानो मिट्टीके पुतले ही हों ॥४९॥ कितने ही लोगोंने शस्त्र तोड़ डाले, आभूषण फेंक दिये और स्त्रियोंके मुख कमलसे दृष्टि हटा ली ॥५०॥ कितने ही लोगोंके मुखसे गरम लम्बे और कलुषित श्वासके बघरूले निकल रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उनका दुःख अविरल अंकुर ही छोड़ रहा हो ॥५१॥ कितने ही लोग संसारसे परम निर्वेदको प्राप्त हो मनमें जिन-कथित दिगम्बर दीक्षाको धारण कर रहे थे ॥५२॥

अथानन्तर उस दिनके अन्तिम पहरमें अनन्तवीर्य नामक मुनिराज महासंघके साथ लङ्का नगरीमें आये ॥५३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि यदि रावणके जीवित रहते वे महामुनि लङ्कामें आये होते तो लक्ष्मणके साथ रावणकी घनी प्रीति होती ॥५४॥ क्योंकि जिस देशमें ऋद्धि-धारी मुनिराज और केवली विद्यमान रहते हैं वहाँ दो सौ योजनतककी पृथ्वी स्वर्गके सदृश सर्वप्रकारके उपद्रवोंसे रहित होती है और उनके निकट रहनेवाले राजा निर्वैर हो जाते हैं ॥५५-५६॥ जिस प्रकार आकाशमें अमूर्तिकपना और वायुमें चञ्चलता स्वभावसे है उसी प्रकार महा-मुनिमें लोगोंको आह्लादित करनेकी क्षमता स्वभावसे ही होती है ॥५७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अनेक आश्चर्योंसे युक्त मुनियोंसे घिरे हुए वे अनन्तवीर्य मुनिराज लङ्कामें जिस प्रकार आये थे उसका कथन कौन कर सकता है ? ॥५८॥ जो अनेक ऋद्धियोंसे सहित होनेके

---

१. अनन्तवीर्यः। २. संकाशसंयतद्वर्या म०।

षट्पञ्चाशत्सहस्रैस्तु खेचरैर्मुनिभिः परैः । रेजे तत्र समासीनो ग्रहैर्विधुरिवाऽऽवृतः ॥६०॥
शुक्लध्यानप्रवृत्तस्य सद्विविक्ते शिलातले । तस्यामेव समुत्पन्नं शर्वर्यां तस्य केवलम् ॥६१॥
तस्यातिशयसम्बन्धं कीर्त्यमानं मनोहरम् । शृणु श्रेणिक ! पापस्य नोदनं परमाद्भुतम् ॥६२॥

अथ[1] मुनिवृषभं तथाऽनन्तसत्त्वं मृगेन्द्रासने सन्निविष्टं भुवोऽधोनिवासाः मरुन्नागविद्युत्सुपर्णादयो विंशतेरर्धभेदाः । तथा षोडशार्द्धप्रकाराः स्मृता व्यन्तराः किन्नराद्याः सहस्रांशुचन्द्रग्रहाद्याश्च पञ्चप्रकारान्विता ज्योतिराख्या, द्विरष्टप्रकाराश्च कल्पालयाः ख्यातसौधर्मनामादयो धातकीखण्डवास्ये समुद्भूतकालोत्सवे स्फीतपूजां सुमेरोः शिरस्युत्तमे देवदेवं जिनेन्द्रं शुभै रत्नचामीकरकुम्भैः सुभक्त्याभिषिच्य प्रणुत्य, प्रगीर्भिः पुनर्मातुरङ्के सुखं स्थापयित्वा प्रभुं बालकं बालकर्मप्रमुक्तं प्रवन्द्य प्रहृष्टा विधायोचितं वस्तुकृत्यं परावर्तमानाः, समालोक्य तस्याभिजग्मुः समीपं, प्रभावानुकृष्टाः प्रवरविमानानि केचित्समानानि रत्नोरुदामानि दीप्तांशु-बिम्बप्रकाशानि देवाः समारूढवन्तोऽत्र केचिच्च शङ्खप्रतीकाशसद्राजहंसाश्रिताः केचिदुद्दामदानप्रसेकातिसद्-गन्धसम्बन्धसम्भ्रान्तगुञ्जत्पतद्भ्रि-प्रहृष्टोरुचक्रातिनीलप्रभाजालकोच्छ्वासिगण्डस्थलानेकपाधीशपृष्ठाधिरूढास्तथा बालचन्द्राभदंष्ट्राकरालाननव्याघ्रसिंहादिवाहाधिरूढा मुनेरन्तिकं प्रस्थिताश्चारुचित्ताः पटुपटहमृदङ्गगम्भीर-

कारण सुवर्णकलशके समान जान पड़ते थे, ऐसे वे मुनि लङ्कामें आकर कुसुमायुधनामक उद्यानमें ठहरे ॥५६॥ वे छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनियोंके साथ उस उद्यानमें बैठे हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥६०॥ निर्मल शिलातलपर शुक्लध्यानमें आरूढ हुए उन मुनिराजको उसी रात्रिमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६१॥ हे श्रेणिक ! मैं पापको दूर करनेवाला परमआश्चर्यसे युक्त उनके मनोहर अतिशयोंका वर्णन करता हूँ सो सुन ॥६२॥

अथानन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होते ही वे मुनिराज वीर्यान्तराय कर्मका क्षय हो जानेसे अनन्तबलके स्वामी हो गये तथा देवनिर्मित सिंहासन पर आरूढ हुए। पृथ्वीके नीचे पाताल-लोकमें निवास करनेवाले वायुकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार तथा सुपर्णकुमार आदि दश प्रकारके भवनवासी, किन्नरोंको आदि लेकर आठ प्रकारके व्यन्तर, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह आदि पाँच प्रकारके ज्योतिषी और सौधर्म आदि सोलह प्रकारके कल्पवासी इस तरह चारों निकायके देव धातकी खण्डद्वीपमें उत्पन्न हुए किसी तीर्थङ्करके जन्मकल्याणक सम्बन्धी उत्सवमें गये हुए थे, वहाँ विशाल पूजा तथा सुमेरु पर्वतके उत्तम शिखर पर विराजमान देवाधिदेव जिनेन्द्र बालकका शुभ रत्नमयी एवं सुवर्णमयी कलशों द्वारा अभिषेक कर उन्होंने उत्तम शब्दोंसे उनकी स्तुति की। तदनन्तर वहाँसे लौटकर जिन बालकको माताकी गोदमें सुखसे विराजमान किया। जो बालक अवस्था होने पर भी बालकों जैसी चपलतासे रहित थे ऐसे जिन बालकको नमस्कार कर उन देवोंने हर्षित हो, मेरुसे लौटनेके बाद तीर्थङ्करके घर पर होनेवाले ताण्डवनृत्य आदि कार्य यथा-योग्य रीतिसे किये। तदनन्तर वहाँसे लौटकर लङ्कामें अनन्तवीर्य मुनिका केवलज्ञान महोत्सव देख उनके समीप आये। मुनिराजके प्रभावसे खिंचे हुए उन देवोंमें कितने ही देव रत्नोंकी बड़ी-बड़ी मालाओंसे युक्त, सूर्यबिम्बके समान प्रकाशमान एवं योग्य प्रमाणसे सहित उत्तम विमानोंमें आरूढ थे, कितने ही शङ्खके समान सफेद उत्तमराज हंसोंपर सवार थे, कितने ही उन हाथियोंकी पीठपर आरूढ थे, जिनके कि गण्डस्थल अत्यधिक मद सम्बन्धी श्रेष्ठ सुगन्धिके सम्बन्धसे गूँजते हुए भ्रमरसमूहकी श्यामकांतिके कारण कुछ बढ़े हुए-से दिखायी देते थे और कितने ही बालचंद्रमा-के समान दाढ़ोंसे भयङ्कर मुखवाले व्याघ्र-सिंह आदि वाहनों पर आरूढ थे। वे सब देव प्रसन्न चित्तके धारक हो उन मुनिराजके समीप आ रहे थे। उस समय जोर-जोरसे बजनेवाले पटह,

१. वृत्तगन्धिगद्ययुक्तोऽयं भागः। अत्र सर्वत्र भागे भुजङ्गप्रयातच्छन्दसः आभासो दृश्यते।

भेरीनिनादैः क्वणद्वंशवीणासुमन्दैर्झणज्झर्झरीकैः, स्वनद्भूरिशंखैर्महामेघसङ्घातनिर्घोषमन्द्रध्वनि[1]दुन्दुभिव्रात-रम्यैर्मनोहारिदेवाङ्गनागीतकान्तैर्नभोमण्डलं व्याप्तमासीत्तदा प्रतिभग्नतमसि प्रभवत्प्रभामालोक्य तत्रार्धरात्रे-विमानस्थरत्नादिजातं निशम्य ध्वनिं दुन्दुभीनां च [2]तारसमुद्विग्नचित्तोऽभवद्राघवो लक्ष्मणश्च क्षणं तद् विदित्वा यथावत्पुनस्तुष्टिमेतौ। उदधिरिव कपिध्वजानां बलं क्षुभ्यते राक्षसानां तथैवोर्जितं भक्तितस्ते च विद्याधराः पद्मनारायणाद्याश्च सन्मानवाः सद्द्विपेन्द्राधिरूढास्तथा भानुकर्णेन्द्रजिन्मेघवाहादयो गन्तुमभ्युद्यताः रथ-वरतुरगान् समारुह्य शुभ्रातपत्रध्वजप्रौढहंसावलीशोभनप्रोल्लसच्चामराटोपयुक्ता नभश्छादयन्तस्समीपीबभूवुः। प्रसूनायुधोद्यानमिन्द्रा इवोदारसम्मोदगन्धर्वयक्षाप्सरःसङ्घसंसेविता वाहनेभ्योऽवतीर्याधिनिर्मुक्तके[3]त्वातपत्रा-दियोगाः समागत्य योगीन्द्रमभ्यर्च्य पादारविन्दद्वयं संविधाय प्रणामं प्रभक्त्या परिष्टुत्य सत्स्तोत्रमन्त्रप्रगाढैर्व-चोभिर्यथार्हं क्षितौ सन्निविश्य स्थिता धर्मशुश्रूषया युक्तचित्ताः सुखं शुश्रुवुर्धर्ममेवं मुनीन्द्रास्यतो निर्गतम्। गतय [4]इह चतस्रो भवे यासु नानामहादुःखचक्राधिरूढाः सदा देहिनः पर्यटन्त्यष्टकर्मावनद्धाः शुभं वाशुभं च स्वयं कर्म कुर्वन्ति रौद्रार्तयुक्ताः महामोहनीयेन तस्मिन्नरा बुद्धियु[5]क्ताः कृता ये सदा प्राणिघातैरसत्यैः परद्र-व्यहारैः परस्त्रीपरिष्वङ्गरागैः प्रमाणप्रहीणार्थसङ्गैर्महालोभसंवर्द्धितैर्यान्ति योगं कुकर्माभिजुष्टास्तके मृत्युमाप्य

मृदङ्ग, गम्भीर और भेरियोंके नादसे, बजती हुई बाँसुरियों और वीणाओंकी उत्तम झनकारसे, झन-झन करनेवाली झाँझोंसे शब्द करनेवाले अनेक शङ्खोंसे, महा मेघमण्डलकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त दुन्दुभि-समूहके रमणीय शब्दोंसे और मनको हरण करने वाली देवाङ्गनाओंके सुन्दर सङ्गीतसे आकाशमण्डल व्याप्त हो गया था। उस अर्ध रात्रिके समय सहसा अन्धकार विलीन हो गया और विमानोंमें लगे हुए रत्नों आदिका प्रकाश फैल गया, सो उसे देख तथा दुन्दुभियोंकी गम्भीर गर्जना सुनकर राम-लक्ष्मण पहले तो कुछ उद्विग्नचित्त हुए फिर क्षण-एकमें ही यथार्थ समाचार जानकर सन्तोषको प्राप्त हुए। वानरों और राक्षसोंकी सेनामें ऐसी हलचल मच गई मानो समुद्र ही लहराने लगा हो। तदनन्तर भक्तिसे प्रेरित विद्याधर, राम-लक्ष्मण आदि सत्पुरुष और भानुकर्ण, इन्द्रजित्, मेघवाहन आदि राक्षस, कोई उत्तम हाथियों पर आरूढ होकर और कोई रथ तथा उत्तम घोड़ों पर सवार हो केवल भगवान्‌के समीप चले। उस समय वे अपने सफेद छत्रों, ध्वजाओं और तरुण हंसावलीके समान शोभायमान चमरोंसे युक्त थे तथा आकाशको आच्छादित करते हुए जा रहे थे।

जिस प्रकार अत्यधिक हर्षसे युक्त गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओंके समूहसे सेवित इन्द्र अपने कामोद्यानमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार सब लोगोंने अपने-अपने वाहनोंसे उतरकर तथा ध्वजा छत्रादिके संयोगका त्यागकर लङ्काके उस कुसुमायुध उद्यानमें प्रवेश किया। समीपमें जाकर सबने मुनिराजकी पूजा की, उनके चरण कमल युगलमें प्रणाम किया और उत्तम स्तोत्र तथा मन्त्रोंसे परिपूर्ण वचनोंसे भक्ति पूर्वक स्तुति की। तदनन्तर धर्मश्रवण करनेकी इच्छासे सब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये और सावधान चित्त होकर मुनिराजके मुखसे निकले हुए धर्मका इस प्रकार श्रवण करने लगे—

उन्होंने कहा कि इस संसारमें नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देवके भेदसे चार गतियाँ हैं जिनमें नाना प्रकारके महादुःखरूपी चक्र पर चढ़े हुए समस्त प्राणी निरन्तर घूमते रहते हैं तथा अष्टकर्मोंसे बद्ध हो स्वयं शुभ अशुभ कर्म करते हैं। सदा आर्त्तरौद्र ध्यानसे युक्त रहते हैं तथा मोहनीय कर्म उन्हें बुद्धिरहित कर देता है। ये प्राणी सदा प्राणिघात, असत्य भाषण, पर-द्रव्यापहरण, परस्त्री समालिङ्गन और अपरिमित धनका समागम, महालोभ कषायके साथ

१. ध्वनिं म०। २. तारां म०। ३. केत्वादिपत्र म० ज०। ४. इव म०। ५. युक्ताः म० ज०।

प्रपद्यन्त्यधस्तान्महीरत्नप्रभाशर्करावालुकापङ्कधूमप्रभाध्वान्तभातिप्रकृष्टान्धकाराभिधास्ताश्च नित्यं महाध्वान्तयुक्ताः सुदुर्गन्धबीभत्सदुःप्रेक्ष्यदुःस्पर्शरूपा महादारुणास्तप्तलोहोपमक्ष्मातलाः क्रन्दनाक्रोशनत्रासनैराकुला यत्र ते नारकाः पापबन्धेन दुष्कर्मणा सर्वकालं महातीव्रदुःखामनेकार्णवोपम्यबन्धस्थितिं प्राप्नुवन्तीदमेवं विदित्वा बुधाः पापबन्धाद्‌तिद्विष्टचित्ता रमध्वं सुधर्मे व्रतनियमविनाकृताश्च स्वभावार्जवाद्यैर्गुणैरन्विताः केचिदायान्ति मानुष्यमन्ये तपोभिर्विचित्रैः सुराणां निवासं ततश्च्युताः प्राप्य भूयो मनुष्यत्वमुत्सृष्टधर्माभिलाषा जना ये भवन्त्येतके श्रेयसा विप्रमुक्ताः पुनर्जन्ममृत्युद्रुमोदारकान्तारमध्ये भ्रमन्त्युग्रदुःखाहताशाः। अथातोऽपरे भव्यधर्मस्थिताः प्राणिनो देवदेवस्य वाग्भिर्भृशं भाविताः सिद्धिमार्गानुसारेण शीलेन सत्येन शौचेन सम्यक्‌तपोदर्शनज्ञानचारित्रयोगेन चात्युत्कटाः येन ये यावदष्टप्रकारस्य कुर्वन्ति निर्नाशनं कर्मणस्तावदुत्तुङ्गभूत्यन्विताः स्वर्भवानां भवन्त्युत्तमाः स्वामिनस्तत्र चाम्भोधितुल्यान् प्रभूताननेकप्रभेदान् समासाद्य सौख्यं ततः प्रच्युता धर्मशेषस्य लब्ध्वा फलं स्फीतभोगान् श्रियं प्राप्य बोधिं परित्यज्य राज्यादिकं जैनलिङ्गं समादाय कृत्वा तपोऽत्यन्तघोरं समुत्पाद्य सद्ध्यानिनः केवलज्ञानमायुःक्षये कृत्स्नकर्मप्रमुक्ता भवन्तस्त्रिलोकाग्रमारुह्य सिद्धा अनन्तं शिवं सौख्यमात्मस्वभावं परिप्राप्नुवन्त्युत्तमम्।

उपजातिवृत्तम्

अथेन्द्रजिद्वारिदवाहनाभ्यां पृष्टः स्वपूर्वं जननं मुनीन्द्रः।
उवाच कौशाम्ब्यभिधानपुर्यां भ्रातृद्वयं निःस्वकुलीनमासीत् ॥६३॥

वृद्धिको प्राप्त हुए इन पाँच पापोंके साथ संसर्गको प्राप्त होते हैं। अन्तमें खोटे कर्मोंसे प्रेरित हुए मानव, मृत्युको प्राप्त हो नीचे पाताललोकमें जन्म लेते हैं। नीचेकी पृथिवीके नाम इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा और महातमःप्रभा। ये पृथिवियाँ निरन्तर महा अन्धकारसे युक्त, अत्यन्त दुर्गन्धित, घृणित दुर्दृश्य एवं दुःखदायी स्पर्श रूप हैं। महादारुण हैं, वहाँ की पृथिवी तपे हुए लोहे के समान हैं। सबकी सब तीव्र आक्रन्दन, आक्रोशन और भयसे आकुल हैं। जिन पृथिवियोंमें नारकी जीव पापसे बँधे हुए दुष्कर्मके कारण सदा महा तीव्र दुःख अनेक सागरोंकी स्थिति पर्यन्त प्राप्त होते रहते हैं। ऐसा जान कर हे विद्वज्जन हो पापबन्धसे चित्तको द्वेष युक्त कर उत्तम धर्ममें रमण करो। जो प्राणी व्रत-नियम आदिसे तो रहित हैं परन्तु स्वाभाविक सरलता आदि गुणोंसे सहित हैं ऐसे कितने ही प्राणी मनुष्य गतिको प्राप्त होते हैं और कितने ही नाना प्रकारके तपश्चरण कर देवगतिको प्राप्त होते हैं। वहाँसे च्युत हो पुनः मनुष्य पर्याय पाकर जो धर्म की अभिलाषा छोड़ देते हैं वे कल्याणसे रहित हो पुनः उग्र दुःखसे दुःखी होते हुए जन्म-मरणरूपी वृक्षोंसे युक्त विशाल संसार वनमें भ्रमण करते रहते हैं।

अथानन्तर जो भव्य प्राणी देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंसे अत्यन्त प्रभावित हो मोक्षमार्गके अनुरूप शील, सत्य, शौच, सम्यक् तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्रके युक्त होते हुए अष्ट कर्मोंके नाशका प्रयत्न करते हैं, वे उत्कृष्ट वैभवसे युक्त हो देवोंके उत्तम स्वामी होते हैं और वहाँ अनेक सागर पर्यन्त नाना प्रकारका सुख प्राप्त करते रहते हैं। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो अवशिष्ट धर्मके फल स्वरूप बहुत भारी भोग और लक्ष्मीको प्राप्त होते हैं और अन्तमें रत्नत्रयको प्राप्त कर राज्यादि वैभवका त्याग कर जैनलिङ्ग—निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण करते हैं तथा अत्यन्त तीव्र तपश्चरण कर शुक्लध्यानके धारी हो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और आयुःका क्षय होनेपर समस्त कर्मोंसे रहित होते हुए तीन लोकके अग्र भाग पर आरूढ़ हो सिद्ध बनते हैं एवं अन्तरहित आत्मस्वभावमय आह्लाद-रूप अनन्त सुख प्राप्त करते हैं।

अथानन्तर इन्द्रजित् और मेघवाहनने अनन्तवीर्य मुनिराजसे अपने पूर्वभव पूछे। सो इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि कौशाम्बी नगरीमें दरिद्रकुलमें उत्पन्न हुए दो भाई रहते थे।

आद्योऽत्र नाम्ना 'प्रथमो' द्वितीयः प्रकीर्तितः 'पश्चिम' नामधेयः ।
अथाऽन्यदा तां भवदत्तनामा पुरीं प्रयातो विहरन् भदन्तः ॥६४॥
श्रुत्वाऽस्य पार्श्वे विनयेन धर्मं तौ भ्रातरौ क्षुल्लकरूपमेतौ ।
मुनिं च तं द्रष्टुमितो नगर्यास्तस्याः पतिः सद्युतिरिन्दुनामा[1] ॥६५॥
उपेक्षयैवाऽऽदरकार्यमुक्तः स्थितः समालोक्य मुनिर्मनीषी ।
मिथ्या यतो दर्शनमस्य राज्ञो विज्ञातमेतेन तदानुपायम् ॥६६॥
श्रेष्ठीति नन्दीति जिनेन्द्रभक्तस्ततः पुरो द्रष्टुमितो भदन्तम् ।
तस्यादरो राजसमस्य भूत्या कृतोऽनगारेण यथाभिधानम् ॥६७॥
तमादृतं वीक्ष्य मुनीश्वरेण निदानमाबध्यत पश्चिमेन ।
भवाम्यहं नन्दिसुतो यथेति धर्मं तदर्थं च कुधीरकार्षीत् ॥६८॥
स बोध्यमानोऽप्यनिवृत्तचित्तो मृतो निदानग्रहदूषितात्मा ।
सुतोऽभवन्नन्दिन इन्दुमुख्यां सुयोषिति श्लाघ्यगुणान्वितायाम् ॥६९॥
गर्भस्थ[2] एवाऽत्र महीपतीनां स्थानेषु लिङ्गानि बहून्यभूवन् ।
एतस्य राज्योद्भवसूचनानि प्राकारपातप्रभृतीनि सद्यः ॥७०॥
ज्ञात्वा नृपास्तं विविधैर्निमित्तैर्महानरं भाविनमुग्रसूतिम् ।
जन्मप्रभृत्यादरसम्प्रयुक्तैर्द्रव्यैरसेवन्त सुदूतनीतैः ॥७१॥
रतेरसौ वर्द्धनमादधानः समस्तलोकस्य यथार्थशब्दः ।
अभून्नरेशो रतिवर्द्धनाख्यो यस्येन्दुरप्यागतवान् प्रणामम् ॥७२॥

पहलेका नाम 'प्रथम' था और दूसरा 'पश्चिम' कहलाता था। किसी एक दिन विहार करते हुए भवदत्त मुनि उस नगरीमें आये ॥६३-६४॥ उनके पास धर्म श्रवणकर दोनों भाई क्षुल्लक हो गये। किसी दिन उस नगरीका कान्तिमान इन्दु नामका राजा उन मुनिराजके दर्शन करने आया, सो उसे देख मुनिराज उपेक्षा भावसे बैठे रहे। उन्होंने राजाके प्रति कुछ भी आदर भाव प्रकट नहीं किया। इसका कारण यह था कि बुद्धिमान् मुनिराजने यह जान लिया था कि राजाका मिथ्या दर्शन अनुपाय है—दूर नहीं किया जा सकता ॥६५-६६॥ तदनन्तर राजाके चले जानेके बाद नगरका नन्दी नामक जिनेन्द्र भक्त सेठ मुनिके दर्शन करनेके लिये आया। वह सेठ विभूति में राजाके ही समान था और मुनिने उसके प्रति यथायोग्य सम्मान प्रकट किया ॥६७॥ नन्दी सेठको मुनिराजके द्वारा आदृत देख पश्चिम नामक क्षुल्लकने निदान बाँधा कि मैं नन्दी सेठके पुत्र होऊँ। यथार्थमें वह दुर्बुद्धि इसके लिए ही धर्म कर रहा था ॥६८॥ यद्यपि उसे बहुत समझाया गया तथापि उसका चित्त उस ओरसे नहीं हटा, अन्तमें वह निदान बन्धसे दूषित चित्त होता हुआ मरा और मरकर नन्दी सेठकी प्रशंसनीय गुणोंसे युक्त इन्दुमुखी नामक स्त्रीके पुत्र हुआ ॥६९॥ जब यह गर्भमें स्थित था तभी इसकी राज्य प्राप्तिकी सूचना देनेवाले, कोटका गिरना आदि बहुतसे चिह्न राजाओंके स्थानोंमें होने लगे थे ॥७०॥ नाना प्रकारके निमित्तोंसे यह जानकर कि यह आगे चलकर महापुरुष होगा। राजा लोग जन्मसे ही लेकर उत्तम दूतोंके द्वारा आदर पूर्वक भेजे हुए पदार्थोंसे उसकी सेवा करने लगे थे ॥७१॥ वह सब लोगोंकी रति अर्थात् प्रीतिकी वृद्धि करता था, इसलिए सार्थक नामको धारण करने वाला रतिवर्द्धन नामका राजा हुआ। ऐसा राजा कि कौशाम्बीका अधिपति इन्दु भी जिसे प्रणाम करता था ॥७२॥

१. रिन्द्रनामा म०। २. गर्भस्य म०।

एवं स तावत्सुमहाविभूत्या मत्तोऽभवद् यः पुनरस्य पूर्वम् ।
ज्यायानभूद्धर्ममसौ विधाय मृत्वा गतः कल्पनिवासिभावम् ॥७३॥
स पूर्वमेव प्रतिबोधकार्ये कनीयसा याचित उद्धदेवः ।
समाश्रितः क्षुल्लकरूपमेतं प्रबोधमानेतुमभूत्कृताशः ॥७४॥
गृहं च तस्य प्रविशन्नियुक्तैर्द्वारे नरैर्दूरनिराकृतः सन् ।
रूपं श्रितोऽसौ रतिवर्द्धनस्य देवः क्षणेनोपनतं यथावत् ॥७५॥
कृत्वा च तं तन्नगरप्रभावितोन्मत्तकाकारमरण्यमारात् ।
निर्वास्य गत्वा [1]गदति स्म का ते वार्त्ताऽधुना मत्परि[2]भूतिभाजः ॥७६॥
जगौ च पूर्वं जननं यथावत्ततः प्रबोधं समुपागतोऽसौ ।
सम्यक्त्वयुक्तो रतिवर्द्धनोऽभून्नन्द्यादयश्चापि नृपा विशेषात् ॥७७॥
प्रव्रज्य राजा प्रथमामरस्य गतः सकाशं कृतकालधर्मः ।
ततश्च्युतौ तौ विजयेऽभिजातौ उर्वोर्वसाख्यौ नगरे नरेन्द्रात् ॥७८॥
सहोदरौ तौ पुनरेव धर्मं विधाय जैनं त्रिदशावभूताम् ।
ततश्च्युताविन्द्रजिदब्दवाहौ जातौ भवन्ताविह खेचरेशौ ॥७९॥
या नन्दिनश्चेन्दुमुखी द्वितीया भवान्तरान्तर्हितजन्मिका सा ।
मन्दोदरी स्नेहवशेन सेयं माताऽभवद्वा जिनधर्मसक्ता ॥८०॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा भवमिति विविधं त्यक्त्वा संसारवस्तुनि प्रीतिम् ।
पुरुसंवेगसमेतौ जगृहतुरुग्रामिमौ दीक्षाम् ॥८१॥

इस प्रकार प्रथम और पश्चिम इन दो भाइयोंमें पश्चिम तो महाविभूति पाकर मत्त हो गया उसके मदमें भूल गया और पूर्वभवमें जो उसका बड़ा भाई प्रथम था वह मरकर स्वर्गमें देव पर्यायको प्राप्त हुआ ॥७३॥ पश्चिमने प्रथमसे उस पर्यायमें याचना की थी कि यदि तुम देवताओं और मैं मनुष्य होऊँ तो तुम मुझे सम्बोधन करना। इस याचनाकी स्मृतिमें रखता हुआ प्रथमका जीव देव रतिवर्धनको सम्बोधनेके लिए क्षुल्लकका रूपधर कर उसके घरमें प्रवेश कर रहा था कि द्वार पर नियुक्त पुरुषों द्वारा उसने उसे दूर हटा दिया। तदनन्तर उस देवने क्षणभरमें रतिवर्धनका रूप रख लिया और असली रतिवर्धनको पागल जैसा बनाकर जङ्गलमें दूर खदेड़ दिया। तदनन्तर उसके पास जाकर बोला कि तुमने मेरा अनादर किया था, अब कहो तुम्हारा क्या हाल है? ॥७४-७६॥ इतना कहकर उस देवने रतिवर्धनके लिए अपने पूर्व जन्मका यथार्थ निरूपण किया जिससे वह शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हो सम्यग्दृष्टि हो गया। साथ ही नन्दी सेठ आदि भी सम्यग्दृष्टि हो गये ॥७७॥ तदनन्तर राजा रतिवर्धन दीक्षा धारण कर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त होता हुआ बड़े भाई प्रथमका जीव जहाँ देव था वहीं जाकर उत्पन्न हुआ। तदनन्तर दोनों देव वहाँसे च्युत हो विजय नामक नगरमें वहाँके राजाके उर्व और उर्वस् नामक पुत्र हुए ॥७८॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र प्रणीत धर्म धारण कर दोनों भाई फिरसे देव हुए और वहाँसे च्युत हो आप दोनों यहाँ इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक विद्याधराधिपति हुए हो ॥७९॥ और जो नन्दी सेठकी इन्द्रमुखी नामकी भार्या थी वह भवान्तरमें एक जन्मका अन्तर ले स्नेहके कारण जिनधर्ममें लीन तुम्हारी माता मन्दोदरी हुई है ॥८०॥

इस प्रकार अपने अनेक भव सुन संसार सम्बन्धी वस्तुओंमें प्रीति छोड़ परम संवेगसे

१. गदितस्य म०, गदितस्स ख० । २. मत्परिभूतभाजः म० ।

कुम्भश्रुतिमारीचावन्येऽत्र महाविशालसंवेगाः ।
अपगतकषायरागाः श्रामण्येऽवस्थिताः परमे ॥८२॥
तृणमिव खेचरविभवं विहाय विधिना सुधर्मचरणस्थाः ।
बहुविधलब्धिसमेताः पर्यटुरिमे महीं मुनयः ॥८३॥
मुनिसुव्रततीर्थकृतस्तीर्थे तपसा परेण सम्बद्धाः ।
ज्ञेयास्ते वरमुनयो वन्द्या [1]भव्यासुवाहानाम् ॥८४॥
पतिपुत्रविरहदुःखज्वलनेन विदीपिता सती जाता ।
मन्दोदरी नितान्तं विह्वलहृदया महाशोका ॥८५॥
मूर्च्छामेत्य विबोधं प्राप्य पुनः कुररकामिनी करुणम् ।
कुरुते स्म समाक्रन्दं पतिता दुःखाम्बुधावुग्रे ॥८६॥
हा पुत्रेन्द्रजितेदं व्यवसितमीदृक् कथं त्वया कृत्यम् ।
हा मेघवाहन कथं जननी नापेक्षिता दीना ॥८७॥
युक्तमिदं किं भवतोरनपेक्ष्य यदुग्रदुःखसन्तप्ताम् ।
मातरमेतद्विहितं किञ्चित्कार्यं सुदुःखेन ॥८८॥
विरहितविद्याविभवौ मुक्ततनू क्षितितले कथं परुषे ।
स्थातास्थो मे वत्सौ देवोपमभोगदुर्ललितौ ॥८९॥
हा तात कृतं किमिदं भवताऽपि विमुच्य भोगमुत्तमं रूपम् ।
एकपदे कथय कथं [2]त्यक्तः स्नेहस्त्वया त्वपत्यासक्तः ॥९०॥
जनको भर्ता पुत्रः स्त्रीणामेतावदेव रक्षानिमित्तम् ।
मुक्ता सर्वैरेभिः कं शरणं संश्रयामि पुण्यविहीना ॥९१॥

युक्त हुए इन्द्रजित् और मेघनादने कठिन दीक्षा धारण कर ली । इनके सिवाय जो कुम्भकर्ण तथा मारीच आदि अन्य विद्याधर थे वे भी अत्यधिक संवेगसे युक्त हो कषाय तथा रागभाव छोड़कर उत्तम मुनि पदमें स्थित हो गये ॥८१-८२॥ जिन्होंने विद्याधरोंके विभवको तृणके समान छोड़ दिया था, जो विधिपूर्वक उत्तम धर्मका आचरण करते थे, तथा जो नानाप्रकारकी ऋद्धियोंसे सहित थे, ऐसे ये मुनिराज पृथिवीमें सर्वत्र भ्रमण करने लगे ॥८३॥ मुनिसुव्रत तीर्थङ्करके तीर्थमें वे परम तपसे युक्त तथा भव्य जीवोंके वन्दना करने योग्य उत्तम मुनि हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥८४॥

जो पति और पुत्रोंके विरहजन्य दुःखाग्निसे जल रही थी ऐसी मन्दोदरी महाशोकसे युक्त हो अत्यन्त विह्वल हृदय हो गई ॥८५॥ दुःखरूपी भयङ्कर समुद्रमें पड़ी मन्दोदरी पहले तो मूर्छित हो गई फिर सचेत हो कुररीके समान करुण विलाप करने लगी ॥८६॥ वह कहने लगी कि हाय पुत्र इन्द्रजित् ! तूने यह ऐसा कार्य क्यों किया ? हाय मेघवाहन ! तूने दुःखिनी माताकी अपेक्षा क्यों नहीं की ? ॥८७॥ तीव्र दुःखसे सन्तप्त माताकी उपेक्षा कर अतिशय दुःखसे दुःखी हो तुम लोगोंने यह जो कुछ कार्य किया है सो क्या ऐसा करना तुम्हें उचित था ? ॥८८॥ हे पुत्रो ! तुम देवतुल्य भोगोंसे लड़ाये हुए हो । अब विद्याके विभवसे रहित हो, शरीरसे स्नेह छोड़ कठोर पृथ्वीतल पर कैसे पड़ोगे ? ॥८९॥ तदनन्तर मन्दोदरी मयको लक्ष्य कर बोली कि हाय पिता ! तुमने भी उत्तम भोग छोड़कर यह क्या किया ? कहो तुमने अपनी सन्तानका स्नेह एक साथ कैसे छोड़ दिया ? ॥९०॥ पिता, भर्ता और पुत्र इतने ही तो स्त्रियोंकी रक्षाके निमित्त हैं,

---

१. भव्यप्राणिनाम् इत्यर्थः, भव्याः सुवाहानाम् म० ज० ख० । २. त्यक्तस्नेहस् म० ज० ।

परिदेवनमिति करुणं भजमाना बाष्पदुर्दिनं जनयन्ती ।
शशिकान्तयाऽऽर्ययाऽसौ प्रतिबोधं वाग्भिरुत्तमाभिरानीता ॥६२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

मूढे ! रोदिषि किं त्वनादिसमये संसारचक्रे त्वया
तिर्यङ्मानुषभूरियोनिनिवहे सम्भूतिमायातया ।
नानाबन्धुवियोगविह्वलधिया भूयः कृतं रोदनम्
किं दुःखं पुनरभ्युपैषि पदवीं स्वास्थ्यं भजस्वाधुना ॥६३॥
संसारप्रकृतिप्रबोधनपरैर्वाक्यैर्मनोहारिभि —
स्तस्याः प्राप्य विबोधमुत्तमगुणा संवेगमुग्रं श्रिता ।
त्यक्ताशेषगृहस्थवेषरचना मन्दोदरी संयता
जाताऽत्यन्तविशुद्धधर्मनिरता शुक्लैकवस्त्राऽऽवृता ॥६४॥
लब्ध्वा बोधिमनुत्तमां शशिनखाऽप्यार्यामिमामाश्रिता
संशुद्धश्रमणा व्रतोरुविभवा जाता नितान्तोत्कटा ।
चत्वारिंशदथाष्टकं सुमनसां ज्ञेयं सहस्राणि हि
स्त्रीणां संयममाश्रितानि परमं तुल्यानि भासां रवेः ॥६५॥

इत्यार्षे[1] रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे इन्द्रजितादिनिष्क्रमणाभिधाने नामाष्टसप्ततिमं पर्व ॥७८॥

सो मैं पापिनी इन सबके द्वारा छोड़ी गई हूँ, अब किसकी शरणमें जाऊँ ? ॥६१॥ इस तरह जो करुण विलापको प्राप्त होती हुई आँसुओंकी अविरल वर्षा कर रही थी ऐसी मन्दोदरीको शशिकान्ता नामक आर्यिकाने उत्तम वचनोंके द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कराया ॥६२॥ आर्यिकाने समझाया कि अरी मूर्खे ! व्यर्थ ही क्यों रो रही है ? इस अनादि कालीन संसारचक्रमें भ्रमण करती हुई तू तिर्यञ्च और मनुष्योंकी नाना योनियोंमें उत्पन्न हुई है, वहाँ तूने नाना बन्धुजनोंके वियोगसे विह्वल बुद्धि हो अत्यधिक रुदन किया है। अब फिर क्यों दुःखको प्राप्त हो रही है आत्मपदमें लीन हो स्वस्थताको प्राप्त हो ॥६३॥

तदनन्तर जो संसार दशाका निरूपण करनेमें तत्पर शशिकान्ता आर्यिकाके मनोहारी वचनोंसे प्रबोधको प्राप्त हो उत्कृष्ट संवेगको प्राप्त हुई थी ऐसी उत्तम गुणोंकी धारक मन्दोदरी गृहस्थ सम्बन्धी समस्त वेष रचनाको छोड़ अत्यन्त विशुद्ध धर्ममें लीन होती हुई एक सफेद वस्त्रसे आवृत आर्यिका हो गई ॥६४॥ रावणकी बहिन चन्द्रनखा भी इन्हीं आर्याके पास उत्तम रत्नत्रयको पाकर व्रतरूपी विशाल-सम्पदाको धारण करने वाली उत्तम साध्वी हुई। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिस दिन मन्दोदरी आदिने दीक्षा ली उस दिन उत्तम हृदयको धारण करने वालीं एवं सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान अड़तालीस हजार स्त्रियोंने संयम धारण किया ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें इन्द्रजित् आदिकी दीक्षाका वर्णन करने वाला अठहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७८॥

---

१. इति पद्मायने इन्द्रजितादि ज० ।

एकोनाशीतितमं पर्व

ततश्च पद्मनाभस्य लक्ष्मणस्य च पार्थिव । कर्त्तव्या सुमहाभूतिः कथा लङ्काप्रवेशने ॥१॥
महाविमानसङ्घातैर्घंटामिश्च सुदन्तिनाम् । परमैरश्ववृन्दैश्च रथैश्च भवनोपमैः ॥२॥
निकुञ्जप्रतिस्वानबधिरीकृतदिङ्मुखैः । वादित्रनिःस्वनै रम्यैः शङ्खस्वनविमिश्रितैः ॥३॥
विद्याधरमहाचक्रसमेतौ परमद्युती । बलनारायणौ लङ्कां प्रविष्टाविन्द्रसन्निभौ ॥४॥
दृष्ट्वा तौ परमं हर्षं जनता समुपागता । मेने जन्मान्तरोपात्तधर्मस्य विपुलं फलम् ॥५॥
तस्मिन् राजपथे प्राप्ते बलदेवे सचक्रिणि । व्यापाराः पौरलोकस्य प्रयाताः क्वापि पूर्वकाः ॥६॥
विकचाक्षैर्मुखैः स्त्रीणां जालमार्गास्तिरोहिताः । सनीलोत्पलराजीवैरिव रेजुर्निरन्तरम् ॥७॥
महाकौतुकयुक्तानामाकुलानां निरीक्षणे । तासां मुखेषु निश्चेरुरिति वाचो मनोहराः ॥८॥
सखि पश्यैष रामोऽसौ राजा दशरथात्मजः । राजत्युत्तमया योऽयं रत्नराशिरिव श्रिया ॥९॥
सम्पूर्णचन्द्रसङ्काशः पुण्डरीकायतेक्षणः । अपूर्वकर्मणां सर्गः कोऽपि स्तुत्यधिकाकृतिः ॥१०॥
इमं या लभते कन्या धन्या रमणमुत्तमम् । कीर्तिस्तम्भस्तया लोके स्थापितोऽयं स्वरूपया ॥११॥
परमश्चरितो धर्मश्चिरं जन्मान्तरे यया । ईदृशं लभते नाथं सा सुनारी कुतोऽपरा ॥१२॥
सहायतां निशास्वस्य या नारी प्रतिपद्यते । सैवैका योषितां मूर्ध्नि वर्त्तते परया तु किम् ॥१३॥
स्वर्गतः प्रच्युता नूनं कल्याणी जनकात्मजा । इमं रमयति श्लाघ्यं पतिमिन्द्रं शचीव या ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! अब राम और लक्ष्मण का महावैभवके साथ लङ्कामें प्रवेश हुआ, सो उसकी कथा करना चाहिए ॥१॥ महाविमानोंके समूह, उत्तम हाथियोंके घण्टा, उत्कृष्ट घोड़ोंके समूह, मन्दिर तुल्य रथ, लतागृहोंमें गूंजने वाली प्रतिध्वनिसे जिनने दिशाएँ बहरी कर दी थीं तथा जो शङ्खके शब्दोंसे मिले थे ऐसे वादित्रोंके मनोहर शब्दोंसे तथा विद्याधरोंके महा चक्रसे सहित, उत्कृष्ट कान्तिके धारक, इन्द्र समान राम और लक्ष्मणने लङ्कामें प्रवेश किया ॥२-४॥ उन्हें देख जनता परम हर्षको प्राप्त हुई और जन्मान्तर में संचित धर्मका महा फल मानती हुई ॥५॥ जब चक्रवर्ती-लक्ष्मणके साथ बलभद्र—श्री राम राज पथमें आये तब नगरवासी जनोंके पूर्व व्यापार मानों कहीं चले गये अर्थात् वे अन्य सब कार्य छोड़ इन्हें देखने लगे ॥६॥ जिनके नेत्र फूल रहे थे, ऐसे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित झरोखे निरन्तर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नीलकमल और लाल कमलोंसे ही युक्त हों ॥७॥ जो राम-लक्ष्मणके देखनेमें आकुल हो महा कौतुकसे युक्त थीं ऐसी उन स्त्रियोंके मुखसे इस प्रकार के मनोहर वचन निकलने लगे ॥८॥ कोई कह रही थी कि सखि ! देख, ये दशरथके पुत्र राजा रामचन्द्र हैं जो अपनी उत्तम शोभासे रत्न राशिके समान सुशोभित हो रहे हैं ॥९॥ जो पूर्ण चन्द्रमाके समान हैं, जिनके नेत्र पुण्डरीकके समान विशाल हैं तथा जिनकी आकृति स्तुतिसे अधिक है ऐसे ये राम मानों अपूर्व कर्मों की कोई अद्भुत सृष्टि ही हैं ॥१०॥ जो कन्या इस उत्तम पतिको प्राप्त होती है वही धन्या है तथा उसी सुन्दरीने लोकमें अपनी कीर्तिका स्तम्भ स्थापित किया है ॥११॥ जिसने जन्मान्तरमें चिर काल तक परम धर्मका आचरण किया है वही ऐसे पतिको प्राप्त होती है । उस स्त्रीसे बढ़कर और दूसरी उत्तम स्त्री कौन होगी ? ॥१२॥ जो स्त्री रात्रिमें इसकी सहायताको प्राप्त होती है वही एक मानों स्त्रियोंके मस्तक पर विद्यमान है अन्य स्त्रीसे क्या प्रयोजन है ? ॥१३॥ कल्याणवती जानकी निश्चित ही स्वर्गसे च्युत हुई है जो इन्द्राणीके समान इस प्रशंसनीय पतिको रमण कराती है ॥१४॥

असुरेन्द्रसमो येन रावणो रणमस्तके । साधितो लक्ष्मणः सोऽयं चक्रपाणिर्विराजते ॥१५॥
मिश्राञ्जनदलच्छाया कान्तिरस्य बलत्विषा[1] । मिश्रा प्रयागतीर्थस्य धत्ते शोभां विसारिणीम् ॥१६॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधितनरेश्वरः । नययोगेन येनेयं विपुला श्रीरवाप्यते ॥१७॥
असौ किष्किन्धराजोऽयं सुग्रीवः सत्त्वसङ्गतः । परमं रामदेवेन प्रेम यत्र नियोजितम् ॥१८॥
अयं स जानकीभ्राता प्रभामण्डलमण्डितः । इन्दुना खेचरेन्द्रेण यो नीतः पदमीदृशम् ॥१९॥
वीरोऽङ्गदकुमारोऽयमसौ दुर्ललितः परम् । यस्तदा रावसेन्द्रस्य विघ्नं कर्तुं समुद्यतः ॥२०॥
पश्य पश्येममुत्तुङ्गं स्यन्दनं सखि सुन्दरम् । वातेरित महाध्मातघनाभा यत्र दन्तिनः ॥२१॥
रणाङ्गणे विपक्षाणां यस्य वानरलक्ष्मणा[2] । ध्वजयष्टिरलं भीष्मा श्रीशैलोऽयं स मारुतिः ॥२२॥
एवं वाग्भिर्विचित्राभिः पूज्यमाना महौजसः । राजमार्गं व्यगाहन्त पद्मनाभादयः सुखम् ॥२३॥
अथान्तिकस्थितामुक्त्वा पद्मश्चामरधारिणीम् । पप्रच्छ सादरं प्रेमरसार्द्रहृदयः परम् ॥२४॥
या सा मद्विरहे दुःखं परिप्राप्ता सुदुःसहम् । भामण्डलस्वसा कासाविह देशेऽवतिष्ठते ॥२५॥
ततोऽसौ रत्नवलयप्रभाजटिलबाहुका । करशाखां प्रसार्योचे स्वामितोषणतत्परा ॥२६॥
अट्टहासान्विमुञ्चन्तमिमं निर्झरवारिभिः । पुष्पप्रकीर्णनामानं राजन् पश्यसि यं गिरिम् ॥२७॥
नन्दनप्रतिमेऽमुष्मिन्नुद्याने जनकात्मजा । कीर्तिशीलपरीवारा रमणी तव तिष्ठति ॥२८॥
तस्या अपि समीपस्था सखी सुप्रियकारिणी । अङ्गुलीमूर्मिकारम्यां[3] प्रसार्यैवमभाषत ॥२९॥

कोई कह रही थी कि जिसने रणके अग्रभागमें असुरेन्द्रके समान रावणको जीता है ऐसे ये चक्र हाथमें लिये लक्ष्मण सुशोभित हो रहे हैं ॥१५॥ श्री रामकी धवल कान्तिसे मिली तथा मसले हुए अंजन कणकी समानता रखने वाली इनकी श्यामल कान्ति प्रयाग तीर्थकी विस्तृत शोभा धारण कर रही है ॥१६॥ कोई कह रही था कि यह चन्दोदरका पुत्र राजा विराधित है जिसने नीतिके संयोगसे यह विपुल लक्ष्मी प्राप्त की है ॥१७॥ कोई कह रही थी कि किष्किन्धका राजा बलशाली सुग्रीव है जिस पर श्री रामने अपना परम प्रेम स्थापित किया है ॥१८॥ कोई कह रही थी कि यह जानकीका भाई भामण्डल है जो चन्द्रगति विद्याधरके द्वारा ऐसे पदको प्राप्त हुआ है ॥१९॥ कोई कह रही थी कि यह अत्यन्त लड़ाया हुआ वीर अंगद कुमार है जो उस समय रावणके विघ्न करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥२०॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! देख-देख इस ऊँचे सुन्दर रथको देख, जिसमें वायुसे कम्पित गरजते मेघके समान हाथी जुते हैं ॥२१॥ कोई कह रही थी कि जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा रणाङ्गणमें शत्रुओंके लिए अत्यन्त भय उपजाने वाली थी ऐसा यह पवनञ्जयका पुत्र श्री शैल–हनूमान है ॥२२॥ इस तरह नाना प्रकारके वचनोंसे जिनकी पूजा हो रही थी तथा जो उत्तम प्रतापसे युक्त थे ऐसे राम आदिने सुखसे राजमार्गमें प्रवेश किया ॥२३॥

अथानन्तर प्रेम रूपी रससे जिनका हृदय आर्द्र हो रहा था ऐसे श्री रामने अपने समीप में स्थित चमर ढोलने वाली स्त्रीसे परम आदरके साथ पूछा कि जो हमारे विरहमें अत्यन्त दुःसह दुःखको प्राप्त हुई है ऐसी भामण्डलकी बहिन यहाँ किस स्थानमें विद्यमान है ? ॥२४–२५॥ तदनन्तर रत्नमयी चूड़ियोंकी प्रभासे जिसकी भुजाएँ व्याप्त थीं एवं जो स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर थी ऐसी चमर ग्राहिणी स्त्री अङ्गुली पसार कर बोली कि यह जो सामने नीझरनोंके जलसे अट्टहासको छोड़ते हुए पुष्प-प्रकीर्णक नामा पर्वत देख रहे हो इसीके नन्दन वनके समान उद्यान में कीर्ति और शील रूपी परिवारसे सहित आपकी प्रिया विद्यमान है ॥२६–२८॥

उधर सीताके समीपमें भी जो सुप्रिय कारिणी सखी थी वह अंगूठीसे सुशोभित अङ्गुली

१. बलत्विषः म० । २. लक्ष्मणम् म० । ३. मूर्मिकां रम्यां म० ।

आतपत्रमिदं यस्य चन्द्रमण्डलसन्निभम् । चन्द्रादित्यप्रतीकाशे धरो यश्चैव कुण्डले ॥३०॥
शरन्निर्झरसंकाशो हारो यस्य विराजते । सोऽयं मनोहरो देवि महाभूतिर्नरोत्तमः ॥३१॥
परमं त्वद्वियोगेन सुवक्त्रे खेदमुद्वहन् । दिग्गजेन्द्र इवाऽऽयाति पद्मः पद्मनिरीक्षणे ॥३२॥
मुखारविन्दमालोक्य प्राणनाथस्य जानकी । चिरात्स्वप्नमिव प्राप्तं मेने भूयो विषादिनी ॥३३॥
उत्तीर्य[1] द्विरदाधीशात्पद्मनाभः ससम्भ्रमः । प्रमोदमुद्वहन्सीतां ससार विकचेक्षणः ॥३४॥
घनवृन्दादिवोत्तीर्य चन्द्रवल्लाङ्गलायुधः । रोहिण्या इव वैदेह्यास्तुष्टिं चक्रे समाव्रजन् ॥३५॥
प्रत्यासन्नत्वमायातं ज्ञात्वा नाथं ससम्भ्रमा[2] । मृगीवदाकुला सीता समुत्तस्थौ महाधृतिः ॥३६॥
भूरेणुधूसरीभूतकेशीं मलिनदेहिकाम् । कालनिर्गलितच्छायबन्धूकसदृशाधराम् ॥३७॥
स्वभावेनैव तन्वङ्गीं विरहेण विशेषतः । तथापि किञ्चिदुच्छ्रामं दर्शनेन समागताम् ॥३८॥
आलिङ्गन्तीमिव स्निग्धैर्मयूखैः करजोद्गतैः । स्नपयन्तीमिवोद्वेलविलोचनमरीचिभिः ॥३९॥
लिम्पन्तीमिव लावण्यसम्पदा क्षणवृद्धया । वीजयन्तीमिवोच्छ्वासैर्हर्षनिर्भर[3]निर्गतैः ॥४०॥
पृथुलारोहवच्छ्रोणीं नेत्रविश्रामभूमिकाम् । पाणिपल्लवसौन्दर्यजितश्रीपाणिपङ्कजाम् ॥४१॥
सौभाग्यरत्नसम्भूतिधारिणीं धर्मरक्षिताम् । सम्पूर्णचन्द्रवदनां कलङ्कपरिवर्जिताम् ॥४२॥
सौदामिनीसदृक्छायामतिधीरत्वयोगिनीम् । मुखचन्द्रान्तरोद्भूतस्फीतनेत्रसरोरुहाम् ॥४३॥
कलुषत्वविनिर्मुक्तां समुन्नतपयोधराम् । चापयष्टिमनङ्गस्य वक्रतापरिवर्जिताम् ॥४४॥

पसार कर इस प्रकार बोली कि जिनके ऊपर यह चन्द्रमण्डलके समान छत्र फिर रहा है, जो चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशमान कुण्डलोंको धारण कर रहे हैं तथा जिनके वक्षःस्थलमें शरदृऋतुके निर्झरके समान हार शोभा दे रहा है, हे कमल लोचने देवि ! वही ये महा वैभवके धारी नरोत्तम श्री राम तुम्हारे वियोगसे परम खेदको धारण करते हुए दिग्गजेन्द्रके समान आ रहे हैं ॥२६–३२॥ अत्यधिक विषादसे युक्त सीताने चिरकाल बाद प्राणनाथका मुखकमल देख ऐसा माना, मानो स्वप्न ही प्राप्त हुआ हो ॥३३॥ जिनके नेत्र विकसित हो रहे थे ऐसे राम शीघ्र ही गजराजसे उतर कर हर्ष धारण करते हुए सीताके समीप चले ॥३४॥ जिसप्रकार मेघमण्डल से उतर कर आता हुआ चन्द्रमा रोहिणीको संतोष उत्पन्न करता है उसी प्रकार हाथीसे उतर कर आते हुए श्री रामने सीताको संतोष उत्पन्न किया ॥३५॥ तदनन्तर रामको निकट आया देख महा संतोषको धारण करने वाली सीता संभ्रमके साथ मृगीके समान आकुल होती हुई उठ कर खड़ी हो गई ॥३६॥

अथानन्तर जिसके केश पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थे, जिसका शरीर मलिन था, जिसके ओठ मुरझाये हुए बन्धूकके फूलके समान निष्प्रभ थे, जो स्वभावसे ही दुबली थी और उस समय विरहके कारण जो और भी अधिक दुबली हो गई थी, यद्यपि दुबली थी तथापि पतिके दर्शनसे जो कुछ-कुछ उल्लासको धारण कर रही थी, जो नखोंसे उत्पन्न हुई सचिक्कण किरणोंसे मानो आलिङ्गन कर रही थी, खिले हुए नेत्रोंकी किरणोंसे मानो अभिषेक कर रही थी, क्षण-क्षणमें बढ़ती हुई लावण्य रूप सम्पत्तिके द्वारा मानो लिप्त कर रही थी और हर्षके भारसे निकले हुए उच्छ्वासोंसे मानों पङ्खा ही चल रही थी, जिसके नितम्ब स्थूल थे, जो नेत्रोंके विश्राम करनेकी भूमि थी, जिसने कर-किसलयके सौन्दर्यसे लक्ष्मीके हस्त-कमलको जीत लिया था, जो सौभाग्यरूपी रत्न-संपदाको धारण कर रही थी, धर्मने ही जिसकी रक्षा की थी, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, अत्यन्त धैर्यगुणसे सहित थी, जिसके मुखरूपी चन्द्रमाके भीतर विशाल नेत्ररूपी कमल उत्पन्न हुए थे, जो कलुषतासे रहित थी, जिसके स्तन अत्यन्त उन्नत थे, और जो कामदेवकी

१. उत्तीर्ण म० । २. ससंभ्रमात् म० । ३. निर्मद- म० ।

आयान्तीमन्तिकं किञ्चिद्वैदेहीमापराजितः । विलोक्य निरुपाख्यानं भावं कमपि सङ्गतः ॥४५॥
विनयेन समासाद्य रमणं रतिसुन्दरी । बाष्पाकुलेक्षणा तस्थौ पुरः सङ्गमनाकुला ॥४६॥
शचीव सङ्गता शक्रं रतिर्वा कुसुमायुधम् । जिनधर्ममहिंसा नु सुभद्रा भरतेश्वरम् ॥४७॥
चिरस्यालोक्य तां पद्मः सङ्गमं नूतनं विदन् । मनोरथशतैर्लब्धां फलभारप्रणामिभिः ॥४८॥
हृदयेन वहन् कम्पं चिरासङ्गस्वभावजम् । महाद्युतिधरः कान्तः सम्भ्रान्ततरलेक्षणः ॥४९॥
केयूरदष्टमूलाभ्यां भुजाभ्यां क्षणमात्रतः । सञ्जातपीवरत्वाभ्यामालिलिङ्ग रसाधिकम् ॥५०॥
तामालिङ्गन्विलीनो नु मग्नो नु सुखसागरे । हृदयं सम्प्रविष्टो नु पुनर्विरहतो भयात् ॥५१॥
प्रियकण्ठसमासक्तबाहुपाशा सुमानसा । कल्पपादपसंसक्तहेमवल्लीव सा बभौ ॥५२॥
उद्भूतपुलकस्यास्य सङ्गमेनातिसौख्यतः । मिथुनस्योपमां प्राप्तं तदेव मिथुनं परम् ॥५३॥
दृष्ट्वा सुविहितं सीतारामदेवसमागमम् । तमम्बरगता देवा मुमुचुः कुसुमाञ्जलिम् ॥५४॥
गन्धोदकं च संगुञ्जद् भ्रान्तभ्रमरभीरुकम् । विमुच्य मेघपृष्ठस्थाः सस्रुजुर्भारतीमिति ॥५५॥
अहो निरुपमं धैर्यं सीतायाः साधुचेतसः । अहो गाम्भीर्यमक्षोभमहो शीलमनोज्ञता ॥५६॥
अहो नु[२] व्रतनैष्कम्प्यमहो सत्त्वं समुन्नतम् । मनसाऽपि यया नेष्टो रावणः शुद्धवृत्तया ॥५७॥
सम्भ्रान्तो लक्ष्मणस्तावद् वैदेह्याश्चरणद्वयम् । अभिवाद्य पुरस्तस्थौ विनयानतविग्रहः ॥५८॥

मानो कुटिलतासे रहित-सीधी धनुषयष्टि हो ऐसी सीताको कुछ समीप आती देख श्रीराम किसी अनिर्वचनीयभावको प्राप्त हुए ॥३८-४५॥ रतिके समान सुन्दरी सीता विनय पूर्वक पतिके समीप जाकर मिलनेकी इच्छासे आकुल होती हुई सामने खड़ी हो गई। उस समय उसके नेत्र हर्षके अश्रुओंसे व्याप्त हो रहे थे ॥४६॥ उस समय रामके समीप खड़ी सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके समीप इन्द्राणी ही आई हो, कामके समीप मानो रति ही आई हो, जिन धर्मके समीप मानो अहिंसा ही आई हो और भरत चक्रवर्तीके समीप मानो सुभद्रा ही आई हो ॥४७॥ जो फलके भारसे नम्रीभूत हो रहे थे ऐसे सैकड़ों मनोरथोंसे प्राप्त सीताको चिरकाल-बाद देखकर रामने ऐसा समझा मानो नवीन समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥४८॥

अथानन्तर जो चिरकाल बाद होने वाले समागमके स्वभावसे उत्पन्न हुए कम्पनको हृदयमें धारण कर रहे थे, जो महा दीप्तिके धारक थे, सुन्दर थे और जिनके चञ्चल नेत्र घूम रहे थे ऐसे श्रीरामने अपनी उन भुजाओंसे रसनिमग्न हो सीताका आलिङ्गन किया, जिनके कि मूल भाग बाजूबन्दोंसे अलंकृत थे तथा क्षणमात्रमें ही जो स्थूल हो गईं थीं ॥४९-५०॥ सीताका आलिङ्गन करते हुए राम क्या विलीन हो गये थे, या सुख रूपी सागरमें निमग्न हो गये थे या पुनः विरहके भयसे मानो हृदयमें प्रविष्ट हो गये थे ॥५१॥ पतिके गलेमें जिसके भुजपाश पड़े थे, ऐसी प्रसन्न चित्तकी धारक सीता उस समय कल्पवृक्षसे लिपटी सुवर्णलताके समान सुशोभित हो रही थी ॥५२॥ समागमके कारण बहुत भारी सुखसे जिसे रोमाञ्च उठ आये थे ऐसे इस दम्पतीकी उपमा उस समय उसी दम्पतीको प्राप्त थी ॥५३॥ सीता और श्रीरामदेवका सुखसमागम देख आकाशमें स्थित देवोंने उनपर पुष्पाञ्जलियाँ छोड़ीं ॥५४॥ मेघोंके ऊपर स्थित देवोंने, गुञ्जारके साथ घूमते हुए भ्रमरोंको भय देनेवाला गन्धोदक वर्षा कर निम्नलिखित वचन कहे ॥५५॥ वे कहने लगे कि अहो! पवित्र चित्तकी धारक सीताका धैर्य अनुपम है। अहो! इसका गाम्भीर्य क्षोभ रहित है, अहो! इसका शीलव्रत कितना मनोज्ञ है? अहो! इसकी व्रत सम्बन्धी दृढ़ता कैसी अद्भुत है? अहो! इसका धैर्य कितना उन्नत है कि शुद्ध आचारको धारण करने वाली इसने रावणको मनसे भी नहीं चाहा ॥५६-५७॥

तदनन्तर जो हड़बड़ाये हुए थे और विनयसे जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे

१. रामः। २. अहोणुव्रतनैष्कम्प्य -ख० ज०।

पुरन्दरसमच्छायं दृष्ट्वा चक्रधरं तदा । अस्रान्वितेक्षणा साध्वी जानकी परिषस्वजे ॥५९॥
उवाच च यथा भद्र गदितं श्रमणोत्तमैः । महाज्ञानधरैः प्राप्तं पदमुच्चैस्तथा त्वया ॥६०॥
स त्वं चक्राङ्कराज्यस्य भाजनत्वमुपागतः । न हि निर्ग्रन्थसम्भूतं वचनं जायतेऽन्यथा ॥६१॥
एषोऽसौ बलदेवत्वं तव ज्येष्ठः समागतः । विरहानलमग्नाया येन मे जनिता कृपा ॥६२॥
उडुनाथांशुविशदद्युतिस्तावदुपाययौ । स्वसुःसमीपधरणीं श्रीभामण्डलमण्डितः ॥६३॥
दृष्ट्वा तं मुदितं सीता सौदर्यस्नेहनिर्भरा । रणप्रत्यागतं वीरं विनीतं परिषस्वजे ॥६४॥
सुग्रीवो वायुतनयो नलो [1]नीलोऽङ्गदस्तथा । विराधितोऽथ चन्द्राभः सुषेणो जाम्बवो बली ॥६५॥
जीमूतशल्यदेवाद्यास्तथा परमखेचराः । संश्राव्य निजनामानि मूर्ध्ना कृत्वाभिवादनम् ॥६६॥
विलेपनानि चारूणि वस्त्राण्याभरणानि च । पारिजातादिजातानि माल्यानि सुरभीणि च ॥६७॥
सीताचरणराजीवयुगलान्तिकभूतले । अतिष्ठिपन् सुवर्णादिपात्रस्थानि प्रमोदिनः ॥६८॥

उपजातिवृत्तम्

ऊचुश्च देवि त्वमुदारभावा सर्वत्र लोके प्रथितप्रभावा ।
श्रिया महत्या गुणसम्पदा च प्राप्ता पदं तुङ्गतमं मनोज्ञम् ॥६९॥
देवस्तुताचारविभूतिधात्री प्रीताऽधुना मङ्गलभूतदेहा ।
जीया[2] जयश्रीर्बलदेवयुक्ता प्रभारवेर्यद्वदुदात्तलीला ॥७०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतासमागमाभिधानं नामैकोनाशीतितमं पर्व ॥७९॥

लक्ष्मण सीताके चरण युगलको नमस्कार कर सामने खड़े हो गये ॥५८॥ उस समय इन्द्रके समान कान्तिके धारक चक्रधरको देख साध्वी सीताके नेत्रोंमें वात्सल्यके अश्रु निकल आये और उसने बड़े स्नेहसे उनका आलिङ्गन किया ॥५९॥ साथ ही उसने कहा कि हे भद्र ! महाज्ञानके धारक मुनियोंने जैसा कहा था वैसा ही तुमने उच्च पद प्राप्त किया है ॥६०॥ अब तुम चक्र चिह्नित राज्य—नारायण पदकी पात्रताको प्राप्त हुए हो। सच है कि निर्ग्रन्थ मुनियोंसे उत्पन्न वचन कभी अन्यथा नहीं होते ॥६१॥ यह तुम्हारे बड़े भाई बलदेव पदको प्राप्त हुए हैं जिन्होंने विरहाग्निमें डूबी हुई मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥६२॥ इतनेमें ही चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिको धारण करनेवाला भामण्डल बहिनकी समीपवर्ती भूमिमें आया ॥६३॥ प्रसन्नतासे भरे, रणसे लौटे उस विजयी वीरको देख, भाईके स्नेहसे युक्त सीताने उसका आलिङ्गन किया ॥६४॥ सुग्रीव, हनूमान, नल, नील, अङ्गद, विराधित, चन्द्राभ, सुषेण, बलवान् जाम्बव, जीमूत और शल्यदेव आदि उत्तमोत्तम विद्याधरोंने अपने-अपने नाम सुनाकर सीताको शिरसे अभिवादन किया ॥६५–६६॥ उन सबने हर्षसे युक्त हो सीताके चरणयुगलकी समीपवर्ती भूमिमें सुवर्णादिके पात्रमें स्थित सुन्दर विलेपन, वस्त्र, आभरण और पारिजात आदि वृक्षोंकी सुगन्धित मालाएँ भेट कीं ॥६७–६८॥ तदनन्तर सबने कहा कि हे देवि ! तुम उत्कृष्ट भावको धारण करने वाली हो, तुम्हारा प्रभाव समस्त लोकमें प्रसिद्ध है तथा तुम बहुत भारी लक्ष्मी और गुणरूप सम्पदाके द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ मनोहर पदको प्राप्त हुई हो ॥६९॥ तुम देवोंके द्वारा स्तुत आचाररूपी विभूतिको धारण करनेवाली हो, प्रसन्न हो, तुम्हारा शरीर मङ्गल रूप है, तुम विजय लक्ष्मी स्वरूप हो, उत्कृष्ट लीलाकी धारक हो, ऐसी हे देवि ! तुम सूर्यकी प्रभाके समान बलदेवके साथ चिरकाल तक जयवन्त रहो ॥७०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें सीताके समागमका वर्णन करने वाला उन्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७९॥

---

१. नीलाङ्गदस्तथा म० । २. येयं म०, जेयं क० ।

अशीतितमं पर्व

ततस्तां सङ्गमादित्यप्रबोधितमुखाम्बुजाम् । पाणावादाय हस्तेन समुत्तस्थौ हलायुधः ॥१॥
ऐरावतोपमं नागमारोप्य स्ववशानुगम् । आरोपयन् महातेजाः समग्रां कान्तिमुद्वहन् ॥२॥
चलद्घण्टाभिरामस्य नागमेघस्य पृष्ठतः । जानकीरोहिणीयुक्तः शुशुभे पद्मचन्द्रमाः ॥३॥
समाहितमतिः प्रीतिं दधानोऽत्यर्थमुन्नताम् । पूर्यमाणो जनौघेन महर्द्ध्या परितो वृतः ॥४॥
महद्भिरनुयातेन खेचरैरनुरागिभिः । अन्वितश्चक्रहस्तेन लक्ष्मणेनोत्तमत्विषा ॥५॥
रावणस्य विमानाभं भवनं भुवनद्युतेः[1] । पद्मनाभः परिप्राप्तः प्रविष्टश्च विचक्षणः ॥६॥
अपश्यच्च गृहस्यास्य मध्ये परमसुन्दरम् । भवनं शान्तिनाथस्य युक्तविस्तारतुङ्गतम् ॥७॥
हेमस्तम्भसहस्रेण रचितं विकटद्युति । नानारत्नसमाकीर्णभित्तिभागं मनोरमम् ॥८॥
विदेहमध्यदेशस्थमन्दराकारशोभितम् । क्षीरोदफेन[2]पटलच्छायं नयनबन्धनम् ॥९॥
क्वणत्किङ्किणिकाजालमहाध्वजविराजितम् । मनोज्ञरूपसङ्कीर्णमशक्यपरिवर्णनम् ॥१०॥
उत्तीर्य नागतो मत्तनागेन्द्रसमविक्रमः । प्रसन्ननयनः श्रीमान् तद्विवेश सहाङ्गनः ॥११॥
कायोत्सर्गविधानेन प्रलम्बितभुजद्वयः । प्रशान्तहृदयः कृत्वा सामायिकपरिग्रहम् ॥१२॥
बद्ध्वा करद्वयाम्भोजकुड्मलं सह सीतया । अघप्रमथनं पुण्यं रामः स्तोत्रमुदाहरत् ॥१३॥

अथानन्तर समागमरूपी सूर्यसे जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलनेवाले ऐरावतके समान हाथी पर बैठाकर स्वयं उसपर आरूढ़ हुए। महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण कान्तिको धारण करनेवाले श्रीराम हिलते हुए घंटोंसे मनोहर हाथीरूपी मेघपर सीतारूपी रोहिणीके साथ बैठे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१-३॥ जिनकी बुद्धि स्थिर थी, जो अत्यधिक उन्नत प्रीतिको धारण कर रहे थे, बहुत भारी जनसमूह जिनके साथ था, जो चारों ओरसे बहुत बड़ी सम्पदासे घिरे थे, बड़े-बड़े अनुरागी विद्याधरोंसे अनुगत, उत्तम कान्तियुक्त चक्रपाणि लक्ष्मणसे जो सहित थे तथा अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्यके विमान समान जो रावणका भवन था उसमें जाकर प्रविष्ट हुए ॥४-६॥ वहाँ उन्होंने भवनके मध्यमें स्थित श्रीशान्तिनाथ भगवान्का परमसुन्दर मन्दिर देखा। वह मन्दिर योग्य विस्तार और ऊँचाईसे सहित था, स्वर्णके हजार खम्भोंसे निर्मित था, विशाल कान्तिका धारक था, उसकी दीवालोंके प्रदेश नानाप्रकारके रत्नोंसे युक्त थे, वह मनको आनन्द देनेवाला था, विदेह क्षेत्रके मध्यमें स्थित मेरुपर्वतके समान था, क्षीर समुद्रके फेनपटलके समान कान्तिवाला था, नेत्रोंको बाँधनेवाला था, रुणझुण करनेवाली किङ्किणियोंके समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे सुशोभित था, मनोज्ञरूपसे युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था ॥७-१०॥

तदनन्तर जो मत्तगजराजके समान पराक्रमी थे, निर्मल नेत्रोंके धारक थे तथा श्रेष्ठ लक्ष्मीसे सहित थे, ऐसे श्रीरामने हाथीसे उतरकर सीताके साथ उस मन्दिरमें प्रवेश किया ॥११॥ तत्पश्चात् कायोत्सर्ग करनेके लिए जिन्होंने अपने दोनों हाथ नीचे लटका लिये थे और जिनका हृदय अत्यन्त शान्त था, एसे श्रीरामने सामायिककर सीताके साथ दोनों करकमलरूपी कुड्मलोंको जोड़कर श्रीशान्तिनाथ भगवान्का पापभञ्जक पुण्यवर्धक स्तोत्र पढ़ा ॥१२-१३॥

---

१. भवनद्युतेः म० । २. क्षीरोदकेन पटल -म० ।

यस्यावतरणे शान्तिर्जाता सर्वत्र विष्टपे । प्रलयं सर्वरोगाणां कुर्वती द्युतिकारिणी ॥१४॥
चलिताऽऽसनकैरिन्द्रैरागत्योत्तमभूतिभिः । यो मेरुशिखरे हृष्टैरभिषिक्तः सुभक्तिभिः ॥१५॥
[1]चक्रेणारिगणं जित्वा बाह्यं बाह्येन यो नृपः । आन्तरं ध्यानचक्रेण जिगाय मुनिपुङ्गवः ॥१६॥
मृत्युजन्मजराभीतिखड्गाद्यायुधचञ्चलम् । [2]भवासुरं परिध्वस्य योऽगात्सिद्धिपुरं शिवम् ॥१७॥
उपमारहितं नित्यं शुद्धमात्माश्रयं परम् । प्राप्तं निर्वाणसाम्राज्यं [3]येनात्यन्तदुरासदम् ॥१८॥
तस्मै ते शान्तिनाथाय त्रिजगच्छान्तिहेतवे । नमस्त्रिधा महेशाय प्राप्तात्यन्तिकशान्तये ॥१९॥
चराचरस्य सर्वस्य नाथ त्वमतिवत्सलः[4] । शरण्यः परमस्त्राता समाधिद्युतिबोधिदः ॥२०॥
गुरुर्बन्धुः प्रणेता च त्वमेकः परमेश्वरः । चतुर्णिकायदेवानां सशक्राणां समर्चितः ॥२१॥
त्वं कर्त्ता धर्मतीर्थस्य येन भव्यजनः सुखम् । प्राप्नोति परमं स्थानं सर्वदुःखविमोक्षदम् ॥२२॥
नमस्ते देवदेवाय नमस्ते स्वस्तिकर्मणे । नमस्ते कृतकृत्याय लब्धलभ्याय ते नमः ॥२३॥
महाशान्तिस्वभावस्थं सर्वदोषविवर्जितम् । प्रसीद भगवन्नुच्चैः पदं नित्यं विदेहि नः ॥२४॥
एवमादि पठन् स्तोत्रं पद्मः पद्मायतेक्षणः । चैत्यं प्रदक्षिणं चक्रे दक्षिणः पुण्यकर्मणि ॥२५॥
प्रह्वाङ्गा पृष्ठतस्तस्य जानकी स्तुतितत्परा । समाहितकराम्भोजकुड्मला भाविनी स्थिता ॥२६॥

स्तोत्र पाठ करते हुए उन्होंने कहा कि जिनके जन्म लेते ही संसारमें सर्वत्र ऐसी शान्ति छा गई कि जो सब रोगोंका नाश करनेवाली थी तथा दीप्तिको बढ़ानेवाली थी ॥१४॥ जिनके आसन कम्पायमान हुए थे तथा जो उत्तम विभूतिसे युक्त थे ऐसे हर्षसे भरे भक्तिमन्त इन्द्रोंने आकर जिनका मेरुके शिखर पर अभिषेक किया था ॥१५॥ जिन्होंने राज्यअवस्थामें बाह्यचक्रके द्वारा बाह्यशत्रुओंके समूहको जीता था और मुनि होने पर ध्यानरूपी चक्रके द्वारा अन्तरङ्ग शत्रु-समूहको जीता था ॥१६॥ जो जन्म, जरा, मृत्यु, भयरूपी खड्ग आदि शस्त्रोंसे चञ्चल संसाररूपी असुरको नष्ट कर कल्याणकारी सिद्धिपर मोक्षको प्राप्त हुए थे ॥१७॥ जिन्होंने उपमा रहित, नित्य, शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यन्त दुरासद निर्वाणका साम्राज्य प्राप्त किया था, जो तीनों लोकोंकी शान्तिके कारण थे, जो महा ऐश्वर्यसे सहित थे तथा जिन्होंने अनन्त शान्ति प्राप्त की थी ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्के लिए मन, वचन, कायसे नमस्कार हो ॥१८-१९॥ हे नाथ ! आप समस्त चराचर विश्वसे अत्यन्त स्नेह करनेवाले हैं, शरणदाता हैं, परम रक्षक हैं, समाधिरूप तेज तथा रत्नत्रयरूपी बोधिको देनेवाले हैं ॥२०॥ तुम्हीं एक गुरु हो, बन्धु हो, प्रणेता हो, परमेश्वर हो, इन्द्र सहित चारों निकायोंके देवोंसे पूजित हो ॥२१॥ हे भगवन् ! आप उस धर्मरूपी तीर्थके कर्ता हो जिससे भव्य जीव अनायास ही समस्त दुःखोंसे छुटकारा देनेवाला परम स्थान-मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२२॥ हे नाथ ! आप देवोंके देव हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कल्याणरूप कार्यके करनेवाले हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कृतकृत्य हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थोंको प्राप्त कर चुके हैं इसलिये आपको नमस्कार हो ॥२३॥ हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिये और हमलोगोंके लिये महाशान्तिरूप स्वभावमें स्थित, सर्वदोष रहित, उत्कृष्ट तथा नित्यपद-मोक्षपद प्रदान कीजिये ॥२४॥ इसप्रकार स्तोत्र पाठ पढ़ते हुए कमलायतलोचन तथा पुण्य कर्ममें दक्ष श्रीरामने शान्तिजिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणाएँ दो ॥२५॥ जिसका शरीर नम्र था, जो स्तुति पाठ करनेमें तत्पर थी तथा जिसने हस्तकमल जोड़ रक्खे थे ऐसी भाव भीनी सीता श्रीरामके पीछे खड़ी थी ॥२६॥

---

१. 'चक्रेण यः शत्रुभयङ्करेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥' बृहत्स्वयंभूस्तोत्रे स्वामिसमन्तभद्रस्य ।
२. भावासुरं म० । ३. यो नात्यन्त- म० । ३. विह्वलः म० । ४. नः = अस्मभ्यम् ।

महादुन्दुभिनिर्घोषप्रतिमे रामनिस्वने । जानकीस्वनितं जज्ञे वीणानिःक्वणकोमलम् ॥२७॥
सविशल्यस्ततश्चक्री सुग्रीवो रश्मिमण्डलः । तथा वायुसुताद्याश्च मङ्गलस्तोत्रतत्पराः ॥२८॥
बद्धपाणिपुटा धन्या भाविता जिनपुङ्गवे । गृहीतमुकुलाम्भोजा इव राजन्ति ते तदा ॥२९॥
विमुञ्चत्सु स्वनं तेषु मुरजस्वनसुन्दरम् । मेघध्वनिकृताशङ्का ननृतुश्छेकबर्हिणः ॥३०॥
कृत्वा स्तुतिं प्रणामं च भूयो भूयः सुचेतसः । यथासुखं समासीनाः प्राङ्गणे जिनवेश्मनः ॥३१॥
यावत्ते वन्दनां चक्रुस्तावद्राजा विभीषणः । सुमालिमाल्यवद्रत्नश्रवप्रभृतिबान्धवान् ॥३२॥
संसारानित्यताभावदेशनात्यन्तकोविदः । परिसान्त्वनमानिन्ये महादुःखनिपीडितान् ॥३३॥
आर्यौ तात स्वकर्मोत्थफलभोजिषु जन्तुषु । विधीयते मुधा शोकः क्रियतां स्वहिते मनः ॥३४॥
दृष्टागमा महाचित्ता यूयमेवं विचक्षणाः । वित्थ जातो यदि प्राणी मृत्युं न प्रतिपद्यते ॥३५॥
पुष्पसौन्दर्यसङ्काशं यौवनं दुर्व्यतिक्रमम् । पल्लवश्रीसमा लक्ष्मीर्जीवितं विद्युदध्रुवम् ॥३६॥
जलबुद्बुदसंयोगप्रतिमा[1] बन्धुसङ्गमाः । सन्ध्यारागसमा भोगाः क्रियाः स्वप्नक्रियोपमाः ॥३७॥
यदि नाम प्रपद्येरन् जन्तवो नैव [2]पञ्चताम् । कथं [3]स भवतां गोत्रमागतः[4] स्याद्भवान्तरात् ॥३८॥
आत्मनोऽपि यदा नाम नियमाद्विशरारुता । तदा कथमिवात्यर्थं क्रियते शोकमूढता ॥३९॥
एवमेतदिति ध्यानं संसाराचारगोचरम् । सतां शोकविनाशाय पर्याप्तं क्षणमात्रकम् ॥४०॥
भाषितान्यनुभूतानि दृष्टानि च सुबन्धुभिः । समं वृत्तानि साधूनां तापयन्ति मनः क्षणम् ॥४१॥

रामका स्वर महादुन्दुभिके स्वरके समान अत्यन्त परुष था तो सीताका स्वर वीणाके स्वरके समान अत्यन्त कोमल था ॥२७॥ तदनन्तर विशल्या सहित लक्ष्मण, सुग्रीव, भामण्डल तथा हनूमान् आदि सभी लोग मङ्गलमय स्तोत्र पढ़नेमें तत्पर थे ॥२८॥ जिन्होंने हाथ जोड़ रक्खे थे तथा जो जिनेन्द्र भगवान्‌में अपनी भावना लगाये हुए थे, ऐसे वे सब धन्यभाग विद्याधर उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो कमलकी बोंड़ियाँ ही धारण कर रहे हो ॥२९॥ जब वे मृदङ्ग ध्वनिके समान सुन्दर शब्द छोड़ रहे थे तब चतुर मयूर मेघगर्जनाकी शङ्का करते हुए नृत्य कर रहे थे ॥३०॥ इसप्रकार बार-बार स्तुति तथा प्रणाम कर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले वे सब जिन मन्दिरके चौकमें यथायोग्य सुखसे बैठ गये ॥३१॥

जब तक इन सबने वन्दनाकी तब तक राजा विभीषणने सुमाली, माल्यवान् तथा रत्नश्रवा आदि परिवारके लोगोंको जो कि महादुःखसे पड़ित हो रहे थे सान्त्वना दी। विभीषण संसारकी अनित्यताका भाव बतलानेमें अत्यन्त निपुण था ॥३२-३३॥ उसने सान्त्वना देते हुए कहा कि हे आर्यो! हे तात! संसारके प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार फलको भोगते ही हैं अतः शोक करना व्यर्थ है आत्महितमें मन लगाइए ॥३४॥ आप लोग तो आगमके द्रष्टा, विशाल हृदय और विज्ञपुरुष हैं अतः जानते हैं कि उत्पन्न हुआ प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है या नहीं ॥३५॥ जिसका वर्णन करना बड़ा कठिन है ऐसा यौवन फूलके सौन्दर्यके समान है, लक्ष्मी पल्लवकी शोभाके समान है, जीवन बिजलीके समान अनित्य है ॥३६॥ बन्धु जनोंके समागम जलके बबूलेके समान हैं, भोग सन्ध्याकी लालीके तुल्य है, और क्रियाएँ स्वप्नकी क्रियाओंके समान हैं ॥३७॥ यदि ये प्राणी मृत्युको प्राप्त नहीं होते तो वह रावण भवान्तरसे आपके गोत्रमें कैसे आता? ॥३८॥ अरे! जब हम लोगोंको भी एक दिन नियमसे नष्ट हो जाना है तब यह शोक विषयक मूर्खता किस लिए की जाती है? ॥३९॥ 'यह ऐसा है' अर्थात् नष्ट होना इसका स्वभाव ही है इस प्रकार संसारके स्वभावका ध्यान करना सत्पुरुषोंके शोकको क्षणमात्रमें नष्ट करनेके लिए पर्याप्त है। भावार्थ—जो ऐसा विचार करते हैं कि संसारके पदार्थ नश्वर ही हैं उनका शोक क्षण मात्रमें नष्ट हो जाता है ॥४०॥ बन्धुजनोंके साथ कथित,

---

१. प्रतिमां म० । २. मृत्युम् । ३. सम्भवतां म० । ४. मागतं ख० ।

भवत्येव हि शोकेन सङ्गो बन्धुवियोगिनः । बलादिव विशालेन स्मृतिविभ्रंशकारिणा ॥४२॥
तथाऽप्यनादिकेऽमुष्मिन्संसारे भ्रमतो मम । केन बान्धवतां प्राप्ता इति ज्ञात्वा जुगुप्सताम् ॥४३॥
यथा शक्त्या जिनेन्द्राणां भवध्वंसविधायिनाम् । विधाय शासने चित्तमात्मा स्वार्थे नियुज्यताम् ॥४४॥
एवमादिभिरालापैर्मधुरैर्हृदयङ्गमैः । परिसान्त्व्य समाधाय बन्धून् कृत्ये गृहं गतः ॥४५॥
अग्र्यां देवीसहस्रस्य व्यवहारविचक्षणाम् । प्रजिघाय[1] विदग्धाख्यां महिषीं हलिनोऽन्तिकम् ॥४६॥
आगत्य साभिजातेन प्रणामेन कृतार्थताम् । ससीतौ भ्रातरौ वाक्यमिदं क्रमविदब्रवीत् ॥४७॥
अस्मत्स्वामिगृहं देव स्वगृहाशयलम्भितम् । कर्तुं पादतलासङ्गान्महानुग्रहमर्हसि ॥४८॥
वर्तते सङ्कथा यावत्तेषां वार्तासमुद्भवा । स्वयं बिभीषणस्तावत्प्राप्तोऽत्यन्तमहादरः ॥४९॥
उत्तिष्ठत गृहं यामः प्रसादः क्रियतामिति । तेनोक्तः सानुगः पद्मस्तद्गृहं गन्तुमुद्यतः ॥५०॥
यानैर्नानाविधैस्तुङ्गैर्गजैरम्बुदसन्निभैः । तरङ्गचञ्चलैरश्वै रथैः प्रासादशोभिभिः ॥५१॥
विधाय कृतसंस्कारं राजमार्गं निरन्तरम् । बिभीषणगृहं तेन प्रस्थितास्ते यथाक्रमम् ॥५२॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषास्तूर्यशब्दाः[2] समुद्गताः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा गह्वरप्रतिनादिनः[3] ॥५३॥
भम्भाभेरीमृदङ्गानां पटहानां सहस्रशः । लम्पाककाहलाधुन्धुन्दुदुभीनां च निःस्वनैः ॥५४॥
झल्लाम्लातकढक्कानां हैकानां च निरन्तरम् । गुञ्जाहुङ्कारसुन्दानां तथा पूरितमम्बरम् ॥५५॥
स्फीतैर्हलहलाशब्दैरट्टहासैश्च सन्ततैः । नानावाहननादैश्च दिगन्ता बधिरीकृताः ॥५६॥

अनुभूत और दृष्ट पदार्थ सत् पुरुषोंके मनको एक क्षण ही सन्ताप देते हैं अधिक नहीं ॥४१॥ जिसका बन्धु-जनोंके साथ वियोग होता है यद्यपि उसका स्मृतिको नष्ट करनेवाले विशाल शोकके साथ समागम मानो बल पूर्वक ही होता है तथापि इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए मेरे कौन-कौन लोग बन्धु नहीं हुए हैं ऐसा विचार कर उस शोकको छिपाना चाहिए ॥४२-४३॥ इसलिए संसारको नष्ट करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवके शासनमें यथाशक्ति मन लगाकर आत्माको आत्माके हितमें लगाइए ॥४४॥ इत्यादि हृदयको लगने वाले मधुर वचनोंसे सबकों काममें लगाकर विभीषण अपने घर गया ॥४५॥

घर आकर उसने एक हजार स्त्रियोंमें प्रधान तथा सब व्यवहारमें विचक्षण विदग्धा नामक रानीको श्री रामके समीप भेजा ॥४६॥ तदनन्तर क्रमको जानने वाली विदग्धाने आकर प्रथम ही सीता सहित राम-लक्ष्मणको कुलके योग्य प्रणाम किया । तत्पश्चात् यह वचन कहे कि हे देव ! हमारे स्वामीके घरको अपना घर समझ चरण-तलके संसर्गसे पवित्र कीजिए ॥४७-४८॥ जब तक उन सबके बीचमें यह वार्ता हो रही थी तब तक महा आदरसे भरा विभीषण स्वयं आ पहुँचा ॥४९॥ आते ही उसने कहा कि उठिए, घर चलें प्रसन्नता कीजिए । इस प्रकार विभीषणके कहने पर राम, अपने अनुगामियोंके साथ उसके घर जानेके लिए उद्यत हो गये ॥५०॥ राज मार्ग की अविरल सजावट की गई और उससे वे नाना प्रकारके वाहनों, मेघ समान ऊँचे हाथियों, लहरों के समान चञ्चल घोड़ों और महलोंके समान सुशोभित रथों पर यथाक्रमसे सवार हो विभीषणके घरकी ओर चले ॥५१-५२॥ प्रलय कालीन मेघोंकी गर्जनाके समान जिनका विशाल शब्द था जिनमें करोड़ों शङ्खोंका शब्द मिल रहा था तथा गुफाओंमें जिनकी प्रतिध्वनि पड़ रही थी ऐसे तुरहीके विशाल शब्द उत्पन्न हुए ॥५३॥ भंभा, भेरी, मृदङ्ग, हजारों पटह, लंपाक, काहला, धुन्धु, दुन्दुभि, झांझ, अम्लातक, ढक्का, हैका, गुंजा, हुंकार और सुन्द नामक वादित्रोंके शब्दसे आकाश भर गया ॥५४-५५॥ अत्यन्त विस्तारको प्राप्त हुआ हल हला शब्द, बहुत भारी अट्टहास और नाना वाहनोंके शब्दोंसे दिशाएँ बहिरी हो गईं ॥५६॥ कितने ही विद्याधर व्याघ्रोंकी पीठ

१. प्रतिघाय म० । २. प्रलम्बाम्बुद -ख० । ३. प्रतिवादिनः म० ।

केचिच्छार्दूलपृष्ठस्थाः केचित् केसरिपृष्ठगाः । केचिद् रथादिभिर्वीराः प्रस्थिताः खेचरेश्वराः ॥५७॥
नर्त्तकीनटभण्डाद्यैर्नृत्यद्भिरतिसुन्दरम् । वन्दिवृन्दैश्च ते जग्मुः स्तूयमाना महास्वनैः ॥५८॥
अकाण्डकौमुदीसर्गमण्डितैश्छत्रमण्डलैः । नानायुधदलैश्चासन् भानुभासस्तिरोहिताः ॥५९॥
दिव्यस्त्रीवदनाम्भोजखण्डनन्दनमुत्तमम् । कुर्वन्तस्ते परिप्राप्ता विभीषणनृपालयम् ॥६०॥
विभूतिर्या तदा तेषां बभूव शुभलक्षणा । सा परं मुनिवासानां विद्यते जनितादृभुता ॥६१॥
अवतीर्याथ नागेन्द्राद् रत्नार्घादिपुरस्कृतौ । रम्यं विविशतुः सद्म ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥६२॥
मध्ये महालयस्यास्य रत्नतोरणसङ्गतम् । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य भवनं हेमसन्निभम् ॥६३॥
प्रान्तावस्थितहर्म्यालीपरिवारमनोहरम् । शेषपर्वतमध्यस्थं मन्दरौपम्यमागतम् ॥६४॥
हेमस्तम्भसहस्रेण धृतमुत्तमभासुरम् । पूजितायामविस्तारं नानामणिगणार्चितम् ॥६५॥
बहुरूपधरैर्युक्तं चन्द्राभैर्वलभीपुटैः । गवाक्षप्रान्तसंसक्तैर्मुक्ताजालैर्विराजितम् ॥६६॥
अनेकाद्भुतसङ्कीर्णैर्युक्तैः प्रतिसरादिभिः । प्रदेशैर्विविधैः कान्तं पापप्रमथनं परम् ॥६७॥
एवंविधे गृहे तस्मिन् पद्मरागमयी प्रभोः । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य प्रतिमा [1]प्रतिमोज्झिताम् ॥६८॥
भासमम्भोजखण्डानां दिशन्तीं मणिभूमिषु । स्तुत्वा च परिवन्दित्वा यथाऽर्हं समवस्थिताः ॥६९॥
यथायथं ततो याता खेचरेन्द्रा निरूपितम् । समाश्रयं बलं चित्ते बिभ्राणाश्चक्रिणां तथा ॥७०॥
अथ विद्याधरस्त्रीभिः पद्मलक्ष्मणयोः पृथक् । सीतायाश्च शरीरस्य क्रियायोगः प्रवर्त्तितः ॥७१॥

पर बैठ कर जा रहे थे, कितने ही सिंहोंकी पीठ पर सवार हो कर चल रहे थे और कितने ही रथ आदि वाहनोंसे प्रस्थान कर रहे थे ॥५७॥ उनके आगे आगे नर्तकियाँ नट तथा भांड़ आदि सुन्दर नृत्य करते जाते थे तथा चारणोंके समूह बड़ी उच्च ध्वनिमें उनका विरद बखानते जा रहे थे ॥५८॥ असमयमें प्रकट हुई चाँदनीके समान मनोहर छत्रोंके समूहसे तथा नाना शस्त्रोंके समूहसे सूर्यकी किरणें आच्छादित हो गई थी ॥५९॥ इस प्रकार सुन्दरी स्त्रियोंके मुख-कमलोंको विकसित करते हुए वे सब विभीषणके राजभवनमें पहुँचे ॥६०॥ उस समय राम लक्ष्मण आदिकी शुभ-लक्षणोंसे युक्त जो विभूति थी वह देवोंके लिए भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली थी ॥६१॥

अथानन्तर हाथीसे उतरकर, जिनका रत्नोंके अर्घ आदिसे सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मणने विभीषणके सुन्दर भवनमें प्रवेश किया ॥६२॥ विभीषणके विशाल भवनके मध्यमें श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रका वह मन्दिर था जो रत्नमयी तोरणोंसे सहित था, स्वर्णके समान देदीप्यमान था, समीपमें स्थित महलोंके समूहसे मनोहर था, शेष नामक पर्वतके मध्यमें स्थित था, प्रेमकी उपमाको प्राप्त था, स्वर्णमयी हजार खम्भोंसे युक्त था, उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई और विस्तारसे सहित था, नाना मणियोंके समूहसे शोभित था, चन्द्रमाके समान चमकती हुई नाना प्रकारकी वलभियोंसे युक्त था, झरोखोंके समीप लटकती हुई मोतियोंकी जालीसे सुशोभित था, अनेक अद्भुत रचनाओंसे युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशोंसे सुन्दर था, और पापको नष्ट करने वाला था ॥६३-६७॥ इस प्रकारके उस मन्दिरमें श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मराग मणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी । जो अपनी प्रभासे मणिमय भूमिमें कमल-समूह की शोभा प्रकट कर रही थी । सबलोग उस प्रतिमाकी स्तुति-वन्दना कर यथा योग्य बैठ गये ॥६८-६९॥ तदनन्तर विद्याधर राजा, हृदयमें राम और लक्ष्मणको धारण करते हुए जहाँ जिसके लिए जो स्थान बनाया गया था वहाँ यथा योग्य रीतिसे चले गये ॥७०॥

अथानन्तर विद्याधर स्त्रियोंने राम-लक्ष्मण और सीताके स्नानकी पृथक् पृथक् विधि

१. उपमारहिताम् ।

भक्ताः सुगन्धिभिः पथ्यैः स्नेहैः वर्णमनोहरैः[1] । घ्राणदेहानुकूलैश्च शुभैरुद्वर्तनैः कृतः ॥७२॥
स्थितानां स्नानपीठेषु प्राङ्मुखानां सुमङ्गलः । ऋद्ध्या स्नानविधिस्तेषां क्रमयुक्तः प्रवर्तितः ॥७३॥
वपुःकषणपानीयविसर्जनलयान्वितम् । हारि[2] प्रवृत्तमातोद्यं सर्वोपकरणाश्रितम् ॥७४॥
हैमैर्मारकतैर्वाज्रैः स्फाटिकैरिन्द्रनीलजैः । कुम्भैर्गन्धोदकापूर्णैः स्नानं तेषां समापितम् ॥७५॥
पवित्रवस्त्रसंवीताः सुस्नाताः सदलंकृताः । प्रविश्य चैत्यभवनं पद्माभं ते ववन्दिरे ॥७६॥
तेषां प्रत्यवसानार्था कार्या विस्तारिणी कथा । घृताद्यैः पूरिता वाप्यः सद्भक्ष्यैः पर्वताः कृताः[3] ॥७७॥
वनेषु नन्दनाद्येषु वस्तुजातं यदुद्गतम् । मनोघ्राणेक्षणाभीष्टं तत्कृतं भोजनावनौ ॥७८॥
मृष्टमन्नं स्वभावेन जानक्या तु समन्ततः । कथं वर्णयितुं शक्यं पद्मनाभस्य चेतसः ॥७९॥
पञ्चानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणां तदैव[4] हि । यदाभीष्टसमायोगे जायते कृतनिर्वृतिः ॥८०॥
तदा भुक्तं तदा घ्रातं तदा स्पृष्टं तदेक्षितम् । तदा श्रुतं यदा जन्तोर्जायते प्रियसङ्गमः ॥८१॥
विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते । स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥८२॥
रसायनरसैः कान्तैरद्भुतैर्बहुवर्णकैः । भक्ष्यैश्च विविधैस्तेषां निर्वृत्ता भोजनक्रिया ॥८३॥
खेचरेन्द्रा यथायोग्यं कृतभूमिनिवेशनाः । भोजिता कृतसन्मानाः परिवारसमन्विताः ॥८४॥

प्रस्तुत की ॥७१॥ सर्व प्रथम उन्हें सुगन्धित हितकारी तथा मनोहर वर्ण वाले तेलका मर्दन किया गया, फिर घ्राण और शरीरके अनुकूल पदार्थोंका उपटन किया गिया ॥७२॥ तदनन्तर स्नानकी चौकीपर पूर्व दिशाकी ओर मुख कर बैठे हुए उनका बड़े वैभवसे क्रमपूर्वक मङ्गल मय स्नान कराया गया ॥७३॥ उस समय शरीरको घिसना पानी छोड़ना आदि की लयसे सहित मनको हरण करने वाले तथा सब प्रकारकी साज-सामग्रीसे युक्त बाजे बज रहे थे ॥७४॥ गन्धोदकसे परिपूर्ण सुवर्ण, मरकत मणि, हीरा, स्फटिक मणि तथा इन्द्रनीलमणि निर्मित कलशोंसे उनका अभिषेक पूर्ण हुआ ॥७५॥ तदनन्तर अच्छी तरह स्नान करनेके बाद उन्होंने पवित्र वस्त्र धारण किये, उत्तम अलंकारोंसे शरीर अलंकृत किया और तदनन्तर मन्दिरमें प्रवेश कर श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रकी वन्दना की ॥७६॥

अथानन्तर उन सबके लिए जो भोजन तैयार किया गया था, उसकी कथा बहुत विस्तृत है। उस समय घी दूध दही आदिकी बावड़ियाँ भरी गई थीं और खाने योग्य उत्तमोत्तम पदार्थोंके मानो पर्वत बनाये गये थे अर्थात् पर्वतोंके समान बड़ी-बड़ी राशियाँ लगाई गई थीं ॥७७॥ मन घ्राण और नेत्रोंके लिए अभीष्ट जो भी वस्तुएँ चन्दन आदि वनोंमें उत्पन्न हुई थीं वे लाकर भोजन-भूमिमें एकत्रित की गई थीं ॥७८॥ वह भोजन स्वभावसे ही मधुर था फिर जानकीके समीप रहते हुए तो कहना ही क्या था ? उस समय श्रीरामके मनकी जो दशा थी उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ! ॥७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पाँचो इन्द्रियोंकी सार्थकता तभी है जब इष्ट पदार्थोंका संयोग होने पर उन्हें संतोष उत्पन्न होता है ॥८०॥ इस जन्तुने उसी समय भोजन किया है, उसी समय सूँघा है, उसी समय स्पर्श किया है, उसी समय देखा है और उसी समय सुना है जब कि उसे प्रियजनका समागम प्राप्त होता है। भावार्थ—प्रियजनके विरहमें भोजन आदि कार्य निःसार जान पड़ते हैं ॥८१॥ विरह कालमें स्वर्ग तुल्य भी देश नरकके समान जान पड़ता हैं और प्रियजनके समागम रहते हुए महावन भी स्वर्गके समान जान पड़ता है ॥८२॥ सुन्दर अद्भुत और बहुत प्रकारके रसायन सम्बन्धी रसों की तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे उन सब की भोजन-क्रिया पूर्ण हुई ॥८३॥ जो यथा योग्य भूमि पर बैठाये गये थे, जिनका सम्मान किया गया था तथा जो अपने अपने परिवार

---

१. पूर्णमनोहरैः म० । २. मनोहरम् । ३. पर्वताकृता म०, ज० । ४. तदेव म० ।

चन्दनाद्यैः कृताः सर्वैर्गन्धैराबद्धषट्पदैः । भद्रशालादि[1]अरण्योत्थैः कुसुमैश्च विभूषिताः ॥८५॥
स्पर्शानुकूललघुभिर्वस्त्रैर्युक्ता महाधनैः । नानारत्नप्रभाजालकरालितदिगाननाः ॥८६॥
सर्वे सम्भाविताः सर्वे फलयुक्तमनोरथाः । दिवा रात्रौ च चित्राभिः कथाभी रतिमागताः ॥८७॥
अहो राक्षसवंशस्य भूषणोऽयं विभीषणः । अनुवृत्तिरियं येन कृतेदृक्पद्मचक्रिणोः ॥८८॥
श्लाघ्यो महानुभावोऽयं जगत्युत्तुङ्गतां यतः । कृतार्थौ भवने यस्य स्थितः पद्मः सलक्ष्मणः ॥८९॥
एवं विभीषणाधारगुणग्रहणतत्परः । विद्याधरजनस्तस्थौ सुखं मत्सरवर्जितः ॥९०॥
पद्मलक्ष्मणवैदेहीविभीषणकथागतः । पौरलोकः समस्तोऽभूत् परित्यक्तान्यसङ्कथः ॥९१॥
सम्प्राप्तबलदेवत्वं पद्मं लाङ्गललक्षणम् । नारायणं च सम्प्राप्तचक्ररत्नं नरेश्वरम् ॥९२॥
अभिषेक्तुं समासक्ता विभीषणपुरःसराः । सर्वविद्याधराधीशा विनयेन ढुढौकिरे ॥९३॥
ऊचतुस्तौ[2] गुरोः पूर्वमभिषेकमवाप्तवान् । प्रभुर्भरत एवाऽऽस्तेऽयोध्यायां वः स एव नौ ॥९४॥
उक्तं तैरेवमेवैतत्तथाप्यभिषवेऽत्र कः । मङ्गले दृश्यते दोषो महापुरुषसेविते ॥९५॥
क्रियमाणामसौ पूजां भवतोरनुमन्यते । श्रूयतेऽत्यन्तधीरोऽसौ मनसो नैति विक्रियाम् ॥९६॥
वस्तुतो बलदेवत्वचक्रित्वप्राप्तिकारणात् । सम्प्रतिष्ठा तयोरासीत् पूजासम्भारसङ्गता ॥९७॥
एवमत्युन्नतां लक्ष्मीं सम्प्राप्तौ रामलक्ष्मणौ । लङ्कायामूषतुः स्वर्गनगर्यां त्रिदशाविव ॥९८॥

इष्ट जनोंसे सहित थे ऐसे समस्त विद्याधर राजाओंको भोजन कराया गया ॥८४॥ जिनपर भ्रमरोंने मण्डल बाँध रक्खे थे ऐसे चन्दन आदि सब प्रकारकी गन्धोंसे तथा भद्रशाल आदि वनोंमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे सब विभूषित किये गये ॥८५॥ जो स्पर्शके अनुकूल, हल्के और अत्यन्त सघन बुने हुए वस्त्रोंसे युक्त थे तथा नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे जिन्होंने दिशाओंको व्याप्त कर रक्खा था ऐसे उन सब लोगोंका सम्मान किया गया था, उनके सब मनोरथ सफल किये थे, और रात दिन नाना प्रकार की कथाओंसे सबको प्रसन्न किया गया था ॥८६-८७॥ अहो! यह विभीषण राक्षसवंशका आभूषण है, जिसने कि इस प्रकार राम-लक्ष्मणकी अनुवृत्ति की—उनके अनुकूल आचरण किया ॥८८॥ यह महानुभाव प्रशंसनीय है तथा जगत्‌में अत्यन्त उत्तम अवस्थाको प्राप्त हुआ है। जिसके घरमें कृतकृत्य हो राम-लक्ष्मणने निवास किया उसकी महिमाका क्या कहना है? ॥८९॥ इस प्रकार विभीषणमें पाये जाने वाले गुणोंके ग्रहण करनेमें जो तत्पर थे तथा मात्सर्य भावसे रहित थे ऐसे सब विद्याधर भी विभीषणके घर सुखसे रहे ॥९०॥ उस समय नगरीके समस्त लोक राम, लक्ष्मण, सीता और विभीषणकी ही कथामें संलग्न रहते थे—अन्य सब कथाएँ उन्होंने छोड़ दी थीं ॥९१॥

अथानन्तर विभीषण आदि समस्त विद्याधर राजा जिन्हें बलदेव पद प्राप्त हुआ था ऐसे हल लक्षणधारी राम और जिन्हें नारायण पद प्राप्त हुआ था ऐसे चक्ररत्नके धारी राजा लक्ष्मण का अभिषेक करनेके लिए उद्यत हो विनयपूर्वक आये ॥९२-९३॥ तब राम लक्ष्मणने कहा कि पहले, पिता दशरथसे जिसे राज्याभिषेक प्राप्त हुआ है ऐसा राजा भरत अयोध्यामें विद्यमान है वही तुम्हारा और हम दोनोंका स्वामी है ॥९४॥ इसके उत्तरमें विभीषणादिने कहा कि जैसा आप कह रहे हैं यद्यपि वैसा ही है तथापि महापुरुषोंके द्वारा सेवित इस मङ्गलमय अभिषेकमें क्या दोष दिखाई देता है? अर्थात् कुछ नहीं? ॥९५॥ आप दोनोंके इस किये जाने वाले सत्कारको राजा भरत अवश्य ही स्वीकृत करेंगे क्योंकि वे अत्यन्त धीर-गम्भीर सुने जाते हैं। वे मनसे रञ्च मात्र भी विकारको प्राप्त नहीं होते ॥९६॥ यथार्थमें बलदेवत्व और चक्रवर्तित्व की प्राप्तिके कारण उनके अनेक प्रकारकी पूजासे युक्त प्रतिष्ठा हुई थी ॥९७॥ इस प्रकार अत्यन्त

१. भद्रशोभा- म० । २. -मूचतुः म० ।

पुरे तत्रेन्द्रनगरप्रतिमे स्फीतभोगदे । नदीसरस्तटाद्येषु देशेष्वस्थुर्नभश्चराः ॥९९॥
दिव्यालङ्कारताम्बूलवस्त्रहारविलेपनाः । चिक्रीडुस्तत्र ते स्वेच्छं सस्त्रीकाः स्वर्गिणो यथा ॥१००॥
दिनरत्नकरालीढसितपद्मान्तरद्युति । वैदेहीवदनं पश्यन् पद्मस्तृप्तिमियाय न ॥१०१॥
विरामरहितं रामस्तयात्यन्ताभिरामया । रामया सहितो रेमे रमणीयासु भूमिषु ॥१०२॥
विशल्यासुन्दरीयुक्तस्तथा नारायणो रतिम् । जगाम चिन्तितप्राप्तसर्ववस्तुसमागमः ॥१०३॥
यातास्मः श्व इति स्वान्तं कृत्वापि पुनरुत्तमाम् । सम्प्राप्य रतिमेतेषां गमनं स्मृतितरच्युतम् ॥१०४॥
तयोर्बहूनि वर्षाणि रतिभोगोपयुक्तयोः । गतान्येकदिनौपम्यं भजमानानि सौख्यतः ॥१०५॥
कदाचिदथ संस्मृत्य लक्ष्मणश्चारुलक्षणः । पुराणि कूबरादीनि प्रजिघाय विराधितम् ॥१०६॥
साभिज्ञानानसौ लेखानुपादाय महर्द्धिकः । कन्याभ्योऽदर्शयद् गत्वा क्रमेण विधिकोविदः ॥१०७॥
संवादजनितानन्दाः पितृभ्यामनुमोदिताः । आजग्मुरनुरूपेण परिवारेण सङ्गताः ॥१०८॥
दशाङ्गभोगनगरस्वामिनः[2] कुलिशश्रुतेः[3] । प्राप्ता रूपवती नाम कन्या रूपवती परा ॥१०९॥
कूबरस्थाननाथस्य वालिखिल्यस्य देहजा । सर्वकल्याणमालाख्या प्राप्ता परमसुन्दरी ॥११०॥
पृथिवीपुरनाथस्य पृथिवीधरभूभृतः । प्रथिता वनमालेति दुहिता समुपागता ॥१११॥
क्षेमाञ्जलिपुरेशस्य जितशत्रोर्महीक्षितः । जितपद्मेति विख्याता तनया समुपागमत् ॥११२॥
उज्जयिन्यादितोऽप्येता नगराद् राजकन्यकाः । जन्मान्तरकृतात् पुण्यात् परमात्पतिमीदृशम् ॥११३॥

उन्नत लक्ष्मीको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मण लङ्कामें इस प्रकार रहे जिस प्रकार कि स्वर्गकी नगरीमें दो देव रहते हैं ॥९८॥ इन्द्रके नगरके समान अत्यधिक भोगोंको देनेवाले उस नगरमें विद्याधर लोग, नदियों और तालाबों आदिके तटोंपर आनन्दसे बैठते थे ॥९९॥ दिव्य अलंकार, पान, वस्त्र, हार और विलेपन आदिसे सहित वे सब विद्याधर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उस लङ्कामें इच्छानुसार देवोंके समान क्रीड़ा करते थे ॥१००॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताका मुख सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त सफेद कमलके भीतरी भागके समान कान्तियुक्त था, उसे देखते हुए श्री राम तृप्तिको प्राप्त नहीं हो रहे थे ॥१०१ उस अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीके साथ राम, निरन्तर मनोहर भूमियोंमें क्रीड़ा करते थे ॥१०२॥ जिन्हें इच्छा करते ही सर्व वस्तुओंका समागम प्राप्त हो रहा था ऐसे राम लक्ष्मण विशल्या सुन्दरीके साथ अलग ही प्रीतिको प्राप्त हो रहे थे ॥१०३॥ वे यद्यपि हम कल चले जावेंगे, ऐसा मनमें सङ्कल्प करते थे तथापि विभीषणादिका उत्तम प्रेम पाकर 'जाना' इनकी स्मृतिसे छूट जाता था ॥१०४॥ इस प्रकार रति और भोगोपभोगकी सामग्रीसे युक्त राम लक्ष्मणके सुखसे भोगे जाने वाले अनेक वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये ॥१०५॥

अथानन्तर किसी दिन सुन्दर लक्षणोंके धारक लक्ष्मणने स्मरण कर विराधितको कूबरादि नगर भेजा ॥१०६॥ सो महाविभूतिके धारक, एवं सब प्रकारकी विधि मिलानेमें निपुण विराधितने क्रम-क्रमसे जाकर कन्याओंके लिए परिचायक चिह्नोंके साथ लक्ष्मणके पत्र दिखाये ॥१०७॥ तदनन्तर शुभ-समाचारसे जिन्हें हर्ष उत्पन्न हुआ था और माता-पिताने जिन्हें अनुमति दे रक्खी थी ऐसी वे कन्याएँ अनुकूल परिवारके साथ वहाँ आईं ॥१०८॥ कहाँ-कहाँ से कौन-कौन कन्याएँ आई थीं इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है । दशपुर नगरके स्वामी राजा वज्रकर्णकी रूपवती नामकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या आई थी ॥१०९॥ कूबर स्थान नगरके राजा वालिखिल्यकी सर्व-कल्याणमाला नामकी सुन्दरी पुत्री आई ॥११०॥ पृथिवीपुर नगरके राजा पृथिवीधरकी प्रसिद्ध पुत्री वनमाला आई ॥१११॥ क्षेमाञ्जलिपुरके राजा जितशत्रुकी प्रसिद्ध पुत्री जितपद्मा आई ॥११२॥ इनके सिवाय उज्जयिनी आदि नगरोंसे आई हुईं राजकन्याओंने जन्मान्तरमें किये हुए

---

१. विद्या- म० । २. देशांग- म० । ३. श्रुते म० ।

दमदानदयायुक्तं शीलाढ्यं गुरुसाक्षिकम् । नह्युत्तमं तपोऽकृत्वा प्राप्यते पतिरीदृशः ॥११४॥
नूनं नास्तमिते भानौ भुक्तं साध्वी न दूषिता । विमानिता न दिग्वस्त्रा जातोऽयं पतिरीदृशः ॥११५॥
योग्यो नारायणस्तासां योग्या नारायणस्य ताः । अन्योऽन्यं तेन ताभिश्च गृहीतं सुरतामृतम् ॥११६॥
न सा सम्पन्नसा[1] शोभा न सा लीला न सा कला । तस्य तासां च या नाऽऽसीत् तत्र श्रेणिक का कथा॥
कथं पद्मं कथं चन्द्रः कथं लक्ष्मीः कथं रतिः । भण्यतां[2] सुन्दरत्वेन श्रुत्वा तं किल तास्तथा ॥११८॥
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा सम्पदं तां तथाविधाम् । विद्याधरजनौघानां विस्मयः परमोऽभवत् ॥११९॥
चन्द्रवर्द्धनजातानामपि सङ्गमनी कथा । कर्तव्या सुमहानन्दा विवाहस्य च सूचनी ॥१२०॥
पद्मनाभस्य कन्यानां सर्वासां सङ्गमस्तथा । स विवाहोऽभवत्सर्वलोकानन्दकरः परः ॥१२१॥
यथेप्सितमहाभोगसम्बन्धसुखभागिनौ । ताविन्द्राविव लङ्कायां रेमाते प्रमदान्वितौ ॥१२२॥
वैदेहीदेहविन्यस्तसमस्तेन्द्रियसम्पदः । वर्षाणि षडतीतानि लङ्कायां सीरलक्ष्मणः[3] ॥१२३॥
सुखार्णवे निमग्नस्य चारुचेष्टाविधायिनः । काकुत्स्थस्य तदा सर्वमन्यत्स्मृतिपथाच्च्युतम् ॥१२४॥
एवं तावदिदं वृत्तं कथान्तरमिदं पुनः । पापक्षयकरं भूप शृणु तत्परमानसः ॥१२५॥
असाविन्द्रजितो योगी भगवान् सर्वपापहा । विद्यालब्धिसुसम्पन्नो विजहार महीतलम् ॥१२६॥
[4]वैराग्यानिलयुक्तेन सम्यक्त्वारणिजन्मना । कर्मकक्षं महाघोरमदहद्ध्यानवह्निना ॥१२७॥

परम पुण्यसे ऐसा पति प्राप्त किया ॥११३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! दम, दान और दयासे युक्त, शीलसे सहित एवं गुरुकी साक्षी पूर्वक लिये हुए उत्तम तपके किये बिना ऐसा पति नहीं प्राप्त हो सकता ॥११४॥ सूर्यास्त होने पर जिसने भोजन नहीं किया है, जिसने कभी आर्यिकाको दोष नहीं लगाया है और दिगम्बर मुनि जिसके द्वारा अपमानित नहीं हुए, उसी स्त्रीका ऐसा पति होता है ॥११५॥ नारायण उन सबके योग्य थे और वे सब नारायणके योग्य थीं, इसीलिए नारायण और उन स्त्रियोंने परस्पर संभोग रूपी अमृत ग्रहण किया था ॥११६॥ हे श्रेणिक ! न तो वह सम्पत्ति थी, न वह शोभा थी, न वह लीला थी और न वह कला थी जो लक्ष्मण और उनकी उन स्त्रियोंमें न पाई जाती फिर औरकी क्या कथा की जाय ? ॥११७॥ सौन्दर्यकी अपेक्षा उनके मुखको देख कर कहा जाय कि कमल क्या है ? चन्द्रमा क्या है ? और उन स्त्रियोंको देख कर कहा जाय कि लक्ष्मी क्या है ? और रति क्या है ? ॥११८॥ राम-लक्ष्मणकी उस-उस प्रकारकी संपदाको देख कर विद्याधरजनोंको बड़ा आश्चर्य हो रहा था ॥११९॥ यहाँ चन्द्रवर्धनकी पुत्रियोंका समागम कराने तथा उनके विवाहकी आनन्दमयी सूचना देने वाली कथाका निरूपण करना भी उचित जान पड़ता है ॥१२०॥ उस समय श्री राम तथा चन्द्रवर्धनकी समस्त कन्याओंका समागम कराने वाला वह विवाहोत्सव हुआ जो समस्त लोगोंको परम आनन्दका करने वाला था ॥१२१॥ इच्छानुसार महाभोगोंके सम्बन्धसे सुखको प्राप्त होने वाले वे राम लक्ष्मण, अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ लङ्कामें इन्द्र-प्रतीन्द्रके समान क्रीड़ा करते थे ॥१२२॥ जिनकी समस्त इन्द्रियोंकी सम्पदा सीताके शरीरके आधीन थी, ऐसे श्री रामको लङ्कामें रहते हुए छह वर्ष व्यतीत हो गये ॥१२३॥ उस समय उत्तम चेष्टाओंके धारक रामचन्द्र, सुखके सागरमें ऐसे निमग्न हुए कि अन्य सब कुछ उनकी स्मृतिके मार्गसे च्युत हो गया ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकारकी यह कथा तो रहने दो अब एकाग्र चित्त हो पापका क्षय करने वाली दूसरी कथा सुनो ॥१२५॥

अथानन्तर समस्त पापोंको नष्ट करने वाले भगवान् इन्द्र जित् मुनिराज, अनेक ऋद्धियोंकी प्राप्तिसे युक्त हो पृथिवीतल पर विहार करने लगे ॥१२६॥ उन्होंने वैराग्य रूपी पवनसे युक्त तथा सम्यग्दर्शन रूपी वाससे उत्पन्न ध्यान रूपी अग्निके द्वारा कर्म रूपी भयंकर वनको भस्म कर दिया

१. संपन्नता म० । २. रम्यताम् म० । ३. रामस्य । ४. वैराग्यानलयुक्तेन ज० ।

मेघवाहोऽनगारोऽपि विषयेन्धनपावकः। केवलज्ञानतः प्राप्तः स्वभावं जीवगोचरम् ॥१२८॥
तयोरनन्तरं सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितः। शुक्ललेश्याविशुद्धात्मा कलशश्रवणो मुनिः ॥१२९॥
पश्यंल्लोकमलोकं च केवलेन तथाविधम्। विरजस्कः परिप्राप्तः परमं पदमच्युतम् ॥१३०॥
सुरासुरजनाधीशैरुद्गीतोत्तमकीर्तयः। शुद्धशीलधरा दीप्ताः प्रणताश्च महर्षयः ॥१३१॥
गोष्पदीकृतनिःशेषगहनज्ञेयतेजसः। संसारक्लेशदुर्मोचजालबन्धननिर्गताः ॥१३२॥
अपुनःपतनस्थानसम्प्राप्तिस्वार्थसङ्गताः। उपमानविनिर्मुक्तनिष्प्रत्यूहसुखात्मकाः ॥१३३॥
एतेऽन्ये च महात्मानः सिद्धा निर्धूतशत्रवः। दिशन्तु बोधिमारोग्यं श्रोतॄणां जिनशासने ॥१३४॥
यशसा परिवीतान्यद्यत्वेऽपि परमात्मनाम्। स्थानानि तानि दृश्यन्ते दृश्यन्ते साधवो न ते ॥१३५॥
विन्ध्यारण्यमहास्थल्यां सार्द्धमिन्द्रजिता यतः। मेघनादः स्थितस्तेन तीर्थं मेघरवं स्मृतम् ॥१३६॥
तूर्णीगतिमहाशैले नानाद्रुमलताकुले। नानापक्षिगणाकीर्णे नानाश्वापदसेविते ॥१३७॥
परिप्राप्तोऽहमिन्द्रत्वं जम्बुमाली महाबलः। अहिंसादिगुणाढ्यस्य किमु धर्मस्य दुष्करम् ॥१३८॥
ऐरावतेऽवतीर्यासौ महाव्रतविभूषणः। कैवल्यतेजसा युक्तः सिद्धस्थानं गमिष्यति ॥१३९॥
अरजा निस्तमो योगी कुम्भकर्णो महामुनिः। निर्वृत्तो नर्मदातीरे तत्तीर्थं पिठरक्षतम् ॥१४०॥
नभोविचारिणीं पूर्वं लब्धिं प्राप्य महाद्युतिः। मयो विहरणं चक्रे स्वेच्छं निर्वाणभूमिषु ॥१४१॥
प्रदेशान्नृपभार्दीनां देवागमनसेवितान्। महाद्युतिपरोऽपश्यद्रत्नत्रितयमण्डनः ॥१४२॥

था ॥१२७॥ विषय रूपी ईन्धनको जलानेके लिए अग्निके समान जो मेघ वाहन मुनिराज थे वे केवलज्ञान प्राप्त कर आत्म स्वभावको प्राप्त हुए ॥१२८॥ उन दोनोंके बाद सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्रको धारण करने वाले कुम्भकर्ण मुनिराज भी शुक्ल लेश्याके प्रभावसे अत्यन्त विशुद्धात्मा हो केवलज्ञानके द्वारा लोक और अलोकको ज्योंका त्यों देखते हुए कर्मधूलिको दूर कर अविनाशी परम पदको प्राप्त हुए ॥१२९-१३०॥ इनके सिवाय सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा चक्रवर्ती जिनकी उत्तम कीर्तिका गान करते थे, जो शुद्ध शीलके धारक थे, देदीप्यमान थे, गर्व रहित थे, जो समस्त पदार्थ रूपी सघन ज्ञेयको गोष्पदके समान तुच्छ करने वाले तेजसे सहित थे, जो संसारके क्लेश रूपी कठिन बन्धनके जालसे निकल चुके थे, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आना पड़ता ऐसे मोक्ष स्थानकी प्राप्ति रूपी स्वार्थसे जो सहित थे, अनुपम तथा निर्विघ्न सुख ही जिनका स्वरूप था, जिनकी आत्मा महान् थी, जो सिद्ध थे तथा शत्रुओंको नष्ट करने वाले थे, ऐसे ये तथा अन्य जो महर्षि थे वे जिनशासनके श्रोता मनुष्योंके लिए रत्नत्रय रूपी आरोग्य प्रदान करें ॥१३१-१३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उनपर महात्माओंका प्रभाव तो देखो कि आज भी उन परमात्माओंके यशसे व्याप्त वे दिखाई देते हैं पर वे साधु नहीं दिखाई देते ॥१३५॥ विन्ध्यवन की महाभूमिमें जहाँ इन्द्रजित्के साथ मेघवाहन मुनिराज विराजमान रहे वहाँ आज मेघरव नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥१३६॥ अनेक वृक्षों और लताओंसे व्याप्त, नानापक्षियोंके समूहसे युक्त एवं नाना जानवरोंसे सेवित तूणीगति नामक महाशैल पर महा बलवान् जम्बुमाली नामक मुनि अहमिन्द्र अवस्थाको, प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि अहिंसादि गुणोंसे युक्त धर्मके लिए क्या कठिन है? ॥१३७-१३८॥ यह जम्बुमालीका जीव ऐरावत क्षेत्रमें अवतार ले महाव्रत रूपी विभूषणसे अलंकृत तथा केवल ज्ञान रूपी तेजसे युक्त हो मुक्ति स्थानको प्राप्त होगा ॥१३९॥ रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित महामुनि कुम्भकर्ण योगी नर्मदाके जिस तीर पर निर्वाणको प्राप्त हुए थे वहाँ पिठरक्षत नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ॥१४०॥ महा दीप्तिके धारक मय मुनिने आकाशगामिनी ऋद्धि पाकर इच्छानुसार निर्वाण-भूमियोंमें विहार किया ॥१४१॥ रत्नत्रय रूपी मण्डनको

१. मेघवाहानगारोऽपि म०। २. कुम्भकर्णः। ३. मिन्द्रजितो म०।

मारीचः कल्पवासित्वं प्राप्याऽन्ये च महर्षयः । सत्वं यथाविधं यस्य फलं तस्य तथाविधम् ॥१४३॥
वैदेह्याः पश्य माहात्म्यं दृढव्रतसमुद्भवम् । यथा सम्पालितं शीलं द्विषन्तश्च विवर्जिताः ॥१४४॥
सीताया अतुलं धैर्यं रूपं सुभगता मतिः । कल्याणगुणपूर्णायाः स्नेहबन्धश्च भर्तरि ॥१४५॥
शीलतः स्वर्गगामिन्या स्वभर्तृपरितुष्टया । चरितं रामदेवस्य सीतया साधु भूषितम् ॥१४६॥
एकेन व्रतरत्नेन पुरुषान्तरवर्जिना । स्वर्गारोहणसामर्थ्यं योषितामपि विद्यते ॥१४७॥
मयोऽपि मायया तीव्रः कृत्वा प्राणिवधान् बहून् । प्रपद्य वीतरागत्वं पापलब्धीः[1] सुसंयतः ॥१४८॥
उवाच श्रेणिको नाथ ! श्रुतमिन्द्रजितादिजम् । माहात्म्यमधुना श्रोतुं वाञ्छामि मयसम्भवम् ॥१४९॥
सन्त्यन्याः शीलवत्यश्च नृणां वसुमतीतले । स्वभर्तृनिरतात्मानस्ता नु किं स्वर्गभाविताः ॥१५०॥
गण्यूचे यदि सीताया निश्चयेन व्रतेन च । तुल्याः पतिव्रताः स्वर्गं व्रजन्त्येव गुणान्विताः ॥१५१॥
सुकृतासुकृतास्वादनिस्पन्दीकृतवृत्तयः । शीलवत्यः समा राजन् ननु सर्वा विचेष्टितैः ॥१५२॥
वीरुदश्वेभलोहानामुपलद्रुमवाससाम् । योषितां पुरुषाणां च विशेषोऽस्ति [2]महान् नृप ॥१५३॥
न हि चित्रभृतं[3] वल्ल्यां वल्ल्यां कूष्माण्डमेव वा । एवं न सर्वनारीषु सद्वृत्तं नृप विद्यते ॥१५४॥
पतिव्रताभिमाना [4]प्रागतिवंशसमुद्भवा । शीलाङ्कुशादिनिर्याता प्राप्ता दुर्मतवारणम् ॥१५५॥

धारण करने वाले तथा महान् धैर्यके धारक उन मय मुनिने देवागमनसे सेवित ऋषभादि तीर्थंकरोंके कल्याणक प्रदेशोंके दर्शन किये ॥१४२॥ मारीच मुनि कल्पवासी देव हुए तथा अन्य महर्षियोंने जिसका जैसा तपोबल था उसने वैसा ही फल प्राप्त किया ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शीलव्रतकी दृढ़तासे उत्पन्न सीताका माहात्म्य तो देखो कि उसने शीलव्रतका पालन किया तथा शत्रुओंको नष्ट कर दिखाया ॥१४४॥ कल्याणकारी गुणोंसे परिपूर्ण सीताका धैर्य, रूप, सौभाग्य, बुद्धि और पति विषयक स्नेहका बन्धन—सभी अनुपम था ॥१४५॥ जो शीलव्रतके प्रभावसे स्वर्गगामिनी थी तथा अपने पतिमें ही सन्तुष्ट रहती थी ऐसी सीताने श्रीराम देवके चरितको अच्छी तरह अलंकृत किया था ॥१४६॥ पर-पुरुषका त्याग करने वाले एक व्रत रूपी रत्नके द्वारा स्त्रियोंमें भी स्वर्ग प्राप्त करनेकी सामर्थ्य विद्यमान है ॥१४७॥ जिस विकट मायावी मयने पहले अनेक जीवोंका वध किया था, अब उसने भी वीत राग भावको धारण कर उत्तम मुनि हो अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त की थीं ॥१४८॥

तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि हे नाथ ! मैंने इन्द्रजित् आदिका माहात्म्य तो सुन लिया है अब मयका माहाम्य सुनना चाहता हूँ ॥१४९॥ हे भगवन् ! इस पृथिवी तल पर मनुष्योंकी और भी शीलवती ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं जो कि अपने पतिमें ही लीन रही हैं सो क्या वे सब भी स्वर्गको प्राप्त हुई हैं ? ॥१५०॥ इसके उत्तरमें गणधर बोले कि यदि वे निश्चय और व्रतकी अपेक्षा सीताके समान हैं, पातिव्रत्य धर्मसे सहित एवं अनेक गुणोंसे युक्त हैं तो नियमसे स्वर्गको ही जाती हैं ॥१५१॥ हे राजन् ! पुण्य, पापका फल भोगनेमें जिनकी आत्मा निश्चल है अर्थात् जो समता भावसे पूर्वकृत पुण्य, पापका फल भोगती हैं ऐसी सभी शीलवती स्त्रियाँ अपनी चेष्टाओंसे समान ही होती हैं ॥१५२॥ वैसे हे राजन् ! लता, घोड़ा, हाथी, लोहा, पाषाण, वृक्ष, वस्त्र, स्त्री और पुरुष इनमें परस्पर बड़ा अन्तर होता है ॥१५३॥ जिस प्रकार हरएक लतामें न ककड़ी फलती है और न कुम्हड़ा ही, इसी प्रकार हे राजन् ! सब स्त्रियोंमें सदाचार नहीं पाया जाता ॥१५४॥ पहले अति-वंशमें उत्पन्न हुई एक अभिमाना नामकी स्त्री हो गई है जो अपने आपको पतिव्रता प्रकट करती थी किन्तु यथार्थमें शील रूपी अङ्कुशसे रहित हो दुर्मत रूपी वारणको प्राप्त हुई थी। भावार्थ—

---

१. प्राप लब्धीः म० । २. महान्नृपः म० । ३. चित्रभृतं ख०, कर्कटिका (श्रीचन्द्रमुनिकृत-टिप्पण्याम्) । ४. च प्रति- म० ।

लोकशास्त्रातिनिःसारसृणिना नैष शक्यते । वशीकर्तुं[1] मनोहस्ती कुगतिं नयते ततः ॥१५६॥
सर्वज्ञोक्त्यङ्कुशेनैव[1] दयासौख्यान्विते पथि । शक्यो योजयितुं युक्तमतिना भव्यजन्तुना ॥१५७॥
शृणु संक्षेपतो वक्ष्येऽभिमानाशीलवर्णनम् । परम्परासमायातमाख्यानकं विपश्चिताम् ॥१५८॥
आसीज्जनपदो यस्मिन् काले रोगानिलाहतः । धान्यग्रामात्तदा पत्न्या सहैको निर्गतो द्विजः ॥१५९॥
आसीन्नोदननामासावभिमानाभिधाङ्गना । अग्निनाम्ना समुत्पन्ना मानिन्यामभिमानिनी ॥१६०॥
नोदनेनाभिमानासौ क्षुद्बाधाविह्वलात्मना । त्यक्ता[2] गजवने प्राप्ता पतिं कररुहं नृपम् ॥१६१॥
पुष्पप्रकीर्णनगरस्वामी लब्धप्रसादया । पादेन मस्तके जातु तयाऽसौ ताडितो रतौ ॥१६२॥
आस्थानस्थः प्रभातेऽसौ पर्यपृच्छद् बहुश्रुतान् । पादेनाऽऽहन्ति यो राजशिरस्तस्य किमिष्यते ॥१६३॥
तस्मिन् बहवः प्रोचुः सभ्याः पण्डितमानिनः । यथाऽस्य छिद्यते पादः प्राणैर्वा स वियोज्यताम् ॥१६४॥
हेमाङ्कस्तत्र नामैको विप्रोऽभिप्रायकोविदः । जगाद तस्य पादोऽसौ पूजां सम्प्राप्यतां पराम् ॥१६५॥
कोविदः कथमीदृक् त्वमिति पृष्टः स भूभृता । [3]इष्टस्त्रीदन्तशस्त्रीयं क्षतमिष्टं स्वमैक्षयत् ॥१६६॥
अभिप्रायविदित्येष हेमाङ्कस्तेन भूभृता । प्रापितः परमामृद्धिं सर्वेभ्यश्चान्तरं [4]गतम् ॥१६७॥
हेमाङ्कस्य गृहे तस्य नाम्ना मित्रयशाः सती । अमोघशरसञ्ज्ञस्य भार्गवस्य प्रियाऽवसत् ॥१६८॥

इस प्रकार झूठ-मूठ ही पतिव्रताका अभिमान रखने वाली स्त्री पति-व्रता नहीं है ॥१५५॥ यह मन रूपी हाथी लौकिक शास्त्ररूपी निर्बल अंकुशके द्वारा वश नहीं किया जा सकता इसलिए वह इस जीवको कुमतिमें ले जाता है ॥१५६॥ उत्तम बुद्धिको धारण करने वाला भव्यजीव, जिनवाणी रूपी अङ्कुशके द्वारा ही मनरूपी हाथीको दया और सुखसे सहित समीचीनमार्गमें ले जा सकता है ॥१५७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अब मैं विद्वानोंके बीच परम्परासे आगत अभिमानाके शील वर्णनकी कथा संक्षेपमें कहता हूँ सो सुन ॥१५८॥

वे कहने लगे कि जिस समय समस्त देश रोगरूपी वायुसे पीडित था उस समय धान्यग्राम का रहने वाला एक ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ उस ग्रामसे बाहर निकला ॥१५९॥ उस ब्राह्मणका नाम नोदन था और उसकी स्त्रीका नाम अभिमाना था। अभिमाना अग्निनामक पितासे मानिनी नामक स्त्रीमें उत्पन्न हुई थी तथा अत्यधिक अभिमानको धारण करने वाली थी ॥१६०॥ तदनन्तर भूख की बाधासे जिसकी आत्मा विह्वल हो रही थी ऐसे नोदनने अभिमानाको छोड़ दिया। धीरे धीरे अभिमाना हाथियोंके वनमें पहुँची वहाँ उसने राजा कररुहको अपना पति बना लिया ॥१६१॥ राजा कररुह पुष्पप्रकीर्ण नगरका स्वामी था। तदनन्तर जिसे पतिकी प्रसन्नता प्राप्त थी ऐसी उस अभिमानाने किसी समय रतिकालमें राजा कररुहके शिरमें अपने पैरसे आघात किया अर्थात् उसके शिरमें लात मारी ॥१६२॥ दूसरे दिन प्रभात होने पर जब राजा सभामें बैठा तब उसने बहुश्रुत विद्वानोंसे पूछा कि जो राजाके शिरको पैरके आघातसे पीडित करे उसका क्या करना चाहिए ॥१६३॥ राजाका प्रश्न सुन, सभामें अपने आपको पण्डित माननेवाले जो बहुतसे सभासद बैठे थे उन्होंने कहा कि उसका पैर काट दिया जाय अथवा उसे प्राणोंसे वियुक्त किया जाय? ॥१६४॥ उसी सभामें राजाके अभिप्रायको जाननेवाला एक हेमाङ्क नामका ब्राह्मण भी बैठा था सो उसने कहा कि राजन्, उसके पैरकी अत्यधिक पूजा की जाय अर्थात् अलंकार आदिसे अलंकृत कर उसका सत्कार किया जाय ॥१६५॥ राजाने उससे पूछा कि तुम इस प्रकार विद्वान् कैसे हुए अर्थात् तुमने यथार्थ बात कैसे जान ली? तब उसने कहा कि इष्टस्त्रीके इस दन्तरूपी शस्त्रने अपने इष्टको अपने द्वारा घायल दिखलाया है अर्थात् आपके ओठमें स्त्रीका दन्ताघात देख कर मैंने सब रहस्य जाना है ॥१६६॥ यह सुन राजाने 'यह अभिप्रायका जानने वाला है' ऐसा समझ हेमाङ्क को बहुत सम्पदा दी तथा अपनी निकटता प्राप्त कराई ॥१६७॥ हेमाङ्कके घरमें अमोघशर

१. अंकुशेन म० । २. त्यक्त्वा म० । ३. इष्टस्त्रीदन्तशस्त्री ज०, म० । ४. गता म० ।

विधवा दुःखिनी तस्मिन् वसन्ती भवने सुतम् । अशिक्षयदसावेवं स्मृतभर्तृगुणोत्करा ॥१६९॥
सुनिश्चितात्मना येन बाल्ये विद्यागमः कृतः । हेमाङ्कस्य द्युतिं तस्य विदुषः पश्य पुत्रक ॥१७०॥
शरविज्ञाननिर्धूतसर्वभार्गवसम्पदः । पितुस्तथाविधस्य त्वं तनयो बालिशोऽभवः ॥१७१॥
बाष्पविप्लुतनेत्रायाः श्रुत्वा मातुर्वचस्तदा । प्रशाम्यतां गतो विद्यां शिक्षितुं सोऽभिमानवान् ॥१७२॥
ततो व्याघ्रपुरे सर्वाः कलाः प्राप्य गुरोर्गृहे । तत्प्रदेशसुकान्तस्य सुतां हृत्वा विनिर्गतः ॥१७३॥
तस्याः शीलाभिधानायाः कन्यकाया सहोदरः । सिंहेदुरिति निर्यातो युद्धार्थी पुरुविक्रमः[1] ॥१७४॥
एकको बलसम्पन्नं जित्वा सिंहेन्दुमाहवे । श्रीवर्द्धितोऽन्वितो मात्रा सम्प्राप्तः परमां धृतिम् ॥१७५॥
महाविज्ञानयुक्तेन तेन प्रख्यातकीर्तिना । लब्धं कररुहाद्राज्यं नगरे पोदनाह्वये ॥१७६॥
सुकान्ते पञ्चतां प्राप्ते सिंहेदुर्द्युतिशत्रुणा । अभिभूतः समं देव्या निरैद्गेहात् सुरङ्गया ॥१७७॥
सम्भ्रान्तः शरणं गच्छन् भगिनीं खेदवान् भृशम् । प्राप्तस्ताम्बूलिकैर्भारं वाहितः सह भार्यया ॥१७८॥
भानावस्तङ्गतेऽभ्याशं[2] पोदनस्य स सङ्गतः । मुक्तो राजभटै[3] रात्रौ त्रासितो गहनं श्रितः ॥१७९॥
महोरगेण सन्दष्टस्तं देवी परिदेविनी[4] । कृत्वा स्कन्धे परिप्राप्ता देशं यत्र मयः स्थितः ॥१८०॥
वज्रस्तम्भसमानस्य प्रतिमास्थानमीयुषः । महालब्धेः समीपस्थ पादयोस्तमतिष्ठिपत् ॥१८१॥

नामक ब्राह्मणकी मित्रयशा नामकी पतिव्रता पत्नी रहती थी। वह बेचारी विधवा तथा दुःखिनी होकर उसी घरमें निवास करती और अपने पतिके गुणोंका स्मरण कर पुत्रको ऐसी शिक्षा देती थी ॥१६८-१६९॥ कि हे पुत्र ! जिसने बाल्य अवस्थामें निश्चिन्तचित्त होकर विद्याभ्यास किया था उस विद्वान् हेमाङ्कका प्रभाव देख ॥१७०॥ जिसने बाणविद्याके द्वारा समस्त ब्राह्मणों अथवा परशुरामकी सम्पदाको तिरस्कृत कर दिया था उस पिताके तू ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ है ॥१७१॥ आँसुओंसे जिसके नेत्र भर रहे थे ऐसी माताके वचन सुन उसका श्रीवर्धित नामका अभिमानी बालक माताको सान्त्वना देकर उसी समय विद्या सीखनेके लिए चला गया ॥१७२॥

तदनन्तर व्याघ्रपुर नगरमें गुरुके घर समस्त कलाओंको सीख विद्वान् हुआ और वहाँके राजा सुकान्तकी पुत्रीका हरणकर वहाँसे निकल भागा ॥१७३॥ पुत्रीका नाम शीला था और उसके भाईका नाम सिंहेन्दु था, सो प्रबल पराक्रमका धारक सिंहेन्दु बहिनको वापिस लानेके लिए युद्धकी इच्छा करता हुआ निकला ॥१७४॥ परन्तु श्रीवर्धित अस्त्र-शस्त्रमें इतना निपुण हो गया था कि उसने अकेले ही सेनासे युक्त सिंहेन्दुको युद्धमें जीत लिया और वह घर आकर तथा मातासे मिलकर परम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥१७५॥ श्रीवर्धित महाविज्ञानी तो था ही धीरे-धीरे उसका यश भी प्रसिद्ध हो गया, अतः उसे राजा कररुहसे पोदनपुर नगरका राज्य मिल गया ॥१७६॥ कालक्रमसे जब व्याघ्रपुरका राजा सुकान्त मृत्युको प्राप्त हो गया तब द्युतिनामक शत्रुने उसके पुत्र सिंहेन्दुपर आक्रमण किया जिससे भयभीत हो वह अपनी स्त्रीके साथ एक सुरंग द्वारा घरसे बाहर निकल गया ॥१७७॥ वह अत्यन्त घबड़ा गया था तथा बहुत खिन्न होता हुआ बहिनकी शरणमें जा रहा था। मार्गमें तंबोलियोंका साथ हो गया सो उनका भार शिर-पर रखते हुए वह अपनी स्त्री सहित सूर्यास्त होनेके बाद पोदनपुरके समीप पहुँचा। वहाँ राजाके योद्धाओंने उसे पकड़कर धमकाया सो जिस-किसी तरह छूटकर भयभीत होता हुआ वनमें पहुँचा ॥१७८-१७९॥ सो वहाँ एक महासर्पने उसे डँस लिया जिससे विलाप करती हुई उसकी स्त्री उसे कन्धेपर रखकर उस स्थानपर पहुँची जहाँ मयमुनि विराजमान थे ॥१८०॥ महा-ऋद्धियोंके धारक मयमुनि प्रतिमा योग धारण कर वज्र स्तम्भके समान निश्चल खड़े थे, सो रानीने

१. पुरविक्रमः म० । २. ऽभ्यासं म० । ३. राजन् म० । ४. परिदेवनी म० ।

पादौ मुनेः परामृष्य पत्युर्गात्रं [1]समास्पृशत् । देवी ततः परिप्राप्तः सिंहेन्दुर्जीवितं पुनः ॥१८२॥
चैत्यस्य वन्दनां कृत्वा भक्त्या केसरिचन्द्रमाः । प्रणनाम मुनिं भूयो भूयो दयितया समम् ॥१८३॥
उद्‌गते भास्करे साधुः समाप्तनियमोऽभवत् । प्राप्तो विनयदत्तस्तं वन्दनार्थमुपासकः ॥१८४॥
सन्देशाच्छ्रावको गत्वा पुरं श्रीवर्द्धिताय तम् । सिंहेन्दुं प्राप्तमाचख्यौ श्रुत्वा सन्नद्धुमुद्यतः ॥१८५॥
ततो यथावदाख्याते प्रीतिसङ्गतमानसः । महोपचारशेमुष्या श्यालं श्रीवर्द्धितोऽगमत् ॥१८६॥
ततो बन्धुसमायोगं प्राप्तः परमसम्मदः । श्रीवर्द्धितः सुखासीनं पप्रच्छेति मयं नतः ॥१८७॥
भगवन् ज्ञातुमिच्छामि पूर्वं जननमात्मनः । स्वजनानां च सत्साधुस्ततो वचनमब्रवीत् ॥१८८॥
आसीच्छोभपुरे नाम्ना भद्राचार्यो दिगम्बरः । अमलाख्यः पुरस्यास्य स्वामी गुणसमुत्करः ॥१८९॥
स तं प्रत्यहमाचार्यं सेवितुं याति सन्मनाः । अन्यदा गन्धमाजघ्रौ देशे तत्र सुदुःसहम् ॥१९०॥
स तं गन्धं समाघ्राय कुष्टिन्यङ्गसमुद्‌गतम् । पद्भ्यामेव निजं गेहं गतोऽसहनको द्रुतम् ॥१९१॥
अन्यतः कुष्टिनी सा तु प्राप्ता चैत्यान्तिके तदा । विश्रान्ताऽऽसीद्व्रणेभ्योऽस्या दुर्गन्धोऽसौ विनिर्ययौ ॥१९२॥
अणुव्रतानि सा प्राप्य भद्राचार्यसकाशतः । देवलोकं गता च्युत्वाऽसौ कान्ता शीलवत्यभूत् ॥१९३॥
यस्त्वसावमलो राजा पुत्रन्यस्तनृपक्रियः । सन्तुष्टः सोऽष्टभिर्ग्रामैः श्रावकत्वमुपाचरत् ॥१९४॥

सिंहेन्दुको उनके चरणोंके समीप लिटा दिया ॥१८१॥ सिंहेन्दुकी स्त्रीने मुनिराजके चरणोंका स्पर्श कर पतिके शरीरका स्पर्श किया जिससे वह पुनः जीवित हो गया ॥१८२॥ तदनन्तर सिंहेन्दुने भक्तिपूर्वक प्रतिमाकी वन्दना की और उसके बाद आकर अपनी स्त्रीके साथ बार-बार मुनिराज-को प्रणाम किया ॥१८३॥

अथानन्तर सूर्योदय होनेपर मुनिराजका नियम समाप्त हुआ, उसी समय वन्दनाके लिए विनयदत्त नामका श्रावक उनके समीप आया ॥१८४॥ सिंहेन्दुके संदेशसे श्रावकने नगरमें जाकर श्रीवर्धितके लिए बताया कि राजा सिंहेन्दु आया है। यह सुन श्रीवर्धित युद्धके लिए तैयार हो गया ॥१८५॥ तदनन्तर जब यथार्थ बात मालूम हुई तब प्रीतियुक्त चित्त होता हुआ श्रीवर्धित सन्मान करनेकी भावनासे अपने सालेके पास गया ॥१८६॥ तत्पश्चात् इष्टजनोंका समागम प्राप्त कर हर्षित होते हुए श्रीवर्धितने सुखसे बैठे हुए मय मुनिराजसे विनयपूर्वक पूछा कि हे भगवन्! मैं अपने तथा अपने परिवारके लोगोंके पूर्वभव जानना चाहता हूँ। तदनन्तर उत्तम मुनिराज इस प्रकार वचन बोले कि ॥१८७-१८८॥

शोभपुर नगरमें एक भद्राचार्य नामक दिगम्बर मुनिराज थे। उस नगरका राजा अमल था जो कि गुणोंके समूहसे सुशोभित था ॥१८९॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला अमल प्रतिदिन उन आचार्यकी सेवा करनेके लिए आता था। एक दिन आनेपर उसे उस स्थानपर अत्यन्त दुःसह दुर्गन्ध आई ॥१९०॥ कोढ़िनीके शरीरसे उत्पन्न हुई वह दुर्गन्ध इतनी भयंकर थी कि राजा उसे सहन नहीं कर सका और पैदल ही शीघ्र अपने घर चला गया ॥१९१॥ वह कोढ़िनी स्त्री किसी अन्य स्थानसे आकर उस मन्दिरके समीप ठहरी थी, उसीके घावोंसे वह दुर्गन्ध निकल रही थी ॥१९२॥ उस स्त्रीने भद्राचार्यके पास अणुव्रत धारण किये जिसके फल-स्वरूप वह मरकर स्वर्ग गई और वहाँसे च्युत होकर यह शीला नामक तुम्हारी स्त्री हुई है ॥१९३॥ वहाँ जो अमल नामका राजा था उसने सब राज्यकार्य पुत्रके लिए सौंप दिया और स्वयं

---

१. समापृशत् म० ।

देवलोकमसौ गत्वा च्युतः श्रीवर्द्धितोऽभवत् । अधुना पूर्वकं जन्म मातुस्तव वदाम्यहम् ॥१९५॥
एको वैदेशिको भ्राम्यन् ग्रामं क्षुद्व्याधितोऽविशत् । स भोजनगृहे भुक्तिमलब्ध्वा कोपसङ्गतः ॥१९६॥
सर्वं ग्रामं दहामीति निगद्य [1]कटुकस्वरम् । निष्क्रान्तः सुहितोऽसौ च ग्रामः प्राप्तः प्रदीपनम् ॥१९७॥
ग्राम्यैरानीय सङ्क्रुद्धैः [2]क्षिप्तोऽसौ तत्र पावके । मृतो दुःखेन सम्भूतः सूपकारी नृपालये ॥१९८॥
ततो मृता परिप्राप्ता नरकं घोरवेदनम् । तस्मादुत्तीर्य माताऽभूत्तव मित्रयशोऽभिधा ॥१९९॥
बभूव पोदनस्थाने नाम्ना गोवाणिजो महान् । भुजपत्रेति तद्भार्या सौकान्तिः सोऽभवन्मृतः ॥२००॥
भुजपत्रापि जाताऽस्य कामिनी रतिवर्द्धनी । पीडनाद्गर्दभादीनां पुरा भारं च वाहितौ ॥२०१॥
एवमुक्त्वा मयो व्योम भासयन् स्वेप्सितं ययौ । श्रीवर्द्धितोऽपि नगरं प्राप्तबन्धुसमागमः ॥२०२॥
पूर्वभाग्योदयाद्राजन् संसारे चित्रकर्मणि । राज्यं कश्चिदवाप्नोति प्राप्तं नश्यति कस्यचित् ॥२०३॥
अप्येकस्माद्गुरोः प्राप्य जन्तूनां धर्मसङ्गतिम्[3] । निदाननिर्निदानाभ्यां मरणाभ्यां पृथग्गतिः ॥२०४॥
उत्तरन्त्युदधिं केचिद्रत्नपूर्णाः सुखान्विताः । मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्धनाधिपाः ॥२०५॥
इति ज्ञात्वाऽऽत्मनः श्रेयः सदा कार्यं मनीषिभिः । दयादमतपःशुद्ध्या[4] विनयेनागमेन वा ॥२०६॥
सकलं पोदनं नूनं तदा मयवचःश्रुतेः । उपशान्तमभूद्धर्मगतचित्तं[5] नराधिप ॥२०७॥

वह आठ गाँवोंसे संतुष्ट हो श्रावक हो गया ॥१९४॥ आयुके अन्तमें वह स्वर्ग गया और वहाँसे च्युत हो श्रीवर्धित हुआ। इतना कहकर मय मुनिराजने कहा कि अब मैं तुम्हारी माताका पूर्व भव कहता हूँ ॥१९५॥

एक बार एक विदेशी मनुष्य भूखसे पीड़ित हो घूमता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ। नगरकी भोजनशालामें भोजन न पाकर वह कुपित होता हुआ कटुक शब्दोंमें यह कहकर बाहर निकल गया कि 'मैं समस्त गाँवको अभी जलाता हूँ'। भाग्यकी बात कि उसी समय गाँवमें आग लग गई ॥१९६-१९७॥ तब क्रोधसे भरे ग्रामवासियोंने उसे लाकर उसी अग्निमें डाल दिया, जिससे दुःखपूर्वक मरकर वह राजाके घर रसोइन हुआ ॥१९८॥ तदनन्तर मरकर घोर वेदनासे युक्त नरक पहुँची और वहाँसे निकलकर तुम्हारी माता मित्रयशा हुई है ॥१९९॥ पोदनपुरमें एक गोवाणिज नामका बड़ा गृहस्थ था, भुजपत्रा उसकी स्त्रीका नाम था। गोवाणिज मरकर सिंहेन्दु हुआ और भुजपत्रा उसकी रतिवर्धनी नामकी स्त्री हुई। इन दोनोंने पूर्वभवमें गर्दभ आदि पशुओंपर अधिक बोझ लाद-लाद उन्हें पीड़ा पहुँचाई थी इसलिए उन्हें भी तंबोलियोंका भार उठाना पड़ा ॥२००-२०१॥ इस प्रकार कहकर मय मुनिराज आकाशको देदीप्यमान करते हुए अपने इच्छित स्थानपर चले गये और श्रीवर्धित भी इष्टजनोंका समागम प्राप्त कर नगरमें चला गया ॥२०२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! इस विचित्र संसारमें पूर्वकृत भाग्यका उदय होनेपर कोई राज्यको प्राप्त होता है और किसीका प्राप्त हुआ राज्य नष्ट हो जाता है ॥२०३॥ एक ही गुरुसे धर्मकी संगति पाकर निदान अथवा निदानरहित मरणसे जीवोंकी गति भिन्न-भिन्न होती है ॥२०४॥ रत्नोंसे पूर्णताको प्राप्त हुए कितने ही धनेश्वरी मनुष्य सुखपूर्वक समुद्रको पार करते हैं, कितने ही बीचमें डूब जाते हैं और कितने ही तटपर डूब मरते हैं ॥२०५॥ ऐसा जानकर बुद्धिमान् मनुष्योंको सदा दया, दम, तपश्चरणकी शुद्धि, विनय तथा आगमके अभ्याससे आत्माका कल्याण करना चाहिए ॥२०६॥ हे राजन्! उस समय मय मुनिराजके वचन सुनकर समस्त

---

१. कटुकः स्वरम् म० । २. संक्रुद्धः । ३. धर्मसंगतिः म०, ख०, ज० । ४. तपस्तुष्ट्या ज० । ५. चित्तं म० ।

आर्याच्छन्दः

ईदृग्गुणो विधिज्ञः प्रासुविहारी मयः प्रशान्तात्मा ।
पण्डितमरणं प्राप्तोऽभूदीशाने सुरश्रेष्ठः ॥२०८॥
एतन्मयस्य साधोर्माहात्म्यं ये पठन्ति सच्चित्ताः ।
अरयः क्रव्यादा वा हिंसन्ति न तान् कदाचिदपि ॥२०९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मयोपाख्यानं नामाऽशीतितमं पर्व ॥८०॥

पोदनपुर अत्यन्त शान्त हो गया तथा धर्ममें उसका चित्त लग गया ॥२०७॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त, धर्मकी विधिको जाननेवाले, प्रशान्त चित्त तथा पासुक स्थानमें बिहार करनेवाले मय मुनिराज, पण्डित मरणको प्राप्त हो श्रेष्ठ देव हुए ॥२०८॥ इस तरह जो उत्तम चित्त होकर मय मुनिराजके इस माहात्म्यको पढ़ते हैं, शत्रु अथवा मांसभोजी सिंहादि उनकी कभी भी हिंसा नहीं करते ॥२०९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मय मुनिराजका वर्णन करनेवाला अस्सीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८०॥

एकाशीतितमं पर्व

ब्रह्मलोकभवाकारां लक्ष्मीं लक्ष्मणपूर्वजः । [1]चन्द्राङ्कचूडदेवेन्द्रप्रतिमोऽनुभवन्नसौ ॥१॥
भर्तृपुत्रवियोगाग्निज्वालाशोषितविग्रहाम् । विस्मृतः कथमेकान्तं जननीमपराजिताम्[2] ॥२॥
सप्तमं तलमारूढा प्रासादस्य सखीवृता । उद्विग्नाऽस्रप्रपूर्णाक्षा नवधेनुरिवाकुला[3] ॥३॥
[4]वीक्षते सा दिशः सर्वाः पुत्रस्नेहपरायणा । कांक्षन्ती दर्शनं तीव्रशोकसागरवर्त्तिनी ॥४॥
पताकाशिखरे तिष्ठन्नुत्पतोत्पतवायस[5] । पद्मः पुत्रो ममाऽऽयातु तव दास्यामि पायसम् ॥५॥
इत्युक्त्वा चेष्टितं तस्य ध्यात्वा ध्यानं मनोहरम् । विलापं कुरुते [6]नेत्रबाष्पदुर्दिनकारिणी ॥६॥
हा वत्सक क्व यातोऽसि सततं सुखलालितः । विदेशभ्रमणे प्रीतिस्तव केयं समुद्गता ॥७॥
पादपल्लवयोः पीडां प्राप्नोषि परुषे पथि । विश्रमिष्यसि कस्याऽधो गहनस्योत्कटश्रमः ॥८॥
मन्दभाग्यां परित्यज्य मकामत्यर्थदुःखिताम् । यातोऽसि कतमामाशां [7]भ्रात्रा पुत्रकसङ्गतः ॥९॥
[8]परदेवनमारेभे सा कर्त्तुं चैवमादिकम् । देवर्षिश्च परिप्राप्तो गगनाङ्गणगोचरः ॥१०॥
जटाकूर्चधरः शुक्लवस्त्रप्रावृतविग्रहः । अवद्वारगुणाभिख्यो नारदः क्षितिविश्रुतः ॥११॥
तं [9]समीपत्वमायातमभ्युत्थायापराजिता । आसानाद्युपचारेण सादरं सममानयत् ॥१२॥

अथानन्तर जो स्वर्ग लोककी लक्ष्मीके समान राजलक्ष्मीका उपभोग कर रहे थे ऐसे चन्द्राङ्कचूड इन्द्रके तुल्य श्रीराम, पति और पुत्रके वियोगरूपी अग्निकी ज्वालासे जिनका शरीर सूख गया था ऐसी माता कौसल्याको एकदम क्यों भूल गये थे ? ॥१-२॥ जो निरन्तर उद्विग्न रहती थी, जिसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त रहते थे, जो नवप्रसूता गायके समान अपने पुत्रसे मिलनेके लिए अत्यन्त व्याकुल थी, पुत्रके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें तत्पर थी, तीव्र शोकरूपी सागरमें विद्यमान थी और पुत्रके दर्शनकी इच्छा रखती थी, ऐसी कौसल्या सखियोंके साथ महलके सातवें खण्डपर चढ़ कर सब दिशाओंकी ओर देखती रखती थी ॥३-४॥ वह पागलकी भाँति पताकाके शिखरपर बैठे हुए काकसे कहती थी कि रे वायस ! उड़-उड़ । यदि मेरा पुत्र राम आ जायगा तो मैं तुझे खीरका भोजन देऊँगी ॥५॥ ऐसा कहकर उसकी मनोहर चेष्टाओंका ध्यान करती और जब उसकी ओरसे कुछ उत्तर नहीं मिलता तब नेत्रोंसे आँसुओंकी घनघोर वर्षा करती हुई विलाप करने लगती ॥६॥ वह कहती कि हाय पुत्र ! तू कहाँ चला गया ? तू निरन्तर सुखसे लड़ाया गया था । तुझे विदेश भ्रमणकी यह कौन-सी प्रीति उत्पन्न हुई है ? ॥७॥ तू कठोर मार्गमें चरण-किसलयोंकी पीड़ाको प्राप्त हो रहा होगा । अर्थात् कंकरीले पथरीले मार्गमें चलते-चलते तेरे कोमल पैर दुखने लगते होंगे तब तू अत्यन्त थक कर किस वनके नीचे विश्राम करता होगा ? ॥८॥ हाय बेटा ! अत्यन्त दुःखिनी मुझ मन्दभागिनीको छोड़ तू भाई लक्ष्मणके साथ किस दिशामें चला गया है ? ॥९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वह कौसल्या जिस समय इस प्रकारका विलाप कर रही थी उसी समय आकाशमार्गमें विहार करनेवाले देवर्षि नारद वहाँ आये ॥१०॥ वे नारद जटारूपी कूर्चको धारण किये हुए थे, सफेद वस्त्रसे उनका शरीर आवृत था, अवद्वार नामके धारक थे और पृथिवीमें सर्वत्र प्रसिद्ध थे ॥११॥ उन्हें समीपमें आया देख कौसल्याने उठकर तथा आसन आदि देकर उनका

१. चन्द्रार्क म० । २. कौशल्याम् । ३. रिवावृता म० । ४. जननी ब० । ५. वायसः म० । ६. नेत्रवास्य म० । ७. भ्रातृ म० । ८. परिवेदन- म० । ९. समीपस्थ म० ।

सिद्धयोगमुनिर्दृष्ट्वा तामश्रुतरलेक्षणाम् । आकारसूचितोदारशोकां सम्परिपृष्टवान् ॥१३॥
कुतः प्राप्ताऽसि कल्याणि विमाननमिदं यतः । रुद्यते न तु सम्भाव्यं तव दुःखस्य कारणम् ॥१४॥
सुकोशलमहाराजदुहिता लोकविश्रुता । श्लाघ्याऽपराजिताभिख्या पत्नी दशरथश्रुतेः ॥१५॥
पद्मनाभनृरत्नस्य प्रसवित्री सुलक्षणा । येन त्वं कोपिता मान्या देवतेव हतात्मना ॥१६॥
अद्यैव कुरुते तस्य प्रतापाक्रान्तविष्टपः । नृपो दशरथः श्रीमान्निग्रहं प्राणहारिणम् ॥१७॥
उवाच नारदं देवी स त्वं चिरतरागतः । देवर्षे वेत्सि वृत्तान्तं नेमं येनेति भाषसे ॥१८॥
अन्य एवासि संवृत्तो वात्सल्यं तत्पुरातनम् । कुतो विशिथिलीभूतं लक्ष्यते निष्ठुरस्य ते ॥१९॥
कथं वार्तामपीदानीं त्वं नोपलभसे गुरुः । अतिदूरादिवायातः कुतोऽपि भ्रमणप्रियः ॥२०॥
तेनोक्तं धातकीखण्डे सुरेन्द्ररमणे पुरे । विदेहेऽजनि पूर्वस्मिंस्त्रैलोक्यपरमेश्वरः ॥२१॥
मन्दरे तस्य देवेन्द्रैः सुरासुरसमन्वितैः । दिव्ययाऽद्भुतया भूत्या जननाभिषवः कृतः ॥२२॥
तस्य देवाधिदेवस्य सर्वपापप्रणाशनः । अभिषेको मया दृष्टः पुण्यकर्मप्रवर्द्धकः ॥२३॥
आनन्दं ननृतुस्तत्र देवाः प्रमुदिताः परम् । विद्याधराश्च बिभ्राणा विभूतिमतिशोभनाम् ॥२४॥
जिनेन्द्रदर्शनासक्तस्तस्मिन्नतिमनोहरे । त्रयोविंशतिवर्षाणि द्वीपेऽहमुषितः सुखम् ॥२५॥
तथापि जननीतुल्यां संस्मृत्य भरतक्षितिम् । महाधृतिकरीमेष प्राप्तोऽहं चिरसेविताम् ॥२६॥
जम्बूभरतमागत्य व्रजाम्यद्यापि न क्वचित् । भवतीं द्रष्टुमायातो वार्ताज्ञानपिपासितः ॥२७॥

आदर किया ॥१२॥ जिसके नेत्र आँसुओंसे तरल थे तथा जिसकी आकृतिसे ही बहुत भारी शोक प्रकट हो रहा था ऐसी कौसल्याको देख नारदने पूछा कि हे कल्याणि ! तुमने किससे अनादर प्राप्त किया है, जिससे रो रही हो ? तुम्हारे दुःखका कारण तो सम्भव नहीं जान पड़ता ? ॥१३–१४॥ तुम सुकोशल महाराजकी लोकप्रसिद्ध पुत्री हो, प्रशंसनीय हो तथा राजा दशरथकी अपराजिता नामकी पत्नी हो ॥१५॥ मनुष्योंमें रत्नस्वरूप श्रीरामकी माता हो, उत्तम लक्षणोंसे युक्त हो तथा देवताके समान माननीय हो । जिस दुष्टने तुम्हें क्रोध उत्पन्न कराया है, प्रतापसे समस्त संसारको व्याप्त करनेवाले श्रीमान् राजा दशरथ आज ही उसका प्रणापहारी निग्रह करेंगे अर्थात् उसे प्राणदण्ड देंगे ॥१६–१७॥

इसके उत्तरमें देवी कौसल्याने कहा कि हे देवर्षे ! तुम बहुत समय बाद आये हो इसलिए इस समाचारको नहीं जानते और इसीलिए ऐसा कह रहे हो ॥१८॥ जान पड़ता है कि अब तुम दूसरे ही हो गये हो और तुम्हारी निष्ठुरता बढ़ गई है अन्यथा तुम्हारा वह पुराना वात्सल्य शिथिल क्यों दिखाई देता ? ॥१९॥ आज तक भी तुम इस वार्ताको क्यों नहीं प्राप्त हो सके ? जान पड़ता है कि तुम भ्रमणप्रिय हो और अभी कहीं बहुत दूरसे आ रहे हो ॥२०॥ नारदने कहा कि धातकी खण्ड-द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक सुरेन्द्ररमण नामका नगर है वहाँ श्रीतीर्थंकर भगवान्का जन्म हुआ था ॥२१॥ सुरासुरसहित इन्द्रोंने सुमेरु पर्वतपर आश्चर्यकारी दिव्य वैभवके साथ उनका जन्माभिषेक किया था ॥२२॥ सो समस्त पापोंको नष्ट करने एवं पुण्यकर्मको बढ़ानेवाला तीर्थंकर भगवान्का वह अभिषेक मैंने देखा है ॥२३॥ उस उत्सवमें आनन्दसे भरे देवोंने तथा अत्यन्त शोभायमान विभूतिको धारण करनेवाले विद्याधरोंने आनन्दसे नृत्य किया था ॥२४॥ जिनेन्द्र भगवान्के दर्शनोंमें आसक्त हो मैं उस अतिशय मनोहारी द्वीपमें यद्यपि तेईस वर्ष तक सुखसे निवास करता रहा ॥२५॥ तथापि चिरकालसे सेवित तथा महान् धैर्य उत्पन्न करनेवाली माताके तुल्य इस भरत-क्षेत्रकी भूमिका स्मरण कर यहाँ पुनः आ पहुँचा हूँ ॥२६॥ जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें आकर मैं अभीतक कहीं अन्यत्र नहीं गया हूँ, सीधा समाचार, जाननेकी प्यास लेकर तुम्हारा दर्शन करनेके लिए आया हूँ ॥२७॥

तसोऽपराजिताऽवादीद् यथावृत्तमशेषतः। सर्वप्राणिहिताचार्यस्यागतिं गणधारिणः ॥२८॥
वैदेहस्य समायोगं महाविद्याधरप्रभोः। दशस्यन्दनराजस्य प्रव्रज्यां पार्थिवैः समम् ॥२९॥
सीतालक्ष्मणयुक्तस्य पद्मनाभस्य निर्गमम्। वियोगं सीतया सार्कं सुग्रीवादिसमागमम् ॥३०॥
लक्ष्मणं समरे शक्त्या लङ्कानाथेन ताडितम्। द्रोणमेघस्य कन्याया नयनं त्वरयान्वितम् ॥३१॥
इत्युक्त्वाऽनुस्मृतात्यन्ततीव्रदुःखपरायणा। अश्रुधारां विमुञ्चन्ती सा पुनः पर्यदेवत ॥३२॥
हा हा पुत्र गतः क्वासि चिरमेहि प्रयच्छ मे। वचनं कुरु साधारं मग्नायाः शोकसागरे ॥३३॥
पुण्योज्झिता त्वदीयास्यमपश्यन्ती सुजातक। तीव्रदुःखानलालीढा हतं मन्ये स्वजीवितम् ॥३४॥
वन्दीगृहं समानीता राजपुत्री सुखैधिता। बाला वनमृगीमुग्धा सीता दुःखेन तिष्ठति ॥३५॥
निर्घृणेन दशास्येन शक्त्या लक्ष्मणसुन्दरः। ताडितो जीवितं धत्ते नेति वार्त्ता न विद्यते ॥३६॥
हा सुदुर्लभकौ पुत्रौ हा सीते सति बालिके। प्राप्तासि जलधेर्मध्ये कथं दुःखमिदं परम् ॥३७॥
तं वृत्तान्तं ततो ज्ञात्वा वीणां क्षिप्त्वा महीतले। उद्विग्नो नारदस्तस्थौ हस्तावाधाय मस्तके ॥३८॥
क्षणनिष्कम्पदेहश्च विमृश्य बहुवीक्षितः। अब्रवीद् देवि नो सम्यग्वृत्तमेतद्विभाति मे ॥३९॥
त्रिखण्डाधिपतिश्चण्डो विद्याधरमहेश्वरः। वैदेहकपिनाथाभ्यां रावणः किं प्रकोपितः ॥४०॥
तथापि कौशले शोकं मा कृथाः परमं शुभे। अचिरादेव ते वार्त्तामानयामि न संशयः ॥४१॥
कृत्यं विधातुमेतावद्देवि सामर्थ्यमस्ति मे। शक्तः स एव शेषस्य कार्यस्य तव नन्दनः ॥४२॥
प्रतिज्ञामेवमादाय नारदः खं समुद्गतः। वीणां कक्षान्तरे कृत्वा सखीमिव परां प्रियाम् ॥४३॥

तदनन्तर अपराजिता (कौसल्या) ने जो वृत्तान्त जैसा हुआ था वह सब नारदसे कहा। उसने कहा कि सङ्घसहित सर्वभूतहित आचार्यका आगमन हुआ। महा विद्याधरोंके राजा भामण्डलका संयोग हुआ। राजा दशरथने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण की, सीता और लक्ष्मणके साथ राम वनको गये, वहाँ सीताके साथ उनका वियोग हुआ, सुग्रीवादिके साथ समागम हुआ, युद्धमें लङ्काके धनी-रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे ताड़ित किया और द्रोणमेघकी कन्या विशल्या शीघ्रतासे वहाँ ले जाई गई ॥२८-३१॥ इतना कहते ही जिसे तीव्र दुःखका स्मरण हो आया था ऐसी कौसल्या अश्रुधारा छोड़ती हुई पुनः विलाप करने लगी ॥३२॥ हाय हाय पुत्र! तू कहाँ गया? कहाँ है? बहुत समय हो गया, शीघ्र ही आ, मेरे लिए वचन दे—मुझसे वार्तालाप कर और शोकसागरमें डूबी हुई मेरे लिए सान्त्वना दे ॥३३॥ हे सत्पुत्र! मैं पुण्यहीना तुम्हारे मुखको न देखती तथा तीव्र दुःखाग्निसे व्याप्त हुई अपने जीवनको निरर्थक मानती हूँ ॥३४॥ सुखसे जिसका लालन-पालन हुआ तथा जो वनकी हरिणीके समान भोली है ऐसी राजपुत्री बेटी सीता शत्रुके बन्दीगृहमें पड़ी दुःखसे समय काट रही होगी ॥३५॥ निर्दय रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे घायल किया सो जीवित है या नहीं इसकी कोई खबर नहीं है ॥३६॥ हाय मेरे अत्यन्त दुर्लभ पुत्रो! और हाय मेरी पतिव्रते बेटी सीते! तुम समुद्रके मध्य इस भयङ्कर दुःखको कैसे प्राप्त हो गई ॥३७॥

तदनन्तर यह वृत्तान्त जानकर नारदने वीणा पृथ्वीपर फेंक दी और स्वयं उद्विग्न हो दोनों हाथ मस्तकसे लगा चुपचाप बैठ गये ॥३८॥ उनका शरीर क्षणमात्रमें निश्चल पड़ गया। जब विचारकर उनकी ओर अनेक बार देखा तब वे बोले कि हे देवि! मुझे यह बात अच्छी नहीं जान पड़ती ॥३९॥ रावण तीन खण्डका स्वामी है, अत्यन्त क्रोधी तथा समस्त विद्याधरोंका स्वामी है सो उसे भामण्डल तथा सुग्रीवने क्यों कुपित कर दिया? ॥४०॥ फिर भी हे कौसल्ये! हे शुभे! अत्यधिक शोक मत करो। यह मैं शीघ्र ही जाकर तुम्हारे लिए समाचार लाता हूँ इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४१॥ हे देवि! इतना ही कार्य करनेकी मेरी सामर्थ्य है। शेष कार्यके करनेमें तुम्हारा पुत्र ही समर्थ है ॥४२॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर तथा परमप्यारी सखीके समान वीणाको बगलमें दबाकर नारद आकाशमें उड़ गये ॥४३॥

ततो वातगतिः क्षोणीं पश्यन् दुर्लङ्घ्यपर्वताम् । लङ्कां प्रतिकृताशङ्को नारदश्चकितं ययौ ॥४४॥
समीपीभूय लङ्कायाश्चिन्तामेवमुपागतः । कथं वार्त्तापरिज्ञानं करोमि निरुपायकम् ॥४५॥
पद्मलक्ष्मणवार्त्तायाः प्रश्ने दोषोऽभिलक्ष्यते । पृच्छतो दशवक्त्रं तु स्फीतमार्गो न दृश्यते ॥४६॥
अनेनैवानुपूर्व्येण वार्त्तां ज्ञास्ये मनीषिताम् । इति ध्यात्वा सुविश्रब्धो गतः पद्मसरो यतः ॥४७॥
तस्यां च तत्र वेलायामन्तःपुरसमन्वितः । तारायास्तनयः क्रीडां कुरुते चारुविभ्रमः ॥४८॥
तटस्थं पुरुषं तस्य कृतपूर्वप्रियोदितः । कुशलं रावणस्येति पप्रच्छावस्थितः क्षणम् ॥४९॥
श्रुत्वा तद्वचनं क्रुद्धाः किङ्कराः स्फुरिताधराः । जगदुः कथमेव त्वं दुष्टं तापस भाषसे ॥५०॥
कुतो रावणवर्गीणो मुनिखेटस्त्वमागतः । इत्युक्त्वा परिवार्यासावङ्गदस्यान्तिकीकृतः ॥५१॥
कुशलं रावणस्यायं पृच्छतीत्युदिते भटैः । न कार्यं दशवक्त्रेण ममेति मुनिरभ्यधात् ॥५२॥
तैरुक्तं यद्यदः सत्यं तस्य कस्मात्प्रमोदवान् । कुशलोदन्तसम्प्रश्ने[1] वर्तसे परमादरः ॥५३॥
ततोऽङ्गदः प्रहस्योचे व्रजतैनं कुतापसम् । दुरीहं पद्मनाभाय मूढं दर्शयत द्रुतम् ॥५४॥
पृष्ठतः प्रेर्यमाणोऽसौ बाह्वाकर्षणतत्परैः । सुकष्टं नीयमानस्तैरिति चिन्तामुपागतः ॥५५॥
बहवः पद्मनाभाख्याः सन्त्यत्र वसुधातले । न जाने कतमः स स्याद्नीये यस्याहमन्तिकम् ॥५६॥
अर्हच्छासनवात्सल्या देवता मम त्रायताम् । काचित् कुर्वीत किं नाम पतितोऽस्म्यतिसंशये ॥५७॥

तदनन्तर वायुके समान तीव्र गतिसे जाते और दुर्लंघ्य पर्वतोंसे युक्त पृथिवीको देखते हुए नारद लंकाकी ओर चले। उस समय उनके मनमें कुछ शङ्का तथा कुछ आश्चर्य—दोनों ही उत्पन्न हो रहे थे ॥४४॥ चलते-चलते नारद जब लंकाके समीप पहुँचे तब ऐसा विचार करने लगे कि मैं उपायके बिना राम-लक्ष्मणका समाचार किस प्रकार ज्ञात करूँ ? ॥४५॥ यदि साक्षात् रावणसे राम-लक्ष्मणकी वार्ता पूछता हूँ तो इसमें दोष दिखायी देता है। क्या करूँ ? कुछ स्पष्ट मार्ग दिखायी नहीं देता ॥४६॥ अथवा मैं इसी क्रमसे इच्छित वार्ताको जानूँगा। इस प्रकार मनमें ध्यान कर निश्चिन्त हो पद्मसरोवरकी ओर गये ॥४७॥ उस समय उस पद्मसरोवरमें उत्तम शोभाको धारण करनेवाला अङ्गद अपने अन्तःपुरके साथ क्रीड़ा कर रहा था ॥४८॥ वहाँ जाकर नारद मधुर वार्ता द्वारा तटपर स्थित किसी पुरुषसे रावणकी कुशलता पूछते हुए क्षणभर खड़े रहे ॥४९॥ उनके वचन सुन, जिनके ओंठ काँप रहे थे ऐसे सेवक कुपित हो बोले कि रे तापस ! तू इस तरह दुष्टतापूर्ण वार्ता क्यों कर रहा है ? ॥५०॥ 'रावणके वर्गका तू दुष्ट तापस यहाँ कहाँसे आ गया ?' इस प्रकार कहकर तथा घेरकर किङ्कर लोग उन्हें अङ्गदके समीप ले गये ॥५१॥ 'यह तापस रावणकी कुशल पूछता है' इस प्रकार जब किङ्करोंने अंगदसे कहा तब नारदने उत्तर दिया कि मुझे रावणसे कार्य नहीं है ॥५२॥ तब किङ्करोंने कहा कि यदि यह सत्य है तो फिर तू हर्षित हो रावणका कुशल पूछनेमें परमआदरसे युक्त क्यों है ? ॥५३॥ तदनन्तर अङ्गदने हँसकर कहा कि जाओ इस खोटी चेष्टाके धारक मूर्ख तापसको शीघ्र ही पद्मनाभके दर्शन कराओ अर्थात् उनके पास ले जाओ ॥५४॥ अङ्गदके इतना कहते ही कितने ही किङ्कर नारदकी भुजा खींचकर आगे ले जाने लगे और कितने ही पीछेसे प्रेरणा देने लगे। इस प्रकार किङ्करों द्वारा कष्टपूर्वक ले जाये गये नारदने मनमें विचार किया कि इस पृथ्वीतलपर पद्मनाभ नामको धारण करनेवाले बहुतसे पुरुष हैं। न जाने वह पद्मनाभ कौन है जिसके कि पास मैं ले जाया जा रहा हूँ ? ॥५५-५६॥ जिनशासनसे स्नेह रखनेवाली कोई देवी मेरी रक्षा करे, मैं अत्यन्त संशयमें पड़ गया हूँ ॥५७॥

---

१. संप्रश्नो म० ।

शिखान्तिकगतप्राणो नारदः पुरुवेपथुः । विभीषणगृहद्वारं प्रविष्टः सद्गुहाकृतिम्[1] ॥५८॥
पद्माभं दूरतो दृष्ट्वा सहसोद्भ्रान्तमानसः । अब्रह्मण्यमिति स्फीतं प्रस्वेदी मुमुचे स्वरम् ॥५९॥
श्रुत्वा तस्य रवं दत्त्वा दृष्टिं लक्ष्मणपूर्वजः । अवद्वारं परिज्ञाय स्वयमाहादरान्वितः ॥६०॥
मुञ्चध्वमाशु मुञ्चध्वमेतमित्युज्झितश्च सः । पद्माभस्यान्तिकं गत्वा प्रहृष्टोऽवस्थितः पुरः ॥६१॥
स्वस्त्याशीभिः समानन्द्य पद्मनारायणावृषिः । परित्यक्तपरित्रासः स्थितो दत्ते सुखासने ॥६२॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचत् सोऽद्वारगतिर्भवान् । क्षुल्लकोऽभ्यागतः कस्मादुक्तश्च स जगौ क्रमात् ॥६३॥
व्यसनार्णवमग्नाया जनन्या भवतोऽन्तिकात् । प्राप्तोऽस्मि वेदितुं वार्त्तां त्वत्पादकमलान्तिकम् ॥६४॥
मान्यापराजिता देवी भव्या भगवती तव । माताऽश्रुधौतवदना दुःखमास्ते त्वया विना ॥६५॥
सिंही किशोररूपेण रहितेव समाकुला । विकीर्णकेशसम्भारा कृतकुट्टिमलोठना ॥६६॥
विलापं कुरुते देव तादृशं येन तत्क्षणम् । मन्ये सञ्जायते व्यक्तं दृषदामपि मार्दवम् ॥६७॥
तिष्ठति त्वयि सत्पुत्रे कथं तनयवत्सला । महागुणधरी स्तुत्या कृच्छ्रं सा परमं गता ॥६८॥
अदर्शनमिदं मन्ये तस्याः प्राणविवर्जनम् । यदि तां नेक्षसे शुष्कां त्वद्वियोगोरुभानुना ॥६९॥
प्रसादं कुरुतां पश्य व्रजोत्तिष्ठ किमास्यते । एतस्मिन्ननु संसारे बन्धुर्माता प्रधानतः ॥७०॥
वार्त्तैयमेव कैकय्या अपि दुःखेन वर्त्तते । तया हि कुट्टिमतलं कृतमस्रेण[2] पल्वलम् ॥७१॥
नाहारे शयने रात्रौ न दिवास्ति मनागपि । तस्याः स्वस्थतया योगो भवतोर्विप्रयोगतः ॥७२॥

अथानन्तर चोटीतक जिनके प्राण पहुँच गये थे, तथा जिन्हें अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसे नारद उत्तम गुहाका आकार धारण करनेवाले विभीषणके घरके द्वारमें प्रविष्ट हुए ॥५८॥ वहाँ दूरसे ही रामको देख, जिनका चित्त सहसा हर्षको प्राप्त हो रहा था ऐसे पसीनेसे लथपथ नारदने 'अहो अन्याय हो रहा है' इस प्रकार जोरसे आवाज लगाई ॥५९॥ रामने नारदका शब्द सुन उनकी ओर दृष्टि डालकर पहिचान लिया कि ये तो अवद्वार नामक नारद हैं। उसी समय उन्होंने आदरके साथ सेवकोंसे कहा कि इन्हें छोड़ो, शीघ्र छोड़ो। तदनन्तर सेवकोंने जिन्हें तत्काल छोड़ दिया था ऐसे नारद श्रीरामके पास जाकर हर्षित हो सामने खड़े हो गये ॥६०-६१॥ जिनका भय छूट गया था ऐसे ऋद्धि मङ्गलमय आशीर्वादोंसे राम-लक्ष्मणका अभिनन्दन कर दिये हुए सुखासनपर बैठ गये ॥६२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि आप तो अवद्वारगति नामक क्षुल्लक हैं। इस समय कहाँसे आ रहे हैं? इस प्रकार श्रीरामके कहनेपर नारदने क्रम-क्रमसे कहा कि ॥६३॥ मैं दुःखरूपी सागरमें निमग्न हुए आपकी माताके पाससे उनका समाचार जतानेके लिए आपके चरणकमलोंके समीप आया हूँ ॥६४॥ इस समय आपकी माता माननीय भगवती अपराजितादेवी आपके बिना बड़े कष्टमें हैं, वे रात-दिन आँसुओंसे मुख प्रक्षालित करती रहती हैं ॥६५॥ जिस प्रकार अपने बालकके बिना सिंही व्याकुल रहती है उसी प्रकार आपके बिना वे व्याकुल रहती हैं। उनके बाल बिखरे हुए हैं तथा वे पृथ्वीपर लोटती रहती हैं ॥६६॥ हे देव! वे ऐसा विलाप करती हैं कि उस समय स्पष्ट ही पत्थर भी कोमल हो जाता है ॥६७॥ तुम सत्पुत्रके रहते हुए भी वह पुत्रवत्सला, महागुणधारिणी स्तुतिके योग्य उत्तम माता कष्ट क्यों उठा रही है? ॥६८॥ यदि अपने वियोगरूपी सूर्यसे सूखी हुई उस माताके आप शीघ्र ही दर्शन नहीं करते हैं तो मैं समझता हूँ कि आजकलमें ही उसके प्राण छूट जावेंगे ॥६९॥ अतः प्रसन्न होओ, चलो, उठो, माताके दर्शन करो। क्यों बैठे हो? यथार्थमें इस संसारमें माता ही सर्वश्रेष्ठ बन्धु है ॥७०॥ जो बात आपकी माताकी है ठीक यही बात दुःखसे कैकेयी सुमित्राकी हो रही है। उसने अश्रु बहा-बहाकर महलके फर्शको मानो छोटा-मोटा तालाब ही बना दिया है ॥७१॥ आप दोनोंके

१. सद्गृहाकृतिम् ज०, ख० । २. -मभ्रेण म० ।

कुररीव कृताक्रन्दा शावकेन वियोगिनी । उरः शिरश्च सा हन्ति कराभ्यां विह्वला भृशम् ॥७३॥
हा लक्ष्मीधर सञ्जात जननीमेहि जीवय । द्रुतं वाक्यं प्रयच्छेति विलापं सा निषेवते ॥७४॥
तनयायोगतीव्राग्निज्वालालीढशरीरके । दर्शनामृतधाराभिर्मातरौ नयतं शमम् ॥७५॥
एवमुक्तं निशम्यैतौ सञ्जातौ दुःखितौ भृशम् । विमुक्तास्रौ समाश्वासं खेचरैरुपाहृतौ ॥७६॥
उवाच वचनं पद्मः कथञ्चिद्धैर्यमागतः । अहो महोपकारोऽयमस्माकं भवता कृतः ॥७७॥
विकर्मणा[1] स्मृतेरेव जननी नः परिच्युता । स्मारिता भवता साऽहं किमतोऽन्यन्महत्प्रियम् ॥७८॥
पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये[2] स्थितः । कुरुते परिशुश्रूषां किङ्करत्वमुपागतः ॥७९॥
एवं मातृमहास्नेहरसप्लावितमानसः । अपूजयदवद्वारं लक्ष्मणेन समं नृपः ॥८०॥
अतिसम्भ्रान्तचित्तश्च समाहूय विभीषणम् । प्रभामण्डलसुग्रीवसन्निधावित्यभाषत ॥८१॥
महेन्द्रभवनाकारे भवनेऽस्मिन् विभीषण । तव नो विदितोऽस्माभिर्यातः कालो महानपि ॥८२॥
ग्रैष्मादित्यांशुसन्तानतापितस्यैव[3] सत्सरः । चिरादवस्थितं चित्ते मातृदर्शनमद्य मे ॥८३॥
स्मृतमात्रवियोगाग्नितापितान्यतिमात्रकम् । तद्दर्शनाम्बुनाङ्गानि प्रापयाम्यतिनिर्वृतिम् ॥८४॥
अयोध्यानगरीं द्रष्टुं मनो मेऽत्युत्सुकं स्थितम् । सा हि माता द्वितीयेव स्मरयत्यधिकं[4] वरा ॥८५॥
ततो विभीषणोऽवोचत् स्वामिन्नेवं विधीयताम् । यथाज्ञापयसि स्वान्तं देवस्योपैतु शान्तताम् ॥८६॥

वियोगसे उसे न आहारमें, न शयनमें, न दिनमें और न रात्रिमें थोड़ा भी आनन्द प्राप्त होता है ॥७२॥ वह पुत्र-वियोगसे कुररीके समान रुदन करती रहती है तथा अत्यन्त विह्वल हो दोनों हाथोंसे छाती और शिर पीटती रहती है ॥७३॥ 'हाय लक्ष्मण बेटा ! आओ माताको जीवित करो, शीघ्र ही वचन बोलो' इस प्रकार वह निरन्तर विलाप करती रहती है ॥७४॥ पुत्रोंके वियोगरूपी तीव्र अग्निकी ज्वालाओंसे जिनके शरीर व्याप्त हैं ऐसी दोनों माताओंको दर्शनरूपी अमृतकी धाराओंसे शान्ति प्राप्त कराओ ॥७५॥ यह सुनकर राम, लक्ष्मण दोनों भाई अत्यन्त दुःखी हो उठे, उनके नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे। तब विद्याधरोंने उन्हें सान्त्वना प्राप्त कराई॥७६॥

तदनन्तर किसी तरह धैर्यको प्राप्त हुए रामने कहा कि अहो ऋषे ! आपने हमारा बड़ा उपकार किया ॥७७॥ खोटे कर्मके उदयसे माता हम लोगोंकी स्मृतिसे ही छूट गई थी सो आपने उसका हमें स्मरण करा दिया इससे प्रिय बात और क्या हो सकती है ? ॥७८॥ संसारमें वह मनुष्य बड़ा पुण्यात्मा है जो माताकी विनयमें तत्पर रहता है तथा किङ्करभावको प्राप्त हो उसकी सेवा करता है ॥७९॥ इस प्रकार माताके महास्नेहरूपी रससे जिनका मन आर्द्र हो रहा था ऐसे राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ नारदकी बहुत पूजा की ॥८०॥ और अत्यन्त संभ्रान्त-चित्त हो विभीषणको बुलाकर भामण्डल तथा सुग्रीवके समीप इस प्रकार कहा कि हे विभीषण ! इन्द्रभवनके समान आपके इस भवनमें हम लोगोंका बिना जाने ही बहुत भारी काल व्यतीत हो गया है ॥८१-८२॥ जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन सूर्यकी किरणोंके समूहसे सन्तापित मनुष्यके हृदयमें सदा उत्तम सरोवर विद्यमान रहता है उसी प्रकार हमारे हृदयमें यद्यपि चिरकालसे माताके दर्शनकी लालसा विद्यमान थी तथापि आज उस वियोगाग्निके स्मरण मात्रसे मेरे अङ्ग-अङ्ग अत्यन्त सन्तप्त हो उठे हैं सो मैं माताके दर्शन रूपी जलके द्वारा उन्हें अत्यन्त शान्ति प्राप्त कराना चाहता हूँ ॥८३-८४॥ आज अयोध्यानगरीको देखनेके लिए मेरा मन अत्यन्त उत्सुक हो रहा है क्योंकि वह दूसरी माताके समान मुझे अधिक स्मरण दिला रही है ॥८५॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि हे स्वामिन् ! जैसी आज्ञा हो वैसा कीजिये । आपका हृदय

---

१. विकर्मणः म० । २. विनयस्थितः क० । ३. वत्सरः म०, मत्सरः ज०, क०, ख० । ४. कां वरा क०, ख० ।

प्रेष्यन्ते नगरीं दूता वार्तां ज्ञापयितुं शुभाम् । भवतोऽऽगमं येन जनन्यौ व्रजतः सुखम् ॥८७॥
त्वया तु षोडशाहानि स्थातुमत्र पुरे विभो । प्रसादो मम कर्त्तव्यः समाश्रितसुवत्सल[1] ॥८८॥
इत्युक्त्वा मस्तकं न्यस्य समणिं रामपादयोः । तावद् विभीषणस्तस्थौ यावत्स प्रतिपन्नवान् ॥८९॥
अथ प्रासादमूर्धस्था नित्यदक्षिणदिङ्मुखी । दूरतः खेचरान् वीक्ष्य जगादेत्यपराजिता ॥९०॥
पश्य पश्य सुदूरस्थानेतान् कैकयि खेचरान् । आयातोऽभिमुखानाशु वातेरितघनोपमान् ॥९१॥
अद्यैते श्राविकेऽवश्यं कथयिष्यन्ति शोभनाम् । वार्त्तां सम्प्रेषिता नूनं सानुजेन सुतेन मे ॥९२॥
सर्वथैवं भवत्वेतदिति यावत् कथा तयोः । वर्त्तते तावदायाताः समीपं दूतखेचराः ॥९३॥
उत्सृजन्तश्च पुष्पाणि समुत्तीर्य नभस्तलात् । प्रविश्य भवनं ज्ञाताः प्रहृष्टा भरतं ययुः ॥९४॥
राज्ञा प्रमोदिना तेन सन्मानं समुपाहृताः । आशीर्वादप्रसक्तास्ते योग्यासनसमाश्रिताः ॥९५॥
यथावद्वृत्तमाचख्युरतिसुन्दरचेतसः । पद्माभं बलदेवत्वं प्राप्तं लाङ्गललक्ष्मणम् ॥९६॥
उत्पन्नचक्ररत्नं च लक्ष्मणं [2]हरितामितम् । तयोर्भरतवास्यस्य[3] स्वामित्वं परमोन्नतम् ॥९७॥
रावणं पञ्चतां प्राप्तं लक्ष्मणेन हतं रणे । दीक्षामिन्द्रजितादीनां बन्दिगृहमुपेयुषाम् ॥९८॥
तार्क्ष्यकेसरिसद्विद्याप्राप्तिं साधुप्रसादतः । विभीषणमहाप्रीतिं भोगं लङ्काप्रवेशनम् ॥९९॥
एवं पद्माभलक्ष्मीभृदुदयस्तुतिसम्मर्दी । स्रक्ताम्बूलसुगन्धाद्यैर्दूतानभ्यर्हयन्नृपः ॥१००॥

शान्तिको प्राप्त हो यही हमारी भावना है ॥८६॥ हम माताओंको यह शुभ वार्ता सूचित करनेके लिए अयोध्यानगरीके प्रति दूत भेजते हैं जिससे आपका आगमन जान कर माताएँ सुखको प्राप्त होंगी ॥८७॥ हे विभो ! हे आश्रितजनवत्सल ! आप सोलह दिन तक इस नगरमें ठहरनेके लिए मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥८८॥ इतना कह कर विभीषणने अपना मणि सहित मस्तक रामके चरणोंमें रख दिया और तब तक रखे रहा तब तक कि उन्होंने स्वीकृत नहीं कर लिया ॥८९॥

अथानन्तर महलके शिखर पर खड़ी अपराजिता (कौशल्या) निरन्तर दक्षिण दिशाकी ओर देखती रहती थी । एक दिन उसने दूरसे विद्याधरोंको आते देख समीपमें खड़ी कैकयी (सुमित्रा) से कहा कि हे कैकयि ! देख देख वे बहुत दूरी पर वायुसे प्रेरित मेघोंके समान विद्याधर शीघ्रतासे इसी ओर आ रहे हैं ॥९०-९१॥ हे श्राविके ! जान पड़ता है कि ये छोटे भाई सहित मेरे पुत्रके द्वारा भेजे हुए हैं और आज अवश्य ही शुभ वार्ता कहेंगे ॥९२॥ कैकयीने कहा कि जैसा आप कहती हैं सर्वथा ऐसा ही हो । इस तरह जब तक उन दोनोंमें वार्ता चल रही थी तब तक वे विद्याधर दूत समीपमें आ गये ॥९३॥ पुष्पवर्षा करते हुए उन्होंने आकाशसे उतर कर भवनमें प्रवेश किया और अपना परिचय दे हर्षित होते हुए वे भरतके पास गये ॥९४॥ राजा भरतने हर्षित हो उनका सन्मान किया और आशीर्वाद देते हुए वे योग्य आसनोंपर आरूढ़ हुए ॥९५॥ सुन्दर चित्तको धारण करनेवाले उन विद्याधर दूतोंने सब समाचार यथायोग्य कहे । उन्होंने कहा कि रामको बलदेव पद प्राप्त हुआ है । लक्ष्मणके चक्ररत्न प्रकट हुआ है तथा उन्हें नारायण पद मिला है । राम-लक्ष्मण दोनोंको भरत क्षेत्रका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हुआ है । युद्धमें लक्ष्मणके द्वारा घायल हो रावण मृत्युको प्राप्त हुआ है, वन्दीगृहमें रहनेवाले इन्द्रजित् आदिने जिन दीक्षा धारण कर ली है, देशभूषण और कुलभूषण मुनिका उपसर्ग दूर करनेसे गरुडेन्द्र प्रसन्न हुआ था सो उसके द्वारा राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी तथा गरुडवाहिनी विद्याएँ प्राप्त हुई हैं । विभीषणके साथ महाप्रेम उत्पन्न हुआ है, उत्तमोत्तम भोग-सम्पदाएँ प्राप्त हुई हैं तथा लंकामें उनका प्रवेश हुआ है ॥९६-९९॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मणके अभ्युदयसूचक समाचारोंसे प्रसन्न हुए राजा भरतने उन दूतोंका माला पान तथा सुगन्ध आदिके द्वारा सन्मान किया ॥१००॥

---

१. सुवत्सलः म० । २. हरेर्भावो हरिता तां नारायणताम् इतम्-प्राप्तम् म० । ३. वासस्य म० ।

गृहीत्वा तांस्तयोर्मात्रोः सकाशं भरतो ययौ । शोकिन्यौ बाष्पपूर्णाक्ष्यौ ते समानन्दिते च तैः ॥१०१॥
पद्माभचक्रभृन्मात्रोर्दूतानां च सुसंकथा । मनःप्रह्लादिनी यावद् वर्त्तते भूतिशंसिनी ॥१०२॥
रवेरावृत्य पन्थानं तावत्तत्र सहस्रशः । हेमरत्नादिसम्पूर्णैर्वाहनैरतिगत्वरैः ॥१०३॥
विचित्रजलदाकाराः प्रापुर्वैद्याधरा गणाः । जिनावतरणे काले देवा इव महौजसः ॥१०४॥
ततस्ते व्योमपृष्ठस्था नानारत्नमयीं पुरि । वृष्टिं मुमुचुरुद्योतपूरिताशां समन्ततः ॥१०५॥
पूरितायामयोध्यायामेकैकस्य कुटुम्बिनः । गृहेषु भूधराकाराः कृता हेमादिराशयः ॥१०६॥
जन्मान्तरकृतश्लाघ्यकर्मा स्वर्गच्युतोऽथवा । लोकोऽयोध्यानिवासी यो येन प्राप्तस्तथा श्रियम् ॥१०७॥
तस्मिन्नेव पुरे दत्ता घोषणाऽनेन वस्तुना । मणिचामीकराद्येन यो न तृप्तिमुपागतः ॥१०८।
प्रविश्य स नरः स्त्री वा निर्भयं पार्थिवालयम् । द्रव्येण पूरयत्वा[1]ऽऽत्मभवनं निजयेच्छया ॥१०९॥
श्रुत्वा तां घोषणां सर्वस्तस्यां जनपदोऽगदत् । अस्माकं भवने शून्यं स्थाममेव न विद्यते ॥११०॥
विस्मयादित्यसम्पर्कविकचाननपङ्कजाः । शशंसुर्वनिताः पद्मं कृतदारिद्र्यनाशनाः ॥१११॥
आगत्य बहुभिस्तावद्दक्षैः खेचरशिल्पिभिः । रूप्यहेमादिभिर्लेपैर्लिप्ता भवनभूमयः ॥११२॥
चैत्यागाराणि दिव्यानि जनितान्यतिभूरिशः । महाप्रासादमालाश्च विन्ध्यकूटावलीसमाः ॥११३॥
सहस्रस्तम्भसम्पन्ना मुक्तादामविराजिताः । रचिता मण्डपाश्चित्राश्चित्रपुस्तोपशोभिताः ॥११४॥
खचितानि महारत्नैर्द्वाराणि [2]करभास्वरैः । पताकालीसमायुक्तास्तोरणौघाः समुच्छ्रिताः ॥११५॥
अनेकाश्चर्यसम्पूर्णा प्रवृत्तसुमहोत्सवा । साऽयोध्या नगरी जाता लङ्कादिजयकारिणी ॥११६॥

तदनन्तर भरत उन विद्याधरोंको लेकर उन माताओंके पास गया और विद्याधरोंने निरन्तर शोक करने तथा अश्रुपूर्ण नेत्रोंको धारण करनेवाली उन माताओंको आनन्दित किया ॥१०१॥ राम-लक्ष्मणकी माताओं और उन विद्याधर दूतोंके बीच मनको प्रसन्न करने तथा उनकी विभूतिको सूचित करनेवाली यह मनोहर कथा जबतक चलती है तबतक सुवर्ण और रत्नादिसे परिपूर्ण हजारों शीघ्रगामी वाहनोंसे सूर्यका मार्ग रोककर रङ्ग-बिरङ्गे मेघोंका आकार धारण करनेवाले हजारों विद्याधरोंके झुण्ड उस तरह आ पहुँचे जिस तरह कि जिनेन्द्रावतारके समय महातेजस्वी देव आ पहुँचते हैं ॥१०२–१०४॥ तदनन्तर आकाशमें स्थित उन विद्याधरोंने सब ओरसे दिशाओंको प्रकाशके द्वारा परिपूर्ण करनेवाली नानारत्नमयी वृष्टि छोड़ी ॥१०५॥ अयोध्याके भर जाने पर हर एक कुटुम्बके घरमें पर्वतोंके समान सुवर्णादिकी राशियाँ लग गईं ॥१०६॥ जान पड़ता था कि अयोध्यानिवासी लोगोंने जन्मान्तरमें पुण्य कर्म किये थे अथवा स्वर्गसे चयकर वहाँ आये थे इसीलिए तो उन्हें उस समय उस प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त हुई थी ॥१०७॥ उसी समय भरतने नगरमें यह घोषणा दिलवाई कि जो रत्न तथा स्वर्णादि वस्तुओंसे सन्तोषको प्राप्त नहीं हुआ हो वह पुरुष अथवा स्त्री निर्भय हो राजमहलमें प्रवेश कर अपनी इच्छानुसार द्रव्यसे अपने घरको भर ले ॥१०८–१०९॥ उस घोषणाको सुनकर अयोध्यावासी लोगोंने आकर कहा कि हमारे घरमें खाली स्थान ही नहीं है ॥११०॥ विस्मयरूपी सूर्यके संपर्कसे जिनके मुख कमल खिल रहे थे तथा जिनकी दरिद्रता नष्ट हो चुकी थी ऐसी स्त्रियाँ रामकी स्तुति कर रही थीं ॥१११॥ उसी समय बहुतसे चतुर विद्याधर कारीगरोंने आकर चाँदी तथा सुवर्णादिके लेपसे भवनकी भूमियोंको लिप्त किया ॥११२॥ अच्छे-अच्छे बहुतसे जिन-मन्दिर तथा विन्ध्याचलके शिखरोंके समान अत्यन्त उन्नत बड़े-बड़े महलोंके समूहकी रचना की ॥११३॥ जो हजारों खम्भोंसे सहित थे, मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित थे, तथा नाना प्रकारके पुतलोंसे युक्त थे ऐसे विविध प्रकारके मण्डप बनाये ॥११४॥ दरवाजे किरणोंसे चमकते हुए बड़े-बड़े रत्नोंसे खचित किये तथा पताकाओंकी पंक्तिसे युक्त तोरणोंके समूह खड़े किये ॥११५॥ इस तरह जो अनेक

---

१. पूरयित्वा म०, ज० । २. करभस्वरैः म० ।

महेन्द्रशिखराभेषु चैत्यगेहेषु सन्तताः । अभिषेकोत्सवा लग्नाः सङ्गीतध्वनिनादिताः ॥११७॥
भ्रमरैरुपगीतानि समानि सजलैर्घनैः । उद्यानानि सपुष्पाणि[1] जातानि सफलानि च ॥११८॥
बहिराशास्वशेषासु वनैर्मुदितजन्तुभिः । नन्दनप्रतिमैर्जाता नगरी सुमनोहरा ॥११९॥
नवयोजनविस्तारा[2] द्वादशायामसङ्गता । द्व्यधिकानि तु षड्त्रिंशत्परिक्षेपेण पूरसौ ॥१२०॥
दिनैः षोडशभिश्चारुनभोगोचरशिल्पिभिः । निर्मिता शंसितुं शक्या न सा वर्षशतैरपि ॥१२१॥
वाप्यः काञ्चनसोपाना दीर्घिकाश्च सुरोधसः । पद्मादिभिः समाकीर्णा जाता ग्रीष्मेऽप्यशोषिताः ॥१२२॥
स्नानक्रीडातिसम्भोग्यास्तटस्थितजिनालयाः । दधुस्ताः परमां शोभां वृक्षपालीसमावृताः ॥१२३॥
कृतां स्वर्गपुरीतुल्यां ज्ञात्वा तां नगरीं हली । श्वोयानशंसिनीं स्थाने घोषणां समदापयत् ॥१२४॥

वंशस्थवृत्तम्

यदैव वार्तां गगनाङ्गणायनो मुनिस्तयोर्मातृसमुद्भवां जगौ ।
ततः प्रभृत्येव हि सीरिचक्रिणौ सदा सचिन्त्यौ हृदयेन बभ्रतुः ॥१२५॥
अचिन्तितं कृत्स्नमुपैति चारुतां कृतेन पुण्येन पुराऽसुधारिणाम् ।
ततो जनः पुण्यपरोऽस्तु सन्ततं न येन चिन्तारवितापमश्नुते ॥१२६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे साकेतनगरीवर्णनं नामैकाशीतितमं पर्व ॥८१॥

आश्चर्योंसे परिपूर्ण थी तथा जिसमें निरन्तर महोत्सव होते रहते थे ऐसी वह अयोध्यानगरी लंका आदिको जीतनेवाली हो रही थी ॥११६॥ महेन्द्र गिरिके शिखरोंके समान आभावाले जिन मन्दिरोंमें निरन्तर संगीतध्वनिके साथ अभिषेकोत्सव होते रहते थे ॥११७॥ जो जलभृत मेघोंके समान श्यामवर्ण थे तथा जिनपर भ्रमर गुञ्जार करते रहते थे ऐसे बाग-बगीचे उत्तमोत्तम फूलों और फलोंसे युक्त हो गये थे ॥११८॥ बाहरकी समस्त दिशाओंमें अर्थात् चारों ओर प्रमुदित जन्तुओंसे युक्त नन्दन वनके समान सुन्दर वनोंसे वह नगरी अत्यन्त मनोहर जान पड़ती थी ॥११९॥ वह नगरी नौ योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी और अड़तीस योजन परिधिसे सहित थी ॥१२०॥ सोलह दिनोंमें चतुर विद्याधर कारीगरोंने अयोध्याको ऐसा बना दिया कि सौ वर्षोंमें भी उसकी स्तुति नहीं हो सकती थी ॥१२१॥ जिनमें सुवर्णकी सीढ़ियाँ लगी थीं ऐसी वापिकाएँ तथा जिनके सुन्दर-सुन्दर तट थे ऐसी परिखाएँ कमल आदिके फूलोंसे आच्छादित हो गईं और उनमें इतना पानी भर गया कि ग्रीष्म ऋतुमें भी नहीं सूख सकती थीं ॥१२२॥ जो स्नान सम्बन्धी क्रीड़ासे उपभोग करने योग्य थीं, जिनके तटोंपर उत्तमोत्तम जिनालय स्थित थे तथा जो हरेभरे वृक्षोंकी कतारोंसे सुशोभित थीं ऐसी परिखाएँ उत्तम शोभा धारण करती थीं ॥१२३॥ अयोध्यापुरीको स्वर्गपुरीके समानकी हुई जानकर हलके धारक श्रीरामने स्थान-स्थान पर आगामी दिन प्रस्थानको सूचित करनेवाली घोषणा दिलवाई ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! आकाशरूपी आँगनमें विहार करनेवाले नारद ऋषिने जबसे माताओं सम्बन्धी समाचार सुनाया था तभीसे राम-लक्ष्मण अपनी-अपनी माताओंको हृदयमें धारण कर रहे थे ॥१२५॥ पूर्वभवमें किये हुए पुण्यकर्मके प्रभावसे प्राणियोंके समस्त अचिन्तित कार्य सुन्दरताको प्राप्त होते हैं इसलिए समस्तलोग सदा पुण्य संचय करनेमें तत्पर रहें जिससे कि उन्हें चिन्ता रूपी सूर्यका संताप न भोगना पड़े ॥१२६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें अयोध्याका वर्णन करनेवाला इक्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८१॥

---

१. सुपुष्पाणि म० । २. दशयोजन ज० ।

द्वयशीतितमं पर्व

अथोदयमिते भानौ पद्मनारायणौ तदा । यानं पुष्पकमारुह्य साकेतां प्रस्थितौ शुभौ ॥१॥
परिवारसमायुक्ता विविधैर्यानवाहनैः । विद्याधरेश्वरा गन्तुं [1]सक्तास्तत्सेवनोद्यताः ॥२॥
छत्रध्वजनिरुद्धार्ककिरणं वायुगोचरम् । समाश्रिता [2]महीं दूरं पश्यन्तो गिरिभूषिताम् ॥३॥
विलसद्विविधप्राणिसङ्घातं [3]क्षारसागरम् । व्यतीत्य खेचरा लीलां वहन्तो यान्ति हर्षिणः ॥४॥
पद्मस्याङ्कगता सीता सती गुणसमुत्कटा । लक्ष्मीरिव महाशोभा पुरी न्यस्तेक्षणा जगौ ॥५॥
जम्बूद्वीपतलस्येदं मध्ये नाथ किमीक्ष्यते । अत्यन्तमुज्ज्वलं पद्मस्ततोऽभाषत सुन्दरीम्[4] ॥६॥
देवि यत्र पुरा देवैर्मुनिसुव्रततीर्थकृत् । देवदेवप्रभुर्बाल्ये हृष्टैर्नीतोऽभिषेचनम् ॥७॥
सोऽयं रत्नमयैस्तुङ्गैः शिखरैश्चित्तहारिभिः । विराजते नगाधीशो मन्दरो नाम विश्रुतः ॥८॥
अहो वेगाद्‌तिक्रान्तं विमानं पदवीं पराम् । एहि भूयो बलं याम इति गत्वा पुनर्जगौ ॥९॥
एतत्तु दण्डकारण्यमिभाभोगमहातमः । लङ्कानाथेन यत्रस्था हृता त्वं स्वोपघातिना ॥१०॥
चारणश्रमणौ यत्र त्वया सार्द्धं मया तदा । पारणं लम्भितौ सैषा सुभगे दृश्यते नदी ॥११॥
सोऽयं सुलोचने भूभृद्वंशोऽभिख्योऽभिलक्ष्यते । [5]दृष्टौ यत्र मुनी युक्तौ देशगोत्रविभूषणौ ॥१२॥
कृतं मया ययोरासीद् भवत्या लक्ष्मणेन च । प्रातिहार्यं ततो यातं केवलं शिवसौख्यदम् ॥१३॥
वालिखिल्यपुरं भद्रे तदेतद् यत्र लक्ष्मणः । प्राप कल्याणमालाख्यां कन्यां काञ्चित्त्वया समाम् ॥१४॥

अथानन्तर सूर्योदय होने पर शुभ चेष्टाओंके धारक राम और लक्ष्मण पुष्पक विमानमें आरूढ हो अयोध्याकी ओर चले ॥१॥ उनकी सेवामें तत्पर रहनेवाले अनेक विद्याधरोंके अधिपति अपने-अपने परिवारके साथ नाना प्रकारके यानों और वाहनों पर सवार हो साथ चले ॥२॥ छत्रों और ध्वजाओंसे जहाँ सूर्यकी किरणें रुक गई थीं ऐसे आकाश में स्थित सब लोग पर्वतोंसे भूषित पृथिवीको दूरसे देख रहे थे ॥३॥ जिसमें नाना प्रकारके प्राणियोंके समूह क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे लवण-समुद्रको लाँघ कर हर्षसे भरे वे विद्याधर लीला धारण करते हुए जा रहे थे ॥४॥ रामके समीप बैठी गुणगणको धारण करनेवाली सती सीता लक्ष्मीके समान महाशोभाको धारण कर रही थी। वह सामनेकी ओर दृष्टि डालती हुई रामसे बोली कि हे नाथ ! जम्बूद्वीपके मध्यमें यह अत्यन्त उज्ज्वल वस्तु क्या दिख रही है ? तब रामने सुन्दरी सीतासे कहा कि हे देवि ! जहाँ पहले बाल्यावस्थामें देवाधिदेव भगवान् मुनि-सुव्रतनाथका हर्षसे भरे देवोंने अभिषेक किया था ॥५-७॥ यह वही रत्नमय ऊँचे मनोहारी शिखरोंसे युक्त मन्दर नामका प्रसिद्ध पर्वतराज सुशोभित हो रहा है ॥८॥ 'अहो ! वेगके कारण विमान दूसरे मार्गमें आ गया है, आओ अब पुनः सेनाके पास चलें' यह कह तथा सेना के पास जाकर राम बोले कि हे प्रिये ! यह वही दण्डक वन है जहाँ काले-काले हाथियोंकी घटासे महाअन्धकार फैल रहा है तथा जहाँ पर बैठी हुई तुम्हें अपना घात करनेवाला रावण हर कर ले गया था ॥९-१०॥ हे सुन्दरि ! यह वही नदी दिखाई देती है जहाँ मेरे साथ तुमने दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंके लिए पारणा कराई थी ॥११॥ हे सुलोचने ! यह वही वंशस्थविल नामका पर्वत दिखाई देता है जहाँ एक साथ विराजमान देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंके दर्शन किये थे ॥१२॥ जिन मुनियोंकी मैंने, तुमने तथा लक्ष्मणने उपसर्ग दूर कर सेवा की थी और जिन्हें मोक्ष सुखका देनेवाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ था ॥१३॥ हे भद्रे ! यह बालिखिल्य

---

१. शक्ता म० । २. समाश्रितां म० । ३. क्षीरसागरम् । ४. सुन्दरी म० । ५. दृष्टौ म० ।

दशाङ्गभोगनगरमदस्तद् दृश्यते प्रिये । रूपवत्याः पिता वज्रश्रवा यच्छ्रावकः [1]परः ॥१५॥
पुनरालोक्य धरणीं पुनः पप्रच्छ जानकी । कान्तेयं नगरी कस्य खेचरेशस्य दृश्यते ॥१६॥
विमानसदृशैर्गेहैरियमत्यन्तमुत्कटा । न जातुचिन्मया दृष्टा त्रिविष्टपविडम्बिनी ॥१७॥
जानकीवचनं श्रुत्वा दिशश्चालोक्य मन्थरम् । क्षणं विभ्रान्तचेतस्को ज्ञात्वा पद्मः स्मितीं जगौ ॥
पूरयोध्या प्रिये सेयं नूनं खेचरशिल्पिभिः । अन्येव रचिता भाति जितलङ्का परद्युतिः ॥१९॥
ततोऽभ्युग्रं विहायःस्थं विमानं सहसा परम् । द्वितीयादित्यसङ्काशं वीक्ष्य क्षुब्धा नगर्यसौ ॥२०॥
आरुह्य च महानागं भरतः प्राप्तसम्भ्रमः । विभूत्या परया युक्तः शक्रवन्निरगात् पुरः ॥२१॥
तावद्दैक्षत सर्वाशाः स्थगिता गगनायनैः । नानायानविमानस्थैर्विचित्रर्द्धिसमन्वितैः ॥२२॥
दृष्ट्वा भरतमायान्तं भूमिस्थापितपुष्पकौ । पद्मलक्ष्मीधरौ यातौ समीपत्वं सुसम्मदौ ॥२३॥
समीपौ ताविती दृष्ट्वा गजादुत्तीर्य कैकयः[2] । पूजामर्घशतैश्चक्रे तयोः स्नेहादिपूरितैः ॥२४॥
विमानशिखरात्तौ तं निष्क्रम्य प्रीतिनिर्भरम् । केयूरभूषितभुजावग्रजावालिलिङ्गतुः ॥२५॥
दृष्ट्वा पृष्टौ च कुशलं कृतशंसनसत्कथौ । भरतेन समेतौ तावारूढौ पुष्पकं पुनः ॥२६॥
प्रविशन्ति ततः सर्वे क्रमेण कृतसत्क्रियाम् । अयोध्यानगरीं चित्रपताकाशबलीकृताम् ॥२७॥
सङ्घट्टसङ्कतैर्यानैर्विमानैर्युग्यभी[3] रथैः । अनेकपघटाभिश्च मार्गोऽभूद् व्यवकाशकः[4] ॥२८॥

का नगर है जहाँ लक्ष्मणने तुम्हारे समान कल्याणमाला नामकी अद्भुत कन्या प्राप्त की थी ॥१४॥ हे प्रिये ! यह दशाङ्गभोग नामका नगर दिखाई देता है जहाँ रूपवतीका पिता वज्रकर्ण नामका उत्कृष्ट श्रावक रहता था ॥१५॥ तदनन्तर पृथिवीकी ओर देख कर सीताने पुनः पूछा कि हे कान्त ! यह नगरी किस विद्याधर राजाकी दिखाई देती है ॥१६॥ यह नगरी विमानोंके समान उत्तम भवनोंसे अत्यन्त व्याप्त है तथा स्वर्गकी विडम्बना करनेवाली ऐसी नगरी मैंने कभी नहीं देखी ॥१७॥

सीताके वचन सुन तथा धीरे-धीरे दिशाओंकी ओर देख रामका चित्त स्वयं क्षणभरके लिए विभ्रममें पड़ गया । परन्तु बादमें सब समाचार जान कर मन्द हास्य करते हुए बोले कि हे प्रिये ! यह अयोध्या नगरी है । जान पड़ता है कि विद्याधर कारीगरोंने इसकी ऐसी रचना की है कि यह अन्य नगरीके समान जान पड़ने लगी है, इसने लंकाको जीत लिया है तथा उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त है ॥१८-१९॥ तदनन्तर द्वितीय सूर्यके समान देदीप्यमान तथा आकाशके मध्यमें स्थित विमानको सहसा देख नगरी क्षोभको प्राप्त हो गई ॥२०॥ क्षोभको प्राप्त हुआ भरत महागजपर सवार हो महाविभूतियुक्त होता हुआ इन्द्रके समान नगरीसे बाहर निकला ॥२१॥ उसी समय उसने नाना यानों और विमानोंमें स्थित तथा विचित्र ऋद्धियोंसे युक्त विद्याधरोंसे समस्त दिशाओंको आच्छादित देखा ॥२२॥ भरतको आता हुआ देख जिन्होंने पुष्पकविमानको पृथिवी पर खड़ा कर दिया था ऐसे राम और लक्ष्मण हर्षित हो समीपमें आये ॥२३॥ तदनन्तर उन दोनोंको समीपमें आया देख भरतने हाथीसे उतर कर स्नेहादिसे पूरित सैकड़ों अर्घोंसे उनकी पूजा की ॥२४॥ तत्पश्चात् विमानके शिखरसे निकल कर बाजूबंदोंसे सुशोभित भुजाओंको धारण करनेवाले दोनों अग्रजोंने बड़े प्रेमसे भरतका आलिङ्गन किया ॥२५॥ एक दूसरेको देख कर तथा कुशल समाचार पूछ कर राम-लक्ष्मण पुनः भरतके साथ पुष्पकविमान पर आरूढ हुए ॥२६॥

तदनन्तर जिसकी सजावट की गई थी और जो नाना प्रकारकी पताकाओंसे चित्रित थी ऐसी अयोध्या नगरीमें क्रमसे सबने प्रवेश किया ॥२७॥ धक्का धूमीके साथ चलनेवाले यानों,

१. पुरः म० । २. भरतः । ३. अश्वैः । ४. विगतावकाशः ।

[1]प्रलम्बजलभृत्तुल्यास्तूर्यघोषाः समुद्ययुः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा भम्भाभेरीमहारवाः ॥२९॥
पटहानां पटीयांसो मन्द्राणां मन्द्रतां ययुः । लम्पानां कम्प्रशम्पानां[2] धुन्धूनां मधुरा भृशम् ॥३०॥
झल्लाम्लातकहक्कानां हैकहुङ्कारसङ्गिनाम् । गुञ्जारटितनाम्नां च वादित्राणां महास्वनाः ॥३१॥
सुकलाः काहला नादा घना हलहलारवाः । [3]अट्टहासास्तुरङ्गेभसिंहव्याघ्रादिनिस्वनाः ॥३२॥
वंशस्वनानुगामीनि गीतानि विविधानि च । विनर्दितानि भाण्डानां वन्दिनां पठितानि च ॥३३॥
सङ्क्रीडितानि रम्याणि रथानां सूर्यतेजसाम् । वसुधाक्षोभघोषाश्च प्रतिशब्दाश्च कोटिशः ॥३४॥
एवं विद्याधराधीशैर्बिभ्रद्भिः परमां श्रियम् । वृतौ विविशतः कान्तौ पुरं पद्माभचक्रिणौ ॥३५॥
आसन् विद्याधरा देवा इन्द्रौ पद्माभचक्रिणौ । अयोध्यानगरी स्वर्गो वर्णना तत्र कीदृशी ॥३६॥
पद्माननिशानाथं वीक्ष्य लोकमहोदधिः । कलध्वनिर्ययौ वृद्धिमत्यावर्त्तनवेलया ॥३७॥
विज्ञायमानपुरुषैः पूज्यमानौ पदे पदे । जय वर्द्धस्व जीवेति नन्देति च कृताशिषौ ॥३८॥
अत्युत्तुङ्गविमानाभभवनानां शिरः स्थिताः । सुन्दर्यस्तौ विलोकन्त्यो विकचाम्भोजलोचनाः ॥३९॥
सम्पूर्णचन्द्रसङ्काशं पद्मं पद्मनिभेक्षणम् । प्रावृषेण्यघनच्छायं लक्ष्मणं च सुलक्षणम् ॥४०॥
नार्यो निरीक्षितुं सक्ता[5] मुक्ताशेषापरक्रियाः । गवाक्षान् वदनैश्चक्रुर्व्योमाम्भोजवनोपमान् ॥४१॥
राजन्नन्योन्यसम्पर्के निर्भरे सति योषिताम् । सृष्टाऽपूर्वा तदा वृष्टिश्छिन्नहारैः पयोधरैः ॥४२॥

विमानों, घोड़ों, रथों और हाथियोंकी घटाओंसे अयोध्याके मार्ग अवकाशरहित हो गये ॥२८॥ लूमते हुए मेघोंकी गर्जनाके समान तुरहीके शब्द तथा करोड़ों शङ्खोंके शब्दोंसे मिश्रित भंभा और भेरियोंके शब्द होने लगे ॥२९॥ बड़े-बड़े नगाड़ोंके जोरदार शब्द तथा बिजलीके समान चञ्चल लंप और धुन्धुओंके मधुर शब्द गम्भीरताको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥ हैक नामक वादियों-की हुँकारसे सहित झालर, अम्लातक, हक्का, और गुञ्जा रटित नामक वादित्रोंके महाशब्द, काहलोंके अस्फुट एवं मधुर शब्द, निविडताको प्राप्त हुए हलहलाके शब्द, अट्टहासके शब्द, घोड़े, हाथी, सिंह और व्याघ्रादिके शब्द, बाँसुरीके स्वरसे मिले हुए नाना प्रकारके संगीतके शब्द, भाँड़ोंके विशाल शब्द, वंदीजनोंके विरद पाठ, सूर्यके समान तेजस्वी रथोंकी मनोहर चीत्कार, पृथिवीके कम्पनसे उत्पन्न हुए शब्द और इन सबकी करोड़ों प्रकारकी प्रतिध्वनियोंके शब्द सब एक साथ मिलकर विशाल शब्द कर रहे थे ॥३१–३४॥ इस प्रकार परम शोभाको धारण करने-वाले विद्याधर राजाओंसे घिरे हुए सुन्दर शरीरके धारक राम और लक्ष्मणने नगरीमें प्रवेश किया ॥३५॥ उस समय विद्याधर देव थे, राम-लक्ष्मण इन्द्र थे और अयोध्यानगरी स्वर्ग थी तब उनका वर्णन कैसा किया जाय ? ॥३६॥ श्रीरामके मुख रूपी चन्द्रमाको देखकर मधुरध्वनि करने-वाला लोक रूपी सागर, बढ़ती हुई वेलाके साथ वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३७॥ पहिचानमें आये पुरुष जिन्हें पद-पद पर पूज रहे थे, तथा जयवन्त रहो, बढ़ते रहो, जीते रहो, समृद्धिमान् होओ, इत्यादि शब्दोंके द्वारा जिन्हें स्थान-स्थान पर आशीर्वाद दिया जा रहा था ऐसे दोनों भाई नगरमें प्रवेश कर रहे थे ॥३८॥ अत्यन्त ऊँचे विमान तुल्य भवनोंके शिखरों पर स्थित स्त्रियोंके नेत्रकमल राम लक्ष्मणको देखते ही खिल उठते थे ॥३९॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान कमल-लोचन राम और वर्षाकालीन मेघके समान श्याम, सुन्दर लक्षणोंके धारक लक्ष्मणको देखनेके लिए तत्पर स्त्रियाँ अन्य सब काम छोड़ अपने मुखोंसे झरोखोंको कमल वनके समान कर रहीं थीं ॥४०–४१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि राजन् ! उस समय परस्परमें अत्यधिक सम्पर्क होने पर जिनके हार टूट गये थे ऐसी स्त्रियोंके पयोधरों अर्थात् स्तनरूपी पयोधरों अर्थात् मेघोंने

१. प्रलय- म० । २. कम्पे शपा इव तेषाम् । ३. भट्टहासा -म० । ४. चक्र -म० । ५. शक्ता म०, क० ।

च्युतं नि¹पतितं भूमौ काञ्चीनूपुरकुण्डलम् । तासां तद्गतचित्तानां ध्वनयश्चैवमुद्गताः ॥४३॥
यस्यैषाङ्कगता भाति प्रिया गुणधरा सती । देवी विदेहजा सोऽयं पद्मनाभो महेक्षणः ॥४४॥
निहतः प्रधने येन सुग्रीवाकृतितस्करः । वृत्रदैत्यपतेर्नप्ता स साहसगतिः खलः ॥४५॥
अयं लक्ष्मीधरो येन शक्रतुल्यपराक्रमः । हतो लङ्केश्वरो युद्धे स्वेन चक्रेण वक्षसि ॥४६॥
सुग्रीवोऽयं महासत्त्वस्तनयोऽस्यायमङ्गदः । अयं भामण्डलाभिख्यः सीतादेव्याः सहोदरः ॥४७॥
देवेन जातमात्रः सन्नासीद् योऽपहृतस्तदा । मुक्तोऽनुकम्पया भूयो दृष्टो विद्याधरेन्दुना ॥४८॥
²उन्मादेन (?) वने तस्मिन् गृहीत्वा च प्रमोदिना । पुत्रस्तवायमित्युक्त्वा पुष्पवत्यै समर्पितः ॥४९॥
एषोऽसौ दिव्यरत्नात्मकुण्डलोद्योतिताननः । विद्याधरमहाधीशो भाति सार्थकशब्दितः ॥५०॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं सखि श्रीमान् विराधितः । श्रीशैलः पवनस्यायं पुत्रो वानरकेतनः ॥५१॥
एवं विस्मययुक्ताभिस्तोषिणीभिः समुत्कटाः । लक्षिताः पौरनारीभिः प्राप्तास्ते पार्थिवालयम् ॥५२॥
तावत्प्रासादमूर्द्धस्थे पुत्रस्नेहपरायणे । सत्प्रस्नुतस्तने वीरमातराववतेरतुः ॥५३॥
महागुणधरा देवी साधुशीलाऽपराजिता । केकयी केकया चापि सुप्रजाश्च सुचेष्टिताः ॥५४॥
भवान्तरसमायोगमिव प्राप्तास्तयोरमा । मातरोऽयुः समीपत्वं मङ्गलोद्यतचेतसः ॥५५॥
ततो मातृजनं वीक्ष्य मुदितौ कमलेक्षणौ । पुष्पयानात् समुत्तीर्य लोकपालोपमद्युती ॥५६॥

अपूर्व वृष्टि की थी ॥४२॥ जिनके चित्त राम-लक्ष्मणमें लग रहे थे ऐसी स्त्रियोंकी मेखला, नूपुर और कुण्डल टूट-टूटकर पृथिवी पर पड़ रहे थे तथा उनमें परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था ॥४३॥ कोई कह रही थी कि जिनकी गोदमें गुणोंको धारण करनेवाली यह राजा जनककी पुत्री पतिव्रता सीता प्रिया विद्यमान है यही विशाल नेत्रोंको धारण करनेवाले राम हैं ॥४४॥ कोई कह रही थी कि हाँ, ये वे ही राम हैं जिन्होंने सुग्रीवकी आकृतिके चोर दैत्यराज वृत्रके नाती दुष्ट साहसगतिको युद्धमें मारा था ॥४५॥ कोई कह रही थी कि ये इन्द्र तुल्य पराक्रमके धारी लक्ष्मण हैं जिन्होंने युद्धमें अपने चक्रसे वक्षःस्थल पर प्रहार कर रावणको मारा था ॥४६॥ कोई कह रही थी कि यह महाशक्तिशाली सुग्रीव है, यह उसका बेटा अंगद है, यह सीतादेवीका सगा भाई भामण्डल है जिसे उत्पन्न होते ही देवने पहले तो हर लिया था फिर दयासे छोड़ दिया था और चन्द्रगति विद्याधरने देखा था ॥४७–४८॥ यही नहीं किन्तु हर्षसे युक्त हो उसे वनमें झेला था तथा 'यह तुम्हारा पुत्र है' इस प्रकार कहकर रानी पुष्पवतीके लिए सौंपा था। अपने दिव्य रत्नमयी कुण्डलोंसे जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है तथा जो सार्थक नामका धारी है ऐसा यह विद्याधरोंका राजा भामण्डल अत्यधिक शोभित हो रहा है ॥४९–५०॥ हे सखि ! यह चन्द्रोदरका लड़का श्रीमान् विराधित है और यह वानरचिह्नित पताकाको धारण करनेवाला पवनञ्जयका पुत्र श्रीशैल (हनूमान्) है ॥५१॥ इस प्रकार आश्चर्य तथा संतोषको धारण करनेवाली नगरवासिनी स्त्रियाँ जिन्हें देख रही थीं ऐसे उत्कट शोभाके धारक सब लोग राजभवनमें पहुँचे ॥५२॥ जब तक ये सब राजभवनमें पहुँचे तब तक जो भवनके शिखर पर स्थित थीं, पुत्रोंके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें तैयार थीं तथा जिनके स्तनोंसे दूध झर रहा था ऐसी दोनों वीर माताएँ ऊपरसे उतर कर नीचे आ गईं ॥५३॥ महागुणोंको धारण करनेवाली तथा उत्तम शीलसे युक्त अपराजिता (कौशल्या) कैकयी (सुमित्रा), केकया (भरतकी माता) और सुप्रजा (सुप्रभा) उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली तथा मङ्गलाचारमें निपुण ये चारों माताएँ साथ-साथ राम-लक्ष्मणके समीप आईं मानो भवान्तरमें ही संयोगको प्राप्त हुई हों ॥५४–५५॥

तदनन्तर जो माताओंको देखकर प्रसन्न थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे और जो लोकपालोंके तुल्य कान्तिको धारण करनेवाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण दोनों भाई पुष्पक विमानसे उतर

---

१. न पतितं क०, ख०, म० । २. 'उन्मादेन' इति पाठेन भाव्यम् ।

कृताञ्जलिपुटौ नम्रौ सनृपौ साङ्गनाजनौ । मातृणां नेमतुः पादावुपगम्य क्रमेण तौ ॥५७॥
आशीर्वादसहस्राणि यच्छन्त्यः शुभदानि ताः । परिषस्वजिरे पुत्रौ स्वसंवेद्यमिताः सुखम् ॥५८॥
पुनः पुनः परिष्वज्य तृप्तिसम्बन्धवर्जिताः । चुचुम्बुर्मस्तके कम्पिकरामर्शनतत्पराः ॥५९॥
आनन्दबाष्पपूर्णाक्षाः कृतासनपरिग्रहाः । सुखदुःखं समावेद्य धृतिं ताः परमां ययुः ॥६०॥
मनोरथसहस्राणि गुणितान्यसकृत्पुरा । तासां श्रेणिक पुण्येन फलितानीप्सिताधिकम् ॥६१॥
सर्वाः सूरजनन्यस्ताः साधुभक्ताः सुचेतसः । स्नुषाशतसमाकीर्णा लक्ष्मीविभवसङ्गताः ॥६२॥
वीरपुत्रानुभावेन निजपुण्योदयेन च । महिमानं परिप्राप्ता गौरवं च सुपूजितम् ॥६३॥
क्षारोदसागरान्तायां प्रतिघातविवर्जिताः । क्षितावेकातपत्रायां ददुराज्ञां यथेप्सितम् ॥६४॥

आर्याच्छन्दः

इष्टसमागममेतं शृणोति यः पठति चातिशुद्धमतिः ।
लभते सम्पदमिष्टामायुः पूर्णं सुपुण्यं च ॥६५॥
एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदयं जनस्य सद्बुद्धेः ।
कुरुते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिमं कुरुत ॥६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणसमागमाभिधानं नाम द्व्यशीतितमं पर्व ॥८२॥

कर नीचे आये और दोनोंने हाथ जोड़कर नम्रीभूत हो साथमें आये हुए समस्त राजाओं और अपनी स्त्रियोंके साथ क्रमसे समीप जाकर माताओंके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५६-५७॥ कल्याणकारी हजारों आशीर्वादोंको देती हुई उन माताओंने दोनों पुत्रोंका आलिङ्गन किया। उस समय वे सब स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हो रही थीं अर्थात् जो सुख उन्हें प्राप्त हुआ था उसका अनुभव उन्हींको हो रहा था—अन्य लोग उसका वर्णन नहीं कर सकते थे ॥५८॥ वे बार-बार आलिङ्गन करती थीं फिर भी तृप्त नहीं होती थीं, मस्तक पर चुम्बन करती थीं, काँपते हुए हाथसे उनका स्पर्श करती थीं, और उनके नेत्र हर्षके आँसुओंसे पूर्ण हो रहे थे। तदनन्तर आसन पर आरूढ हो परस्परका सुख-दुःख पूछ कर वे सब परम धैर्यको प्राप्त हुईं ॥५९-६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इनके जो हजारों मनोरथ पहले अनेकों बार गुणित होते रहते थे वे अब पुण्यके प्रभावसे इच्छासे भी अधिक फलीभूत हुए ॥६१॥ जो साधुओंकी भक्त थीं, उत्तम चित्तको धारण करनेवाली थीं, सैकड़ों पुत्र-वधुओंसे सहित थीं, तथा लक्ष्मीके वैभवको प्राप्त थीं ऐसी उन वीर माताओंने वीर पुत्रोंके प्रभाव और अपने पुण्योदयसे लोकोत्तर महिमा तथा गौरवको प्राप्त किया ॥६२-६३॥ वे एक छत्रसे सुशोभित लवणसमुद्रान्त पृथिवीमें बिना किसी बाधाके इच्छानुसार आज्ञा प्रदान करती थीं ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अत्यन्त विशुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला जो मनुष्य इस इष्ट समागमके प्रकरणको सुनता है अथवा पढ़ता है वह इष्ट सम्पत्ति पूर्ण आयु तथा उत्तम पुण्यको प्राप्त होता है ॥६५॥ सद्बुद्धि मनुष्यका किया हुआ एक नियम भी अभ्युदयको प्राप्त हो सूर्यके समान उत्तम प्रकाश करता है। हे भव्य जनो ! इस नियमको अवश्य करो ॥६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणके समागमका वर्णन करनेवाला ब्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८२॥

त्र्यशीतितमं पर्व

पुनः प्रणम्य शिरसा पृच्छति श्रेणिको यतिम् । गृहे श्रीविस्तरं[1] तेषां समुद्भूतातिकौतुकः ॥१॥
उवाच गौतमः पद्माः लक्ष्मणा भरता नृप । शत्रुघ्नाश्च न शक्यन्ते भोगाः कात्स्न्येन शंसितुम् ॥२॥
तथाऽपि शृणु ते राजन् वेदयामि समासतः । रामचक्रिप्रभावेण विभवस्य समुद्भवम् ॥३॥
नन्द्यावर्त्ताख्यसंस्थानं बहुद्वारोच्चगोपुरम् । शक्रालयसमं कान्तं भवनं भवनं श्रियः ॥४॥
चतुःशाल इति ख्यातः प्राकारोऽस्य विराजते । महाद्रिशिखरोत्तुङ्गो वैजयन्त्यभिधा सभा ॥५॥
शाला चन्द्रमणी रम्या सुवीथीति प्रकीर्त्तिता । प्रासादकूटमत्यन्तमुत्तुङ्गमवलोकनम् ॥६॥
प्रेक्षागृहं च विन्ध्याभं वर्द्धमानककीर्त्तनम् । परिकर्मोपयुक्तानि कर्मान्तभवनानि च ॥७॥
कुक्कुटाण्डप्रभं गर्भगृहकूटं महाद्भुतम् । एकस्तम्भधृतं कल्पतरुतुल्यं मनोहरम् ॥८॥
मण्डलेन तदावृत्य देवीनां गृहपालिका । तरङ्गाली परिख्याता स्थिता रत्नसमुज्ज्वला ॥९॥
महदम्भोजकाण्डं च विद्युद्दलसमद्युति[2] । सुश्लिष्टा सुभगस्पर्शा शय्या सिंहशिरःस्थिता ॥१०॥
उद्यद्भास्करसङ्काशमुत्तमं हरिविष्टरम् । चामराणि शशाङ्कांशुसञ्चयप्रतिमानि च ॥११॥
इष्टच्छायकरं स्फीतं छत्रं तारापतिप्रभम् । सुखेन [3]गमने कान्ते पादुके विषमोचिके ॥१२॥
अनर्घाणि च वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च । दुर्भेद्यं कवचं कान्तं मणिकुण्डलयुग्मकम् ॥१३॥
अमोघाश्च गदाखड्गकनकारिशिलीमुखाः । अन्यानि च महास्त्राणि भासुराणि रणाजिरे ॥१४॥

अथानन्तर जिसे अत्यन्त कौतुक उत्पन्न हुआ था ऐसे राजा श्रेणिकने शिरसे प्रणाम कर गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! उन राम-लक्ष्मणके घरमें लक्ष्मीका विस्तार कैसा था ? ॥१॥ तब गौतम स्वामीने कहा कि हे राजन् ! यद्यपि राम-लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नके भोगोंका वर्णन सम्पूर्ण रूपसे नहीं किया जा सकता तथापि हे राजन् ! बलभद्र और नारायणके प्रभावसे उनके जो वैभव प्रकट हुआ था वह संक्षेपसे कहता हूँ सो सुन ॥२-३॥ उनके अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरोंसे युक्त, इन्द्रभवनके समान सुन्दर लक्ष्मीका निवासभूत नन्द्यावर्त नामका भवन था ॥४॥ किसी महागिरिके शिखरोंके समान ऊँचा चतुःशाल नामका कोट था, वैजयन्ती नामकी सभा थी। चन्द्रकान्त मणियोंसे निर्मित सुवीथी नामकी मनोहरशाला थी, अत्यन्त ऊँचा तथा सब दिशाओंका अवलोकन करानेवाला प्रासादकूट था, विन्ध्यगिरिके समान ऊँचा वर्द्धमानक नामक प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकारके उपकरणोंसे युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटीके अण्डेके समान महान् आश्चर्यकारी था, एक खम्भे पर खड़ा था, और कल्पवृक्षके समान मनोहर था, ॥५-८॥ उस गर्भगृहको चारों ओरसे घेर कर तरङ्गाली नामसे प्रसिद्ध तथा रत्नोंसे देदीप्यमान रानियोंके महलोंकी पंक्ति थी ॥९॥ बिजलीके खण्डोंके समान कान्तिवाला अम्भोजकाण्ड नामका शय्यागृह था, सुन्दर, सुकोमल स्पर्शवाली तथा सिंहके शिरके समान पायों पर स्थित शय्या थी, उगते हुए सूर्यके समान उत्तम सिंहासन था, चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान चमर थे ॥१०-११॥ इच्छानुकूल छायाको करनेवाला चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त बड़ा भारी छत्र था, सुखसे गमन करानेवाली विषमोचिका नामकी दो खड़ाऊँ थीं ॥१२॥ अनर्घ्य वस्त्र थे, दिव्य आभूषण थे, दुर्भेद्य कवच था, देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंका जोड़ा था, कभी व्यर्थ नहीं जानेवाले गदा, खड्ग, कनक, चक्र, बाण तथा रणाङ्गणमें चमकनेवाले अन्य बड़े-बड़े

---

१. श्रीविस्तरे म० । २. द्युतिः म०, ज० । ३. गगने म०, ज० ।

[1]पञ्चाशद्धलकोटीनां लक्षाणि गदितानि च । स्वयं [4]क्षरणशीलानां कोटिरभ्यधिका गवाम् ॥१५॥
सप्ततिः साधिकाः कोटयः कुलानां स्फीतसम्पदाम् । नित्यं न्यायप्रवृत्तानां साकेतनगरीजुषाम् ॥१६॥
भवनान्यतिशुभ्राणि सर्वाणि विविधानि च । अक्षीणकोशपूर्णानि रत्नवन्ति कुटुम्बिनाम् ॥१७॥
पाल्या बहुविधैर्धान्यैः पूर्णा गण्डाद्रिसन्निभाः । विज्ञेयाः कुट्टिमतलाश्चतुःशालाः सुखावहाः ॥१८॥
प्रवरोद्यानमध्यस्था नानाकुसुमशोभिताः । दीर्घिकाश्चारुसोपानाः परिक्रीडनकोचिताः ॥१९॥
प्रेक्ष्यगोमहिषीवृन्दस्फीतास्तत्र कुटुम्बिनः । सौख्येन महता युक्ताः रेजुः सुरवरा इव ॥२०॥
दण्डनायकसामन्ता लोकपाला इवोदिताः । महेन्द्रतुल्यविभवा राजानः पुरुतेजसः ॥२१॥
सुन्दर्योऽप्सरसां तुल्याः संसारसुखभूमयः । निखिलं [3]चोपकरणं यथाभिमतसौख्यदम् ॥२२॥
एवं रामेण भरतं नीतं शोभां परामिदम् । हरिषेणनरेन्द्रेण यथा चक्रभृता पुरा ॥२३॥
चैत्यानि रामदेवेन कारितानि सहस्रशः । भान्ति भव्यजनैर्नित्यं पूजितानि महर्द्धिभिः ॥२४॥
देशग्रामपुरारण्यगृहरथ्यागतो जनः । सदेति सत्कथां चक्रे सुखी रचितमण्डलः ॥२५॥
साकेतविषयः सर्वः सर्वथा पश्यताऽधुना । विलम्बयितुमुद्युक्तश्चित्रं गीर्वाणविष्टपम् ॥२६॥
मध्ये शक्रपुरीतुल्या नगरी यस्य राजते । अयोध्या निलयैस्तुङ्गैरशक्यपरिवर्णनैः ॥२७॥
किममी त्रिदशक्रीडापर्वतास्तेजसाऽऽवृताः । आहोस्विच्छरदभ्रौघाः किंवा विद्यामहालयाः ॥२८॥
प्राकारोऽयं समस्ताशा द्योतयन् परमोन्नतः । समुद्रवेदिकातुल्यो महाशिखरशोभितः ॥२९॥

शस्त्र थे ॥१३-१४॥ पचास लाख हल थे, एक करोड़से अधिक अपने आप दूध देनेवाली गायें थीं ॥१५॥ जो अत्यधिक सम्पत्तिके धारक थे तथा निरन्तर न्यायमें प्रवृत्त रहने थे ऐसे अयोध्या-नगरीमें निवास करनेवाले कुलोंकी संख्या कुछ अधिक सत्तर करोड़ थी ॥१६॥ गृहस्थोंके समस्त घर अत्यन्त सफेद, नाना आकारोंके धारक, अक्षीण खजानोंसे परिपूर्ण तथा रत्नोंसे युक्त थे ॥१७॥ नानाप्रकारके अन्नोंसे परिपूर्ण नगरके बाह्य प्रदेश छोटे मोटे गोल पर्वतोंके समान जान पड़ते थे और पक्के फरसोंसे युक्त भवनोंकी चौशालें अत्यन्त सुखदायी थीं ॥१८॥ उत्तमोत्तम बगीचोंके मध्यमें स्थित, नाना प्रकारके फूलोंसे सुशोभित, उत्तम सीढ़ियोंसे युक्त एवं क्रीडाके योग्य अनेकों वापिकाएँ थीं ॥१९॥ देखनेके योग्य अर्थात् सुन्दर सुन्दर गायों और भैंसोंके समूहसे युक्त वहाँके कुटुम्बी अत्यधिक सुखसे सहित होनेके कारण उत्तम देवोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२०॥ सेनाके नायक स्वरूप जो सामन्त थे वे लोकपालोंके समान कहे गये थे तथा विशाल तेजके धारक राजा लोग महेन्द्रके समान वैभवसे युक्त थे ॥२१॥ अप्सराओंके समान संसारके सुखकी भूमि स्वरूप अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ थीं, और इच्छानुकूल सुखके देनेवाले अनेक उपकरण थे ॥२२॥ जिस प्रकार पहले, चक्ररत्नको धारण करनेवाले राजा हरिषेणके द्वारा यह भरत क्षेत्र परम शोभाको प्राप्त हुआ था उसी प्रकार यह भरत क्षेत्र रामके द्वारा परम शोभाको प्राप्त हुआ था ॥२३॥ अत्यधिक सम्पदाको धारण करनेवाले भव्यजन जिनकी निरन्तर पूजा करते थे ऐसे हजारों चैत्यालय श्री रामदेवने निर्मित कराये थे ॥२४॥ देश, गाँव, नगर, वन, घर और गलियोंके मध्यमें स्थित सुखिया मनुष्य मण्डल बाँध-बाँधकर सदा यह चर्चा करते रहते थे ॥२५॥ कि देखो यह समस्त साकेत देश, इस समय आश्चर्यकारी स्वर्ग लोककी उपमा प्राप्त करनेके लिए उद्यत है ॥२६॥ जिस देशके मध्यमें जिनका वर्णन करना शक्य नहीं है ऐसे ऊँचे ऊँचे भवनोंसे अयोध्यापुरी इन्द्रकी नगरीके समान सुशोभित हो रही है ॥२७॥ वहाँके बड़े बड़े विद्यालयोंको देखकर यह संदेह उत्पन्न होता था कि क्या ये तेजसे आवृत देवोंके क्रीड़ाचल हैं अथवा शरद् ऋतुके मेघोंका समूह है ? ॥२८॥ इस नगरीका यह प्राकार समस्त दिशाओंको देदीप्यमान कर रहा है, अत्यन्त ऊँचा है, समुद्रकी वेदिकाके समान है और बड़े-बड़े शिखरोंसे

---

१. पञ्चाशद्बलकोटीनां म० । ४. लक्ष्मण—म०, ख०। रक्षण ज० । ३. चोपशरणं म० ।

सुवर्णरत्नसंघातो रश्मिसंदीपितपुष्करः । कुत इदक्त्रिलोकेऽस्मिन् मानसस्याप्यगोचरः ॥३०॥
नूनं पुण्यजनैरेषा विनीता नगरी शुभा । सम्पूर्णा रामदेवेन विहिताऽन्येव शोभना ॥३१॥
सम्प्रदायेन यः स्वर्गः श्रूयते कोऽपि सुन्दरः । नूनं तमेवमादाय सम्प्राप्तौ रामलक्ष्मणौ ॥३२॥
आहोस्वित् सैव पूर्वेयं भवेदुत्तरकोशला । दुर्गमा जनितात्यन्तं प्राणिनां पुण्यवर्जिनाम् ॥३३॥
[1]सशरीरेण लोकेन [2]सस्त्रीपशुधनादिना । त्रिदिवं रघुचन्द्रेण नीता कान्तिमिमां गता ॥३४॥
एक एव महान् दोषः [3]सुप्रकाशोऽत्र दृश्यते । महानिन्दात्रपाहेतुः सतामत्यन्तदुस्त्यजः ॥३५॥
यद्विद्याधरनाथेन हृताभिरमता ध्रुवम् । वैदेही पुनरानीता तत्किं पद्मस्य युज्यते ॥३६॥
क्षत्रियस्य कुलीनस्य ज्ञानिनो मानशालिनः । जनाः पश्यत कर्मेदं किमन्यस्याभिधीयताम् ॥३७॥
इति क्षुद्रजनोद्गीतः परिवादः समन्ततः । सीतायाः कर्मतः पूर्वाद् विस्तारं विष्टपे गतः ॥३८॥
अथासौ भरतस्तत्र पुरे [4]स्वर्गत्रपाकरे । सुरेन्द्रसदृशैर्भोगैरपि नो विन्दते रतिम् ॥३९॥
स्त्रीणां शतस्य सार्द्धस्य भर्त्ता प्राणमहेश्वरः । विद्वेष्टि सन्ततं [5]राज्यलक्ष्मीं तुङ्गां तथापि ताम् ॥४०॥
निर्व्यूहवलभीशृङ्गप्रघणद्युतिहारिभिः । प्रासादैर्मण्डलीबन्धरचितैरुपशोभिते[6] ॥४१॥
त्रिचित्रमणिनिर्माणकुट्टिमे चारुदीर्घिके । मुक्तादामचिते हेमखचिते पुष्पितद्रुमे ॥४२॥
अनेकाश्चर्यसंकीर्णे [7]यथाकालमनोहरे । सवंशमुरजस्थाने सुन्दरीजनसंकुले ॥४३॥

सुशोभित है ॥२९॥ जिसने अपनी किरणोंसे आकाशको प्रकाशित कर रक्खा है तथा जिसका चिन्तवन मनसे भी नहीं किया जा सकता ऐसे सुवर्ण और रत्नोंकी राशि जैसी अयोध्यामें थी वैसी तीनलोकमें भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं थी ॥३०॥ जान पड़ता है कि पुण्यजनोंके द्वारा भरी हुई यह शुभ और शोभायमान नगरी श्रीरामदेवके द्वारा मानो अन्य ही कर दी गई है ॥३१॥ सम्प्रदाय वश सुननेमें आता है कि स्वर्ग नामका कोई सुन्दर पदार्थ है सो ऐसा लगता है मानो उस स्वर्गको लेकर ही राम-लक्ष्मण यहाँ पधारे हों ॥३२॥ अथवा यह वही पहलेकी उत्तरकोशल पुरी है जो कि पुण्यहीन मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुर्गम हो गई है ॥३३॥ ऐसा जान पड़ता है कि इस कान्तिको प्राप्त हुई यह नगरी श्री रामचन्द्रके द्वारा इसी शरीर तथा स्त्री पशु और धनादि सहित लोगोंके साथ ही साथ स्वर्ग भेज दी गई है ॥३४॥ इस नगरीमें यही एक सबसे बड़ा दोष दिखाई देता है जो कि महानिन्दा और लज्जाका कारण है तथा सत्पुरुषोंके अत्यन्त दुःख पूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥३५॥ वह दोष यह है कि विद्याधरोंका राजा रावण सीताको हर ले गया था सो उसने अवश्य ही उसका सेवन किया होगा । अब वही सीता फिरसे लाई गई है सो क्या रामको ऐसा करना उचित है ? ॥३६॥ अहो जनो ! देखो जब क्षत्रिय, कुलीन, ज्ञानी और मानी पुरुषका यह काम है तब अन्य पुरुषका क्या कहना है ॥३७॥ इस प्रकार क्षुद्र मनुष्योंके द्वारा प्रकट हुआ सीताका अपवाद, पूर्व कर्मोदयसे लोकमें सर्वत्र विस्तारको प्राप्त हो गया ॥३८॥

अथानन्तर स्वर्गको लज्जा करनेवाले इस नगरमें रहता हुआ भरत इन्द्र तुल्य भोगोंसे भी प्रीतिको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥३९॥ वह यद्यपि डेढ़ सौ स्त्रियोंका प्राणनाथ था तथापि निरन्तर उस उन्नत राज्यलक्ष्मीके साथ द्वेष करता रहता था ॥४०॥ वह ऐसे मनोहर क्रीड़ास्थलमें जो कि छपरियों-अट्टालिकाओं, शिखरों और देहलियोंकी मनोहर कान्तिसे युक्त, पंक्तिबद्धरचित बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित था, जहाँके फर्स नाना प्रकारके रङ्ग-बिरङ्गे मणियोंसे बना हुआ था, जहाँ सुन्दर सुन्दर वापिकाएँ थीं, जो मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, सुवर्णजटित था, जहाँ वृक्ष फूलोंसे युक्त थे, जो अनेक आश्चर्यकारी पदार्थोंसे व्याप्त था, समयानुकूल मनको हरण करनेवाला था, बांसुरी और मृदङ्गके बजनेका स्थान था, सुन्दरी स्त्रियोंसे युक्त था, जिसके समीप ही मदभीगे

१. स्वशरीरेण ज०, ख०, म० । २. स्वस्त्री म० । ३. सुप्रकाशेऽत्र म० । ४. स्वर्ग्य म० । ५. राज्यं लक्ष्मीं म०,ज० । ६. -रुपशोभितैः त० । ७. यथा काले म० ।

प्रान्तस्थितमदक्लिन्नकपोलवरवारणे । वासिते मदगन्धेन तुरङ्गरवहारिणि ॥४४॥
कृतकोमलसङ्गीते रत्नोद्योतपटावृते[1] । रम्ये क्रीडनकस्थाने रुचिष्ये स्वर्गिणामपि ॥४५॥
संसारभीरुरत्यन्तं नृपश्चकितमानसः । धृतिं न लभते व्याघ्रभीरुः सारङ्गको यथा ॥४६॥
लभ्यं दुःखेन मानुष्यं चपलं जलबिन्दुवत् । यौवनं फेनपुञ्जेन सदृशं दोषसङ्कटम् ॥४७॥
समाप्तिविरसा भोगा जीवितं स्वप्नसन्निभम् । सम्बन्धो बन्धुभिः सार्द्धं पक्षिसङ्गमनोपमः ॥४८॥
इति निश्चित्य यो धर्मं करोति न शिवावहम् । स जराजर्जरः पश्चाद्दह्यते शोकवह्निना ॥४९॥
यौवनेऽभिनवे रागः कोऽस्मिन् मूढकवल्लभे । अपवादकुलावासे सन्ध्योद्योतविनश्वरे ॥५०॥
अवश्यं त्यजनीये च नानाव्याधिकुलालये । शुक्रशोणितसम्मूले देहयन्त्रेऽपि का रतिः ॥५१॥
न तृप्यतीन्धनैर्वह्निः सलिलैर्न नदीपतिः[2] । न जीवो विषयैर्यावत्संसारमपि सेवितैः ॥५२॥
कामासक्तमतिः पापो न किञ्चिद् वेत्ति देहवान् । यत्पतङ्गसमो लोभी दुखं प्राप्नोति दारुणम् ॥५३॥
गलगण्डसमानेषु क्लेदक्षरणकारिषु । स्तनाख्यमांसपिण्डेषु बीभत्सेषु कथं रतिः ॥५४॥
दन्तकीटकसम्पूर्णे ताम्बूलरसलोहिते । क्षुरिकाच्छेदसदृशे शोभा वक्त्रविले नु[3] का ॥५५॥
नारीणां चेष्टिते वायुदोषादिव समुद्गते । उन्मादजनिते प्रीतिर्विलासाभिहितेऽपि का ॥५६॥
गृहान्तर्ध्वनिना तुल्ये मनोधृतिनिवासिनी । सङ्गीते रुदिते चैव विशेषो नोपलक्ष्यते ॥५७॥

कपोलोंसे युक्त हाथी विद्यमान थे, जो मदकी गन्धसे सुवासित था, घोड़ोकी हिनहिनाहटसे मनोहर था, जहाँ कोमल संगीत हो रहा था, जो रत्नोंके प्रकाशरूपी पटसे आवृत था, तथा देवोंके लिए भी रुचिकर था, धैर्यको प्राप्त नहीं होता था। चकित चित्तका धारक भरत संसारसे अत्यन्त भयभीत रहता था। जिस प्रकार शिकारीसे भयको प्राप्त हुआ हरिण सुन्दर स्थानोंमें धैर्यको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार भरत भी उक्त प्रकारके सुन्दर स्थानोंमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥४१-४६॥ वह सोचता रहता था कि मनुष्य पर्याय बड़े दुःखसे प्राप्त होती है फिर भी पानीकी बूँदके समान चञ्चल है, यौवन फेनके समूहके समान भङ्गुर तथा अनेक दोषोंसे संकट पूर्ण है ॥४७॥ भोग अन्तिम कालमें विरस अर्थात् रससे रहित है, जीवन स्वप्नके समान है और भाई-बन्धुओंका सम्बन्ध पक्षियोंके समागमके समान है ॥४८॥ ऐसा निश्चय करनेके बाद भी जो मनुष्य मोक्ष-सुखदायी धर्म धारण नहीं करता है वह पीछे जरासे जर्जर चित्त हो शोक-रूपी अग्निसे जलता रहता है ॥४९॥ जो मूर्ख मनुष्योंको प्रिय है, अपवाद अर्थात् निन्दाका कुलभवन है एवं सन्ध्याके प्रकाशके समान विनश्वर है ऐसे नवयौवनमें क्या राग करना है? ॥५०॥ जो अवश्य ही छोड़ने योग्य है, नाना व्याधियोंका कुलभवन है, और रजवीर्य जिसका मूल कारण है ऐसे इस शरीर रूपी यन्त्रमें क्या प्रीति करना है? ॥५१॥ जिस प्रकार ईन्धनसे अग्नि नहीं तृप्त होती और जलसे समुद्र नहीं तृप्त होता उसी प्रकार जब तक संसार है तब तक सेवन किये हुए विषयोंसे यह प्राणी तृप्त नहीं होता ॥५२॥ जिसकी बुद्धि पापमें आसक्त हो रही है ऐसा पापी मनुष्य कुछ भी नहीं समझता है और लोभी मनुष्य पतंगके समान दारुण दुःखको प्राप्त होता है ॥५३॥ जिनका आकार गलगण्डके समान है तथा जिनसे निरन्तर पसीना झरता रहता है, ऐसे स्तन नामक मांसके घृणित पिण्डोंमें क्या प्रेम करना है? ॥५४॥ जो दाँतरूपी कीड़ोंसे युक्त है तथा जो ताम्बूलके रसरूपी रुधिरसे सहित है ऐसे छुरीके छापके समान जो मुखरूपी बिल है उसमें क्या शोभा है? ॥५५॥ स्त्रियोंकी जो चेष्टा मानो वायुके दोषसे ही उत्पन्न हुई है अथवा उन्माद जनित है उसके विलासपूर्ण होने पर भी उसमें क्या प्रीति करना है? ॥५६॥ जो घरके भीतरकी ध्वनिके समान है तथा जो मनके धैर्यमें निवास करता है (रोदन पक्षमें मनके अधैर्यमें निवास करता है) ऐसे संगीत तथा रोदनमें कोई

---

१. पटावृते म० । २. तृप्यंति धनै- म० । ३. विलेन का० म० ।

अमेध्यमयदेहाभिश्छन्नाभिः केवलं त्वचा । नारीभिः कीदृशं सौख्यं सेवमानस्य जायते ॥५८॥
विट्कुम्भद्वितयं[1] नीत्वा संयोगमतिलज्जनम् । विमूढमानसः लोकः[2] सुखमित्यभिमन्यते ॥५९॥
इच्छामात्रसमुद्भूतैर्दिव्यैर्यो भोगविस्तरैः । न तृप्यति कथं तस्य तृप्तिर्मानुषभोगकैः ॥६०॥
तृप्तिं न तृणकोटिस्थैरवश्यायकणैर्वने । व्रजतीन्धनविक्रायः केवलं श्रममृच्छति ॥६१॥
तथाऽप्युत्तमया राज्यश्रिया तृप्तिमनाप्तवान् । सौदासः कुत्सितं कर्म तथाविधमसेवत ॥६२॥
गङ्गायां पूरयुक्तायां प्रविष्टा मांसलुब्धकाः । काका हस्तिशवं मृत्युं प्राप्नुवन्ति महोदधौ ॥६३॥
मोहपङ्कनिमग्नेयं [3]प्रजामण्डूकिकात्र ते । लोभाहिनाऽतितीव्रेण नरकच्छिद्रमापिता[4] ॥६४॥
एवं चिन्तयतस्तस्य भरतस्य विरागिणः । विघ्नेन बहवो यान्ति दिवसाः शान्तचेतसः ॥६५॥
व्रतमप्राप्नुवञ्जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । पञ्जरस्थो यथा सिंहः स समर्थोऽपि सीदति ॥६६॥
प्रशान्तहृदयोऽत्यर्थंकेकयायाचनादसौ । ध्रियते हलिचक्रिभ्यां सस्नेहाभ्यां समुत्कटम् ॥६७॥
उच्यते च यथा भ्रातस्त्वमेव पृथिवीतले । सकले स्थापितो राजा पित्रा दीक्षाभिलाषिणा ॥६८॥
सोऽभिषिक्तो भवान्नाथो गुरुणा विष्टपे न[5] नु । अस्माकमपि हि स्वामी कुरु लोकस्य पालनम् ॥६९॥
इदं सुदर्शनं चक्रमिमे विद्याधराधिपाः । तवाज्ञासाधनं पत्नीमिव भुंक्ष्व वसुन्धराम् ॥७०॥
धारयामि स्वयं छत्रं शशाङ्कधवलं तव । शत्रुघ्नश्चामरं धत्ते मन्त्री लक्ष्मणसुन्दरः ॥७१॥

विशेषता नहीं दिखाई देती ॥५७॥ जिनका शरीर अपवित्र वस्तुओंसे तन्मय है तथा जो केवल चमड़ेसे आच्छादित हैं ऐसी स्त्रियोंसे उनकी सेवा करने वाले पुरुषको क्या सुख होता है? ॥५८॥ मूर्खमना प्राणी मलभृत घटके समान अत्यन्त लज्जाकारी संयोगको प्राप्त हो मुझे सुख हुआ है ऐसा मानता है ॥५९॥ अरे! जो इच्छामात्रसे उत्पन्न होनेवाले स्वर्गसम्बन्धी भोगोंके समूहसे तृप्त नहीं होता उसे मनुष्य पर्यायके तुच्छ भोगोंसे कैसे तृप्ति हो सकती है? ॥६०॥ ईन्धन बेचने वाला मनुष्य वनमें तृणोंके अग्रभाग पर स्थित ओसके कणोंसे तृप्तिको प्राप्त नहीं होता केवल श्रमको ही प्राप्त होता है ॥६१॥ उस सौदासको तो देखो जो राजलक्ष्मीसे तृप्त नहीं हुआ किन्तु इसके विपरीत जिसने नरमांस-भक्षण जैसा अयोग्य कार्य किया ॥६२॥ जिस प्रकार प्रवाह-युक्त गङ्गामें मांसके लोभी काक, मृत हस्तीके शवको चूथते हुए तृप्त नहीं होते और अन्तमें महासागरमें प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार संसारके प्राणी विषयोंमें तृप्त न हो अन्तमें भवसागरमें डूबते हैं ॥६३॥ हे आत्मन्! मोहरूपी कीचड़में फँसी यह तेरी प्रजारूपी मेंडकी लोभरूपी तीव्र सर्पके द्वारा ग्रस्त हो आज नरक रूपी बिलमें ले जाई जा रही है ॥६४॥ इस प्रकार विचार करते हुए उस शान्त चित्तके धारक विरागी भरतकी दीक्षामें विघ्न करने वाले बहुतसे दिन व्यतीत हो गये ॥६५॥ जिस प्रकार समर्थ होने पर भी पिंजड़ेमें स्थित सिंह दुखी होता है उसी प्रकार भरत दीक्षाधारण करनेमें समर्थ होता हुआ भी सर्व दुःखको नष्ट करने वाले जिनेन्द्रव्रतको नहीं प्राप्त होता हुआ दुःखी हो रहा था ॥६६॥ भरतकी माता केकयाने उसे रोकनेके लिए रामलक्ष्मणसे याचना की सो अत्यधिक स्नेहके धारक रामलक्ष्मणने प्रशान्तचित्त भरतको रोक कर इस प्रकार समझाया कि हे भाई! दीक्षाके अभिलाषी पिताने तुम्हींको सकल पृथिवीतलका राजा स्थापित किया था ॥६७–६८॥ यतश्च पिताने जगत्का शासन करनेके लिए निश्चयसे आपका अभिषेक किया था इसलिए हमलोगोंके भी आप ही स्वामी हो। अतः आप ही लोकका पालन कीजिये ॥६९॥ यह सुदर्शनचक्र और ये विद्याधर राजा तुम्हारी आज्ञाके साधन हैं इसलिए पत्नीके समान इस वसुधाका उपभोग करो ॥७०॥ मैं स्वयं तुम्हारे ऊपर

१. द्वितीयं। २. शोकः म०। ३. प्रजां मण्डूकिकायते म०। ४. मायिना म०। दायिना ख०। नरकच्छिद्रनायिना ब०, क०। ५. विष्टपेव न तु म०।

इत्युक्तोऽपि न चेद्वाक्यं ममेदं कुरुते भवान् । यास्यामोऽद्य ततो भूयस्तदेव मृगवद्वनम् ॥७२॥
जित्वा राक्षसवंशस्य तिलकं रावणाभिधम् । भवद्दर्शनसौख्यस्य तृषिता वयमागताः ॥७३॥
निःप्रत्यूहमिदं राज्यं भुज्यतां तावदायतम् । अस्माभिः सहितः पश्चात्प्रवेक्ष्यसि तपोवनम् ॥७४॥
एवं भाषितुमासक्तमेनं पद्मं सुचेतसम् । जगाद भरतोऽत्यन्तविषयासक्तिनिःस्पृहः ॥७५॥
इच्छामि देव सन्त्यक्तुमेतां राज्यश्रियं द्रुतम्[1] । त्यक्त्वा यां सत्तपः कृत्वा वीरा मोक्षं समाश्रिताः ॥७६॥
सदा नरेन्द्र कामार्थौ चञ्चलौ दुःखसङ्गतौ । विद्वेष्यौ सूरिलोकस्य सुमूढजनसेवितौ ॥७७॥
अशाश्वतेषु भोगेषु सुरलोकसमेष्वपि । हलायुध न मे तृष्णा समुद्रौपम्यवत्स्वपि ॥७८॥
संसारसागरं घोरं मृत्युपातालसङ्कुलम् । जन्मकल्लोलसङ्कीर्णं रत्यरत्युरुवीचिकम् ॥७९॥
रागद्वेषमहाग्राहं नानादुःखभयङ्करम् । व्रतपोतं समारुह्य वाञ्छामि तरितुं नृप ॥८०॥
पुनःपुनरहं राजन् भ्राम्यन् विविधयोनिषु । गर्भवासादिषु श्रान्तो दुःसहं दुःखमाप्तवान् ॥८१॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य बाष्पव्याकुललोचनाः । नृपा विस्मयमापन्ना जगदुः कम्पितस्वनाः ॥८२॥
वचनं कुरु तातीयं लोकं पालय पार्थिव । यदि तेऽक्षमता लक्ष्मीर्मुनिः पश्चाद् भविष्यसि ॥८३॥
उवाच भरतो बाढं तातस्योक्तं मया कृतम् । चिरं प्रपालितो लोको मानितो भोगविस्तरः ॥८४॥
दत्तं च परमं दानं साधुवर्गः सुतर्पितः । तातेन यत्कृतं कर्तुं तदपीच्छामि साम्प्रतम् ॥८५॥
अनुमोदनमद्यैव मह्यं किं न प्रयच्छत । श्लाघ्ये वस्तुनि सम्बन्धः कर्तव्यो हि यथा तथा ॥८६॥

चन्द्रमाके समान सफेद छत्र धारण करता हूँ, शत्रुघ्न चमर धारण करता है और लक्ष्मण तेरा मन्त्री है ॥७१॥ इस प्रकार कहने पर भी यदि तुम मेरी बात नहीं मानते हो तो मैं फिर उसी तरह हरिणकी नाईं आज वनमें चला जाऊँगा ॥७२॥ राक्षस वंशके तिलक रावणको जीत कर हम लोग आपके दर्शन सम्बन्धी सुखकी तृष्णासे ही यहाँ आये हैं ॥७३॥ अभी तुम इस निर्विघ्न विशालराज्यका उपभोग करो पश्चात् हमारे साथ तपोवनमें प्रवेश करना ॥७४॥ विषय सम्बन्धी आसक्तिसे जिसका हृदय अत्यन्त निःस्पृह हो गया था ऐसे भरतने पूर्वोक्त प्रकार कथन करनेमें तत्पर एवं उत्तम हृदयके धारक रामसे इस तरह कहा कि ॥७५॥ हे देव ! जिसे छोड़कर तथा उत्तम तप कर वीर मनुष्य मोक्षको प्राप्त हुए हैं मैं उस राज्यलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करना चाहता हूँ ॥७६॥ हे राजन् ! ये काम और अर्थ चञ्चल हैं, दुःखसे प्राप्त होते हैं, अत्यन्त मूर्ख जनोंके द्वारा सेवित हैं तथा विद्वज्जनोंके द्वेषके पात्र हैं ॥७७॥ हे हलायुध ! ये नश्वर भोग स्वर्ग लोकके समान हों अथवा समुद्र की उपमाको धारण करनेवाले हों तो भी मेरी इनमें तृष्णा नहीं है ॥७८॥ हे राजन् ! जो अत्यन्त भयंकर है, मृत्यु रूपी पाताल तक व्याप्त है, जन्म रूपी कल्लोलोंसे युक्त है, जिसमें रति और अरति रूपी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं, जो राग-द्वेष रूपी बड़े-बड़े मगर-मच्छोंसे सहित है एवं नाना प्रकारके दुःखोंसे भयंकर है, ऐसे इस संसार रूपी सागरको मैं व्रत रूपी जहाज पर आरूढ़ हो तैरना चाहता हूँ ॥७९-८०॥ हे राजन् ! नाना योनियोंमें बार-बार भ्रमण करता हुआ मैं गर्भवासादिके दुःसह दुःख प्राप्त कर थक गया हूँ ॥८१॥

इस प्रकार भरतके शब्द सुन जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो रहे थे, जो आश्चर्यको प्राप्त थे तथा जिनके स्वर कम्पित थे ऐसे राजा बोले कि हे राजन् ! पिताका वचन अङ्गीकृत करो और लोकका पालन करो । यदि लक्ष्मी तुम्हें इष्ट नहीं है तो कुछ समय पीछे मुनि हो जाना ॥८२-८३॥ इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैंने पिताके वचनका अच्छी तरह पालन किया है, चिरकाल तक लोककी रक्षा की है, भोगसमूहका सम्मान किया है ॥८४॥ परम दान दिया है, साधुओंके समूहको संतुष्ट किया है, अब जो कार्य पिताने किया था वही करना चाहता हूँ ॥८५॥ आप लोग मेरे लिए आज ही अनुमति क्यों नहीं देते हैं ? यथार्थमें उत्तम कार्यके साथ तो जिस तरह

१. संगती म० ।

जित्वा शत्रुगणं संख्ये द्विपसङ्घातभीषणे । नन्दाद्यैरिव या लक्ष्मीर्भवद्भिः समुपार्जिता ॥८७॥
महत्यपि न सा तृप्तिं ममोत्पादयितुं क्षमा । गङ्गेव वारिनाथस्य तत्त्वमार्गे घटे ततः ॥८८॥
इत्युक्त्वात्यन्तसंविग्नस्तानापृच्छ्य ससम्भ्रमः । सिंहासनात् समुत्तस्थौ भरतो भरतो[1] यथा ॥८९॥
मनोहरगतिश्चैव यावद् गन्तुं समुद्यतः । नारायणेन संरुद्धस्तावत् सस्नेहसम्भ्रमम् ॥९०॥
करेणोद्नयंश्चैव सौमित्रिकरपल्लवम् । यावदाश्वासयत्यश्रुदुर्दिनास्यां च मातरम् ॥९१॥
तावद् रामाज्ञया प्राप्ताः स्त्रियो लक्ष्मीसुविभ्रमाः । रुरुदुर्भरतं वातकम्पितोत्पललोचनाः ॥९२॥
एतस्मिन्नन्तरे सीता स्वयं श्रीरिव देहिनी । उर्वी भानुमती देवी विशल्या सुन्दरी तथा ॥९३॥
ऐन्द्री रत्नवती लक्ष्मीः सार्था गुणवतीश्रुतिः । कान्ता बन्धुमती भद्रा कौबेरी नलकूबरा ॥९४॥
तथा कल्याणमालासौ चन्द्रिणी मानसोत्सवा । मनोरमा प्रियानन्दा चन्द्रकान्ता कलावती ॥९५॥
रत्नस्थली सुरवती श्रीकान्ता गुणसागरा । पद्मावती तथाऽन्याश्च स्त्रियो दुःशक्यवर्णनाः ॥९६॥
मनःप्रहरणाकारा दिव्यवस्त्रविभूषणाः । समुद्भवशुभक्षेत्रभूमयः स्नेहगोत्रजाः ॥९७॥
कलासमस्तसन्दोहफलदर्शनतत्पराः । वृत्ताः[2] समन्ततश्चारुचेतसो लोभनोद्यताः ॥९८॥
सर्वादरेण भरतं जगदुर्हारिनिःस्वनाः । वातोद्धूतनवोदारपद्मिनीखण्डकान्तयः[3] ॥९९॥
देवर क्रियतामेकः प्रसादोऽस्माकमुन्नतः । सेवामहे जलक्रीडां भवता सह सुन्दरीम् ॥१००॥
त्यज्यतामपरा[4] चिन्ता[5] नाथ मानसखेदिनी । भ्रातृजायासमूहस्य क्रियतामस्य सुप्रियम् ॥१०१॥

बने उसी तरह सम्बन्ध जोड़ना चाहिए ॥८६॥ हाथियोंकी भीड़से भयङ्कर युद्धमें शत्रुसमूहको जीतकर नन्द आदि पूर्व बलभद्र और नारायणोंके समान आपने जो लक्ष्मी उपार्जित की है वह यद्यपि बहुत बड़ी है तथापि मुझे संतोष उत्पन्न करनेके लिए समर्थ नहीं है। जिस प्रकार गङ्गा नदी समुद्र को तृप्त करनेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी मुझे तृप्त करनेमें समर्थ नहीं है, इसलिए अब तो मैं यथार्थ मार्गमें ही प्रवृत्त होता हूँ ॥८७-८८॥ इस प्रकार कहकर तथा उनसे पूछकर तीव्र संवेगसे युक्त भरत संभ्रमके साथ भरत चक्रवर्तीकी नाईं शीघ्र ही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ ॥८९॥ अथानन्तर मनोहर गतिको धारण करनेवाला भरत ज्यों ही वनको जानेके लिए उद्यत हुआ त्योंही लक्ष्मणने स्नेह और संभ्रमके साथ उसे रोक लिया अर्थात् उसका हाथ पकड़ लिया ॥९०॥ अपने हाथसे लक्ष्मणके करपल्लवको अलग करता हुआ भरत जब तक अविरल अश्रुवर्षा करनेवाली माताको समझाता है तब तक रामकी आज्ञासे, जिनकी लक्ष्मीके समान चेष्टाएँ थीं तथा जिनके नेत्र वायुसे कम्पित नील कमलके समान थे ऐसी भरतकी स्त्रियाँ आकर उसके प्रति रोदन करने लगीं ॥९१-९२॥ इसी बीचमें शरीरधारिणी साक्षात् लक्ष्मीके समान सीता, उर्वी, भानुमती, विशल्या, सुन्दरी, ऐन्द्री, रत्नवती, लक्ष्मी, सार्थक नामको धारण करने वाली गुणवती, कान्ता, बन्धुमती, भद्रा, कौबेरी, नलकूबरा, कल्याणमाला, चन्द्रिणी, मानसोत्सवा, मनोरमा, प्रियानन्दा, चन्द्रकान्ता, कलावती, रत्नस्थली, सुरवती, श्रीकान्ता, गुणसागरा, पद्मावती, तथा जिनका वर्णन करना अशक्य है ऐसी दोनों भाइयोंकी अन्य अनेक स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँचीं ॥९३-९६॥ उन सब स्त्रियोंका आकार मनको हरण करनेवाला था, वे सब दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सहित थीं, अनेक शुभभावोंके उत्पन्न होनेकी क्षेत्र थीं, स्नेह की वंशज थीं, समस्त कलाओंके समूह एवं फलके दिखानेमें तत्पर थीं, घेरकर सब ओर खड़ी थीं, सुन्दर चित्तकी धारक थीं, लुभावनेमें उद्यत थीं, मनोहर शब्दोंसे युक्त थीं, तथा वायुसे कम्पित कमलिनियोंके समूहके समान कान्तिकी धारक थीं। उन सबने बड़े आदरके साथ भरतसे कहा ॥९७-९९॥ कि देवर ! हम लोगों पर एक बड़ी प्रसन्नता कीजिए। हम लोग आपके साथ मनोहर जलक्रीड़ा करना चाहती हैं ॥१००॥ हे नाथ ! मनको खिन्न करनेवाली अन्य चिन्ता छोड़िए, और अपनी

१. भरत-चक्रवर्तीव । २. वृताः म० । ३. वातोद्भूत -म० । ४. -मपरां म० । ५. चिन्तां म० ।

तादृशीभिस्तथाप्यस्य सक्तस्य न मानसम् । जगाम विक्रियां काञ्चिद् दाक्षिण्यं केवलं श्रितः ॥१०२॥
सम्प्राप्तप्रसरास्तस्मात्ततः शङ्काविवर्जिताः । नार्यस्ता भरतीयाश्च[1] प्रापुः परमसम्मदम् ॥१०३॥
परिवार्य ततस्तास्तं समस्ताश्चारुविभ्रमाः । अवतीर्णा महारम्यं सरः सरसिजेक्षणाः ॥१०४॥
क्रीडानिस्पृहचित्तोऽसौ तत्त्वार्थगतमानसः । योषितामनुरोधेन जलसङ्गमशिश्रियत् ॥१०५॥
देवीजनसमाकीर्णो विनयेन समन्वितः । विरराज सरः प्राप्तः करी यूथपतिर्यथा ॥१०६॥
स्निग्धैः सुगन्धिभिः कान्तैस्त्रिभिरुद्वर्तनैरसौ । उद्वर्तितः पृथुच्छायापहृतरञ्जितवारिभिः ॥१०७॥
किञ्चित्संक्रीड्य सच्चेष्टः सुस्नातः सुमनोहरः । सरसः केकयीसुनुरुत्तीर्णः परमेश्वरः ॥१०८॥
विहिताईन्महापूजः पद्मनीलोत्पलादिभिः । सादरेणाङ्गनौघेन स समग्रमलङ्कृतः ॥१०९॥
एतस्मिन्नन्तरे योऽसौ महाजलधराकृतिः । त्रिलोकमण्डनाभिख्यः ख्यातो गजपतिः शुभः ॥११०॥
आलानं स समाभिद्य महाभैरवनिःस्वनः । निःससार निजावासाद् दानदुर्दिनिताम्बरः ॥१११॥
घनाघनघनोदारगम्भीरं तस्य गर्जितम् । श्रुत्वाऽयोध्यापुरी जाता[2] समुन्मत्तजनेव सा ॥११२॥
जनितोदारसङ्घट्टैर्भयस्तब्धश्रुतेक्षणैः । राजमार्गान्तराः पूर्णाः सायासाधोरणैर्गजैः ॥११३॥
यथानुकूलमाश्रित्य दिशो दश महाभयाः । नेशुस्ते मदनिर्मुक्ता गृहीतययुरंहसः ॥११४॥
हेमरत्नमहाकूटं गोपुरं गिरिसन्निभम् । विध्वस्य भरतं तेन प्रवृत्तो वारणोत्तमः ॥११५॥

भौजाइयोंके समूहकी यह प्रिय प्रार्थना स्वीकृत कीजिए ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि उन सब स्त्रियोंने भरतको घेर लिया था फिर भी उसका चित्त रञ्चमात्र भी विकारको प्राप्त नहीं हुआ । केवल दाक्षिण्य वश उसने उनकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली ॥१०२॥

तदनन्तर आज्ञा प्राप्तकर राम, लक्ष्मण और भरतकी स्त्रियाँ शङ्कारहित हो परम आनन्दको प्राप्त हुईं ॥१०३॥ तत्पश्चात् सुन्दर चेष्टाओंसे युक्त वे कमललोचना स्त्रियाँ भरतको घेरकर महारमणीय सरोवरमें उतरीं ॥१०४॥ जिसका चित्त तत्त्वके चिन्तन करनेमें लगा हुआ था तथा क्रीड़ासे निःस्पृह था ऐसा भरत केवल स्त्रियोंके अनुरोधसे ही जलके समागमको प्राप्त हुआ था अर्थात् जलमें उतरा था ॥१०५॥ स्त्रियोंसे घिरा हुआ विनयी भरत, सरोवरमें पहुँचकर ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो झुण्डका स्वामी गजराज ही हो ॥१०६॥ अपनी विशाल कान्तिसे जलको रङ्गीन करनेवाले, चिकनाईसे युक्त, सुन्दर तथा सुगन्धित तीन उपटन उस भरतकी देहपर लगाये गये थे ॥१०७॥ उत्तम चेष्टाओंसे युक्त एवं अतिशय मनोहर राजा भरत, कुछ क्रीड़ाकर तथा अच्छी तरह स्नानकर सरोवरसे बाहर निकल आये ॥१०८॥ तदनन्तर कमल और नीलोत्पल आदिसे जिसने अर्हन्त भगवान्‌की महापूजा की थी ऐसा भरत उन आदरपूर्ण स्त्रियोंके समूहसे अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१०९॥

इसी बीचमें महामेघके समान त्रिलोकमंडन नामका जो प्रसिद्ध गजराज था वह खम्भेको तोड़कर अपने निवासगृहसे बाहर निकल आया । उस समय वह महाभयंकर शब्द कर रहा था तथा मद जलसे आकाशको वर्षायुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ मेघकी सघन विशाल गर्जनाके समान उसकी गर्जना सुनकर समस्त अयोध्यापुरी ऐसी हो गई मानो उसके समस्त लोग उन्मत्त ही हो गये हों ॥११२॥ जिन्होंने भीड़के कारण धक्कामुक्की कर रक्खी थी, तथा जिनके कान और नेत्र भयसे स्थिर थे ऐसे इधर-उधर दौड़नेका श्रम उठाने वाले महावतोंसे युक्त हाथियोंसे नगरके राजमार्ग भर गये थे ॥११३॥ घोड़ोंके वेगको ग्रहण करनेवाले वे महाभयदायी मदोन्मत्त हाथी इच्छानुकूल दशों दिशाओंमें बिखर गये—फैल गये ॥११४॥ जिसके महाशिखर सुवर्ण तथा रत्नमय थे ऐसे पर्वतके समान विशाल गोपुरको तोड़कर वह त्रिलोकमण्डन हाथी जिस

१. भारतीयाश्च म० । २. याता म० ।

त्रासाकुलेक्षणा नार्यो महासम्भ्रमसङ्गताः। शिश्रियुर्भरतं त्राणं भानुं दीधितयो तथा ॥११६॥
भरताभिमुखं यान्तं जनो वीक्ष्य गजोत्तमम्। हाहेति परमं तारं विलापं परितोऽकरोत् ॥११७॥
विह्वला मातरश्चास्य महोद्वेगसमागताः। बभूवुः परमाशङ्काः पुत्रस्नेहपरायणाः ॥११८॥
तावत् परिकरं बद्ध्वा पद्माभो लक्ष्मणस्तथा। उपसर्पति सच्छद्ममहाविज्ञानसङ्गतः ॥११९॥
नभश्चरमहामात्रान् समुत्सार्य भयार्दितान्। बलाद् गृहीतुमुद्युक्तो तमिभेन्द्रमलं चलम् ॥१२०॥
सरोषमुक्तनिस्वानो दुःप्रेक्ष्यः प्रबलो जवी। नागपाशैरपि गजः संरोद्धुं न स शक्यते ॥१२१॥
ततोऽङ्गनाजनान्तस्थं श्रीमन्तं कमलेक्षणम्। भरतं वीक्ष्य नागोऽसौ व्यतीतं भवमस्मरत्[1] ॥१२२॥
सञ्जातोद्वेगभारश्च कृत्वा प्रशिथिलं करम्। भरतस्याग्रतो नागस्तस्थौ विनयसङ्गतः ॥१२३॥
जगाद भरतश्चैनं परं मधुरया गिरा। अहोऽनेकपनाथ त्वं रोषितः केन हेतुना ॥१२४॥
निशम्य वचनं तस्य संज्ञां सम्प्राप्य वारणः। अत्यर्थंशान्तचेतस्को निश्चलः सौम्यदर्शनः ॥१२५॥
स्थितमग्रे वरस्त्रीणां स्निग्धं भरतमीक्षते। पुरे[2] वाप्सरसां वृन्दे स्वर्गे गीर्वाणसत्तमम् ॥१२६॥
परिज्ञानी ततो नागश्चिन्तामेवं समाश्रितः। मुक्तात्याऽऽयतनिःश्वासो विकारपरिवर्जितः ॥१२७॥
एषोऽसौ यो महानासीत् कल्पे ब्रह्मोत्तराभिधे। देवः शशाङ्कशुभ्रश्रीर्वयस्यः परमो मम ॥१२८॥
च्युतोऽऽयं पुण्यशेषेण जातः पुरुषसत्तमः। कष्टं निन्दितकर्माहं तिर्यग्योनिमुपागतः ॥१२९॥
कार्याकार्यविवेकेन सुदूरं परिवर्जितम्[3]। कथं प्राप्तोऽस्मि हस्तित्वं धिगेतदिति गर्हितम् ॥१३०॥

ओर भरत विद्यमान था उसी ओर गया ॥११५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र भयसे व्याकुल थे और जो बहुत भारी बेचैनीसे युक्त थीं ऐसी समस्त स्त्रियाँ रक्षाके निमित्त भरतके समीप उस प्रकार पहुँची जिस प्रकार कि किरणें सूर्यके समीप पहुँचती हैं ॥११६॥ उस गजराजको भरतके सन्मुख जाता देख, लोग चारों ओर 'हाय हाय' इसप्रकार जोरसे विलाप करने लगे ॥११७॥ पुत्रस्नेहमें तत्पर माताएँ भी महा उद्वेगसे सहित, परम शंकासे युक्त तथा अत्यन्त विह्वल हो उठीं ॥११८॥ उसी समय छल तथा महाविज्ञानसे युक्त राम और लक्ष्मण, कमर कसकर भयसे पीडित विद्याधर महावतोंको दूर हटा उस अतिशय चपल गजराजको बलपूर्वक पकड़नेके लिए उद्यत हुए ॥११९-१२०॥ वह गजराज क्रोधपूर्वक उच्च चिंघाड़ कर रहा था, दुर्दर्शनीय था, प्रबल था, वेगशाली था और नागपाशोंके द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था ॥१२१॥

तदनन्तर स्त्रीजनोंके अन्तमें स्थित श्रीमान् कमललोचन भरतको देखकर उस हाथीको अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया ॥१२२॥ जिसे बहुत भारी उद्वेग उत्पन्न हुआ था ऐसा वह हाथी सूंडको शिथिलकर भरतके आगे विनयसे बैठ गया ॥१२३॥ भरतने मधुर वाणीमें उससे कहा कि अहो गजराज ! तुम किस कारण रोषको प्राप्त हुए हो ॥१२४॥ भरतके उक्त वचन सुन चैतन्यको प्राप्त हुआ गजराज अत्यन्त शान्तचित्त हो गया, उसकी चञ्चलता जाती रही और उसका दर्शन अत्यन्त सौम्य हो गया ॥१२५॥ उत्तमोत्तम स्त्रियोंके आगे स्थित स्नेह पूर्ण भरतको वह हाथी इस प्रकार देख रहा था मानो स्वर्गमें अप्सराओंके समूहमें बैठे हुए इन्द्रको ही देख रहा हो ॥१२६॥

तदनन्तर जो परिज्ञानी था, अत्यन्त दीर्घ उच्छ्वास छोड़ रहा था ऐसा वह विकाररहित हाथी इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२७॥ वह चिन्ता करने लगा कि यह वही है जो ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें चन्द्रमाके समान शुक्ल शोभाको धारण करनेवाला मेरा परम मित्र देव था ॥१२८॥ यह वहाँसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके कारण उत्तम पुरुष हुआ और खेद है कि मैं निन्दित कार्य करता हुआ इस तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ ॥१२९॥ मैं कार्य-अकार्यके विवेकसे रहित

१. -मस्मरन् म०। २. वा सरसां म०। ३. परिवर्तितम् म०।

परितप्येऽधुना व्यर्थं किमिदं स्मृतिसङ्गतः । करोमि कर्म तद्येन लभ्यते हितमात्मने ॥१३१॥
उद्वेगकरणं नात्र कारणं दुःखमोचने । तस्मादुपायमेवाहं घटे सर्वादरान्वितः ॥१३२॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्मृतातीतभवो गजेन्द्रो भवे तु[1] वैराग्यमलं प्रपन्नः ।
दुरीहितैकान्तपराङ्मुखात्मा स्थितः सुकर्मार्जनचिन्तनाग्रः ॥१३३॥

उपजातिवृत्तम्

कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं सन्तापमुग्रं जनयन्ति पश्चात् ।
तस्माज्जनाः कर्म शुभं कुरुध्वं रवौ सति प्रस्खलनं न युक्तम् ॥१३४॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे त्रिभुवनालङ्कारक्षोभाभिधानं नाम त्र्यशीतितमं पर्व ।

इस हस्ती पर्यायको कैसे प्राप्त हो गया ? अहो इस पापपूर्ण चेष्टाको धिक्कार हो ।।१३०।। अब इस समय पूर्ण भवकी स्मृतिको प्राप्त हो व्यर्थ ही क्यों संताप करूँ, अब तो वह कार्य करता हूँ कि जिससे आत्महितकी प्राप्ति हो ।।१३१।। उद्वेग करना दुःखके छूटनेका कारण नहीं है इसलिए मैं पूर्ण आदरके साथ वही उपाय करता हूँ जो दुःखके छूटनेका कारण है ॥१३२।। इसप्रकार जिसे पूर्वभवका स्मरण हो रहा था, जो संसारके विषयमें अत्यधिक वैराग्यको प्राप्त हुआ था, जिसकी आत्मा पापरूप चेष्टासे अत्यन्त विमुख थी तथा जो पुण्य कर्मके संचय करनेकी चिन्तासे युक्त था ऐसा वह त्रिलोकमण्डन हाथी भरतके आगे शान्तिसे बैठ गया ॥१३३।। गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पूर्वभवमें किये हुए अशुभकर्म पीछे चलकर उग्र संताप उत्पन्न करते हैं इसलिए हे भव्यजनो ! शुभ कार्य करो क्योंकि सूर्यके रहते हुए स्खलित होना उचित नहीं है ॥१३४।।

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें त्रिलोकमंडन हाथीके क्षुभित होनेका वर्णन करनेवाला तेरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ।।८३।।

---

१. भवेत्तु म० ।

चतुरशीतितमं पर्व

तथा विचिन्तयन्नेष विनयी द्विपसत्तमः । पद्माभचक्रपाणिभ्यां वहन्नुर्वो विस्मयं परम् ॥१॥
किञ्चिदाशङ्कितात्माभ्यामुपसृत्य शनैः शनैः । महाकालघनाकारो जगृहे भाषितप्रियः ॥२॥
प्राप्य नारायणादाज्ञामन्यैरुत्तमसम्मदैः । सर्वालङ्कारयोगेन परां पूजां च लम्भितः ॥३॥
प्रशान्ते द्विरदश्रेष्ठे नगर्याकुलतोज्झिता । घनाघनपटोन्मुक्ता रराज शरदा समम् ॥४॥
विद्याधरजनाधीशैश्चण्डा यस्योत्तमा गतिः । रोद्धुं नातिबलैः शक्या नाकसद्भिरिव वा ॥५॥
सोऽयं कैलासकम्पस्य रावसेन्द्रस्य वाहनः । [1]भूतपूर्वकथं रुद्धः सीरिणा लक्ष्मणेन च ॥६॥
तादृशीं विकृतिं गत्वा यदयं शममागतः । तदस्य पूर्वलोकस्य पुण्यं दीर्घायुरावहम् ॥७॥
नगर्यामिति सर्वस्यां परं विस्मयमीयुषः । लोकस्य संकथा जाता विधूतकरमस्तका ॥८॥
ततः सीताविशल्याभ्यां समं तं वारणेश्वरम् । आरुह्य सुमहाभूतिभरतः प्रस्थितो गृहम् ॥९॥
महालङ्कारधारिण्यः शेषा अपि वराङ्गनाः । विचित्रवाहनारूढा भरतं पर्यवेष्टयन् ॥१०॥
तुरङ्गरथमारूढो विभूत्या परयाऽन्वितः । शत्रुघ्नोऽस्य महातेजाः प्रययावग्रतः स्थितः ॥११॥
कम्लाम्लातकभेर्यादिमहावादित्रनिस्वनः । सञ्जातः शङ्खशब्देन मिश्रः कोलाहलान्वितः ॥१२॥
कुसुमामोदमुद्यानं त्यक्त्वा ते नन्दनोपमम् । त्रिदशा इव संप्रापुरालयं सुमनोहरम् ॥१३॥
उत्तीर्य द्विरदाद् राजा प्रविश्याऽऽहारमण्डपम् । साधून् सन्तर्प्य विधिवत् प्रणम्य च विशुद्धधीः ॥१४॥

अथानन्तर जो इस प्रकार विचार कर रहा था जिसका आकार महाश्याम मेघके समान था तथा जिसके प्रति मधुर शब्दोंका उच्चारण किया गया था ऐसे उस हाथीको परम आश्चर्य धारण करनेवाले तथा कुछ कुछ शङ्कित चित्तवाले राम लक्ष्मणने धीरे धीरे पास जाकर पकड़ लिया ॥१-२॥ लक्ष्मणकी आज्ञा पाकर उत्तम हर्षसे युक्त अन्य लोगोंने सर्व प्रकारसे अलंकार पहिनाकर उस हाथीका बहुत भारी सत्कार किया ॥३॥ उस गजराजके शान्त होनेपर जिसकी आकुलता छूट गई थी ऐसी वह नगरी मेघरूपी पटसे रहित हो शरद् ऋतुके समान सुशोभित हो रही थी ॥४॥ जिसकी अत्यन्त प्रचण्ड गति विद्याधर राजाओं तथा अत्यन्त बलवान् देवोंके द्वारा भी नहीं रोकी जा सकती थी ॥५॥ ऐसा यह कैलासको कम्पित करनेवाले रावणका भूतपूर्व वाहन राम और बलभद्रके द्वारा कैसे रोक लिया गया ? ॥६॥ उस प्रकारकी विकृतिको प्राप्त होकर जो यह शान्त भावको प्राप्त हुआ है सो यह उसकी दीर्घायुका कारण पूर्व पर्यायका पुण्य ही समझना चाहिए ॥७॥ इस तरह समस्त नगरीमें परम आश्चर्यको प्राप्त हुए लोगोंमें हाथ तथा मस्तकको हिलानेवाली चर्चा हो रही थी ॥८॥ तदनन्तर सीता और विशल्याके साथ उस गजराज पर सवार हो महाविभूतिके धारक भरतने घरकी ओर प्रस्थान किया ॥९॥ जो उत्तमोत्तम अलंकार धारण कर रही थीं तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ थीं ऐसी शेष स्त्रियाँ भी भरतको घेरे हुए थीं ॥१०॥ घोड़ोंके रथपर बैठा परम विभूतिसे युक्त महातेजस्वी शत्रुघ्न, भरतके आगे आगे चल रहा था ॥११॥ शङ्खोंके शब्दसे मिश्रित तथा कोलाहलसे युक्त कम्ला अम्लातक तथा भेरी आदि महावादित्रोंका शब्द हो रहा था ॥१२॥ जिस प्रकार देव नन्दन वनको छोड़कर अपने अत्यन्त मनोहर स्वर्गको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे सब फूलोंकी सुगन्धिसे युक्त कुसुमामोद नामक उद्यानको छोड़कर अपने मनोहर घरको प्राप्त हुए ॥१३॥

तदनन्तर विशुद्ध बुद्धिके धारक राजा भरतने हाथीसे उतरकर आहार मण्डपमें प्रवेशकर

---

१. कृतपूर्वकथं म० ।

मित्रामात्यादिभिः सार्द्धं भ्रातृपत्नीभिरेव च । आहारमकरोत् स्वं स्वं ततो यातो जनः पदम् ॥१५॥
किं क्रुद्धः किं पुनः शान्तः किंस्थितो भरतान्तिके । किमेतदिति लोकस्य कथा नेभे निवर्तते ॥१६॥
मगधेन्द्राथ निःशेषा महामात्राः समागताः । प्रणम्यादरिणोऽवोचन् पद्मं लक्ष्मणसङ्गतम् ॥१७॥
अहोऽद्य वर्तते देव तुरीयो राजदन्तिनः । विमुक्तपूर्वकृत्यस्य श्लथविग्रहधारिणः ॥१८॥
यतः प्रभृति संक्षोभं सम्प्राप्य शममागतः । तत एव समारभ्य वर्तते ध्यानसङ्गतः ॥१९॥
महायतं विनिःश्वस्य मुकुलाक्षोऽतिविह्वलः । चिरं किं किमपि ध्यात्वा हन्ति हस्तेन मेदिनीम् ॥२०॥
बहुप्रियशतैः स्तोत्रैः स्तूयमानोऽपि सन्ततम् । कवलं नैव गृह्णाति न रवं कुरुते श्रुतौ ॥२१॥
विधाय दन्तयोरग्रे करं मीलितलोचनः । लेप्यकर्म गजेन्द्रस्य चिरं याति समुन्नतम् ॥२२॥
किमयं कृत्रिमो दन्ती किंवा सत्यमहाद्विपः । इति तत्र समस्तस्य मतिर्लोकस्य वर्तते ॥२३॥
चाटुवाक्यानुरोधेन गृहीतमपि कृच्छ्रतः । विमुञ्चत्यास्यमप्राप्तं कवलं मृष्टमप्यलम् ॥२४॥
त्रिपदीछेदललितं समुत्सृज्य शुचान्वितः । आसज्य किञ्चिदालाने विनिःश्वस्यावतिष्ठते ॥२५॥
समस्तशास्त्रसत्कारविमलीकृतमानसैः । प्रख्यातैरप्यलं वैद्यैर्भावो नास्योपलक्ष्यते ॥२६॥
रचितं स्वादरेणापि सङ्गीतं सुमनोहरम् । न शृणोति यथापूर्वं क्वापि निक्षिप्तमानसः ॥२७॥
मङ्गलैः कौतुकैर्योगैर्मन्त्रैर्विद्याभिरौषधैः । न प्रत्यापत्तिमायाति लालितोऽपि महादरैः ॥२८॥
न विहारे न निद्रायां न ग्रासे न च वारिणि । कुरुते याचितोऽपीच्छां सुहृन्मानमितो यथा ॥२९॥

और विधिपूर्वक प्रणामकर साधुओंको सन्तुष्ट किया ॥१४॥ तत्पश्चात् मित्रों, मन्त्री आदि परिजनों और भौजाइयोंके साथ भोजन किया। उसके बाद सब लोग अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१५॥ त्रिलोकमण्डन हाथी कुपित क्यों हुआ ? फिर शान्त कैसे हो गया ? भरतके पास क्यों जा बैठा ? यह सब क्या बात है ? इस प्रकार लोगोंकी हस्तिविषयक कथा दूर ही नहीं होती थी ॥ भावार्थ—जहाँ देखो वहीं हाथीके विषयकी चर्चा होती रहती थी ॥१६॥ तदनन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सब महावतोंने आकर तथा आदर पूर्वक प्रणाम कर राम लक्ष्मणसे कहा ॥१७॥ कि हे देव ! अहो ! सब कार्य छोड़े और शिथिल शरीरको धारण किये हुए त्रिलोकमण्डन हाथीको आज चौथा दिन है ॥१८॥ जिस समयसे वह क्षोभको प्राप्त हो शान्त हुआ है उसी समयसे लेकर वह ध्यानमें आरूढ है ॥१९॥ वह आँख बन्दकर अत्यन्त विह्वल होता हुआ बड़ी लम्बी सांस भरता है और चिरकाल तक कुछ कुछ ध्यान करता हुआ सूँडसे पृथ्वीको ताड़ित करता रहता है अर्थात् पृथिवीपर सूँड़ पटकता रहता है ॥२०॥ यद्यपि उसकी निरन्तर सैकड़ों प्रिय स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है तथापि वह न ग्रास ग्रहण करता है और न कानोंमें शब्द ही करता है अर्थात् कुछ भी सुनता नहीं है ॥२१॥ वह नेत्र बन्दकर दाँतोंके अग्रभाग पर सूँड़ रखे हुए ऐसा निश्चल खड़ा है मानो चिरकाल तक स्थिर रहनेवाला हाथीका चित्राम ही है ॥२२॥ क्या यह बनावटी हाथी है ? अथवा सचमुचका महागजराज है इस प्रकार उसके विषयमें लोगोंमें तर्क उत्पन्न होता रहता है ॥२३॥ मधुर वचनोंके अनुरोधसे यदि किसी तरह ग्रास ग्रहण कर भी लेता है तो वह उस मधुर ग्रासको मुख तक पहुँचनेके पहले ही छोड़ देता है ॥२४॥ वह त्रिपदी छेदकी लीलाको छोड़कर शोकसे युक्त होता हुआ किसी खम्भेमें कुछ थोड़ा अटककर सांस भरता हुआ खड़ा है ॥२५॥ समस्त शास्त्रोंके सत्कारसे जिनका मन अत्यन्त निर्मल हो गया है ऐसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्योंके द्वारा भी इसके अभिप्रायका पता नहीं चलता ॥२६॥ जिसका चित्त किसी अन्य पदार्थमें अटक रहा है ऐसा यह हाथी बड़े आदरके साथ रचित अत्यन्त मनोहर संगीतको पहलेके समान नहीं सुनता है ॥२७॥ वह महान् आदरसे प्यार किये जाने पर भी मङ्गल मय कौतुक, योग, मन्त्र, विद्या और औषधि आदिके द्वारा स्वस्थताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥२८॥ वह मानको प्राप्त हुए मित्रके समान याचित होनेपर भी न विहारमें, न निद्रामें,

दुर्ज्ञानान्तरमीदृक्षं रहस्यं परमाद्भुतम् । किमेतदिति नो विद्मो गजस्य मनसि स्थितम् ॥३०॥
न शक्यस्तोषमानेतुं न च लोभं कदाचन । न याति क्रोधमप्येष दन्ती चित्रार्पितो यथा ॥३१॥
सकलस्यास्य राज्यस्य मूलमद्भुतविक्रमः । त्रिलोकभूषणो देव वर्तते करटीदृशः ॥३२॥
इति विज्ञाय देवोऽत्र प्रमाणं कृत्यवस्तुनि । निवेदनक्रियामात्रसारा ह्यस्मादृशां मतिः ॥३३॥

इन्द्रवज्रा

श्रुत्वेहितं नागपतेस्तदीदृक् पूर्वेहितात्यन्तविभिन्नरूपम् ।
जातौ नरेन्द्रावधिकं विचिन्तौ पद्माभलक्ष्मीनिलयौ क्षणेन ॥३४॥

उपजातिः

आलानगेहाद्विसृतः किमर्थं शमं पुनः केन गुणेन यातः[1] ।
वृणोति कस्मादशनं न नाग इत्युद्युतिः पद्मरविर्बभूव ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे त्रिभुवनालङ्कारशमाभिधानं नाम चतुरशीतितमं पर्व ॥८४॥

न ग्रास उठानेमें और न जलमें ही इच्छा करता है ।।२९।। जिसका जानना कठिन है ऐसा यह कौनसा परम अद्भुत रहस्य इस हाथीके मनमें स्थित है यह हम नहीं जानते ।।३०।। यह हाथी न तो सन्तोषको प्राप्त हो सकता है न कभी लोभको प्राप्त होता है और न कभी क्रोधको प्राप्त होता है, यह तो चित्रलिखितके समान खड़ा है ।।३१।। हे देव ! अद्भुत पराक्रमका धारी यह हाथी समस्त राज्यका मूल कारण है । हे देव ! यह त्रिलोकमण्डन ऐसा ही हाथी है ।।३२।। हे देव ! इस प्रकार जानकर अब जो कुछ करना हो सो इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जो कुछ आप जानें सो करें क्योंकि हमारे जैसे लोगोंकी बुद्धि तो निवेदन करना ही जानती है ।।३३।। इस प्रकार गजराजकी पूर्वचेष्टाओंसे अत्यन्त विभिन्न पूर्वोक्त चेष्टाको सुनकर राम लक्ष्मण राजा क्षण भरमें अत्यधिक चिन्तित हो उठे ।।३४।। 'यह हाथी बन्धनके स्थानसे किसलिए बाहर निकला ? फिर किस कारण शान्तिको प्राप्त हो गया ? और किस कारण आहारको स्वीकृत नहीं करता है' इस प्रकार रामरूपी सूर्य अनेक वितर्क करते हुए उदित हुए ।।३५।।

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें त्रिलोकमण्डन हाथीके शान्त होनेका वर्णन करनेवाला चौरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ।।८४।।

---

1. जातः म० ।

पञ्चाशीतितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे राजन् भगवान् देशभूषणः । कुलभूषणयुक्तश्च सम्प्राप्तो मुनिभिः समम् ॥१॥
ययोर्वंशगिरावासीत् प्रतिमां चतुराननाम् । श्रितयोरुपसर्गोऽसौ जनितः पूर्ववैरिणा ॥२॥
पद्मलक्ष्मणवीराभ्यां प्रातिहार्ये कृते ततः । केवलज्ञानमुत्पन्नं लोकालोकावभासनम् ॥३॥
ततस्तुष्टेन तार्क्ष्येण भक्तिस्नेहमुपेयुषा[1] । रत्नास्त्रवाहनान्याभ्यां दत्तानि विविधानि वै ॥४॥
यत्प्रसादान्निरस्त्रत्वं प्राप्तौ संशयितौ रणे । चक्रतुर्विजयं शत्रोर्यतो राज्यमवापतुः ॥५॥
देवासुरस्तुतावेतौ तौ लोकत्रयविश्रुतौ । मुनीन्द्रौ नगरीमुख्यां प्राप्तावुत्तरकोशलाम् ॥६॥
नन्दनप्रतिमे तौ च महेन्द्रोदयनामनि । उद्यानेऽवस्थितौ पूर्वं यथा सञ्जयनन्दनौ ॥७॥
महागणसमाकीर्णौ चन्द्रार्कप्रतिमाविमौ । सम्प्राप्तौ नगरीलोको विवेद परमोदयौ ॥८॥
ततः पद्माभचक्रेशौ भरतारिनिपूदनौ । एते वन्दारवो गन्तुं संयतेन्द्रौ समुद्यताः ॥९॥
आरुह्य वारणानुप्रानुक्त्वा भानौ समुद्गते । जातिस्मरं पुरस्कृत्य त्रिलोकविजयं द्विपम् ॥१०॥
देवा इव प्रदेशं तं प्रस्थिताश्चारुचेतसः । कल्याणपर्वतौ यत्र स्थितौ निर्ग्रन्थसत्तमौ ॥११॥
कैकया कैकयी देवी कोशलेन्द्रात्मजा तथा । सुप्रजाश्चेति विख्यातास्तेषां श्रेणिक मातरः ॥१२॥
जिनशासनसद्भावाः साधुभक्तिपरायणाः । देवीशतसमाकीर्णा देव्याभा गन्तुमुद्यताः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! इसी बीचमें अनेक मुनियोंके साथ-साथ देशभूषण और कुलभूषण केवली अयोध्यामें आये ॥१॥ वे देशभूषण कुलभूषण जिन्हें कि वंशस्थविल पर्वत पर चतुरानन प्रतिमा योगको प्राप्त होने पर उनके पूर्वभवके वैरीने उपसर्ग किया था और वीर राम-लक्ष्मणके द्वारा सेवा किये जाने पर जिन्हें लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥२-३॥ तदनन्तर संतोषको प्राप्त हुए गरुडेन्द्रने भक्ति और स्नेहसे युक्त हो राम-लक्ष्मणके लिए नानाप्रकारके रत्न, अस्त्र और वाहन प्रदान किये थे ॥४॥ निरस्त्र होनेके कारण रणमें संशय अवस्थाको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मणने जिनके प्रसादसे शत्रुको जीता था तथा राज्य प्राप्त किया था ॥५॥ देव और धरणेन्द्र जिनकी स्तुति कर रहे थे तथा तीनों लोकोंमें जिनकी प्रसिद्धि थी ऐसे वे मुनिराज देशभूषण तथा कुलभूषण नगरियोंमें प्रमुख अयोध्या नगरीमें आये ॥६॥ जिसप्रकार पहले संजय और नन्दन नामक मुनिराज आये थे उसी प्रकार आकर वे नन्दनवनके समान महेन्द्रोदय नामक वनमें ठहर गये ॥७॥ वे केवली, मुनियोंके महासंघसे सहित थे, चन्द्रमा और सूर्यके समान देदीप्यमान थे तथा परम अभ्युदयके धारक थे। उनके आते ही नगरीके लोगोंको इनका ज्ञान हो गया ॥८॥ तदनन्तर वन्दना करनेके अभिलाषी राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चारों भाई उन केवलियोंके पास जानेके लिए उद्यत हुए ॥९॥ सूर्योदय होने पर उन्होंने नगरमें सर्वत्र घोषणा कराई। तदनन्तर उन्नत हाथियों पर सवार हो एवं जातिस्मरणसे युक्त त्रिलोकमण्डन हाथीको आगे कर देवोंके समान सुन्दर चित्तके धारक होते हुए वे सब उस स्थानकी ओर चले जहाँ कि कल्याणके पर्वतस्वरूप दोनों निर्ग्रन्थ मुनिराज विराजमान थे ॥१०-११॥ जिनका उत्तम अभिप्राय जिनशासनमें लग रहा था, जो साधुओंकी भक्ति करनेमें तत्पर थीं, सैकड़ों देवियाँ जिनके साथ थीं तथा देवाङ्गनाओंके समान जिनकी आभा थी ऐसी हे श्रेणिक ! उन चारों भाइयोंकी माताएँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रजा (सुप्रभा) भी जानेके लिए उद्यत हुईं

---

१. -मुपेयुषाम् म० ।

मुनिदर्शनतृष्णग्रस्ता सुग्रीवप्रमुखा मुदा । विद्याधराः समायाता महाविभवसङ्गताः ॥१४॥
आतपत्रं मुनेर्दृष्ट्वा सकलोडुपसन्निभम् । उत्तीर्य पद्मनाभाद्या द्विरदेभ्यः समागताः ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटाः [1]स्तुत्वा प्रणम्य च यथाक्रमम् । समर्च्य च मुनींस्तस्थुरात्मयोग्यासु भूमिषु ॥१६॥
शुश्रुवुश्च मुनेर्वाक्यं सुसमाहितचेतसः । संसारकारणध्वंसि धर्मशंसनतत्परम् ॥१७॥
अणुधर्मोऽग्रधर्मश्च श्रेयसः पदवी द्वयी । पारम्पर्येण तत्राद्या परा साक्षात्प्रकीर्तिता ॥१८॥
गृहाश्रमविधिः [2]पूर्वः महाविस्तारसङ्गतः । परो निर्ग्रन्थशूराणां कीर्तितोऽत्यन्तदुःसहः ॥१९॥
अनादिनिधने लोके यत्र लोभेन मोहिताः । जन्तवो दुःखमत्युग्रं प्राप्नुवन्ति कुयोनिषु ॥२०॥
धर्मो नाम परो बन्धुः सोऽयमेको [3]हितो महान् । मूलं यस्य दया शुद्धा फलं वक्तुं न शक्यते ॥२१॥
ईप्सितं[4] जन्तुना सर्वं लभ्यते धर्मसङ्गमात् । धर्मः पूज्यतमो लोके बुधा धर्मेण भाविताः ॥२२॥
दयामूलस्तु यो धर्मो महाकल्याणकारणम् । दग्धधर्मेषु सोऽन्येषु विद्यते नैव जातुचित् ॥२३॥
जिनेन्द्रविहिते सोऽयं मार्गे परमदुर्लभे । सदा सन्निहितो[5] येन त्रैलोक्याग्रमवाप्यते ॥२४॥
पातालेऽसुरनाथाद्या क्षोण्यां चक्रधरादयः । फलं शक्रादयः स्वर्गे परमं यस्य भुञ्जते ॥२५॥
तावत् प्रस्तावमासाद्य साधुं नारायणः स्वयम् । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदिति सङ्गतपाणिकः ॥२६॥
उपमृद्य प्रभो स्तम्भं नागेन्द्रः क्षोभमागतः । प्रशमं हेतुना केन सहसा पुनरागतः ॥२७॥
भगवन्निति संशीतिमप्यपाकर्तुमर्हसि । ततो जगाद वचनं केवली देशभूषणः ॥२८॥

जो मुनिराजके दर्शन करनेकी तृष्णासे ग्रस्त थे तथा महावैभवसे सहित थे ऐसे सुग्रीव आदि विद्याधर भी हर्षपूर्वक वहाँ आये थे ॥१२-१४॥ पूर्णचन्द्रमाके समान मुनिराजका छत्र देखते ही रामचन्द्र आदि हाथियोंसे उतर कर पैदल चलने लगे ॥१५॥ सबने हाथ जोड़कर यथाक्रमसे मुनियोंकी स्तुति की, प्रणाम किया, पूजा की और तदनन्तर सब अपने-अपने योग्य भूमियोंमें बैठ गये ॥१६॥ उन्होंने एकाग्र चित्त होकर संसारके कारणोंको नष्ट करनेवाले एवं धर्मकी प्रशंसा करनेमें तत्पर मुनिराजके वचन सुने ॥१७॥ उन्होंने कहा कि अणुधर्म और पूर्णधर्म—अणुव्रत और महाव्रत ये दोनों मोक्षके मार्ग हैं इनमेंसे अणुधर्म तो परम्परासे मोक्षका कारण है, पर महाधर्म साक्षात् ही मोक्षका कारण कहा गया है ॥१८॥ पहला अणुधर्म महाविस्तारसे सहित है तथा गृहस्थाश्रममें होता है और दूसरा जो महाधर्म है वह अत्यन्त कठिन है तथा महाशूर वीर निर्ग्रन्थ साधुओंके ही होता है ॥१९॥ इस अनादिनिधन संसारमें लोभसे मोहित हुए प्राणी नरक आदि कुयोनियोंमें तीव्र दुःख पाते हैं ॥२०॥ इस संसारमें धर्म ही परम बन्धु है, धर्म ही महाहितकारी है। निर्मल दया जिसकी जड़ है उस धर्मका फल नहीं कहा जा सकता ॥२१॥ धर्मके समागमसे प्राणी समस्त इष्ट वस्तुओंको प्राप्त होता है। लोकमें धर्म अत्यन्त पूज्य है। जो धर्मकी भावनासे सहित हैं, लोकमें वही विद्वान् कहलाते हैं ॥२२॥ जो धर्म दयामूलक है वही महाकल्याणका कारण है। संसारके अन्य अधम धर्मोंमें वह दयामूलक धर्म कभी भी विद्यमान नहीं है अर्थात् उनसे वह भिन्न है ॥२३॥ वह दयामूलकधर्म, जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा प्रणीत परम दुर्लभमार्गमें सदा विद्यमान रहता है जिसके द्वारा तीन लोकका अग्रभाग अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है ॥२४॥ जिस धर्मके उत्तम फलको पातालमें धरणेन्द्र आदि, पृथिवी पर चक्रवर्ती आदि और स्वर्गमें इन्द्र आदि भोगते हैं ॥२५॥ उसीसमय प्रकरण पाकर लक्ष्मणने स्वयं हाथ जोड़कर शिरसे प्रणामकर मुनिराजसे यह पूछा कि हे प्रभो ! त्रिलोकमण्डन नामक गजराज खम्भेको तोड़कर किस कारण क्षोभको प्राप्त हुआ और फिर किस कारण अकस्मात् ही शान्त हो गया ? ॥२६-२७॥ हे भगवन् ! आप मेरे इस संशयको दूर करनेके लिए योग्य हैं। तदनन्तर देशभूषण केवलीने निम्नप्रकार वचन कहे ॥२८॥

१. श्रुत्वा म० । २. पूर्वं म० । ३. हितः पुमान् म० । ४. इच्छितं म० । ५. सन्निहिते म० ।

बलोद्रेकादयं तुङ्गात् संक्षोभं परमं गतः। स्मृत्वा पूर्वभवं भूयः शमयोगमशिश्रियत् ॥२९॥
आसीदाद्ये युगेऽयोध्यानगर्यामुत्तमश्रुतिः। नाभितो मरुदेव्याश्च निमित्तात्तनुमाश्रितः ॥३०॥
त्रैलोक्यक्षोभणं कर्म समुपार्ज्य महोदयः। प्रकटत्वं परिप्रापदिति देवेन्द्रभूतिभिः ॥३१॥
विन्ध्यहिमनगोत्तुङ्गस्तनीं[1] सागरमेखलाम्। पत्नीमिव निजां साध्वीं वश्यां योऽसेवत क्षितिम् ॥३२॥
भगवान् पुरुषेन्द्रोऽसौ लोकत्रयनमस्कृतः। पुराऽरमत पुर्यस्यां दिवीव त्रिदशाधिपः ॥३३॥
श्रीमानृषभदेवोऽसौ द्युतिकान्तिसमन्वितः। लक्ष्मीश्रीकान्तिसम्पन्नः कल्याणगुणसागरः ॥३४॥
त्रिज्ञानी धीरगम्भीरो दृङ्मनोहारिचेष्टितः। अभिरामवपुः सत्त्वी प्रतापी परमोऽभवत् ॥३५॥
सौधर्मेन्द्रप्रधानैर्यस्त्रिदशैरग्रजन्मनि। हेमरत्नघटैर्मेरावभिषिक्तः सुभक्तिभिः ॥३६॥
गुणान् कस्तस्य शक्नोति वक्तुं केवलिवर्जितः। ऐश्वर्यं प्रार्थ्यते यस्य सुरेन्द्रैरपि सन्ततम् ॥३७॥
कालं द्राघिष्ठमत्यन्तं भुक्त्वा श्रीविभवं परम्। अप्सरःपरमां वीक्ष्य तां नीलाञ्जननर्तकीम् ॥३८॥
स्तुतो लोकान्तिकैर्देवैः स्वयम्बुद्धो महेश्वरः। न्यस्य पुत्रशते राज्यं निष्क्रान्तो जगतां गुरुः ॥३९॥
उद्याने तिलकाभिख्ये प्रजाभ्यो यदसौ गतः। प्रजागमिति[2] तत्तेन लोके तीर्थं प्रकीर्तितम् ॥४०॥
संवत्सरसहस्रं स दिव्यं मेरुरिवाचलः। गुरुः प्रतिमया तस्थौ त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥४१॥
स्वामिभक्त्या समं तेन ये श्रामण्यमुपस्थिताः। षण्मासाभ्यन्तरे भग्ना दुःसहैस्ते परीषहैः ॥४२॥

उन्होंने कहा कि यह हाथी अत्यधिक पराक्रमकी उत्कटतासे पहले तो परम क्षोभको प्राप्त हुआ था और उसके बाद पूर्वभवका स्मरण होनेसे शान्तिको प्राप्त हो गया था ॥२९॥ इस कर्मभूमिरूपी युगके आदिमें इसी अयोध्या नगरीमें राजा नाभिराज और रानी मरुदेवीके निमित्तसे शरीरको प्राप्तकर उत्तम नामको धारण करनेवाले भगवान् ऋषभदेव प्रकट हुए थे। उन्होंने पूर्वभवमें तीन लोकको क्षोभित करनेवाले तीर्थङ्कर नाम कर्मका बन्ध किया था उसीके फलस्वरूप वे इन्द्रके समान विभूतिसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए थे ॥३०–३१॥ विन्ध्याचल और हिमाचल ही जिसके उन्नत स्तन थे तथा समुद्र जिसकी करधनी थी ऐसी पृथिवीका जिन्होंने सदा अनुकूल चलनेवाली अपनी पतिव्रता पत्नीके समान सदा सेवन किया था ॥३२॥ तीनों लोक जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे वे भगवान् ऋषभदेव पहले इस अयोध्यापुरीमें उस प्रकार रमण करते थे जिस प्रकार कि स्वर्गमें इन्द्र रमण करता है ॥३३॥ वे श्रीमान् ऋषभदेव द्युति तथा कान्तिसे सहित थे, लक्ष्मी, श्री और कान्तिसे सम्पन्न थे, कल्याणकारी गुणोंके सागर थे, तीन ज्ञानके धारी थे, धीर और गम्भीर थे, नेत्र और मनको हरण करनेवाली चेष्टाओंसे सहित थे, सुन्दर शरीरके धारक थे, बलवान् थे और परम प्रतापी थे ॥३४–३५॥ जन्मके समय भक्तिसे भरे सौधर्मेन्द्र आदि देवोंने सुमेरु पर्वतपर सुवर्ण तथा रत्नमयी घटोंसे उनका अभिषेक किया था ॥३६॥ इन्द्र भी जिनके ऐश्वर्यकी निरन्तर चाह रखते थे उन ऋषभदेवके गुणोंका वर्णन केवली भगवान्को छोड़कर कौन कर सकता है? ॥३७॥ बहुत लम्बे समय तक लक्ष्मीके उत्कृष्ट वैभवका उपभोग कर वे एक दिन नीलाञ्जना नामकी अप्सराको देख प्रतिबोधको प्राप्त हुए ॥३८॥ लौकान्तिक देवोंने जिनकी स्तुति की थी ऐसे महावैभवके धारी जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेव अपने सौ पुत्रोंपर राज्यभार सौंपकर घरसे निकल पड़े ॥३९॥ यतश्च भगवान् प्रजासे निःस्पृह हो तिलकनामा उद्यानमें गये थे इसलिए लोकमें वह उद्यान प्रजाग इस नामका तीर्थ प्रसिद्ध हो गया ॥४०॥ वे भगवान् समस्त परिग्रहका त्यागकर एक हजार वर्ष तक मेरुके समान अचल प्रतिमा योगसे खड़े रहे अर्थात् एक हजार वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्या की ॥४१॥ स्वामिभक्तिके कारण उनके साथ जिन चार हजार राजाओंने मुनिव्रतका धारण किया था वे छः महीनेके भीतर ही दुःसह परीषहोंसे पराजित हो गये ॥४२॥

---

१. स्थलीं म०। २. प्रयाग म०।

ते भग्ननिश्चयाः क्षुद्राः स्वेच्छाविरचितव्रताः । [1]वल्किनः फलमूलाद्यैर्बालवृत्तिमुपाश्रिताः ॥४३॥
तेषां मध्ये महामानो मरीचिरिति यो ह्यसौ । परिव्राज्यमयस्तक्रे काषायी सकषायधीः ॥४४॥
सुप्रभस्य विनीतायां सूर्यचन्द्रोदयौ सुतौ । प्रह्लादनाख्यमहिषीकुक्षिभूमिमहामणी ॥४५॥
स्वामिना सह निष्क्रान्तौ प्रथितौ सर्वविष्टपे । भग्नौ [2]श्रामण्यतोऽत्यन्तप्रीतौ तं शरणं गतौ ॥४६॥
मरीचिशिष्ययोः कूटप्रतापव्रतमानिनोः । तयोः शिष्यगणो जातः परिव्राडिति महान् ॥४७॥
कुधर्माचरणाद् भ्रान्तौ संसारं तौ चतुर्गतिम् । सहितौ पूरिता क्षोणी ययोस्त्यक्तकलेवरैः ॥४८॥
ततश्चन्द्रोदयः कर्मवशान्नागाभिधे पुरे । राज्ञो हरिपतेः पुत्रो मनोलूतासमुद्भवः ॥४९॥
जातः कुलंकराभिख्यः प्राप्तश्च नृपतां पराम् । पूर्वस्नेहानुबन्धेन भावितेन भवान् बहून् ॥५०॥
सूर्योदयः पुरेऽत्रैव ख्यातः श्रुतिरतः श्रुती । विश्वाङ्के[3]नाग्निकुण्डायां जातोऽभूत्तत्पुरोहितः ॥५१॥
कुलङ्करोऽन्यदा गोत्रसन्तत्या कृतसेवनान् । तापसान् सेवितुं गच्छन्नपश्यन्मुनिपुङ्गवम् ॥५२॥
अभिनन्दितसंज्ञेन तेनाऽसौ नतिमागतः । जगदेऽवधिनेत्रेण सर्वलोकहितैषिणा ॥५३॥
यत्र त्वं प्रस्थितस्तत्र [4]तव चेभ्यः पितामहः । तापसः सर्पतां प्राप्तः काष्ठमध्येऽवतिष्ठते ॥५४॥
काष्ठे विपाट्यमाने तं तापसेन गतो भवान् । रक्षिस्यति[5] गतस्यास्य तच्च सर्वं तथाऽभवत् ॥५५॥

उन क्षुद्र पुरुषोंने अपना निश्चय तोड़ दिया, स्वेच्छानुसार नाना प्रकारके व्रत धारण कर लिये और वे अज्ञानी जैसी चेष्टाको प्राप्त हो फल-मूल आदिका भोजन करने लगे ॥४३॥

उन भ्रष्ट राजाओंके बीच महामानी, कषायले—गेरूसे रँगे वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा कषाय युक्त बुद्धिसे युक्त जो मरीचि नामका साधु था उसने परिव्राजकका मत प्रचलित किया ॥४४॥ इसी विनीता नगरीमें एक सुप्रभ नामका राजा था उसकी प्रह्लादना नामकी स्त्रीकी कुक्षिरूपी भूमिसे उत्पन्न हुए महामणियोंके समान सूर्योदय और चन्द्रोदय नामके दो पुत्र थे ॥४५॥ ये दोनों पुत्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे। उन्होंने भगवान् आदिनाथके साथ ही दीक्षा धारण की थी परन्तु मुनिपदसे भ्रष्ट होकर वे पारस्परिक तीव्र प्रीतिके कारण अन्तमें मरीचिकी शरणमें चले गये ॥४६॥ मायामयी तपश्चरण और व्रतको धारण करनेवाले मरीचिके उन दोनों शिष्योंके अनेक शिष्य हो गये जो परिव्राट् नामसे प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ मिथ्याधर्मका आचरण करनेसे वे दोनों चतुर्गति रूप संसारमें साथ-साथ भ्रमण करते रहे। उन दोनों भाइयोंने पूर्वभवोंमें जो शरीर छोड़े थे उनसे समस्त पृथिवी भर गई थी ॥४८॥

तदनन्तर चन्द्रोदयका जीव कर्मके वशीभूत हो नाग नामक नगरमें राजा हरिपतिके मनोलूता नामक रानीसे कुलंकर नामक पुत्र हुआ जो आगे चलकर उत्तम राज्यको प्राप्त हुआ। और सूर्योदयका जीव इसी नगरमें विश्वाङ्क नामक ब्राह्मणके अग्निकुण्डा नामकी स्त्रीसे श्रुतिरत नामका विद्वान् पुत्र हुआ। अनेक भवोंमें वृद्धिको प्राप्त हुए पूर्वस्नेहके संस्कारसे श्रुतिरत राजा कुलंकरका पुरोहित हुआ ॥४९–५१॥ किसी समय राजा कुलंकर गोत्रपरम्परासे जिनकी सेवा होती आ रही थी ऐसे तपस्वियोंकी सेवा करनेके लिए जा रहा था सो मार्गमें उसने किन्हीं दिगम्बर मुनिराजके दर्शन किये ॥५२॥ उन मुनिराजका नाम अभिनन्दित था, वे अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे सहित थे तथा सब लोगोंका हित चाहनेवाले थे। जब राजा कुलंकरने उन्हें नमस्कार किया तब उन्होंने कहा कि हे राजन् ! तू जहाँ जा रहा है वहाँ तेरा सम्पन्न पितामह जो तापस हो गया था मरकर साँप हुआ है और काष्ठके मध्यमें विद्यमान है। एक तापस उस काष्ठको चीर रहा है सो तू जाकर उसकी रक्षा करेगा। जब कुलंकर वहाँ गया तब मुनिराजके कहे अनुसार ही सब

१. वल्लिनः म० । २. श्रामयतोऽ -म० । ३. विश्वाङ्केना -म०, क० । ४. तापसेभ्यः म० । तव च + इभ्यः । ५. रक्षिष्यसि म०, ज० ।

कदागमसमापन्नान् दृष्ट्वाऽसौ तापसांस्ततः । प्रबोधमुत्तमं प्राप्तः श्रामण्यं कर्तुमुद्यतः ॥५६॥
वसुपर्वतकश्रुत्या मूढश्रुतिरतस्ततः । तममोहयदेवं च पापकर्मा पुनर्जगौ ॥५७॥
गोत्रक्रमागतो राजन् धर्मोऽयं तव वैदिकः । ततो हरिपतेः पुत्रो यदि त्वं तत्समाचर ॥५८॥
नाथ वेदविधिं कृत्वा सुतं न्यस्य निजे पदे । करिष्यसि हितं पश्चात् प्रसादः क्रियतां मम ॥५९॥
एवमेतद्यथाभीष्टा श्रीदामेति प्रकीर्तिता । महिष्यचिन्तयत्यस्य नूनं राज्ञाऽन्यसक्तता ॥६०॥
ज्ञातास्मि येन वैराग्यात् प्रव्रज्यां कर्तुमिच्छति । प्रव्रज्येदपि किं नो वा को जानाति मनोगतिम् ॥६१॥
तस्माद्विषप्रदानेन मारयाम्येनं विचिन्त्येत्यनुचिन्त्य सा । पुरोहितान्वितं पापा कुलङ्करममारयत् ॥६२॥
ततोऽनुध्यात[1]मात्रेण पशुघातेन पापतः । कालप्राप्तावभूतां तौ निकुञ्जे शशकौ वने ॥६३॥
भेकत्वं मूषकत्वं च बर्हिणत्वं पृदाकु[2]ताम् । रुरुत्वं[3] च पुनः प्राप्तौ कर्मानिलजवेरितौ ॥६४॥
पूर्वंश्रुतिरतो हस्ती दर्दुरश्चेतरोऽभवत् । तस्याक्रान्तः स पादेन चकारासुविमोचनम् ॥६५॥
[4]वर्षाभूत्वं पुनः प्राप्तः शुष्के सरसि भक्षितः । काकैः [5]कुक्कुटतां प्राप्तो मार्जारत्वं तु हस्त्यसौ ॥६६॥
कुलङ्करचरो जन्मत्रितयं कुक्कुटोऽभवत् । भक्षितो द्विजपूर्वेण मार्जारेण नृजन्मना ॥६७॥
राजद्विजचरौ मत्स्यशिशुमारत्वमागतौ । बद्धौ जालेन कैवर्तैः कुठारेणाऽऽहतौ मृतौ ॥६८॥
शिशुमारस्तयोरुल्काबह्वाशतनयोऽभवत् । विनोदो रमणो मत्स्यो द्विजो राजगृहे तयोः ॥६९॥

हुआ ॥४३–४५॥ तदनन्तर उन तापसोंको मिथ्याशास्त्रसे युक्त देखकर राजा कुलंकर उत्तम प्रबोधको प्राप्त हो मुनिपद धारण करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४६॥

अथानन्तर राजा वसु और पर्वतके द्वारा अनुमोदित 'अजैर्यष्टव्यम्' इस श्रुतिसे मोहको प्राप्त हुए पापकर्मा श्रुतिरत नामा पुरोहितने उन्हें मोहमें डालकर इस प्रकार कहा कि हे राजन्! वैदिक धर्म तुम्हारी वंशपरम्परासे चला रहा है इसलिए यदि तुम राजा हरिपतिके पुत्र हो तो उसी वैदिक धर्मका आचरण करो ॥५७–५८॥ हे नाथ! अभी तो वेदमें बताई हुई विधिके अनुसार कार्य करो फिर पिछली अवस्थामें अपने पद पर पुत्रको स्थापित कर आत्माका हित करना। हे राजन्! मुझपर प्रसाद करो—प्रसन्न होओ ॥५९॥

अथानन्तर राजा कुलंकरने 'यह बात ऐसी ही है' यह कह कर पुरोहितकी प्रार्थना स्वीकृत की। तदनन्तर राजाकी श्रीदामा नामकी प्रिय स्त्री थी जो परपुरुषासक्त थी। उसने उक्त घटनाको देखकर विचार किया कि जान पड़ता है इस राजाने मुझे अन्य पुरुषमें आसक्त जान लिया है इसीलिए यह विरक्त हो दीक्षा लेना चाहता है। अथवा यह दीक्षा लेगा या नहीं लेगा इसकी मनकी गतिको कौन जानता है? मैं तो इसे विष देकर मारती हूँ ऐसा विचार कर उस पापिनीने पुरोहित सहित राजा कुलंकरको मार डाला ॥६०–६२॥ तदनन्तर पशुघातका चिन्तवन करने मात्रके पापसे वे दोनों मर कर निकुञ्ज नामक वनमें खरगोश हुए ॥६३॥ तदनन्तर कर्मरूपी वायुके वेगसे प्रेरित हो क्रमसे मेंडक, चूहा, मयूर, अजगर और मृग पर्यायको प्राप्त हुए ॥६४॥ तत्पश्चात् श्रुतिरत पुरोहितका जीव हाथी हुआ और राजा कुलंकरका जीव मेंडक हुआ सो हाथीके पैरसे दबकर मेंडक मृत्युको प्राप्त हुआ ॥६५॥ पुनः सूखे सरोवरमें मेंडक हुआ सो कौओंने उसे खाया। तदनन्तर मुर्गा हुआ और हाथीका जीव मार्जार हुआ ॥६६॥ सो मार्जारने मुर्गाका भक्षण किया। इस तरह कुलंकरका जीव तीन भव तक मुर्गा हुआ और पुरोहितका जीव जो मार्जार था वह मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ सो उसने उस मुर्गाको खाया ॥६७॥ तदनन्तर राजा और पुरोहितके जीव क्रमसे मच्छ और शिशुमार अवस्थाको प्राप्त हुए। सो धीवरोंने जालमें फँसाकर उन्हें पकड़ा तथा कुल्हाड़ोंसे काटा जिससे मरणको प्राप्त हुए ॥६८॥ तदनन्तर उन दोनोंमें जो शिशुमार था वह

---

१. -ऽनुध्यान -म०, क० । २. सर्पताम् । ३. कुरुत्वं म० । ४. मण्डूकताम् । ५. कुक्कुटोऽ- म० ।

निःस्वत्वेनाज्ञत्वे च सति जन्तुर्द्विपात्[1] पशुः । रमणः सम्प्रधार्यैवं वेदार्थी निःसृतो गृहात् ॥७०॥
क्षोणीं पर्यटता तेन गुरुवेश्मसु शिक्षिताः । चत्वारः साङ्गका वेदाः प्रस्थितश्च पुनर्गृहम् ॥७१॥
मागधं नगरं प्राप्तो भ्रातृदर्शनलालसः । भास्करेऽस्तङ्गते चासौ व्योम्नि मेघान्धकारिते ॥७२॥
नगरस्य बहिर्यक्षनिलये वा समाश्रितः । जीर्णोद्यानस्य मध्यस्थे तत्र चेदं प्रवर्तते ॥७३॥
विनोदस्याङ्गना तस्य समिधाख्या कुशीलिका[2] । अशोकदत्तसंकेता तं यक्षालयमागता ॥७४॥
अशोकदत्तको मार्गे गृहीतो दण्डपाशिकैः । विनोदोऽपि गृहीतासिर्भार्यानुपदमागतः ॥७५॥
सद्भावमन्त्रणं श्रुत्वा समिधा क्रोधसंगिना । सायकेन विनोदेन रमणः प्रासुकीकृतः ॥७६॥
विनोदो दयितायुक्तो हृष्टः प्रच्छन्नपापकः । गृहं गतः पुनस्तौ च संसारं पुरुमाटतुः ॥७७॥
महिषत्वमितोऽरण्ये विनोदो रमणः पुनः । ऋक्षो बभूव निश्चक्षुर्दग्धौ शालवने च तौ ॥७८॥
जातौ गिरिवने व्याधौ मृतौ च हरिणौ पुनः । तयोर्बन्धुजनस्त्रासाद्दिशो यातो यथायथम् ॥७९॥
जीवन्तावेव तावात्तौ[3] निषादैः[4] कान्तलोचनौ । स्वयम्भूतिरथो राजा विमलं वन्दितुं गतः ॥८०॥
सुरासुरैः समं नत्वा जिनेन्द्रं समहर्धिकः । प्रत्यागच्छन्ददर्शैतौ स्थापितौ च जिनालये ॥८१॥

मरकर राजगृह नगरमें बह्वाश नामक पुरुष और उल्का नामक स्त्रीके विनोद नामका पुत्र हुआ तथा जो मच्छ था वह भी कुछ समय बाद उसी नगरमें तथा उन्हीं दम्पतीके रमण नामका पुत्र हुआ ॥६६॥ दोनों ही अत्यन्त दरिद्र तथा मूर्ख थे इसलिए रमणने विचार किया कि अत्यन्त दरिद्रता अथवा मूर्खताके रहते हुए मनुष्य मानो दो पैर वाला पशु ही है। ऐसा विचारकर वह वेद पढ़नेकी इच्छासे घरसे निकल पड़ा ॥७०॥ तदनन्तर पृथिवीमें घूमते हुए उसने गुरुओंके घर जाकर अङ्गों सहित चारों वेदोंका अध्ययन किया। अध्ययनके बाद वह पुनः अपने घर की ओर चला ॥७१॥ जिसे भाईके दर्शनकी लालसा लग रही थी ऐसा रमण चलता-चलता जब सूर्यास्त हो गया था और आकाशमें मेघोंमें अन्धकार छा रहा था तब राजगृह नगर आया ॥७२॥ वहाँ वह नगरके बाहर एक पुराने बगीचामें जो यक्षका मन्दिर था उसमें ठहर गया। वहाँ निम्न प्रकार घटना हुई ॥७३॥ रमणका जो भाई विनोद राजगृह नगरमें रहता था उसकी स्त्रीका नाम समिधा था। यह समिधा दुराचारिणी थी सो अशोकदत्त नामक जारका संकेत पाकर उसी यक्ष-मन्दिरमें पहुँची जहाँ कि रमण ठहरा हुआ था ॥ ७४॥ अशोकदत्तको मार्गमें कोतवालने पकड़ लिया इसलिए वह संकेतके अनुसार समिधाके पास नहीं पहुँच सका। इधर समिधाका असली पति विनोद तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे गया ॥७५॥ वहाँ समिधाके साथ रमणका सद्भावपूर्ण वार्तालाप सुन विनोदने क्रोधित हो रमणको तलवारसे निष्प्राण कर दिया ॥७६॥

तदनन्तर प्रच्छन्न पापी विनोद हर्षित होता हुआ अपनी स्त्रीके साथ घर आया। उसके बाद वे दोनों दीर्घकाल तक संसारमें भटकते रहे ॥७७॥ तत्पश्चात् विनोदका जीव तो वनमें भैंसा हुआ और रमणका जीव उसी वनमें अन्धा रीछ हुआ सो दोनों ही उस शालवनमें जलकर मरे ॥७८॥ तदनन्तर दोनों ही गिरिवनमें व्याध हुए फिर मरकर हरिण हुए। उन हरिणोंके जो माता पिता आदि बन्धुजन थे वे भयके कारण दिशाओंमें इधर-उधर भाग गये। दोनों बच्चे अकेले रह गये। उनके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे इसलिए व्याधोंने उन्हें जीवित ही पकड़ लिया। अथानन्तर तीसरा नारायण राजा स्वयंभूति श्रीविमलनाथ स्वामीके दर्शन करनेके लिए गया ॥७९-८०॥ बहुत भारी ऋद्धिको धारण करनेवाला राजा स्वयंभू जब सुरों और असुरोंके साथ जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करके लौट रहा था तब उसने उन दोनों हरिणोंको देखा सो व्याधोंके

१. पादद्वयधारकः पशुः इत्यर्थः । २. कुशीलकः म० । ३. तौ + आत्तौ इतिच्छेदः । तावत्तौ म० । ४. विषादैः म०, निषादैः व्याधैः ।

संयतान्[1] तत्र पश्यन्तौ भक्षयन्तौ यथेप्सितम् । अन्नं राजकुले प्राप्तौ हरिणौ परमां धृतिम् ॥८२॥
आयुष्येकः परिक्षीणे लब्धमृत्युः समाधिना । सुरलोकमितोऽन्योऽपि तिर्यक्षु पुनरभ्रमत् ॥८३॥
ततः कथमपि प्राप कर्मयोगान्मनुष्यताम् । विनोदचरसारङ्गः स्वप्ने राज्यमिवोदितम् ॥८४॥
जम्बूद्वीपस्य भरते काम्पिल्यनगरे धनी । द्वाविंशतिप्रमाणाभिर्हेमकोटिभिरूर्जितः ॥८५॥
अमुष्य धनदाह्वस्य वणिजो रमणोऽमरः । च्युतो भूषणनामाऽभूद् वारुण्यां तनयः शुभः ॥८६॥
नैमित्तेनायमादिष्टः प्रव्रजिष्यत्ययं ध्रुवम् । श्रुत्वैवं धनदो लोकादभू दुद्विग्नमानसः ॥८७॥
सत्पुत्रप्रेमसक्तेन तेन वेश्म निधापितम् । योग्यं सर्वक्रियायोगे यत्र तिष्ठति भूषणः ॥८८॥
सेव्यमानो वरस्त्रीभिर्वस्त्राहारविलेपनैः । विविधैर्ललितं चक्रे सुन्दरं तत्र भूषणः ॥८९॥
नैक्षिष्ट भानुमुद्यन्तं नास्तं यान्तं च नोडुपम्[2] । स्वप्नेऽप्यसौ गतो भूमिं गृहशैलस्य पञ्चमीम् ॥९०॥
मनोरथशतैर्लब्धः पुत्रोऽसावेक एव हि । पूर्वस्नेहानुबन्धेन दयितो जीवितादपि ॥९१॥
धनदः सोदरः पूर्वं भूषणस्य पिताऽभवत् । विचित्रं खलु संसारे प्राणिनां नटचेष्टितम् ॥९२॥
तावत्क्षपाक्षये श्रुत्वा देवदुन्दुभिनिस्वनम् । दृष्ट्वा देवागमं श्रुत्वा शब्दं चाऽभूद् विबुद्धवान् ॥९३॥
स्वभावान्मृदुचेतस्कः सद्धर्माचारतत्परः । महाप्रमोदसम्पन्नः करकुड्मलमस्तकः ॥९४॥

पाससे लेकर उसने उन्हें जिनमन्दिरमें रखवा दिया ॥८१॥ वहाँ मुनियोंके दर्शन करते और राजदरबारसे इच्छानुकूल भोजन ग्रहण करते हुए दोनों हरिण परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ उन दोनों हरिणोंमें एक हरिण आयु क्षीण होनेपर समाधिमरणकर स्वर्ग गया और दूसरा तिर्यञ्चोंमें भ्रमण करता रहा ॥८३॥

तदनन्तर विनोदका जीव जो हरिण था उसने कर्मयोगसे किसी तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त की मानो स्वप्नमें राज्य ही उसे मिल गया हो ॥८४॥ अथानन्तर जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें काम्पिल्य नामक नगरके मध्य बाईस करोड़ दीनारका धनी एक धनद नामका वैश्य रहता था सो रमणका जीव मरकर जो देव हुआ था वह वहाँसे च्युत हो उसकी वारुणी नामक स्त्रीसे भूषण नामका उत्तम पुत्र हुआ ॥८५-८६॥ किसी निमित्तज्ञानीने धनद वैश्यसे कहा कि तेरा यह पुत्र निश्चित ही दीक्षा धारण करेगा सो निमित्तज्ञानीके वचन सुन धनद संसारसे उद्विग्नचित्त रहने लगा ॥८७॥ उस उत्तम पुत्रकी प्रीतिसे युक्त धनद सेठने एक ऐसा घर बनवाया जो सब कार्य करनेके योग्य था। उसी घरमें उसका भूषण नामा पुत्र रहता था। भावार्थ—उसने सब प्रकारकी सुविधाओंसे पूर्ण महल बनवाकर उसमें भूषण नामक पुत्रको इसलिए रक्खा कि कहीं बाहर जानेपर किसी मुनिको देखकर वह दीक्षा न ले ले ॥८८॥ उत्तमोत्तम स्त्रियाँ नाना प्रकारके वस्त्र आहार और विलेपन आदिके द्वारा जिसकी सेवा करती थीं ऐसा भूषण वहाँ सुन्दर चेष्टाएँ करता था ॥८९॥ वह सदा अपने महलरूपी पर्वतके पाँचवें खण्डमें रहता था इसलिए उसने कभी स्वप्नमें भी न तो उदित हुए सूर्यको देखा था और न अस्त होता हुआ चन्द्रमा ही देखा था ॥९०॥ धनद सेठने सैकड़ों मनोरथोंके बाद यह एक ही पुत्र प्राप्त किया था इसलिए वह उसे पूर्व स्नेहके संस्कारवश प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था ॥९१॥ धनद, पूर्वभवमें भूषणका भाई था अब इस भवमें पिता हुआ सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें प्राणियोंकी चेष्टाएँ नटकी चेष्टाओंके समान विचित्र होती हैं ॥९२॥ तदनन्तर किसी दिन रात्रि समाप्त होते ही भूषणने देव दुन्दुभिका शब्द सुना, देवोंका आगमन देखा और उनका शब्द सुना जिससे वह विबोधको प्राप्त हुआ ॥९३॥ वह भूषण स्वभावसे ही कोमलचित्त था, समीचीन धर्मका आचरण करनेमें तत्पर था, महाहर्षसे युक्त था तथा उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा रक्खे थे ॥९४॥

१. सङ्गतौ म० । २. चन्द्रम् ।

श्रीधरस्य मुनीन्द्रस्य वन्दनार्थं त्वरान्वितः । सोपानेऽवतरन्दष्टः सोऽहिना तनुमत्यजत् ॥९५॥
माहेन्द्रस्वर्गमारूढश्च्युतो द्वीपे च पुष्करे । चन्द्रादित्यपुरे जातः प्रकाशयशसः सुतः ॥९६॥
माताऽस्य माधवीत्यासीत् स जगद्युतिसंज्ञितः । राजलक्ष्मीं परिप्राप्तः परमां यौवनोदये ॥९७॥
संसारात् परमं भीरुरसौ स्थविरमन्त्रिभिः । उपदेशं प्रयच्छद्भिः राज्यं कृच्छ्रेण कार्यते ॥९८॥
कुलक्रमागतं वत्स राज्यं पालय सुन्दरम् । पालितेऽस्मिन् समस्तेयं सुखिनी जायते प्रजा ॥९९॥
तपोधनान् स राज्यस्थः साधून् सन्तर्प्य सन्ततम् । गत्वा देवकुरुं काले कल्पमैशानमाश्रितः ॥१००॥
पल्योपमान् बहून् तत्र देवीजनसमावृतः । नानारूपधरो भोगान् बुभुजे परमद्युतिः ॥१०१॥
च्युतो जम्बूमति द्वीपे विदेहे मेरुपश्चिमे । रत्नाख्या[1] बालहरिणी महिष्य[2]चलचक्रिणः ॥१०२॥
बभूव तनयस्तस्य सर्वलोकसमुत्सवः । अभिरामोऽङ्गनामाभ्यां महागुणसमुच्चयः ॥१०३॥
महावैराग्यसम्पन्नं प्रव्रज्याभिमुखं च तम् । ऐश्वर्येऽयोजयच्चक्री कृतवीवाहकं[3] बलात् ॥१०४॥
त्रीणि नारीसहस्राणि सततं गुणवर्त्तिनम् । लालयन्ति स्म यत्नेन वारिस्थमिव वारणम् ॥१०५॥
वृतस्ताभिरसौ मेने रतिसौख्यं विषोपमम् । श्रामण्यं केवलं कर्तुं न लेभे शान्तमानसः ॥१०६॥
असिधाराव्रतं तीव्रं तासां मध्यगतो विभुः । चकार हारकेयूरमुकुटादिविभूषितः ॥१०७॥
स्थितो वरासने श्रीमान् वनिताभ्यः समन्ततः । उपदेशं ददौ जैनधर्मशंसनकारिणम् ॥१०८॥

वह श्रीधर मुनिराजकी वन्दनाके लिए शीघ्रतासे सीढ़ियोंपर उतरता चला आ रहा था कि साँपके काटनेसे उसने शरीर छोड़ दिया ॥९५॥ वह मरकर माहेन्द्र नामक चतुर्थ स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। वहाँसे च्युत होकर पुष्करद्वीपके चन्द्रादित्य नामक नगरमें राजा प्रकाशयशका पुत्र हुआ। माधवी इसकी माता थी और स्वयं उसका जगद्द्युति नाम था। यौवनका उदय होनेपर वह अत्यन्त श्रेष्ठ राज्यलक्ष्मीको प्राप्त हुआ ॥९६-९७॥ वह संसारसे अत्यन्त भयभीत रहता था, इसलिए वृद्ध मन्त्री उपदेश दे देकर बड़ी कठिनाईसे उससे राज्य कराते थे ॥९८॥ वृद्ध मन्त्री उससे कहा करते थे कि हे वत्स! कुलपरम्परासे आये हुए इस सुन्दर राज्यका पालन करो क्योंकि राज्यका पालन करनेसे ही समस्त प्रजा सुखी होती है ॥९९॥ भूषण, राज्यकार्यमें स्थिर रहता हुआ सदा तपस्वी मुनियोंको आहारादिसे सन्तुष्ट रखता था। अन्तमें वह मरकर देवकुरु नामा भोगभूमिमें गया और वहाँसे मरकर ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥१००॥ वहाँ परम कान्तिको धारण करनेवाले उस भूषणके जीवने देवीजनोंसे आवृत होकर तथा नानारूपके धारक हो अनेक पल्यों तक भोगोंका उपभोग किया ॥१०१॥ वहाँसे च्युत हो जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अचल चक्रवर्तीकी बालमृगीके समान सरल, रत्ना नामकी रानीके सब लोगोंको आनन्दित करनेवाला महागुणोंका धारी पुत्र हुआ। वह पुत्र शरीर तथा नाम दोनोंसे ही अभिराम था अर्थात् 'अभिराम' इस नामका धारी था और शरीरसे अत्यन्त सुन्दर था ॥१०२-१०३॥ अभिराम महावैराग्यसे सहित था तथा दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत था परन्तु चक्रवर्तीने उसका विवाह कर उसे जबर्दस्ती ऐश्वर्यमें-राज्यपालनमें नियुक्त कर दिया ॥१०४॥ सदा तीन हजार स्त्रियाँ, जलमें स्थित हाथीके समान उस गुणी पुत्रका सावधानी पूर्वक लालन करती थीं ॥१०५॥ उन सब स्त्रियोंसे घिरा हुआ अभिराम, रतिसम्बन्धी सुखको विषके समान मानता था और शान्त चित्त हो केवल मुनिव्रत धारण करनेके लिए उत्कण्ठित रहता था परन्तु पिताकी परतन्त्रतासे उसे वह प्राप्त नहीं कर पाता था ॥१०६॥ उन सब स्त्रियोंके बीचमें बैठा तथा हार केयूर मुकुट आदिसे विभूषित हुआ वह अत्यन्त कठिन असिधारा व्रतका पालन करता था ॥१०७॥ जिसे चारों ओरसे स्त्रियाँ घेरे हुई थीं ऐसा वह श्रीमान् अभिराम, उत्तम आसनपर बैठकर उन सबके

१. रत्नाख्यान् ज० । २. महिष्याः ज० । ३. विवाहकं म० ।

चिरं संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः । मानुष्यकमिदं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥१०९॥
जानानः को जनः कूपे क्षिपति स्वं महाशयः । विषं वा कः पिबेत् को वा शृङ्गे निद्रां निषेवते ॥११०॥
को वा रत्नेप्सया नाग मस्तकं पाणिना स्पृशेत् । विनाशकेषु कामेषु धृतिर्जायेत कस्य वा ॥१११॥
सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा । जनानां चञ्चलेऽत्यन्तं जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥११२॥
एवमाद्या गिरः श्रुत्वा परमार्थोपदेशिनीः । उपशान्ता स्त्रियः शक्त्या[1] नियमेषु ररंजिरे ॥११३॥
राजपुत्रः सुदेहेऽपि स्वकीये रागवर्जितः । चतुर्थादिनिराहारैः[2] कर्मकालुष्यमक्षिणोत् ॥११४॥
तपसा च विचित्रेण समाहितमना विभुः । शरीरं तनुतां निन्ये ग्रीष्मादित्य इवोदकम् ॥११५॥
चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां स सुदर्शनः । अकम्पितमना वीरस्तपश्चक्रेऽतिदुःसहम् ॥११६॥
पञ्चप्रणामसंयुक्तं समाधिमरणं श्रितः । अशिश्रियत् सुदेवत्वं कल्पे ब्रह्मोत्तरश्रुतौ ॥११७॥
असौ धनदपूर्वस्तु जीवः संसृत्य योनिषु । पोदने नगरे जज्ञे जम्बूभरतदक्षिणे ॥११८॥
[3]शकुनाग्निमुखास्तस्य माहनौ जन्मकारणम् । नाम्ना मृदुमतिश्चासौ व्यर्थेन परिभाषितः ॥११९॥
द्यूताविनयसक्तात्मा रथ्यारेणुसमुक्षितः । नानापराधवद्द्वेष्यः स बभूव दुरीहितः ॥१२०॥
लोकोपालम्भखिन्नाभ्यां पितृभ्यां स निराकृतः । पर्यट्य धरणीं प्राप यौवने पोदनं पुनः ॥१२१॥

लिए जैनधर्मकी प्रशंसा करनेवाला उपदेश देता था ॥१०८॥ वह कहा करता था इस संसाररूपी अटवीमें चिरकालसे भ्रमण करनेवाला प्राणी पुण्यकर्मोदयसे बड़ी कठिनाईसे इस मनुष्य भवको प्राप्त होता है ॥१०९॥ उदार अभिप्रायको धारण करनेवाला कौन मनुष्य जान-बूझकर अपने आपको कुएँमें गिराता है ? कौन मनुष्य विषपान करता है ? अथवा कौन मनुष्य पहाड़की चोटीपर शयन करता है ? ॥११०॥ अथवा कौन मनुष्य रत्न पानेकी इच्छासे नागके मस्तकको हाथसे छूता है ? अथवा विनाशकारी इन इन्द्रियोंके विषयोंमें किसे कब सन्तोष हुआ है ? ॥१११॥ अत्यन्त चञ्चल जीवनमें जिनकी स्पृहा शान्त हो चुकी है ऐसे मनुष्योंकी जो एक पुण्यमें प्रशंसनीय आसक्ति है वही उन्हें मुक्तिका सुख देनेवाली है ॥११२॥ इत्यादि परमार्थका उपदेश देनेवाली वाणी सुनकर उसकी वे स्त्रियाँ शान्त हो गई थीं तथा शक्ति अनुसार नियमोंका पालन करने लगी थीं ॥११३॥ वह राजपुत्र अपने सुन्दर शरीरमें भी रागसे रहित था इसलिए वेला आदि उपवासोंसे कर्मकी कलुषताको दूर करता रहता था ॥११४॥ जिसका चित्त सदा सावधान रहता था ऐसा वह राजपुत्र विचित्र तपस्याके द्वारा शरीरको उस तरह कृश करता रहता था जिस तरह कि ग्रीष्मऋतुका सूर्य पानीको कृश करता रहता है ॥११५॥ निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले उस निश्चलचित्त वीर राजपुत्रने चौंसठ हजार वर्षतक अत्यन्त दुःसह तप किया ॥११६॥ अन्तमें पञ्चपरमेष्ठियोंके नमस्कारसे युक्त समाधिमरणको प्राप्त हो ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्गमें उत्तम देव पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥११७॥

अथानन्तर भूषणके भवमें जो उसका पिता धनदसेठ था उसका जीव नाना योनियोंमें भ्रमणकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें स्थित जो पोदनपुर नामका नगर था उसमें अग्निमुख और शकुना नामक ब्राह्मण ब्राह्मणी उसके जन्मके कारण हुए। उन दोनोंके वह मृदुमति नामका पुत्र हुआ। वह मृदुमति निरर्थक नामका धारी था अर्थात् मृदुबुद्धि न होकर कठोर बुद्धि था ॥११८-११९॥ जिसकी बुद्धि जुआ तथा अविनयमें आसक्त रहती थी, जो मार्ग धूलिसे धूसरित रहता था तथा जो नाना प्रकारके अपराध करनेके कारण लोगोंके द्वेषका पात्र था, ऐसा वह अत्यन्त दुष्ट चेष्टाओंका धारक था ॥१२०॥ लोगोंके उलाहनोंसे खिन्न होकर माता-पिताने उसे घरसे निकाल दिया जिससे वह पृथिवीमें जहाँ तहाँ भ्रमण कर यौवनके समय पुनः

१. शक्ता म० । २. -भिराहारैः म० । ३. शकुनाग्निमुखस्तस्य माहनी म० ।

प्रविष्टो भवनं किञ्चिज्जलं पातुमयाचत । अददान्माहनी तस्मै जलं निपतदश्रुका ॥१२२॥
सुशीतलाम्बुतृप्तात्मा पप्रच्छासौ कुतस्त्वया । रुद्यते करुणायुक्त[1] इत्युक्ते माहनी जगौ ॥१२३॥
भद्र त्वदाकृतिर्बालो मया पतिसमेतया । करुणोज्झितया गेहात् पुत्रको हा निराकृतः ॥१२४॥
स त्वया भ्राम्यता देशे यदि स्याद्वीक्षितः क्वचित् । नीलोत्पलप्रतीकाशस्ततो वेदय तद्गतम् ॥१२५॥
ततोऽसावश्रुमानूचे सवित्रि[2] रुदितं त्यज । समाश्वसिहि सोऽहं ते चिरदुर्लम्भकः सुतः ॥१२६॥
शकुनाग्निमुखेनामा पुत्रप्राप्तिमहोत्सवम् । परिप्राप्ता सुखं तस्थौ तत्क्षणप्रस्नुतस्तनी ॥१२७॥
तेजस्वी सुन्दरो धीमान्नानाशास्त्रविशारदः । सर्वस्त्रीदृङ्मनोहारी धूर्तानां मस्तके स्थितः ॥१२८॥
दुरोदरे सदा जेता सुविदग्धः कलालयः । कामोपभोगसक्तात्मा रेमे मृदुमतिः पुरे ॥१२९॥
वसन्तडमरा[3] नाम गणिकानामनुत्तमा । द्वितीया रमणाचारे तस्याभूत् परमेप्सिता[4] ॥१३०॥
पितरौ बन्धुभिः सार्द्धं दारिद्र्यात्तेन मोचितौ । राजलीलां परिप्राप्तौ लब्धसर्वसमीहितौ ॥१३१॥
कुण्डलाद्यैरलङ्कारैः पिताभूदतिभासुरः । नानाकार्यगणव्यग्रा माता काञ्च्यादिमण्डिता ॥१३२॥
शशाङ्कनगरे राजगृहं चौर्यरतोऽन्यदा । विष्टो मृदुमतिः शब्दमशृणोन्नान्दिवर्द्धनम्[5] १३३॥
शशाङ्कमुखसंज्ञस्य गुरोश्चरणमूलतः । मयाद्य परमो धर्मः श्रुतः शिवसुखप्रदः ॥१३४॥
विषया विषवद्देवि परिणामे सुदारुणाः । तस्मात्त्यजाम्यहं दीक्षां न शोकं कर्तुमर्हसि ॥१३५॥

पोदनपुरमें आया ॥१२१॥ वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें प्रविष्ट हो उसने पीनेके लिए जल माँगा सो ब्राह्मणीने उसे जल दिया। जल देते समय उस ब्राह्मणीके नेत्रोंसे टप-टप कर आंसू नीचे पड़ रहे थे ॥१२२॥अत्यन्त शीतल जलसे जिसकी आत्मा संतुष्ट हो गई थी ऐसे उस मृदुमतिने पूछा कि हे दयावति ! तू इस तरह क्यों रो रही है ? उसके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणीने कहा कि ॥१२३॥ हे भद्र ! मुझने निर्दया हो अपने पतिके साथ मिलकर तेरे ही समान आकृतिवाले अपने छोटेसे पुत्रको बड़े दुःखकी बात है कि घरसे निकाल दिया था ॥१२४॥ सो अनेक देशोंमें घूमते हुए तूने यदि कहीं उसे देखा हो तो उसका पता बता, वह नीलकमलके समान श्यामवर्ण था ॥१२५॥ तदनन्तर अश्रु छोड़ते हुए उसने कहा कि हे माता ! रोना छोड़, धैर्य धारण कर, वह मैं ही तेरा पुत्र हूँ जो चिरकाल बाद सामने आया हूँ ॥१२६॥ शकुना ब्राह्मणी, अपने अग्निमुख नामक पतिके साथ पुत्र प्राप्तिके महोत्सवको प्राप्त हो सुखसे रहने लगी और उसके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥१२७॥ मृदुमति, अत्यन्त तेजस्वी था, सुन्दर था, बुद्धिमान् था, नाना शास्त्रोंमें निपुण था, सर्व स्त्रियोंके नेत्र और मनको हरनेवाला था, धूर्तोंके मस्तकपर स्थित था अर्थात् उनमें शिरोमणि था ॥१२८॥ वह जुआमें सदा जीतता था, अत्यन्त चतुर था, कलाओंका घर था, और कामोपभोगमें सदा आसक्त रहता था। इस तरह वह नगरमें सदा क्रीड़ा करता रहता था ॥१२९॥ उस पोदनपुर नगरमें एक वसन्तडमरा नामकी वेश्या, समस्त वेश्याओंमें उत्तम थी। जो कामभोगके विषयमें उसकी अत्यन्त इष्ट स्त्री थी ॥१३०॥ उसने अपने माता-पिताको अन्य बन्धुजनोंके साथ-साथ दरिद्रतासे मुक्त कर दिया था जिससे वे समस्त इच्छित पदार्थोंको प्राप्त कर राजा-रानी जैसी लीलाको प्राप्त हो रहे थे ॥१३१॥ उसका पिता कुण्डल आदि अलंकारोंसे अत्यन्त देदीप्यमान था तथा माता मेखला आदि अलंकारोंसे युक्त हो नाना कार्य-कलापमें सदा व्यग्र रहती थी ॥१३२॥ एक दिन वह मृदुमति चोरी करनेके लिए शशाङ्कनामा नगरके राजमहलमें घुसा। वहाँका राजा नन्दिवर्धन विरक्त हो रानीसे कह रहा था सो उसे उसने सुना था ॥१३३॥ उसने कहा कि आज मैंने शशाङ्कमुख नामक गुरुके चरणमूलमें मोक्ष सुखका देनेवाला उत्तम धर्म सुना है ॥१३४॥ हे देवि ! ये विषय विषके समान अत्यन्त दारुण हैं

१. करुणायुक्तं म०, करुणायुक्ते इत्युक्ते इति पदच्छेदः। २. सवितृ म०। ३. वसन्तसमये म०। ४. परमेप्सिता म०। ५. नन्दिवर्धनम् म०।

शिक्षयन्तं नृपं देवीमेवं श्रीनन्दिवर्द्धनम् । श्रुत्वा मृदुमतिर्बोधिं निर्मलां समुपाश्रितः ॥१३६॥
संसारभावसंविग्नः साधोश्चन्द्रमुखश्रुतेः । पादमूलेऽभजद्दीक्षां सर्वग्रन्थविमोचितम् ॥१३७॥
अतपत् स तपो घोरं विधिं शास्त्रोक्तमाचरन् । भिक्षां[1] स्यात् प्राप्नुवन्किञ्चित् प्रासुकां सत्क्षमान्वितः १३८
अथ दुर्गगिरेर्मूर्द्धि नाम्ना गुणनिधिर्मुनिः । चकार चतुरो मासान्वार्षु[2]कानक्षमुक्तिदान् ॥१३९॥
सुरासुरस्तुतो धीरः समाप्तनियमोऽभवत् । उत्पपात मुनिः क्वापि विधिना गगनायनः ॥१४०॥
अथो मृदुमतिर्भिक्षाकरणार्थं सुचेष्टितः । आलोकनगरं प्राप्तो युगमात्राहितेक्षणः ॥१४१॥
ददर्श सम्भ्रमेणैतं पौरलोकः सपार्थिवः । शैलाग्रेऽवस्थितः सोऽयमिति ज्ञात्वा सुभक्तिकः ॥१४२॥
भक्ष्यैर्बहुप्रकारैस्तं तर्पयन्ति स्म पूजितम् । जिह्वेन्द्रियरतो मायां स च भेजे कुकर्मतः ॥१४३॥
स त्वं यः पर्वतस्याग्रे यतिनाथो व्यवस्थितः । वन्दितस्त्रिदशैरेवमुक्तः सोऽनमयच्छिरः ॥१४४॥
अज्ञानादभिमानेन दुःखबीजमुपार्जितम् । स्वादगौरवसक्तेन[3] तेनेदं स्वस्य वञ्चनम् ॥१४५॥
एतत्तेन गुरोरग्रे न मायाशल्यमुद्धृतम् । दुःखभाजनतां येन सम्प्राप्तः परमामिमाम् ॥१४६॥
ततो मृदुमतिः कालं कृत्वा तं कल्पमाश्रितः । अभिरामोऽमरो यत्र वर्तते महिमान्वितः ॥१४७॥
पूर्वकर्मानुभावेन तयोरतिनिरन्तरा । त्रिविष्टपेऽभवत् प्रीतिः परमर्द्धिसमेतयोः ॥१४८॥
देवीजनसमाकीर्णौ सुखसागरवर्तिनौ । बहूनब्धिसमां[4]स्तत्र रेमाते तौ स्वपुण्यतः ॥१४९॥

इसलिए मैं दीक्षा धारण करता हूँ तुम शोक करनेके योग्य नहीं हो ॥१३५॥ इस प्रकार रानीको शिक्षा देते हुए श्री नन्दिवर्धन राजाको सुनकर वह मृदुमति अत्यन्त निर्मल बोधिको प्राप्त हुआ ॥१३६॥ संसारकी दशासे विरक्त हो उसने शशाङ्कमुख नामा गुरुके पादमूलमें सर्व परिग्रह का त्याग करानेवाली जिनदीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ अब वह शास्त्रोक्त विधिका आचरण करता तथा जब कभी प्रासुक भिक्षा प्राप्त करता हुआ क्षमाधर्मसे युक्त हो घोर तप करने लगा ॥१३८॥

अथानन्तर गुणनिधि नामक एक उत्तम मुनिराजने दुर्गगिरि नामक पर्वतके शिखर पर आहारका परित्याग कर चार माहके लिए वर्षायोग धारण किया ॥१३९॥ सुर और असुरोंने जिसकी स्तुति की तथा जो चारण ऋद्धिके धारक थे ऐसे वे धीर वीर मुनिराज चार माहका नियम समाप्त कर कहीं विधिपूर्वक आकाशमार्गसे उड़ गये—विहार कर गये ॥१४०॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओंके धारक एवं युगमात्र पृथिवी पर दृष्टि डालनेवाले मृदुमति नामक मुनिराज भिक्षा के लिए आलोकनामा नगरमें आये ॥१४१॥ सो राजा सहित नगरवासी लोगोंने यह जानकर कि ये वे हो महामुनि हैं जो पर्वतके अग्रभाग पर स्थित थे उन्हें आते देख बड़े संभ्रमसे भक्ति सहित उनके दर्शन किये ॥१४२॥ तथा उनकी पूजा कर उन्हें नाना प्रकारके आहारोंसे संतुष्ट किया। और जिह्वा इन्द्रियमें आसक्त हुए उन मुनिने पाप कर्मके उदयसे माया धारण की ॥१४३॥ नगरवासी लोगोंने कहा कि तुम वही मुनिराज हो जो पर्वतके अग्रभागपर स्थित थे तथा देवोंने जिनकी वन्दना की थी। इस प्रकार कहने पर उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया किन्तु यह नहीं कहा कि मैं वह नहीं हूँ ॥१४४॥ इस प्रकार भोजनके स्वादमें लीन मृदुमति मुनिने अज्ञान अथवा अभिमानके कारण दुःखके बीजस्वरूप इस आत्मवञ्चनाका उपार्जन किया अर्थात् माया की ॥१४५॥ यतश्च उन्होंने गुरुके आगे अपनी यह माया शल्य नहीं निकाली इसलिए वे इस परम दुःखकी पात्रताको प्राप्त हुए ॥१४६॥ तदनन्तर मृदुमति मुनि मरण कर उसी स्वर्गमें पहुँचे जहाँ कि ऋद्धियों सहित अभिराम नामका देव रहता था ॥१४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे परम ऋद्धिको धारण करनेवाले उन दोनों देवोंकी स्वर्गमें अत्यन्त प्रीति थी ॥१४८॥ देवियोंके समूहसे

---

१. भिक्षां प्राप्नुवन् किञ्चित्प्रासुकां स क्षमान्वितः म० । २. -नत्र म० । क्षनु प० । ३. तेनैदं म० । ४. समास्तत्र ज० ।

च्युतो मृदुमतिस्तस्मात् पुण्यराशिपरिक्षये । मायावशेषकर्माक्तो जम्बूद्वीपं समागतः ॥१५०॥
उत्तुङ्गशिखरो नाम्ना निकुञ्ज इति भूधरः । अटव्यां तस्य शल्लक्यां गहनायां विशेषतः ॥१५१॥
अयं जीमूतसंघातसंकाशो वारणोऽभवत् । क्षुब्धार्णवसमस्वानो गतिनिर्जितमारुतः ॥१५२॥
अत्यन्तभैरवाकारः कोपकालेऽभिमानवान् । शशाङ्काकृतिसद्दंष्ट्रो दन्तिराजगुणान्वितः ॥१५३॥
विजयादिमहानागगोत्रजः परमद्युतिः । द्विषन्नैरावतस्येव स्वच्छन्दकृतविग्रहः ॥१५४॥
सिंहव्याघ्रमहावृक्षगण्डशैलविनाशकृत् । आसतां मानुषास्तावद्दुर्ग्रहः खेचरैरपि ॥१५५॥
समस्तश्वापदत्रासं कुर्वन्नामोदमात्रतः । रमते गिरिकुञ्जेषु नानापल्लवहारिषु ॥१५६॥
अक्षोभ्ये विमले नानाकुसुमैरुपशोभिते । मानसे सरसि क्रीडां कुरुतेऽनुचरान्वितः ॥१५७॥
विलासं सेवते सारं कैलासे सुलभेक्षिते । मन्दाकिन्याः मनोज्ञेषु ह्रदेषु च परः सुखी ॥१५८॥
अन्येषु च नगारण्यप्रदेशेष्वतिहारिषु । भजते क्रीडनं कान्तं बान्धवानां महोदयः ॥१५९॥
अनुवृत्तिप्रसक्तानां करेणूनां स भूरिभिः । सहस्रैः सङ्गतः सौख्यं भजते यूथपोचितम् ॥१६०॥
इतस्ततश्च विचरन् द्विरदौघसमावृतः । शोभते पक्षिसङ्घातैर्विनतानन्दनो यथा ॥१६१॥
घनाघनघनस्वानो दाननिर्झरपर्वतः । लङ्केन्द्रेणेक्षितः सोऽयमासीद्वारणसत्तमः ॥१६२॥
विद्यापराक्रमोग्रेण तेनायं साधितोऽभवत् । त्रिलोककण्टकाभिख्यां प्रापितश्चारुलक्षणः ॥१६३॥

युक्त तथा सुखरूपी सागरमें निमग्न रहनेवाले वे दोनों देव अपने पुण्योदयसे अनेक सागरपर्यन्त उस स्वर्गमें क्रीड़ा करते रहे ॥१४९॥

तदनन्तर मृदुमतिका जीव, पुण्यराशिके क्षीण होने पर वहाँसे च्युत हो मायाचारके दोषसे दूषित होनेके कारण जम्बूद्वीपमें आया ॥१५०॥ जम्बूद्वीपमें ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सहित निकुञ्ज नामका एक पर्वत है उस पर अत्यन्त सघन शल्लकी नामक वन है ॥१५१॥ उसी वनमें यह मेघ-समूहके समान हाथी हुआ है। इसका शब्द क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान है, इसने अपनी गतिसे वायुको जीत लिया है, क्रोधके समय इसका आकार अत्यन्त भयंकर हो जाता है, यह महा अभिमानी है, इसकी दाँढ़ें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हैं। यह गजराजके गुणोंसे सहित है, विजय आदि महागजराजोंके वंशमें उत्पन्न हुआ है, परम दीप्तिको धारण करनेवाला है, मानो ऐरावत हाथीसे द्वेष ही रखता है, स्वेच्छानुसार युद्ध करनेवाला है, सिंह व्याघ्र बड़े-बड़े वृक्ष तथा छोटी मोटी अनेक गोल चट्टानोंका विनाश करने वाला है, मनुष्योंकी बात जाने दो विद्याधरोंके द्वारा भी इसका पकड़ा जाना सरल नहीं है, यह अपनी गन्धमात्रसे समस्त वन्य पशुओंको भय उत्पन्न करता है तथा नाना प्रकारके पल्लवोंसे युक्त पहाड़ी निकुञ्जोंमें क्रीड़ा करता रहता है। ॥१५२–१५६॥ जिसे कोई क्षोभित नहीं कर सकता तथा जो नाना प्रकारके फूलोंसे सुशोभित है ऐसे मानस सरोवरमें यह अपने अनुयायियोंके साथ क्रीड़ा करता है ॥१५७॥ यह अनायास दृष्टिमें आये हुए कैलास पर्वत पर तथा गङ्गा नदीके मनोहर ह्रदोंमें अत्यन्त सुखी होता हुआ श्रेष्ठ शोभाको प्राप्त होता है ॥१५८॥ अपने बन्धुजनोंके महाभ्युदयको बढ़ानेवाला यह हाथी इनके सिवाय अत्यन्त मनोहर पहाड़ी वन प्रदेशोंमें सुन्दर क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ अनुकूल आचरण करनेमें तत्पर रहनेवाली हजारों हथिनियोंके साथ मिलकर यह यूथपतिके योग्य सुखका उपभोग करता है ॥१६०॥ हाथियोंके समूहसे घिरा हुआ यह हाथी जब यहाँ-वहाँ विचरण करता है तब पक्षियोंके समूहसे आवृत गरुड़के समान सुशोभित होता है ॥१६१॥

जिसकी गर्जना मेघगर्जनाके समान सघन है तथा जो दानरूप झरनोंके निकलनेके लिए मानो पर्वत ही है ऐसा यह उत्तम गजराज लंकाके धनी रावणके द्वारा देखा गया अर्थात् रावणने इसे देखा ॥१६२॥ तथा विद्या और पराक्रमसे उग्र रावणने इसे वशीभूत किया एवं सुन्दर-सुन्दर

अप्सरोभिः समं स्वर्गे प्रक्रीड्य सुचिरं सुखम् । करिणीभिः समं क्रीडामकरोत् सुकरी पुनः ॥१६४॥
ईदृशी कर्मणां शक्तिर्यज्जीवाः सर्वयोनिषु । वस्तुतो दुःखयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परां रतिम् ॥१६५॥
च्युतः सन्नभिरामोऽपि साकेतानगरे नृपः । भरतोऽयमभूद्धीमान् सद्धर्मगतमानसः ॥१६६॥
विलीनमोहनिचयः सोऽयं भोगपराङ्मुखः । श्रामण्यमीहते कर्तुं पुनर्भवनिवृत्तये ॥१६७॥
गोदण्डमार्गसदृशे यौ[1] मरीचिप्रवर्तिते[2] । समये दीक्षितावास्तां परित्यक्तमहाव्रतौ ॥१६८॥
तावेतौ मानिनौ भानुशशाङ्कोदयसंज्ञितौ । संसारदुःखितौ भ्रान्तौ भ्रातरौ कर्मचेष्टितौ ॥१६९॥
कृतस्य कर्मणो लोके सुखदुःखविधायिनः । जना निस्तपसोऽवश्यं प्राप्नुवन्ति फलोदयम् ॥१७०॥
चन्द्रः कुलङ्करो यश्च समाधिमरणी[3] मृगः । सोऽयं नरपतिर्जातो भरतः साधुमानसः ॥१७१॥
आदित्यश्रुतिविप्रश्च कुष्टमृत्युः कुरङ्गकः । सम्प्राप्तो गजतामेष पापकर्मानुभावतः ॥१७२॥
प्रमृद्य बन्धनस्तम्भं बलवानुद्धतः परम् । भरतालोकनात् स्मृत्वा पूर्वजन्म शमं गतः ॥१७३॥

शार्दूलविक्रीडितम्

ज्ञात्वैवं गतिमागतिं च विविधां बाह्यं सुखं वा ध्रुवं
कर्मारण्यमिदं विहाय विषमं धर्मे रमध्वं बुधाः ।
मानुष्यं समवाप्य यैर्जिनवरप्रोक्तो न धर्मः कृत-
स्ते संसारसुहृत्त्वमभ्युपगताः स्वार्थस्य दूरे स्थिताः ॥१७४॥

लक्षणोंसे युक्त इस हाथीका त्रिलोककंटक नाम रखा ॥१६३॥ यह पूर्वभवमें स्वर्गमें अप्सराओंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर सुखी हुआ अब हस्तिनियोंके साथ क्रीड़ा कर सुखी हो रहा है ॥१६४॥ यथार्थमें कर्मोंकी ऐसी ही विचित्र शक्ति है कि जीव, दुःखोंसे युक्त नाना योनियोंमें परम प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१६५॥ अभिरामका जीव भी च्युत हो अयोध्या नगरीमें राजा भरत हुआ है। यह भरत अत्यन्त बुद्धिमान् है तथा समीचीन धर्ममें इसका हृदय लग रहा है ॥१६६॥ जिसके मोहका समूह विलीन हो चुका है तथा जो भोगोंसे विमुख है ऐसा यह भरत पुनर्भव दूर करनेके लिए मुनि दीक्षा धारण करना चाहता है ॥१६७॥ श्रीऋषभदेवके समय ये दोनों सूर्योदय और चन्द्रोदय नामक भाई थे तथा उन्हीं ऋषभदेवके साथ जिनधर्ममें दीक्षित हुए थे किन्तु बादमें अभिमानसे प्रेरित हो महाव्रत छोड़कर मरीचिके द्वारा चलाये हुए परिव्राजक मतमें दीक्षित हो गये जिसके फलस्वरूप संसारके दुःखसे दुःखी हो कर्मोंका फल भोगते हुए चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करते रहे ॥१६८-१६९॥ सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें जो मनुष्य तप नहीं करते हैं वे अपने द्वारा किये हुए सुख दुःखदायी कर्मका फल अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥१७०॥ जो चन्द्रोदयका जीव पहले कुलंकर और उसके बाद समाधि मरण करनेवाला मृग हुआ था वही क्रम-क्रमसे उत्तम हृदयको धारण करनेवाला राजा भरत हुआ है ॥१७१॥ और सूर्योदय ब्राह्मणका जीव मरकर मृग हुआ फिर क्रम-क्रमसे पापकर्मके उदयसे इस हस्ती पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥१७२॥ अत्यन्त उत्कट बलको धारण करनेवाला यह हाथी पहले तो बन्धनका खम्भा उखाड़ कर क्षोभको प्राप्त हुआ परन्तु बादमें भरतके देखनेसे पूर्वभवका स्मरणकर शान्त हो गया ॥१७३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे विद्वज्जनो ! इस तरह नाना प्रकारकी गति-आगति तथा बाह्य सुख और दुःखको जानकर इस विषम कर्म अटवीको छोड़ धर्ममें रमण करो क्योंकि जिन्होंने मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जिनेन्द्र कथित धर्म धारण नहीं किया है वे संसार-भ्रमणको प्राप्त हो

---

१. यो म० । २. मरीचिः प्रवर्तते म० । ३. रमणी मृगः ज० ।

आर्यागीतिवृत्तम्

जिनवरवदनविनिर्गतमुपलभ्य शिवैकदानतत्परमतुलम् ।
निर्जितरविरुचिसुकृतं कुरुत यतो यात निर्मलं परमपदम् ॥१७५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतत्रिभुवनालङ्कारसमाध्यनुभवानुकीर्त्तनं नाम पञ्चाशीतितमं पर्व ॥८५॥

आत्म-हितसे दूर रहते हैं ॥१७४॥ हे भव्यजनो ! जो श्री जिनेन्द्र देवके मुखारविन्दसे प्रकट हुआ है तथा मोक्षके देनेमें तत्पर है ऐसे अनुपम जिनधर्मको पाकर सूर्यकी कान्तिको जीतनेवाला पुण्य संचय करो जिससे निर्मल परम पदको प्राप्त हो सको ॥१७५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत तथा त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला पचीसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥८५॥

षडशीतितमं पर्व

साधोस्तद्वचनं श्रुत्वा सुपवित्रं तमोऽपहम् । संसारसागरे घोरे नानादुःखनिवेदनम् ॥१॥
विस्मयं परमं प्राप्ता भरतानुभवोद्भवम् । पुस्तकर्मगतैवाऽऽसीत् सा सभा चेष्टितोज्झिता ॥२॥
भरतोऽथ समुत्थाय प्रचलद्धारकुण्डलः । प्रतापप्रथितः श्रीमान् देवेन्द्रसमविभ्रमः ॥३॥
वहन् संवेगमुत्तुङ्गं प्रह्वकायो महामनाः । रभसान्वितमासाद्य [1]बद्धपाण्यब्जकुड्मलः ॥४॥
जानुसम्पीडितक्षोणिः प्रणिपत्य मुनीश्वरम् । संसारवासखिन्नोऽसौ जगाद सुमनोहरम् ॥५॥
नाथ योनिसहस्रेषु सङ्कटेषु चिरं भ्रमन् । महाध्वश्रमखिन्नो[2]ऽहं यच्छ मे मुक्तिकारणम् ॥६॥
उह्यमानाय सम्भूतिमरणोग्रतरङ्गया । मह्यं संसृतिन[3]द्या त्वं हस्ताल[4]म्बकरो भव ॥७॥
इत्युक्त्वा त्यक्तनिःशेषग्रन्थपर्यङ्कबन्धगः । स्वकरेणाऽकरोल्लुञ्चं महासत्त्वसमन्वितः ॥८॥
परं सम्यक्त्वमासाद्य महाव्रतपरिग्रहः । दीक्षितो भरतो जातस्तत्क्षणेन मुनिः परः ॥९॥
साधु साध्विति देवानामन्तरिक्षेऽभवत् स्वनः । पेतुः पुष्पाणि दिव्यानि भरते मुनितामिते ॥१०॥
सहस्रमधिकं राज्ञां भरतस्यानुरागतः । क्रमागतां श्रियं त्यक्त्वा श्रामण्यं समशिश्रियत् ॥११॥
अनुग्रशक्तयः केचिन्नमस्कृत्य मुनिं जनाः । उपासाञ्चक्रिरे धर्मं विधिनागारसङ्गतम् ॥१२॥
सम्भ्रान्ता केकया बाष्पदुर्दिनाऽऽकुलचेतना । धावन्ती पतिता भूमौ व्यामोहं च समागता ॥१३॥

अथानन्तर जो अत्यन्त पवित्र थे, अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले थे, संसाररूपी घोर सागरके नाना दुःखोंका निरूपण करनेवाले थे और भरतके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाले थे ऐसे महामुनि श्री देशभूषण केवलीके उक्त वचन सुन कर वह समस्त सभा चित्रलिखितके समान निश्चल हो गई ॥१-२॥ तदनन्तर जिनके हार और कुण्डल हिल रहे थे, जो प्रतापसे प्रसिद्ध थे, श्रीमान् थे, इन्द्रके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे, अत्यधिक संवेगके धारक थे, जिनका शरीर नम्रीभूत था, मन उदार था, जिन्होंने हस्तरूपी कमलकी बोंड़ियोंको बाँध रक्खा था और जो संसार सम्बन्धी निवाससे अत्यन्त खिन्न थे ऐसे भरतने पृथिवी पर घुटने टेक कर मुनिराजको नमस्कार कर इस प्रकारके अत्यन्त मनोहारी वचन कहे ॥३-५॥ कि हे नाथ ! मैं संकटपूर्ण हजारों योनियोंमें चिरकालसे भ्रमण करता हुआ मार्गके महाश्रमसे खिन्न हो चुका हूँ अतः मुझे मोक्षका कारण जो तपश्चरण है वह दीजिये ॥६॥ हे भगवन् ! मैं जन्म-मरण रूपी ऊँची लहरोंसे युक्त संसाररूपी नदीमें चिरकालसे बहता चला आ रहा हूँ सो आप मुझे हाथका सहारा दीजिये ॥७॥ इस प्रकार कह कर भरत समस्त परिग्रहका परित्याग कर पर्यङ्कासनसे स्थित हो गये तथा महाधैर्यसे युक्त हो उन्होंने अपने हाथसे केश लोंच कर डाले ॥८॥ इस प्रकार परम सम्यक्त्वको पाकर महाव्रतको धारण करनेवाले भरत तत्क्षणमें दीक्षित हो उत्कृष्ट मुनि हो गये ॥९॥ उस समय भरतके मुनि अवस्थाको प्राप्त होनेपर आकाशमें देवोंका धन्य धन्य यह शब्द हुआ तथा दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥१०॥ भरतके अनुरागसे प्रेरित हो कुछ अधिक एक हजार राजाओंने क्रमागत राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर मुनिदीक्षा धारण की ॥११॥ जिनकी शक्ति हीन थी ऐसे कितने ही लोगोंने मुनिराजको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म धारण किया ॥१२॥ जो निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा कर रही थी, तथा जिसकी चेतना अत्यन्त आकुल थी ऐसी भरतकी माता केकया घबड़ा कर उनके पीछे-पीछे दौड़ती जा रही थी सो बीचमें ही पृथिवी

---

१. बद्धः पाण्यब्ज -म० । २. -सन्नोऽहं ख०, ज० । ३. नद्यास्त्वं म०, ज० । ४. हस्तलम्ब -म० ।

सुतप्रीतिभराक्रान्ता ततोऽसौ निश्चलाङ्गिका । गोशीर्षादिपयःसेकैरपि संज्ञामुपैति न ॥१४॥
व्यक्तचेतनतां प्राप्य चिराय स्वयमेव सा । अरोदीत् करुणं धेनुर्वत्सेनेव वियोजिता ॥१५॥
हा मे वत्स मनोह्लाद सुविनीत गुणाकर । क्व प्रयातोऽसि वचनं प्रयच्छाङ्गानि धारय ॥१६॥
त्वया पुत्रक संत्यक्ता दुःखसागरवर्त्तिनी । कथं स्थास्यामि शोकार्त्ता हा किमेतदनुष्ठितम् ॥१७॥
कुर्वन्तीति समाक्रन्दं हलिना चक्रिणा च सा । आनीयत समाश्वासं वचनैरतिसुन्दरैः ॥१८॥
पुण्यवान् भरतो विद्वानम्ब शोकं परित्यज । आवां ननु न किं पुत्रौ तवाज्ञाकरणोद्यतौ ॥१९॥
इति कातरतां कृच्छ्रात्याजिता शान्तमानसा । सपत्नीवाक्यजातैश्च सा बभूव विशोकिका ॥२०॥
विबुद्धा चाकरोन्निन्दामात्मनः शुद्धमानसा । धिक् स्त्रीकलेवरमिदं बहुदोषपरिप्लुतम् ॥२१॥
अत्यन्ताशुचिबीभत्सं नगरीनिर्झरोपमम् । करोमि कर्म तद् येन विमुच्ये पापकर्मतः ॥२२॥
पूर्वमेव जिनोक्तेन धर्मेणाऽसौ सुभाविता । महासंवेगसम्पन्ना सितैकवसनान्विता ॥२३॥
सकाशे पृथिवीमत्याः सह नारीशतैस्त्रिभिः । दीक्षां जग्राह सम्यक्त्वं धारयन्ती सुनिर्मलम् ॥२४॥

उपजातिः

त्यक्त्वा समस्तं गृहिधर्मजालं प्राप्याऽऽर्यिकाधर्ममनुत्तमं सा ।
रराज मुक्ता घनसङ्गमेन शशाङ्कलेखेव कलङ्कहीना ॥२५॥
इतोऽभवद्भिक्षुगणः सुतेजास्तथाऽऽर्यिकाणां प्रचयोऽन्यतोऽभूत् ।
तदा सदो भूरिसरोजयुक्तसरः[1] समं तन्नवति स्म कान्तम् ॥२६॥

पर गिर कर मूर्च्छित हो गई थी ॥१३॥ तदनन्तर जो पुत्रकी प्रीतिके भारसे युक्त थी, तथा जिसका शरीर निश्चल पड़ा हुआ था ऐसी वह केकया गोशीर्ष आदि चन्दनके जलके सींचने पर भी चेतनाको प्राप्त नहीं हो रही थी ॥१४॥ बहुत समय बाद जब वह स्वयं चेतनाको प्राप्त हुई तब बछड़ेसे रहित गायके समान करुण रोदन करने लगी ॥१५॥ वह कहने लगी कि हाय मेरे वत्स ! तू मनको आह्लादित करनेवाला था, अत्यन्त विनीत था और गुणोंकी खान था। अब तू कहाँ चला गया ? उत्तर दे और मेरे अङ्गोंको धारण कर ॥१६॥ हाय पुत्रक ! तेरे द्वारा छोड़ी हुई मैं दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो शोकसे पीड़ित होती हुई कैसे रहूँगी ? यह तूने क्या किया ? ॥१७॥ इस प्रकार विलाप करती हुई भरतकी माताको राम और लक्ष्मणने अत्यन्त सुन्दर वचनोंसे सन्तोष प्राप्त कराया ॥१८॥ उन्होंने कहा—हे माता ! भरत बड़ा पुण्यवान् और विद्वान् है, तू शोक छोड़। क्या हम दोनों तेरे आज्ञाकारी पुत्र नहीं हैं ? ॥१९॥ इस प्रकार जिससे बड़े भयसे उत्पन्न कातरता छुड़ाई गई थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध था, ऐसी वह केकया सपत्नीजनोंके वचनोंसे शोकरहित हो गई थी ॥२०॥ वह शुद्धहृदया जब सचेत हुई तब अपने आपकी निन्दा करने लगी। वह कहने लगी कि स्त्रीके इस शरीरको धिक्कार हो जो अनेक दोषोंसे आच्छादित है ॥२१॥ अत्यन्त अपवित्र है, ग्लानिपूर्ण है, नगरी निर्झर अर्थात् गटरके प्रवाहके समान है। अब तो मैं वह कार्य करूँगी जिसके द्वारा पापकर्मसे मुक्त हो जाऊँगी॥२२॥ वह जिनेन्द्र प्रणीत धर्मसे तो पहले ही प्रभावित थी, इसलिए महान् वैराग्यसे प्रयुक्त हो एक सफेद साड़ीसे युक्त हो गई ॥२३॥ तदनन्तर निर्मल सम्यक्त्वको धारण करती हुई उसने तीन सौ स्त्रियोंके साथ साथ पृथिवीमती नामक आर्याके पास दीक्षा ग्रहण कर ली ॥२४॥ समस्त गृहस्थधर्मके जालको छोड़ कर तथा आर्यिकाका उत्कृष्ट धर्म धारण कर वह केकया मेघके संगमसे रहित निष्कलंक चन्द्रमाकी रेखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥२५॥ उस समय देशभूषण मुनिराजकी सभामें एक ओर तो उत्तम तेजको धारण करनेवाले मुनियोंका समूह विद्यमान था और दूसरी ओर

१. युक्तं सदः समं म० ।

एवं जनस्तत्र बभूव नाना-व्रतक्रियासङ्गपवित्रचित्तः ।
समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न [1]युक्तिरस्ति ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतकेकयानिष्क्रमणाभिधानं नाम षडशीतितमं पर्व ॥८६॥

आर्यिकाओंका समूह स्थित था इसलिए वह सभा अत्यधिक कमल और कमलिनियोंसे युक्त सरोवरके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह वहाँ जितने मनुष्य विद्यमान थे उन सभीके चित्त नाना प्रकारकी व्रत सम्बन्धी क्रियाओंके संगसे पवित्र हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि सूर्योदय होने पर कौन भव्य जन प्रकाशसे युक्त नहीं होता ? अर्थात् सभी होते हैं ॥२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत और केकयाकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला छियासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८६॥

---

१. मुक्ति म० ।

सप्ताशीतितमं पर्व

अथ साधुः प्रशान्तात्मा लोकत्रयविभूषणः । अणुव्रतानि मुनिना विधिना परिलम्भितः ॥१॥
सम्यग्दर्शनसंयुक्तः संज्ञानः सत्क्रियोद्यतः । सागारधर्मसम्पूर्णो मतङ्गजवरोऽभवत् ॥२॥
पक्षमासादिभिर्भक्तस्युतैः[1] पत्रादिभिः स्वयम् । शुष्कैः स पारणां चक्रे दिनपूर्णैकवेलिकाम् ॥३॥
गजः संसारभीतोऽयं सच्चेष्टितपरायणः । अर्च्यमानो जनैः क्षोणीं विजहार विशुद्धिमान् ॥४॥
लड्डुकान् मण्डकान् मृष्टान्विविधाश्चारुपूरिकाः । पारणासमये तस्मै ससत्कारं ददौ जनः ॥५॥
तनुकर्मशरीरोऽसौ संवेगाऽऽलानसंयतः । उग्रं चत्वारि वर्षाणि तपश्चक्रे यमाङ्कुशः ॥६॥
स्वैरं स्वैरं परित्यज्य भुक्तिमुग्रतपा गजः । सल्लेखनां परिप्राप्य ब्रह्मोत्तरमशिश्रियत् ॥७॥
वराङ्गनासमाकीर्णो हारकुण्डलमण्डितः । पूर्वं सुरसुखं प्राप्तो गजः पुण्यानुभावतः ॥८॥
भरतोऽपि महातेजा महाव्रतधरो विभुः । धराधरगुरुस्त्यक्तबाह्यान्तरपरिग्रहः ॥९॥
व्युत्सृष्टाङ्गो महाधीरस्तिष्ठन्नस्तमिते रवौ । विजहार यथान्यायं चतुराराधनोद्यतः ॥१०॥
अविरुद्धो यथा वायुर्मृगेन्द्र इव निर्भयः । अकूपार इवाक्षोभ्यो निष्कम्पो मन्दरो यथा ॥११॥
जातरूपधरः सत्यकवचः क्षान्तिसायकः । परीषहजयोद्युक्तस्तपःसंयत्यवर्तत[2] ॥१२॥
समः शत्रौ च मित्रे च समानः सुखदुःखयोः । उत्तमः श्रमणः सोऽभूत् समर्धीस्तृणरत्नयोः ॥१३॥

अथानन्तर जिसकी आत्मा अत्यन्त शान्त थी ऐसे उस उत्तम त्रिलोकमण्डन हाथीको मुनिराजने विधिपूर्वक अणुव्रत धारण कराये ॥१॥ इस तरह वह उत्तम हाथी, सम्यग्दर्शनसे युक्त, सम्यग्ज्ञानका धारी, उत्तम क्रियाओंके आचरणमें तत्पर और गृहस्थ धर्मसे सहित हुआ ॥२॥ वह एक पक्ष अथवा एक मास आदिका उपवास करता था तथा उपवासके बाद अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तोंसे दिनमें एक बार पारणा करता था ॥३॥ इस तरह जो संसारसे भयभीत था, उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेमें तत्पर था, और अत्यन्त विशुद्धिसे युक्त था ऐसा वह गजराज मनुष्योंके द्वारा पूजित होता हुआ पृथिवी पर भ्रमण करता था ॥४॥ लोग पारणाके समय उसके लिए बड़े सत्कारके साथ मीठे-मीठे लाडू माँडे और नाना प्रकारकी पूरियाँ देते थे ॥५॥ जिसके शरीर और कर्म—दोनों ही अत्यन्त क्षीण हो गये थे, जो संवेग रूपी खम्भेसे बँधा हुआ था, तथा यम ही जिसका अंकुश था ऐसे उस हाथीने चार वर्ष तक उग्र तप किया ॥६॥ जो धीरे-धीरे भोजनका परित्याग कर अपने तपश्चरणको उग्र करता जाता था ऐसा वह हाथी सल्लेखना धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥७॥ वहाँ उत्तम स्त्रियोंसे सहित तथा हार और कुण्डलोंसे मण्डित उस हाथीने पुण्यके प्रभावसे पहले ही जैसा देवोंका सुख प्राप्त किया ॥८॥

इधर जो महातेजके धारक थे, महाव्रती थे, विभु थे, पर्वतके समान स्थिर थे, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहके त्यागी थे, शरीरकी ममतासे रहित थे, महाधीर वीर थे, जहाँ सूर्य डूब जाता था वहीं बैठ जाते थे, और चार आराधनाओंकी आराधनामें तत्पर थे ऐसे भरत महामुनि न्यायपूर्वक विहार करते थे ॥९–१०॥ वे वायुके समान बन्धनसे रहित थे, सिंहके समान निर्भय थे, समुद्रके समान क्षोभसे रहित थे, और मेरुके समान निष्कम्प थे ॥११॥ जो दिगम्बर मुद्राको धारण करनेवाले थे, सत्यरूपी कवचसे युक्त थे, क्षमारूपी बाणोंसे सहित थे और परीषहोंके जीतनेमें सदा तत्पर रहते थे ऐसे वे भरतमुनि सदा तपरूपी युद्धमें विद्यमान रहते थे ॥१२॥ वे शत्रु और मित्र, सुख और दुःख तथा तृण और रत्नमें समान रहते थे। इस तरह वे समबुद्धिके

---

१. च्युतः म० । २. तपोरूपसंग्रामे ।

सूचीनिचितमार्गेषु भ्राम्यतः शास्त्रपूर्वकम् । शत्रुस्थानेषु तस्याभूदनुरकुलचारिता ॥१४॥
अत्यन्तप्रलयं कृत्वा मोहनीयस्य कर्मणः । अवाप केवलज्ञानं लोकालोकावभासनम् ॥१५॥

आर्यागीतिः

ईदृङ्माहात्म्ययुतः काले समनुक्रमेण विगतरजस्कः ।
यदभीप्सितं तदेव स्थानं प्राप्तो यतो न भूयः पातः ॥१६॥
भरतर्षेरिदमनघं सुचरितमनुकीर्तयेन्नरो यो भक्त्या ।
स्वायुरियर्ति स कीर्तिं यशो बलं धनविभूतिमारोग्यं च ॥१७॥
सारं सर्वकथानां परममिदं चरितमुन्नतगुणं शुभ्रम् ।
शृण्वन्तु जना भव्या निर्जितरवितेजसो भवन्ति यदाशु ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतनिर्वाणगमनं नामसप्ताशीतितमं पर्व ॥८७॥

धारक उत्तम मुनि थे ॥१३॥ वे डाभकी अनियोंसे व्याप्त मार्गमें शास्त्रानुसार ईर्यासमितिसे चलते थे तथा शत्रुओंके स्थानोंमें भी उनका निर्भय विहार होता था ॥१४॥ तदनन्तर मोहनीय कर्मका अत्यन्त प्रलय—समूल क्षय कर वे लोक-अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥१५॥ जो इस प्रकारकी महिमासे युक्त थे तथा अनुक्रमसे जिन्होंने कर्मरजको नष्ट किया था ऐसे वे भरतमुनि उस अभीष्ट स्थान—मुक्तिस्थानको प्राप्त हुए कि जहाँसे फिर लौटकर आना नहीं होता ॥१६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य भरतमुनिके इस निर्मल चरितको भक्ति-पूर्वक कहता-सुनता है वह अपनी आयु पर्यन्त कीर्ति, यश, बल, धनवैभव और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७॥ यह चरित्र सर्व कथाओंका उत्तम सार है, उन्नत गुणोंसे युक्त है और उज्ज्वल है। हे भव्यजनो! इसे तुम सब ध्यानसे सुनो जिससे शीघ्र ही सूर्यके तेजको जीतनेवाले हो सको ॥१८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरतके निर्वाणका कथन करनेवाला सतासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८७॥

अष्टाशीतितमं पर्व

भरतेन समं वीरा निष्क्रान्ता ये महानृपाः । निःस्पृहा स्वशरीरेऽपि प्रव्रज्यां समुपागताः ॥१॥
प्राप्तानां दुर्लभं मार्गं तेषां सुपरमात्मनाम् । कीर्त्तयिष्यामि केषाञ्चिन्नामानि शृणु पार्थिव ॥२॥
सिद्धार्थः सिद्धसाध्यार्थो रतिदो रतिवर्द्धनः । अम्बुवाहरथो जाम्बूनदः शल्यः शशाङ्कपात् ॥३॥
विरसो नन्दनो नन्द आनन्दः सुमतिः सुधीः । सदाश्रयो महाबुद्धिः सूर्यारो जनवल्लभः ॥४॥
इन्द्रध्वजः श्रुतधरः सुचन्द्रः पृथिवीधरः । अलकः सुमतिः क्रोधः कुन्दरः सत्ववान्हरिः ॥५॥
सुमित्रो धर्ममित्रायः सम्पूर्णेन्दुः प्रभाकरः । नघुषः[1] सुन्दनः शान्तिः प्रियधर्मादयस्तथा ॥६॥
विशुद्धकुलसम्भूताः सदाचारपरायणाः । सहस्राधिकसंख्याना भुवनाख्यातचेष्टिताः ॥७॥
एते हस्त्यश्वपादातं प्रवालस्वर्णमौक्तिकम् । अन्तःपुरं च राज्यं च बहुजीर्णतृणं यथा ॥८॥
महाव्रतधराः शान्ता नानालब्धिसमागताः । आत्मध्यानानुरूपेण यथायोग्यं पदं श्रिताः ॥९॥
निष्क्रान्ते भरते तस्मिन् भरतोपमचेष्टिते । मेने शून्यकमात्मानं लक्ष्मणः स्मृततद्गुणः ॥१०॥
शोकाकुलितचेतस्को विषादं परमं भजन् । सूत्कारमुखरः क्लान्तलोचनेन्दीवरद्युतिः ॥११॥
विराधितभुजस्तम्भकृतावष्टम्भविग्रहः । तथापि प्रज्वलन् लक्ष्म्या मन्दवर्णमवोचत ॥१२॥
अधुना वर्त्तते क्वासौ भरतो गुणभूषणः । तरुणेन सता येन शरीरे प्रीतिरुज्झिता ॥१३॥
इष्टं बन्धुजनं त्यक्त्वा राज्यं च त्रिदशोपमम् । सिद्धार्थी स कथं भेजे जैनधर्मं सुदुर्धरम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अपने शरीरमें भी स्पृहा नहीं रखनेवाले जो बड़े-बड़े वीर राजा भरतके साथ दीक्षाको प्राप्त हुए थे तथा अत्यन्त दुर्लभ मार्गको प्राप्त हो जिन्होंने परमात्म पद प्राप्त किया था ऐसे उन राजाओंमेंसे कुछके नाम कहता हूँ सो सुनो ॥१-२॥ जिसके समस्त साध्य पदार्थ सिद्ध हो गये थे ऐसा सिद्धार्थ, रतिको देनेवाला रतिवर्द्धन, मेघरथ, जाम्बूनद, शल्य, शशाङ्कपाद् (चन्द्रकिरण), विरस, नन्दन, नन्द, आनन्द, सुमति, सुधी, सदाश्रय, महाबुद्धि, सूर्यार, जनवल्लभ, इन्द्रध्वज, श्रुतधर, सुचन्द्र, पृथिवीधर, अलक, सुमति, क्रोध, कुन्दर, सत्ववान्, हरि, सुमित्र, धर्ममित्राय, पूर्णचन्द्र, प्रभाकर, नघुष, सुन्दन, शान्ति और प्रियधर्म आदि ॥३-६॥ ये सभी राजा विशुद्ध कुलमें उत्पन्न हुए थे, सदाचारमें तत्पर थे, हजारसे अधिक संख्याके धारक थे और संसारमें इनकी चेष्टाएँ प्रसिद्ध थीं ॥७॥ ये सब हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक, मूँगा, सोना, मोती, अन्तःपुर और राज्यको जीर्ण-तृणके समान छोड़कर महाव्रतके धारी हुए थे । सभी शान्तचित्त एवं नाना ऋद्धियोंसे युक्त थे और अपने-अपने ध्यानके अनुरूप यथायोग्य पदको प्राप्त हुए थे ॥८-९॥

भरत चक्रवर्तीके समान चेष्टाओंके धारक भरतके दीक्षा ले लेने पर उसके गुणोंका स्मरण करनेवाले लक्ष्मण अपने आपको सूना मानने लगे ॥१०॥ यद्यपि उनका चित्त शोकसे आकुलित हो रहा था, वे परम विषादको प्राप्त थे, उनके मुखसे सू-सू शब्द निकल रहा था, जिनके नेत्र-रूपी नील-कमलोंकी कान्ति म्लान हो गई थी और उनका शरीर विराधितकी भुजारूपी खम्भोंके आश्रय स्थित था तथापि वे लक्ष्मीसे देदीप्यमान होते हुए धीरे-धीरे बोले कि ॥११-१२॥ गुण-रूपी आभूषणोंको धारण करनेवाला वह भरत इस समय कहाँ है ? जिसने तरुण होने पर भी शरीरसे प्रीति छोड़ दी है ॥१३॥ इष्ट बन्धुजनोंको तथा देवोंके समान राज्यको छोड़कर सिद्ध होनेकी इच्छा रखता हुआ वह अत्यन्त कठिन जैनधर्मको कैसे धारण कर गया ? ॥१४॥

---

१. नहुषः ।

आह्लादयन् सदः सर्वं ततः पद्मो विधानवित् । जगाद परमं धन्यो भरतः सुमहानसौ ॥१५॥
तस्यैकस्य मतिः शुद्धा तस्य जन्मार्थसङ्गतम् । विषान्नमिव यस्त्यक्त्वा राज्यं प्राव्रज्यमास्थितः ॥१६॥
पूज्यता वर्ण्यतां तस्य कथं परमयोगिनः । देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तुं गुणाकरम् ॥१७॥
केकयानन्दनस्यैव प्रारब्धगुणकीर्त्तनाः । सुखदुःखरसोन्मिश्रा मुहूर्त्तं पार्थिवा स्थिताः ॥१८॥
ततः समुत्थिते पद्मे सोद्वेगे लक्ष्मणे तथा । तथा स्वमास्पदं याता नरेन्द्रा बहुविस्मयाः ॥१९॥
सम्प्रधार्य पुनः प्राप्ताः कर्त्तव्याहितचेतसः । पद्मनाभं नमस्कृत्य प्रीत्या वचनमब्रुवन् ॥२०॥
विदुषामज्ञकानां वा प्रसादं कुरु नाथ नः । राज्याभिषेकमन्विच्छ सुरलोक[1]समद्युतिः ॥२१॥
विदधत्स्व[2]फलत्वं नश्चक्षुषोर्हृदयस्य च । तवाभिषेकसौख्येन भरितस्य नरोत्तम ॥२२॥
बिभ्रत्सप्तगुणैश्वर्यं राजराजो दिने दिने । पादौ नमति यत्रैष तत्र राज्येन किं मम ॥२३॥
प्रतिकूलमिदं वाच्यं न भवद्भिर्मयीदृशम् । स्वेच्छाविधानमात्रं हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥२४॥
इत्युक्ते जयशब्देन पद्माभमभिनन्द्य ते । गत्वा नारायणं प्रोचुः स चायातो बलान्तिकम् ॥२५॥
प्रावृडारम्भसम्भूतडम्बराम्भोदनिःस्वनाः । ततः समाहता भेर्यः शङ्खशब्दपुरःसराः ॥२६॥
दुन्दुभ्यानकझल्लर्यस्तूर्याणि प्रवराणि च । मुमुचुर्नादमुत्तुङ्गं वंशादिस्वनसङ्गतम् ॥२७॥
चारुमङ्गलगीतानि नाट्यानि विविधानि च । प्रवृत्तानि मनोज्ञानि यच्छन्ति प्रमदं परम् ॥२८॥

तदनन्तर समस्त सभाको आह्लादित करते हुए विधि-विधानके वेत्ता रामने कहा कि वह भरत परम धन्य तथा अत्यन्त महान् है ॥१५॥ एक उसीकी बुद्धि शुद्ध है, और उसीका जन्म सार्थक है कि जो विषमिश्रित अन्नके समान राज्यका त्याग कर दीक्षाको प्राप्त हुआ है ॥१६॥ जिसके गुणोंकी खानका वर्णन करनेके लिए इन्द्र भी समर्थ नहीं है ऐसे उस परम योगीकी पूज्यताका कैसे वर्णन किया जाय ? ॥१७॥ जिन्होंने भरतके गुणोंका वर्णन करना प्रारब्ध किया था, ऐसे राजा मुहूर्त भर सुख-दुःखके रससे मिश्रित होते हुए स्थित थे ॥१८॥ तदनन्तर उद्वेगसे सहित राम और लक्ष्मण जब उठ कर खड़े हुए तब बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त राजा लोग अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१९॥

अथानन्तर करने योग्य कार्यमें जिनका चित्त लग रहा था ऐसे राजा लोग परस्पर विचार कर पुनः रामके पास आये और नमस्कार कर प्रीति पूर्वक निम्न वचन बोले ॥२०॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! हम विद्वान् हों अथवा मूर्ख ! हमलोगों पर प्रसन्नता कीजिये । आप देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हैं अतः राज्याभिषेककी स्वीकृति दीजिये ॥२१॥ हे पुरुषोत्तम ! आप हमारे नेत्रों तथा अभिषेक सम्बन्धी सुखसे भरे हुए हमारे हृदयकी सफलता करो ॥२२॥ यह सुन रामने कहा कि जहाँ सात गुणोंके ऐश्वर्यको धारण करनेवाला राजाओंका राजा लक्ष्मण प्रतिदिन हमारे चरणोंमें नमस्कार करता है वहाँ हमें राज्यकी क्या आवश्यकता है ? ॥२३॥ इसलिए आप लोगोंको मेरे विषयमें इस प्रकारके विरुद्ध वचन नहीं कहना चाहिये क्योंकि इच्छानुसार कार्य करना ही तो राज्य कहलाता है ॥२४॥ कहनेका सार यह है कि आपलोग लक्ष्मणका राज्याभिषेक करो । रामके इस प्रकार कहने पर सबलोग जयध्वनिके साथ रामका अभिनन्दन कर लक्ष्मणके पास पहुँचे और नमस्कार कर राज्याभिषेक स्वीकृत करनेकी बात बोले । इसके उत्तरमें लक्ष्मण श्रीरामके समीप आये ॥२५॥

तदनन्तर वर्षाऋतुके प्रारम्भमें एकत्रित घनघटाके समान जिनका विशाल शब्द था तथा जिनके प्रारम्भमें शङ्खोंके शब्द हो रहे थे ऐसी भेरियाँ बजाई गईं ॥२६॥ दुन्दुभि, ढक्का, झालर, और उत्तमोत्तम तूर्य, बाँसुरी आदिके शब्दोंसे सहित उच्च शब्द छोड़ रहे थे ॥२७॥ मङ्गलमय

---

१. सुरलोकसमुद्युति म० । २. विदधत्सफलत्वं नश्च -म० ।

तस्मिन् महोत्सवे जाते स्नानीयासनवर्त्तिनौ । विभूत्या परया युक्तौ सङ्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥२९॥
रुक्मकाञ्चननिर्माणैर्नानारत्नमयैस्तथा । कलशैर्युक्तपद्मास्यैरभिषिक्तौ यथाविधि ॥३०॥
मुकुटाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषितौ । दिव्यस्रग्वस्त्रसम्पन्नौ वरालेपनचर्चितौ ॥३१॥
सीरपाणिर्जयत्वेषश्चक्री जयतु लक्ष्मणः । इति तौ जयशब्देन खेचरैरभिनन्दितौ ॥३२॥
राजेन्द्रयोस्तयोः कृत्वा खेचरेन्द्रा महोत्सवम् । गत्वाऽभिषिषिचुर्देवीं स्वामिनीं नु विदेहजाम् ॥३३॥
महासौभाग्यसम्पन्ना पूर्वमेव हि साऽभवत् । प्रधाना सर्वदेवीनामभिषेकाद् विशेषतः ॥३४॥
आनन्द्य जयशब्देन वैदेहीमभिषेचनम् । ऋद्धया चक्रुर्विशल्यायाश्चक्रिपत्नीविभुत्वकृत् ॥३५॥
स्वामिनी लक्ष्मणस्यापि प्राणदानाद् बभूव या । मर्यादामात्रकं तस्यास्तज्जातमभिषेचनम् ॥३६॥
जय त्रिखण्डनाथस्य लक्ष्मणस्याथ सुन्दरि । इति तां जयशब्देन तेऽभिनन्द्य स्थिताः सुखम् ॥३७॥
त्रिकूटशिखरे राज्यं ददौ रामो विभीषणे । सुग्रीवस्य च किष्किन्धे वानरध्वजभूभृतः ॥३८॥
श्रीपर्वते मरुज्जस्य गिरौ श्रीनगरे पुरे । विराधितनरेन्द्रस्य गोत्रक्रमनिषेविते ॥३९॥
महार्णवोर्मिसन्तानचुम्बिते बहुकौतुके । कैष्किन्धे च पुरे स्फीतं पतित्वं नलनीलयोः ॥४०॥
विजयार्द्धदक्षिणे स्थाने प्रख्याते रथनूपुरे । राज्यं जनकपुत्रस्य प्रणतोग्रनभश्चरम् ॥४१॥
दैवोपगीतनगरे कृतो रत्नजटी नृपः । शेषा अपि यथायोग्यं विषयस्वामिनः कृताः ॥४२॥

सुन्दर गीत, और नाना प्रकारके मनोहर नृत्य उत्तम आनन्द प्रदान कर रहे थे ॥२८॥ इस प्रकार उस महोत्सवके होने पर परम विभूतिसे युक्त राम और लक्ष्मण साथ ही साथ अभिषेकके आसन पर आरूढ हुए ॥२९॥ तत्पश्चात् जिनके मुख, कमलोंसे युक्त थे ऐसे चाँदी सुवर्ण तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित कलशोंके द्वारा विधिपूर्वक उनका अभिषेक हुआ ॥३०॥ दोनों ही भाई मुकुट, अङ्गद, केयूर, हार और कुण्डलोंसे विभूषित किये गये। दोनों ही दिव्य मालाओं और वस्त्रोंसे सम्पन्न तथा उत्तमोत्तम विलेपनसे चर्चित किये गये ॥३१॥ जिनके हाथमें हलायुध विद्यमान है ऐसे श्रीराम और जिनके हाथमें चक्ररत्न विद्यमान है ऐसे लक्ष्मणकी जय हो इस प्रकार जय-जयकारके द्वारा विद्याधरोंने दोनोंका अभिनन्दन किया ॥३२॥ इस प्रकार उन दोनों राजाधिराजोंका महोत्सव कर विद्याधर राजाओंने स्वामिनी सीतादेवीका जाकर अभिषेक किया ॥३३॥ वह सीतादेवी पहलेसे ही महा सौभाग्यसे सम्पन्न थी फिर उस समय अभिषेक होनेसे विशेष कर सब देवियोंमें प्रधान हो गई थी ॥३४॥ तदनन्तर जय-जयकारसे सीताका अभिनन्दन कर उन्होंने बड़े वैभवके साथ विशल्याका अभिषेक किया। उसका वह अभिषेक चक्रवर्तीकी पट्टराज्ञीके विभुत्वको प्रकट करनेवाला था ॥३५॥ जो विशल्या प्राणदान देनेसे लक्ष्मणकी भी स्वामिनी थी उसका अभिषेक केवल मर्यादा मात्रके लिए हुआ था अर्थात् वह स्वामिनी तो पहले से ही थी उसका अभिषेक केवल नियोग मात्र था ॥३६॥ अथानन्तर हे तीन खण्डके अधिपति लक्ष्मणकी सुन्दरि ! तुम्हारी जय हो इस प्रकारके जय-जयकारसे उसका अभिनन्दन कर सब राजा लोग सुखसे स्थित हुए ॥३७॥

तदनन्तर श्री रामने विभीषणके लिए त्रिकूटाचलके शिखरका, वानरवंशियोंके राजा सुग्रीवको किष्किन्ध पर्वतका, हनूमानको श्रीपर्वतका, राजा विराधितके लिए उसकी वंशपरम्परासे सेवित श्रीपुर नगरका और नल तथा नीलके लिए महासागरकी तरङ्गोंसे चुम्बित अनेक कौतुकोंको धारण करनेवाले, किष्किन्धपुरका विशाल साम्राज्य दिया ॥३८-४०॥ भामण्डलके लिए विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमें स्थित रथनूपुर नगर नामक प्रसिद्ध स्थानमें उग्र विद्याधरोंको नम्रीभूत करनेवाला राज्य दिया ॥४१॥ रत्नजटीको देवोपगीत नगरका राजा बनाया और शेष लोग भी यथायोग्य देशोंके स्वामी किये गये ॥४२॥

उपजातिः

एवं स्वपुण्योदययोग्यमाप्ता राज्यं नरेन्द्राश्चिरमप्रकम्पम् ।
रामानुमत्या बहुलब्धहर्षास्तस्थुर्यथास्वं निलयेषु दीप्ताः ॥४३॥
पुण्यानुभावस्य फलं विशालं विज्ञाय सम्यग्जगति प्रसिद्धम् ।
कुर्वन्ति ये धर्मरतिं मनुष्या रवेर्धु तिं ते जनयन्ति तन्वीम्[1] ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे राज्याभिषेकाभिधानं विभागदर्शनं नाम अष्टाशीतितमं पर्व ॥८८॥

इस प्रकार जो अपने-अपने पुण्योदयके योग्य चिरस्थायी राज्यको प्राप्त हुए थे तथा रामचन्द्रजीकी अनुमतिसे जिन्हें अनेक हर्षके कारण उपलब्ध थे ऐसे वे सब देदीप्यमान राजा अपने-अपने स्थानोंमें स्थित हुए ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य जगत्में प्रसिद्ध पुण्यके प्रभावका फल जानकर धर्ममें प्रीति करते हैं वे सूर्यकी प्रभाको भी कृश कर देते हैं ॥४४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला तथा अन्य राजाओंके विभागको दिखलानेवाला अठासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८८॥

---

१. तन्वम् म० ।

नवाशीतितमं पर्व

अथ सम्यग्वहन् प्रीतिं पद्माभो लक्ष्मणस्तथा । ऊचे शत्रुघ्नमिष्टं त्वं विषयं रुचिमानय ॥१॥
गृह्णासि किमयोध्यार्द्धं साधु वा पोदनापुरम् । किं वा राजगृहं रम्यं यदि वा पौण्ड्रसुन्दरम् ॥२॥
इत्याद्याः शतशस्तस्य राजधान्यः सुतेजसः । उपदिष्टा न चास्यैता निदधुर्मानसे पदम् ॥३॥
मथुरायाचने तेन कृते पद्मः पुनर्जगौ । मधुर्नाम च तत्स्वामी त्वया ज्ञातो न किं रिपुः ॥४॥
जामाता रावणस्यासावनेकाहवशोभितः । शूलं चमरनाथेन यस्य दत्तमनिष्फलम् ॥५॥
अमरैरपि दुर्वारं तन्निदाघार्कदुःसहम् । हृत्वा[1] प्राणान् सहस्रस्य शूलमेति पुनः करम् ॥६॥
यस्यार्थं कुर्वतां मन्त्रमस्माकं वर्त्तते समा । रात्रावपि न विन्दामो निद्रां चिन्तासमाकुलाः ॥७॥
हरीणामन्वयो येन जायमानेन पुष्कलः । नीतः परममुद्योतं लोकस्तिग्मांशुना यथा ॥८॥
खेचरैरपि दुःसाध्यो लवणार्णवसंज्ञकः । सुतो यस्य कथं शूरं तं विजेतुं भवान् क्षमः ॥९॥
ततो जगाद शत्रुघ्नः किमत्र बहुभाषितैः । प्रयच्छ मथुरां मह्यं ग्रहीष्यामि ततः स्वयम् ॥१०॥
मधूकमिव कृन्तामि मधुं यदि न संयुगे । ततो दशरथेनाहं पित्रा मानं वहामि नो ॥११॥
शरभः सिंहसङ्घातमिव तस्य बलं यदि । न चूर्णयामि न भ्राता युष्माकमहकं तदा ॥१२॥
नास्मि सुप्रजसः कुक्षौ सम्भूतो यदि तं रिपुम् । नयामि दीर्घनिद्रां न त्वदाशीः कृतपालनः ॥१३॥

अथानन्तर अच्छी तरह प्रीतिको धारण करनेवाले राम और लक्ष्मणने शत्रुघ्नसे कहा कि जो देश तुझे इष्ट हो उसे स्वीकृत कर ॥१॥ क्या तू अयोध्याका आधाभाग लेना चाहता है ? या उत्तम पोदनपुरको ग्रहण करना चाहता है ? या राजगृह नगर चाहता है अथवा मनोहर पौण्ड्र-सुन्दर नगरकी इच्छा करता है ? ॥२॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मणने उस तेजस्वीके लिए सैकड़ों राजधानियाँ बताईं पर वे उसके मनमें स्थान नहीं पा सकीं ॥३॥ तदनन्तर जब शत्रुघ्नने मथुराकी याचना की तब रामने उससे कहा कि मथुराका स्वामी मधु नामका शत्रु है यह क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है ? ॥४॥ वह मधु रावणका जमाई है, अनेक युद्धोंसे सुशोभित है, और चमरेन्द्रने उसके लिए कभी व्यर्थ नहीं जानेवाला वह शूल रत्न दिया है, कि जो देवोंके द्वारा भी दुर्निवार है, जो ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान अत्यन्त दुःसह है, और जो हजारोंके प्राण हरकर पुनः उसके हाथमें आ जाता है ॥५-६॥ जिसके लिए मन्त्रणा करते हुए हमलोग चिन्तातुर हो सारी रात निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं ॥७॥ जिस प्रकार सूर्य उदित होता हुआ ही समस्त लोकको परमप्रकाश प्राप्त कराता है उसी प्रकार जिसने उत्पन्न होते ही विशाल हरिवंशको परमप्रकाश प्राप्त कराया था ॥८॥ और जिसका लवणार्णव नामका पुत्र विद्याधरोंके द्वारा भी दुःसाध्य है उस शूरवीरको जीतनेके लिए तू किस प्रकार समर्थ हो सकेगा ? ॥९॥

तदनन्तर शत्रुघ्नने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिये मैं उससे स्वयं ले लूँगा ॥१०॥ यदि मैं युद्धमें मधुको मधुके छत्तेके समान नहीं तोड़ डालूँ तो मैं पिता दशरथसे अहंकार नहीं धारण करूँ अर्थात् उनके पुत्र होनेका गर्व छोड़ दूँ ॥११॥ जिस प्रकार अष्टापद सिंहोंके समूहको नष्ट कर देता है उसी प्रकार यदि मैं उसके बलको चूर्ण नहीं कर दूँ तो आपका भाई नहीं होऊँ ॥१२॥ आपका आशीर्वाद ही जिसकी रक्षा कर रहा है ऐसा मैं यदि उस शत्रुको दीर्घ निद्रा नहीं प्राप्त करा दूँ तो मैं सुप्रजाकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ नहीं कहलाऊँ ॥१३॥ इस प्रकार उत्तम तेजका धारक शत्रुघ्न जब पूर्वोक्त प्रतिज्ञाको प्राप्त हुआ

---

१. कृत्वा म० ।

एवमास्थां समारूढे तस्मिन्नुत्तमतेजसि । विस्मयं परमं प्राप्ता विद्याधरमहेश्वराः ॥१४॥
ततस्तमुद्यतं गन्तुं समुत्सार्य हलायुधः । जगाद दक्षिणामेकां धीर मे यच्छ याचितः ॥१५॥
तमरिघ्नोऽब्रवीद्दाता त्वमनन्यसमो विभुः । याचसे किं त्वतः श्लाघ्यं परं मेऽन्यद् भविष्यति ॥१६॥
असूनामपि नाथस्त्वं का कथाऽन्यत्र वस्तुनि । युद्धविघ्नं विमुच्यैकं ब्रूहि किं करवाणि वः ॥१७॥
ध्यात्वा जगाद पद्माभो वत्सकासौ त्वया मधुः । रहितः शूलरत्नेन क्षोभ्यः छिद्रे मदर्थनात् ॥१८॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा सिद्धान्नत्वा समर्च्य च । [1]भुक्त्वा मातरमागत्य नत्वाऽपृच्छत् सुखस्थिताम्॥१९॥
समीक्ष्य तनयं देवी स्नेहादाघ्राय मस्तके । जगाद जय वत्स त्वं शरैः शत्रुगणं [2]शितैः ॥२०॥
वत्समर्द्धासने कृत्वा वीरसूरगदत् पुनः । वीर दर्शयितव्यं ते पृष्ठं संयति न द्विषाम् ॥२१॥
प्रत्यागतं कृतार्थं त्वां वीक्ष्य जातक संयुगात् । पूजां परां करिष्यामि जिनानां हेमपङ्कजैः ॥२२॥
त्रैलोक्यमङ्गलात्मानः सुरासुरनमस्कृताः । मङ्गलं तव यच्छन्तु जितरागादयो जिनाः ॥२३॥
संसारप्रभवो मोहो यैर्जितोऽत्यन्तदुर्जयः । अर्हन्तो भगवन्तस्ते भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२४॥
चतुर्गतिविधानं ये देशयन्ति त्रिकालगम् । ददतां ते स्वयम्बुद्धास्तव बुद्धिं रिपोर्जये ॥२५॥
करस्थामलकं यद्वल्लोकालोकं स्वतेजसा । पश्यन्तः केवलालोका भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२६॥
कर्मणाऽष्टप्रकारेण मुक्तास्त्रैलोक्यमूर्द्धगाः । सिद्धाः सिद्धिकरा वत्स भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२७॥
कमलादित्यचन्द्रक्ष्मामन्दराब्धिवियत् समाः । आचार्याः परमाधारा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२८॥

तब विद्याधर राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१४॥ तदनन्तर वहाँ जानेके लिए उद्यत शत्रुघ्नको सामनेसे दूर हटाकर श्रीरामने कहा कि हे धीर ! मैं तुझसे याचना करता हूँ तू मुझे एक दक्षिणा दे ॥१५॥ यह सुन शत्रुघ्नने कहा कि असाधारण दाता तो आप ही हैं सो आप ही जब याचना कर रहे हैं तब मेरे लिए इससे बढ़कर अन्य प्रशंसनीय क्या होगा ? ॥१६॥ आप तो मेरे प्राणोंके भी स्वामी हैं फिर अन्य वस्तुकी क्या कथा है ? एक युद्धके विघ्नको छोड़कर कहिये कि मै आपकी क्या करूँ ? आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥१७॥

तदनन्तर रामने कुछ ध्यान कर उससे कहा कि हे वत्स ! मेरे कहनेसे तू एक बात मान ले । वह यह कि जब मधु शूल रत्नसे रहित हो तभी तू अवसर पाकर उसे क्षोभित करना अन्य समय नहीं ॥१८॥ तत्पश्चात् 'जैसी आपकी आज्ञा हो' यह कहकर तथा सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार और उनकी पूजा कर भोजनोपरान्त शत्रुघ्न सुखसे बैठी हुई माताके पास आकर तथा प्रणाम कर पूछने लगा ॥१९॥ रानी सुप्रजाने पुत्रको देखकर उसका मस्तक सूँघा और उसके बाद कहा कि हे पुत्र ! तू तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा शत्रु समूहको जीते ॥२०॥ वीरप्रसविनी माताने पुत्रको अर्धासन पर बैठाकर पुनः कहा कि हे वीर ! तुझे युद्धमें शत्रुओंको पीठ नहीं दिखाना चाहिए ॥२१॥ हे पुत्र ! तुझे युद्धसे विजयी हो लौटा देखकर मैं सुवर्ण कमलोंसे जिनेन्द्र भगवान्की परम पूजा करूँगी ॥२२॥ जो तीनों लोकोंके लिए मङ्गल स्वरूप हैं, तथा सुर और असुर जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे वीतराग जिनेन्द्र तेरे लिए मङ्गल प्रदान करें ॥२३॥ जिन्होंने संसारके कारण अत्यन्त दुर्जय मोहको जीत लिया है ऐसे अर्हन्त भगवान् तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥२४॥ जो तीन काल सम्बन्धी चतुर्गतिके विधानका निरूपण करते हैं ऐसे स्वयम्बुद्ध जिनेन्द्र भगवान् तेरे लिए शत्रुके जीतनेमें बुद्धि प्रदान करें ॥२५॥ जो अपने तेजसे समस्त लोकालोकको हाथ पर रक्खे हुए आमलकके समान देखते हैं ऐसे केवलज्ञानी तुम्हारे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥२६॥ जो आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित हो त्रिलोक शिखर पर विद्यमान हैं ऐसे सिद्धिके करनेवाले सिद्ध परमेष्ठी, हे वत्स ! तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥२७॥ जो कमलके समान निर्लिप्त, सूर्यके

---

१. भक्त्वा म० । २. तीक्ष्णैः ।

परात्मशासनाभिज्ञाः कृतानुगतशासनाः । सदायुष्मं[1]नुपाध्यायाः कुर्वन्तु तव मङ्गलम् ॥२९॥
तपसा द्वादशाङ्गेन निर्वाणं साधयन्ति ये । भद्र ते साधवः शूरा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥३०॥
इति प्रतीष्य[2] विघ्नघ्नी[3]माशिषं दिव्यमङ्गलाम् । प्रणम्य मातरं यातः शत्रुघ्नः सद्मनो बहिः ॥३१॥
हेमकक्षापरीतं स समारूढो महागजम् । रराजाम्बुदपृष्ठस्थः सम्पूर्ण इव चन्द्रमाः ॥३२॥
नानायानसमारूढैर्नरराजशतैर्वृतः । शुशुभे स वृतो देवैः सहस्रनयनो यथा ॥३३॥
त्रीनावासानुरुप्रीतिं भ्रातरं स समागतम् । जगौ पूज्य निवर्त्तस्व द्रागव्रजाम्यनपेक्षतः ॥३४॥
लक्ष्मणेन धनूरत्नं समुद्रावर्तमर्पितम् । तस्मै ज्वलनवक्त्राश्च शराः पवनरंहसः ॥३५॥
कृतान्तवक्त्रमात्माभं नियोज्यास्मै चमूपतिम् । लक्ष्मणेन समं रामश्चिन्तायुक्तो न्यवर्तत ॥३६॥
राजन्नरिघ्नवीरोऽपि महाबलसमन्वितः । मथुरां प्रति याति स्म मधुराजेन पालिताम् ॥३७॥
क्रमेण पुण्यभागायास्तीरं प्राप्य ससम्भ्रमम् । सैन्यं न्यवेशयद्दूरमध्वानं समुपागतम् ॥३८॥
कृताशेषक्रियस्तत्र मन्त्रिवर्गो गतश्रमः । चकार संशयापन्नो मन्त्रमत्यन्तसूक्ष्मधीः ॥३९॥
मधुभङ्गकृताशंसां पश्यतास्य धियं शिशोः । केवलं योऽभिमानेन प्रवृत्तो नयवर्जितः ॥४०॥
महावीर्यः पुरा येन मान्धाता निर्जितो रणे । खेचरैरपि दुःसाध्यो जय्यः सोऽस्य कथं मधुः ॥४१॥
[4]चलत्पादाततुङ्गोर्मिशस्त्रग्राहकुलाकुलम् । कथं वाञ्छति बाहुभ्यां तरितुं मधुसागरम् ॥४२॥

समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, पृथिवीके समान निश्चल, सुमेरुके समान उन्नत-उदार, समुद्रके समान गम्भीर और आकाशके समान निःसङ्ग हैं तथा परम आधार स्वरूप हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तेरे लिए मङ्गलरूप हों ॥२८॥ जो निज और पर शासनके जाननेवाले हैं तथा जो अपने अनुगामी जनोंको सदा उपदेश करते हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हे आयुष्मन्! तेरे लिए मङ्गल रूप हों ॥२९॥ और जो बारह प्रकारके तपके द्वारा मोक्ष सिद्ध करते हैं—निर्वाण प्राप्त करते हैं ऐसे शूरवीर साधु परमेष्ठी हे भद्र! तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥३०॥ इस प्रकार विघ्नोंको नष्ट करनेवाले दिव्य मङ्गल स्वरूप आशीर्वादको स्वीकृत कर तथा माताको प्रणाम कर शत्रुघ्न घरसे बाहर चला गया ॥३१॥ सुवर्णमयी मालाओंसे युक्त महागज पर बैठा शत्रुघ्न मेघपृष्ठ पर स्थित पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥३२॥ नाना प्रकारके वाहनों पर आरूढ सैकड़ों राजाओंसे घिरा हुआ वह शत्रुघ्न, देवोंसे घिरे इन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३३॥ अत्यधिक प्रीतिको धारण करनेवाले भाई राम और लक्ष्मण तीन पड़ाव तक उसके साथ गये थे। तदनन्तर उसने कहा कि हे पूज्य! आप लौट जाइये अब मैं निरपेक्ष हो शीघ्र ही आगे जाता हूँ ॥३४॥ उसके लिए लक्ष्मणने सागरावर्त नामका धनुषरत्न और वायुके समान वेगशाली अग्निमुख बाण समर्पित किये ॥३५॥ तत्पश्चात् अपनी समानता रखनेवाले कृतान्तवक्त्रको सेनापति बनाकर रामचन्द्रजी चिन्तायुक्त होते हुए लक्ष्मणके साथ वापिस लौट गये ॥३६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! बड़ी भारी सेना अथवा अत्यधिक पराक्रमसे युक्त वीर शत्रुघ्नने मधु राजाके द्वारा पालित मथुराकी ओर प्रयाण किया ॥३७॥ क्रम-क्रमसे पुण्यभागा नदीका तट पाकर उसने दीर्घ मार्गको पार करनेवाली अपनी सेना संभ्रम सहित ठहरा दी ॥३८॥ वहाँ जिन्होंने समस्त क्रिया पूर्ण की थी, जिनका श्रम दूर हो गया था और जिनकी बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म थी ऐसे मन्त्रियोंके समूहने संशयारूढ हो परस्पर इस प्रकार विचार किया ॥३९॥ कि अहो! मधुके पराजयकी आकांक्षा करनेवाली इस बालककी बुद्धि तो देखो जो नीतिरहित हो केवल अभिमानसे ही युद्धके लिए प्रवृत्त हुआ है ॥४०॥ जो विद्याधरोंके द्वारा भी दुःसाध्य था ऐसा महाशक्तिशाली मान्धाता जिसके द्वारा पहले युद्धमें जीता गया था वह मधु इस बालकके द्वारा कैसे जीता जा सकेगा? ॥४१॥ जिसमें चलते हुए पैदल सैनिक रूपी ऊँची ऊँची लहरें उठ रही

---

१. सदा युष्मानुपाध्यायाः म० । २. प्रतीक्ष्य । ३. विघ्नापहारिणीम् । ४. बलात् ज० ।

पादातसुमहावृक्षं मत्तवारणभीषणम् । प्रविश्य मधुकान्तारं को निःक्रामति जीवितः ॥४३॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य कृतान्तकुटिलोऽवदत् । यूयं भीताः किमित्येवं त्यक्त्वा मानसमुन्नतिम् ॥४४॥
अमोघेन किलाऽऽरूढो गर्वं शूलेन यद्यपि । हन्तुं तथापि तं शक्तो मधुं शत्रुघ्नसुन्दरः ॥४५॥
करेण बलवान् दन्ती पातयेद्धरणीरुहान् । प्रक्षरद् दानधारोऽपि सिंहेन तु निपात्यते ॥४६॥
लक्ष्मीप्रतापसम्पन्नः सत्त्ववान् बलवान् बुधः । सुसहायश्च शत्रुघ्नः शत्रुघ्नो जायते ध्रुवम् ॥४७॥
अथ मन्त्रिजनाऽऽदेशान् मथुरानगरीं गताः । प्रत्यावृत्य चरा वार्त्तां वदन्ति स्म यथाविधि ॥४८॥
शृणु देवाऽस्ति पूर्वस्यां मथुरा नगरी दिशि । उद्यानं रम्यमत्यन्तं राजलोकसमावृतम् ॥४९॥
मध्येऽमर[1]कुरोर्यद्वत्कुबेरच्छदसंज्ञितम् । इच्छापूरणसम्पन्नं विपुलं राजतेतराम् ॥५०॥
जयन्त्यात्र महादेव्या सहितस्याद्य वर्तते । वारीगतगजस्येव स्पर्शवश्यस्य भूभृतः ॥५१॥
कामिनो दिवसः षष्ठस्त्यक्ताशेषान्यकर्मणः । महासुस्थाभिमानस्य प्रमादवशवर्तिनः ॥५२॥
प्रतिज्ञां तव नो वेद नागमं कामवश्यधीः । बुधैरुपेक्षितो मोहात्स भिषग्भिः सरोगवत् ॥५३॥
प्रस्तावे यदि नैतस्मिन् मथुराऽध्यास्यते ततः । अन्यपुंवाहिनीवाहैर्दुःसहः स्यान्मधूदधिः ॥५४॥
वचनं तत्समाकर्ण्य शत्रुघ्नः क्रमकोविदः । ययौ शतसहस्रेण [2]यूनां मथुरां पुरीम् ॥५५॥

हैं तथा जो शस्त्ररूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है ऐसे मधुरूपी सागरको यह भुजाओंसे कैसे तैरना चाहता है ? ॥४२॥ जो पैदल सैनिक रूपी बड़े-बड़े वृक्षोंसे युक्त तथा मदोन्मत्त हाथियोंसे भयंकर है ऐसे मधुरूपी वनमें प्रवेश कर कौन पुरुष जीवित निकलता है ? ॥४३॥ इस प्रकार मन्त्रियोंका कहा सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने कहा कि तुम लोग अभिमानको छोड़कर इस तरह भयभीत क्यों हो रहे हो ? ॥४४॥ यद्यपि मधु, अमोघ शूलके कारण गर्व पर आरूढ है—अहंकार कर रहा है तथापि शत्रुघ्न उसे मारनेके लिए समर्थ हैं ॥४५॥ जिसके मदकी धारा झर रही है ऐसा बलवान् हाथी यद्यपि अपनी सूँड़से वृक्षोंको गिरा देता है तथापि वह सिंहके द्वारा मारा जाता है ॥४६॥ यतश्च शत्रुघ्न लक्ष्मी और प्रतापसे सहित है, धैर्यवान् है, बलवान् है, बुद्धिमान् है, और उत्तम सहायकोंसे युक्त है इसलिए अवश्य ही शत्रुको नष्ट करनेवाला होगा ॥४७॥

अथानन्तर मन्त्रिजनोंके आदेशसे जो गुप्तचर मथुरा नगरी गये थे उन्होंने लौटकर विधि-पूर्वक यह समाचार कहा कि हे देव ! सुनिये, यहाँसे उत्तर दिशामें मथुरा नगरी है। वहाँ नगरके बाहर राजलोकसे घिरा हुआ एक अत्यन्त सुन्दर उद्यान है ॥४८-४९॥ सो जिस प्रकार देवकुरुके मध्यमें इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला कुबेरच्छन्द नामका विशाल उपवन सुशोभित है उसी प्रकार वहाँ वह उद्यान सुशोभित है ॥५०॥ अपनी जयन्ती नामक महादेवीके साथ राजा मधु इसी उद्यानमें निवास कर रहा है। जिस प्रकार हथिनीके वशमें हुआ हाथी बन्धनमें पड़ जाता है उसी प्रकार राजा मधु भी महादेवीके वशमें हुआ बन्धनमें पड़ा है ॥५१॥ वह राजा अत्यन्त कामी है, उसने अन्य सब काम छोड़ दिये हैं वह महा अभिमानी है तथा प्रमादके वशीभूत है। उसे उद्यानमें रहते हुए आज छठवाँ दिन है ॥५२॥ जिसकी बुद्धि कामके वशीभूत है ऐसा वह मधु राजा, न तो तुम्हारी प्रतिज्ञाको जानता है और न तुम्हारे आगमनका ही उसे पता है। जिस प्रकार वैद्य किसी रोगीकी उपेक्षा कर देते हैं उसी प्रकार मोहकी प्रबलतासे विद्वानोंने भी उसकी उपेक्षा कर दी है ॥५३॥ यदि इस समय मथुरापर अधिकार नहीं किया जाता है तो फिर वह मधुरूपी सागर अन्य पुरुषोंकी सेनारूपी नदियोंके प्रवाहसे दुःसह हो जायगा–उसका जीतना कठिन हो जायगा ॥५४॥ गुप्तचरोंके यह वचन सुनकर क्रमके जाननेमें निपुण शत्रुघ्न एक लाख घोड़ा लेकर मथुराकी ओर चला ॥५५॥

१. देवकुरो- । २. अश्वानाम् ।

अर्द्धरात्रे व्यतीतेऽसौ परलोके प्रमादिनि । निवृत्य प्राविशद्द्वारस्थानं लब्धमहोदयः ॥५६॥
आसीद् योगीव शत्रुघ्नः द्वारं कर्मेव चूर्णितम् । प्राप्ताऽत्यन्तमनोज्ञा च मथुरा सिद्धिभूरिव ॥५७॥
देवो जयति शत्रुघ्नः श्रीमान् दशरथात्मजः । बन्दिनामिति वक्त्रेभ्यो महानादः समुद्ययौ ॥५८॥
परेणाथ समाक्रान्तां विज्ञाय नगरीं जनः । लङ्कायामङ्गदप्राप्तौ यथा क्षोभमितो भयात् ॥५९॥
त्रासात्तरलनेत्राणां स्त्रीणामाकुलताजुषाम् । सद्यः प्रचलिता गर्भा हृदयेन समं भृशम् ॥६०॥
महाकलकलारावप्रेरणे प्रतिबोधिनः । उद्ययुः सहसा शूराः सिंहा इव भयोज्झिताः ॥६१॥
विध्वस्य शब्दमात्रेण शत्रुलोकं मधोर्गृहम् । सुप्रभातनयोऽविशद्दृश्यन्तोर्जितविक्रमः ॥६२॥
तत्र दिव्यायुधाकीर्णां सुतेजाः परिपालयन् । शालामवस्थितः प्रीतो यथार्हं समितोदयः ॥६३॥
मधुराभिर्मनोज्ञाभिर्भारतीभिरशेषतः । नीतो लोकः समाश्वासं जहौ त्राससमागमम् ॥६४॥
शत्रुघ्नं मथुरां ज्ञात्वा प्रविष्टं मधुसुन्दरः । निरैद् रावणवत्कोपादुद्यानात् स महाबलः ॥६५॥
शत्रुघ्नरक्षितं स्थानं प्रवेष्टुं मधुपार्थिवः । निर्ग्रन्थरक्षितं मोहो यथा शक्नोति नो तदा ॥६६॥
प्रवेशं विविधोपायैरलब्ध्वाप्यभिमानवान् । रहितश्चापि शूलेन न सन्धिं वृणुते मधुः ॥६७॥
असहन्तः परानीकं द्रष्टुं दर्पसमुद्धुरम् । शत्रुघ्नसैनिकाः सैन्यात् स्वस्मान्निर्ययुरश्विनः ॥६८॥
तत्राहवसमारम्भे शात्रुघ्नं सकलं बलम् । प्राप्तं जातश्च संयोगस्तयोः सैन्यसमुद्रयोः ॥६९॥
रथेभसादिपादाताः समर्था विविधायुधाः । रथेभैः सादिपादातैरालग्नाः सह वेगिभिः ॥७०॥

तदनन्तर अर्धरात्रि व्यतीत होनेपर जब सब लोग आलस्यमें निमग्न थे, तब महान् ऐश्वर्य को प्राप्त हुए शत्रुघ्नने लौटकर मथुराके द्वारमें प्रवेश किया ॥५६॥ वह शत्रुघ्न योगीके समान था, द्वार कर्मोंके समूहके समान चूर चूर हो गया था, और अत्यन्त मनोहर मथुरा नगरी सिद्ध भूमिके समान थी ॥५७॥ 'राजा दशरथके पुत्र शत्रुघ्नकी जय हो' इस प्रकार वन्दीजनोंके मुखोंसे बड़ा भारी शब्द उठ रहा था ॥५८॥

अथानन्तर जिस प्रकार लंकामें अंगदके पहुँचने पर लंकाके निवासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हुए थे उसी प्रकार नगरीको शत्रुके द्वारा आक्रान्त जान मथुरावासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥५९॥ भयके कारण जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे तथा जो आकुलताको प्राप्त थीं ऐसी स्त्रियोंके गर्भ उनके हृदयके साथ-साथ अत्यन्त विचलित हो गये ॥६०॥ महा कलकल शब्दकी प्रेरणा होने पर जो जाग उठे थे ऐसे निर्भय शूर-वीर सिंहोंके समान सहसा उठ खड़े हुए ॥६१॥ तत्पश्चात् अत्यन्त प्रबल पराक्रमको धारण करनेवाला शत्रुघ्न, शब्दमात्रसे ही शत्रु-समूहको नष्ट कर राजा मधुके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥६२॥ वहाँ वह अतिशय प्रतापी शत्रुघ्न दिव्य शस्त्रोंसे व्याप्त आयुधशालाकी रक्षा करता हुआ स्थित था। वह प्रसन्न था तथा यथायोग्य अभ्युदयको प्राप्त था ॥६३॥ वह मधुर तथा मनोज्ञ वाणीके द्वारा सबको सान्त्वना प्राप्त कराता था इसलिए सबने भयका परित्याग किया था ॥६४॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको मथुरामें प्रविष्ट जानकर वह महाबलवान् मधुसुन्दर रावणके समान क्रोध वश उद्यानसे बाहर निकला ॥६५॥ उस समय जिस प्रकार निर्ग्रन्थ मुनिके द्वारा रक्षित आत्मामें मोह प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं है उसी प्रकार शत्रुघ्नके द्वारा रक्षित अपने स्थानमें राजा मधु प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं हुआ ॥६६॥ यद्यपि मधु नाना उपाय करने पर भी मथुरामें प्रवेशको नहीं पा रहा था, और शूलसे रहित था तथापि वह अभिमानी होनेके कारण शत्रुघ्नसे सन्धिकी प्रार्थना नहीं करता था ॥६७॥ तत्पश्चात् अहंकारसे उत्कट शत्रु सेनाको देखनेके लिए असमर्थ हुए शत्रुघ्नके घुड़सवार सैनिक अपनी सेनासे बाहर निकले ॥६८॥ वहाँ युद्ध प्रारम्भ होते-होते शत्रुघ्नकी समस्त सेना आ पहुँची और दोनों ही पक्षकी सेना रूपी सागरोंके बीच संयोग हो गया अर्थात् दोनों ही सेनाओंमें मुठभेड़ शुरू हुई ॥६९॥ उस समय शक्तिसे सम्पन्न तथा नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले रथ हाथी तथा

असह्यन्परसैन्यस्य दर्पं रौद्रमहास्वनम् । कृतान्तकुटिलोऽविशद् वेगवानाहितं बलम् ॥७१॥
अवारितगतिस्तत्र रणे क्रीडां चकार सः । स्वयम्भूरमणोद्याने त्रिविष्टपपतिर्यथा ॥७२॥
अथ तं गोचरीकृत्य कुमारो लवणार्णवः । बाणैर्घन इवाम्भोभिस्तिरश्चक्रे महाधरम् ॥७३॥
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टैः शरैराशीविषप्रभैः । चिच्छेद सायकानस्य तैश्च व्याप्तं महीनभः ॥७४॥
अन्योन्यं विरथीकृत्य सिंहाविव बलोत्कटौ । करिपृष्ठसमारूढौ सरोषौ चक्रतुर्युधम् ॥७५॥
विताडितः कृतान्तः सः प्रथमं वक्षसीषुणा । चकार कवचं शत्रुं शरैरस्त्रैरनन्तरम् ॥७६॥
ततस्तोमरमुद्यम्य कृतान्तवदनं पुनः । लवणोऽताडयत् क्रोधविस्फुरल्लोचनद्युतिः ॥७७॥
स्वशोणितनिषेकाक्तौ महासंरम्भवर्तिनौ । किंशुकानोकहच्छायौ प्रवीरौ तौ विरेजतुः ॥७८॥
गदासिचक्रसम्पातो बभूव तुमुलस्तयोः । परस्परबलोन्मादविषादकरणोत्कटः ॥७९॥
दत्तयुद्धश्चिरं शक्त्या ताडितो लवणार्णवः । वक्षस्यपासृतः क्षोणीं स्वर्गीव सुकृतक्षयात् ॥८०॥
पतितं तनयं वीक्ष्य मधुराहवमस्तके । धावन् कृतान्तवक्त्राय शत्रुघ्नेन विशब्दितः ॥८१॥
शत्रुघ्नगिरिणा रुद्धो मधुवाहो व्यवर्द्धत । गृहीतः शोककोपाभ्यां दुःसहाभ्यामुपक्रमन् ॥८२॥
दृष्टिमाशीविषस्येव तस्याशक्तं निरीक्षितुम् । सैन्यं व्यद्रवदत्युग्राद् वाताद् वानदलौघवत् ॥८३॥
तस्याभिमुखमालोक्य व्रजन्तं सुप्रजः[1] सुतम् । अभिमानसमारूढा योधाः प्रत्यागता मुहुः ॥८४॥

घोड़ोंके सवार एवं पैदल सैनिक, वेगशाली रथ, हाथी तथा घोड़ोंके सवारों एवं पैदल सैनिकोंके साथ भिड़ गये ॥७०॥ शत्रु सेनाके भयंकर शब्द करनेवाले दर्पको सहन नहीं करता हुआ कृतान्तवक्त्र बड़े वेगसे शत्रुकी सेनामें जा घुसा ॥७१॥ सो जिस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्रमें इन्द्र विना किसी रोक-टोकके क्रीड़ा करता है उसी प्रकार वह कृतान्तवक्त्र भी विना किसी रोक-टोकके युद्धमें क्रीड़ा करने लगा ॥७२॥ तदनन्तर जिस प्रकार मेघ, जलके द्वारा महापर्वतको आच्छादित करता है उसी प्रकार मधुसुन्दरके पुत्र लवणार्णवने, कृतान्तवक्त्रका सामना कर उसे बाणोंसे आच्छादित किया ॥७३॥ इधर कृतान्तवक्त्रने भी, कान तक खिंचे हुए सर्प तुल्य बाणोंके द्वारा उसके बाण काट डाले और उनसे पृथिवी तथा आकाशको व्याप्त कर दिया ॥७४॥ सिंहोंके समान बलसे उत्कट दोनों योद्धा परस्पर एक दूसरेके रथ तोड़कर हाथीकी पीठ पर आरूढ हो क्रोध सहित युद्ध करने लगे ॥७५॥ प्रथम ही लवणार्णवने कृतान्तवक्त्रके वक्षःस्थल पर बाणसे प्रहार किया सो उसके उत्तरमें कृतान्तवक्त्रने भी बाणों तथा शस्त्रोंके प्रहारसे शत्रु और कवचको अन्तरसे रहित कर दिया अर्थात् शत्रुका कवच तोड़ डाला ॥७६॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसके नेत्रोंकी कान्ति देदीप्यमान हो रही थी ऐसे लवणार्णवने तोमर उठाकर कृतान्तवक्त्र पर पुनः प्रहार किया ॥७७॥ जो अपने रुधिरके निषेकसे युक्त थे तथा महाक्रोध पूर्वक जो भयंकर युद्ध कर रहे थे ऐसे दोनों वीर फूले हुए पलाश वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ उन दोनोंके बीच, अपनी-अपनी सेनाके हर्ष विषाद करनेमें उत्कट गदा खड्ग और चक्र नामक शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा हो रही थी ॥७९॥ तदनन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जिसके वक्षःस्थल पर शक्ति नामक शस्त्रसे प्रहार किया गया था ऐसा लवणार्णव पृथिवी पर इस प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार कि पुण्य क्षय होनेसे कोई देव पृथिवी पर आ पड़ता है ॥८०॥

रणाग्र भागमें पुत्रको गिरा देख मधु कृतान्तवक्त्रको लक्ष्य कर दौड़ा परन्तु शत्रुघ्नने उसे बीचमें धर ललकारा ॥८१॥ जो दुःखसे सहन करने योग्य शोक और क्रोधके वशीभूत था ऐसा मधुरूपी प्रवाह शत्रुघ्नरूपी पर्वतसे रुककर समीपमें वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥८२॥ आशीविष सर्पके समान उसकी दृष्टिको देखनेके लिए असमर्थ हुई शत्रुघ्नकी सेना उस प्रकार भाग उठी जिस प्रकार कि तीक्ष्ण वायुसे सूखे पत्तोंका समूह भाग उठता है ॥८३॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको उसके

[1] शत्रुघ्नम् ।

तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्गं भीत्याऽनुगामिनः । यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥८५॥
अथोत्तमरथारूढो दिव्यं कार्मुकमाश्रयन् । हारराजितवक्षस्को मुकुटीलोलकुण्डलः ॥८६॥
शरदादित्यसङ्काशो निःप्रत्यूहगतिः प्रभुः । प्रजज्ञाभिमुखः शत्रोरत्युग्रक्रोधसङ्गतः ॥८७॥
तदा शतानि योधानां बहूनि दहति क्षणात् । संशुष्कपत्रकूटानि यथा दावोऽरिमर्दनः ॥८८॥
न कश्चिदग्रतस्तस्य रणे वीरोऽवतिष्ठते । जिनशासनवीरस्य यथान्यमतदूषितः ॥८९॥
योऽपि तेन समं योद्धुं कश्चिद् वाञ्छति मानवान् । सोऽपि दन्तीव सिंहाग्रे विध्वंसं व्रजति क्षणात् ॥९०॥
उन्मत्तसदृशं जातं तत्सैन्यं परमाकुलम् । निपतत्क्षतभूयिष्टं मधुं शरणमाश्रितम् ॥९१॥
रंहसा गच्छतस्तस्य मधुश्चिच्छेद [1]केतनम् । रथाश्वास्तस्य तेनाऽपि विलुप्ताः क्षुरसायकैः ॥९२॥
ततः सम्भ्रान्तचेतस्को मधुः क्षितिधरोपमम् । वारुणेन्द्रं समारुह्य क्रोधज्वलितविग्रहः ॥९३॥
प्रच्छादयितुमुद्युक्तः शरैरन्तरवर्जितैः । महामेघ इवादित्यबिम्बं दशरथात्मजः ॥९४॥
छिन्दानेन शरान् बद्धकवचं तस्य पुष्कलः । रणप्राघूर्णकाचारः कृतः शत्रुघ्नसूरिणा ॥९५॥
अथ शूलायुधत्यक्तं ज्ञात्वाऽऽत्मानं निबोधवान् । सुतमृत्युमहाशोको वीक्ष्य शत्रुं सुदुर्जयम् ॥९६॥
बुद्ध्वाऽऽत्मनोऽवसानं च कर्म च क्षीणमूर्जितम् । नैर्ग्रन्थ्यं वचनं धीरः सस्माराऽनुशयान्वितः ॥९७॥

सामने जाते देख जो अभिमानी योद्धा थे वे पुनः लौट आये ॥८४॥ सो ठीक ही है क्योंकि अनुगामी-सैनिक भयसे तभी तक पराजयको प्राप्त होते हैं जब तक कि वे सामने प्रसन्नमुख स्वामीको नहीं देख लेते हैं ॥८५॥

अथानन्तर जो उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ दिव्य धनुषको धारण कर रहा था, जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था, जो शिर पर मुकुट धारण किये हुए था, जिसके कुण्डल हिल रहे थे, जो शरत् ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान था, जिसकी चालको कोई रोक नहीं सकता था, जो सब प्रकारसे समर्थ था, और अत्यन्त तीक्ष्ण क्रोधसे युक्त था ऐसा शत्रुघ्न शत्रुके सामने जा रहा था ॥८६–८७॥ जिस प्रकार दावानल, सूखे पत्तोंकी राशिको क्षण भरमें जला देता है उसी प्रकार शत्रुओंको नष्ट करनेवाला वह शत्रुघ्न सैकड़ों योधाओंको क्षण भरमें जला देता था ॥८८॥ जिस प्रकार जिनशासनमें निपुण विद्वान्‌के सामने अन्य मतसे दूषित मनुष्य नहीं ठहर पाता है उसी प्रकार कोई भी वीर युद्धमें उसके आगे नहीं ठहर पाता था ॥८९॥ जो कोई भी मानी मनुष्य, उसके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करता था वह सिंहके आगे हाथीके समान क्षणभरमें विनाशको प्राप्त हो जाता था ॥९०॥ जो उन्मत्तके समान अत्यन्त आकुल थी तथा जो अधिकांश घायल होकर गिरे हुए योद्धाओंसे प्रचुर थी ऐसी राजा मधुकी सेना मधुकी शरणमें पहुँची ॥९१॥

अथानन्तर मधुने वेगसे जाते हुए शत्रुघ्नकी ध्वजा काट डाली और शत्रुघ्नने भी छुराके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसके रथ और घोड़े छेद दिये ॥९२॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त संभ्रान्त था, और जिसका शरीर क्रोधसे प्रज्वलित हो रहा था ऐसा मधु पर्वतके समान विशाल गजराज पर आरूढ़ होकर निकला ॥९३॥ सो जिस प्रकार महामेघ सूर्यके बिम्बको आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार मधु भी निरन्तर छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुघ्नको आच्छादित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९४॥ इधर चतुर शत्रुघ्नने भी उसके बाण और कसे हुए कवचको छेदकर रणके पाहुनेका जैसा सत्कार होना चाहिए वैसा पुष्कलताके साथ उसका सत्कार किया अर्थात् खूब खबर ली ॥९५॥

अथानन्तर जो अपने आपको शूल नामक शस्त्रसे सहित जानकर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ था तथा पुत्रकी मृत्युका महाशोक जिसे पीड़ित कर रहा था ऐसे मधुने शत्रुको दुर्जेय देख कर विचार किया कि अब मेरा अन्त होनेवाला है। भाग्य की बात कि उसी समय उसके प्रबल

---

१. काननम् म० ।

अशाश्वते समस्तेऽस्मिन्नारम्भे दुःखदायिनि । कर्मैकमेव संसारे शस्यते धर्मकारणम् ॥९८॥
नृजन्म सुकृती प्राप्य धर्मे दत्ते न यो मतिम् । स मोहकर्मणा जन्तुर्वञ्चितः परमार्थतः ॥९९॥
ध्रुवं पुनर्भवं ज्ञात्वा पापेनात्महितं मया । न कृतं स्ववशे काले धिङ्मां मूढं प्रमादिनम् ॥१००॥
आत्माधीनस्य पापस्य कथं जाता न मे सुधीः । पुरस्कृतोऽरिणेदानीं किं करोमि हताशकः ॥१०१॥
प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागखननादरः । को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥१०२॥
सर्वथा यावदेतस्मिन् समये स्वार्थकारणम् । शुभं मनःसमाधानं कुर्वे तावदनाकुलः ॥१०३॥
अर्हद्भ्योऽथ विमुक्तेभ्य आचार्येभ्यस्तथा त्रिधा । उपाध्यायगुरुभ्यश्च साधुभ्यश्च नमो नमः ॥१०४॥
अर्हन्तोऽथ विमुक्ताश्च साधवः केवलीरितः । धर्मश्च मङ्गलं शश्वदुत्तमं मे चतुष्टयम् ॥१०५॥
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु त्रिपञ्चार्जनभूमिषु[1] । अर्हतां लोकनाथानामेषोऽस्मि प्रणतस्त्रिधा[2] ॥१०६॥
यावज्जीवं सहावद्यं योगं मुञ्चे न चात्मकम् । निन्दामि च पुरोपात्तं प्रत्याख्यानपरायणः ॥१०७॥
अनादौ भवकान्तारे यन्मया समुपार्जितम् । मिथ्या दुष्कृतमेतन्मे स्थितोऽहं तत्त्वसङ्गतौ ॥१०८॥
व्युत्सृजाम्येष हातव्यमुपादेयमुपाददे । ज्ञानं दर्शनमात्मा मे शेषं संयोगलक्षणम् ॥१०९॥
संस्तरः परमार्थेन न तृणं न च भूः शुभा । मत्या कलुषया मुक्तो जीव एव हि संस्तरः ॥११०॥
एवं सद्ध्यानमारुह्य त्यक्त्वा ग्रन्थं द्वयात्मकम् । द्रव्यतो गजपृष्ठस्थो मधुः केशानपानयत् ॥१११॥

कर्मका उदय क्षीण हो गया जिससे उसने बड़ी धीरता और पश्चात्तापके साथ दिगम्बर मुनियोंके वचनका स्मरण किया ॥९६-९७॥ वह विचार करने लगा कि यह समस्त आरम्भ क्षणभङ्गुर तथा दुःख देनेवाला है। इस संसारमें एक वही कार्य प्रशंसा योग्य है जो धर्मका कारण है ॥९८॥ जो पुण्यात्मा प्राणी मनुष्य जन्म पाकर धर्ममें बुद्धि नहीं लगाता है वह यथार्थमें मोह कर्मके द्वारा ठगा गया है ॥९९॥ पुनर्जन्म अवश्य ही होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापीने उस समय अपना हित नहीं किया जिस समय कि काल अपने आधीन था अतः प्रमाद करनेवाले मुझ मूर्खको धिक्कार है ॥१००॥ मैं पापी जब स्वाधीन था तब मुझे सद्बुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हुई? अब जब कि शत्रु मुझे अपने सामने किये हुए है तब मैं अभागा क्या करूँ? ॥१०१॥ जब भवन जलने लगता है तब कुँआ खुदवानेके प्रति आदर कैसा? और जिसे साँपने डस लिया है उसे मन्त्र सिद्ध करनेका समय क्या है? अर्थात् ये सब कार्य तो पहलेसे करनेके योग्य होते हैं ॥१०२॥ इस समय तो सब प्रकारसे यही उचित जान पड़ता है कि मैं निराकुल हो मनका शुभ समाधान करूँ क्योंकि वही आत्महितका कारण है ॥१०३॥ अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों परमेष्ठियोंके लिए मन, वचन कायसे बार बार नमस्कार हो ॥१०४॥ अर्हन्त, सिद्ध, साधु और केवली भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ धर्म ये चारों पदार्थ मेरे लिए सदा मङ्गल स्वरूप हैं ॥१०५॥ अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जितने अर्हन्त हैं मैं उन सबको मन वचन कायसे नमस्कार करता हूँ ॥१०६॥ मैं जीवन पर्यन्तके लिए सावद्य योगका त्याग करता हूँ उसके विपरीत शुद्ध आत्माका त्याग नहीं करता हूँ तथा प्रत्याख्यानमें तत्पर होकर पूर्वोपार्जित पाप कर्मकी निन्दा करता हूँ ॥१०७॥ इस आदिरहित संसार रूप अटवीमें मैंने जो पाप किया है वह मिथ्या हो। अब मैं तत्त्व विचार करनेमें लीन होता हूँ ॥१०८॥ यह मैं छोड़ने योग्य समस्त कार्योंको छोड़ता हूँ और ग्रहण करने योग्य कार्यको ग्रहण करता हूँ, ज्ञान दर्शन ही मेरी आत्मा है पर पदार्थके संयोगसे होनेवाले अन्य भाव सब पर पदार्थ हैं ॥१०९॥ समाधिमरणके लिए यथार्थमें न तृण ही सांथरा है और न उत्तम भूमि ही सांथरा है किन्तु कलुषित बुद्धिसे रहित आत्मा ही उत्तम सांथरा है ॥११०॥ इस प्रकार समीचीन ध्यान पर आरूढ हो उसने अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग दोनों प्रकारके परिग्रह छोड़ दिये

---

१. पञ्चदशकर्मभूमिषु । २. प्रणतीस्त्रिधा म० ।

गाढक्षतशरीरोऽसौ धृतिं परमदुर्धराम् । अध्यासीनः कृतोत्सर्गः कायादेः सुविशुद्धधीः ॥११२॥
शत्रुघ्नोऽपि तदाऽऽगत्य नमस्कारपरायणः । क्षन्तव्यं च त्वया साधो मम दुष्कृतकारिणः ॥११३॥
अमराप्सरसः संख्यं[1] निरीक्षितुमुपागताः । पुष्पाणि मुमुचुस्तस्मै विस्मिता भावतत्पराः ॥११४॥

उपजातिवृत्तम्

ततः समाधिं समुपेत्य कालं कृत्वा मधुस्तत्क्षणमात्रकेण ।
महासुखाम्भोधिनिमग्नचेताः सनत्कुमारे विबुधोत्तमोऽभूत् ॥११५॥
शत्रुघ्नवीरोऽप्यभवत्कृतार्थो विवेश मोदी मथुरां सुतेजाः ।
स्थितश्च तस्यां गजसंज्ञितायां पुरीव मेघेश्वरसुन्दरोऽसौ ॥११६॥
एवं जनस्य स्वविधानभाजो भवे भवत्यात्मनि दिव्यरूपम् ।
तस्मात् सदा कर्म शुभं कुरुध्वं रवेः परां येन रुचिं प्रयाताः[2] ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मधुसुन्दरवधाभिधानं नाम नवाशीतितमं पर्व ॥८९॥

और बाह्यमें हाथीपर बैठे बैठे ही उसने केश उखाड़कर फेंक दिये ॥१११॥ यद्यपि उसके शरीरमें गहरे घाव लग रहे थे, तथापि वह अत्यन्त दुर्धर धैर्यको धारण कर रहा था। उसने शरीर आदिकी ममता छोड़ दी थी और अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि धारण की थी ॥११२॥ जब शत्रुघ्नने यह हाल देखा तब उसने आकर उसे नमस्कार किया और कहा कि हे साधो! मुझ पापीके लिए क्षमा कीजिए ॥११३॥ उस समय जो अप्सराएँ युद्ध देखनेके लिए आई थीं उन्होंने आश्चर्यसे चकित हो विशुद्ध भावनासे उस पर पुष्प छोड़े ॥११४॥ तदनन्तर समाधिमरणकर मधु क्षण मात्रमें ही जिसका हृदय उत्तम सुखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा सनत्कुमार स्वर्गमें उत्तम देव हुआ ॥११५॥ इधर वीर शत्रुघ्न भी कृतकृत्य हो गया। अब उत्तम तेजके धारक उस शत्रुघ्नने बड़ी प्रसन्नतासे मथुरामें प्रवेश किया और जिस प्रकार हस्तिनापुरमें मेघेश्वर–जयकुमार रहते थे उसी प्रकार वह मथुरामें रहने लगा ॥११६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार समाधि धारण करनेवाले पुरुष जो भव धारण करते हैं उसमें उन्हें दिव्य रूप प्राप्त होता है इसलिए हे भव्य जनो! सदा शुभ कार्य ही करो जिससे सूर्यसे भी अधिक उत्कृष्ट कान्तिको प्राप्त हो सको ॥११७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधु सुन्दरके वधका वर्णन करनेवाला नवासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८९॥

---

१. सख्यं म० । २. प्रयातः म० ।

नवतितमं पर्व

ततोऽरिघ्नानुभावेन विफलं तेजसोज्झितम् । अमोघमपि तद्दिव्यं शूलरत्नं विधिच्युतम् ॥१॥
वहन् खेदं च शोकं च त्रपां च जवमुक्तवत् । स्वामिनोऽसुरनाथस्य चमरस्यान्तिकं ययौ ॥२॥
मरणे कथिते तेन मधोश्चमरपुङ्गवः । आहतः खेदशोकाभ्यां तत्सौहार्दगतस्मृतिः ॥३॥
रसातलात्समुत्थाय त्वरावानतिभासुरः । प्रवृत्तो मथुरां गन्तुमसौ संरम्भसङ्गतः ॥४॥
भ्राम्यन्नथ सुपर्णेन्द्रो वेणुदारी[1] तमैक्षत । अपृच्छच्च क्व दैत्येन्द्र गमनं प्रस्तुतं त्वया ॥५॥
[2]ऊचेऽसौ परमं मित्रं येन मे निहतं मधुः । सजनस्यास्य वैषम्यं विधातुमहमुद्यतः ॥६॥
सुपर्णेशो जगौ किं न विशल्यासम्भवं त्वया । माहात्म्यं निहितं कर्णे येनैवमभिलष्यसि ॥७॥
जगादासावतिक्रान्ताः कालास्ते परमाद्भुताः । अचिन्त्यं येन माहात्म्यं विशल्यायास्तथाविधम् ॥८॥
कौमारव्रतयुक्तासावासीदद्भुतकारिणी । योगेन जनितेदानीं निर्विषेव भुजङ्गिका ॥९॥
नियताचारयुक्तानां प्रभवन्ति मनीषिणाम् । भावा निरतिचाराणां श्लाघ्याः पूर्वकपुण्यजाः ॥१०॥
जितं विशल्यया तावद् गर्वमाश्रितया परम् । यावन्नारायणस्यास्यं न दृष्टं मदनावहम् ॥११॥
सुरासुरपिशाचाद्या बिभ्यति [3]व्रतचारिणाम् । तावद् यावन्न ते तीक्ष्णं निश्चयासि [4]जहत्यहो ॥१२॥

अथानन्तर मधु सुन्दरका वह दिव्य शूल रत्न यद्यपि अमोघ था तथापि शत्रुघ्नके प्रभावसे निष्फल हो गया था, उसका तेज छूट गया था और वह अपनी विधिसे च्युत हो गया था ॥१॥ अन्तमें वह खेद शोक और लज्जाको धारण करता हुआ निर्वेगकी तरह अपने स्वामी असुरोंके अधिपति चमरेन्द्रके पास गया ॥२॥ शूल रत्नके द्वारा मधुके मरणका समाचार कहे जाने पर उसके सौहार्दका जिसे बार-बार स्मरण आ रहा था ऐसा चमरेन्द्र खेद और शोकसे पीड़ित हुआ ॥३॥ तदनन्तर वेगसे युक्त, अत्यन्त देदीप्यमान और क्रोधसे सहित वह चमरेन्द्र पातालसे उठकर मथुरा जानेके लिए उद्यत हुआ ॥४॥ अथानान्तर भ्रमण करते हुए गरुड़कुमार देवोंके इन्द्र वेणुदारीने चमरेन्द्रको देखा और देखकर उससे पूछा कि हे दैत्यराज ! तुमने कहाँ जानेकी तैयारी की है ? ॥५॥ तब चमरेन्द्रने कहा कि जिसने मेरे परम मित्र मधु सुन्दरको मारा है उस मनुष्यकी विषमता करनेके लिए यह मैं उद्यत हुआ हूँ ॥६॥ इसके उत्तरमें गरुडेन्द्रने कहा कि क्या तुमने कभी विशल्याका माहात्म्य कर्णमें धारण नहीं किया—नहीं सुना जिससे कि ऐसा कह रहे हो ? ॥७॥ यह सुन चमरेन्द्रने कहा कि अब अत्यन्त आश्चर्यको करनेवाला वह समय व्यतीत हो गया जिस समय कि विशल्याका वैसा अचिन्त्य माहात्म्य था ॥८॥ जब वह कौमार व्रतसे युक्त थी तभी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी अब इस समय तो नारायणके संयोगसे वह विष रहित भुजंगीके समान हो गई है ॥९॥ जो मनुष्य नियमित आचारका पालन करते हैं, बुद्धिमान् हैं तथा सब प्रकारके अतिचारोंसे रहित हैं उन्हींके पूर्व पुण्यसे उत्पन्न हुए प्रशंसनीय भाव अपना प्रभाव दिखाते हैं ॥१०॥ अत्यधिक गर्वको धारण करनेवाली विशल्याने तभी तक विजय पाई है जब तक कि उसने काम चेष्टाको धारण करनेवाला नारायणका मुख नहीं देखा था ॥११॥ व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्योंसे सुर-असुर तथा पिशाच आदि तभी तक डरते हैं जब तक कि वे निश्चय रूपी तीक्ष्ण खड्गको नहीं छोड़ देते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य मद्य मांससे निवृत्त है, सैकड़ों प्रतिपक्षियोंको नष्ट करनेवाले उसके अन्तरको दुष्ट जीव तब तक नहीं लाँघ सकते जब तक कि इसके नियमरूपी कोट विद्यमान रहता है ॥१३॥ रुद्रोंमें एक कालाग्नि नामक भयंकर

१. वेणुधारी म० । २. क पुस्तके एष श्लोको नास्ति । ३. प्रतिचारिणां म० । ४. जहंत्यहो म०, ज० ।

मद्यामिषनिवृत्तस्य तावद्रूस्तशतान्तरम् । लङ्घयन्ति न दुःसत्त्वा यावत् सालोऽस्य नैयमः ॥१३॥
कालाग्निर्नाम रुद्राणां दारुणो न श्रुतस्त्वया । सक्तो दयितया साकं निर्विद्यो निधने गतः ॥१४॥
व्रज वा किं तवैतेन कुरु कृत्यं मनीषितम् । ज्ञास्यामि स्वयमेवाहं कर्त्तव्यं मित्रविद्विषः ॥१५॥
इत्युक्त्वा खं व्यतिक्रम्य मथुरायां सुदुर्मनाः । ऐक्षतोत्सवमत्यन्तं महान्तं सर्वलोकगम् ॥१६॥
अचिन्तयच्च लोकोऽयमकृतज्ञो महाखलः । स्थाने राष्ट्रे च यद्दैन्यस्थाने तोषमितः परम् ॥१७॥
बाहुच्छायां समाश्रित्य सुचिरं सुरसौख्यवान् । स्थितो यः स कथं लोको मधोर्मृत्योर्न दुःखितः ॥१८॥
प्रवीरः कातरैः शूरसहस्रेण च पण्डितः । सेव्यः किञ्चिद्व्रजेन्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ॥१९॥
आस्तां तावदसौ राजा स्निग्धो मे येन सूदितः । संस्थानं राष्ट्रमेवैतत्क्षयं तावन्नयाम्यहम् ॥२०॥
इति ध्यात्वा महारौद्रः क्रोधसम्भारचोदितः । उपसर्गं समारेभे कर्तुं लोकस्य दुःसहम् ॥२१॥
विकृत्य सुमहारोगांल्लोकं दग्धुं समुद्यतः । यथा दाव इवोदारं कक्ष्यं कारुण्यवर्जितः ॥२२॥
यत्रैव यः स्थितः स्थाने निविष्टः शयितोऽपि वा । अचलस्तत्र तत्रैव दीर्घनिद्रामसौ[1]इतः ॥२३॥
उपसर्गं समालोक्य कुलदैवतचोदितः । अयोध्यानगरीं यातः शत्रुघ्नः साधनान्वितः ॥२४॥
तमुपात्तजयं शूरं प्रत्यायातं महाहवात् । समभ्यनन्दयन् हृष्टा बलचक्रधरादयः ॥२५॥
पूर्णाशा सुप्रजाश्चासौ विधाय जिनपूजनम् । धार्मिकेभ्यो महादानं दुःखितेभ्यस्तथाऽददात् ॥२६॥

आर्यावृत्तम्

यद्यपि महाभिरामा साकेता काञ्चनोज्ज्वलैः प्रासादैः ।
धेनुरिव सर्वकामप्रदानचतुरा त्रिविष्टपोपभोगा ॥२७॥

रुद्रका नाम क्या तुमने नहीं सुना जो आसक्त होनेके कारण विद्या रहित हो स्त्रीके साथ ही साथ मृत्युको प्राप्त हुआ था ॥१४॥ अथवा जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन ? इच्छानुसार काम करो, मैं स्वयं ही मित्र और शत्रुका कर्तव्य ज्ञात करूँगा ॥१५॥

इतना कहकर अत्यन्त दुष्ट चित्तको धारण करनेवाला वह चमरेन्द्र आकाशको लाँघकर मथुरा पहुँचा और वहाँ पहुँच कर उसने समस्त लोगोंमें व्याप्त बहुत भारी उत्सव देखा ॥१६॥ वह विचार करने लगा कि ये मथुराके लोग अकृतज्ञ तथा महादुष्ट हैं जो घर अथवा देशमें दुःखका अवसर होने पर भी परम संतोषको प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् खेदके समय हर्ष मना रहे हैं ॥१७॥ जिसकी भुजाओंकी छाया प्राप्त कर जो चिरकाल तक देवों जैसा सुख भोगते रहे वे अब उस मधुकी मृत्युसे दुःखी क्यों नहीं हो रहे हैं ? ॥१८॥ शूर-वीर मनुष्य कायर मनुष्योंके द्वारा सेवनीय है और पण्डित-जन हजारों शूर-वीरोंके द्वारा सेव्य है सो कदाचित् मूर्खकी तो सेवा की जा सकती है पर अकृतज्ञ मनुष्यको छोड़ देना चाहिए ॥१९॥ अथवा यह सब रहें, जिसने हमारे स्नेही राजाको मारा है मैं उसके निवास स्वरूप इस समस्त देशको पूर्ण रूपसे क्षय प्राप्त कराता हूँ ॥२०॥ इस प्रकार विचारकर महारौद्र परिणामोंके धारक चमरेन्द्रने क्रोधके भारसे प्रेरित हो लोगोंपर दुःसह उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥२१॥ जिस प्रकार प्रलयकालका दावानल विशाल वनको जलानेके लिए उद्यत होता है उसी प्रकार वह निर्दय चमरेन्द्र अनेक महारोग फैलाकर लोगोंको जलानेके लिए उद्यत हुआ ॥२२॥ जो मनुष्य जिस स्थानपर खड़ा था, बैठा था अथवा सो रहा था वह वहीं अचल हो दीर्घ निद्रा-मृत्युको प्राप्त हो गया ॥२३॥ उपसर्ग देखकर कुल-देवतासे प्रेरित हुआ शत्रुघ्न अपनी सेनाके साथ अयोध्या चला गया ॥२४॥ विजय प्राप्त कर महायुद्धसे लौटे हुए शूरवीर शत्रुघ्नका राम, लक्ष्मण आदिने हर्षित हो अभिनन्दन किया ॥२५॥ जिसकी आशा पूर्ण हो गई थी ऐसी शत्रुघ्नकी माता सुप्रजाने जिनपूजा कर धर्मात्माओं तथा दीन-दुःखी मनुष्योंके लिए दान दिया ॥२६॥ यद्यपि अयोध्या नगरी सुवर्णमयी महलोंसे अत्यन्त

१. असौ + इतः इतिच्छेदः ।

शत्रुघ्नकुमारोऽसौ मथुरापुर्यां सुरक्तहृदयोऽत्यन्तम् ।
न तथापि धृतिं भेजे वैदेह्या विरहितो तथासीद् रामः ॥२८॥
स्वप्न इव भवति चारुसंयोगः प्राणिनां यदा तनुकालः ।
जनयति परमं तापं निदाघरविरश्मिजनितादधिकम् ॥२९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे मथुरोपसर्गाभिधानं नाम नवतितमं पर्व ॥९०॥

सुन्दर थी, कामधेनुके समान समस्त मनोरथोंके प्रदान करनेमें चतुर थी और स्वर्ग जैसे भोगोपभोगोंसे सहित थी तथापि शत्रुघ्नकुमारका हृदय मथुरामें ही अत्यन्त अनुरक्त रहता था वह, जिस प्रकार सीताके बिना राम, धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे उसी प्रकार मथुराके बिना धैर्यको प्राप्त नहीं होता था ॥२७-२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! प्राणियोंको सुन्दर वस्तुओंका समागम जब स्वप्नके समान अल्प कालके लिए होता है तब वह ग्रीष्मऋतु सम्बन्धी सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न सन्तापसे भी कहीं अधिक सन्तापको उत्पन्न करता है ॥२९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यद्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापर उपसर्गका वर्णन करनेवाला नब्बेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९०॥

एकनवतितमं पर्व

अथ राजगृहस्वामी जगादाद्भुतकौतुकः । भगवन्केन कार्येण तामेवासावयाचत ॥१॥
बहवो राजधान्योऽन्याः सन्ति स्वर्लोकसन्निभाः । तत्र शत्रुघ्नवीरस्य का प्रीतिर्मथुरां प्रति ॥२॥
दिव्यज्ञानसमुद्रेण गणोडुशशिना ततः । गौतमेनोच्यत [1]प्रीतिर्यथा तत्कुरु चेतसि ॥३॥
बहवो हि भवास्तस्य तस्यामेवाभवँस्ततः । तामेव प्रति सोद्रेकं स्नेहमेष न्यषेवत ॥४॥
संसारार्णवसंसेवी जीवः कर्मस्वभावतः । जम्बूमद्द्वीपभरते मथुरां समुपागतः ॥५॥
क्रूरो यमुनदेवाख्यो धर्मैकान्तपराङ्मुखः । स प्रेत्य क्रोडवालेयवायसत्वान्यसेवत ॥६॥
अजत्वं च परिप्राप्तो मृतो भवनदाहतः । महिषो जलवाहोऽभूदायते गबले वहन् ॥७॥
षड्वारान्महिषो भूत्वा दुःखप्रापणसङ्गतः । पञ्चकृत्वो मनुष्यत्वं दुःकुलेष्वधनोऽभजत् ॥८॥
मध्यकर्मसमाचाराः प्राप्यार्यत्वं मनुष्यताम् । प्राणिनः प्रतिपद्यन्ते किञ्चित्कर्मपरिक्षयम् ॥९॥
ततः कुलन्धराभिख्यः साधुसेवापरायणः । विप्रोऽसावभवद्रूपी शीलसेवाविवर्जितः ॥१०॥
अशङ्कित इव स्वामी पुरस्तस्या जयाशया । यातो देशान्तरं तस्य महिषी ललिताभिधा ॥११॥
प्रासादस्था कदाचित्सा वातायनगतेक्षणा । निरैक्षत तकं विप्रं दुश्चेष्टं कृतकारणम् ॥१२॥
सा तं क्रीडन्तमालोक्य मनोभवशराहता । आनाययद्रहोऽत्यन्तमाप्तया चित्तहारिणम् ॥१३॥
तस्या एकासने चासावुपविष्टो नृपश्च सः । अज्ञातागमनोऽपश्यत्सहसा तद्विचेष्टितम् ॥१४॥

अथानन्तर अद्भुत कौतुकको धारण करने वाले राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! वह शत्रुघ्न किस कार्यसे उसी मथुराकी याचना करता था ॥१॥ स्वर्गलोकके समान अन्य बहुत सी राजधानियाँ हैं उनमेंसे केवल मथुराके प्रति ही वीर शत्रुघ्नकी प्रीति क्यों है ?॥२॥ तब दिव्य ज्ञानके सागर एवं गणरूपी नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमाके समान गौतम गणधरने कहा कि जिस कारण शत्रुघ्नकी मथुरामें प्रीति थी उसे मैं कहता हूँ तू चित्तमें धारण कर ॥३॥ यतश्च उसके बहुतसे भव उसी मथुरामें हुए थे इसलिए उसीके प्रति वह अत्यधिक स्नेह धारण करता था ॥४॥ संसार रूपी सागरका सेवन करने वाला एक जीव कर्मस्वभावके कारण जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रकी मथुरा नगरीमें यमुनदेव नामसे उत्पन्न हुआ। वह स्वभावका क्रूर था तथा धर्मसे अत्यन्त विमुख रहता था। मरनेके बाद वह क्रमसे सूकर, गधा और कौआ हुआ ॥५-६॥ फिर बकरा हुआ, तदनन्तर भवनमें आग लगनेसे मर कर लम्बे-लम्बे सींगोंको धारण करनेवाला भैंसा हुआ। यह भैंसा पानी ढोनेके काम आता था ॥७॥ यह यमुनदेवका जीव छह बार तो नाना दुःखोंको प्राप्त करनेवाला भैंसा हुआ और पाँच बार नीच कुलोंमें निर्धन मनुष्य हुआ ॥८॥ सो ठीक ही है क्योंकि जो प्राणी मध्यम आचरण करते हैं वे आर्य मनुष्य हो कुछ-कुछ कर्मोंका क्षय करते हैं ॥९॥ तदनन्तर वह साधुओंकी सेवामें तत्पर रहने वाला कुलन्धर नामका ब्राह्मण हुआ। वह कुलन्धर रूपवान् तो था पर शीलकी आराधनासे रहित था ॥१०॥ एक दिन उस नगरका राजा विजय प्राप्त करनेकी आशासे निःशङ्क की तरह दूसरे देशको गया था और उसकी ललिता नामकी रानी महलमें अकेली थी। एक दिन वह झरोखेपर दृष्टि डाल रही थी कि उसने संकेत करनेवाले उस दुश्चेष्ट ब्राह्मणको देखा ॥११-१२॥ क्रीडा करते हुए उस कुलन्धर ब्राह्मणको देख कर रानी कामके बाणोंसे घायल हो गई जिससे उसने एक विश्वासपात्र सखीके द्वारा उस हृदयहारीको अत्यन्त एकान्त स्थानमें बुलवाया ॥१३॥ महलमें जाकर वह

---

१. प्रीतिं म० ।

मायाप्रवीणया तावद्देव्या क्रन्दितमुन्नतम् । वन्दिकोऽयमिति त्रस्तो गृहीतश्च भटैरसौ ॥१५॥
अष्टाङ्गनिग्रहं कर्तुं नगरीतो बहिः कृतः । सेवितेनासकृद्दृष्टः कल्याणाख्येन साधुना ॥१६॥
यदि प्रव्रजसीत्युक्त्वा तेनासौ प्रतिपन्नवान् । राज्ञः क्रूरमनुष्येभ्यो मोचितः [1]श्रमणोऽभवत् ॥१७॥
सोऽतिकष्टं तपः कृत्वा महाभावनयान्वितः । अभूदृतुविमानेशः किन्तु धर्मस्य दुष्करम् ॥१८॥
मथुरायां महाचित्तश्चन्द्रभद्र इति प्रभुः । तस्य भार्या धरा नाम त्रयस्तस्याश्च सोदराः ॥१९॥
सूर्याब्धियमुनाशब्दैर्देवान्तैर्नामभिः स्मृताः । श्रीसत्त्विन्द्रप्रभोग्रार्का मुखान्ताश्चापराः सुताः ॥२०॥
द्वितीया चन्द्रभद्रस्याद्वितीया कनकप्रभा । आगत्यर्तुविमानात् स तस्यां जातोऽचलाभिधः ॥२१॥
कलागुणसमृद्धोऽसौ सर्वलोकमनोहरः । बभौ देवकुमाराभः सत्क्रीडाकरणोद्यतः ॥२२॥
अथान्यः कश्चिदङ्काख्यः कृत्वा धर्मानुमोदनम् । श्रावस्त्यामङ्गिकागर्भे कम्पेनापाभिधोऽभवत् ॥२३॥
कवाटर्जाविना तेन कम्पेनाविनयान्वितः । अपो निर्घाटितो गेहाद् दुद्राव भयदुःखितः ॥२४॥
अथाचलकुमारोऽसौ नितान्तं दयितः पितुः । धराया भ्रातृभिस्तैश्च मुखान्तैरष्टभिः सुतैः ॥२५॥
[2]ईर्ष्यमाणो रहो हन्तुं मात्रा ज्ञात्वा पलायितः । महता कण्टकेनाङ्घ्रौ ताडितस्तिलके वने ॥२६॥

रानीके साथ जिस समय एक आसनपर बैठा था उसी समय राजा भी कहींसे अकस्मात् आ गया और उसने उसकी वह चेष्टा देख ली ॥१४॥ यद्यपि मायाचारमें प्रवीण रानीने जोरसे रोदन करते हुए कहा कि यह वन्दी जन है तथापि राजाने उसका विश्वास नहीं किया और योद्धाओंने उस भयभीत ब्राह्मणको पकड़ लिया ॥१५॥ तदनन्तर आठों अङ्गोंका निग्रह करनेके लिए वह कुलन्धर विप्र नगरीके बाहर ले जाया गया वहाँ जिसकी इसने कई बार सेवा की थी ऐसे कल्याण नामक साधुने इसे देखा और देखकर कहा कि यदि तू दीक्षा ले ले तो तुझे छुड़ाता हूँ। कुलन्धरने दीक्षा लेना स्वीकृत कर लिया जिससे साधुने राजाके दुष्ट मनुष्योंसे उसे छुड़ाया और छुड़ाते ही वह श्रमण साधु हो गया ॥१६-१७॥ तदनन्तर बहुत बड़ी भावनाके साथ अत्यन्त कष्टदायी तप तपकर वह सौधर्मस्वर्गके ऋतुविमानका स्वामी हुआ सो ठीक ही है क्योंकि धर्मके लिए क्या कठिन है ? ॥१८॥

अथानन्तर मथुरामें चन्द्रभद्र नामका उदारचित्त राजा था, उसकी स्त्रीका नाम धरा था और धराके तीन भाई थे—सूर्यदेव, सागरदेव और यमुनादेव। इन भाइयोंके सिवाय उसके श्रीमुख, सन्मुख, सुमुख, इन्द्रमुख, प्रभामुख, उग्रमुख, अर्कमुख और अपरमुख ये आठ पुत्र थे। ॥१९-२०॥ उसी चन्द्रभद्र राजाकी द्वितीय होने पर भी जो अद्वितीय—अनुपम थी ऐसी कनकप्रभा नामकी द्वितीय पत्नी थी सो कुलंधर विप्रका जीव ऋतु-विमानसे च्युत हो उसके अचल नामका पुत्र हुआ ॥२१॥ वह अचल कला और गुणोंसे समृद्ध था, सब लोगोंके मनको हरनेवाला था और समीचीन क्रीड़ा करनेमें उद्यत रहता था इसलिए देव कुमारके समान सुशोभित होता था ॥२२॥

अथानन्तर कोई अङ्क नामका मनुष्य धर्मकी अनुमोदना कर श्रावस्ती नामा नगरीमें कम्प नामक पुरुषकी अङ्गिका नामक स्त्रीसे अप नामका पुत्र हुआ ॥२३॥ कम्प कपाट बनानेकी आजीविका करता था अर्थात् जातिका बढ़ई था और उसका पुत्र अत्यन्त अविनयी था इसलिए उसने उसे घरसे निकाल दिया था। फलस्वरूप वह भयसे दुखी होता हुआ इधर-उधर भटकता रहा ॥२४॥ अथानन्तर पूर्वोक्त अचलकुमार पिताका अत्यन्त प्यारा था इसलिए इसकी सौतेली माता धराके तीन भाई तथा मुखान्त नामको धारण करनेवाले आठों पुत्र एकान्तमें मारनेके लिए उसके साथ ईर्ष्या करते रहते थे। अचलकी माता कनकप्रभाको उनकी इस ईर्ष्याका पता चल गया

१. भ्रमणो म० । २. इष्यमाणो म० ।

गृहीतदारुभारेण तेनापेनाथ वीक्षितम् । अतिकष्टं क्वणन् खेदादचलो निश्चलः स्थितः ॥२७॥
दारुभारं परित्यज्य तेन तस्यासिकन्यया । आकृष्टः कण्टको दत्त्वा[1] कटकं चेति भाषितः ॥२८॥
यदि नामाचलं किञ्चिच्छृणुयाल्लोकविश्रुतम् । त्वया तस्य ततोऽभ्याशं गन्तव्यं संशयोज्झितम् ॥२९॥
अपो[2] यथोचितं यातो राजपुत्रोऽपि दुःखवान् । कौशाम्बीबाह्यमुद्देशं प्राप्तः सत्त्वसमुन्नतः ॥३०॥
तत्रेन्द्रदत्तनामानं [3]कोशावत्ससमुद्भवम् । ययौ कलकलाशब्दात् सेवमानं खलूरिकाम् ॥३१॥
विजित्य विशिखाचार्यं लब्धपूजोऽथ भूभृता । प्रवेश्य नगरीमिन्द्रदत्ताख्यां लम्भितः सुताम् ॥३२॥
क्रमेण चानुभावेन चारुणा पूर्वकर्मणा । उपाध्याय इति ख्यातो वीरोऽसौ पार्थिवोऽभवत् ॥३३॥
अङ्गाद्यान् विषयाञ्जित्वा प्रतापी मथुरां श्रितः । बाह्योद्देशे कृतावासः स्थितः कटकसङ्गतः ॥३४॥
चन्द्रभद्रनृपः पुत्रमारोऽयमिति भाषितैः । सामन्ताः सकलास्तस्य भिन्नास्तेनार्थसङ्गतैः ॥३५॥
एकाकी चन्द्रभद्रश्च विषादं परमं भजन् । श्यालान् सम्प्रेषयद्देवशब्दान्तान् सन्धिवाञ्छया ॥३६॥
दृष्ट्वा ते तं परिज्ञाय विलक्षा भासमागताः । अदृष्टसेवकाः साकं धरायास्तनयैः कृताः ॥३७॥
अचलस्य समं मात्रा सञ्जातः परमोत्सवः । राज्यं च प्रणताशेषराजकं गुणपूजितम् ॥३८॥

इसलिए उसने उसे कहीं बाहर भगा दिया। एक दिन अचल तिलक नामक वनमें जा रहा था कि उसके पैरमें एक बड़ा भारी काँटा लग गया। काँटा लग जानेके कारण दुःखसे अत्यन्त दुःख-दायी शब्द करता हुआ वह उसी तिलक वनमें एक ओर खड़ा हो गया। उसी समय लकड़ियोंका भार लिये हुए अप वहाँसे निकला और उसने अचलको देखा ॥२५-२७॥ अपने लकड़ियोंका भार छोड़ छुरीसे उसका काँटा निकाला। इसके बदले अचलने उसे अपने हाथका कड़ा देकर कहा कि यदि तू कभी किसी लोक प्रसिद्ध अचलका नाम सुने तो तुझे संशय छोड़कर उसके पास जाना चाहिए ॥२८-२९॥

तदनन्तर अप यथायोग्य स्थान पर चला गया और राजपुत्र अचल भी दुःखी होता हुआ धैर्यसे युक्त हो कौशाम्बी नगरीके बाह्यप्रदेशमें पहुँचा ॥३०॥ वहाँ कौशाम्बीके राजा कोशावत्सका पुत्र इन्द्रदत्त, बाण चलानेके स्थानमें बाण विद्याका अभ्यास कर रहा था सो उसका कलकला शब्द सुन अचल उसके पास चला गया ॥३१॥ वहाँ इन्द्रदत्तके साथ जो उसका विशिखाचार्य अर्थात् शस्त्र विद्या सिखानेवाला गुरु था उसे अचलने पराजित किया था। तदनन्तर जब राजा कोशावत्सको इसका पता चला तब उसने अचलका बहुत सन्मान किया और सम्मानके साथ नगरीमें प्रवेश कराकर उसे अपनी इन्द्रदत्ता नामकी कन्या विवाह दी ॥३२॥ तदनन्तर वह क्रम-क्रमसे अपने प्रभाव और पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मसे पहले तो उपाध्याय इस नामसे प्रसिद्ध था और उसके बाद राजा हो गया ॥३३॥ तत्पश्चात् वह प्रतापी अङ्ग आदि देशोंको जीत कर मथुरा आया और उसके बाह्य स्थानमें डेरे देकर सेनाके साथ ठहर गया ॥३४॥ यह चन्द्रभद्र राजा 'पुत्रको मारनेवाला है' ऐसे यथार्थ शब्द कहकर उसने उसके समस्त सामन्तोंको अपनी ओर फोड़ लिया ॥३५॥ जिससे चन्द्रभद्र अकेला रह गया। अन्तमें परम विषादको प्राप्त होते हुए उसने सन्धिकी इच्छासे अपने सूर्यदेव, अब्धिदेव और यमुनादेव नामक तीन साले भेजे ॥३६॥ सो वे उसे देख तथा पहिचान कर लज्जित हो भयको प्राप्त हुए और धरा रानीके आठों पुत्रोंके साथ-साथ सेवकोंसे रहित हो गये अर्थात् भयसे भाग गये ॥३७॥ अचलको माताके साथ मिलकर बड़ा उल्लास हुआ और जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत थे तथा जो गुणोंसे पूजित था ऐसा राज्य उसे प्राप्त हुआ ॥३८॥

---

१. कण्टकं म० । २. अथो ख० । ३. कोशाम्बात्ससमुद्भवम् म० । कोशावसमयोज्झितम् क० ।

अन्यदा नटरङ्गस्य मध्ये तमपमागतम् । हन्यमानं प्रतीहारैर्दृष्ट्वाऽभिज्ञातवान् नृपः ॥३९॥
तस्मै संयुक्तमापाद्य श्रावस्तीं जन्मभूमिकाम् । कृतापरङ्गसंज्ञाय ददावचलभूपतिः ॥४०॥
तावुद्यानं गतौ क्रीडां विधातुं पुरुसम्पदौ । यशःसमुद्रमाचार्यं दृष्ट्वा नैर्ग्रन्थ्यमाश्रितौ ॥४१॥
संयमं परमं कृत्वा सम्यग्दर्शनभावितौ । मृतौ समाधिना जातौ देवेशौ कमलोत्तरे ॥४२॥
ततश्च्युतः समानोऽसावचलः पुण्यशेषतः । सुप्रजोलोचनानन्दः[1] शत्रुघ्नोऽयमभून्नृपः ॥४३॥
तेनानेकभवप्राप्तिसम्बन्धेनास्य भूपतेः । बभूव परमप्रीतिर्मथुरां प्रति पार्थिव ॥४४॥
गृहस्य शाखिनो वाऽपि यस्यच्छायां समाश्रयेत् । स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ॥४५॥
किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभिः संगतिः कृता । संसारभावयुक्तानां जीवानामीदृशी गतिः ॥४६॥
परिच्युत्यापरङ्गोऽपि पुण्यशेषादभूदसौ । कृतान्तवक्त्रविख्यातः सेनायाः पतिरूर्जितः ॥४७॥
इति धर्मार्जनादेतौ[2] प्राप्तौ परमसम्पदः । धर्मेण रहितैर्लभ्यं न हि किञ्चित्सुखावहम् ॥४८॥
अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दुःखमलक्षये । धर्मतीर्थे श्रुते(श्रयेत्) शुद्धिं जलतीर्थमनर्थकम् ॥४९॥

आर्या

एवं पारम्पर्यादागतमिदमद्भुतं नितान्तमुदारम् ।
कथितं शत्रुघ्नायनमवबुध्य बुधा भवन्तु धर्मसुरक्ताः ॥५०॥

अथानन्तर किसी एक समय पैरका काँटा निकालनेवाला अप नटोंकी रङ्गभूमिमें आया सो प्रतीहारी लोग उसे मार रहे थे। राजा अचलने उसे देखते ही पहिचान लिया ॥३९॥ और अपने पास बुलाकर उसका अपरंग नाम रक्खा तथा उसकी जन्मभूमि स्वरूप श्रावस्ती नगरी उसके लिए दे दी ॥४०॥ ये दोनों ही मित्र साथ-साथ ही रहते थे। परम सम्पदाको धारण करनेवाले दोनों मित्र एक दिन क्रीड़ा करनेके लिए उद्यान गये थे सो वहाँ यशःसमुद्र नामक आचार्यके दर्शन कर उनके समीप दोनों ही निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हो गये ॥४१॥ सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त दोनों मुनियोंने परम संयम धारण किया और दोनों ही आयुके अन्तमें समाधिमरण कर स्वर्गमें देवेन्द्र हुए ॥४२॥ सन्मानसे सुशोभित वह अचलका जीव, स्वर्गसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे माता सुप्रजाके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाला यह राजा शत्रुघ्न हुआ है ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! अनेक भवोंमें प्राप्तिका सम्बन्ध होनेसे इसकी मथुराके प्रति परम प्रीति है ॥४४॥ जिस घर अथवा वृक्षकी छायाका आश्रय लिया जाता है अथवा वहाँ एक दिन भी ठहरा जाता है उसकी उसमें प्रीति हो जाती है ॥४५॥ फिर जहाँ अनेक जन्मोंमें बार-बार रहना पड़ता है उसका क्या कहना है? यथार्थमें संसारमें परिभ्रमण करनेवाले जीवोंकी ऐसी ही गति होती है ॥४६॥ अपरंगका जीव भी स्वर्गसे च्युत हो पुण्य शेष रहनेसे कृतान्तवक्त्र नामका प्रसिद्ध एवं बलवान् सेनापति हुआ है ॥४७॥ इस प्रकार धर्मार्जनके प्रभावसे ये दोनों परम सम्पदाको प्राप्त हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि धर्मसे रहित प्राणी किसी सुखदायक वस्तुको नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥४८॥ इस प्राणीने अनेक भवोंमें पापका संचय किया है सो दुःख रूपी मलका क्षय करनेवाले धर्मरूपी तीर्थमें शुद्धिको प्राप्त करना चाहिए इसके लिए जलरूपी तीर्थका आश्रय लेना निरर्थक है ॥४९॥ इस प्रकार आचार्य परम्परासे आगत, अत्यन्त आश्चर्यकारी एवं उत्कृष्ट शत्रुघ्नके इस चरितको जानकर हे विद्वज्जनो! सदा धर्ममें अनुरक्त

१. सुप्रजालोचनानन्दः म०, ज० । २. धर्माज्ञनादेतौ म० ।

श्रुत्वा परमं धर्मं न भवति येषां सदीहिते प्रीतिः ।
शुभनेत्राणां तेषां रविरुदितोऽनर्थकीभवति ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शत्रुघ्नभवानुकीर्तनं नामैकनवतितमं पर्व ॥९१॥

होओ ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस परमधर्मको सुनकर जिनको उत्तम चेष्टामें प्रवृत्ति नहीं होती शुभ नेत्रोंको धारण करनेवाले उन लोगोंके लिए उदित हुआ सूर्य भी निरर्थक हो जाता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शत्रुघ्नके भवोंका वर्णन करनेवाला एकानबेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९१॥

द्विनवतितमं पर्व

विहरन्तोऽन्यदा प्राप्ता निर्ग्रन्था मथुरां पुरीम् । गगनायनिनः सप्त [1]सप्तसप्तिसमत्विषः ॥१॥
सुरमन्युर्द्वितीयश्च श्रीमन्युरिति कीर्तितः । अन्यः श्रीनिचयो नाम तुरीयः सर्वसुन्दरः ॥२॥
पञ्चमो जयवान् ज्ञेयः षष्ठो विनयलालसः । चरमो जयमित्राख्यः सर्वे चारित्रसुन्दराः ॥३॥
राज्ञः श्रीनन्दनस्यैते धरणीसुन्दरीभवाः । तनया जगति ख्याता गुणैः शुद्धैः प्रभापुरे ॥४॥
प्रीतिङ्करमुनीन्द्रस्य देवागममुदीक्ष्य ते । प्रतिबुद्धाः समं पित्रा धर्मं कर्तुं समुद्यताः ॥५॥
मासजातं नृपो न्यस्य राज्ये डमरमङ्गलम् । प्रवव्राज समं पुत्रैर्वीरः प्रीतिङ्करान्तिके ॥६॥
केवलज्ञानमुत्पाद्य काले श्रीनन्दनोऽविशत् । सप्तर्षयस्त्वमी तस्य तनया मुनिसत्तमाः ॥७॥
काले विकालवत्काले कन्दवृन्दावृतान्तरे । न्यग्रोधतरुमूले ते योगं सन्मुनयः श्रिताः ॥८॥
तेषां तपःप्रभावेन चमरासुरनिर्मिता । मारी श्वशुरदृष्टेव नारी विटगताऽनशत् ॥९॥
घनजीमूतसंसिक्ता[2] मथुराविषयोर्वरा । अकृष्टपच्यसस्यौघैः सञ्छन्ना सुमहाशयैः ॥१०॥
रोगेति परिनिर्मुक्ता मथुरानगरी शुभा । पितृदर्शनतुष्टेव रराज नविका वधूः ॥११॥
युक्तं बहुप्रकारेण रसत्यागादिकेन ते । [3]षष्ठादिनोपवासेन चक्रुरत्युत्कटं तपः ॥१२॥
नभो निमेषमात्रेण विप्रकृष्टं विलङ्घ्य ते । चक्रुः पुरेषु विजयपोदनादिषु पारणाम् ॥१३॥

अथानन्तर किसी समय गगनगामी एवं सूर्यके समान कान्तिके धारक सात निर्ग्रन्थ मुनि विहार करते हुए मथुरापुरी आये। उनमेंसे प्रथम सुरमन्यु, द्वितीय श्रीमन्यु, तृतीय श्रीनिचय, चतुर्थ सर्वसुन्दर, पञ्चम जयवान्, षष्ठ विनयलालस और सप्तम जयमित्र नामके धारक थे। ये सभी चारित्रसे सुन्दर थे अर्थात् निर्दोष चारित्रके पालक थे। राजा श्रीनन्दनकी धरणी नामक रानीसे उत्पन्न हुए पुत्र थे, निर्दोष गुणोंसे जगत्में प्रसिद्ध थे तथा प्रभापुर नगरके रहने वाले थे ॥१-४॥ ये सभी, प्रीतिङ्कर मुनिराजके केवलज्ञानके समय देवोंका आगमन देख प्रतिबोधको प्राप्त हो पिताके साथ धर्म करनेके लिए उद्यत हुए थे ॥५॥ वीरशिरोमणि राजा श्रीनन्दन, डमरमङ्गल नामक एक माहके बालकको राज्य देकर अपने पुत्रोंके साथ प्रीतिङ्कर मुनिराजके समीप दीक्षित हुए थे ॥६॥ समय पाकर श्रीनन्दन राजा तो केवलज्ञान उत्पन्न कर सिद्धालयमें प्रविष्ट हुए और उनके उक्त पुत्र उत्तम मुनि हो सप्तर्षि हुए ॥७॥ जहाँ परस्परका अन्तर कन्दोंके समूहसे आवृत्त था ऐसे वर्षाकालके समय वे सब मुनि मथुरा नगरीके समीप वटवृक्षके नीचे वर्षा योग लेकर विराजमान हुए ॥८॥ उन मुनियोंके तपके प्रभावसे चमरेन्द्रके द्वारा निर्मित महामारी उस प्रकार नष्ट हो गई जिस प्रकार कि श्वसुरके द्वारा देखी हुई विट मनुष्यके पास गई नारी नष्ट हो जाती है ॥९॥ अत्यधिक मेघोंसे सींची गई मथुराके देशोंकी उपजाऊ भूमि बिना जोते बखरे अर्थात् अनायास ही उत्पन्न होने वाले बहुत भारी धान्यके समूहसे व्याप्त हो गई ॥१०॥ उस समय रोग और ईतियोंसे छूटी शुभ मथुरा नगरी उस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार कि पिताके देखनेसे सन्तुष्ट हुई नई बहू सुशोभित होती है ॥११॥ वे सप्तर्षि नाना प्रकारके रस परित्याग आदि तथा वेला तेला आदि उपवासोंके साथ अत्यन्त उत्कट तप करते थे ॥१२॥ वे अत्यन्त दूरवर्ती आकाशको निमेष मात्रमें लाँघकर विजयपुर, पोदनपुर आदि दूर-दूरवर्ती नगरोंमें

१. सूर्यसमकान्तयः। २. संसक्ता म०। ३. षष्ठादिनोप-म०।

लब्धां परगृहे भिक्षां पाणिपात्रतलस्थिताम् । शरीरधृतिमात्राय जक्षुस्ते क्षपणोत्तमाः ॥१४॥
नभोमध्यगते भानावन्यदा ते महाशमाः । साकेतामविशन् वीरा युगमात्रावलोकिनः ॥१५॥
शुद्धभिक्षैषणाकूताः प्रलम्बितमहाभुजाः । अर्हद्दत्तगृहं प्राप्ता भ्राम्यन्तस्ते यथाविधि ॥१६॥
अर्हद्दत्तश्च सम्प्राप्तश्चिन्तामेतामसम्भ्रमः । वर्षाकालः क चेदृक्षः क चेदं मुनिचेष्टितम् ॥१७॥
प्राग्भारकन्दरासिन्धुतटे मूले च शाखिनः[1] । शून्यालये जिनागारे ये चान्यत्र कचित्स्थिताः ॥१८॥
नगर्यां श्रमणा अस्यां नेमे समयखण्डनम् । कृत्वा हिण्डनशीलत्वं प्रपद्यन्ते सुचेष्टिताः ॥१९॥
प्रतिकूलितसूत्रार्था एते तु ज्ञानवर्जिताः । निराचार्या निराचाराः कथं कालेऽत्र हिण्डकाः ॥२०॥
अकालेऽपि किल प्राप्ताः स्नुषयाऽस्य सुभक्तया । तर्पिताः प्रासकान्नेन ते गृहीतार्थया तया ॥२१॥
आर्हतं भवनं जग्मुः शुद्धसंयतसङ्कुलम् । यत्र त्रिभुवनानन्दः स्थापितो मुनिसुव्रतः ॥२२॥
चतुरङ्गुलमानेन ते त्यक्तधरणीतलाः । आयान्तो द्युतिना दृष्टा लब्धिप्राप्ताः प्रसाधवः ॥२३॥
पद्भ्यामेव जिनागारं प्रविष्टाः श्रद्धयोद्धया । अभ्युत्थाननमस्यादिविधिना द्युतिनार्चिताः ॥२४॥
अस्मदीयोऽयमाचार्यो यत्किञ्चिद्वन्दनोद्यतः । इति ज्ञात्वा द्युतेः शिष्या दध्युः सप्तर्षिनिन्दनम्[2] ॥२५॥
जिनेन्द्रवन्दनां कृत्वा सम्यक् स्तुतिपरायणाः । यातास्ते वियदुत्पत्य स्वमाश्रमपदं पुनः ॥२६॥
चारणश्रमणान् ज्ञात्वा मुनींस्ते मुनयः पुनः । स्वनिंदनादिना युक्ताः साधुचित्तमुपागताः ॥२७॥

पारणा करते थे ॥१३॥ वे उत्तम मुनिराज परगृहमें प्राप्त एवं हस्तरूपी पात्रमें स्थित भिक्षाको केवल शरीरकी स्थिरताके लिए ही भक्षण करते थे ॥१४॥

अथानन्तर किसी एक दिन जब कि सूर्य आकाशके मध्यमें स्थित था तब महा शान्तिको धारण करने वाले वे धीर-वीर मुनिराज जूड़ा प्रमाण भूमिको देखते हुए अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥१५॥ जो शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनेके अभिप्रायसे युक्त थे और जिनकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं ऐसे वे मुनि विधि पूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठके घर पहुँचे ॥१६॥ उन मुनियोंको देखकर संभ्रमसे रहित अर्हद्दत्त सेठ इस प्रकार विचार करने लगा कि यह ऐसा वर्षा काल कहाँ और यह मुनियोंकी चेष्टा कहाँ ? ॥१७॥ इस नगरीके आस-पास प्राग्भार पर्वतकी कन्दराओंमें, नदीके तटपर, वृक्षके मूलमें, शून्य घरमें, जिनालयमें तथा अन्य स्थानोंमें जहाँ कहीं जो मुनिराज स्थित हैं उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाले वे मुनिराज समयका खण्डन कर अर्थात् वर्षा योग पूरा किये बिना इधर-उधर परिभ्रमण नहीं करते ॥१८-१९॥ परन्तु ये मुनि आगमके अर्थको विपरीत करनेवाले हैं, ज्ञानसे रहित हैं, आचार्योंसे रहित हैं और आचारसे भ्रष्ट हैं इसीलिए इस समय यहाँ घूम रहे हैं ॥२०॥ यद्यपि वे मुनि असमयमें आये थे तो भी अर्हद्दत्त सेठकी भक्त एवं अभिप्रायको ग्रहण करनेवाली वधूने उन्हें आहार देकर सन्तुष्ट किया था ॥२१॥ आहारके बाद वे शुद्ध-निर्दोष प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोंसे व्याप्त अर्हन्त भगवान्‌के उस मन्दिरमें गये जहाँ कि तीन लोकको आनन्दित करनेवाले श्री मुनिसुव्रत भगवान्‌की प्रतिमा विराजमान थी ॥२२॥ अथानन्तर जो पृथिवीसे चार अंगुल ऊपर चल रहे थे ऐसे उन ऋद्धिधारी उत्तम मुनियोंको मन्दिरमें विद्यमान श्री द्युतिभट्टारकने देखा ॥२३॥ उन मुनियोंने उत्तम श्रद्धाके साथ पैदल चल कर ही जिन मन्दिरमें प्रवेश किया तथा द्युतिभट्टारकने खड़े होकर नमस्कार करना आदि विधिसे उनकी पूजा की ॥२४॥ 'यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वन्दना करनेके लिए उद्यत हो जाते हैं।' यह जानकर द्युतिभट्टारकके शिष्योंने उन सप्तर्षियोंकी निन्दा का विचार किया ॥२५॥ तदनन्तर सम्यक् प्रकारसे स्तुति करनेमें तत्पर वे सप्तर्षि, जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना कर आकाशमार्गसे पुनः अपने स्थानको चले गये ॥२६॥ जब वे आकाशमें उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धिके धारक जान कर द्युतिभट्टारकके शिष्य जो अन्य मुनि थे वे अपनी

१. शालिनः म० । २. नन्दनम् म० । वन्दनम् ख० ।

अर्हद्दत्ताय याताय जिनालयमिहान्तरे । द्युतिना गदितं दृष्टाः साधवः स्युस्त्वयोत्तमाः ॥२८॥
वन्दिताः पूजिताः वा स्युर्महासत्त्वा महौजसः । मथुराकृतसंवासा [1]मयाऽमा कृतसंकथाः ॥२९॥
महातपोधना दृष्टास्तेऽस्माभिः शुभचेष्टिताः । मुनयः परमोदारा वन्द्या गगनगामिनः ॥३०॥
ततः प्रभावमाकर्ण्य साधूनां श्रावकाधिपः । तदा विषण्णहृदयः पश्चात्तापेन तप्यते ॥३१॥
धिक् सोऽहमगृहीतार्थः सम्यग्दर्शनवर्जितः । अयुक्तोऽसदाचारो न तुल्यो मेऽस्त्यधार्मिकः ॥३२॥
मिथ्यादृष्टिः कुतोऽस्त्यन्यो मत्तः प्रत्यपरोऽधुना । अभ्युत्थायार्चिता[2] नत्वा साधवो यन्न तर्पिताः ॥३३॥
साधुरूपं समालोक्य न मुञ्चत्यासनं तु यः । दृष्ट्वाऽपमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ॥३४॥
पापोऽहं पापकर्मा च पापात्मा पापभाजनम् । यो वा निन्द्यतमः कश्चिज्जिनवाक्यबहिःकृतः ॥३५॥
शरीरे मर्मसंघाते तावन्मे दह्यते मनः । यावदञ्जलिमुद्धृत्य साधवस्ते न वन्दिताः ॥३६॥
अहंकारसमुत्थस्य पापस्यास्य न विद्यते । प्रायश्चित्तं परं तेषां मुनीनां वन्दनादृते ॥३७॥
अथ ज्ञात्वा समासन्नां[3] कार्तिकीं परमोत्सुकः । अर्हच्छ्रेष्ठी महादृष्टिर्नृपतुल्यपरिच्छदः ॥३८॥
निर्ज्ञातमुनिमाहात्म्यः स्वनिन्दाकरणोद्यतः । सप्तर्षिपूजनं कर्तुं प्रस्थितो बन्धुभिः समम् ॥३९॥
रथकुञ्जरपादाततुरङ्गौघसमन्वितः । पूजां यौगेश्वरीं कर्तुमसौ याति स्म सत्वरम् ॥४०॥
समृद्ध्या परया युक्तः शुभध्यानपरायणः । कार्त्तिकामलसप्तम्यां प्राप्तः सप्तमुनं[4] पदम् ॥४१॥

निन्दा गर्हा आदि करते हुए निर्मल हृदयको प्राप्त हुए अर्थात् जो मुनि पहले उन्हें उन्मार्गगामी समझकर उनकी निन्दाका विचार कर रहे थे वे ही मुनि अब उन्हें चारण ऋद्धिके धारक जान कर अपने अज्ञानकी निन्दा करने लगे तथा अपने चित्तकी कलुषताको उन्होंने दूर कर दिया ॥२७॥ इसी बीचमें अर्हद्दत्त सेठ जिन-मन्दिरमें आया सो द्युतिभट्टारकने उससे कहा कि आज तुमने उत्तम मुनि देखे होंगे ? ॥२८॥ वे मुनि सबके द्वारा वन्दित हैं, पूजित हैं, महाधैर्य-शाली हैं, एवं महाप्रतापी हैं। वे मथुराके निवासी हैं और उन्होंने मेरे साथ वार्तालाप किया है ॥२९॥ महातपश्चरण ही जिनका धन है, जो शुभ चेष्टाओंके धारक हैं, अत्यन्त उदार हैं, वन्दनीय हैं और आकाशमें गमन करनेवाले हैं ऐसे उन मुनियोंके आज हमने दर्शन किये हैं॥३०॥ तदनन्तर द्युतिभट्टारकसे साधुओंका प्रभाव सुनकर अर्हद्दत्त सेठ बहुत ही खिन्न चित्त हो पश्चात्तापसे संतप्त हो गया ॥३१॥ वह विचार करने लगा कि यथार्थ अर्थको नहीं समझने वाले मुझ मिथ्यादृष्टिको धिक्कार हो। मेरा अनिष्ट आचरण अयुक्त था, अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक नहीं है ॥३२॥ इस समय मुझसे बढ़कर दूसरा मिथ्यादृष्टि कौन होगा जिसने उठ कर मुनियोंकी पूजा नहीं की तथा नमस्कार कर उन्हें आहारसे सन्तुष्ट नहीं किया ॥३३॥ जो मुनिको देखकर आसन नहीं छोड़ता है तथा देख कर उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है ॥३४॥ मैं पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पापका पात्र हूँ अथवा जिनागमकी श्रद्धासे दूर रहनेवाला जो कोई निन्द्यतम है वह मैं हूँ ॥३५॥ जब तक मैं हाथ जोड़कर उन मुनियोंकी वन्दना नहीं कर लेता तब तक शरीर एवं मर्मस्थलमें मेरा मन दाहको प्राप्त होता रहेगा ॥३६॥ अहंकारसे उत्पन्न हुए इस पापका प्रायश्चित्त उन मुनियोंकी वन्दनाके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता॥३७॥

अथानन्तर कार्तिकी पूर्णिमाको निकटवर्ती जानकर जिसकी उत्सुकता बढ़ रही थी, जो महासम्यग्दृष्टि था, राजाके समान वैभवका धारक था, मुनियोंके माहात्म्यको अच्छी तरह जानता था, तथा अपनी निन्दा करनेमें तत्पर था ऐसा अर्हद्दत्त सेठ सप्तर्षियोंकी पूजा करनेके लिए अपने बन्धुजनोंके साथ मथुराकी ओर चला ॥३८-३९॥ रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंके समूहके साथ वह सप्तर्षियोंकी पूजा करनेके लिए बड़ी शीघ्रतासे जा रहा था ॥४०॥ परम समृद्धि-से युक्त एवं शुभध्यान करनेमें तत्पर रहनेवाला वह सेठ कार्तिक शुक्ला सप्तमीके दिन सप्तर्षियोंके

१. मया सार्धम् । २. -र्चित्वा नुत्वा म० । ३. समासन्न' म० । ४. सप्तमुनिम् म० ।

तत्राप्युत्तमसम्यक्त्वो विधाय मुनिवन्दनाम् । पूजोपकरणं कर्तुमुद्यतः सर्वयत्नतः ॥४२॥
प्रपानाटकसङ्गीतशालादिपरिराजितम् । जातं तदाश्रमस्थानं स्वर्गदेशमनोहरम् ॥४३॥
तं वृत्तान्तं समाकर्ण्य शत्रुघ्नः स्वतुरीयकः । महातुरङ्गमारूढः सप्तमुन्यन्तिकं ययौ ॥४४॥
मुनीनां परया भक्त्या पुत्रस्नेहाच्च पुष्कलात् । माताऽप्यस्य गता पश्चात् समुद्ग्राहितकोष्ठिका ॥४५॥
ततः प्रणम्य भक्तात्मा सम्मर्दी रिपुमर्दनः । मुनीन् समाप्तनियमान् पारणार्थमयाचत ॥४६॥
तत्रोक्तं मुनिमुख्येन नरपुङ्गव कल्पितम् । उपेत्य भोक्तुमाहारं संयतानां न वर्तते ॥४७॥
अकृताकारितां भिक्षां मनसा नानुमोदिताम् । गृह्णतां विधिना युक्तां तपः पुष्यति योगिनाम् ॥४८॥
ततो जगाद शत्रुघ्नः प्रसादं मुनिपुङ्गवाः । ममेदं कर्तुमर्हन्ति विज्ञापकसुवत्सलाः ॥४९॥
कियन्तमपि कालं मे नगर्यामिह तिष्ठत । शिवं सुभिक्षमेतस्यां प्रजानां येन जायते ॥५०॥
आगतेषु भवत्स्वेषा समृद्धा सर्वतोऽभवत् । नष्टापातेषु[1] नलिनी यथा विसरदुत्सवा ॥५१॥
इत्युक्त्वाऽचिन्तयच्छ्राद्धः कदा नु खलु वाञ्छितम् । अन्नं[2] दास्यामि साधुभ्यो विधिना सुसमाहितः ॥५२॥
अथ श्रेणिक शत्रुघ्नं निरीक्ष्याऽऽनतमस्तकम् । कालानुभावमाचख्यौ यथावन्मुनिसत्तमः ॥५३॥
धर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेष्वनुक्रमात् । भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान् ॥५४॥
दुःपाषण्डैरिदं जैनं शासनं परमोन्नतम् । तिरोधास्यिष्यते क्षुद्रै रजोभिर्भानुबिम्बवत् ॥५५॥

स्थान पर पहुँच गया ॥४१॥ वहाँ उत्तम सम्यक्त्वको धारण करनेवाला वह श्रेष्ठ मुनियोंकी वन्दना कर पूर्ण प्रयत्नसे पूजाकी तैयारी करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४२॥ प्याऊ, नाटक-गृह तथा संगीत-शाला आदिसे सुशोभित वह आश्रमका स्थान स्वर्गप्रदेशके समान मनोहर हो गया ॥४३॥ यह वृत्तान्त सुन राजा दशरथका चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्न महातुरङ्ग पर सवार हो सप्तर्षियोंके समीप गया ॥४४॥ मुनियोंकी परम भक्ति और पुत्रके अत्यधिक स्नेहसे उसकी माता सुप्रजा भी खजाना लेकर उसके पीछे आ पहुँची ॥४५॥

तदनन्तर भक्त हृदय एवं हर्षसे भरे शत्रुघ्नने नियमको पूर्ण करनेवाले मुनियोंको नमस्कार कर उनसे पारणा करनेकी प्रार्थना की ॥४६॥ तब उन मुनियोंमें जो मुख्य मुनि थे उन्होंने कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! जो आहार मुनियोंके लिए संकल्प कर बनाया जाता है उसे ग्रहण करनेके लिए मुनि प्रवृत्ति नहीं करते ॥४७॥ जो न स्वयं की गई है, न दूसरेसे कराई गई और न मनसे जिसकी अनुमोदना की गई है ऐसी भिक्षाको विधि पूर्वक ग्रहण करनेवाले योगियोंका तप पुष्ट होता है ॥४८॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठो ! आप प्रार्थना करनेवालों पर अत्यधिक स्नेह रखते हैं अतः हमारे ऊपर यह प्रसन्नता करनेके योग्य हैं कि आप कुछ काल तक मेरी इस नगरीमें और ठहरिये जिससे कि इसमें रहनेवाली प्रजाको आनन्ददायी सुभिक्षकी प्राप्ति हो सके ॥४९-५०॥ आप लोगोंके आने पर यह नगरी उस तरह सब ओरसे समृद्ध हो गई है जिस तरह कि वर्षाके नष्ट हो जाने पर कमलिनी सब ओरसे समृद्ध हो जाती है—खिल उठती है ॥५१॥ इतना कहकर श्रद्धासे भरा शत्रुघ्न चिन्ता करने लगा कि मैं प्रमाद रहित हो विधि पूर्वक मुनियोंके लिए मन वाञ्छित आहार कब दूंगा ॥५२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शत्रुघ्नको नतमस्तक देखकर उन उत्तम मुनिराजने उसके लिए यथायोग्य कालके प्रभावका निरूपण किया ॥५३॥ उन्होंने कहा कि जब अनुक्रमसे तीर्थकरोंका काल व्यतीत हो जायगा तब यहाँ धर्मकर्मसे रहित अत्यन्त भयंकर समय होगा ॥५४॥ दुष्ट पाखण्डी लोगोंके द्वारा यह परमोन्नत जैन शासन उस तरह तिरोहित हो जायगा जिस तरह कि धूलिके छोटे-छोटे कणोंके द्वारा सूर्यका बिम्ब तिरोहित हो जाता है ॥५५॥ उस

---

१. प्रातेषु म० । २. अन्यं म० ।

श्मशानसदृशा ग्रामाः प्रेतलोकोपमाः पुरः । क्लिष्टा जनपदाः कुत्स्या भविष्यन्ति दुरीहिताः ॥५६॥
कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चोरैरिव निरन्तरम् । दुःपाषण्डैरयं लोको भविष्यति समाकुलः ॥५७॥
महीतलं खलं द्रव्यपरिमुक्ताः कुटुम्बिनः । हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम् ॥५८॥
पितरौ प्रति निःस्नेहाः पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति । चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति ॥५९॥
सुखिनोऽपि नराः केचिन् मोहयन्तः परस्परम् । कथाभिर्दुर्गतीशाभी रंस्यन्ते पापमानसाः ॥६०॥
नंक्ष्यन्त्यतिशयाः सर्वे त्रिदशागमनादयः । कषायबहुले काले शत्रुघ्न ! समुपागते ॥६१॥
जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् । सज्जुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्विता जनाः ॥६२॥
अप्रशस्ते प्रशस्तत्वं मन्यमानाः कुचेतसः । भयपक्षे पतिष्यन्ति पतङ्गा इव मानवाः ॥६३॥
प्रशान्तहृदयान् साधून् निर्भर्त्स्य विहसोद्यताः[1] । मूढा मूढेषु दास्यन्ति केचिदन्नं प्रयत्नतः ॥६४॥
इत्थमेतं निराकृत्य प्राहूर्यान्यं[2] समागतम् । यतिनो मोहिनो देयं दास्यन्त्यहितभावनाः ॥६५॥
बीजं शिलातले न्यस्तं सिच्यमानं सदापि हि । अनर्थकं यथा दानं तथाशीलेषु गेहिनाम् ॥६६॥
अवज्ञाय मुनीन् गेही गेहिने यः प्रयच्छति । त्यक्त्वा स चन्दनं मूढो गृह्णात्येव बिभीतकम् ॥६७॥
इति ज्ञात्वा समायातं कालं दुःषमताधमम् । विधत्स्वात्महितं किञ्चित्स्थिरैकार्यं[3] शुभोदयम् ॥६८॥
नामग्रहणकोऽस्माकं भिक्षावृत्तिमवाससाम् । परिकल्पय तत्सारं तव द्रविणसम्पदः ॥६९॥
आगमिष्यति काले सा श्रान्तानां त्यक्तवेश्मनाम् । भविष्यत्याश्रयो राजन् स्वगृहाशयसम्मिता ॥७०॥

समय ग्राम श्मशानके समान, नगर यमलोकके समान और देश क्लेशसे युक्त निन्दित तथा दुष्ट चेष्टाओंके करनेवाले होंगे ॥५६॥ यह संसार चोरोंके समान कुकर्ममें निरत तथा क्रूर दुष्ट पाषण्डी लोगोंसे निरन्तर व्याप्त होगा ॥५७॥ यह पृथिवीतल दुष्ट तथा गृहस्थ निर्धन होंगे साथ ही यहाँ हिंसा सम्बन्धी हजारों दुःख निरन्तर प्राप्त होते रहेंगे ॥५८॥ पुत्र, माता-पिताके प्रति और माता-पिता पुत्रोंके प्रति स्नेह रहित होंगे तथा कलिकालके प्रकट होने पर राजा लोग चोरोंके समान धनके अपहर्ता होंगे ॥५९॥ कितने ही मनुष्य यद्यपि सुखी होंगे तथापि उनके मनमें पाप होगा और वे दुर्गतिको प्राप्त करानेमें समर्थ कथाओंसे परस्पर एक दूसरेको मोहित करते हुए क्रीड़ा करेंगे ॥६०॥ हे शत्रुघ्न ! कषाय बहुल समयके आने पर देवागमन आदि समस्त अतिशय नष्ट हो जावेंगे ॥६१॥ तीव्र मिथ्यात्वसे युक्त मनुष्य व्रत रूप गुणोंसे सहित एवं दिगम्बर मुद्राके धारक मुनियोंको देखकर ग्लानि करेंगे ॥६२॥ अप्रशस्तको प्रशस्त मानते हुए कितने ही दुर्हृदय लोग भयके पक्षमें उस तरह जा पड़ेंगे जिस तरह कि पतङ्ग अग्निमें जा पड़ते हैं ॥६३॥ हँसी करनेमें उद्यत कितने ही मूढ मनुष्य शान्त चित्त मुनियोंको तिरस्कृत कर मूढ मनुष्योंके लिए आहार देवेंगे ॥६४॥ इस प्रकार अनिष्ट भावनाको धारण करनेवाले गृहस्थ उत्तम मुनिका तिरस्कार कर तथा मोही मुनिको बुलाकर उसके लिए योग्य आहार आदि देंगे ॥६५॥ जिस प्रकार शिलातल पर रखा हुआ बीज यद्यपि सदा सींचा जाय तथापि निरर्थक होता है—उसमें फल नहीं लगता है उसी प्रकार शील रहित मनुष्योंके लिए दिया हुआ गृहस्थोंका दान भी निरर्थक होता है ॥६६॥ जो गृहस्थ मुनियोंकी अवज्ञाकर गृहस्थके लिए आहार आदि देता है वह मूर्ख चन्दनको छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करता है ॥६७॥ इस प्रकार दुःषमताके कारण अधम कालको आया जान आत्माका हित करनेवाला कुछ शुभ तथा स्थायी कार्य कर ॥६८॥ तू नामी पुरुष है अतः निर्ग्रन्थ मुनियोंको भिक्षावृत्ति देनेका निश्चय कर। यही तेरी धन-सम्पदाका सार है ॥६९॥ हे राजन् ! आगे आनेवाले कालमें थके हुए मुनियोंके लिए भिक्षा देना अपने गृहदानके समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा

---

१. विहस्योद्यताः म० । २. प्राहूयान्यसमागतं म० । ३. स्थिरं कार्यं म० । क० पुस्तके ६८ तः ७१ पर्यन्ताः श्लोका न सन्ति ।

तस्माद्दानमिदं दत्त्वा वत्स त्वमधुना भज । सागारशीलनियमं कुरुजन्मार्थसङ्गतम् ॥७१॥
जायतां मथुरालोकः सम्यग्धर्मपरायणः । दयावात्सल्यसम्पन्नो जिनशासनभावितः ॥७२॥
स्थाप्यन्तां जिनबिम्बानि पूजितानि गृहे गृहे । अभिषेकाः प्रवर्त्यन्तां विधिना पाल्यतां प्रजा ॥७३॥
सप्तर्षिप्रतिमा दिक्षु चतसृष्वपि यत्नतः । नगर्यां कुरु शत्रुघ्न तेन शान्तिर्भविष्यति ॥७४॥
अद्यप्रभृति यद्गेहे बिम्बं जैनं न विद्यते । मारी भक्षयति यद्व्याघ्री यथाऽनाथं कुरङ्गकम् ॥७५॥
यस्यांगुष्ठप्रमाणापि जैनेन्द्री प्रतियातना[1] । गृहे तस्य न मारी स्यात्तार्क्ष्यभीता यथोरगी ॥७६॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्ताः[2] शत्रुघ्नेन प्रमोदिना । समुत्पत्य नभो याताः साधवः साधुवाञ्छिताः ॥७७॥
अथ निर्वाणधामानि परिसृत्य प्रदक्षिणम् । मुनयो जानकीगेहमवतेरुः शुभायनाः ॥७८॥
वहन्ती सम्मदं तुङ्गं श्रद्धादिगुणशालिनी । परमान्नेन तान् सीता विधियुक्तमपारयत्[3] ॥७९॥
जानक्या भक्तितो दत्तमन्नं सर्वगुणान्वितम् । भुक्त्वा पाणितले दत्त्वाऽऽशीर्वादं मुनयो ययुः ॥८०॥
नगर्यां बहिरन्तश्च शत्रुघ्नः प्रतिमास्ततः । अतिष्ठिपज्जिनेन्द्राणां प्रतिमारहितात्मनाम्[4] ॥८१॥
सप्तर्षिप्रतिमाश्चापि काष्ठासु चतसृष्वपि । अस्थापयन्मनोज्ञाङ्गा सर्वेतिकृतवारणाः ॥८२॥
पृष्ठे त्रिविष्टपस्यैव [5]पुरमन्यां न्यवेशयत् । मनोज्ञां सर्वतः स्फीतां सर्वोपद्रववर्जिताम् ॥८३॥
योजनत्रयविस्तारां सर्वतस्त्रिगुणां च यत् । [6]अधिकां मण्डलत्वेन स्थितामुत्तमतेजसम् ॥८४॥
आपातालतलाद् भिन्नमूलाः पृथ्व्यो मनोहराः । परिखा[7] भाति सुमहार्सालवासगृहोपमा ॥८५॥

इसलिए हे वत्स ! तू यह दान देकर इस समय गृहस्थके शीलव्रतका नियम धारण कर तथा अपना जीवन सार्थक बना ॥७०-७१॥ मथुराके समस्त लोग समीचीन धर्मके धारण करनेमें तत्पर, दया और वात्सल्य भावसे सम्पन्न तथा जिन शासनकी भावनासे युक्त हों ॥७२॥ घर-घरमें जिन-प्रतिमाएँ स्थापित की जावें, उनकी पूजाएँ हों, अभिषेक हों और विधिपूर्वक प्रजाका पालन किया जाय ॥७३॥ हे शत्रुघ्न ! इस नगरीकी चारो दिशाओंमें सप्तर्षियोंकी प्रतिमाएँ स्थापित करो। उसीसे सब प्रकारकी शान्ति होगी ॥७४॥ आजसे लेकर जिस घरमें जिन-प्रतिमा नहीं होगी उस घरको मारी उस तरह खा जायगी जिस तरह कि व्याघ्री अनाथ मृगको खा जाती है ॥७५॥ जिसके घरमें अँगूठा प्रमाण भी जिन-प्रतिमा होगी उसके घरमें गरुड़से डरी हुई सर्पिणीके समान मारीका प्रवेश नहीं होगा ॥७६॥ तदनन्तर 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार हर्षसे युक्त सुग्रीवने कहा और उसके बाद उत्तम अभिप्रायको धारण करनेवाले वे सभी साधु आकाशमें उड़कर चले गये ॥७७॥

अथानन्तर निर्वाण क्षेत्रोंकी प्रदक्षिणा देकर शुभगतिको धारण करनेवाले वे मुनिराज सीताके घरमें उतरे ॥७८॥ सो अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाली एवं श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित सीताने उन्हें विधि पूर्वक उत्तम अन्नसे पारणा कराई ॥७९॥ जानकीके द्वारा भक्ति पूर्वक दिये हुए सर्वगुणसम्पन्न अन्नको अपने हस्ततलमें ग्रहणकर तथा आशीर्वाद देकर वे मुनि चले गये ॥८०॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने नगरके भीतर और बाहर सर्वत्र उपमा रहित जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमाएँ स्थापित कराईं ॥८१॥ और सुन्दर अवयवों की धारक तथा समस्त ईतियोंका निवारण करनेवाली सप्तर्षियोंकी प्रतिमाएँ भी चारों दिशाओंमें विराजमान कराईं ॥८२॥ उसने एक दूसरी ही नगरीकी रचना कराई जो ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गके ऊपर ही रची गई हो। वह सब ओरसे मनोहर थी, विस्तृत थी, सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित थी, तीन योजन विस्तार वाली थी, सब ओरसे त्रिगुण थी, विशाल थी, मण्डलाकारमें स्थित थी और उत्तम तेजकी धारक थी ॥८३-८४॥ जिनकी जड़ें पातालतक फूटी थीं ऐसी सुन्दर वहाँ की भूमियाँ थीं तथा जो बड़े-

---

१. प्रतिमा । २. -त्युक्त्वा म०, ज० । ३. पारणां कारयामास । ४. उपमारहितानाम् । ५. पुरी ज० । ६. अधिकं म० । ७. परितो म० । ८. शाल म० ।

उद्यानान्यधिकां शोभां दधुः पुष्पफलाकुलाम् । वाप्यः पद्मोत्पलच्छन्ना जाताः शकुनिनादिताः ॥८६॥
कैलासतालुसङ्काशाः प्रासादाश्चारुलक्षणाः । विमानप्रतिमा रेजुः विलोचनमलिम्लुचाः ॥८७॥
सुवर्णधान्यरत्नाढ्याः[1] सम्मेदशिखरोपमाः । नरेन्द्रख्यातयः श्लाघ्या जाताः सर्वकुटुम्बिनः ॥८८॥
राजानस्त्रिदशैस्तुल्या असमानविभूतयः । धर्मार्थकामसंसक्ताः साधुचेष्टापरायणाः ॥८९॥
प्रयच्छन्निच्छया तेषामाज्ञां विज्ञानसङ्गतः । रराज पुरि शत्रुघ्नः सुराणां वरुणो यथा ॥९०॥

आर्यागीतिच्छन्दः

एवं मथुरापुर्यां निवेशमत्यद्भुतं च सप्तर्षीणाम् ।
शृण्वन् कथयन्वापि प्राप्नोति जनश्चतुष्टयं भद्रमरम् ॥९१॥
साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वमनीषितं सेवन्ते ।
तस्मात् साधुसमागममाश्रित्य सदारवेः समास्थ दीप्ताः ॥९२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मथुरापुरीनिवेशऋषिदानगुणोपसर्गहनननाभिधानं नाम द्विनवतितमं पर्व ॥९२॥

बड़े वृक्षोंके निवास गृहके समान जान पड़ती थीं ऐसी परिखा उसके चारों ओर सुशोभित हो रही थी ॥८५॥ वहाँके बाग-बगीचे फूलों और फलोंसे युक्त अत्यधिक शोभाको धारण कर रहे थे और कमल तथा कुमुदोंसे आच्छादित वहाँकी वापिकाएँ पक्षियोंके नादसे मुखरित हो रही थीं ॥८६॥ जो कैलासके शिखरोंके समान थे, सुन्दर-सुन्दर लक्षणोंसे युक्त थे, तथा नेत्रोंके चोर थे ऐसे वहाँके भवन विमानोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥८७॥ वहाँके सर्व कुटुम्बी सुवर्ण अनाज तथा रत्न आदिसे सम्पन्न थे, सम्मेद शिखरकी उपमा धारण करते थे, राजाओंके समान प्रसिद्धिसे युक्त तथा अत्यन्त प्रशंसनीय थे ॥८८॥ वहाँके राजा देवोंके समान अनुपम विभूतिके धारक थे, धर्म, अर्थ और काममें सदा आसक्त रहते थे तथा उत्तम चेष्टाओंके करनेमें निपुण थे ॥८९॥ इच्छानुसार उन राजाओंपर आज्ञा चलाता हुआ विशिष्ट ज्ञानी शत्रुघ्न मथुरा नगरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि देवोंपर आज्ञा चलाता हुआ वरुण सुशोभित होता है ॥९०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जो इस प्रकार मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास और उनके आश्चर्यकारी प्रभावको सुनता अथवा कहता है वह शीघ्र ही चारों प्रकारके मङ्गलको प्राप्त होता है ॥९१॥ जो मनुष्य साधुओंके समागममें सदा तत्पर रहते हैं वे सर्व मनोरथोंको प्राप्त होते हैं इसीलिए हे सत्पुरुषो ! साधुओंका समागमकर सदा सूर्यके समान देदीप्यमान होओ ॥९२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास, दान, गुण तथा उपसर्गके नष्ट होनेका वर्णन करनेवाला बानबेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९२॥

---

१. रत्नाद्याः म० ।

त्रिनवतितमं पर्व

अथ रत्नपुरं नाम विजयार्द्धेऽस्ति दक्षिणम् । पुरं रत्नरथस्तत्र राजा विद्याधराधिपः ॥१॥
मनोरमेति तस्यास्ति दुहिता रूपशालिनी । पूर्णचन्द्राननाऽभिख्यमहिषीकुक्षिसम्भवा ॥२॥
समीक्ष्य यौवनं तस्या नवं राजा सुचेतनः । वरान्वेषणशेमुष्या बभूव परमाकुलः ॥३॥
मन्त्रिभिः सह सङ्गत्य स चक्रे सम्प्रधारणाम् । कस्मै योग्याय यच्छामः कुमारीमेतकामिति ॥४॥
एवं दिनेषु गच्छत्सु राज्ञि चिन्तावशीकृते । कदाचिन्नारदः प्राप्तस्ततः स मानमाप च ॥५॥
तस्मै विदितनिःशेषलोकचेष्टितबुद्धये । राजा प्रस्तुतमाचख्यौ सुखासीनाय सादरः ॥६॥
अवद्वारो जगौ राजन् विज्ञातो भवता न किम् । भ्राता युगप्रधानस्य पुंसो लाङ्गललक्ष्मणः ॥७॥
बिभ्राणः परमां लक्ष्मीं लक्ष्मणश्चारुलक्षणः । चक्रानुभावविनतसमस्तप्रतिमानवः ॥८॥
तस्येयं सदृशी कन्या हृदयानन्ददायिनी । ज्योत्स्ना कुमुदखण्डस्य यथा परमसुन्दरी ॥९॥
एवं प्रभाषमाणेऽस्मिन् रत्नस्यन्दनसूनवः । क्रुद्धा हरिमनोवातवेगाद्या मानशालिनः ॥१०॥
स्मृत्वा स्वजनघातोत्थं वैरं प्रत्यग्रमुन्नतम् । जगुः कालाग्निवद्दीप्ताः परिस्फुरितविग्रहाः ॥११॥
अद्यैव व्यतिपत्याऽऽशु समाहूय दुरीहितः । अस्माभिर्यो विहन्तव्यस्तस्मै कन्या न दीयते ॥१२॥
इत्युक्ते राजपुत्रभ्रूविकारपरिचोदितैः । किङ्करौघैरवद्वारः पादाकर्षणमापितः ॥१३॥
नभस्तलं समुत्पत्य ततः सुरमुनिद्रुतम् । साकेतायां सुमित्राजमुपसृप्तो महादरः ॥१४॥
अस्य विस्तरतो वार्तां निवेद्य भुवनस्थिताम् । कन्यायाश्च विशेषेण व्यक्तकौतुकलक्षणः ॥१५॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें रत्नपुर नामका नगर है । वहाँ विद्याधरोंका राजा रत्नरथ राज्य करता था ॥१॥ उसकी पूर्ण चन्द्रानना नामकी रानीके उदरसे उत्पन्न मनोरमा नामकी रूपवती पुत्री थी ॥२॥ पुत्रीका नव-यौवन देख विचारवान् राजा वरके अन्वेषणकी बुद्धिसे परम आकुल हुआ ॥३॥ 'यह कन्या किस योग्य वरके लिए देवें, इस प्रकार उसने मन्त्रियोंके साथ मिलकर विचार किया ॥४॥ इस तरह राजाके चिन्ताकुल रहते हुए जब कितने ही दिन बीत गये तब किसी समय नारद आये और राजासे उन्होंने सन्मान प्राप्त किया ॥५॥ जिनकी बुद्धि समस्त लोककी चेष्टाको जाननेवाली थी ऐसे नारद जब सुखसे बैठ गये तब राजाने आदरके साथ उनसे प्रकृत बात कही ॥६॥ इसके उत्तरमें अवद्वार नामके धारक नारदने कहा कि हे राजन्! क्या आप इस युगके प्रधान पुरुष श्री रामके भाई लक्ष्मणको नहीं जानते ? वह लक्ष्मण उत्कृष्ट लक्ष्मीको धारण करनेवाला है, सुन्दर लक्षणोंसे सहित है तथा चक्रके प्रभावसे उसने समस्त शत्रुओंको नतमस्तक कर दिया है ॥७-८॥ सो जिस प्रकार चन्द्रिका कुमुदवनको आनन्द देनेवाली है उसी प्रकार हृदयको आनन्द देनेवाली यह परम सुन्दरी कन्या उसके अनुरूप है ॥९॥ नारदके इस प्रकार कहने पर रत्नरथके हरिवेग, मनोवेग तथा वायुवेग आदि अभिमानी पुत्र-कुपित हो उठे ॥१०॥ आत्मीय जनोंके घातसे उत्पन्न अत्यधिक नूतन वैरका स्मरण कर वे प्रलय कालकी अग्निके समान प्रदीप्त हो उठे तथा उनके शरीर क्रोधसे काँपने लगे । उन्होंने कहा कि जिस दुष्टको आज ही जाकर तथा शीघ्र ही बुलाकर हमलोगोंको मारना चाहिए उसके लिए कन्या नहीं दी जाती है ॥११-१२॥ इतना कहने पर राजपुत्रोंकी भौंहोंके विकारसे प्रेरित हुए किङ्करोंके समूहने नारदके पैर पकड़ कर खींचना चाहा परन्तु उसी समय देवर्षि नारद शीघ्र ही आकाशतलमें उड़ गये और बड़े आदरके साथ अयोध्या नगरीमें लक्ष्मणके समीप जा पहुँचे ॥१३-१४॥ पहले तो नारदने विस्तारके साथ लक्ष्मणके लिए समस्त संसारकी वार्ता सुनाई और उसके बाद

कन्यामदर्शयंश्चित्रे चित्रां दृक्चित्तहारिणीम् । त्रैलोक्यसुन्दरीशोभामेकीकृत्येव निर्मिताम् ॥१६॥
तां समालोक्य सौमित्रिः पुस्तनिष्कम्पलोचनः । [1]अनन्यजस्य वीरोऽपि परिप्राप्तोऽतिवश्यताम् ॥१७॥
अचिन्तयच्च यद्येतत्स्त्रीरत्नं न लभे ततः । इदं मे निष्फलं राज्यं शून्यं जीवितमेव वा ॥१८॥
उवाच चादरं बिभ्रद् भगवन् गुणकीर्तनन् । कुर्वन् मम कुमारैस्तैः कथं वा त्वं खलीकृतः ॥१९॥
प्रचण्डत्वमिदं तेषां पापानां विक्षिपाम्यहम् । असमीक्षितकार्याणां क्षुद्राणां निहतात्मनाम् ॥२०॥
व्रज स्वास्थ्यं रजः शुद्धं तव मूर्द्धानमाश्रितम् । पादस्तु शिरसि न्यस्तो मदीयेऽसौ महामुने ॥२१॥
इत्युक्त्वाऽऽह्वाय संरब्धो विराधितखगेश्वरम् । जगाद लक्ष्मणो रत्नपुरं गम्यं त्वरान्वितम् ॥२२॥
तस्माद्देशय पन्थानमित्युक्तः स रणोत्कटः[2] । लेखैराह्वाय[3] यत् सर्वान् तीव्राज्ञः खेचराधिपान् ॥२३॥
महेन्द्रविन्ध्यकिष्किन्धमलयाद्रिपुराधिपाः । विमानाच्छादिताऽऽकाशाः साकेतामागतास्ततः ॥२४॥
वृतस्तैः सुमहासैन्यैर्लक्ष्मणो विजयोन्मुखः । लोकपालैर्यथा लेखो ययौ पद्मपुरःसरः ॥२५॥
नानाशस्त्रदलग्रस्तदिवाकरमरीचयः । प्राप्ता रत्नपुरं भूपाः सितच्छत्रोपशोभिताः ॥२६॥
ततः परबलं प्राप्तं ज्ञात्वा रत्नपुरो नृपः । साकं समस्तसामन्तैः सङ्ग्रामकुञ्चुर्विनिर्ययौ ॥२७॥
तेन निष्क्रान्तमात्रेण महारभसधारिणा[4] । विस्तीर्णदक्षिणं सैन्यं क्षणं ग्रस्तमिवाभवत् ॥२८॥
चक्रक्रकचबाणासिकुन्तपाशगदादिभिः । बभूव गहनं तेषां युद्धमुद्धतयोद्भवम् ॥२९॥

मनोरमा कन्याकी वार्ता विशेष रूपसे बतलाई। उसी समय कौतुकके चिह्न प्रकट करते हुए नारदने चित्रपटमें अङ्कित वह अद्भुत कन्या दिखाई। वह कन्या नेत्र तथा हृदयको हरनेवाली थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन लोककी सुन्दरियोंकी शोभाको एकत्रित कर ही बनाई गई हो ॥१५-१६॥ उस कन्याको देखकर जिसके नेत्र मृण्मय पुतलेके समान निश्चल हो गये थे ऐसा लक्ष्मण वीर होने पर भी कामके वशीभूत हो गया ॥१७॥ वह विचार करने लगा कि यदि यह स्त्रीरत्न मुझे नहीं प्राप्त होता है तो मेरा यह राज्य निष्फल है तथा यह जीवन भी सूना है ॥१८॥ आदरको धारण करते हुए लक्ष्मणने नारदसे कहा कि हे भगवन्! मेरे गुणोंका निरूपण करते हुए आपको उन कुमारोंने दुःखी क्यों किया? ॥१९॥ कार्यका विचार नहीं करनेवाले उन हृदयहीन पापी क्षुद्र पुरुषोंकी इस प्रचण्डताको मैं अभी हाल नष्ट करता हूँ ॥२०॥ हे महामुने! उन कुमारोंने जो पादप्रहार किया है सो उसकी धूलि आपके मस्तकका आश्रय पाकर शुद्ध हो गई है और उस पादप्रहारको मैं समझता हूँ कि वह मेरे मस्तक पर ही किया गया है अतः आप स्वस्थताको प्राप्त हों ॥२१॥ इतना कहकर क्रोधसे भरे लक्ष्मणने विराधित नामक विद्याधरोंके राजाको बुलाकर कहा कि मुझे शीघ्र ही रत्नपुर पर चढ़ाई करनी है ॥२२॥ इसलिए मार्ग दिखाओ। इस प्रकार कहने पर कठिन आज्ञाको धारण करनेवाले उस रणवीर विराधितने पत्र लिखकर समस्त विद्याधर राजाओंको बुला लिया ॥२३॥

तदनन्तर महेन्द्र, विन्ध्य, किष्किन्ध और मलय आदि पर्वतोंपर बसे नगरोंके अधिपति, विमानोंके द्वारा आकाशको आच्छादित करते हुए अयोध्या आ पहुँचे ॥२४॥ बहुत भारी सेनासे सहित उन विद्याधर राजाओंके द्वारा घिरा हुआ लक्ष्मण विजयके सम्मुख हो रामचन्द्रजीको आगे कर उस प्रकार चला जिस प्रकार कि लोकपालोंसे घिरा हुआ देव चलता है ॥२५॥ जिन्होंने नाना शस्त्रोंके समूहसे सूर्यकी किरणें आच्छादित कर ली थीं तथा जो सफेद छत्रोंसे सुशोभित थे ऐसे राजा रत्नपुर पहुँचे ॥२६॥ तदनन्तर परचक्रको आया जान, रत्नपुरका युद्धनिपुण राजा समस्त सामन्तोंके साथ बाहर निकला ॥२७॥ महावेगको धारण करनेवाले उस राजाने निकलते ही दक्षिणकी समस्त सेनाको क्षण भरमें ग्रस्त जैसा कर लिया ॥२८॥ तदनन्तर चक्र, क्रकच, बाण, खड्ग, कुन्त, पाश, गदा आदि शस्त्रोंके द्वारा उन सबका उद्दण्डताके कारण गहन युद्ध हुआ ॥२९॥

---

१. कामस्य । २. शरण्योत्कटः म० । ३. -राह्वाय तत्सर्वान्-म० । ४. धारिणा म० ।

अप्सरःसंहतिर्योग्यनभोदेशव्यवस्थिता । मुमोचाद्भुतयुक्तेषु स्थानेषु कुसुमाञ्जलीः ॥३०॥
ततः परबलाम्भोधौ सौमित्रिर्वडवानलः । विजृम्भितुं समायुक्तो योधयादःपरिक्षयः ॥३१॥
रथा वरतुरङ्गाश्च नागाश्च मदतोयदाः । तृणवत्तस्य वेगेन दिशो दश समाश्रिताः ॥३२॥
युद्धक्रीडां क्वचिच्चक्रे शक्रशक्तिर्हलायुधः । किष्किन्धपार्थिवोऽन्यत्र परमः कपिलक्ष्मण ॥३३॥
अपरत्र प्रभाजालपरवीरो महाजवः । लाङ्गूलपाणिरुग्रात्मा विविधाद्भुतचेष्टितः ॥३४॥
एवमेतैर्महायोधैर्विजयार्द्धबलं महत् । शरत्प्रभातमेघाभं क्वापि[1] नीतं मरुत्समैः ॥३५॥
ततोऽधिपतिना साकं विजयाद्रिभुवो नृपाः । स्वस्थानाभिमुखा नेशुः प्रक्षीणप्रधनेप्सिताः ॥३६॥
दृष्ट्वा पलायमानांस्तान् वीरान् रत्नरथात्मजान् । परमामर्षसम्पूर्णो नारदः कलहप्रियः ॥३७॥
कृत्वा कलकलं व्योम्नि कृततालमहास्वनः । जगाद विस्फुरद्गात्रः[2] स्मितास्यो विकचेक्षणः ॥३८॥
एते ते चपलाः क्रुद्धा दुश्चेष्टा मन्दबुद्धयः । पलायन्ते न संसोढा यैर्लक्ष्मणगुणोन्नतिः ॥३९॥
दुर्विनीतान् प्रसह्यैतानरं गृह्णीत मानवाः । पराभवं तदा कृत्वा क्वाधुना मे पलाय्यते ॥४०॥
इत्युक्ते पृष्ठतस्तेषामुपात्तजयकीर्तयः । प्रतापपरमा धीराः प्रस्थिता ग्रहणोद्यताः ॥४१॥
प्रत्यासन्नेषु तेष्वासीत्तदा रत्नपुरं पुरम् । आसन्नपार्श्वसंसक्तमहादाववनोपमम् ॥४२॥
तावत् सुकन्यका रत्नभूता तत्र मनोरमा । सखीभिरावृता दृष्टमात्रलोकमनोरमा ॥४३॥

आकाशमें योग्य स्थानपर स्थित अप्सराओंका समूह आश्चर्यसे युक्त स्थानोंपर पुष्पाञ्जलियाँ छोड़ रहे थे ॥३०॥ तत्पश्चात् जो योधा रूपी जलजन्तुओंका क्षय करनेवाला था ऐसा लक्ष्मणरूपी बड़वानलपर चक्ररूपी समुद्रके बीच अपना विस्तार करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३१॥ रथ, उत्तमोत्तम घोड़े, तथा मद रूपी जलको बहाने वाले हाथी, उसके वेगसे तृणके समान दशों दिशाओंमें भाग गये ॥३२॥ कहीं इन्द्रके समान शक्तिको धारण करनेवाले राम युद्ध-क्रीड़ा करते थे तो कहीं वानर रूप चिह्नसे उत्कृष्ट सुग्रीव युद्धकी क्रीड़ा कर रहे थे ॥३३॥ और किसी एक जगह प्रभाजालसे युक्त, महावेगशाली, उग्र हृदय एवं नाना प्रकारकी अद्भुत चेष्टाओंको करने वाला हनूमान् युद्धक्रीड़ाका अनुभव कर रहा था ॥३४॥ जिस प्रकार शरद्ऋतुके प्रातःकालीन मेघ वायुके द्वारा कहीं ले जाये जाते हैं—तितर-बितर कर दिये जाते हैं उसी प्रकार इन महा-योद्धाओंके द्वारा विजयार्ध पर्वतकी बड़ी भारी सेना कहीं ले जाई गई थी—पराजित कर इधर-उधर खदेड़ दी गई थी ॥३५॥ तदनन्तर जिनके युद्धके मनोरथ नष्ट हो गये थे ऐसे विजयार्ध-पर्वतपरके राजा अपने अधिपति—स्वामीके साथ अपने-अपने स्थानोंकी ओर भाग गये ॥३६॥ तीव्र क्रोधसे भरे, रत्नरथके उन वीर पुत्रोंको भागते हुए देख कर जिन्होंने आकाशमें ताली पीटनेका बड़ा शब्द किया था, जिनका शरीर चञ्चल था, मुख हास्यसे युक्त था, तथा नेत्र खिल रहे थे ऐसे कलहप्रिय नारदने कल-कल शब्द कर कहा कि ॥३७–३८॥ अहो ! ये वे ही चपल, क्रोधी, दुष्ट चेष्टाके धारक तथा मन्दबुद्धिसे युक्त रत्नरथके पुत्र भागे जा रहे हैं जिन्होंने कि लक्ष्मणके गुणोंकी उन्नति सहन नहीं की थी ॥३९॥ अरे मानवो ! इन उद्दण्ड लोगोंको शीघ्र ही बलपूर्वक पकड़ो । उस समय मेरा अनादर कर अब कहाँ भागना हो रहा है ? ॥४०॥ इतना कहनेपर जिन्होंने जीतका यश प्राप्त किया था तथा जो प्रतापसे श्रेष्ठ थे, ऐसे कितने ही धीर-वीर उन्हें पकड़नेके लिए उद्यत हो उनके पीछे दौड़े ॥४१॥ उस समय उन सबके निकटस्थ होनेपर रत्नपुर नगर उस वनके समान हो गया था जिसके कि समीप बहुत बड़ा दावानल लग रहा था ॥४२॥

अथानन्तर उसी समय, जो दृष्टिमें आये हुए मनुष्यमात्रके मनको आनन्दित करनेवाली थी, घबड़ाई हुई थी, घोड़ोंके रथपर आरूढ़ थी, तथा महाप्रेमके वशीभूत थी ऐसी रत्नस्वरूप

१. भङ्क्त्वा म० । २. गात्रस्मितास्यो म० ।

सम्भ्रान्ताम्बरथारूढा महाप्रेमवशीकृता । सौमित्रिमुपसम्पन्ना पौलोमीव विडौजसम्[1] ॥४४॥
तां प्रसादनसंयुक्तां प्रसाद्यां प्राप्य लक्ष्मणः । प्रशान्तकलुषो जातो भ्रुकुटीरहितानन: ॥४५॥
ततो रत्नरथः [2]साकं सुतैर्मानविवर्जितः । प्रीत्या निर्गत्य नगरादुपायनसमन्वितः ॥४६॥
देशकालविधानज्ञो दृष्टात्मपरपौरुषः । सङ्गत्य सुष्ठु तुष्टाव मृगनागारिकेतनौ ॥४७॥
अन्तरेऽत्र समागत्य सुमहाजनमध्यगम् । नारदोऽह्वेपयद्रत्नरथं सस्मित भाषितैः ॥४८॥
का वार्त्ता तेऽधुना रत्नरथ पांशुरथोऽथ वा । [3]केचित्कुशलमुत्तुङ्गभटगर्जितकारिणः ॥४९॥
नूनं रत्नरथो न त्वं स हि गर्वमहाचलः[4] । नारायणांघ्रिसेवास्थो भवन् कोऽप्यपरो नृपः ॥५०॥
कृत्वा कहकहाशब्दं कराहतकरः पुनः । जगौ भो स्थीयते कच्चित्सुखं रत्नरथाङ्गजाः ॥५१॥
सोऽयं नारायणो यस्य भयत्रिस्तादृशं तदा । गदितं हृदयग्राहि स्वगृहोद्धतचेष्टितैः ॥५२॥
एवं सत्यपि तैरुक्तं त्वयि नारद कोपिते । महापुरुषसम्पर्कः प्राप्तोऽस्माभिः सुदुर्लभः ॥५३॥
इति नर्मसमेताभिः कथाभिः क्षणमात्रकम् । अवस्थाय पुरं सर्वे विविशुः परमर्द्धयः ॥५४॥

इन्द्रवज्रा

श्रीदामनामा रतितुल्यरूपा रामाय दत्ता सुमनोऽभिरामा ।
रामामिमां प्राप्य परं स रेमे मेरुप्रभावः कृतपाणियोगः ॥५५॥
दत्ता तथा रत्नरथेन जाता स्वयं [5]दशास्यक्षयकारणाय ।
मनोरमार्थप्रतिपन्ननामा तयोश्च वृत्ता परिणीतिरुथा ॥५६॥

मनोरमा कन्या वहाँ लक्ष्मणके समीप उस प्रकार आई जिस प्रकार कि इन्द्राणी इन्द्रके पास जाती है ॥४३–४४॥ जो प्रसाद करनेवाले लोगोंसे सहित थी तथा जो स्वयं प्रसाद करानेके योग्य थी ऐसी उस कन्याको पाकर लक्ष्मणकी कलुषता शान्त हो गई तथा उसका मुख भृकुटियोंसे रहित हो गया ॥४५॥ तत्पश्चात् जिसका मान नष्ट हो गया था, जो देशकालकी विधिको जाननेवाला था, जिसने अपना-पराया पौरुष देख लिया था और जो योग्य भेंटसे सहित था ऐसे राजा रत्नरथने प्रीतिपूर्वक पुत्रोंके साथ नगरसे बाहर निकल कर सिंह और गरुडको पताकाओंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणकी अच्छी तरह स्तुति की ॥४६–४७॥ इसी बीचमें नारदने आकर बहुत बड़ी भीड़के मध्यमें स्थित रत्नरथको मन्द हास्यपूर्ण वचनोंसे इस प्रकार लज्जित किया कि अहो ! अब तेरा क्या हाल है ? तू रत्नरथ था अथवा रजोरथ ? तू बहुत बड़े योद्धाओंके कारण गर्जना कर रहा था सो अब तेरी कुशल तो है ? ॥४८–४९॥ जान पड़ता है कि तू गर्वका महापर्वत स्वरूप वह रत्नरथ नहीं है किन्तु नारायणके चरणोंकी सेवामें स्थित रहनेवाला कोई दूसरा ही राजा है ॥५०॥ तदनन्तर कहकहा शब्द कर तथा एक हाथसे दूसरे हाथकी ताली पीटते हुए कहा कि अहो! रत्नरथके पुत्रो ! सुखसे तो हो ? ॥५१॥ यह वही नारायण है कि जिसके विषयमें उस समय अपने घरमें ही उद्धत चेष्टा दिखानेवाले आप लोगोंने उस तरह हृदयको पकड़नेवाली बात कही थी ॥५२॥ इस प्रकार यह होने पर भी उन सबने कहा कि हे नारद ! तुम्हें कुपित किया उसीका यह फल है कि हमलोगोंको जिसका मिलना अत्यन्त दुर्लभ था ऐसा महापुरुषोंका संपर्क प्राप्त हुआ ॥५३॥ इस प्रकार विनोद पूर्ण कथाओंसे वहाँ क्षणभर ठहर कर सब लोगोंने बड़े वैभवके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥५४॥ उसी समय जो रतिके समान रूपकी धारक थी तथा देवोंको भी आनन्दित करनेवाली थी ऐसी श्रीदामा नामकी कन्या रामके लिए दी गई। ऐसी स्त्रीको पाकर जिनका मेरुके समान प्रभाव था तथा जिन्होंने उसका पाणिग्रहण किया था ऐसे श्रीराम अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥५५॥ तदनन्तर राजा रत्नरथने रावणका क्षय करनेवाले लक्ष्मणके

---

१. इन्द्रम् । २. सारं म० । ३. केचित् म० । ४. महाबलः ब० । ५. दशास्यक्षणकरणाय म० ।

एवं प्रचण्डा अपि यान्ति [1]साम रत्नान्यघाणि च संश्रयन्ते ।
पुण्यानुभावेन यतो जनानां ततः कुरुध्वं रविनिर्मलं तत् ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मनोरमालंभाभिधानं नाम त्रिनवतितमं पर्व ॥९३॥

लिए सार्थक नामवाली मनोरमा कन्या दी और उन दोनोंका उत्तम पाणिग्रहण हुआ ॥५६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यतश्च इस तरह मनुष्योंके पुण्य प्रभावसे अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं और अमूल्य रत्न उन्हें प्राप्त होते रहते हैं इसलिए हे भव्यजनो ! सूर्यके समान निर्मल पुण्यका संचय करो ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्यद्वारा कथित पद्मपुराणमें मनोरमाकी प्राप्तिका कथन करनेवाला तेरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९३॥

---

१. नाम म०, क०, ख०, ज० ।

चतुर्णवतितमं पर्व

अन्येऽपि[1] दक्षिणश्रेण्यां विजयार्धस्य खेचराः। शस्त्रान्धकारिते संख्ये लक्ष्मणेन वशीकृताः ॥१॥
अत्यन्तदुःसहाः सन्तो महापन्नगसन्निभाः। शौर्यक्ष्वेडविनिर्मुक्ता जाता रामानुसेविनः ॥२॥
नामानि राजधानीनां तासां ख्यातानि कानिचित्। कीर्त्तयिष्यामि ते राजन् स्वःपुरीसमतेजसाम् ॥३॥
पुरं रविनिभं नाम तथा वह्निप्रभं शुभम्। काञ्चनं मेघसंज्ञं च तथा च शिवमन्दिरम् ॥४॥
[3]गन्धर्वगीतममृतं पुरं लक्ष्मीधरं तथा। किन्नरोद्गीतसंज्ञं च जीमूतशिखरं परम् ॥५॥
मर्त्यानुगीतं चक्राङ्कं विश्रुतं रथनूपुरम्। श्रीमद्बहुरवाभिख्यं चारुश्रीमलयश्रुतिम् ॥६॥
श्रीगृहं भास्कराभं च तथारिञ्जयसंज्ञकम्। ज्योतिःपुरं शशिच्छायं गान्धारमलयं घनम् ॥७॥
सिंहस्थानं मनोज्ञं च भद्रं श्रीविजयस्वनम्। कान्तं यक्षपुरं रम्यं तिलकस्थानमेव च ॥८॥
परमाण्येवमादीनि पुराणि पुरुषोत्तम। परिक्रान्तानि भूरीणि लक्ष्मणेन महात्मना ॥९॥
प्रसाद्य धरणीं सर्वां रत्नैः सप्तभिरन्वितः। नारायणपदं कृत्स्नं प्राप लक्ष्मणसुन्दरः ॥१०॥
चक्रं छत्रं धनुः शक्तिर्गदा मणिरसिस्तथा। एतानि सप्त रत्नानि परिप्राप्तानि लक्ष्मणम् ॥११॥
उवाच श्रेणिको भूपो भगवंस्त्वत्प्रसादतः। रामलक्ष्मणयोर्ज्ञातं माहात्म्यं विधिना मया ॥१२॥
अधुना ज्ञातुमिच्छामि लवणाङ्कुशसम्भवम्। सौमित्रिपुत्रसम्भूतिं तथा तद्वक्तुमर्हसि ॥१३॥
ततो मुनिगणस्वामी जगाद परमस्वनम्। शृणु वक्ष्यामि ते राजन् कथावस्तु मनीषितम् ॥१४॥
युगप्रधाननरयोः पद्मलक्ष्मणयोस्तयोः। निष्कण्टकमहाराज्यजातभोगोपयुक्तयोः ॥१५॥
व्रजन्त्यहानि पक्षाश्च मासा वर्षयुगानि च। दोदुन्दकामराज्ञातसुमहासुखसक्तयोः ॥१६॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें रत्नरथके सिवाय जो अन्य विद्याधर थे शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त युद्धमें लक्ष्मणने उन सबको भी वश कर लिया ॥१॥ जो विद्याधर पहले महानागके समान अत्यन्त दुःसह थे वे अब शूर-वीरता रूपी विषसे रहित हो रामके सेवक हो गये ॥२॥ हे राजन्! अब मैं स्वर्गके समान तेजको धारण करने वाली उन नगरियोंके कुछ नाम तेरे लिए कहूँगा सो श्रवण कर ॥३॥ रविप्रभ, वह्निप्रभ, काञ्चन, मेघ, शिवमन्दिर, गन्धर्वगीत, अमृतपुर, लक्ष्मीधर, किन्नरोद्गीत, जीमूतशिखर, मर्त्यानुगीत, चक्रपुर, रथनूपुर, बहुरव, मलय, श्रीगृह, भास्कराभ, अरिञ्जय, ज्योतिःपुर, शशिच्छाय, गान्धार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, यक्षपुर और तिलकपुर। हे पुरुषोत्तम! इन्हें आदि लेकर अनेक उत्तमोत्तम नगर उन महापुरुष लक्ष्मणने वशमें किये ॥४-९॥ इस प्रकार लक्ष्मणसुन्दर समस्त पृथिवीको वश कर सात रत्नोंसे सहित होता हुआ सम्पूर्ण नारायण पदको प्राप्त हुआ ॥१०॥ चक्र, छत्र, धनुष, शक्ति, गदा, मणि और खड्ग ये सात रत्न लक्ष्मणको प्राप्त हुए थे ॥११॥ [तथा हल, मुसल, गदा और रत्नमाला ये चार रत्न रामको प्राप्त थे।] तदनन्तर श्रेणिकने गौतम स्वामीसे कहा कि हे भगवन्! मैंने आपके प्रसादसे विधिपूर्वक राम और लक्ष्मणका माहात्म्य जान लिया है अब लवणाङ्कुशकी उत्पत्ति तथा लक्ष्मणके पुत्रोंका जन्म जानना चाहता हूँ सो आप कहनेके योग्य हैं ॥१२-१३॥

तदनन्तर मुनिसंघके स्वामी श्री गौतम गणधरने उच्चस्वरमें कहा कि हे राजन्! सुन, मैं तेरी इच्छित कथावस्तु कहता हूँ ॥१४॥ अथानन्तर युगके प्रधान पुरुष जो राम, लक्ष्मण थे वे निष्कण्टक महाराज्यसे उत्पन्न भोगोपभोगकी सामग्रीसे सहित थे तथा दोदुंदक नामक देवके द्वारा अनुज्ञात महासुखमें आसक्त थे। इस तरह उनके दिन, पक्ष, मास, वर्ष और युग व्यतीत हो

---

१. अन्योऽपि म०। २. गान्धर्व म०। ३. श्रीगुहं म०।

सुरस्त्रीभिः समानानां स्त्रीणां सत्कुलजन्मनाम् । सहस्राण्यवबोध्यानि दश सप्त च लक्ष्मणे ॥१७॥
तासामष्टौ महादेव्यः कीर्तिश्रीरतिसंनिभाः । गुणशीलकलावत्यः सौम्याः सुन्दरविभ्रमाः ॥१८॥
तासां जगत्प्रसिद्धानि कीर्त्यमानानि भूपते । शृणु नामानि चारूणि यथावदनुपूर्वशः ॥१९॥
राज्ञः श्रीद्रोणमेघस्य विशल्याख्या सुतादितः । ततो रूपवतीख्याता प्रतिरूपविवर्जिता ॥२०॥
तृतीया वनमालेति वसन्तश्रीयुतेव सा । अन्या कल्याणमालाख्या नामाख्यातमहागुणा ॥२१॥
पञ्चमी रतिमालेति रतिमालेव रूपिणी । षष्ठी च जितपद्मेति जितपद्मा मुखश्रिया[1] ॥२२॥
अन्या भगवती नाम चरमा च मनोरमा । अग्रपत्न्य इमा अष्टावुक्ता गरुडलक्ष्मणः ॥२३॥
दयिताष्टसहस्री तु पद्माभस्यामरीसमा । चतस्रश्च महादेव्यो जगत्प्रख्यातकीर्तयः ॥२४॥
प्रथमा जानकी ख्याता द्वितीया च प्रभावती । ततो रतिनिभाऽभिख्या श्रीदामा च रमा स्मृता ॥२५॥
एतासां च समस्तानां मध्यस्था चारुलक्षणा[2] । जानकी शोभतेऽत्यर्थं सतारेन्दुकला यथा ॥२६॥
द्वे शते शतमर्द्धं च पुत्राणां तार्क्ष्यलक्ष्मणः । तेषां च कीर्तयिष्यामि शृणु नामानि कानिचित् ॥२७॥
वृषभो धरणश्चन्द्रः शरभो मकरध्वजः । धारणो हरिनागश्च श्रीधरो मदनोऽच्युतः ॥२८॥
तेषामष्टौ प्रधानाश्च कुमाराश्चारुचेष्टिताः । अनुरक्ता गुणैर्येषामनन्यमनसो जनाः ॥२९॥
विशल्यासुन्दरीसूनुः प्रथमं श्रीधरः स्मृतः । असौ पुरि विनीतायां राजते दिवि चन्द्रवत् ॥३०॥
ज्ञेयो रूपवतीपुत्रः पृथिवीतिलकाभिधः । पृथिवीतलविख्यातः पृथ्वीं कान्तिं समुद्वहन् ॥३१॥
पुत्रः कल्याणमालाया बहुकल्याणभाजनम् । बभूव मङ्गलाभिख्यो मङ्गलैकक्रियोदितः ॥३२॥
विमलप्रभनामाऽभूत् पद्मावत्यां शरीरजः । तनयोऽजुनवृक्षाख्यो वनमालासमुद्भवः ॥३३॥

गये ॥१५-१६॥ जो देवाङ्गनाओंके समान थीं तथा उत्तम कुलमें जिनका जन्म हुआ था ऐसी सत्तरह हजार स्त्रियाँ लक्ष्मणकी थीं ॥१७॥ उन स्त्रियोंमें कीर्त्ति, लक्ष्मी और रतिकी समानता प्राप्त करनेवाली गुणवती, शीलवती, कलावती, सौम्य और सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाली आठ महादेवियाँ थीं ॥१८॥ हे राजन्! अब मैं यथा क्रमसे उन महादेवियोंके सुन्दर नाम कहता हूँ सो सुन ॥१९॥ सर्वप्रथम राजा द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या, उसके अनन्तर उपमासे रहित रूपवती, फिर तीसरी वनमाला, जो कि वसन्तकी लक्ष्मीसे मानो सहित ही थी, जिसके नामसे ही महागुणोंकी सूचना मिल रही थी ऐसी चौथी कल्याणमाला, जो रतिमालाके समान रूपवती थी ऐसी पाँचवीं रतिमाला, जिसने अपने मुखसे कमलको जीत लिया था ऐसी छठवीं जितपद्मा, सातवीं भगवती और आठवीं मनोरमा ये लक्ष्मणकी आठ प्रमुख स्त्रियाँ थीं ॥२०-२३॥ रामचन्द्र जीको देवाङ्गनाओंके समान आठ हजार स्त्रियाँ थीं। उनमें जगत् प्रसिद्ध कीर्तिको धारण करनेवाली चार महादेवियाँ थीं ॥२४॥ प्रथम सीता, द्वितीय प्रभावती, तृतीय रतिनिभा और चतुर्थ श्रीदामा ये उन महादेवियोंके नाम हैं ॥२५॥ इन सब स्त्रियोंके मध्यमें स्थित सुन्दर लक्षणों वाली सीता, ताराओंके मध्यमें स्थित चन्द्रकलाके समान सुशोभित होती थी ॥२६॥ लक्ष्मणके अढ़ाई सौ पुत्र थे उनमेंसे कुछके नाम कहता हूँ सो सुन ॥२७॥ वृषभ, धरण, चन्द्र, शरभ, मकरध्वज, धारण, हरिनाग, श्रीधर, मदन और अच्युत ॥२८॥ जिनके गुणोंमें अनुरक्त हुए पुरुष अनन्यचित्त हो जाते थे ऐसे सुन्दर चेष्टाओंको धारण करने वाले आठ कुमार उन पुत्रोंमें प्रमुख थे ॥२९॥

उनमेंसे श्रीधर, विशल्या सुन्दरीका पुत्र था जो अयोध्यापुरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि आकाशमें चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३०॥ रूपवतीके पुत्रका नाम पृथिवीतिलक था जो उत्तम कान्तिको धारण करता हुआ पृथिवीतल पर अत्यन्त प्रसिद्ध था ॥३१॥ कल्याणमालाका पुत्र मङ्गल नामसे प्रसिद्ध था वह अनेक कल्याणोंका पात्र था तथा माङ्गलिक क्रियाओंके करनेमें सदा तत्पर रहता था ॥३२॥ पद्मावतीके विमलप्रभ नामका पुत्र हुआ था।

---

१. सुखश्रिया म० । २. लक्ष्मणा म० ।

अतिवीर्यस्य तनया श्रीकेशिनमसूत च । आत्मजो भगवत्याश्च सत्यकीर्तिः प्रकीर्तितः ॥३४॥
सुपार्श्वकीर्तिनामानं सुतं प्राप मनोरमा । सर्वे चैते महासत्त्वाः शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥३५॥
नखमांसवदेतेषां भ्रातृणां संगतिर्दृढा । सर्वत्र शस्यते लोके समानोचितचेष्टिता ॥३६॥
अन्योन्यहृदयासीनाः प्रेमनिर्भरचेतसः । अष्टौ दिवीव वसवो रेमिरे स्वेप्सितं पुरि ॥३७॥
पूर्वं जनितपुण्यानां प्राणिनां शुभचेतसाम् । आरभ्य जन्मतः सर्वं जायते सुमनोहरम् ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं च कार्त्स्न्येन कुमारकोटयः स्मृता नरेन्द्रप्रभवाश्चतस्रः ।
कोट्यर्द्धयुक्ताः पुरि तत्र शक्त्या ख्याता नितान्तं परया मनोज्ञाः ॥३९॥

आर्या

नानाजनपदनिरतं परिगतमुकुटोत्तमाङ्कं नृपचक्रम् ।
षोडशसहस्रसंख्यं बलहरिचरणानुगं स्मृतं रवितेजः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणविभूतिदर्शनीयाभिधानं नाम चतुर्णवतितमं पर्व ॥९४॥

वनमालाने अर्जुनवृक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया था ॥३३॥ राजा अतिवीर्यकी पुत्रीने श्रीकेशी नामक पुत्र उत्पन्न किया था। भगवतीका पुत्र सत्यकीर्ति इस नामसे प्रसिद्ध था ॥३४॥ और मनोरमाने सुपार्श्वकीर्ति नामक पुत्र प्राप्त किया था। ये सभी कुमार महाशक्तिशाली तथा शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें निपुण थे ॥३५॥ इन सब भाइयोंकी नख और मांसके समान सुदृढ संगति थी तथा इन सबकी समान एवं उचित चेष्टा लोकमें सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती थी ॥३६॥ सो परस्पर एक दूसरेके हृदयमें विद्यमान थे तथा जिनके चित्त प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे ये आठों कुमार स्वर्गमें आठ वसुओंके समान नगरमें अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥३७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने पूर्व पर्यायमें पुण्य उत्पन्न किया है तथा जिनका चित्त शुभभाव रूप रहा है ऐसे प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ जन्मसे ही अत्यन्त मनोहर होती हैं इस प्रकार उस नगरीमें सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ राजकुमार थे जो उत्कृष्ट शक्तिसे प्रसिद्ध तथा अत्यन्त मनोहर थे ॥३८-३९॥ जो नाना देशोंमें निवास करते थे, जिनके मस्तक पर मुकुट बँधे हुए थे, तथा जिनका तेज सूर्यके समान था ऐसे सोलह हजार राजा राम और लक्ष्मणके चरणोंकी सेवा करते थे ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणकी विभूतिको दिखानेवाला चौरानबेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९४॥

पञ्चनवतितमं पर्व

एवं दिनेषु गच्छत्सु भोगसम्भारयोगिषु । धर्मार्थकामसम्बन्धनितान्तरतिकारिषु ॥१॥
विमानाभेऽन्यदा सुप्ता भवने जानकी सुखम् । शयनीये शरन्मेघमालासम्मितमार्दवे ॥२॥
अपश्यत् पश्चिमे यामे स्वप्नमम्भोजलोचना । दिव्यतूर्यनिनादैश्च मङ्गलैर्बोधमागता ॥३॥
ततोऽतिविमले जाते प्रभाते संशयान्विता । कृतदेहस्थितिः कान्तमियाय सुसखीवृता ॥४॥
अपृच्छच्च मया नाथ स्वप्नो योऽद्य निरीक्षितः । अर्थं कथयितुं तस्य [1]लब्धवर्ण त्वमर्हसि ॥५॥
शरदिन्दुसमच्छायौ क्षुब्धसागरनिःस्वनौ । कैलासशिखराकारौ सर्वालङ्कारभूषितौ ॥६॥
कान्तिमत्सितसद्दंष्ट्रौ प्रवरौ शरभोत्तमौ । प्रविष्टौ मे मुखं मन्ये विलसत्सितकेसरौ ॥७॥
शिखरात् पुष्पकस्याथ सम्भ्रमेणोरुणान्विता । वाततुन्ना पताकेवापतितास्मि किल क्षितौ ॥८॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचच्छरभद्वयदर्शनात् । [2]प्रवरोर्वचिरेणैव पुत्रयुग्ममवाप्स्यसि[3] ॥९॥
पतनं पुष्पकस्याग्राद्यत्ते न प्रशस्यते । अथवा शमदानस्थाः प्रयान्तु प्रशमं ग्रहाः ॥१०॥
वसन्तोऽथ परिप्राप्तस्तिलकामुक्तकङ्कटः । नीपनागेश्वरारूढः सहकारशरासनः ॥११॥
पद्मनाराचसंयुक्तः केसरापूरितेषुधिः । गीयमानोऽमलश्लोकैर्मधुव्रतकदम्बकैः ॥१२॥
कदम्बघनवातेन हारिणा निःश्वसन्निव । मल्लिकाकुसुमोद्योतैः शत्रूनन्यान् हसन्निव ॥१३॥

अथानन्तर इस प्रकार भोगोंके समूहसे युक्त तथा धर्म अर्थ और कामके सम्बन्धसे अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करनेवाले दिनोंके व्यतीत होने पर किसी दिन सीता विमान तुल्य भवनमें शरद् ऋतुकी मेघमालाके समान कोमल शय्या पर सुखसे सो रही थी कि उस कमललोचनाने रात्रिके पिछले प्रहरमें स्वप्न देखा और देखते ही दिव्य वादित्रोंके मङ्गलमय शब्दसे वह जागृत हो गई ॥१-३॥ तदनन्तर अत्यन्त निर्मल प्रभातके होने पर संशयको प्राप्त सीता, शरीर सम्बन्धी क्रियाएँ करके सखियों सहित पतिके पास गई ॥४॥ और पूछने लगी कि हे नाथ ! आज मैंने जो स्वप्न देखा है हे विद्वन् ! आप उसका फल कहनेके लिए योग्य हैं ॥५॥ मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शरदृऋतुके चन्द्रमाके समान जिनकी कान्ति थी, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान जिनका शब्द था, कैलाशके शिखरके समान जिनका आकार था, जो सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलंकृत थे, जिनकी उत्तम दाढें कान्तिमान् एवं सफेद थीं और जिनकी गरदनकी उत्तम जटाएँ सुशोभित हो रही थीं ऐसे अत्यन्त श्रेष्ठ दो अष्टापद मेरे मुखमें प्रविष्ट हुए हैं ॥६-७॥ यह देखनेके बाद दूसरे स्वप्नमें मैंने देखा है कि मैं वायुसे प्रेरित पताकाके समान अत्यधिक सम्भ्रमसे युक्त हो पुष्पक-विमानके शिखरसे गिरकर नीचे पृथिवीपर आ पड़ी हूँ ॥८॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे वरोरू ! अष्टापदोंका युगल देखनेसे तू शीघ्र ही दो पुत्र प्राप्त करेगी ॥९॥ हे प्रिये ! यद्यपि पुष्पकविमानके अग्रभागसे गिरना अच्छा नहीं है तथापि चिन्ताकी बात नहीं है क्योंकि शान्तिकर्म तथा दान करनेसे पापग्रह शान्तिको प्राप्त हो जावेंगे ॥१०॥

अथानन्तर जो तिलकपुष्परूपी कवचको धारण किये हुए था। कदम्बरूपी गजराजपर आरूढ था, आम्ररूपी धनुष साथ लिये था, कमलरूपी बाणोंसे युक्त था, बकुल रूपी भरे हुए तरकसोंसे सहित था, निर्मल गुञ्जार करनेवाले भ्रमरोंके समूह जिसका सुयश गा रहे थे, जो कदम्बसे सुवासित सघन सुन्दर वायुसे मानो सांस ही ले रहा था, मालतीके फूलोंके प्रकाशसे जो मानो दूसरे शत्रुओंकी हँसी कर रहा था और कोकिलाओंके मधुर आलापसे जो मानो अपने

१. हे विद्वन् । 'लब्धवर्णो विचक्षणः' इत्यमरः । २. हे प्रवरोरु + अचिरेण । ३. -मवाप्स्यति म० ।

कलपुंस्कोकिलालापैर्जल्परन्निव निजोचितम् । बिभ्रन्नरपतेर्लीलां लोकाकुलत्वकारिणीम् ॥१४॥
अङ्कोटनखरो बिभ्रद्दंष्ट्राङ्कुरबकात्मिकाम् । लोहिताशोकनयनश्चलत्पल्लवजिह्वकः ॥१५॥
वसन्तकेसरी प्राप्तो विदेशजनमानसम् । नयमानः परं त्रासं सिंहकेसरकेसरः ॥१६॥
रमणीयं स्वभावेन वसन्तेन विशेषतः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं नन्दनसुन्दरम् ॥१७॥
विचित्रकुसुमा वृक्षा विचित्रचलपल्लवाः । मत्ता इव विघूर्णन्ते दक्षिणानिलसङ्गताः ॥१८॥
पद्मोत्पलादिसञ्छन्नाः शकुन्तगणनादिताः । वाप्यो वरं विराजन्ते जनसेवितरोधसः ॥१९॥
हंससारसचक्राह्वकुरराणां मनोहराः । स्वनाः कारण्डवानां च प्रवृत्ता रागिदुःसहाः ॥२०॥
निपातोत्पतनैस्तेषां विमलं लुलितं जलम् । प्रमोदादिव संवृत्तं तरङ्गाढ्यं समाकुलम् ॥२१॥
पद्मादिभिर्जलं व्याप्तं स्थलं कुरवकादिभिः । गगनं रजसा तेषां वसन्ते जृम्भिते सति ॥२२॥
गुच्छगुल्मलतावृक्षाः प्रकारा बहुधा स्थिताः । वनस्पतेः परां शोभामुपजग्मुः समन्ततः ॥२३॥
काले तस्मिन्नरेन्द्रस्य जनकस्य शरीरजाम् । किञ्चिद् गर्भकृतश्रान्तिकृशीभूतशरीरिकाम् ॥२४॥
वीक्ष्य पृच्छति पद्माभः किं ते कान्ते मनोहरम् । सम्पादयाम्यहं ब्रूहि दोहकं किमसीदृशी ॥२५॥
ततः संस्मित्य वैदेही जगाद कमलानना । नाथ चैत्यालयान्द्रष्टुं भूरीन् वाञ्छामि भूतले ॥२६॥
त्रैलोक्यमङ्गलात्मभ्यः पञ्चवर्णेभ्य आदरात् । जिनेन्द्रप्रतिबिम्बेभ्यो नमस्कर्तुं ममाशयः ॥२७॥
हेमरत्नमयैः पुष्पैः पूजयामि जिनानिति । इयं मे महती श्रद्धा किमन्यदभिवाञ्छ्यते ॥२८॥

योग्य वार्तालाप ही कर रहा था ऐसा लोकमें आकुलता उत्पन्न करने वाली राजाकी शोभाको धारण करता हुआ वसन्तकाल आ पहुँचा ॥११-१४॥ अङ्कोट पुष्प ही जिसके नाखून थे, जो कुरवक रूपी दाढ़को धारण कर रहा था, लाल लाल अशोक ही जिसके नेत्र थे, चञ्चल किसलय ही जिसकी जिह्वा थी, जो परदेशी मनुष्यके मनको परम भय प्राप्त करा रहा था और बकुल पुष्प ही जिसकी गरदनके बाल थे ऐसा वसन्तरूपी सिंह आ पहुँचा ॥१५-१६॥ अयोध्याका महेन्द्रोदय उद्यान स्वभावसे ही सुन्दर था परन्तु उस समय वसन्तके कारण विशेष रूपसे नन्दनवनके समान सुन्दर हो गया था ॥१७॥ जिनमें रङ्ग-विरङ्गे फूल फूल रहे थे तथा जिनके नाना प्रकारके पल्लव हिल रहे थे, ऐसे वृक्ष दक्षिणके मलय समीरसे मिलकर मानो पागलकी तरह झूम रहे थे ॥१८॥ जो कमल तथा नील कमल आदिसे आच्छादित थीं, पक्षियोंके समूह जहाँ शब्द कर रहे थे, और जिनके तट मनुष्योंसे सेवित थे ऐसी वापिकाएँ अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं ॥१९॥ रागी मनुष्योंके लिए जिनका सहना कठिन था ऐसे हंस, सारस, चकवा, कुरर और कारण्डव पक्षियोंके मनोहर शब्द होने लगे ॥२०॥ उन पक्षियोंके उत्पतन और विपतनसे क्षोभको प्राप्त हुआ निर्मल जल हर्षसे ही मानो तरङ्ग युक्त होता हुआ व्याकुल हो रहा था ॥२१॥ वसन्तका विस्तार होनेपर जल, कमल आदिसे, स्थल कुरवक आदिसे और आकाश उनकी परागसे व्याप्त हो गया था ॥२२॥ उस समय गुच्छे, गुल्म, लता तथा वृक्ष आदि जो वनस्पतिकी जातियाँ अनेक प्रकारसे स्थित थीं वे सब ओरसे परम शोभाको प्राप्त हो रही थीं ॥२३॥

उस समय गर्भके द्वारा की हुई थकावटसे जिसका शरीर कुछ-कुछ श्रान्त हो रहा था ऐसी जनकनन्दिनीको देखकर रामने पूछा कि हे कान्ते ! तुझे क्या अच्छा लगता है ? सो कह । मैं अभी तेरी इच्छा पूर्ण करता हूँ तू ऐसी क्यों हो रही है ? ॥२४-२५॥ तब कमलमुखी सीताने मुसकरा कर कहा कि हे नाथ ! मैं पृथिवीतल पर स्थित अनेक चैत्यालयोंके दर्शन करना चाहती हूँ ॥२६॥ जिनका स्वरूप तीनों लोकोंके लिए मङ्गल रूप है ऐसी पञ्चवर्णकी जिन-प्रतिमाओंको आदर पूर्वक नमस्कार करनेका मेरा भाव है ॥२७॥ सुवर्ण तथा रत्नमयी पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करूँ यह मेरी बड़ी श्रद्धा है । इसके सिवाय और क्या इच्छा करूँ ? ॥२८॥

१. विवश म० । २. नीयमानः म० । ३. सद्मोत्पलादि-म० । ४. पृच्छसि म० ।

एवमाकर्ण्य पद्माभः स्मेरवक्त्रः प्रमोदवान् । समादिशत् प्रतीहारीं तत्क्षणप्रणताङ्गिकाम् ॥२९॥
अयि कल्याणि ! निक्षेपममात्यो गद्यतामिति । जिनालयेषु क्रियतामर्चना महतीत्यलम् ॥३०॥
महेन्द्रोदयमुद्यानं समेत्य सुमहादरम् । क्रियतां सर्वलोकेन सुशोभा जिनवेश्मनाम् ॥३१॥
तोरणैर्वैजयन्तीभिर्घण्टालम्बूषबुद्बुदैः । अर्धचन्द्रैर्वितानैश्च वस्त्रैश्च सुमनोहरैः ॥३२॥
तथोपकरणैरन्यैः समस्तैरतिसुन्दरैः । लोको मह्यां समस्तायां करोतु जिनपूजनम् ॥३३॥
निर्वाणधामचैत्यानि विभूष्यन्तां विशेषतः । महानन्दाः प्रवर्त्यन्तां सर्वसम्पत्तिसङ्गताः ॥३४॥
कल्याणं दोहदं तेषु वैदेह्याः प्रतिपूजयन् । विहराम्यनया साकं महिमानं समेधयन् ॥३५॥
आदिष्टया तयेत्यात्मपदे कृत्वाऽऽत्मसम्मिताम् । यथोक्तं गदितोऽमात्यस्तेनादिष्टाः स्वकिङ्कराः ॥३६॥
व्यतिपत्य महोद्योगैस्ततस्तैः सम्मदान्वितैः । उपशोभा[1] जिनेन्द्राणामालयेषु प्रवर्तिता ॥३७॥
महागिरिगुहाद्वारगम्भीरेषु मनोहराः । स्थापिताः पूर्णकलशाः सुहारादिविभूषिताः ॥३८॥
मणिचित्रसमाकृष्टचित्ता[2] परमपट्टकाः । प्रसारिता विशालासु हेममण्डलभित्तिषु ॥३९॥
अत्यन्तविमलाः शुद्धाः स्तम्भेषु मणिदर्पणाः । हारा गवाक्षवक्त्रेषु स्वच्छनिर्झरहारिणः ॥४०॥
विचित्रा भक्तयो न्यस्ता रत्नचूर्णेन चारुणा । विभक्ताः पञ्चवर्णेन पादगोचरभूमिषु ॥४१॥
न्यस्तानि शतपत्राणि सहस्रच्छदनानि च । [3]देहलीकाण्डयुक्तानि कमलान्यपरत्र च ॥४२॥
हस्तसम्पर्कयोग्येषु स्थानेषु कृतमुज्ज्वलम् । किङ्किणीजालकं मत्तकामिनीसमनिःस्वनम् ॥४३॥
पञ्चवर्णैर्विकाराढ्यैश्चामरैर्मण्डिदण्डकैः । संयुक्ताः [4]पट्टलम्बूषाः स्वायताङ्गाः प्रलम्बिताः ॥४४॥

यह सुनकर हर्षसे मुसकराते हुए रामने तत्काल ही नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाली द्वारपालिनीसे कहा कि हे कल्याणि ! विलम्ब किये विना ही मन्त्रीसे यह कहो कि जिनालयोंमें अच्छी तरह विशाल पूजा की जावे ॥२९-३०॥ सब लोग बहुत भारी आदरके साथ महेन्द्रोदय उद्यानमें जाकर जिन-मन्दिरोंकी शोभा करें ॥३१॥ तोरण, पताका, घंटा, लम्बूष, गोले, अर्धचन्द्र, चंदोवा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र, तथा अत्यन्त सुन्दर अन्यान्य समस्त उपकरणोंके द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथिवी पर जिन-पूजा करें ॥३२-३३॥ निर्वाण क्षेत्रोंके मन्दिर विशेष रूपसे विभूषित किये जावें तथा सर्व सम्पत्तिसे सहित महा आनन्द—बहुत भारी हर्षके कारण प्रवृत्त किये जावें ॥३४॥ उन सबमें पूजा करनेका जो सीताका दोहला है वह बहुत ही उत्तम है सो मैं पूजा करता हुआ तथा जिन शासनकी महिमा बढ़ाता हुआ इसके साथ विहार करूँगा ॥३५॥ इस प्रकार आज्ञा पाकर द्वारपालिनीने अपने स्थान पर अपने ही समान किसी दूसरी स्त्रीको नियुक्त कर रामके कहे अनुसार मन्त्रीसे कह दिया और मन्त्रीने भी अपने सेवकोंके लिए तत्काल आज्ञा दे दी ॥३६॥

तदनन्तर महान् उद्योगी एवं हर्षसे सहित उन सेवकोंने शीघ्र ही जाकर जिन-मन्दिरोंमें सजावट कर दी ॥३७॥ महापर्वतकी गुफाओंके समान जो मन्दिरोंके विशाल द्वार थे उन पर उत्तम हार आदिसे अलंकृत पूर्ण कलश स्थापित किये गये ॥३८॥ मन्दिरोंकी सुवर्णमयी लम्बी-चौड़ी दीवालों पर मणिमय चित्रोंसे चित्तको आकर्षित करनेवाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये ॥३९॥ खम्भोंके ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियोंके दर्पण लगाये गये और झरोखोंके अग्रभागमें स्वच्छ झरनेके समान मनोहर हार लटकाये गये ॥४०॥ मनुष्योंके जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियोंमें पाँच वर्णके रत्नमय सुन्दर चूर्णोंसे नाना प्रकारके बेल-बूटे खींचे गये थे ॥४१॥ जिनमें सौ अथवा हजार कलिकाएँ थीं तथा जो लम्बी डंडीसे युक्त थे ऐसे कमल उन मन्दिरोंकी देहलियों पर तथा अन्य स्थानों पर रक्खे गये थे ॥४२॥ हाथसे पाने योग्य स्थानोंमें मत्त स्त्रीके समान शब्द करनेवाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घंटियोंके समूह लगाये गये थे ॥४३॥ जिनकी मणिमय

१. उपशोभी म० । २. चित्राः म० । ३. 'देहल्याम्' इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति । ४. पद- म० ।

माल्यान्यत्यन्तचित्राणि प्रापितानि प्रसारणम् । सौरभाकृष्टभृङ्गाणि कृतान्युत्तमशिल्पिभिः ॥४५॥
विशालातोद्यशालाभिः कल्पिताभिश्च नैकशः । तथा प्रेक्षकशालाभिः तदुद्यानमलङ्कृतम्॥४६॥
एवमत्यन्तचार्वीभिरत्युर्वीभिर्विभूतिभिः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं नन्दनसुन्दरम् ॥४७॥

आर्याच्छन्दः

अथ भूत्यासुरपतिवत्सपुरजनपदसमन्वितो देवीभिः ।
सर्वामात्यसमेतः पद्मः सीतान्वितो ययावुद्यानम् ॥४८॥
परमं गजमारूढः सीतायुक्तो रराज बाढं पद्मः ।
ऐरावतपृष्ठगतः शच्या यथा दिवौकसां नाथः ॥४९॥
नारायणोऽपि च यथा परमामृद्धिं समुद्वहन् याति स्म ।
शेषजनश्च सदाहं हृष्टः स्फीतो [1]महान्नपानसमृद्धः ॥५०॥
कदलीगृहमनोहरगृहेष्वतिमुक्तकमण्डपेषु च मनोज्ञेषु ।
देव्यः स्थिता महद्धर्या यथार्हमन्यो जनश्च सुखमासीनः ॥५१॥
अवतीर्य गजाद् रामः [2]कामः कमलोत्पलसङ्कुले समुद्रोदारे ।
सरसि सुखं विमलजले रेमे क्षीरोदसागरे शक्र इव ॥५२॥
तस्मिन् सङ्क्रीड्य चिरं कृत्वा पुष्पोच्चयं जलादुत्तीर्य ।
दिव्येनार्चनविधिना वैदेह्या सङ्गतो जिनानानर्च ॥५३॥
रामो मनोभिरामः काननलक्ष्मीसमाभिरुद्यर्क्षीभिः ।
[3]कृतपरिवरणो रेजे वसन्त इव मूर्तिमानुपेतः श्रीमान् ॥५४॥

डंडियाँ थीं ऐसे पाँचवर्णके कामदार चमरोंके साथ-साथ बड़ी-बड़ी हाँड़ियाँ लटकाई गईं थीं॥४४॥ जो सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकर्षित कर रही थीं तथा उत्तम कारीगरोंने जिन्हें निर्मित किया था ऐसी नाना प्रकारकी मालाएँ फैलाई गई थीं ॥४५॥ अनेकोंकी संख्यामें जगह-जगह बनाई गई विशाल वादनशालाओं और प्रेक्षकशालाओं—दर्शकगृहोंसे वह उद्यान अलंकृत किया गया था ॥४६॥ इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर विशाल विभूतियोंसे वह महेन्द्रोदय उद्यान नन्दनवनके समान सुन्दर हो गया था ॥४७॥

अथानन्तर नगरवासी तथा देशवासी लोगोंके साथ, स्त्रियोंके साथ, समस्त मन्त्रियोंके साथ, और सीताके साथ रामचन्द्रजी इन्द्रके समान बड़े वैभवसे उस उद्यानकी ओर चले ॥४८॥ सीताके साथ-साथ उत्तम हाथी पर बैठे हुए राम ठीक उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह इन्द्राणीके साथ ऐरावतके पृष्ठपर बैठा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥४९॥ यथायोग्य ऋद्धिको धारण करनेवाले लक्ष्मण तथा हर्षसे युक्त एवं अत्यधिक अन्न पानकी सामग्रीसे सहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार जा रहे थे ॥५०॥ वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदली गृहोंमें तथा अतिमुक्तक लताके सुन्दर निकुञ्जोंमें महावैभवके साथ ठहर गईं तथा अन्य लोग भी यथा योग्य स्थानोंमें सुखसे बैठ गये ॥५१॥ हाथीसे उतर कर रामने कमलों तथा नील कमलोंसे व्याप्त एवं समुद्रके समान विशाल, निर्मल जलवाले सरोवरमें सुखपूर्वक उस तरह क्रीड़ा की जिस तरह कि क्षीरसागरमें इन्द्र करता है ॥५२॥ तदनन्तर सरोवरमें चिर काल तक क्रीड़ा कर, उन्होंने फूल तोड़े और जलसे बाहर निकल कर पूजाकी दिव्य सामग्रीसे सीताके साथ मिलकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५३॥ वनलक्ष्मियोंके समान उत्तमोत्तम स्त्रियोंसे घिरे हुए मनोहारी राम उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो शरीरधारी श्रीमान् वसन्त ही आ पहुँचा हो ॥५४॥

---

१. मदान्न -म० । २. कामः कमलोत्पलसंकुले समुदारे म० । ३. कृतपरिचरणो म० ।

देवीभिरनुपमाभिः सोऽष्टसहस्रप्रमाणसङ्ख्काभिः ।
रेजे निर्मलदेहस्ताराभिरिवावृतो ग्रहाणामधिपः ॥५५॥
अमृताहारविलेपनशयनासनवासगन्धमाल्यादिभवम् ।
शब्दरसरूपगन्धस्पर्शसुखं तत्र राम आपोदारम्[1] ॥५६॥
एवं जिनेन्द्रभवने प्रतिदिनपूजाविधानयोगरतस्य ।
रामस्य रतिः परमा जाता रवितेजसः सुदारयुतस्य ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे जिनेन्द्रपूजादोहदाभिधानं नाम पञ्चनवतितमं पर्व ॥९५॥

आठ हजार प्रमाण अनुपम देवियोंसे घिरे हुए, निर्मल शरीरके धारक राम उस समय ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ उस उद्यानमें रामने अमृतमय आहार, विलेपन, शयन, आसन, निवास, गन्ध तथा माला आदिसे उत्पन्न होनेवाले शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श सम्बन्धी उत्तम सुख प्राप्त किया था ॥५६॥ इस प्रकार जिनेन्द्र मन्दिरमें प्रतिदिन पूजा-विधान करनेमें तत्पर सूर्यके समान तेजस्वी, उत्तम स्त्रियोंसे सहित रामको अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें जिनेन्द्र पूजारूप दोहलेका वर्णन करनेवाला पंचानबेवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥९५॥

१. आप + उदारम् ।

षण्णवतितमं पर्व

उद्यानेऽवस्थितस्यैवं राघवस्य सुचेतसः । तृषिता इव सम्प्रापुः प्रजा दर्शनकाङ्क्षया ॥१॥
आवितं प्रतिहारीभिः पारम्पर्यात् प्रजागमम् । विज्ञाय दक्षिणस्याक्ष्णः स्पन्दं प्राप विदेहजा ॥२॥
अचिन्तयच्च किं न्वेतन्निवेदयति मे परम् । दुःखस्याऽऽगमनं नेत्रमधस्तात् स्पन्दनं भजत् ॥३॥
पापेन विधिना दुःखं प्रापिता सागरान्तरे । दुष्टस्तेन न सन्तुष्टः किमन्यत् प्रापयिष्यति ॥४॥
निर्मितानां स्वयं शश्वत् कर्मणामुचितं फलम् । ध्रुवं प्राणिभिराप्तव्यं न तच्छक्यंनिवारणम् ॥५॥
उपगुण्य प्रयत्नेन सिन्तांशुकमिवांशुमान् । पालयन्नपि नित्यं स्वं कर्मणां फलमश्नुते ॥६॥
अगदच्च विचेतस्का देव्यो ब्रूत श्रुतागमाः । सम्यग्विचार्य मेऽधस्तान्नेत्रस्पन्दनजं फलम् ॥७॥
तासामनुमती नाम देवी निश्चयकोविदा । जगाद देवि को नाम विधिरन्योऽत्र दृश्यते ॥८॥
यत् कर्म निर्मितं पूर्वं सितं मलिनमेव वा । स कृतान्तो विधिश्चासौ दैवं तच्च तदीश्वरः ॥९॥
कृतान्तेनाहमानीता व्यवस्थामेतिकामिति । पृथङ्निरूपणं तत्र जनस्याज्ञानसम्भवम् ॥१०॥
अथातो गुणदोषज्ञा गुणमालेति कीर्तिता । जगाद सान्त्वनोद्युक्ता देवीं देवनयाऽन्विताम् ॥११॥
देवि त्वमेव देवस्य सर्वतोऽपि गरीयसी । तवैव च प्रसादेन जनस्यान्यस्य संयुता ॥१२॥
ततोऽहं न प्रपश्यामि सुयुक्तेनापि चेतसा । यत्ते यास्यति दुःखस्य कारणत्वं सुचेष्टिते ॥१३॥

अथानन्तर जब इस प्रकार शुद्ध हृदयके धारक राम महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें अवस्थित थे तब उनके दर्शनकी आकांक्षासे प्रजा उनके समीप इस प्रकार पहुँची मानो प्यासी ही हो ॥१॥ 'प्रजाका आगमन हुआ है' यह समाचार परम्परासे प्रतिहारियोंने सीताको सुनाया, सो सीताने जिस समय इस समाचारको जाना उसी समय उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी ॥२॥ सीताने विचार किया कि अधोभागमें फड़कनेवाला नेत्र मेरे लिए किस भारी दुःखके आगमनकी सूचना दे रहा है ॥३॥ पापी विधाताने मुझे समुद्रके बीच दुःख प्राप्त कराया है सो जान पड़ता है कि वह दुष्ट उससे संतुष्ट नहीं हुआ, देखूँ अब वह और क्या प्राप्त कराता है ? ॥४॥ प्राणियोंने जो निरन्तर स्वयं कर्म उपार्जित किये हैं उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है—उसका निवारण करना शक्य नहीं है ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि चन्द्रमाका पालन करता है परन्तु प्रयत्न पूर्वक अपने तेजसे उसे तिरोहित कर पालन करता है इसलिए वह निरन्तर अपने कर्मका फल भोगता है (?) व्याकुल होकर सीताने अन्य देवियोंसे कहा कि अहो देवियो ! तुमने तो आगमको सुना है इसलिए अच्छी तरह विचार कर कहो कि मेरे नेत्रके अधोभागके फड़कनेका क्या फल है ? ॥६-७॥ उन देवियोंके बीच निश्चय करनेमें निपुण जो अनुमती नामकी देवी थी वह बोली कि हे देवि ! इस संसारमें विधि नामका दूसरा कौन पदार्थ दिखाई देता है ? ॥८॥ पूर्व पर्यायमें जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, दैव अथवा ईश्वर कहलाता है ॥९॥ 'मैं पृथग् रहनेवाले कृतान्तके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हूँ, ऐसा जो मनुष्यका निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है ॥१०॥

तदनन्तर गुण दोषको जाननेवाली गुणमाला नामकी दूसरी देवीने सान्त्वना देनेमें उद्यत हो दुःखिनी सीतासे कहा कि हे देवि ! प्राणनाथको तुम्हीं सबसे अधिक प्रिय हो और तुम्हारे ही प्रसादसे दूसरे लोगोंको सुखका योग प्राप्त होता है ॥११-१२॥ इसलिए सावधान चित्तसे भी मैं

१. त्वेतन्नि-म० । २. दृष्टस्तेन म० । ३. शक्यं निवारणं म०, ज० । ४. देवी म० । २. सुखयोगः ।

अन्यास्तत्र जगुर्देव्यो देव्यत्र जनितेन किम् । [1]वितर्केण विशालेन शान्तिकर्म विधीयताम् ॥१४॥
अभिषेकैर्जिनेन्द्राणामत्युदारैश्च पूजनैः । दानैरिच्छाभिपूरैश्च क्रियतामशुभेरणम् ॥१५॥
एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधु समीरितम् । दानं पूजाऽभिषेकश्च तपश्चाशुभसूदनम् ॥१६॥
विघ्नानां नाशनं दानं रिपूणां वैरनाशनम् । पुण्यस्य समुपादानं महतो यशसस्तथा ॥१७॥
इत्युक्त्वा भद्रकलशं समाहूय जगाविति । किमिच्छदानमासूतेर्दीयतां प्रतिवासरम् ॥१८॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा द्रविणाधिकृतो ययौ । इयमप्यादरे तस्थौ जिनपूजादिगोचरे ॥१९॥
ततो जिनेन्द्रगेहेषु तूर्यशब्दाः समुद्ययुः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्राः प्रावृड्घनरवोपमाः ॥२०॥
जिनेन्द्रचरितन्यस्तचित्रपट्टाः प्रसारिताः । पयोघृतादिसम्पूर्णाः कलशाः समुपाहृताः ॥२१॥
[2]भूषिताङ्गो द्विपारूढः कञ्चुकी सितवस्त्रभृत् । कः केनार्थीत्ययोध्यायां घोषणामददात् स्वयम् ॥२२॥
एवं सुविधिना दानं महोत्साहमदीयत । विविधं नियमं देवी निजशक्त्या चकार च ॥२३॥
प्रावर्त्यन्त महापूजा अभिषेकाः सुसम्पदः । पापवस्तुनिवृत्तात्मा बभूव समधीर्जनः ॥२४॥
इतिक्रियाप्रसक्तायां सीतायां शान्तचेतसि । आस्थानमण्डपे तस्थौ दर्शने शक्रवद्बलः॥[3] २५॥
प्रतीहारविनिर्मुक्तद्वाराः सम्भ्रान्तचेतसः । ततो जनपदाः सैंहं धामेवास्थानमाश्रिताः ॥२६॥
रत्नकाञ्चननिर्माणामदृष्टां जातुचित् पुनः । सभामालोक्य गम्भीरां प्रजानां चलितं मनः ॥२७॥

उस पदार्थको नहीं देखता जो हे सुचेष्टिते ! तुम्हारे दुःखका कारणपना प्राप्त कर सके ॥१३॥ उक्त दोके सिवाय जो वहाँ अन्य देवियाँ थीं उन्होंने कहा कि हे देवि ! इस विषयमें अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेसे क्या लाभ है ? शान्तिकर्म करना चाहिए ॥१४॥ जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दानके द्वारा अशुभ कर्मको दूर हटाना चाहिए ॥१५॥ इस प्रकार कहने पर सीताने कहा कि हे देवियो ! आप लोगोंने ठीक कहा है क्योंकि दान, पूजा, अभिषेक और तप अशुभ कर्मोंको नष्ट करनेवाला है ॥१६॥ दान विघ्नोंका नाश करनेवाला है, शत्रुओंका वैर दूर करनेवाला है, पुण्यका उपादान है तथा बहुत भारी यशका कारण है ॥१७॥ इतना कहकर सीताने भद्रकलश नामक कोषाध्यक्षको बुलाकर कहा कि प्रसूति पर्यन्त प्रतिदिन किमिच्छक दान दिया जावे ॥१८॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर उधर कोषाध्यक्ष चला गया और इधर यह सीता भी जिनपूजा आदि सम्बन्धी आदरमें निमग्न हो गई ॥१९॥

तदनन्तर जिन मन्दिरोंमें करोड़ों शङ्खोंके शब्दमें मिश्रित, एवं वर्षाकालिक मेघ गर्जनाकी उपमा धारण करनेवाले तुरही आदि वादित्रोंके शब्द उठने लगे ॥२०॥ जिनेन्द्र भगवान्के चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाले चित्रपट फैलाये गये और दूध, घृत आदिसे भरे हुए कलश बुलाये गये ॥२१॥ आभूषणोंसे आभूषित तथा श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाले कञ्चुकीने हाथी पर सवार हो अयोध्यामें स्वयं यह घोषणा दी कि कौन किस पदार्थकी इच्छा रखता है ? ॥२२॥ इस प्रकार विधि पूर्वक बड़े उत्साहसे दान दिया जाने लगा और देवी सीताने अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रकारके नियम ग्रहण किये ॥२३॥ उत्तम वैभवके अनुरूप महापूजाएँ और अभिषेक किये गये तथा मनुष्य पापपूर्ण वस्तुसे निवृत्त हो शान्तचित्त हो गये ॥२४॥ इस प्रकार जब शान्त चित्तकी धारक सीता दान आदि क्रियाओंमें आसक्त थी तब रामचन्द्र इन्द्रके समान सभामण्डपमें आसीन थे ॥२५॥

तदनन्तर द्वारपालोंने जिन्हें द्वार छोड़ दिये थे तथा जिनके चित्त व्यग्र थे ऐसे देशवासी लोग सभा मण्डपमें उस तरह डरते-डरते पहुँचे जिस तरह कि मानो सिंहके स्थान पर ही जा रहे हों ॥२६॥ रत्न और सुवर्णसे जिसकी रचना हुई थी तथा जो पहले कभी देखनेमें नहीं आई

---

१. वितर्कणविशालेन म० । २. भूषिताङ्गो म० । ३. रामः ।

हृदयानन्दनं राममालोक्य नयनोत्सवम् । उल्लसन् मनसो नेमुः प्रबद्धाञ्जलयः प्रजाः ॥२८॥
वीक्ष्य कम्पितदेहास्ता मुहुः कम्पितमानसाः । पद्मो जगाद भो भद्रा ब्रूतागमनकारणम् ॥२९॥
विजयोऽथ सुराजिश्च मधुमान् वसुलो धरः । काश्यपः पिङ्गलः कालः क्षेमाद्याश्च महत्तराः ॥३०॥
निश्चलाश्चरणन्यस्तलोचना गलितौजसः । न किंचिदूचुराक्रान्ताः प्रभावेण महीपतेः ॥३१॥
चिरादुत्सहते वक्तुं मतिर्यद्यपि कृच्छ्रतः । निःक्रामति तथाप्येषा वक्त्रागाराञ्च वाग्वधूः ॥३२॥
गिरा सान्त्वनकारिण्या पद्मः पुनरभाषत । ब्रूत स्वागतिनो ब्रूत कैमर्थ्येन समागताः ॥३३॥
इत्युक्ता अपि ते भूयः समस्तकरणोज्झिताः । तस्थुः पुस्त इव न्यस्ताः सुनिष्णातेन शिल्पिना ॥३४॥
ह्रीपाशकण्ठबद्धास्ते किञ्चिच्चञ्चललोचनाः । अर्भका इव सारङ्गा [1]जम्लुराकुलचेतसः ॥३५॥
ततः प्राग्रहरस्तेषामुवाच चलिताक्षरम् । देवाभयप्रसादेन प्रसादः क्रियतामिति ॥३६॥
ऊचे नरपतिर्भद्रा न किञ्चिद्भवतां भयम् । प्रकाशयत चित्तस्थं स्वस्थतामुपगच्छत ॥३७॥
अवद्यं सकलं त्यक्त्वा साध्विदानीं भजाम्यहम् । मिश्रीभूतं जलं त्यक्त्वा यथा हंसः स्तनोद्भवम्[2] ॥३८॥
अभयेऽपि ततो लब्धे कृच्छ्रप्रस्थापिताक्षरः । जगाद मन्दनिःस्वानो विजयोऽञ्जलिमस्तकः ॥३९॥
विज्ञाप्यं श्रूयतां नाथ पद्मनाभ नरोत्तम । प्रजाधुनाऽखिला जाता मर्यादारहितात्मिका ॥४०॥
स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः । प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किञ्चित्तस्य दुष्करम् ॥४१॥

थी ऐसी उस गम्भीर सभाको देखकर प्रजाके लोगोंका मन चञ्चल हो गया ॥२७॥ हृदयको आनन्दित करनेवाले और नेत्रोंको उत्सव देनेवाले श्रीरामको देखकर जिनके चित्त खिल उठे थे ऐसे प्रजाके लोगोंने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥२८॥ जिनके शरीर कम्पित थे तथा जिनका मन बार-बार काँप रहा था ऐसे प्रजाजनोंको देखकर रामने कहा कि अहो भद्रजनो! अपने आगमनका कारण कहो ॥२९॥ अथानन्तर विजय, सुराजि, मधुमान्, वसुल, धर, काश्यप, पिङ्गल, काल और क्षेम आदि बड़े-बड़े पुरुष, राजा रामचन्द्रजीके प्रभावसे आक्रान्त हो कुछ भी नहीं कह सके। वे चरणोंमें नेत्र लगाकर निश्चल खड़े रहे और सबका ओज समाप्त हो गया ॥३०-३१॥ यद्यपि उनकी बुद्धि कुछ कहनेके लिए चिरकालसे उत्साहित थी तथापि उनकी वाणी रूपी वधू मुखरूपी घरसे बड़ी कठिनाईसे नहीं निकलती थी ॥३२॥

तदनन्तर रामने सान्त्वना देने वाली वाणीसे पुनः कहा कि आप सबलोगोंका स्वागत है। कहिये आप सब किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं ॥३३॥ इतना कहने पर भी वे पुनः समस्त इंद्रियोंसे रहितके समान खड़े रहे। निश्चल खड़े हुए वे सब ऐसे जान पड़ते थे कि मानो किसी कुशल कारीगरने उन्हें मिट्टी आदिके खिलौनेके रूपमें रच कर निक्षिप्त किया हो—वहाँ रख दिया हो ॥३४॥ जिनके कण्ठ लज्जा रूपी पाशसे बँधे हुए थे, जो मृगोंके बच्चोंके समान कुछ कुछ चञ्चल लोचनवाले थे तथा जिनके हृदय अत्यन्त आकुल हो रहे थे ऐसे वे प्रजाजन उल्लाससे रहित हो गये—म्लान मुख हो गये ॥३५॥

तदनन्तर उनमें जो मुखिया था वह जिस किसी तरह टूटे-फूटे अक्षरोंमें बोला कि हे देव! अभय दान देकर प्रसन्नता कीजिये ॥३६॥ तब राजा रामचन्द्रने कहा कि हे भद्र पुरुषो! आप लोगोंको कुछ भी भय नहीं है, हृदयमें स्थित बातको प्रकट करो और स्वस्थताको प्राप्त होओ ॥३७॥ मैं इस समय समस्त पापका परित्याग कर उस तरह निर्दोष वस्तुको ग्रहण करता हूँ जिस प्रकार कि हंस मिले हुए जलको छोड़कर केवल दूधको ग्रहण करता है ॥३८॥ तदनन्तर अभय प्राप्त होने पर भी जो बड़ी कठिनाईसे अक्षरोंको स्थिर कर सका था ऐसा विजय नामक पुरुष हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मन्द स्वरमें बोला कि हे नाथ! हे राम! हे नरोत्तम! मैं जो निवेदन करना चाहता हूँ उसे सुनिये, इस समय समस्त प्रजा मर्यादासे रहित हो गई है ॥३९-४०॥ यह मनुष्य

१. जगु- म० । जच्छु- ख० । जङ्घु- क० । जगु ज० पुस्तके संशोधितपाठः । २. दुग्धम् ।

परमं चापलं धत्ते निसर्गेण प्लवङ्गमः । किमङ्ग पुनरारुह्य चपलं यन्त्रपञ्जरम् ॥४२॥
तरुण्यो रूपसम्पन्नाः पुंसामल्पबलात्मनाम् । ह्रियन्ते बलिभिः छिद्रे पापचित्तैः प्रसह्य च ॥४३॥
प्राप्तदुःखां प्रियां साध्वीं विरहात्यन्तदुःखितः । कश्चित् सहायमासाद्य पुनरानयते गृहम् ॥४४॥
प्रक्षीनधर्ममर्यादा यावन्नश्यति नावनिः । उपायश्चिन्त्यतां तावत्प्रजानां हितकाम्यया ॥४५॥
राजा मनुष्यलोकेऽस्मिन्नधुना त्वं यदा प्रजाः । न पासि विधिना नाशमिमा यान्ति तदा ध्रुवम् ॥४६॥
नद्युद्यानसभाग्रामप्रपाध्वपुरवेश्मसु । अवर्णवादमेकं ते मुक्त्वा नान्यास्ति सत्कथा ॥४७॥
स तु दाशरथी रामः सर्वशास्त्रविशारदः । हृतां विद्याधरेशेन जानकीं पुनरानयत् ॥४८॥
तत्र नूनं न दोषोऽस्ति कश्चिदप्येवमाश्रिते । व्यवहारेऽपि विद्वांसः प्रमाणं जगतः परम् ॥४९॥
किं च यादृशमुर्वीशः कर्मयोगं निषेवते । स एव सहतेऽस्माकमपि नाथानुवर्तिनाम् ॥५०॥
एवं प्रदुष्टचित्तस्य वदमानस्य भूतले । निरङ्कुशस्य लोकस्य काकुत्स्थ कुरु निग्रहम् ॥५१॥
एक एव हि दोषोऽयमभविष्यन्न चेत्ततः । व्यलम्बयिष्यदेतत्ते राज्यमाखण्डलेशताम् ॥५२॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य क्षणमेकमभून्नृपः । विषादमुद्गराघातविचलद्धृदयो भृशम् ॥५३॥
अचिन्तयच्च हा कष्टमिदमन्यत्समागतम् । यद्यशोम्बुजखण्डं मे दग्धुं लग्नोऽयशोऽनलः ॥५४॥
यत्कृतं दुःसहं सोढं विरहव्यसनं मया । सा क्रिया कुलचन्द्रं मे प्रकरोति मलीमसम् ॥५५॥
[1]विनीतां यां समुद्दिश्य प्रवीराः कपिकेतवः । करोति मलिनां सीता सा मे गोत्रकुमुद्वतीम् ॥५६॥

स्वभावसे ही महाकुटिलचित्त है फिर यदि कोई दृष्टान्त प्रकट मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नहीं रहता ॥४१॥ वानर स्वभावसे ही परम चञ्चलता धारण करता है फिर यदि चञ्चल यन्त्र रूपी पञ्जर पर आरूढ़ हो जावे तो कहना ही क्या है ॥४२॥ जिनके चित्तमें पाप समाया हुआ है ऐसे बलवान् मनुष्य अवसर पाकर निर्बल मनुष्योंकी तरुण स्त्रियोंको बलात् हरने लगे हैं ॥४३॥ कोई मनुष्य अपनी साध्वी प्रियाको पहले तो परित्यक्त कर अत्यन्त दुखी करता है फिर उसके विरहसे स्वयं अत्यन्त दुखी हो किसीकी सहायतासे उसे घर बुलवा लेता है ॥४४॥ इसलिए हे नाथ ! धर्मकी मर्यादा छूट जानेसे जबतक पृथ्वी नष्ट नहीं हो जाती है तब तक प्रजाके हितकी इच्छासे कुछ उपाय सोचा जाय ॥४५॥ आप इस समय मनुष्य लोकके राजा होकर भी यदि विधि पूर्वक प्रजाकी रक्षा नहीं करते हैं तो वह अवश्य ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥४६॥ नदी, उपवन, सभा, ग्राम, प्याऊ, मार्ग, नगर तथा घरोंमें इस समय आपके इस एक अवर्णवादको छोड़कर और दूसरी चर्चा ही नहीं है कि राजा दशरथके पुत्र राम समस्त शास्त्रों में निपुण होकर भी विद्याधरोंके अधिपति रावणके द्वारा हृत सीताको पुनः वापिस ले आये ॥४७-४८॥ यदि हम लोग भी ऐसे व्यवहारका आश्रय लें तो उसमें कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि जगत्के लिए तो विद्वान् ही परम प्रमाण हैं। दूसरी बात यह है कि राजा जैसा काम करता है वैसा ही काम उसका अनुकरण करनेवाले हम लोगोंमें भी बलात् होने लगता है ॥४९-५०॥ इस प्रकार दुष्ट हृदय मनुष्य स्वच्छन्द होकर पृथिवी पर अपवाद कर रहे हैं सो हे काकुत्स्थ ! उनका निग्रह करो ॥५१॥ यदि आपके राज्यमें एक यही दोष नहीं होता तो यह राज्य इन्द्रके भी साम्राज्य को विलम्बित कर देता ॥५२॥ इस प्रकार उक्त निवेदनको सुनकर एक क्षणके लिए राम, विषाद रूपी मुद्गरकी चोटसे जिनका हृदय अत्यन्त विचलित हो रहा था ऐसे हो गये ॥५३॥ वे विचार करने लगे कि हाय हाय, यह बड़ा कष्ट आ पड़ा। जो मेरे यश रूपी कमलवनको जलानेके लिए अपयशरूपी अग्नि लग गई ॥५४॥ जिसके द्वारा किया हुआ विरहका दुःसह दुःख मैंने सहन किया है वही क्रिया मेरे कुल रूपी चन्द्रमाको अत्यन्त मलिन कर रही है ॥५५॥ जिस विनयवती सीताको लक्ष्य कर वानरोंने वीरता दिखाई वही सीता मेरे गोत्ररूपी कुमुदिनीको मलिन

१. विनीतायां ज० ।

यदर्थमब्धिमुत्तीर्य रिपुध्वंसि रणं कृतम् । करोति कलुषं सा मे जानकी कुलदर्पणम् ॥५७॥
युक्तं जनपदो वक्ति दुष्टपुंसि परालये । अवस्थिता कथं सीता लोकनिन्द्या मयाहृता ॥५८॥
अपश्यन् क्षणमात्रं यां भवामि विरहाकुलः । अनुरक्तां त्यजाम्येतां दयितामधुना कथम् ॥५९॥
चक्षुर्मानसयोर्वासं कृत्वा याऽवस्थिता मम । गुणधानीमदोषां तां कथं मुञ्चामि जानकीम् ॥६०॥
अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् । दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ॥६१॥
धिक्स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम् । विशुद्धकुलजातानां पुंसां पङ्कं सुदुस्त्यजम् ॥६२॥
अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम् । स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यस्खलनखातिकाम् ॥६३॥
विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् । भस्मच्छन्नाग्निसङ्काशां दर्भसूचीसमानिकाम् ॥६४॥
दृङ्मात्ररमणीयां तां निर्मुक्तमिव पन्नगः । तस्मात्त्यजामि वैदेहीं महादुःखजिहासया ॥६५॥
अशून्यं सर्वदा तीव्रस्नेहबन्धवशीकृतम् । यया मे हृदयं मुख्यां[1] विरहामि कथं तकाम् ॥६६॥
यद्यप्यहं स्थिरस्वान्तस्तथाप्यासन्नवर्तिनी । अर्चिर्वन्मम वैदेही मनोविलयनक्षमा ॥६७॥
मन्ये दूरस्थिताऽप्येषा चन्द्ररेखा कुमुद्वतीम् । यथा चालयितुं शक्ता धृतिं मम मनोहरा ॥६८॥
इतो जनपरीवादश्चेतः स्नेहः सुदुस्त्यजः । [2]अहोऽस्मि भयरागाभ्यां प्रक्षिप्तो गहनान्तरे ॥६९॥
श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवौकोयोषितामपि[3] । कथं त्यजामि तां साध्वीं प्रीत्या यातामिवैकताम् ॥७०॥
एतां यदि न मुञ्चामि साक्षाद्दुःकीर्तिमुद्गताम् । कृपणो मत्समो मह्यां तदैतस्यां न विद्यते ॥७१॥

कर रही है ॥५६॥ जिसके लिए मैंने समुद्र उतर कर शत्रुओंका संहार करनेवाला युद्ध किया था वही जानकी मेरे कुलरूपी दर्पणको मलिन कर रही है ॥५७॥ देशके लोग ठीक ही तो कहते हैं कि जिस घरका पुरुष दुष्ट है, ऐसे पराये घरमें स्थित लोक निन्द्य सीताको मैं क्यों ले आया ? ॥५८॥ जिसे मैं क्षणमात्र भी नहीं देखता तो विरहाकुल हो जाता हूँ इस अनुरागसे भरी प्रिय दयिताको इस समय कैसे छोड़ दूँ ? ॥५९॥ जो मेरे चक्षु और मनमें निवास कर अवस्थित है उस गुणोंकी भाण्डार एवं निर्दोष सीताका परित्याग कैसे कर दूँ ? ॥६०॥ अथवा उन स्त्रियोंके चित्तकी चेष्टा को कौन जानता है जिनमें दोषोंका कारण काम साक्षात् निवास करता है ॥६१॥ जो समस्त दोषोंकी खान है । संतापका कारण है तथा निर्मलकुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके लिए कठिनाईसे छोड़ने योग्य पङ्क स्वरूप है उस स्त्रीके लिए धिक्कार है ॥६२॥ यह स्त्री समस्त बलोंको नष्ट करने वाली है, रागका आश्रय है, स्मृतियोंके नाशका परम कारण है, सत्यव्रतके स्खलित होनेके लिए खाई रूप है, मोक्ष सुखके लिए विघ्न स्वरूप है, ज्ञानकी उत्पत्तिको नष्ट करने वाली है, भस्मसे आच्छादित अग्निके समान है, डाभकी अनीके तुल्य है अथवा देखने मात्रमें रमणीय है । इसलिए जिस प्रकार सॉंप कॉंचुलीको छोड़ देता है उसी प्रकार मैं महादुःखको छोड़नेकी इच्छासे सीताको छोड़ता हूँ ॥६३-६५॥ उत्कट स्नेह रूपी बन्धनसे वशीभूत हुआ मेरा हृदय सदा जिससे अशून्य रहता है उस मुख्य सीताको कैसे छोड़ दूँ ? ॥६६॥ यद्यपि मैं दृढ चित्त हूँ तथापि समीप में रहने वाली सीता ज्वालाके समान मेरे मनको विलीन करनेमें समर्थ है ॥६७॥ मैं मानता हूँ कि जिस प्रकार चन्द्रमाकी रेखा दूरवर्तिनी होकर भी कुमुदिनीको विचलित करनेमें समर्थ है उसी प्रकार यह सुन्दरी सीता भी मेरे धैर्यको विचलित करनेमें समर्थ है ॥६८॥ इस ओर लोकनिन्दा है और दूसरी ओर कठिनाईसे छूटने योग्य स्नेह है । अहो ! मुझे भय और रागने सघन वनके बीचमें ला पटका है ॥६९॥ जो देवाङ्गनाओंमें भी सब प्रकारसे श्रेष्ठ है तथा जो प्रीतिके कारण मानो एकताको प्राप्त है उस साध्वी सीताको कैसे छोड़ दूँ ॥७०॥ अथवा उठी हुई साक्षात् अपकीर्तिके समान इसे यदि नहीं छोड़ता हूँ तो पृथिवी पर इसके विषयमें मेरे समान दूसरा

१. मुष्यं म०, मुख्यं ज० । २. आहोऽस्मि म० । ३. देवाङ्गनानामपि ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

स्नेहापवादभयसङ्गतमानसस्य व्यामिश्रतीव्ररसवेगवशीकृतस्य ।
रामस्य गाढपरितापसमाकुलस्य कालस्तदा निरुपमः स बभूव कृच्छ्रः ॥७२॥

वंशस्थवृत्तम्

विरुद्धपूर्वोत्तरमाकुलं परं [1]विसन्धिसातेतरवेदनान्वितम् ।
अभूदिदं केसरिकेतुचिन्तनं निदाघमध्याह्नरवेः सुदुःसहम् ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे जनपरीवादचिन्ताभिधानं नाम षण्णवतितमं पर्व ॥९६॥

कृपण नहीं होगा ॥७१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनका मन स्नेह अपवाद और भयसे संगत था, जो मिश्रित तीव्र रसके वेगसे वशीभूत थे, तथा जो अत्यधिक संतापसे व्याकुल थे ऐसे रामका वह समय उन्हें अनुपम दुःख स्वरूप हुआ था ॥७२॥ जिसमें पूर्वापर विरोध पड़ता था जो अत्यन्त आकुलता रूप था, जो स्थिर अभिप्रायसे रहित था और दुःखके अनुभवसे सहित था ऐसा यह रामका चिन्तन उन्हें ग्रीष्मऋतु सम्बन्धी मध्याह्नके सूर्यसे भी अधिक अत्यन्त दुःसह था ॥७३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लोकनिन्दाकी चिन्ताका उल्लेख करनेवाला छियानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९६॥

---

१. विसन्ति-ज० (?)

सप्तनवतितमं पर्व

ततः कथमपि न्यस्य चिन्तामेकत्र वस्तुनि । आज्ञापयत् प्रतीहारं लक्ष्मणाकारणं प्रति ॥१॥
प्रतीहारवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सम्भ्रमान्वितः । तुरङ्गं चलमारुह्य कृत्येक्षागतमानसः ॥२॥
रामस्यासन्नतां प्राप्य प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । आसीनो भूतले रम्ये तत्पादनिहितेक्षणः ॥३॥
स्वयमुत्थाप्य तं पद्मो विनयानतविग्रहम् । परमाश्रवताभाजं[1] चक्रेऽर्धासनसङ्गतम् ॥४॥
शत्रुघ्नाग्रेसराः भूपाश्चन्द्रोदर[2]सुतादयः । तथाऽविशन् कृतानुज्ञा आसीनाश्च यथोचितम् ॥५॥
पुरोहितः पुरः श्रेष्ठी मन्त्रिणोऽन्ये च सज्जनाः । यथायोग्यं समासीनाः कुतूहलसमन्विताः ॥६॥
ततः क्षणमिव स्थित्वा बलदेवो यथाक्रमम् । लक्ष्मणाय परीवादसमुत्पत्तिं न्यवेदयत् ॥७॥
तदाकर्ण्य सुमित्राजो रोषलोहितलोचनः । सन्नद्धुमादिशन् योधानिदं च पुनरभ्यधात् ॥८॥
अद्य गच्छाम्यहं शीघ्रमन्तं दुर्जन[3]वारिधेः । करोमि धरणीं मिथ्यावाक्यजिह्वा[4]तिरोहिताम् ॥९॥
उपमानविनिर्मुक्तशीलसम्भारधारिणीम् । द्विषन्ति गुणगम्भीरां सीतां ये तान्नये क्षयम् ॥१०॥
ततो दुरीक्षितां प्राप्तं हरिं क्रोधवशीकृतम् । संक्षुब्धसंसदं वाक्यैरिमैरशमयन्नृपः ॥११॥
सौम्यर्षभकृतौपम्यैः सद्वंश्यैर्भरतस्य च । महीसागरपर्यन्ता पालितेयं नरोत्तमैः ॥१२॥
इक्ष्वाकुवंशतिलका आदित्ययशसादयः । आसन्नेषां रणे पृष्ठं दृष्टं नेन्द्रोरिवारिभिः ॥१३॥
तेषां यशःप्रतानेन कौमुदीपटशोभिना । अलङ्कृतमिदं लोकत्रितयं रहितान्तरम् ॥१४॥

अथानन्तर किसी तरह एक वस्तुमें चिन्ताको स्थिर कर श्रीरामने लक्ष्मणको बुलानेके लिए द्वारपालको आज्ञा दी ॥१॥ कार्योंके देखनेमें जिनका मन लग रहा था ऐसे लक्ष्मण, द्वारपालके वचन सुन हड़बड़ाहटके साथ चञ्चल घोड़े पर सवार हो श्रीरामके निकट पहुँचे और हाथ जोड़ नमस्कार कर उनके चरणोंमें दृष्टि लगाये हुए मनोहर पृथिवी पर बैठ गये ॥२-३॥ जिनका शरीर विनयसे नम्रीभूत था तथा जो परम आज्ञाकारी थे ऐसे लक्ष्मणको स्वयं उठाकर रामने अर्धासन पर बैठाया ॥४॥ जिनमें शत्रुघ्न प्रधान था ऐसे विराधित आदि राजा भी आज्ञा लेकर भीतर प्रविष्ट हुए और सब यथायोग्य स्थानों पर बैठ गये ॥५॥ पुरोहित, नगरसेठ, मन्त्री तथा अन्य सज्जन कुतूहलसे युक्त हो यथायोग्य स्थान पर बैठ गये ॥६॥

तदनन्तर क्षण भर ठहर कर रामने यथाक्रमसे लक्ष्मणके लिए अपवाद उत्पन्न होनेका समाचार सुनाया ॥७॥ सो उसे सुनकर लक्ष्मणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने उसी समय योद्धाओंको तैयार होनेका आदेश दिया तथा स्वयं कहा कि मैं आज दुर्जन रूपी समुद्रके अन्तको प्राप्त होता हूँ और मिथ्यावादी लोगोंकी जिह्वाओंसे पृथिवीको आच्छादित करता हूँ ॥८-९॥ अनुपम शीलके समूहको धारण करनेवाली एवं गुणोंसे गम्भीर सीताके प्रति जो द्वेष करते हैं मैं उन्हें आज क्षयको प्राप्त कराता हूँ ॥१०॥ तदनन्तर जो क्रोधके वशीभूत हो दुर्दर्शनीय अवस्थाको प्राप्त हुए थे तथा जिन्होंने सभाको क्षोभ युक्त कर दिया था ऐसे लक्ष्मणको रामने इन वचनोंसे शान्त किया कि हे सौम्य ! यह समुद्रान्त पृथिवी भगवान् ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती जैसे उत्तमोत्तम पुरुषोंके द्वारा चिरकालसे पालित है ॥११-१२॥ अर्ककीर्ति आदि राजा इक्ष्वाकुवंशके तिलक थे। जिस प्रकार कोई चन्द्रमाकी पीठ नहीं देख सकता उसी प्रकार इनकी पीठ भी युद्धमें शत्रु नहीं देख सके थे ॥१३॥ चाँदनी रूपी पटके समान सुशोभित उनके यशके समूहसे ये तीनों

१. परमाश्रयता-म० । २. चन्द्रोदय म० । ३. मन्तर्दुर्जन-म० । ४. जिह्वतिरोहिताम् म० ।

कथं तत्प्रागमात्रस्य कृते पापस्य भङ्गिनः । वहन्निरर्थकं प्राणान् विदधामि मलीमसम् ॥१५॥
अकीर्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता । कीर्तिस्स्वल्पापि देवानामपि नाथैः प्रयुज्यते ॥१६॥
भोगैः किं परमोदारैरपि प्रक्षयवत्सलैः । कीर्त्युद्यानं प्ररूढं यद्दह्यतेऽकीर्तिवह्निना ॥१७॥
तच्चैतच्छस्त्रशास्त्राणां वध्यं नावर्णभाषितम् । देव्यामस्मद्गृहस्थायां सत्यामपि सुचेतसि ॥१८॥
पश्याम्भोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजसः । अस्तं [1]यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्तकः ॥१९॥
अपवादरजोभिर्मे महाविस्तारगामिभिः । छायायाः क्रियते ह्रानं मा [2]भूदेतदवारणम् ॥२०॥
शशाङ्कविमलं गोत्रमकीर्तिघनलेखया । मारुधत्प्राप्य मां भ्रातरित्यहं यत्नतत्परः ॥२१॥
शुष्केन्धनमहाकूटे सलिलाप्लाववर्जितः । मावर्द्धिष्ट यथा वह्निरयशो भुवने कृतम् ॥२२॥
कुलं महार्हमेतन्मे प्रकाशममलोज्ज्वलम् । यावत्कलङ्क्यते नाऽरं तावदौपायिकं कुरु ॥२३॥
अपि त्यजामि वैदेहीं निर्दोषां शीलशालिनीम् । प्रमादयामि नो कीर्तिं लोकसौख्यहृतात्मकः ॥२४॥
ततो जगाद सौमित्रिर्भ्रातृस्नेहपरायणः । राजन्न खलु वैदेह्यां विधातुं शोकमर्हसि ॥२५॥
लोकापवादमात्रेण कथं त्यजसि जानकीम् । स्थितां सर्वसतीमूर्ध्नि सर्वाकारमनिन्दिताम् ॥२६॥
असत्वं [3]वक्तु दुर्लोकः प्राणिनां शीलधारिणाम् । न हि तद्वचनात्तेषां परमार्थत्वमश्नुते ॥२७॥
गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि विषदूषितलोचनैः । सितत्वं परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमाः ॥२८॥
आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्व्रजति साक्षिताम् । परमार्थाय पर्याप्तं वस्तुतत्त्वं[4] न बाह्यतः ॥२९॥

लोक निरन्तर सुशोभित हैं ॥१४॥ निष्प्रयोजन प्राणोंको धारण करता हुआ मैं, पापी एवं भङ्गुर स्नेहके लिए उस कुलको मलिन कैसे कर दूँ ? ॥१५॥ अल्प भी अकीर्ति उपेक्षा करने पर वृद्धिको प्राप्त हो जाती है और थोड़ी भी कीर्ति इन्द्रोंके द्वारा भी प्रयोगमें लाई जाती है—गाई जाती है ॥१६॥ जब कि अकीर्ति रूपी अग्निके द्वारा हरा-भरा कीर्तिरूपी उद्यान जल रहा है तब इन नश्वर विशाल भोगोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध होनेवाला है ? ॥१७॥ मैं जानता हूँ कि देवी सीता, सती और शुद्ध हृदयवाली नारी है पर जब तक वह हमारे घरमें स्थित रहती है तब तक यह अवर्णवाद शस्त्र और शास्त्रोंके द्वारा दूर नहीं किया जा सकता ॥१८॥ देखो, कमल वनको आनन्दित करनेवाला सूर्य रात्रि होते ही अस्त हो जाता है सो उसे रोकनेवाला कौन है ? ॥१९॥ महाविस्तारको प्राप्त होनेवाली अपवाद रूपी रजसे मेरी कान्तिका ह्रास किया जा रहा है सो यह अनिवारित न रहे–इसकी रुकावट होना चाहिए ॥२०॥ हे भाई ! चन्द्रमाके समान निर्मल कुल मुझे पाकर अकीर्ति रूपी मेघकी रेखासे आवृत न हो जाय इसीलिए मैं यत्न कर रहा हूँ ॥२१॥ जिस प्रकार सूखे ईन्धनके समूहमें जलके प्रवाहसे रहित अग्नि बढ़ती जाती है उस प्रकार उत्पन्न हुआ यह अपयश संसारमें बढ़ता न रहे ॥२२॥ मेरा यह महायोग्य, प्रकाशमान, अत्यन्त निर्मल एवं उज्ज्वल कुल जबतक कलङ्कित नहीं होता है तब तक शीघ्र ही इसका उपाय करो ॥२३॥ जो जनताके सुखके लिए अपने आपको अर्पित कर सकता है ऐसा मैं निर्दोष एवं शीलसे सुशोभित सीताको छोड़ सकता हूँ परन्तु कीर्तिको नष्ट नहीं होने दूँगा ॥२४॥

तदनन्तर भाईके स्नेहमें तत्पर लक्ष्मणने कहा कि हे राजन् ! सीताके विषयमें शोक नहीं करना चाहिए ॥२५॥ समस्त सतियोंके मस्तक पर स्थित एवं सर्व प्रकारसे अनिन्दित सीताको आप मात्र लोकापवादके भयसे क्यों छोड़ रहे हैं ? ॥२६॥ दुष्ट मनुष्य शीलवान् मनुष्योंकी बुराई कहें पर उनके कहनेसे उनकी परमार्थता नष्ट नहीं हो जाती ॥२७॥ जिनके नेत्र विषसे दूषित हो रहे हैं ऐसे मनुष्य यद्यपि चन्द्रमाको अत्यन्त काला देखते हैं पर यथार्थमें चन्द्रमा शुक्लता नहीं छोड़ देता है ॥२८॥ शीलसम्पन्न प्राणीकी आत्मा साक्षिताको प्राप्त होती है अर्थात् वह स्वयं ही

१. यानस्य म० । २. भूदातपवारणम् म० । ३. वक्ति म० । ४. वस्तुत्वं म० ।

नो पृथग्जनवादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः । न शुनो [1]भषणाद्दन्ती वैलक्ष्यं प्रतिपद्यते ॥३०॥
विचित्रस्यास्य लोकस्य तरङ्गसमचेष्टिनः । परदोषकथासक्तेर्निग्रहं [2]स्वो विधास्यति[3] ॥३१॥
शिलामुत्पाट्य शीतांशुं जिघांसुर्मोहवत्सलः । स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्धं प्रपद्यते ॥३२॥
अभ्याख्यानपरो दुष्टस्तथा परगुणासहः । नियतिं दुर्गतिं जन्तुर्दुःकर्मा प्रतिपद्यते ॥३३॥
बलदेवस्ततोऽवोचद्यथा वदसि लक्ष्मण । सत्यमेवमिदं बुद्धिर्मध्यस्था तव शोभना ॥३४॥
किन्तु लोकविरुद्धानि त्यजतः शुद्धिशालिनः । न दोषो दृश्यते कश्चिद्गुणश्चैकान्तसम्भवः ॥३५॥
सौख्यं जगति किं तस्य का वाऽऽशा जीवितं प्रति । दिशो यस्यायशोदावज्वालालीढाः समन्ततः ॥३६॥
किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् । किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीगताः ॥३७॥
चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितोद्भवः । ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचरः ॥३८॥
प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्तिवधूं वराम् । बली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरणं वरम् ॥३९॥
आस्तां जनपरीवादो दोषोऽप्यतिमहान्मम । परपुंसा हृता सीता यत्पुनर्गृहमाहृता ॥४०॥
रक्षसो भवनोद्याने चकार वसतिं चिरम् । अभ्यर्थिता च दूतीभिर्वदमानाभिरीप्सितम्[4] ॥४१॥
दृष्टा च दुष्टया दृष्ट्या समीपावनिवर्तिना । असकृद्राक्षसेन्द्रेण भाषिता[5] च यथेप्सितम् ॥४२॥
एवंविधां तकां सीतां गृहमानयता मया । कथं न लज्जितं किंवा दुष्करं मूढचेतसाम् ॥४३॥

अपनी वास्तविकताको कहती है। यथार्थमें वस्तुका वास्तविक भाव ही उसकी यथार्थताके लिए पर्याप्त है बाह्यरूप नहीं ॥२९॥ साधारण मनुष्यके कहनेसे विद्वज्जन क्षोभको प्राप्त नहीं होते क्योंकि कुत्ताके भोंकनेसे हाथी लज्जाको प्राप्त नहीं होता ॥३०॥ तरङ्गके समान चेष्टाको धारण करनेवाला यह विचित्र लोक दूसरेके दोष कहनेमें आसक्त है सो इसका निग्रह स्वयं इनकी आत्मा करेगी ॥३१॥ जो मूर्ख मनुष्य शिला उखाड़ कर चन्द्रमाको नष्ट करना चाहता है वह निःसन्देह स्वयं ही नाशको प्राप्त होता है ॥३२॥ चुगली करनेमें तत्पर एवं दूसरेके गुणोंको सहन नहीं करनेवाला दुष्कर्मा दुष्ट मनुष्य निश्चित ही दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥३३॥

तदनन्तर बलदेवने कहा कि लक्ष्मण! तुम जैसा कह रहे हो सत्य वैसा ही है और तुम्हारी मध्यस्थ बुद्धि भी शोभाका स्थान है ॥३४॥ परन्तु लोक विरुद्ध कार्यका परित्याग करनेवाले शुद्धिशाली मनुष्यका कोई दोष दिखाई नहीं देता अपितु उसके विरुद्ध गुण ही एकान्त रूपसे संभव मालूम होता है ॥३५॥ उस मनुष्यको संसारमें क्या सुख हो सकता है? अथवा जीवनके प्रति उसे क्या आशा हो सकती है जिसकी दिशाएँ सब ओरसे निन्दारूपी दावानलकी ज्वालाओंसे व्याप्त हैं ॥३६॥ अनर्थको उत्पन्न करनेवाले अर्थसे क्या प्रयोजन है? विष सहित औषधिसे क्या लाभ है? और उस पराक्रमसे भी क्या मतलब है जिससे भयमें पड़े प्राणियोंकी रक्षा नहीं होती? ॥३७॥ उस चारित्रसे प्रयोजन नहीं है जिससे आत्मा अपना हित करनेमें उद्यत नहीं होता और उस ज्ञानसे क्या लाभ जिससे अध्यात्मका ज्ञान नहीं होता ॥३८॥ उस मनुष्यका जन्म अच्छा नहीं कहा जा सकता जिसकी कीर्ति रूपी उत्तम वधूको अपयश रूपी बलवान् हर ले जाता है। अरे! इसकी अपेक्षा तो उसका मरना ही अच्छा है ॥३९॥ लोकापवाद जाने दो, मेरा भी तो यह बड़ा भारी दोष है जो मैं पर पुरुषके द्वारा हरी हुई सीताको फिरसे घर ले आया ॥४०॥ सीताने राक्षसके गृहोद्यानमें चिर काल तक निवास किया, कुत्सित वचन बोलनेवाली दूतियोंने उससे अभिलषित पदार्थकी याचना की, समीपकी भूमिमें वर्तमान रावणने उसे कई बार दुष्ट दृष्टिसे देखा तथा इच्छानुसार उससे वार्तालाप किया। ऐसी उस सीताको घर लाते

---

१. भाषणाद्दन्ती म०, ज०, ख० भषणं श्वरवः। २. श्वो म., ख.। ३. विधास्यते ख०। ४. -रिक्षितम् म०। ५. भविता म०।

कृतान्तवक्त्रसेनानीः शब्द्यतामाविलम्बितम् । सीता गर्भद्वितीया मे गृहादद्यैव नीयताम् ॥४४॥
एवमुक्तेऽञ्जलिं[1] बद्ध्वा सौमित्रिः प्रणतात्मकः । जगाद देव नो युक्तं त्यक्तुं जनकसम्भवाम् ॥४५॥
सुमार्दवाङ्घ्रिकमला तन्वी मुग्धा सुखैधिता । एकाकिनी यथा[2] यातु क्व वैदेही खिलेन[3] वा ॥४६॥
गर्भभारसमाक्रान्ता परमं खेदमाश्रिता । राजपुत्री त्वया त्यक्ता संश्रयं कं प्रपद्यते ॥४७॥
बलिपुष्पादिकं दृष्टं लोकेन तु जिनाय किम् । कल्प्यते भक्तियुक्तेन को दोषः परदर्शने ॥४८॥
प्रसीद नाथ निर्दोषामसूर्यम्पश्यकोमलाम् । माऽत्याक्षीमैंथिलीं वीर भवदर्पितमानसाम् ॥४९॥
ततोऽत्यन्तदृढीभूतविरागः क्रोधभारभाक् । काकुत्स्थः प्रवरोऽवोचदप्रसन्नमुखोऽनुजम् ॥५०॥
लक्ष्मीधर न वक्तव्यं त्वया किञ्चिदतः परम् । मयैतन्निश्चितं कृत्यमवश्यं साध्वसाधु वा ॥५१॥
निर्मानुष्ये वने त्यक्ता सहायपरिवर्जिता । जीवतु म्रियतां वाऽपि सीताऽऽत्मीयेन कर्मणा ॥५२॥
क्षणमप्यत्र मे देशे मा शिष्टनगरेऽपि वा । कुत एव गृहे सीता मलवर्द्धनकारिणी ॥५३॥
चतुरश्वमथाऽऽरुह्य रथं सैन्यसमावृतः । जय नन्देति शब्देन बन्दिभिः परिपूजितः ॥५४॥
समुच्छ्रितसितच्छत्रश्चापी कवचकुण्डली । कृतान्तवक्त्रसेनानीरीशितुः प्रस्थितोऽन्तिकम् ॥५५॥
तं तथाविधमायान्तं दृष्ट्वा नगरयोषिताम् । कथा बहुविकल्पाऽऽसीद् वितर्कागतचेतसाम् ॥५६॥

हुए मैंने लज्जाका अनुभव क्यों नहीं किया ? अथवा मूर्ख मनुष्योंके लिए क्या कठिन है ? ॥४१-४३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिको शीघ्र ही बुलाया जाय और अकेली गर्भिणी सीता आज ही मेरे घरसे ले जाई जाय ॥४४॥

इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हाथ जोड़ कर विनम्र भावसे कहा कि हे देव ! सीताको छोड़ना उचित नहीं है ॥४५॥ जिसके चरण कमल अत्यन्त कोमल हैं, जो कृशाङ्गी है, भोली है और सुख पूर्वक जिसका लालन-पालन हुआ है ऐसी अकेली सीता उपद्रवपूर्ण मार्गसे कहाँ जायगी ? ॥४६॥ जो गर्भके भारसे आक्रान्त है ऐसी सीता तुम्हारे द्वारा त्यक्त होने पर अत्य-खेदको प्राप्त होती हुई किसकी शरणमें जायगी ? ॥४७॥ रावणने सीताको देखा यह कोई अपराध नहीं है क्योंकि दूसरेके द्वारा देखे हुए बलि पुष्प आदिकको क्या भक्तजन जिनेन्द्रदेवके लिए अर्पित नहीं करते ? अर्थात् करते हैं अतः दूसरेके देखनेमें क्या दोष है ? ॥४८॥ हे नाथ ! हे वीर ! प्रसन्न होओ कि जो निर्दोष है, जिसने कभी सूर्य भी नहीं देखा है जो अत्यन्त कोमल है, तथा आपके लिए जिसने अपना हृदय अर्पित कर दिया है ऐसी सीताको मत छोड़ो ॥४९॥

तदनन्तर जिनका विद्वेष अत्यन्त दृढ़ हो गया था, जो क्रोधके भारको प्राप्त थे, और जिनका मुख अप्रसन्न था ऐसे रामने छोटे भाई—लक्ष्मणसे कहा कि हे लक्ष्मीधर ! अब तुम्हें इसके आगे कुछ भी नहीं कहना चाहिए। मैंने जो निश्चय कर लिया है वह अवश्य किया जायगा चाहे उचित हो चाहे अनुचित ॥५०-५१॥ निर्जन वनमें सीता अकेली छोड़ी जायगी। वहाँ वह अपने कर्मसे जीवित रहे अथवा मरे ॥५२॥ दोषकी वृद्धि करनेवाली सीता भी मेरे इस देशमें अथवा किसी उत्तम सम्बन्धीके नगरमें अथवा किसी घरमें क्षण भरके लिए निवास न करे ॥५३॥

अथानन्तर जो चार घोड़ों वाले रथ पर सवार होकर जा रहा था, सेनासे घिरा था, वन्दीजन 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके द्वारा जिसकी पूजा कर रहे थे, जिसके शिर पर सफेद छत्र लगा हुआ था, जो धनुषको धारण कर रहा था तथा कवच और कुण्डलोंसे युक्त था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति स्वामीके समीप चला ॥५४-५५॥ उसे उस प्रकार आता देख, जिनके चित्त तर्क वितर्कमें लग रहे थे ऐसी नगरकी स्त्रियोंमें अनेक प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥५६॥

---

१. मुक्त्वाञ्जलिं म० । २. यथा जातु म० । ३. वनेऽखिले ब० ।

किमिदं हेतुना केन त्वरावानेष लक्ष्यते । कं प्रत्येष सुसंरम्भः किन्तु कस्य भविष्यति ॥५७॥
शस्त्रान्धकारमध्यस्थो निदाघार्कसमद्युतिः । मातः कृतान्तवक्त्रोऽयं कृतान्त इव भीषणः ॥५८॥
एवमादिकथासक्तनगरीयोषिदीक्षितः । अन्तिकं रामदेवस्य सेनानीः समुपागमत् ॥५९॥
प्रणिपत्य ततो नाथं शिरसा धरणीस्पृशा । जगाद देव देह्याज्ञामिति सङ्गतपाणिकः ॥६०॥
पद्मनाभो जगौ गच्छ सीतामपनय द्रुतम् । मार्गे जिनेन्द्रसद्मानि दर्शयन् कृतदोहदाम् ॥६१॥
सम्मेदगिरिजैनेन्द्रनिर्वाणावनिकल्पितान् । प्रदर्श्य चैत्यसङ्घातानाशापूरणपण्डितान् ॥६२॥
अटवीं सिंहनादाऽऽख्यां[1] नीत्वा जनविवर्जिताम् । अवस्थाप्यैतिकां सौम्य त्वरितं पुनराव्रज ॥६३॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा[2] वितर्कपरिवर्जितः । जानकीं समुपागम्य सेनानीरित्यभाषत ॥६४॥
उत्तिष्ठ रथमारोह देवि कुर्वभिवाञ्छितम् । प्रपश्य चैत्यगेहानि भजाशंसाफलोदयम् ॥६५॥
इति प्रसाद्यमाना सा सेनान्या मधुरस्वनम् । प्रमोदमानहृदया रथमूलमुपागता ॥६६॥
जगाद च चतुर्भेदः सङ्घो जयतु सन्ततम् । जैनो जयतु पद्माभः साधुवृत्तैकतत्परः ॥६७॥
[3]प्रमादापतितं किञ्चिदसुन्दरविचेष्टितम् । मृष्यन्तु सकलं देवा जिनालयनिवासिनः ॥६८॥
मनसा कान्तसक्तेन सकलं च सखीजनम् । न्यवर्तयज्जिगादैवमत्यन्तोत्सुकमानसा ॥६९॥
सुखं तिष्ठत सत्सख्यो नमस्कृत्य जिनालयान् । एषाऽहमाव्रजाम्येव कृत्या नोत्सुकता परा ॥७०॥

यह क्या है ? यह किस कारण उतावला दिखाई देता है ? किसके प्रति यह कुपित है ? आज किसका क्या होनेवाला है ? हे मातः ! जो शस्त्रोंके अन्धकारके मध्यमें स्थित है तथा जो ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान तेजसे युक्त है ऐसा यह कृतान्तवक्त्र यमराजके समान भयंकर है ॥५७-५८॥ इत्यादि कथामें आसक्त नगरकी स्त्रियाँ जिसे देख रही थीं ऐसा सेनापति श्रीरामके समीप आया ॥५९॥

तदनन्तर उसने पृथिवीका स्पर्श करनेवाले शिरसे स्वामीको प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए यह कहा कि हे देव ! मुझे आज्ञा दीजिए ॥६०॥ रामने कहा कि जाओ, सीताको शीघ्र ही छोड़ आओ । उसने जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेका दोहला प्रकट किया था इसलिए मार्गमें जो जिन-मन्दिर मिलें उनके दर्शन कराते जाना । तीर्थकरोंकी निर्वाणभूमि सम्मेदाचल पर निर्मित, एवं आशाओंके पूर्ण करनेमें निपुण जो प्रतिमाओंके समूह हैं उनके भी उसे दर्शन कराते जाना । इस प्रकार दर्शन करानेके बाद इसे सिंहनाद नामकी निर्जन अटवीमें ले जाकर तथा वहाँ ठहरा कर हे सौम्य ! तुम शीघ्र ही वापिस आ जाओ ॥६१-६३॥

तदनन्तर विना किसी तर्क वितर्कके 'जो आज्ञा' यह कह कर सेनापति सीताके पास गया और इस प्रकार बोला कि हे देवि ! उठो, रथ पर सवार होओ, इच्छित कार्य कर, जिन-मन्दिरोंके दर्शन करो और इच्छानुकूल फलका अभ्युदय प्राप्त करो ॥६४-६५॥ इस प्रकार सेनापति जिसे मधुर शब्दों द्वारा प्रसन्न कर रहा था तथा जिसका हृदय अत्यन्त हर्षित हो रहा था ऐसी सीता रथके समीप आई ॥६६॥ रथके समीप आकर उसने कहा कि सदा चतुर्विध संघकी जय हो तथा उत्तम आचारके पालन करनेमें एकनिष्ठ जिनभक्त रामचन्द्र भी सदा जयवन्त रहें ॥६७॥ यदि हमसे प्रमाद वश कोई असुन्दर चेष्टा हो गई है तो जिनालयमें निवास करने वाले देव मेरे उस समस्त अपराधको क्षमा करें ॥६८॥ अत्यन्त उत्सुक हृदयको धारण करनेवाली सीताने पतिमें लगे हुए हृदयसे समस्त सखीजनोंको यह कह कर लौटा दिया कि हे उत्तम सखियो ! तुम लोग सुखसे रहो । मैं जिनालयोंको नमस्कार कर अभी आती हूँ, अधिक उत्कण्ठा

---

१. नादास्यां स० । २. -त्युक्ता म० । ३. प्रमादात्पतितं म० ।

एवं तदुक्तितः पत्युरनादेशाच्च योषितः । शेषा विहरणे बुद्धिं न चक्रुश्चारुभाषिताः ॥७१॥
ततः सिद्धान्नमस्कृत्य प्रमोदं परमं श्रिता । प्रसन्नवदना सीता रथमारोहदुज्ज्वलम् ॥७२॥
सा तं रथं समारूढा रत्नकाञ्चनकल्पितम् । रेजे सुरवधूर्यद्वद्विमानं रत्नमालिनी ॥७३॥
रथः कृतान्तवक्त्रेण चोदितो वरवाजियुक् । ययौ भरतनिर्मुक्तो नाराच इव वेगवान् ॥७४॥
शुष्कद्रुमसमारूढो वायसोऽत्यन्तमाकुलः । रराट विरसं धुन्वन्नसकृत्पक्षमस्तकम् ॥७५॥
सुमहाशोकसन्तप्ता [1]धूतमुक्तशिरोरुहा । रुरोदाभिमुखं नारी कुर्वती परिदेवनम् ॥७६॥
पश्यन्त्यप्येवमादीनि दुर्निमित्तानि जानकी । व्रजत्येव जिनासक्तमानसा स्थिरनिश्चया ॥७७॥
महीभृच्छिखरश्वभ्रकन्दरावनगह्वरम् । निमेषेण समुल्लङ्घ्य योजनं यात्यसौ रथः ॥७८॥
तार्क्ष्यवेगाश्वसंयुक्तः सितकेतुविराजितः । आदित्यरथसङ्काशो रथो यात्यनिवारितः ॥७९॥
रामशक्रप्रियारूढो मनोरथजवो रथः । कृतान्तमातलिक्षिप्रनुन्नाश्वः शोभतेतराम् ॥८०॥
तत्रापाश्रयसंयुक्ततनुः सुपरमासना । । याति सीता सुखं क्षोणीं पश्यन्ती विविधामिति ॥८१॥
क्वचिद्ग्रामे पुरेऽरण्ये सरांसि कमलादिभिः । कुसुमैरतिरम्याणि तयाऽदृश्यन्त सोत्सुकम् ॥८२॥
क्वचिद्घनपटच्छन्ननभोरात्रितमः समम् । दुरालक्ष्यपृथग्भावं विशालं वृक्षगह्वरम् ॥८३॥
च्युतपुष्पफला तन्वी विपत्रा वि[2]रलाङ्घ्रिपा । अटवी क्वचिदच्छाया विधवा कुलजा यथा ॥८४॥

करना योग्य है ॥६९-७०॥ इस प्रकार सीताके कहनेसे तथा पतिका आदेश नहीं होनेसे सुन्दर भाषण करनेवाली अन्य स्त्रियोंने उसके साथ जानेकी इच्छा नहीं की थी ॥७१॥

तदनन्तर परम प्रमोदको प्राप्त, प्रसन्नमुखी सीता, सिद्धोंको नमस्कार कर उज्ज्वल रथ पर आरूढ़ हो गई ॥७२॥ रत्न तथा सुवर्ण निर्मित रथ पर आरूढ़ हुई सीता उस समय इस तरह सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि विमान पर आरूढ़ हुई रत्नमालासे अलंकृत देवाङ्गना सुशोभित होती है ॥७३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिके द्वारा प्रेरित, उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ वह रथ भरत चक्रवर्तीके द्वारा छोड़े हुए बाणके समान बड़े वेगसे जा रहा था ॥७४॥ उस समय सूखे वृक्ष पर अत्यन्त व्याकुल कौआ, पङ्ख तथा मस्तकको बार-बार कँपाता हुआ विरस शब्द कर रहा था ॥७५॥ जो महाशोकसे संतप्त थी, जिसने अपने बाल कम्पित कर छोड़ दिये थे, तथा जो विलाप कर रही थी ऐसी एक स्त्री सामने आकर रोने लगी ॥७६॥ यद्यपि सीता इन सब अशकुनोंको देख रही थी तथापि जिनेन्द्र भगवान्में आसक्त चित्त होनेके कारण वह दृढ़ निश्चयके साथ आगे चली जा रही थी ॥७७॥ पर्वतोंके शिखर, गड्ढे, गुफाएँ और वन इन सब से ऊँची नीची भूमिको उल्लंघन कर वह रथ निमेष मात्रमें एक योजन आगे बढ़ जाता था ॥७८॥ जिसमें गरुड़के समान वेगशाली घोड़े जुते थे, जो सफेद पताकाओंसे सुशोभित तथा जो कान्तिमें सूर्यके रथके समान था ऐसा वह रथ विना किसी रोक-टोकके आगे बढ़ता जाता था ॥७९॥ जिस पर रामरूपी इन्द्रकी प्रिया—इन्द्राणी आरूढ़ थी, जिसका वेग मनोरथके समान तीव्र था, और जिसके घोड़े कृतान्तवक्त्ररूपी मातलिके द्वारा प्रेरित थे ऐसा वह रथ अत्यधिक शोभित हो रहा था ॥८०॥ वहाँ जो तकियाके सहारे उत्तम आसनसे बैठी थी ऐसी सीता नाना प्रकारकी भूमिको इस प्रकार देखती हुई जा रही थी ॥८१॥ वह कहीं गाँवमें, कहीं नगरमें और कहीं जंगलमें कमल आदिके फूलोंसे अत्यन्त मनोहर तालाबोंको बड़ी उत्सुकतासे देखती जाती थी ॥८२॥ वह कहीं वृक्षोंकी उस विशाल झुरमुटको देखती जाती थी जहाँ मेघ रूपी पटसे आच्छादित आकाशवाली रात्रिके समान सघन अन्धकार था और जिसका पृथक्पना बड़ी कठिनाईसे दिखाई पड़ता था ॥८३॥ कहीं जिसके फल फूल और पत्ते गिर गये थे, जो कृश थी

---

१. धूतमुक्ता शिरोरुहा म० । २. विरला ह्रिया म० ।

सहकारसमासक्ता क्वचित् सुन्दरमाधवी । वेश्येव चपलासक्तमशोकमभिलष्यति ॥८५॥
महापादपसङ्घातः क्वचिद्दावविनाशितः । न भाति हृदयं साधोः खलवाक्याहतं यथा ॥८६॥
सुपल्लवलताजालैः क्वचिन् मन्दानिलेरितैः । नृत्यं वसन्तपत्नीव वनराजी निषेवते ॥८७॥
क्वचित् पुलिन्दसङ्घातमहाकलकलारवैः । उद्भ्रान्तविहगा दूरं गता सारङ्गसंहतिः ॥८८॥
क्वचिदुन्नतशैलाग्रं पश्यन्ती चोर्ध्वमस्तका । विचित्रधातुनिर्माणैर्नयनैः कौतुकान्वितैः ॥८९॥
क्वचिदच्छाल्पनीराभिः सरिद्भिः प्रोषितप्रिया । नारीवाश्रुप्रपूर्णाक्षा भाति सन्तापशोभिता ॥९०॥
नानाशकुन्तनादेन जल्पतीव मनोहरम् । करोतीव क्वचिद्धीरनिर्झराट्टहसं मुदा ॥९१॥
मकरन्दातिलुब्धाभिर्भृङ्गीभिर्मदमन्थरम् । क्वचित् संस्तूयमानेव शोभते नमिता फलैः ॥९२॥
सत्पल्लवमहाशाखैर्वृक्षैर्वायुविघूर्णितैः । उपचारप्रसक्तेव पुष्पवृष्टिं विमुञ्चते ॥९३॥
एवमादिक्रियासक्तामटवीं श्वापदाकुलाम् । पश्यन्ती याति वैदेही पद्माभापेक्षिमानसा ॥९४॥
तावच्च मधुरं श्रुत्वा स्वनमत्यन्तमांसलम् । दध्यौ किन्वेष रामस्य दुन्दुभिध्वनिरायतः ॥९५॥
इति प्रतर्कमापन्ना दृष्ट्वा भागीरथीमसौ । एतद्घोषप्रतिस्वानं जानात्यन्यदिशि श्रुतम् ॥९६॥
अन्तर्नक्रझषग्राहमकरादिविघट्टिताम् । उद्धतोर्मिसमासङ्गात् क्वचित्कम्पितपङ्कजाम् ॥९७॥
समूलोन्मूलितोत्तुङ्गरोधोगतमहीरुहाम् । विदारितमहाशैलग्रावसङ्घातरंहसम् ॥९८॥

जिसकी जड़ें विरलीं विरलीं थी, तथा जो छाया (पक्षमें कान्ति) से रहित थी ऐसी कुलीन विधवाके समान अटवीको देखती जाती थी ॥८४॥ उसने देखा कि कहीं आम्रवृक्षसे लिपटी सुन्दर माधवी लता, चपल वेश्याके समान निकटवर्ती अशोक वृक्षपर अभिलाषा कर रही है ॥८५॥ उसने देखा कि कहीं दावानलसे नाशको प्राप्त हुए बड़े बड़े वृक्षोंका समूह दुर्जनके वाक्योंसे ताड़ित साधुके हृदयके समान सुशोभित नहीं हो रहा है ॥८६॥ कहीं उसने देखा कि मन्द मन्द वायुसे हिलते हुए उत्तम पल्लवों वाली लताओंके समूहसे वनराजी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो वसन्तकी पत्नी नृत्य ही कर रही हो ॥८७॥ कहीं उसने देखा कि भीलोंके समूहकी तीव्र कल-कल ध्वनिसे जिसने पक्षियोंको उड़ा दिया है ऐसी हरिणोंकी श्रेणी बहुत दूर आगे निकल गई है ॥८८॥ वह कहीं विचित्र धातुओंसे निर्मित, कौतुकपूर्ण नेत्रोंसे, मस्तक ऊपर उठा पर्वतकी ऊँची चोटीको देख रही थी ॥८९॥ कहीं उसने देखा कि स्वच्छ तथा अल्प जल वाली नदियोंसे यह अटवी उस संतापवती विरहिणी स्त्रीके समान जान पड़ती है कि जिसका पति परदेश गया है और जिसके नेत्र आसुओंसे परिपूर्ण हैं ॥९०॥ यह अटवी कहीं तो ऐसी जान पड़ती है मानो नाना पक्षियोंके शब्दके बहाने मनोहर वार्तालाप ही कर रही हो और कहीं उज्ज्वल निर्झरों से युक्त होनेके कारण ऐसी विदित होती है मानो हर्षसे अट्टहास ही कर रही हो ॥९१॥ कहीं मकरन्दकी लोभी भ्रमरियोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो मदसे मन्थर ध्वनिमें भ्रमरियाँ उसकी स्तुति ही कर रही हों और फलोंके भारसे वह संकोचवश नम्र हुई जा रही हो ॥९२॥ कहीं उसने देखा कि वायुसे हिलते हुए उत्तमोत्तम पल्लवों और महाशाखाओंसे युक्त वृक्षोंके द्वारा यह अटवी विनय प्रदर्शित करनेमें संलग्नकी तरह पुष्पवृष्टि छोड़ रही है ॥९३॥ जिसका मन रामकी अपेक्षा कर रहा था ऐसी सीता उपर्युक्त क्रियाओंमें आसक्त एवं वन्य पशुओंसे युक्त अटवीको देखती हुई आगे जा रही थी ॥९४॥

तदनन्तर उसी समय अत्यन्त पुष्ट मधुर शब्द सुनकर वह विचार करने लगी कि क्या यह रामके दुन्दुभिका विशाल शब्द है ? ॥९५॥ इस प्रकारका तर्क कर तथा आगे गङ्गा नदीको देखकर उसने जान लिया कि यह अन्य दिशामें सुनाई देनेवाला इसीका शब्द है ॥९६॥ उसने देखा कि यह गङ्गानदी कहीं तो भीतर क्रीड़ा करनेवाले नाके, मच्छ तथा मकर आदिसे विघट्टित है, कहीं उठती हुई बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके संसर्गसे इसमें कमल कम्पित हो रहे हैं ॥९७॥ कहीं इसने

समुद्रक्रोडपर्यस्तां सगरात्मजनिर्मिताम् । आरसातलगम्भीरां पुलिनैः शोभितां सितैः ॥९९॥
फेनमालासमासक्तविशालावर्तभैरवाम् । प्रान्तावस्थितसस्वानशकुन्तगणराजिताम् ॥१००॥
अश्वास्ते तां समुत्तीर्णाः पवनोपमरंहसः । [1]सम्यक्त्वसारयोगेन संसृतिं साधवो यथा ॥१०१॥
ततो मेरुवदक्षोभ्यचित्तोऽपि सततं भवन् । सेनानीः परमं प्राप विषादं सदयस्तदा ॥१०२॥
किञ्चिद्वक्तुमशक्तात्मा महादुःखसमाहतः । नियन्तुमक्षमः स्थातुं प्रबलायातबाष्पकः ॥१०३॥
विधृत्य स्यन्दनं लग्नः कर्तुं क्रन्दनमुत्कटम् । निधाय मस्तके हस्तौ स्रस्ताङ्गो विगतद्युतिः ॥१०४॥
ततो जगाद वैदेही प्रभ्रष्टहृदया सती । कृतान्तवक्त्र कस्मात्त्वं विरौषीदं सुदुःखिवत् ॥१०५॥
प्रस्तावेऽत्यन्तहर्षस्य विषादयसि मामपि । विजनेऽस्मिन् महारण्ये कस्मादाश्रितरोदनः ॥१०६॥
स्वाम्यादेशस्य कृत्यत्वाद्वक्तव्यत्वान्नियोगतः । कथञ्चिद्रोदनं कृत्वा यथावत्स न्यवेदयत् ॥१०७॥
विषाग्निशस्त्रसदृशं शुभे दुर्जनभाषितम् । श्रुत्वा देवेन दुष्कीर्तिः[2] परमं भयमीयुषा ॥१०८॥
सन्त्यज्य दुस्त्यजं स्नेहं दोहदानां नियोगतः । त्यक्तासि [3]देवि रामेण श्रमणेन रतिर्यथा ॥१०९॥
स्वामिन्यस्ति प्रकारोऽसौ नैव येन स विष्णुना । अनुनीतस्तवार्थेन न तथाप्यत्यजद् ग्रहम् ॥११०॥
तस्मिन् स्वामिनि नीरागे शरणं तेऽस्ति न क्वचित् । धर्मसम्बन्धमुक्ताया जीवे सौख्यस्थितेरिव ॥१११॥

किनारे पर स्थित ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको जड़से उखाड़ डाला है, कहीं इसके वेगने बड़े-बड़े पर्वतोंकी चट्टानोंके समूहको विदारित कर दिया है ॥९८॥ यह समुद्रकी गोदमें फैली है, राजा सगरके पुत्रों द्वारा निर्मित है, रसातल तक गहरी है, सफेद पुलिनोंसे शोभित है ॥९९॥ फेनके समूहसे सहित बड़ी-बड़ी भँवरोंसे भयंकर है, और समीपमें स्थित पक्षियोंके समूहसे सुशोभित है ॥१००॥ पवनके समान वेगशाली वे घोड़े उस गङ्गानदीको उस तरह पार कर गये जिस तरह कि साधु सम्यग्दर्शनके सार पूर्ण योगसे संसारको पार कर जाते हैं ॥१०१॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्र सेनापति यद्यपि मेरुके समान सदा निश्चल चित्त रहता था तथापि उस समय वह दया सहित होता हुआ परम विषादको प्राप्त हो गया ॥१०२॥ कुछ भी कहनेके लिए जिसकी आत्मा अशक्त थी, जो महादुःखसे ताड़ित हो रहा था, तथा जिसके बलात् आँसू निकल रहे थे ऐसा कृतान्तवक्त्र अपने आप पर नियन्त्रण करने तथा खड़े होनेके लिए असमर्थ हो गया ॥१०३॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर ढीला पड़ गया था और जिसकी कान्ति नष्ट हो गई थी ऐसा सेनापति रथ खड़ा कर और मस्तक पर दोनों हाथ रखकर जोर-जोरसे रुदन करने लगा ॥१०४॥ तत्पश्चात् जिसका हृदय टूट रहा था ऐसी सती सीताने कहा कि हे कृतान्तवक्त्र ! तू अत्यन्त दुःखी मनुष्यके समान इस तरह क्यों रो रहा है ? ॥१०५॥ तू इस अत्यधिक हर्षके अवसरमें मुझे भी विषाद युक्त कर रहा है। बता तो सही कि तू इस निर्जन महावनमें क्यों रो रहा है ॥१०६॥ स्वामीका आदेश पालन करना चाहिए अथवा अपने नियोगके अनुसार यथार्थ बात अवश्य कहना चाहिए इन दो कारणोंसे जिस किसी तरह रोना रोक कर उसने यथार्थ बातका निरूपण किया ॥१०७। उसने कहा कि हे शुभे ! विष अग्नि अथवा शस्त्रके समान दुर्जनोंका कथन सुनकर जो अपकीर्तिसे अत्यधिक भयभीत हो गये थे ऐसे श्रीरामने दुःखसे छूटने योग्य स्नेह छोड़कर दोहलोंके बहाने हे देवि ! तुम्हें उस तरह छोड़ दिया है जिस तरह कि मुनि रतिको छोड़ देते हैं ॥१०८-१०९॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि ऐसा कोई प्रकार नहीं रहा जिससे कि लक्ष्मणने आपके विषयमें उन्हें समझाया नहीं हो तथापि उन्होंने अपनी हठ नहीं छोड़ी ॥११०॥ जिस प्रकार धर्मके सम्बन्धसे रहित जीवकी सुखस्थितिको कहीं शरण नहीं प्राप्त होता उसी प्रकार

१. सम्यक् संसारयोगेन (?) म० । २. दुःकीर्तिः म० । ३. देव म० ।

न सवित्री न च भ्राता न च बान्धवसंहतिः। आश्रयस्तेऽधुना देवि मृगाकुलमिदं वनम् ॥११२॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा वज्रेणेवाभिताडिता। हृदये दुःखसम्भारव्याप्ता मोहमुपागता ॥११३॥
संज्ञां प्राप्य च कृच्छ्रेण स्खलितोद्गतवर्णगीः। जगादापृच्छनं कर्तुं सकृन्मे नाथमीक्षय ॥११४॥
सोऽवोचद्देवि दूरं सा नगरी रहिताऽधुना। कुतः पश्यसि पद्माभं परमं चण्डशासनम् ॥११५॥
ततोऽश्रुजलधाराभिः क्षालयन्त्यास्यपङ्कजम्। तथापि निर्भरस्नेहरसाक्रान्ता जगाविदम् ॥११६॥
सेनापते त्वया वाच्यो रामो मद्वचनादिदम्। यथा मत्त्यागजः कार्यो न विषादस्त्वया प्रभो ॥११७॥
अवलम्ब्य परं धैर्यं महापुरुष सर्वथा। सदा रक्ष प्रजां सम्यक्पितेव न्यायवत्सलः ॥११८॥
परिप्राप्तकलापारं नृपमाह्लादकारणम्। शरच्चन्द्रमसं यद्वदिच्छन्ति सततं प्रजाः ॥११९॥
संसाराद् दुःखनिर्घोरान्मुच्यन्ते येन देहिनः। भव्यास्तद्दर्शनं सम्यगाराधयितुमर्हसि ॥१२०॥
साम्राज्यादपि पद्माभ तदेव बहु मन्यते। नश्यत्येव पुना राज्यं दर्शनं स्थिरसौख्यदम् ॥१२१॥
तदभव्यजुगुप्सातो भीतेन पुरुषोत्तम। न कथञ्चित्त्वया त्याज्यं नितान्तं तद्धि दुर्लभम् ॥१२२॥
रत्नं पाणितलं प्राप्तं परिभ्रष्टं महोदधौ। उपायेन पुनः केन सङ्गतिं प्रतिपद्यते ॥१२३॥
क्षिप्त्वामृतफलं कूपे महाऽऽपत्तिभयङ्करे। परं प्रपद्यते दुःखं पश्चात्तापहतः शिशुः ॥१२४॥
यस्य यत्सदृशं तस्य प्रवदत्यनिवारितः। को ह्यस्य जगतः कर्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् ॥१२५॥

उन स्वामीके निःस्नेह होने पर आपके लिए कहीं कोई शरण नहीं जान पड़ता ॥१११॥ हे देवि ! तेरे लिए न माता शरण है, न भाई शरण है, और न कुटुम्बीजनोंका समूह ही शरण है। इस समय तो तेरे लिए मृगोंसे व्याप्त यह वन ही शरण है ॥११२॥

तदनन्तर सीता उसके वचन सुन हृदयमें वज्रसे ताड़ितके समान अत्यधिक दुःखसे व्याप्त होती हुई मोहको प्राप्त हो गई ॥११३॥ बड़ी कठिनाईसे चेतना प्राप्त कर उसने लड़खड़ाते अक्षरों वाली वाणीमें कहा कि कुछ पूछनेके लिए मुझे एक बार स्वामीके दर्शन करा दो ॥११४॥ इसके उत्तरमें कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देवि ! इस समय तो वह नगरी बहुत दूर रह गई है अतः अत्यधिक कठोर आज्ञा देनेवाले स्वामी-रामको किस प्रकार देख सकती हो ? ॥११५॥ तदनन्तर सीता यद्यपि अश्रुजलकी धारामें मुखकमलका प्रक्षालन कर रही थी तथापि अत्यधिक स्नेह रूपी रससे आक्रान्त हो उसने यह कहा कि ॥११६॥ हे सेनापते ! तुम मेरी ओरसे रामसे यह कहना कि हे प्रभो ! आपको मेरे त्यागसे उत्पन्न हुआ विषाद नहीं करना चाहिए ॥११७॥ हे महापुरुष ! परम धैर्यका अवलम्बन कर सदा पिताके समान न्यायवत्सल हो प्रजाकी अच्छी तरह रक्षा करना ॥११८॥ क्योंकि जिस प्रकार प्रजा पूर्ण कलाओंको प्राप्त करनेवाले शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी सदा इच्छा करती है—उसे चाहती है उसी प्रकार कलाओंके पारको प्राप्त करनेवाले एवं आह्लादके कारण भूत राजाकी प्रजा सदा इच्छा करती है—उसे चाहती है ॥११९॥ जिस सम्यग्दर्शनके द्वारा भव्य जीव दुःखोंसे भयंकर संसारसे छूट जाते हैं उस सम्यग्दर्शनकी अच्छी तरह आराधना करनेके योग्य हो ॥१२०॥ हे राम ! साम्राज्यकी अपेक्षा वह सम्यग्दर्शन ही अधिक माना जाता है क्योंकि साम्राज्य तो नष्ट हो जाता है परन्तु सम्यग्दर्शन स्थिर सुखको देनेवाला है ॥१२१॥ हे पुरुषोत्तम ! अभव्योंके द्वारा की हुई जुगुप्सासे भयभीत होकर तुम्हें वह सम्यग्दर्शन किसी भी तरह नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि वह अत्यन्त दुर्लभ है ॥१२२॥ हथेलीमें आया रत्न यदि महासागरमें गिर जाता है तो फिर वह किस उपायसे प्राप्त हो सकता है ? ॥१२३॥ अमृत-फलको महा आपत्तिसे भयंकर कुँएमें फेंककर पश्चात्तापसे पीड़ित बालक परम दुःखको प्राप्त होता है ॥१२४॥ जिसके अनुरूप जो होता है वह उसे विना किसी प्रतिबन्धके कहता ही है क्योंकि

श्रृण्वताऽपि त्वया तत्तत्स्वार्थनाशनकारणम् । [1]पडेनेव न कर्तव्यं हृदये गुणभूषण ॥१२६॥
तीव्राज्ञोऽपि यथाभूतो जगदर्थावभासनात् । विकारम[2]नु न प्राप्तो भवादित्य इव प्रियः ॥१२७॥
भजस्व [3]प्रस्खलं दानैः प्रीतियोगैर्निजं जनम् । परं च शीलयोगेन मित्रं सद्भावसेवनैः ॥१२८॥
यथोपपन्नमन्नेन समेतमतिथिं गृहम् । साधून् समस्तभावेन प्रणामाभ्यर्चनादिभिः ॥१२९॥
क्षान्त्या क्रोधं मृदुत्वेन मानं [4]निर्विषयस्थितम् । मायामार्जवयोगेन धृत्या लोभं तनूकुरु ॥१३०॥
सर्वशास्त्रप्रवीणस्य नोपदेशस्तव क्षमः । चापलं हृदयस्येदं त्वत्प्रेमग्रहयोगिनः ॥१३१॥
कृतं वश्यतया किञ्चित् परिहासेन वा पुनः । मयाऽविनयमीश त्वं समस्तं क्षन्तुमर्हसि ॥१३२॥
एतावद्दर्शनं नूनं भवता सह मे प्रभो । पुनः पुनरतो वच्मि क्षन्तव्यं साध्वसाधु वा ॥१३३॥
इत्युक्त्वा पूर्वमेवासाववतीर्णा रथोदरात् । पपात धरणीपृष्ठे तृणोपलसमाकुले ॥१३४॥
धरण्यां पतिता तस्यां मूर्च्छानिश्चेतनीकृता । रराज जानकी यद्वत् पर्यस्ता रत्नसंहतिः ॥१३५॥
नष्टचेष्टां तकां दृष्ट्वा सेनानीरतिदुःखितः । अचिन्तयदियं प्राणान् दुष्करं धारयिष्यति ॥१३६॥
अरण्येऽत्र महाभीष्मे व्यालसङ्घातसङ्कुले । विदधाति न धीरोऽपि प्रत्याशां जीवितं प्रति ॥१३७॥
मृगाक्षीमेतिकां त्यक्त्वा विपिनेऽस्मिन्नमुत्तमे । स्थानं न तत् प्रपश्यामि यत्र मां शान्तिरेष्यति ॥१३८॥
इतो निर्दयताऽत्युग्रा स्वाम्याज्ञा निश्चिताऽन्यतः । अहो दुःखमहावर्तमध्यं प्राप्तोऽस्मि पापकः ॥१३९॥

इस संसारका सुख बन्धन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१२५॥ हे गुणभूषण ! यद्यपि आत्म-हितको नष्ट करनेवाली अनेक बातें आप श्रवण करेंगे तथापि ग्रहिल (पागल) के समान उन्हें हृदयमें नहीं धारण करना—विचार पूर्वक ही कार्य करना ॥१२६॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि अत्यन्त तेजस्वी रहता है तथापि संसारके समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेसे यथाभूत है एवं कभी विकारको प्राप्त नहीं होता इसलिए लोगोंको प्रिय है उसी प्रकार यद्यपि आप तीव्र शासनसे युक्त हो तथापि जगत्के समस्त पदार्थोंको ठीक-ठीक जाननेके कारण यथाभूत यथार्थ रूप रहना एवं कभी विकारको प्राप्त नहीं होनेसे सूर्यके समान सबको प्रिय रहना ॥१२७॥ दुष्ट मनुष्यको कुछ देकर वश करना, आत्मीय जनोंको प्रेम दिखाकर अनुकूल रखना, शत्रुको उत्तमशील अर्थात् निर्दोष आचरणसे वश करना और मित्रको सद्भाव पूर्वक की गई सेवाओंसे अनुकूल रखना ॥१२८॥ क्षमासे क्रोधको, मार्दवसे चाहे जहाँ होनेवाले मानको, आर्जवसे मायाको और धैर्यसे लोभको कृश करना ॥१२९–१३०॥ हे नाथ ! आप तो समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण हो अतः आपको उपदेश देना योग्य नहीं है, यह जो मैंने कहा है वह आपके प्रेम रूपी ग्रहसे संयोग रखनेवाले मेरे हृदय-की चपलता है ॥१३१॥ हे स्वामिन् ! आपके वशीभूत होनेसे अथवा परिहासके कारण यदि मैंने कुछ अविनय किया हो तो उस सबको क्षमा कीजिये ॥१३२॥ हे प्रभो ! जान पड़ता है कि आपके साथ मेरा दर्शन इतना ही था इसलिए बार-बार कह रही हूँ कि मेरी प्रवृत्ति उचित हो अथवा अनुचित सब क्षमा करने योग्य है ॥१३३॥ जो रथके मध्यसे पहले ही उतर चुकी थी ऐसी सीता इस प्रकार कहकर तृण तथा पत्थरोंसे व्याप्त पृथिवी पर गिर पड़ी ॥१३४॥ उस पृथिवी पर पड़ी, मूर्च्छासे निश्चल सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो रत्नोंका समूह ही बिखर गया हो ॥१३५॥ चेष्टा हीन सीताको देखकर सेनापतिने अत्यन्त दुःखी हो इस प्रकार विचार किया कि यह प्राणोंको बड़ी कठिनाईसे धारण कर सकेगी ॥१३६॥ हिंसक जीवोंके समूहसे भरे हुए इस महा भयंकर वनमें धीर वीर मनुष्य भी जीवित रहनेकी आशा नहीं रख सकता ॥१३७॥ इस विकट वनमें इस मृगनयनीको छोड़कर मैं वह स्थान नहीं देखता जहाँ मुझे शान्ति प्राप्त हो सकेगी ॥१३८॥ इस ओर अत्यन्त भयंकर निर्दयता है और उस ओर स्वामीकी सुदृढ आज्ञा है। अहो ! मैं पापी

१. पडेनेव ग्रहिलेनेव । पडः ग्रहिलः इति श्री० टि० । एडेनेव म० । २. -मतनु म०, ग०, ख० । ३. प्रस्खलं म० । ४. निर्विषया स्थितम् म० ।

धिग् भृत्यतां जगन्निन्द्यां यत् किञ्चन विधायिनीम् । परायत्तीकृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ॥१४०॥
यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दुःखैकनिहितात्मनः । भृत्यस्य जीविताद्दूरं वरं कुक्कुरजीवितम् ॥१४१॥
[1]नरेन्द्रशक्तिवश्यः स निन्द्यनामा पिशाचवत् । विदधाति न किं भृत्यः किं वा न परिभाषते ॥१४२॥
चित्रचापसमानस्य निःकृत्यगुणधारिणः । नित्यनम्रशरीरस्य निन्द्यं भृत्यस्य जीवितम् ॥१४३॥
[2]सङ्कारकूटकस्येव पश्चान्निर्वृत्तचेतसः । निर्माल्यवाहिनो धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम् ॥१४४॥
पश्चात् कृतगुरुत्वस्य तोयार्थमपि नामिनः । तुलायन्त्रसमानस्य धिग्भृत्यस्याऽसुधारणम् ॥१४५॥
उन्नत्या त्रपया दीप्तया वर्जितस्य निजेच्छया । मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्मसमात्मनः ॥१४६॥
विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम् । अधस्ताद्गच्छतो नित्यं धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४७॥
निःसत्त्वस्य महामांसविक्रयं कुर्वतः सदा । निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४८॥
भृत्यताकरणीयेन कर्मणाऽस्मि वशीकृतः । एतां [3]यन्न विमुञ्चामि प्रस्तावेऽप्यत्र दारुणे ॥१४९॥
इति विमृश्य सन्त्यज्य सीतां धर्मधियं यथा । अयोध्याऽभिमुखोऽयासीत्सेनानीः सत्रपात्मकः ॥१५०॥
इतराऽपि परिप्राप्तसंज्ञा परमदुःखिता । यूथभ्रष्टेव सारङ्गी बालाऽक्रन्दं समाश्रिता ॥१५१॥

दुःख रूपी महाआवर्तके बीच आ पड़ा हूँ ॥१३९॥ जिसमें इच्छाके विरुद्ध चाहे जो करना पड़ता है, आत्मा परतन्त्र हो जाती है, और क्षुद्र मनुष्य ही जिसकी सेवा करते हैं ऐसी लोकनिन्द्य दासवृत्तिको धिक्कार है ॥१४०॥ जो यन्त्रकी चेष्टाओंके समान है तथा जिसकी आत्मा निरन्तर दुःख ही उठाती है ऐसे सेवकके जीवनकी अपेक्षा कुक्कुरका जीवन बहुत अच्छा है ॥१४१॥ जो नरेन्द्र अर्थात् राजा (पक्षमें मान्त्रिक) की शक्तिके आधीन है तथा निन्द्य नामका धारक है ऐसा सेवक पिशाचके समान क्या नहीं करता है ? और क्या नहीं बोलता है ? ॥१४२॥ जो चित्र लिखित धनुषके समान है, जो कार्य रहित गुण अर्थात् डोरी (पक्षमें ज्ञानादि) से सहित है तथा जिसका शरीर निरन्तर नम्र रहता है ऐसे भृत्यका जीवन निन्द्य जीवन है ॥१४३॥ सेवक कचड़ा घरके समान है। जिस प्रकार लोग कचड़ा घरमें कचड़ा डालकर पीछे उससे अपना चित्त दूर हटा लेते हैं उसी प्रकार लोग सेवकसे काम लेकर पीछे उससे चित्त हटा लेते हैं—उसके गौरवको भूल जाते हैं, जिस प्रकार कचड़ाघर निर्माल्य अर्थात् उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है उसी प्रकार सेवक भी स्वामीकी उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है। इस प्रकार सेवक नामको धारण करनेवाले मनुष्यके जीवित रहनेको बार-बार धिक्कार है ॥१४४॥ जो अपने गौरवको पीछे कर देता है तथा पानी प्राप्त करनेके लिए भी जिसे झुकना पड़ता है इस प्रकार तुला यन्त्रकी तुल्यताको धारण करनेवाले भृत्यका जीवित रहना धिक्कार पूर्ण है ॥१४५॥ जो उन्नति, लज्जा, दीप्ति और स्वयं निजकी इच्छासे रहित है तथा जिसका स्वरूप मिट्टीके पुतलेके समान क्रियाहीन है ऐसे सेवकका जीवन किसीको प्राप्त न हो ॥१४६॥ जो विमान अर्थात् व्योमयान (पक्षमें मान रहित) होकर भी गतिसे रहित है तथा जो गुरुताके साथ-साथ निरन्तर नीचे जाता है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४७॥ जो स्वयं शक्तिसे रहित है, अपना मांस भी बेचता है, सदा मदसे शून्य है और परतन्त्र है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४८॥ जिसके उदयमें भृत्यता करनी पड़ती है ऐसे कर्मसे मैं विवश हो रहा हूँ इसीलिए तो इस दारुण अवसरके समय भी इस भृत्यताको नहीं छोड़ रहा हूँ ॥१४९॥ इस प्रकार विचार कर धर्म बुद्धिके समान सीताको छोड़कर सेनापति लज्जित होता हुआ अयोध्याके सम्मुख चला गया ॥१५०॥

तदनन्तर इधर जिसे चेतना प्राप्त हुई थी ऐसी सीता अत्यन्त दुःखी होती हुई यूथसे

---

१. राजा मन्त्रवादी च । २. सत्कार म० । संसार ब० । संकारः कचारा इति श्रीदत्त टि० । ३. येन म०, क०, ख०, ज० ।

रुदत्याः करुणं तस्याः पुष्पमोक्षापदेशतः । वनस्पतिसमूहेन नूनं रुदितमेव तत् ॥१५२॥
निसर्गरमणीयेन स्वरेण परिदेवनम् । ततोऽसौ कर्त्तुमारब्धा महाशोकवशीकृता ॥१५३॥
हा पद्मेक्षण हा पद्म हा नरोत्तम हा प्रभो । यच्छ प्रतिवचो देव कुरु साधारणं मम ॥१५४॥
सततं साधुचेष्टस्य सद्गुणस्य सचेतसः । न तेऽस्ति दोषगन्धोऽपि महापुरुषतायुजः ॥१५५॥
पुरा स्वयंकृतस्येदं प्राप्तं मे कर्मणः फलम् । अवश्यं परिभोक्तव्यं व्यसनं परमोत्कटम् ॥१५६॥
किं करोतु प्रियोऽपत्यो जनकः पुरुषोत्तमः । किं वा बान्धवलोको मे स्वकर्मण्युदयस्थिते ॥१५७॥
नूनं जन्मनि पूर्वस्मिन्नसत्पुण्यमुपार्जितम् । मन्दभाग्याजनेऽरण्ये दुःखं प्राप्तास्मि यत्परम् ॥१५८॥
अवर्णवचनं नूनं मया गोष्ठीष्वनुष्ठितम् । यस्योदयेन सम्प्राप्तमिदं व्यसनमीदृशम् ॥१५९॥
गुरोः समक्षमादाय नूनमन्यत्र जन्मनि । व्रतं मया पुनर्भग्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६०॥
अथवा परुषैर्वाक्यैः कश्चित् विषफलोपमैः[1] । निर्भर्त्सितो भवेऽन्यस्मिन् जातं यद्दुःखमीदृशम् ॥१६१॥
अन्यत्र जनने मन्ये पद्मखण्डस्थितं मया । चक्राह्वयुगलं भिन्नं स्वामिना रहितास्मि यत् ॥१६२॥
किं वा सरसि पद्मादिभूषिते रचितालयम् । पुरुषाणामुदाराणां गतिलीलाविलम्बकम् ॥१६३॥
जल्पितेन वरस्त्रीणां सौन्दर्येण कृतोपमम् । सौमित्रिसौधसच्छायं पद्मारुणमुखक्रमम् ॥१६४॥
वियोजितं भवेऽन्यस्मिन्हंसयुग्मं कुचेष्टया । प्राप्तास्मि वासनं घोरं येनेदृक्षं हताशिका ॥१६५॥
गुञ्जाफलार्द्धवर्णाक्षमन्योन्यार्पितमानसम् । कृष्णागुरुभवात्यन्तघनोद्यद्धूमधूसरम् ॥१६६॥

बिछुड़ी हरिणीके समान रोदन करने लगी ॥१५१॥ करुण रोदन करनेवाली सीताके दुःखसे दुःखी होकर वृक्षोंके समूहने भी मानो पुष्प छोड़नेके बहाने ही रोदन किया था ॥१५२॥ तदनन्तर महा महा शोकसे वशीभूत सीता स्वभाव सुन्दर स्वरसे विलाप करने लगी ॥१५३॥ वह कहने लगी कि हे कमललोचन ! हा पद्म ! हा नरोत्तम ! हा प्रभो ! हा देव ! उत्तर देओ मुझे सान्त्वना करो ॥१५४॥ आप निरन्तर उत्तम चेष्टाके धारक हैं, सद्गुणोंसे सहित हैं, सहृदय हैं और महा-पुरुषतासे युक्त हैं । मेरे त्यागमें आपका लेश मात्र भी दोष नहीं है ॥१५५॥ मैंने पूर्व भवमें जो स्वयं कर्म किया था उसीका यह फल प्राप्त हुआ है अतः यह बहुत भारी दुःख मुझे अवश्य भोगना चाहिए ॥१५६॥ जब मेरा अपना किया कर्म उदयमें आ रहा है तब पति, पुत्र, पिता, नारायण अथवा अन्य परिवारके लोग क्या कर सकते हैं ॥१५७॥ निश्चित ही मैंने पूर्व भवमें पापका उपार्जन किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी निर्जन वनमें परम दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१५८॥ निश्चित ही मैंने गोष्ठियोंमें किसीका मिथ्या दोष कहा होगा जिसके उदयसे मुझे यह ऐसा संकट प्राप्त हुआ है ॥१५९॥ निश्चित ही मैंने अन्य जन्ममें गुरुके समक्ष व्रत लेकर भग्न किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६०॥ अथवा अन्य भवमें मैंने विष फलके समान कठोर वचनोंसे किसीका तिरस्कार किया होगा इसीलिए मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है ॥१६१॥ जान पड़ता है कि मैंने अन्य जन्ममें कमलवनमें स्थित चकवा चकवीके युगलको अलग किया होगा इसीलिए तो मैं भर्तासे रहित हुई हूँ ॥१६२॥ अथवा जो कमल आदिसे विभूषित सरोवरमें निवास करता था, जो उत्तम पुरुषोंकी गमन सम्बन्धी लीलामें विलम्ब उत्पन्न करनेवाला था, जो अपने कल-कूजन और सौन्दर्यमें स्त्रियोंकी उपमा प्राप्त करता था, जो लक्ष्मणके महलके समान उत्तम कांतिसे युक्त था, और जिसके मुख तथा चरण कमलके समान लाल थे ऐसे हंस-हंसियोंके युगलको मैंने पूर्वभवमें अपनी कुचेष्टासे जुदा-जुदा किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी इस घोर निष्कासनको प्राप्त हुई हूँ—घरसे अलग की गई हूँ ॥१६३–१६५॥ अथवा गुंजाफलके अर्ध भाग के समान जिसके नेत्र थे, परस्पर एक दूसरेके लिए जिसने अपना हृदय सौंप रक्खा था, जो काला-

---

१. फलविषोपमैः म० ।

समारब्धसुखक्रीडं कण्ठस्थकलनिःस्वनम् । पारापतयुगं पापचेतसा स्यात्पृथक्कृतम् ॥१६७॥
अस्थाने स्थापितं किं वा बद्धं मारितमेव वा । सम्भावनादिनिर्युक्तं दुःखमीदृग्गताऽस्मि यत् ॥१६८॥
वसन्तसमये रम्ये किं वा कुसुमिताङ्घ्रिपे । परपुष्टयुगं[1] भिन्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६९॥
अथवा श्रमणाः क्षान्ता सद्वृत्ता निर्जितेन्द्रियाः । निंदिता विदुषां वन्द्या दुःखं प्राप्ताऽस्मि यन्महत् ॥१७०॥
सद्भृत्यपरिवारेण शासनानन्दकारिणा । कृतसेवा सदा याहं स्थिता स्वर्गसमे गृहे ॥१७१॥
साऽधुना क्षीणपुण्यौघा निर्बन्धुर्गहने[2] वने । दुःखसागरनिर्मग्ना कथं तिष्ठामि पापिका ॥१७२॥
नानारत्नकरोद्योते सत्प्रच्छदपटावृते । शयनीये महारम्ये सर्वोपकरणान्विते ॥१७३॥
वंशत्रिसरिकावीणासङ्गीतमधुरस्वनैः । असेविषि सुखं निद्रां प्रत्यबुधि तथा च या ॥१७४॥
अयशोदावनिर्दग्धा साऽहं सम्प्रति दुःखिनी । प्रधाना रामदेवस्य महिषी परिकीर्तिता ॥१७५॥
तिष्ठाम्येकाकिनी कष्टे कान्तारे दुःकृतात्मिका । कीटकर्कशदर्भोग्रग्रावौघाढ्ये महीतले ॥१७६॥
म्रियन्ते यद्यवाप्येमामवस्थामीदृशीं मयि । ततो वज्रविनिर्माणाः प्राणा नूनमिमे मके[3] ॥१७७॥
अवस्थां च परां प्राप्य शतधा यन्न दीर्यसे । अहो हृदय नास्त्यन्यः सदृशस्तव साहसी ॥१७८॥
किं करोमि क्व गच्छामि कं ब्रवीमि कमाश्रये । कथं तिष्ठामि किं जातमिदं हा मातरीदृशम् ॥१७९॥
हा पद्म सद्गुणाम्भोधे हा नारायण भक्तक । हा तात किं न मां वेत्सि हा मातः किं न रक्षसि ॥१८०॥
अहो विद्याधराधीश भ्रातः कुण्डलमण्डित । दुःखावर्तकृतभ्रान्तिरियं तिष्ठाम्यलक्षणा ॥१८१॥

गुरु चन्दनसे उत्पन्न हुए सघन धूमके समान धूसर वर्ण था, जो सुखसे क्रीडा कर रहा था, और कण्ठमें मनोहर अव्यक्त शब्द विद्यमान था ऐसे कबूतर-कबूतरियोंके युगलको मैंने पाप पूर्ण चित्त से जुदा जुदा किया होगा। अथवा अनुचित स्थानमें उसे रक्खा होगा अथवा बाँधा होगा अथवा मारा होगा, अथवा सन्मान—लालन-पालन आदिसे रहित किया होगा इसीलिए मैं ऐसे दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१६६-१६८॥ अथवा जब सब वृक्ष फूलोंसे युक्त हो जाते हैं ऐसे रमणीय वसन्तके समय कोकिल और कोकिलाओंके युगलको मैंने पृथक् पृथक् किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६९॥ अथवा मैंने क्षमाके धारक, सदाचारके पालक, इन्द्रियोंको जीतने वाले तथा विद्वानोंके द्वारा वन्दनीय मुनियोंकी निन्दा की होगी जिसके फलस्वरूप इस महादुःख को प्राप्त हुई हूँ ॥१७०॥ आज्ञा मिलते ही हर्षित होने वाले उत्तम भृत्योंके समूह जिसकी सदा सेवा करते थे ऐसी जो मैं पहले स्वर्ग तुल्य घरमें रहती थी वह मैं इस समय बन्धुजनसे रहित इस सघन वनमें कैसे रहूँगी ? मेरे पुण्यका समूह क्षय हो गया है, मैं दुःखोंके सागरमें डूब रही हूँ तथा मैं अत्यन्त पापिनी हूँ ॥१७१॥ जिस पर नाना रत्नोंकी किरणोंका प्रकाश फैल रहा था, जो उत्तर चादरसे आच्छादित था, महा रमणीय था तथा सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित था ऐसे उत्तम शयन पर सुखसे निद्राका सेवन करती थी तथा प्रातःकालके समय बाँसुरी, त्रिसरिका और वीणाके संगीतमय मधुर स्वरसे जागा करती थी ॥१७२-१७४॥ वही मैं अपयश रूपी दावानलसे जली दुःखिनी, श्री रामदेवकी प्रधान रानी पापिनी अकेली इस दुःकदायी वनके बीच कीड़े, कठोर डाभ और तीक्ष्ण पत्थरोंके समूहसे युक्त पृथिवीतलमें कैसे रहूँगी ? ॥१७५-१७६॥ यदि ऐसी अवस्था पाकर भी ये प्राण मुझमें स्थित हैं तब तो कहना चाहिए कि मेरे प्राण वज्रसे निर्मित हैं ॥१७७॥ अहो हृदय ! ऐसी अवस्थाको पाकर भी जो तुम सौ टुकड़े नहीं हो जाते हो उससे जान पड़ता है कि तुम्हारे समान दूसरा साहसी नहीं है ॥१७८॥ क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ! किसका आश्रय लूँ ? कैसे ठहरूँ ? हाय मातः ! यह ऐसा क्यों हुआ ? ॥१७९॥ हे सद्गुणोंके सागर राम ! हा भक्त लक्ष्मण ! हा पिता ! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो ? हा मातः ! तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करती हो ? ॥१८०॥ अहो विद्याधरोंके अधीश भाई

१. कोकिलयुगलम् । २. निर्बन्धुर्गहने । ३. मे मम ।

अपुण्यया मया सार्द्धं पत्या परमसम्पदा । कष्टं मह्यां[1] जिनेन्द्राणां कृता सद्मसु नार्चना ॥१८२॥
एवं तस्यां समाक्रन्दं कुर्वन्त्यां विह्वलात्मनि । राजा[3] कुलिशजङ्घाख्यस्तं[2] वनान्तरमागतः ॥१८३॥
पौण्डरीकपुरः स्वामी गजबन्धार्थमागतः । प्रत्यागच्छन् महाभूतिर्गृहीतवरवारणः ॥१८४॥
तस्य सैन्यशिरोजाताः प्लवमानाः पदातयः । नानाशस्त्रकराः कान्ताः शूरा बद्धासिधेनवः ॥१८५॥
श्रुत्वा तद्रुदितस्वानं तथाप्यतिमनोहरम् । संशयानाः परित्रस्ताः पदं न परतो ददुः ॥१८६॥
अश्वीयमपि संरुद्धं पुरोभागमवस्थितम् । साशङ्कैरकृतप्रेरं सादिभिः श्रुतनिःस्वनैः ॥१८७॥

उपजातिवृत्तम्

कुतोऽत्र भीमेऽतितरामरण्ये परासुताकारणभूरिसत्त्वे ।
अयं निनादो रुदितस्य रम्यः स्त्रैणो नु चित्रं परमं किमेतत् ॥१८८॥

मालिनीवृत्तम्

मृगमहिषतरक्षुद्वीपिशार्दूललोले सृमरशरभसिंहे कोलदंष्ट्राकराले[3] ।
सुविमलशशिरेखाहारिणी केयमस्मिन् हृदयहरणदक्षं कक्षमध्ये विरौति ॥१८९॥
सुरवरवनितेयं किन्नु सौधर्मकल्पादवनितलमुपेता पातिता वासवेन ।
उत जनसुखगीतासा नु देवी विधात्री भुवननिधनहेतोरागता स्यात् कुतोऽपि ॥१९०॥
इति जनितवितर्कं वर्जिताऽऽत्मीयचेष्टं[4] प्रजवसरणयुक्तैर्मूलगैः पूर्यमाणम् ।
प्रहतबहलतूरं[5] तन्महावर्तकल्पं स्थितमचलमुदारं सैनिकं विस्मयाढ्यम् ॥१९१॥

कुण्डलमण्डित ! यह मैं कुलक्षणा दुःखरूपी आवर्तमें भ्रमण करती यहाँ पड़ी हूँ ॥१८१॥ खेद है कि मैं पापिनी पतिके साथ बड़े वैभवसे, पृथिवी पर जो जिनमन्दिर हैं उनमें जिनेन्द्र भगवान् की पूजा नहीं कर सकी ॥१८२॥

अथानन्तर जब विह्वल चित्त सीता विलाप कर रही थी तब एक वज्रजंघ नामक राजा उस वनके मध्य आया ॥१८३॥ वज्रजंघ पुण्डरीकपुरका स्वामी था, हाथी पकड़नेके लिए उस वनमें आया था और हाथी पकड़कर बड़े वैभवसे लौटकर वापिस आ रहा था ॥१८४॥ उसकी सेनाके अग्रभागमें जो सैनिक उछलते हुए जा रहे थे वे यद्यपि अपने हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र लिये थे, सुन्दर थे, शूरवीर थे और छुरियाँ बाँधे हुए थे तथापि सीताका वह अतिशय मनोहर रोदनका शब्द सुनकर वे संशयमें पड़ गये तथा इतने भयभीत हो गये कि एक डग भी आगे नहीं दे सके ॥१८५-१८६॥ सेनाके आगे चलने वाला जो घोड़ोंका समूह था वह भी रुक गया तथा उस रोदनका शब्द सुन आशङ्कासे युक्त घुड़सवार भी उसे प्रेरित नहीं कर सके ॥१८७॥ वे विचार करने लगे कि जहाँ मृत्युके कारणभूत अनेक प्राणी विद्यमान हैं ऐसे इस अत्यन्त भयंकर वनमें यह स्त्रीके रोनेका मनोहर शब्द हो रहा है सो यह बड़ी विचित्र क्या बात है ? ॥१८८॥ जो मृग, भैंसा, भेड़िया, चीता और तिंदुआसे चञ्चल है जहाँ अष्टापद और सिंह घूम रहे हैं, तथा जो सुअरोंकी दाँढ़ोंसे भयंकर है ऐसे इस वनके मध्यमें अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी रेखाके समान यह कौन हृदयके हरनेमें निपुण रो रही है ? ॥१८९॥ क्या यह सौधर्म स्वर्गसे इंद्रके द्वारा छोड़ी और पृथिवीतल पर आई हुई कोई इंद्राणी है अथवा मनुष्योंके सुख संगीतको नष्ट करने वाली एवं प्रलयके कारणको उत्पन्न करने वाली कोई देवी कहींसे आ पहुँची है ? ॥१९०॥ इस प्रकार जिसे तर्क उत्पन्न हो रहा था, जिसने अपनी चेष्टा छोड़ दी थी, वेगसे चलनेवाले मूल पुरुष जिसमें आकर इकट्ठे हो रहे थे, जिसमें अत्यधिक बाजे बज रहे थे, जो किसी बड़ी भँवरके समान जान पड़ती थी और जो आश्चर्यसे युक्त थी ऐसी वह विशाल सेना निश्चल खड़ी हो गई ॥१९१॥

१. मह्यं भ०, ज० । २. वज्रजङ्घनामा । ३. दंष्ट्रान्तराले म० । ४. देशं म० । ५. तूलं ल० ।

[1]तुरगमकरवृन्दं प्रौढपादातमीनं विघृतवरकरेणुग्राहजालं सशब्दम् ।
रविकिरणविषक्तप्रस्फुरत्खड्गवीचिप्रतिभयमभवत्तत्सैन्यमम्भोधिकल्पम् ॥१६२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतानिर्वासनविप्रलापवज्रजङ्घगमनाभिधानं नाम सप्तनवतितमं पर्व ॥९७॥

घोड़ोंके समूह ही जिसमें मगर थे, तेजस्वी पैदल सैनिक ही जिसमें मीन थे, हाथियोंके समूह ही जिसमें ग्राह थे, जो प्रचण्ड शब्दसे युक्त था और सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे चमकती हुई तलवार रूपी तरङ्गोंसे जो भय उत्पन्न करनेवाली थी ऐसी वह सेना समुद्रके समान जान पड़ती थी ॥१६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा विरचित श्री पद्मपुराणमें सीताके निर्वासन, विलाप और वज्रजङ्घके आगमनका वर्णन करनेवाला सतानबेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९७॥

१. अयं श्लोकः क० पुस्तके नास्ति ।

अष्टनवतितमं पर्व

ततः पुरो महाविद्यानिरुद्धामिव जाह्नवीम् । चक्रीभूतां चमूं दृष्ट्वा वज्रजङ्घः करेणुगः ॥१॥
पप्रच्छासन्नपुरुषान् यूयमेवं कुतः स्थिताः । कुतः केन प्रतीघातो गमनस्य किमाकुलाः ॥२॥
पारम्पर्येण ते यावत् पृच्छन्ति स्थितिकारणम् । तावत्किञ्चित्समासीदन्[1] राजा शुश्राव रोदनम् ॥३॥
जगाद च समस्तेषु लक्षणेषु कृतश्रमः । यस्या रुदितशब्दोऽयं श्रूयते सुमनोहरः ॥४॥
विद्युद्गर्भरुचा तस्या गर्भिण्याऽप्रतिरूपया । ध्रुवं पुरुषवर्यस्य भवितव्यं स्त्रियाऽनया ॥५॥
एवमेतत्कुतो देव सन्देहोऽत्र त्वयोदिते । अनेकमद्भुतं कर्म भवता हि पुरेक्षितम् ॥६॥
एवं तस्य सभृत्यस्य कथा यावत्प्रवर्तते । तावदग्रेसरा सीतासमीपं सत्त्विनो गताः ॥७॥
पप्रच्छुः पुरुषा देवि का त्वं निर्मानुषे वने । विरौषि करुणं शोकमसम्भाव्यमिदं श्रिता ॥८॥
न दृश्यन्ते भवादृश्यो लोकेऽत्राकृतयः शुभाः । दिव्या किमसि किं वाऽन्या काचित् सृष्टिरनुत्तमा ॥९॥
यदीदमीदृशं धत्से वपुरक्लिष्टमुत्तमम् । ततोऽत्यन्तं न बालक्ष्यः[2] कोऽयं शोकस्तवापरः ॥१०॥
वद कल्याणि कथ्यं चेदिदं नः कौतुकं परम् । दुःखान्तोऽपि च सत्येवं कदाचिदुपजायते ॥११॥
ततस्तान् सुमहाशोकध्वान्तीकृतसमस्तदिक् । पुरुषान् सहसा दृष्ट्वा नानाशस्त्रकरोज्ज्वलान् ॥१२॥
सीता त्राससमुत्पन्नपृथुवेपथुसङ्कुला । दातुमाभरणान्येषां लोलनेत्रा समुद्यता ॥१३॥
तत्त्वमूढास्ततो भीता जगदुः पुरुषाः पुनः । सन्त्रासं देवि शोकं च त्यज संश्रय धीरताम् ॥१४॥

अथानन्तर आगे महाविद्यासे रुकी गङ्गानदीके समान चक्राकार परिणत सेनाको देख, हाथी पर चढ़े हुए वज्रजङ्घने निकटवर्ती पुरुषोंसे पूछा कि तुमलोग इस तरह क्यों खड़े हो गये ? गमनमें किसने किस कारण रुकावट डाली ? और तुमलोग व्याकुल क्यों हो रहे हो ? ॥१-२॥ निकटवर्ती पुरुष जबतक परम्परासे सेनाके रुकनेका कारण पूछते हैं तबतक कुछ निकट बढ़कर राजाने स्वयं रोनेका शब्द सुना ॥३॥ समस्त लक्षणोंमें जिसने श्रम किया था ऐसा राजा वज्रजङ्घ बोला कि जिस स्त्रीका यह अत्यन्त मनोहर रोनेका शब्द सुनाई पड़ रहा है वह बिजलीके मध्य-भागके समान कान्तिवाली, पतिव्रता तथा अनुपम गर्भिणी है । यही नहीं उसे निश्चय ही किसी श्रेष्ठ पुरुषकी स्त्री होना चाहिए ॥४-५॥ हे देव ! ऐसा ही है—आपके इस कथनमें संदेह कैसे हो सकता है ? क्योंकि आपने पहले अनेक आश्चर्यजनक कार्य देखे हैं ॥६॥ इस प्रकार सेवकों और राजा वज्रजङ्घके बीच जबतक यह वार्ता होती है तबतक आगे चलनेवाले कुछ साहसी पुरुष सीताके समीप जा पहुँचे ॥७॥ उन्होंने पूछा कि हे देवि ! इस निर्जन वनमें तुम कौन हो ? तथा असंभाव्य शोकको प्राप्त हो यह करुण विलाप क्यों कर रही हो ? ॥८॥ इस संसारमें आपके समान शुभ आकृतियाँ दिखाई नहीं देतीं । क्या तुम देवी हो ? अथवा कोई अन्य उत्तम सृष्टि हो ? ॥९॥ जब कि तुम इस प्रकारके क्लेश रहित उत्तम शरीरको धारण कर रही हो तब यह बिलकुल ही नहीं जान पड़ता कि तुम्हें यह दूसरा दुःख क्या है ? ॥१०॥ हे कल्याणि ! यदि यह बात कहने योग्य है तो कहो, हमलोगोंको बड़ा कौतुक है । ऐसा होने पर कदाचित् दुःखका अन्त भी हो सकता है ॥११॥

तदनन्तर महाशोकके कारण जिसे समस्त दिशाएँ अन्धकार रूप हो गई थीं ऐसी सीता अचानक नाना शस्त्रोंकी किरणोंसे देदीप्यमान उन पुरुषोंको देखकर भयसे एक दम काँप उठी, उसके नेत्र चञ्चल हो गये और वह इन्हें आभूषण देनेके लिए उद्यत हो गई ॥१२-१३॥ तदनन्तर

---

१. निकटीभवन् । २. चालक्ष्यः म० ।

किं वा विभूषणैरेभिस्तिष्ठन्तु त्वयि दक्षिणे । [1]भावयोगं प्रपद्यस्व किमर्थमसि विह्वला ॥१५॥
श्रीमानयं परिप्राप्तो वज्रजङ्घ इति क्षितौ । प्रसिद्धः सकलैर्युक्तो राजधर्मैर्नरोत्तमः ॥१६॥
सम्यग्दर्शनरत्नं यः सादृश्यपरिवर्जितम् । अविनाशमनाधेयमहार्यं सारसौख्यदम् ॥१७॥
शङ्कादिमलनिर्मुक्तं हेमपर्वतनिश्चलम् । हृदयेन समाधत्ते सचेता भूषणं परम् ॥१८॥
सम्यग्दर्शनमीदृक्षं यस्य साध्वि विराजते । गुणास्तस्य कथं श्लाघ्ये वर्ण्यन्तामस्मदादिभिः ॥१९॥
जिनशासनतत्त्वज्ञः शरणागतवत्सलः । परोपकारसंसक्तः करुणार्द्रितमानसः ॥२०॥
लब्धवर्णो विशुद्धात्मा निन्द्यकृत्यनिवृत्तधीः । पितेव रक्षिता लोके दाता भूतहिते रतः ॥२१॥
दीनार्दीनां विशेषेण [2]मातुरप्यनुपालकः । शुद्धकर्मकरः शत्रुमहीधरमहाशनिः ॥२२॥
शस्त्रशास्त्रकृतश्रान्तिरश्रान्तिः शान्तिकर्मणि । जानात्यन्यकलत्रं च कूपं साजगरं यथा ॥२३॥
धर्मे परममासक्तो भवपातभयात्सदा । सत्यस्थापितसद्वाक्यो बाढं नियमितेन्द्रियः ॥२४॥
अस्य देवि गुणान् वक्तुं योऽखिलानभिवाञ्छति । तरितुं स ध्रुवं वष्टि[3] गात्रमात्रेण सागरम् ॥२५॥
यावदेषा कथा तेषां वर्तते चित्तबन्धिनी । तावन्नृपः परिप्राप्तः किञ्चिदद्भुतसङ्गतः ॥२६॥
अवतीर्य करेणोश्च योग्यं विनयमुद्वहन् । निसर्गशुद्धया दृष्टया पश्यन्नेवमभाषत ॥२७॥
अहो वज्रमयो नूनं पुरुषः [4]सविचेतनः । यतस्त्यजन्निहारण्ये त्वां न दीर्णः सहस्रधा ॥२८॥
ब्रूहि कारणमेतस्या अवस्थाया शुभाशये । विश्वस्ता भव मा भैषीर्गर्भायासं हि मा कृथाः ॥२९॥

यथार्थ बातके समझनेमें मूढ पुरुषोंने भयभीत होकर पुनः कहा कि हे देवि ! भय तथा शोक छोड़ो, धीरताका आश्रय लेओ ॥१४॥ हे सरले ! इन आभूषणोंसे हमें क्या प्रयोजन है ? ये तुम्हारे ही पास रहें। भाव योगको प्राप्त होओ अर्थात् हृदयको स्थिर करो और बताओ कि विह्वल क्यों हो ?--दुःखी क्यों हो रही हो ? ॥१५॥ जो समस्त राजधर्मसे सहित है तथा पृथिवी पर वज्रजङ्घ नामसे प्रसिद्ध है ऐसा यह श्रीमान् उत्तम पुरुष यहाँ आया है ॥१६॥ सावधान चित्तसे सहित यह वज्रजङ्घ सदा उस सम्यग्दर्शन रूपी रत्नको हृदयसे धारण करता है जो सादृश्यसे रहित है, अविनाशी है, अनाधेय है, अहार्य है, श्रेष्ठ सुखको देनेवाला है, शङ्कादि दोषोंसे रहित है, सुमेरुके समान निश्चल है और उत्कृष्ट आभूषण स्वरूप है ॥१७-१८॥ हे साध्वि ! हे प्रशंसनीये ! जिसके ऐसा सम्यग्दर्शन सुशोभित है उसके गुणोंका हमारे जैसे पुरुष कैसे वर्णन कर सकते हैं ? ॥१९॥ वह जिन शासनके रहस्यको जाननेवाला है, शरणमें आये हुए लोगोंसे स्नेह करनेवाला है, परोपकारमें तत्पर है, दयासे आर्द्रचित्त है, विद्वान् है, विशुद्ध हृदय है, निन्द्य कार्योंसे निवृत्त बुद्धि है, पिताके समान रक्षक है, प्राणिहितमें तत्पर है, दीन-हीन आदिका तथा खास कर मातृ-जातिका रक्षक है, शुद्ध कार्यको करनेवाला है, शत्रुरूपी पर्वतको नष्ट करनेके लिए महावज्र है। शस्त्र और शास्त्रका अभ्यासी है, शान्ति कार्यमें थकावटसे रहित है, परस्त्रीको अजगर सहित कूपके समान जानता है, संसार-पातके भयसे धर्ममें सदा अत्यन्त आसक्त रहता है, सत्यवादी है और अच्छी तरह इन्द्रियोंको वश करनेवाला है ॥२०-२४॥ हे देवि ! जो इसके समस्त गुणोंको कहना चाहता है वह मानो मात्र शरीरसे समुद्रको तैरना चाहता है ॥२५॥ जबतक उन सबके बीच मनको बाँधनेवाली यह कथा चलती है तबतक कुछ आश्चर्यसे युक्त राजा वज्रजङ्घ भी वहाँ आ पहुँचा ॥२६॥ हस्तिनीसे उतर कर योग्य विनय धारण करते हुए राजा वज्रजङ्घने स्वभाव शुद्ध दृष्टिसे देखकर इस प्रकार कहा कि ॥२७॥ अहो ! जान पड़ता है कि वह पुरुष वज्रमय तथा चेतनाहीन है इसलिए इस वनमें तुम्हें छोड़ता हुआ वह हजार टूक नहीं हुआ है ॥२८॥ हे शुभाशये ! अपनी इस अवस्थाका कारण कहो, निश्चिन्त होओ, डरो मत तथा गर्भको कष्ट मत पहुँचाओ ॥२९॥

---

१. भावं योगं म० । २. मानुष्या अनुपालकः म० । ३. कामयते । ४. सुविचेतनः म० ।

ततः कथंचित् कृच्छ्राद्विरताऽपि सती क्षणम् । पुना रुरोद शोकोरुचक्रपीडितमानसा ॥३०॥
मुहुस्ततोऽनुयुक्ता सा राज्ञा मधुरभाषिणा । धृत्वा मन्युं जगौ क्लिष्टहंसगद्‌गदनिःस्वना ॥३१॥
विज्ञातुं यदि ते वाञ्छा राजन् यच्छ ततो मनः । कथा मे मन्दभाग्याया इयमत्यन्तदीर्घिका ॥३२॥
सुता जनकराजस्य प्रभामण्डलसोदरा । स्नुषा दशरथस्याहं सीता पद्माभपत्निका ॥३३॥
केकयावरदानेन भरताय निजं पदम् । दत्त्वाऽनरण्यपुत्रो[1]ऽसौ तपस्विपदमाश्रयत् ॥३४॥
रामलक्ष्मणयोः सार्कं मया प्रस्थितमायतम् । जातं श्रुतं त्वया नूनं पुण्यचेष्टितसङ्गतम् ॥३५॥
हृताऽस्मि राक्षसेन्द्रेण पत्युः सुग्रीवसङ्गमे । जाते भुक्तवती वार्ता सम्प्राप्यैकादशेऽहनि ॥३६॥
आकाशगामिभिर्यानैरुत्तीर्य मकरालयम् । जित्वा दशमुखं युद्धे पत्याऽस्मि पुनराहृता ॥३७॥
राज्यपङ्कं परित्यज्य भरतो भरतोपमः । श्रामण्यं परमाश्रित्य सिद्धिं धूतरजा ययौ ॥३८॥
अपत्यशोकनिर्दग्धा प्रव्रज्यासौ च केकया । देवी कृत्वा तपः सम्यग्देवलोकमुपागता ॥३९॥
महीतले विमर्यादो जनोऽयं दुष्टमानसः । अवोचत् परिवादं मे शङ्कया परिवर्जितः ॥४०॥
रावणः परमः प्राज्ञो भूत्वाऽन्यस्त्रियमग्रहीत् । तामानीय पुना रामः सेवते धर्मशास्त्रवित् ॥४१॥
यया ह्यवस्थया राजा वर्तते दृढनिश्चयः । सैवाऽस्माकमपि [2]क्षेमा नूनं दोषो न विद्यते ॥४२॥
साऽहं गर्भान्विता जाता कृशाङ्गा वसुधातले । चिन्तयन्ती जिनेन्द्राणां करोम्यभ्यर्चनामिति ॥४३॥
ततो भर्त्ता मया सार्द्धमुद्युक्तश्चैत्यवन्दने । जिनेन्द्रातिशयस्थानेष्वत्यन्तविभवान्वितः ॥४४॥
अगदीत् प्रथमं सीते गत्वाऽष्टापदपर्वतम् । ऋषभं भुवनानन्दं प्रणंस्यावः कृतार्चनौ ॥४५॥

तदनन्तर सती सीता यद्यपि कुछ कहनेके लिए क्षण भरको दुःखसे विरत हुई थी तथापि शोकरूपी विशाल चक्रसे हृदयके अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण वह पुनः रोने लगी ॥३०॥ तत्पश्चात् मधुर भाषण करनेवाले राजाने जब बार बार पूछा तब वह जिस किसी तरह शोकको रोककर दुःखी हंसके समान गद्‌गद वाणीसे बोली ॥३१॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यदि तुम्हें जाननेकी इच्छा है तो इस ओर मन लगाओ क्योंकि मुझ अभागिनीकी यह कथा अत्यन्त लम्बी है ॥३२॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहिन, दशरथकी पुत्रवधू और रामकी पत्नी सीता हूँ ॥३३॥ राजा दशरथ, केकयाके वरदानसे भरतके लिए अपना पद देकर तपस्वीके पदको प्राप्त हो गये ॥३४॥ फलस्वरूप राम लक्ष्मणको मेरे साथ वनको जाना पड़ा सो हे पुण्यचेष्टित ! जो कुछ हुआ वह सब तुमने सुना होगा ॥३५॥ राक्षसोंके अधिपति रावणने मेरा हरण किया, स्वामी रामका सुग्रीवके साथ समागम हुआ और ग्यारहवें दिन समाचार पाकर मैंने भोजन किया ॥३६॥ आकाशगामी वाहनोंसे समुद्र तैरकर तथा युद्धमें रावणको जीतकर मेरे पति मुझे पुनः वापिस ले आये ॥३७॥ भरत चक्रवर्तीके समान भरतने राज्यरूपी पङ्कका परित्याग कर परम दिगम्बर अवस्था धारण कर ली और कर्मरूपी धूलिको उड़ाकर निर्वाणपद प्राप्त किया ॥३८॥ पुत्रके शोकसे दुखी केकया रानी दीक्षा लेकर तथा अच्छी तरह तपश्चरण कर स्वर्ग गई ॥३९॥ पृथिवीतल पर मर्यादाहीन दुष्ट हृदय मनुष्य निःशङ्क होकर मेरा अपवाद कहने लगे कि रावणने परम विद्वान् होकर परस्त्री ग्रहण की और धर्मशास्त्रके ज्ञाता राम उसे वापिस लाकर पुनः सेवन करने लगे ॥४०–४१॥ दृढ़ निश्चयको धारण करने वाला राजा जिस दशामें प्रवृत्ति करता है वही दशा हमलोगोंके लिए भी हितकारी है इसमें दोष नहीं है ॥४२॥ कृश शरीरको धारण करने वाली वह मैं जब गर्भवती हुई तब मैंने ऐसा विचार किया कि पृथिवी तल पर जितने जिनबिम्ब हैं उन सबकी मैं पूजा करूँ ॥४३॥ तदनन्तर अत्यधिक वैभवसे सहित स्वामी राम, जिनेन्द्र भगवान्‌के अतिशय स्थानोंमें जो जिनबिम्ब थे उनकी वन्दना करनेके लिए मेरे साथ उद्यत हुए ॥४४॥ उन्होंने कहा कि हे सीते ! सर्व प्रथम कैलास पर्वत पर जाकर जगत्‌को आनन्दित

१. दशरथः । २. क्षेमी म० ।

अस्यां ततो विनीतायां जन्मभूमिप्रतिष्ठिता । प्रतिमा ऋषभादीनां नमस्यावः सुसम्पदा ॥४६॥
काम्पिल्ये विमलं नन्तुं यास्यावो भावतस्ततः । धर्मं रत्नपुरे चैव धर्मसद्भावदेशिनम् ॥४७॥
श्रावस्त्यां शम्भवं शुभ्रं चम्पायां वासुपूज्यकम् । पुष्पदन्तं च काकन्द्यां कौशाम्ब्यां पद्मतेजसम् ॥४८॥
चन्द्राभं चन्द्रपुर्यां च शीतलं भद्रिकावनौ । मिथिलायां ततो मल्लिं नमस्कृत्य जिनेश्वरम् ॥ ४९॥
वाराणस्यां सुपार्श्वं च श्रेयांसं सिंहनिःस्वने । शान्तिं कुन्थुमरं चैव पुरे हास्तिनि नामनि ॥५०॥
कुशाग्रनगरे देवि सर्वज्ञं मुनिसुव्रतम् । धर्मचक्रमिदं यस्य ज्वलत्यद्यापि सूज्ज्वलम् ॥५१॥
ततोऽन्यान्यपि वैदेहि जिनातिशययोगतः । स्थानान्यतिपवित्राणि प्रथितान्यखिलेनस[1] ः ॥५२॥
त्रिदशासुरगन्धर्वैः स्तुतानि प्रणतानि च । वन्दावहे समस्तानि तत्परायणमानसौ ॥५३॥
पुष्पकाग्रं समारुह्य विलङ्घ्य गगनं द्रुतम् । मया सह जिनानर्च सुमेरुशिखरेष्वपि ॥५४॥
भद्रशालवनोद्भूतैस्तथा नन्दनसम्भवैः । पुष्पैः सौमनसीयैश्च जिनेन्द्रानर्चय प्रिये ॥५५॥
कृत्रिमाकृत्रिमान्यस्मिंश्चैत्यानभ्यर्च्य विष्टपे । प्रवन्द्य चागमिष्यावः साकेतां दयिते पुनः ॥५६॥
एकोऽपि हि नमस्कारो भावेन विहितोऽर्हतः । मोचयत्येनसो जन्तुं जन्मान्तरकृतादपि ॥५७॥
ममापि परमा कान्ते तुष्टिर्मनसि वर्तते । चैत्यालयान् महापुण्यान् पश्यामीति त्वदाशया ॥५८॥
काले पूर्णं तमश्छन्ने भूते निःकिञ्चने जने । जगत्ताराधिपेनेव येनेशेन[2] विराजितम् ॥५९॥
प्रजानां पतिरेको यो ज्येष्ठस्त्रैलोक्यवन्दितः । भव्यानां भवभीरूणां मोक्षमार्गोपदेशकः ॥६०॥

करनेवाले श्री ऋषभ जिनेन्द्रकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करेंगे ॥४५॥ फिर इस अयोध्या नगरीमें जन्मभूमिमें प्रतिष्ठित जो ऋषभ आदि तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ हैं उन्हें उत्तम वैभवके साथ नमस्कार करेंगे ॥४६॥ फिर काम्पिल्य नगरमें श्री विमलनाथको भावपूर्वक नमस्कार करनेके लिए जावेंगे और उसके बाद रत्नपुर नगरमें धर्मके सद्भावका उपदेश देनेवाले श्रीधर्मनाथको नमस्कार करनेके लिए चलेंगे ॥४७॥ श्रावस्ती नगरीमें शंभवनाथको, चम्पापुरीमें वासुपूज्यको, काकन्दीमें पुष्पदन्तको, कौशाम्बीमें पद्मप्रभको, चन्द्रपुरीमें चन्द्रप्रभको, भद्रिकावनिमें शीतलनाथको, मिथिलामें मल्लि जिनेश्वरको, वाराणसीमें सुपार्श्वको, सिंहपुरीमें श्रेयान्सको, हस्तिनापुरीमें शान्ति कुंथु और अरनाथको और हे देवि ! उसके बाद कुशाग्रनगर-राजगृहीमें उन सर्वज्ञ मुनि सुव्रतनाथकी वन्दना करनेके लिए चलेंगे जिनका कि आज भी यह अत्यन्त उज्ज्वल धर्मचक्र देदीप्यमान हो रहा है ॥४८-५१॥ तदनन्तर हे वैदेहि ! जिनेन्द्र भगवान्‌के अतिशयोंके योगसे अत्यन्त पवित्र, सर्वत्र प्रसिद्ध देव असुर और गन्धर्वोंके द्वारा स्तुत एवं प्रणत जो अन्य स्थान हैं तत्पर चित्त होकर उन सबकी वन्दना करेंगे ॥५२-५३॥ तदनन्तर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो शीघ्र ही आकाशको उल्लंघ कर मेरे साथ सुमेरुके शिखरों पर विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी पूजा करना ॥५४॥ हे प्रिये ! भद्रशाल वन, नन्दन वन और सौमनस वनमें उत्पन्न पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करना ॥५५॥ फिर हे दयिते ! इस लोकमें जो कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं उन सबकी वन्दना कर अयोध्या वापिस आवेंगे ॥५६॥ अर्हन्त भगवान्‌के लिए भाव-पूर्वक किया हुआ एक ही नमस्कार इस प्राणीको जन्मान्तरमें किये हुए पापसे छुड़ा देता है ॥५७॥ हे कान्ते ! तुम्हारी इच्छासे महापवित्र चैत्यालयोंके दर्शन कर लूँगा इस बातका मेरे मनमें भी परम संतोष है ॥५८॥ पहले जब यह काल अज्ञानान्धकारसे आच्छादित था तथा कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेसे मनुष्य एकदम अकिञ्चन हो गये थे तब जिन आदिनाथ भगवान्‌के द्वारा यह जगत् उस तरह सुशोभित हुआ था जिस तरहकी चन्द्रमासे सुशोभित होता है ॥५९॥ जो प्रजाके अद्वितीय स्वामी थे, ज्येष्ठ थे, तीन लोकके द्वारा वन्दित थे, संसारसे डरनेवाले भव्यजीवों-

---

१. "अखिलेनस" सर्वपुस्तकेष्वित्थमेव पाठोऽस्ति किन्तु तस्यार्थः स्पष्टो न भवति । २. येन सेना विराजितम् ब० ।

यस्याष्टगुणमैश्वर्यं नानातिशयशोभितम् । अजस्रपरमाश्चर्यं सुरासुरमनोहरम् ॥६१॥
जीवप्रभृतितत्त्वानि विशुद्धानि प्रदर्श्य यः । भव्यानां कृतकर्तव्यो निर्वाणं परमं गतः ॥६२॥
सर्वरत्नमयं दिव्यमालयं चक्रवर्तिना । निर्माप्य यस्य कैलासे प्रतिमा स्थापिता प्रभोः ॥६३॥
सा भास्करप्रतीकाशा पञ्चचापशतोच्छ्रिता । प्रतिमाप्रतिरूपस्य दिव्या यस्य विराजते ॥६४॥
यस्याद्यापि महापूजा गन्धर्वामरकिंनरैः ।अप्सरोनागदैत्याद्यैः क्रियते यत्नतः सदा ॥६५॥
अनन्तः परमः सिद्धः शिवः सर्वगतोऽमलः । अर्हंस्त्रैलोक्यपूजार्हः यः स्वयम्भूः स्वयंप्रभुः ॥६६॥
तं कदा नु प्रभुं गत्वा कैलासे परमाचले । ऋषभं देवमभ्यर्च्य स्तोष्यामि सहितस्त्वया ॥६७॥
प्रस्थितस्य मया साकमेवं धृत्याऽतितुङ्गया । प्राप्ता जनपरीवादवार्त्ता दावाग्निदुःसहा ॥६८॥
चिन्तितं मे ततो भर्त्रा प्रेक्षापूर्वविधायिना । लोकः स्वभाववक्रोऽयं नान्यथा याति वश्यताम् ॥६९॥
वरं प्रियजने त्यक्ते मृत्युरप्यनुसेवितः । यशसो नोपघातोऽयं कल्पान्तमवस्थितः ॥७०॥
साहं जनपरीवादाद्विदुषा तेन बिभ्यता । संत्यक्ता परमेऽरण्ये दोषेण परिवर्जिता ॥७१॥
विशुद्धकुलजातस्य क्षत्रियस्य सुचेतसः । विज्ञातसर्वशास्त्रस्य भवत्येवेदमीहितम् ॥७२॥
एवं निर्वाससम्बन्धं वृत्तान्तं स्वं निवेद्य सा । दीना रोदितुमारब्धा शोकज्वलनतापिता ॥७३॥
तामश्रुजलपूर्णास्यां क्षितिरेणुसमुच्छ्रिताम् । दृष्ट्वा कुलिशजङ्घोऽपि क्षुक्षोभोत्तमसत्त्वभृत् ॥७४॥
ततो जनकराजस्य तनयामधिगम्य ताम् । समीपीभूय राजाऽसौ समाश्वासयदादृतः ॥७५॥

के लिए मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले थे ॥६०॥ जिनका अष्ट प्रातिहार्य रूपी ऐश्वर्य नाना प्रकारके अतिशयोंसे सुशोभित था, निरन्तर परम आश्चर्यसे युक्त था और सुरासुरोंके मनको हरनेवाला था ॥६१॥ जो भव्य जीवोंके लिए जीवादि निर्दोष तत्त्वोंका स्वरूप दिखाकर अन्तमें कृतकृत्य हो निर्वाण पदको प्राप्त हुए थे ॥६२॥ चक्रवर्ती भरतने कैलास पर्वत पर सर्वरत्नमय दिव्य मन्दिर बनवा कर उन भगवान्‌की जो प्रतिमा विराजमान कराई थी वह सूर्यके समान देदीप्यमान है, पाँच सौ धनुष ऊँची है, दिव्य है, तथा आज भी उसकी महापूजा गन्धर्व, देव, किन्नर, अप्सरा, नाग तथा दैत्य आदि सदा यत्नपूर्वक करते हैं ॥६३-६५ जो ऋषभदेव भगवान् अनन्त हैं—परम पारिणामिक भावकी अपेक्षा अन्त रहित हैं, परम हैं—अनन्त चतुष्टयरूप उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, सिद्ध हैं—कृतकृत्य हैं, शिव हैं—आनन्दरूप हैं, ज्ञानकी अपेक्षा सर्वगत हैं, कर्ममलसे रहित होनेके कारण अमल हैं, प्रशस्तरूप होनेसे अर्हन्त हैं, त्रैलोक्यकी पूजाके योग्य हैं, स्वयंभू हैं और स्वयं प्रभु हैं। मैं उन भगवान् ऋषभदेवकी कैलास नामक उत्तम पर्वत पर जा कर तुम्हारे साथ कब पूजा करूँगा और कब स्तुति करूँगा ? ॥६६-६७॥ इस प्रकार निश्चय कर बहुत भारी धैर्यसे उन्होंने मेरे साथ प्रस्थान कर दिया था परन्तु बीचमें ही दावानलके समान दुःसह लोकापवादकी वार्ता आ गई ॥६८॥ तदनन्तर विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मेरे स्वामीने विचार किया कि यह स्वभावसे कुटिल लोक अन्य प्रकारसे वश नहीं हो सकते ॥६९॥ इसलिए प्रिय जनका परित्याग करने पर यदि मृत्युका भी सेवन करना पड़े तो अच्छा है परन्तु कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाला यह यशका उपघात श्रेष्ठ नहीं है ॥७०॥ इस तरह यद्यपि मैं निर्दोष हूँ तथापि लोकापवादसे डरनेवाले उन बुद्धिमान् स्वामीने मुझे इस बीहड़ वनमें छुड़वा दिया है ॥७१॥ सो जो विशुद्ध कुलमें उत्पन्न है, उत्तम हृदयका धारक है और सर्वशास्त्रोंका ज्ञाता है ऐसे क्षत्रियकी यह चेष्टा होती ही है ॥७२॥ इस तरह वह दीन सीता अपने निर्वाससे सम्बन्ध रखनेवाला अपना सब समाचार कह कर शोकाग्निसे संतप्त होती हुई पुनः रोने लगी ॥७३॥

तदनन्तर जिसका मुख आँसुओंके जलसे पूर्ण था तथा जो पृथिवीकी धूलिसे सेवित थी ऐसी उस सीताको देखकर उत्तम सत्त्वगुणका धारक राजा वज्रजङ्घ भी क्षोभको प्राप्त हो गया ॥७४॥ तत्पश्चात् उसे राजा जनककी पुत्री जान राजा वज्रजंघने पास जाकर बड़े आदरसे उसे

शोकं विरह मा रोदीर्जिनशासनभाविता । किमार्त्तं कुरुषे ध्यानं देवि दुःखस्य वर्द्धनम् ॥७६॥
किं न वैदेहि ते ज्ञाता लोकेऽत्र स्थितिरीदृशी । अनित्याशरणैकत्वान्यत्वादिपरिभाविनी ॥७७॥
मिथ्यादृष्टिवधूर्यद्वच्छोचसि मुहुर्मुहुः । श्रुतार्थैवासि साधुभ्यः सततं चारुभावने ॥७८॥
ननु जीवेन किं दुःखं न प्राप्तं मूढचेतसा । भवभ्रमणसक्तेन मोक्षमार्गमजानता ॥७९॥
संयोगा विप्रयोगाश्च भवसागरवर्त्तिना । क्लेशावर्त्तनिमग्नेन प्राप्ता जीवेन भूरिशः ॥८०॥
खजलस्थलचारेण तिर्यग्योनिषु दुःसहम् । दुःखं जीवेन सम्प्राप्तं वर्षाशीतातपादिजम् ॥८१॥
अपमानपरीवादविरहाक्रोशनादिजम् । मनुष्यत्वेऽपि किं नाम दुःखं जीवेन नार्जितम् ॥८२॥
कुत्सिताचारसम्भूतं ततोत्कृष्टर्द्धिदृष्टिजम् । च्युतिजं च महादुःखं सम्प्राप्तं त्रिदशेष्वपि ॥८३॥
नरकेषु तु यद्दुःखं तत् कथं कथ्यतां शुभे । शीतौष्ण्यक्षारशस्त्रौघव्यालान्योन्यसमुद्भवम् ॥८४॥
विप्रयोगाः समुत्कण्ठा व्याधयो दुःखमृत्यवः । शोकाश्चानन्तशः प्राप्ता भवे जीवेन मैथिलि ॥८५॥
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद्वा स्थानं तन्नास्ति विष्टपे । जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादयः ॥८६॥
स्वकर्मवायुना शश्वद् भ्राम्यता भवसागरे । मनुष्यत्वेऽपि जीवेन प्राप्ता स्त्रीतनुरीदृशी ॥८७॥
कर्मभिस्तव युक्तायाः परिशेषैः शुभाशुभैः । अभिरामो गुणैः रामः पतिर्जातः शुभोदयः ॥८८॥
पुण्योदयं समं तेन परिप्राप्य सुखोदयम् । अपुण्योदयतो दुःखं पुनः प्राप्ताऽसि दुःसहम् ॥८९॥
लङ्काद्वीपेऽसि यत् प्राप्ता पत्या विद्याभृतां हृता । [1]एकादशदिने भुक्तिं मुक्तमाल्यानुलेपना ॥९०॥

सान्त्वना दी थी ॥७५॥ साथ ही यह कहा कि हे देवि ! शोक छोड़, रो मत, तू जिन शासनकी महिमासे अवगत है । दुःखका बढ़ानेवाला जो आर्तध्यान है उसे क्यों करती है ? ॥७६॥ हे वैदेहि ! क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि संसारकी स्थिति ऐसी ही अनित्य अशरण एकत्व और अन्यत्व आदि रूप है ॥७७॥ जिससे तू मिथ्यादृष्टि स्त्रीके समान बार-बार शोक कर रही है । हे सुन्दर-भावनावाली ! तूने तो निरन्तर साधुओंसे यथार्थ बातको सुना है ॥७८॥ निश्चयसे सम्यग्दर्शनको न जान कर संसार भ्रमण करनेमें आसक्त मूढ हृदय प्राणीने क्या-क्या दुःख नहीं प्राप्त किया है ? ॥७९॥ संसार रूपी सागरमें वर्तमान तथा क्लेश रूप भँवरमें निमग्न हुए इस जीवने अनेकों बार संयोग और वियोग प्राप्त किये हैं ॥८०॥ तिर्यञ्च योनियोंमें इस जीवने खेचर जलचर और स्थलचर होकर वर्षा शीत और आतप आदिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख सहा है ॥८१॥ मनुष्य पर्यायमें भी अपमान निन्दा विरह और गाली आदिसे उत्पन्न होनेवाला कौन-सा महादुःख इस जीवने नहीं प्राप्त किया है ? ॥८२॥ देवोंमें भी हीन आचारसे उत्पन्न, बढ़ी-चढ़ी उत्कृष्ट ऋद्धिके देखनेसे उत्पन्न एवं वहाँसे च्युत होनेके कारण उत्पन्न महादुःख प्राप्त हुआ है ॥८३॥ और हे शुभे ! नरकोंमें शीत, उष्ण, क्षार जल, शस्त्र समूह, दुष्ट जन्तु तथा परस्परके मारण ताडन आदिसे उत्पन्न जो दुःख इस जीवने प्राप्त किया है वह कैसे कहा जा सकता है ? ॥८४॥ हे मैथिलि ! इस जीवने संसारमें अनेकों बार वियोग, उत्कण्ठा, व्याधियाँ, दुःख पूर्ण मरण और शोक प्राप्त किये हैं ॥८५॥ इस संसारमें ऊर्ध्व मध्यम अथवा अधोभागमें वह स्थान नहीं है जहाँ इस जीवने जन्म मृत्यु तथा जरा आदिके दुःख प्राप्त नहीं किये हों ॥८६॥ अपने कर्मरूपी वायुके द्वारा संसार-सागरमें निरन्तर भ्रमण करनेवाले इस जीवने मनुष्य पर्यायमें भी स्त्रीका ऐसा शरीर प्राप्त किया है ॥८७॥ शेष बचे हुए शुभाशुभ कर्मोंसे युक्त जो तू है सो तेरा गुणोंसे सुन्दर तथा शुभ अभ्युदयसे युक्त राम पति हुआ है ॥८८॥ पुण्योदयके अनुसार उसके साथ सुखका अभ्युदय प्राप्त कर अब पापके उदयसे तू दुःसह दुःखको प्राप्त हुई है ॥८९॥ देख, रावणके द्वारा हरी जा कर तू लङ्का पहुँची, वहाँ तूने माला तथा लेप आदि लगाना छोड़ दिया तथा ग्यारहवें दिन

---

१. एकादशे दिवे भुक्तिं मुक्तिमाल्यानुलेपना म० ।

प्रतिपक्षे हते तस्मिन् प्रत्यानीता ततः सती । सम्प्राप्ताऽसि पुनः सौख्यं बलदेवप्रसादतः ॥९१॥
अशुभोदयतो भूयो गर्भाधानसमन्विता । विना दोषेण मुक्तासि परिवादोरगक्षता ॥९२॥
यः साधुकुसुमागारं प्रदीपयति दुर्गिरा । अत्यन्तदारुणः पापो वह्निना दह्यतामसौ ॥९३॥
परमा देवि धन्या त्वमहो सुश्लाघ्यचेष्टिता । चैत्यालयनमस्कारदोहदं यदसि श्रिता ॥९४॥
अद्यापि पुण्यमस्त्येव तव सच्छीलशालिनि । दृष्टासि यन्मयाऽरण्ये प्राप्तेन द्विपकारणम् ॥९५॥
इन्द्रवंशप्रसूतस्य शुभैकचरितात्मनः । राज्ञो द्विरदवाहस्य सुबन्धुमहिषीभवः ॥९६॥
सुतोऽहं वज्रजङ्घाख्यः पुण्डरीकपुराधिपः । त्वं मे धर्मविधानेन ज्यायसी गुणिनि स्वसा ॥९७॥
एह्युत्तिष्ठोत्तमे यावः पुरं तामसमुत्सृज । राजपुत्रि कृतेऽप्यस्मिन् कार्यं किञ्चिन्न सिद्ध्यति ॥९८॥
स्थितायास्तत्र ते पद्मः पश्चात्तापसमाकुलः । पुनरन्वेषणं साध्वि करिष्यति न संशयः ॥९९॥
परिभ्रष्टं प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम् । रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादरः ॥१००॥
सान्त्व्यमाना ततस्तेन धर्मसारकृतात्मना । धृतिं जगाम वैदेही परं प्राप्येव बान्धवम् ॥१०१॥
प्रशशंस च तं स त्वं भ्राता मे परमः शुभः । यशस्वी सुमतिः सत्त्वी शूरः सज्जनवत्सलः ॥१०२॥

आर्या

अधिगतसम्यग्दृष्टिर्गृहीतपरमार्थबोधिपूतात्मा ।
साधुरिव भावितात्मा व्रतगुणशीलार्थमुद्युक्तः ॥१०३॥

चरितं सत्पुरुषस्य व्यपगतदोषं परोपकारनियुक्तम् ।
क्षपयति कस्य न शोकं जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्कस्य ॥१०४॥

श्रीरामके प्रसादसे पुनः सुखको प्राप्त हुई अब फिर गर्भवती हो पापोदयसे निन्दारूपी साँपके द्वारा डँसी गई है और बिना दोषके ही यहाँ छोड़ी गई है ॥९०-९२॥ जो साधुरूपी फूलोंके महलको दुर्वचनके द्वारा जला देता है वह अत्यन्त कठिन पाप अग्निके द्वारा भस्मीभूत हो अर्थात् तेरा पापकर्म शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो ॥९३॥ अहो देवि ! तू परम धन्य है, और अत्यन्त प्रशंसनीय चेष्टाकी धारक है जो तू चैत्यालयोंकी वन्दनाके दोहलाको प्राप्त हुई है ॥९४॥ हे उत्तम-शीलशोभिते ! आज भी तेरा पुण्य है ही जो हाथीके निमित्त वनमें आये हुए मैंने तुझे देख लिया ॥९५॥ मैं इन्द्रवंशमें उत्पन्न, एक शुभ आचारका ही पालन करनेवाले राजा द्विरदवाहकी सुबन्धु नामक रानीसे उत्पन्न हुआ वज्रजंघ नामका पुत्र हूँ, मैं पुण्डरीकनगरका स्वामी हूँ । हे गुणवति ! तू धर्म विधिसे मेरी बड़ी बहिन है ॥९६-९७॥ हे उत्तमे, चलो उठो नगर चलें, शोक छोड़ो क्योंकि हे राजपुत्रि ! इस शोकके करनेपर भी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥९८॥ हे पतिव्रते ! तुम वहाँ रहोगी तो पश्चात्तापसे आकुल होते हुए राम फिरसे तुम्हारी खोज करेंगे इसमें संशय नहीं है ॥९९॥ प्रमादसे गिरे, महामूल्य गुणोंके धारक उज्ज्वल रत्नको कौन विद्वान् बड़े आदरसे फिर नहीं चाहता है ? अर्थात् सभी चाहते हैं ॥१००॥

तदनन्तर धर्मके रहस्यसे कुशल अर्थात् धर्मके मर्मको जाननेवाले उस वज्रजंघके द्वारा समझाई गई सीता इस प्रकार धैर्यको प्राप्त हुई मानो उसे भाई ही मिल गया हो ॥१०१॥ उसने वज्रजंघकी इस तरह प्रशंसा की कि हाँ तू मेरा वही भाई है, तू अत्यन्त शुभ है, यशस्वी है, बुद्धिमान् है, धैर्यशाली है, शूरवीर है, साधु-वत्सल है, सम्यग्दृष्टि है, परमार्थको समझनेवाला है, रत्नत्रयसे पवित्रात्मा है, साधुकी भाँति आत्मचिन्तन करनेवाला है तथा व्रत गुण और शीलकी प्राप्तिके लिए निरन्तर तत्पर रहता है ॥१०२-१०३॥ निर्दोष एवं परोपकारमें तत्पर सत्पुरुषका चरित, किस जिनमतके प्रगाढ़ श्रद्धानीका शोक नहीं नष्ट करता ? अर्थात् सभीका
भोजन प्राप्त किया । फिर शत्रु रावणके मारे जाने पर वहाँसे पुनः वापिस लाई गई और बलदेव

नूनं पूर्वत्र भवे सहोदरस्त्वं च बभूवावितथप्रीतः ।
हरसि तमो मे येन स्फीतं रविवद्विशुद्धात्मा ॥१०५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतासमाश्वासनं नामाष्टनवतितमं पर्व ॥९८॥

करता है ॥१०४॥ निश्चित ही तू पूर्वभवमें मेरा यथार्थ प्रेम करनेवाला भाई रहा होगा इसीलिए तो तू सूर्यके समान निर्मल आत्माका धारक होता हुआ मेरे विस्तृत शोक रूपी अन्धकारको हरण कर रहा है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्यद्वारा विरचित पद्मपुराणमें सीताको सान्त्वना देनेका वर्णन करनेवाला अठानबेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९८॥

नवनवतितमं पर्व

अथ क्षणादुपानीतां सुस्तम्भां भक्तिभासुराम् । विमानसदृशीं रम्यां सत्प्रमाणप्रतिष्ठिताम् ॥१॥
वरदर्पणलम्बूषचन्द्रचामरहारिणीम् । हारबुद्बुदसंयुक्तां विचित्रांशुकशालिनीम् ॥२॥
प्रसारितमहामाल्यां चित्रकर्मविराजिताम् । सुगवाक्षां समारूढा शिबिकां जनकात्मजा ॥३॥
ऋद्ध्या परमया युक्ता महासैनिकमध्यगा । प्रतस्थे कर्मवैचित्र्यं चिन्तयन्ती सविस्मया ॥४॥
दिनैस्त्रिभिरतिक्रम्य तदरण्यं सुभीषणम् । पुण्डरीकसुराष्ट्रं सा प्रविष्टा साधुचेष्टिता ॥५॥
समस्तसस्यसम्पद्भिस्तिरोहितमहीतलम् । ग्रामैः कुक्कुटसम्पात्यैः पुराकारैर्विराजितम्[1] ॥६॥
पुरैर्नाकपुरच्छायैरासेचनकदर्शनम् । पश्यन्ती विषयं श्रीमदुद्यानादिविभूषितम् ॥७॥
मान्ये भगवति श्लाघ्ये दर्शनेन वयं तव । विधूतकिल्बिषा जाता कृतार्था भवसङ्गिनः ॥८॥
एवं महत्तरप्रष्ठैः स्तूयमाना कुटुम्बिभिः । सोपायनैर्नृपच्छायैर्वन्द्यमाना च भूरिशः ॥९॥
रचितार्घादिसन्मानैः पार्थिवैश्च सुरोत्तमैः । कृतप्रणाममत्युच्चं शस्यमाना पदे पदे ॥१०॥
अनुक्रमेण सम्प्राप पौण्डरीकपुरान्तिकम् । मनोभिराममत्यन्तं पौरलोकनिषेवितम् ॥११॥
वैदेह्यागमनं श्रुत्वा स्वाम्यादेशेन सत्वरम् । उपशोभा पुरे चक्रे परमाधिकृतैर्जनैः ॥१२॥
[2]परितो हितसंस्काराः रथ्याः सत्रिकचत्वराः । सुगन्धिभिर्जलैः सिक्ताः कृताः पुष्पतिरोहिताः ॥१३॥
इन्द्रचापसमानानि तोरणान्युच्छ्रितानि च । कलशाः स्थापिता द्वारे सम्पूर्णाः पल्लवाननाः[3] ॥१४॥

अथानन्तर राजा वज्रजंघने क्षण भरमें एक ऐसी पालकी बुलाई जिसमें उत्तम खम्भे लगे हुए थे, जो नाना प्रकारके बेल-बूटोंसे सुशोभित थी, विमानके समान थी, रमणीय थी, योग्य प्रमाणसे बनाई गई थी, उत्तम दर्पण, फन्नूस, तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल चमरोंसे मनोहर थी, हारके बुद्बुदोंसे सहित थी, रङ्ग-विरङ्गे वस्त्रोंसे सुशोभित थी, जिस पर बड़ी-बड़ी मालाएँ फैलाकर लगाई गई थीं, जो चित्र रचनासे सुन्दर थी, और उत्तमोत्तम झरोखोंसे युक्त थी। ऐसी पालकी पर सवार हो सीताने प्रस्थान किया। उस समय सीता उत्कृष्ट सम्पदासे सहित थी, महा सैनिकोंके मध्य चल रही थी, कर्मोंकी विचित्रताका चिन्तन कर रही थी तथा आश्चर्यसे चकित थी ॥१-४॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली सीता, तीन दिनमें उस भयंकर अटवीको पारकर पुण्डरीक देशमें प्रविष्ट हुई ॥५॥ समस्त प्रकारकी धान्य सम्पदाओंसे जिसकी भूमि आच्छादित थी, तथा कुक्कुटसंपात्य अर्थात् निकट-निकट बसे हुए पुर और नगरोंसे जो सुशोभित था ॥६॥ स्वर्गपुरके समान कान्तिवाले नगरोंसे जो इतना अधिक सुन्दर था कि देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी, तथा जो बाग-बगीचे आदिसे विभूषित था ऐसे पुण्डरीक देशको देखती हुई वह आगे जा रही थी ॥७॥ हे मान्ये! हे भगवति! हे श्लाघ्ये! तुम्हारे दर्शनसे हम संसारके प्राणी निष्पाप एवं कृतकृत्य हो गये ॥८॥ इस प्रकार राजाकी कान्तिको धारण करनेवाले गाँवके बड़े-बूढ़े लोग भेंट ले लेकर उसकी बार-बार वन्दना करते थे ॥९॥ अर्घ आदिके द्वारा सन्मान करने-वाले देव तुल्य राजा उसे प्रणामकर पद-पद पर उसकी अत्यधिक प्रशंसा करते जाते थे ॥१०॥ अनुक्रमसे वह अत्यन्त मनोहर तथा पुरवासी लोगोंसे सेवित पुण्डरीकपुरके समीप पहुँची ॥११॥ सीताका आगमन सुन स्वामीके आदेशसे अधिकारी लोगोंने शीघ्र ही नगरमें बहुत भारी सजावट की ॥१२॥ तिराहों और चौराहोंसे सहित बड़े-बड़े मार्ग सब ओरसे सजाये गये, सुगन्धित जलसे सींचे गये तथा फूलोंसे आच्छादित किये गये ॥१३॥ इन्द्रधनुषके समान रङ्ग-विरङ्गे

१. पुराकरैर्विराजितं म० । २. परितो धूत-ख० । परितः कृतसत्काराः म० । ३. पल्लवानने म० ।

विलसद्ध्वजमालाढ्यं समुद्गतशुभस्वनम् । कर्त्तुं नृत्तमिवाऽऽसक्तं नगरं तत्प्रमोदवत् ॥१५॥
गोपुरेण समं शालः समारूढमहाजनः । हर्षादिव परां वृद्धिं प्राप कोलाहलान्वितः ॥१६॥
अन्तर्बहिश्च तत्स्थानं सीतादर्शनकाङ्क्षिभिः । जङ्गमत्वमिव प्राप्तं जनौघैः प्रचलात्मकैः ॥१७॥
ततो विविधवादित्रनादेनाऽऽशाभिपूरिणा । शङ्खस्वनविमिश्रेण बन्दिनिःस्वानयोगिना ॥१८॥
विस्मयव्याप्तचित्तेन पौरेण कृतवीक्षणा । विवेश नगरं सीता लक्ष्मीरिव सुरालयम् ॥१९॥
उद्यानेन परिक्षिप्तं दीर्घिकाकृतमण्डनम् । मेरुकूटसमाकारं बलदेवसमच्छविम् ॥२०॥
वज्रजङ्घगृहान्तस्थं प्रासादमतिसुन्दरम् । पूज्यमाना नृपस्त्रीभिः प्रविष्टा जनकात्मजा ॥२१॥
बिभ्रता परमं तोषं वज्रजङ्घेन सूरिणा । भ्रात्रा भामण्डलेनेव पूज्यमाना सुचेतसा ॥२२॥
जय जीवाभिनन्देति वर्द्धस्वाऽऽज्ञापयेति च । ईशाने देवते पूज्ये स्वामिनीति च शब्दिता ॥२३॥
आज्ञां प्रतीच्छता मूर्ध्ना सम्भ्रमं दधता परम् । प्रबद्धाञ्जलिना सार्द्धं परिवर्गेण चारुणा ॥२४॥
अवसत्तत्र वैदेही समुद्भूतमनीषिता । कथाभिर्धर्मसक्ताभिः पद्मभूभिश्च सन्ततम् ॥२५॥
प्राभृतं यावदायाति सामन्तेभ्यो महीपतेः । दत्तेन तेन वैदेही धर्मकार्यमसेवत ॥२६॥
असावपि कृतान्तास्यस्तप्यमानमना भृशम् । स्थूरीपृष्ठान् परिश्रान्तान् खेदवाननुपालयन् ॥२७॥

तोरण खड़े किये गये, द्वारों पर जलसे भरे तथा मुखों पर पल्लवोंसे सुशोभित कलश रखे गये ॥१४॥ जो फहराती हुई ध्वजाओं और मालाओंसे सहित था, तथा जहाँ शुभ शब्द हो रहा था ऐसा वह नगर आनन्द-विभोर हो मानो नृत्य करनेके लिए ही तत्पर था ॥१५॥ गोपुरके साथ-साथ जिसपर बहुत भारी लोग चढ़कर बैठे हुए थे ऐसा नगरका कोट इस प्रकार जान पड़ता था मानो हर्षके कारण कोलाहल करता हुआ परम वृद्धिको ही प्राप्त हो गया हो ॥१६॥ भीतर-बाहर सब जगह सीताके दर्शनकी इच्छा करनेवाले चलते-फिरते जन-समूहसे उस नगरका प्रत्येक स्थान ऐसा जान पड़ता था मानो जंगमपनाको हो प्राप्त हो गया हो अर्थात् चलने-फिरने लगा हो ॥१७॥

तदनन्तर शङ्खोंके शब्दसे मिश्रित, एवं वन्दीजनोंके विरद गानसे युक्त नाना प्रकारके वादित्रों का शब्द जब दिग्दिगन्तको व्याप्त कर रहा था तब सीताने नगरमें उस तरह प्रवेश किया जिस तरह कि लक्ष्मी स्वर्गमें प्रवेश करती है। उस समय आश्चर्यसे जिनका चित्त व्याप्त हो रहा था ऐसे नगरवासी लोग सीताका बार-बार दर्शन कर रहे थे ॥१८-१९॥ तत्पश्चात् जो उद्यानसे घिरा हुआ था, वापिकाओंसे अलंकृत था, मेरुके शिखरके समान ऊँचा था और बलदेवकी कान्तिके समान सफेद था ऐसे वज्रजङ्घके घरके समीप स्थित अत्यन्त सुन्दर महलमें राजाकी स्त्रियोंसे पूजित होती हुई सीताने प्रवेश किया ॥२०-२१॥ वहाँ परम सन्तोषको धारण करनेवाला, बुद्धिमान एवं उत्तम हृदयका धारक राजा वज्रजङ्घ, भाई भामण्डलके समान जिसकी पूजा करता था ॥२२॥ 'हे ईशाने ! हे देवते ! हे पूज्ये ! हे स्वामिनि ! तुम्हारी जय हो, जीवित रहो, आनन्दित होओ, बढ़ती रहो और आज्ञा देओ, इस प्रकार जिसका निरन्तर विरदगान होता रहता था॥२३॥परम संभ्रमके धारक, हाथ जोड़, मस्तक झुका आज्ञा प्राप्त करनेके इच्छुक सुन्दर परिजन सदा जिसके साथ रहते थे, तथा इच्छा करते ही जिसके मनोरथ पूर्ण होते थे ऐसी सीता वहाँ निरन्तर धर्म सम्बन्धी तथा राम सम्बन्धी कथाएँ करती हुई निवास करती थी॥२४-२५॥ राजा वज्रजङ्घके पास सामन्तों की ओरसे जितनी भेंट आती थी वह सब सीताके लिए दे देता था और उसीसे वह धर्मकार्यका सेवन करती थी ॥२६॥

अथानन्तर जिसका मन अत्यन्त सन्तप्त हो रहा था, जो अत्यधिक खेदसे युक्त था, जो

१. कृतान्तवक्त्रसेनापतिः ।

समन्तान्नृपलोकेन पूर्यमाणस्त्वरावता । जगाम रामदेवस्य समीपं विनताननः ॥२८॥
अब्रवीच्च प्रभो ! सीता [1]गर्भमात्रसहायिका । मया त्वद्वचनाद्भीमे कान्तारे स्थापिता नृप ॥२९॥
नानातिघोरनिःस्वानश्वापदौघनिषेविते । वेतालाकारदुःप्रेक्ष्यद्रुमजालान्धकारिते ॥३०॥
निसर्गद्वेषसंसक्तयुद्धव्याघ्रमहिषाधिके । निबद्धदुन्दुभिध्वाने मरुता कोटरश्रिता ॥३१॥
कन्दरोदरसम्मूर्च्छासिंहनादप्रतिध्वनौ । दारु[2]क्रकचजस्वानभीमसुप्त[3]शयुस्वने ॥३२॥
[4]तृष्यत्तरिक्षुविध्वस्तसारङ्गास्रस्तपुस्तिके[5] । धातकीस्तवकालेहिशोणिताशङ्किसिंहके ॥३३॥
कृतान्तस्यापि भीभारसमुत्पादनपण्डिते । अरण्ये देव त्वद्वाक्याद्वैदेही रहिता मया ॥३४॥
अश्रुदुर्दिनवक्त्राया दीपिताया महाशुचा । सन्देशं देव सीताया निबोध कथयाम्यहम् ॥३५॥
त्वामाह मैथिली देवी यदीच्छस्यात्मने हितम् । जिनेन्द्रे मा मुचो भक्तिं यथा त्यक्ताऽहमीदृशी ॥३६॥
स्नेहानुरागसंसक्तो मानी यो मां विमुञ्चति । नूनं जिनेऽप्यसौ भक्तिं परित्यजति पार्थिवः ॥३७॥
वाग्बली यस्य यत् किञ्चित् परिवादं जनः खलः । अविचार्य वदत्येव तद्विचार्यं मनीषिणा ॥३८॥
निर्दोषाया जनो दोषं न तथा मम भाषते । यथा सद्धर्मरत्नस्य सम्यग्बोधबहिःकृतः ॥३९॥
को दोषो यदहं त्यक्ता भीषणे विजने वने । सम्यग्दर्शनसंशुद्धिं राम न त्यक्तुमर्हसि ॥४०॥

थके हुए घोड़ोंको विश्राम देनेवाला था और जिसे शीघ्रता करनेवाले राजाओंने सब ओरसे घेर लिया था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति, मुखको नीचा किये हुए श्रीरामदेवके समीप गया ॥२७–२८॥ और बोला कि हे प्रभो ! हे राजन् ! आपके कहनेसे मैं एक गर्भ ही जिसका सहायक था ऐसी सीताको भयंकर वनमें ठहरा आया हूँ ॥२९॥ हे देव ! आपके कहनेसे मैं सीताको उस वनमें छोड़ आया हूँ जो नाना प्रकारके अत्यन्त भयंकर शब्द करनेवाले वन्य पशुओंके समूहसे सेवित है, वेतालोंका आकार धारण करनेवाले दुर्दृश्य वृक्षोंके समूहसे जहाँ घोर अन्धकार व्याप्त है, जहाँ स्वाभाविक द्वेषसे निरन्तर युद्ध करनेवाले व्याघ्र और जंगली भैंसा अधिक हैं, जहाँ कोटरमें टकरानेवाली वायुसे निरन्तर दुन्दुभिका शब्द होता रहता है, जहाँ गुफाओंके भीतर सिंहोंके शब्दकी प्रतिध्वनि बढ़ती रहती है, जहाँ सोये हुए अजगरोंका शब्द लकड़ीपर चलनेवाली करोंतसे उत्पन्न शब्दके समान भयंकर है, जहाँ प्यासे भेड़ियोंके द्वारा हरिणोंके लटकते हुए पोते नष्ट कर डाले गये हैं । जहाँ रुधिरकी आशंका करनेवाले सिंह धातकी वृक्षके गुच्छोंको चाटते रहते हैं और जो यमराजके लिए भी भयका समूह उत्पन्न करनेमें निपुण है ॥३०–३४॥ हे देव ! जिसका मुख अश्रुओंकी वर्षासे दुर्दिनके समान हो रहा था तथा जो महाशोकसे अत्यन्त प्रज्वलित थी ऐसा सीताका संदेश मैं कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ सीता देवीने आपसे कहा है कि यदि अपना हित चाहते हो तो जिस प्रकार मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार जिनेन्द्रदेवमें भक्तिको नहीं छोड़ना ॥३६॥ स्नेह तथा अनुरागसे युक्त जो मानी राजा मुझे छोड़ सकता है निश्चय ही वह जिनेन्द्रदेवमें भक्ति भी छोड़ सकता है ॥३७॥ वचन बलको धारण करनेवाला दुष्ट मनुष्य विना विचारे चाहे जिसके विषयमें चाहे जो निन्दाकी बात कह देता है परन्तु बुद्धिमान् मनुष्यको उसका विचार करना चाहिए ॥३८॥ साधारण मनुष्य मुझ निर्दोषके दोष उस प्रकार नहीं कहते जिस प्रकार कि सम्यग्ज्ञानसे रहित मनुष्य सद्धर्म रूपी रत्नके दोष कहते फिरते हैं । भावार्थ—दूसरेके कहनेसे जिस प्रकार आपने मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार सद्धर्म रूपी रत्नको नहीं छोड़ देना क्योंकि मेरी अपेक्षा सद्धर्म रूपी रत्नकी निन्दा करनेवाले अधिक हैं ॥३९॥ हे राम ! आपने मुझे भयंकर निर्जन वनमें छोड़ दिया है सो इसमें क्या दोष है ? परन्तु इस तरह

---

१. गर्भमात्रं सहायो यस्या सा । २. दारुकीचकनिःस्वान ब० । ३. शयुरजगरः । ४. नृत्यत्तरिक्षु म० । ५. पुत्रिके म०, ख० ।

एतदेकभवे दुःखं वियुक्तस्य मया सह । सम्यग्दर्शनहानौ तु दुःखं जन्मनि जन्मनि ॥४१॥
नरस्य सुलभं लोके निधिस्त्रीवाहनादिकम् । सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यादपि दुर्लभम् ॥४२॥
राज्ये विधाय पापानि पतनं नरके ध्रुवम् । ऊर्ध्वं गमनमेकेन सम्यग्दर्शनतेजसा ॥४३॥
सम्यग्दर्शनरत्नेन यस्यात्मा कृतभूषणः । लोकद्वितयमप्यस्य कृतार्थत्वमुपाश्नुते ॥४४॥
सन्दिष्टमिति जानक्या स्नेहनिर्भरचित्तया । श्रुत्वा कस्य न वीरस्य जायते मतिरुत्तमा ॥४५॥
स्वभावाद्भीरुका भीरुर्भीष्यमाणा सुभीरुभिः । विभीषिकाभिरुग्राभिर्भीमाभिः पौंस्निनोऽप्यलम् ॥४६॥
भासुरोग्रमहाव्यालजालकालभयङ्करे । सामिशुष्कसरोमज्जच्छूत्कुर्वन्मत्तवारणे ॥४७॥
कर्कन्धुकण्टकाश्लिष्टपुच्छार्तचमरावले । अलीकसलिलश्रद्धाढौकमानाकुलैणके ॥४८॥
कपिकच्छूरजःसङ्गनितान्तचलमर्कटे । प्रलम्बकेसरच्छन्नवक्त्रविक्रन्ददृक्षके[1] ॥४९॥
तृष्णातुरवृकग्रामलसद्रसनपल्लवे । गुञ्जाकोशीस्फुटाच्छोटताडनक्रुद्धभोगिनि ॥५०॥
परुषानिलसञ्चारक्रूरक्रन्दश्रिताङ्घ्रिपे । क्षणसम्भूतवातूलसमुद्धूतरजोदले ॥५१॥
महाजगरसञ्चारचूर्णितानेकपादपे । उद्वृत्तमत्तनागेन्द्रध्वस्तैर्भीमासुधारिणि[2] ॥५२॥
वराहवाहिनीखाततसरःक्रोडसुकर्कशे । कण्टकावटवल्मीककूटसङ्कटभूतले ॥५३॥
शुष्कपुष्पद्रवोत्ताम्यद्भ्राम्यद्भ्रमीसंगर्मुति[3] । [4]कुप्यच्छलिलनिर्मुक्तसूर्यांशतकरालिते ॥५४॥

आप सम्यग्दर्शनकी शुद्धताको छोड़नेके योग्य नहीं हैं ॥४०॥ क्योंकि मेरे साथ वियोगको प्राप्त हुए आपको इसी एक भवमें दुःख होगा परन्तु सम्यग्दर्शनके छूट जाने पर तो भव-भवमें दुःख होगा ॥४१॥ संसारमें मनुष्यको खजाना स्त्री तथा वाहन आदिका मिलना सुलभ है परन्तु सम्यग्दर्शन रूपी रत्न साम्राज्यसे भी कहीं अधिक दुर्लभ है ॥४२॥ राज्यमें पाप करनेसे मनुष्यका नियमसे नरकमें पतन होता है परन्तु उसी राज्यमें यदि सम्यग्दर्शन साथ रहता है तो एक उसीके तेजसे ऊर्ध्वगमन होता है—स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥४३॥ जिसकी आत्मा सम्यग्दर्शन रूपी रत्नसे अलंकृत है। उसके दोनों लोक कृतकृत्यताको प्राप्त होते हैं ॥४४॥ इस प्रकार स्नेह पूर्ण चित्तको धारण करनेवाली सीताने जो संदेश दिया है उसे सुनकर किस वीरके उत्तम बुद्धि उत्पन्न नहीं होती? ॥४५॥ जो स्वभावसे ही भीरु है यदि उसे दूसरे भय उत्पन्न कराते हैं तो उसके भीरु होनेमें क्या आश्चर्य? परन्तु उग्र एवं भयंकर विभीषिकाओंसे तो पुरुष भी भयभीत हो जाते हैं। भावार्थ—जो भयंकर विभीषिकाएँ स्वभाव-भीरु सीताको प्राप्त हैं वे पुरुषको भी प्राप्त न हों ॥४६॥

हे देव! जो अत्यन्त देदीप्यमान—दुष्ट हिंसक जन्तुओंके समूहसे यमराजको भी भय उत्पन्न करनेवाला है, जहाँ अर्ध शुष्क तालाबकी दल-दलमें फँसे हाथी शूत्कार कर रहे हैं, जहाँ बेरीके काँटोंमें पूँछके उलझ जानेसे सुरा गायोंका समूह दुःखी हो रहा है, जहाँ मृगमरीचिमें जलकी श्रद्धासे दौड़नेवाले हरिणोंके समूह व्याकुल हो रहे हैं, जहाँ करेंचकी रजके संगसे वानर अत्यन्त चञ्चल हो उठे हैं, जहाँ लम्बी-लम्बी जटाओंसे मुख ढँक जानेके कारण रीछ चिल्ला रहे हैं, जहाँ प्याससे पीड़ित भेड़ियोंके समूह अपनी जिह्वा रूपी पल्लवोंको बाहर निकाल रहे हैं, जहाँ गुमची-की फलियोंके चटकने तथा उनके दाने ऊपर पड़नेसे साँप कुपित हो रहे हैं, जहाँ वृक्षोंका आश्रय लेनेवाले जन्तु, तीव्र वायुके संचारसे 'कहीं वृक्ष टूट कर ऊपर न गिर पड़े, इस भयसे क्रूर क्रन्दन कर रहे हैं, जहाँ क्षण एकमें उत्पन्न वघरूलेमें धूलि और पत्तोंके समूह एकदम उड़ने लगते हैं, जहाँ बड़े-बड़े अजगरोंके संचारसे अनेक वृक्ष चूर चूर हो गये हैं, जहाँ उद्दण्ड मदोन्मत्त हाथियों के द्वारा भयंकर प्राणी नष्ट कर दिये गये हैं, जो सूकरोंके समूहसे खोदे गये तालाबोंके मध्य भाग से कठोर है, जहाँका भूतल काँटे, गड्ढे, वयाठे और मिट्टीके टीलोंसे व्याप्त है, जहाँ फूलोंका रस

१. क्रन्दद्दृक्षके म० । २. ध्वनि -म० । ३. गर्मुत् भ्रमरः श्री० टि० । ४. कुप्या सलिल -म० ।

एवंविधे महारण्ये रहिता देव जानकी । मन्ये न क्षणमप्येकं प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥५५॥
ततः सेनापतेर्वाक्यं श्रुत्वा रौद्रमरेरपि । विषादमगमद्रामस्तेनैव विदितात्मकम् ॥५६॥
अचिन्तयच्च किं न्वेतत्खलवाक्यवशात्मना । मयका मूढचित्तेन कृतमत्यन्तनिन्दितम् ॥५७॥
तादृशी राजपुत्री क्व क्व चेदं दुःखमीदृशम् । इति सञ्चिन्त्य यातोऽसौ मूर्च्छां मुकुलितेक्षणः ॥५८॥
चिराच्च प्रतिकारेण प्राप्य संज्ञां सुदुःखितः । विप्रलापं परं चक्रे दयितागतमानसः ॥५९॥
हा त्रिवर्णसरोजाक्षि हा विशुद्धगुणाम्बुधे[1] । हा वक्त्रजिततारेशे हा पद्मान्तरकोमले ॥६०॥
अयि वैदेहि वैदेहि देहि देहि वचो द्रुतम् । जानास्येव हि मे चित्तं त्वदृतेऽत्यन्तकातरम् ॥६१॥
उपमानविनिर्मुक्तशीलधारिणि हारिणि । हितप्रियसमालापे पापवर्जितमानसे ॥६२॥
अपराधविनिर्मुक्ता निर्घृणेन मयोज्झिता । प्रतिपन्नाऽसि कामाशां मम मानसवासिनि ॥६३॥
महाप्रतिभयेऽरण्ये क्रूरश्वापदसङ्कटे । कथं तिष्ठसि सन्त्यक्ता देवि भोगविवर्जिता ॥६४॥
मदासक्तचकोराक्षि लावण्यजलदीर्घिके । त्रपाविनयसम्पन्ने हा देवि क्व गतासि मे ॥६५॥
निःश्वासाऽऽमोदजालेन बद्धान् झङ्कारसङ्गतान् । [2]वारयन्ती कराब्जेन भ्रमरान् खेदमाप्स्यति ॥६६॥
क्व यास्यसि विचेतस्का यूथभ्रष्टा मृगी यथा । एकाकिनी वने भीमे चिन्तितेऽपि सुदुःसहे ॥६७॥
अब्जगर्भमृदू कान्तौ [3]पादुकौ चारुलक्षणौ । कथं तव सहिष्येते सङ्गं कर्कशया भुवा ॥६८॥

सूख जानेसे घामसे पीड़ित भौंरे छटपटाते हुए इधर-उधर उड़ रहे हैं और जो कुपित सेहियोंके द्वारा छोड़े हुए काँटोंसे भयंकर है ऐसे महावनमें छोड़ी हुई सीता क्षणभर भी प्राण धारण करनेके लिए समर्थ नहीं है ऐसा मैं समझता हूँ ॥४७–५५॥

तदनन्तर जो शत्रुसे भी अधिक कठोर थे ऐसे सेनापतिके वचन सुनकर राम विषादको प्राप्त हुए और उतनेसे ही उन्हें अपने आपका बोध हो गया—अपनी त्रुटि अनुभवमें आ गई॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मुझ मूर्ख हृदयने दुर्जनोंके वचनोंके वशीभूत हो यह अत्यन्त निन्दित कार्य क्यों कर डाला ? ॥५७॥ कहाँ वह वैसी राजपुत्री ? और कहाँ यह ऐसा दुःख ? इस प्रकार विचार कर राम नेत्र बन्द कर मूर्छित हो गये ॥५८॥ तदनन्तर जिनका हृदय स्त्रीमें लग रहा था ऐसे राम उपाय करनेसे चिरकाल बाद सचेत हो अत्यन्त दुखी होते हुए परम विलाप करने लगे ॥५९॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरे नेत्र तीन रङ्गके कमलके समान हैं, तू निर्मल गुणों का सागर है, तूने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया है, तू कमलके भीतरी भागके समान कोमल है ॥६०॥ हे वैदेहि ! हे वैदेहि ! शीघ्र ही वचन देओ । यह तो तू जानती ही है कि मेरा हृदय तेरे विना अत्यन्त कातर है ॥६१॥ तू अनुपम शीलको धारण करने वाली है, सुन्दरी है, तेरा वार्तालाप हितकारी तथा प्रिय है। तेरा मन पापसे रहित है ॥६२॥ तू अपराधसे रहित थी फिर भी निर्दय होकर मैंने तुझे छोड़ दिया । हे मेरे हृदयमें वास करने वाली ! तू किस दशा को प्राप्त हुई होगी ? ॥६३॥ हे देवि ! महाभयदायक एवं दुष्ट वन्य पशुओंसे भरे हुए वनमें छोड़ी गई तू भोगोंसे रहित हो किस प्रकार रहेगी ? ॥६४॥ तेरे नेत्र मदोन्मत्त चकोरके समान हैं, तू सौन्दर्य रूपी जलकी वापिका है, लज्जा और विनयसे सम्पन्न है । हाय मेरी देवि ! तू कहाँ गई ? ॥६५॥ हाय देवि ! श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धिसे भ्रमर तेरे मुखके समीप इकट्ठे होकर झंकार करते होंगे उन्हें कर कमलसे दूर हटाती हुई तू अवश्य ही खेदको प्राप्त होगी ॥६६॥ जो विचार करने पर भी अत्यन्त दुःसह है ऐसे भयंकर वनमें झुण्डसे बिछुड़ी मृगीके समान तू अकेली शून्य हृदय हो कहाँ जायगी ? ॥६७॥ कमलके भीतरी भागके समान कोमल एवं सुन्दर लक्षणोंसे युक्त

---

१. गुणेधुधे ख०, ज०, म० । २. वादयन्ती म० । ३. पादुको म० ।

कृत्याकृत्यविवेकेन सुदूरं मुक्तमानसैः । गृहीता किमसि म्लेच्छैः पल्लीं नीता सुभीषणाम् ॥६९॥
पूर्वादपि प्रिये दुःखादिदं दुःखमनुत्तमम् । प्राप्तासि साध्वि कान्तारे दारुणेन मयोज्झिता ॥७०॥
रात्रौ तमसि निर्भेद्ये सुप्ता खिन्नशरीरिका । वनरेणुपरीताङ्गा किमाक्रान्ताऽसि हस्तिना ॥७१॥
गृध्रर्क्षभल्लगोमायुशशोलूकसमाकुले । निर्मार्गे परमारण्ये भ्रियसे दुःखिता कथम् ॥७२॥
दंष्ट्राकरालवक्त्रेण धृताङ्गेन महाक्षुधा । किं व्याघ्रेणोपनीताऽसि प्रियेऽवस्थामशब्दिताम् ॥७३॥
किं वा विलोलजिह्वेन विलसत्केसरालिना । सिंहेनास्यथवा सत्त्वशाली को [1]योषितीदृशः ॥७४॥
ज्वालाकलापिनोत्तुङ्गपादपाभावकारिणा । दावेन किन्नु नीताऽसि देव्यवस्थामशोभनाम् ॥७५॥
अथवा ज्योतिरीशस्य करैरत्यन्तदुःसहैः । जन्तुधर्मं किमाप्ताऽसि छायासर्पणविह्वला ॥७६॥
नृशंसेऽपि मयि स्वान्तं कृत्वा शोभनशीलिका । विदीर्णहृदया किन्नु मर्त्यधर्मसमाश्रिता ॥७७॥
वातिरत्नजटिभ्यां मे सदृशः को नु साम्प्रतम् । प्रापयिष्यति सीताया वार्तां कुशलशंसिनीम् ॥७८॥
हा प्रिये हा महाशीले हा मनस्विनि हा शुभे । क्व तिष्ठसि क्व याताऽसि किं करोषि न वेत्सि किम् ॥७९॥
अहो कृतान्तवक्त्रासौ सत्यमेव त्वया प्रिया । त्यक्तातिदारुणेऽरण्ये कथमेवं करिष्यसि ॥८०॥
ब्रूहि ब्रूहि न सा कान्ता त्यक्ता तव मयेतरम् । वक्त्रेणानेन चन्द्रेण क्षरतेवामृतोत्करम् ॥८१॥
इत्युक्तोऽपत्रपाभारनतवक्त्रो गतप्रभः । प्रतिपत्तिविनिर्मुक्तः सेनानीराकुलोऽभवत् ॥८२॥

तेरे पैर कठोर भूमिके साथ समागमको किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥६८॥ अथवा जिनका मन, कृत्य और अकृत्यके विवेकसे बिलकुल ही रहित है ऐसे म्लेच्छ लोग तुझे पकड़ कर अत्यन्त भयंकर पल्लीमें ले गये होंगे ॥६९॥ हे प्रिये ! हे साध्वि ! मुझ दुष्टने तुझे वनमें छोड़ा है अतः अबकी बार पहले दुःखसे भी कहीं अधिक दुःखको प्राप्त हुई है ॥७०॥ अथवा तू खेदखिन्न एवं वनकी धूलीसे व्याप्त हो रात्रिके सघन अन्धकारमें सो रही होगी सो तुझे हाथीने दबा दिया होगा ॥७१॥ जो गीध रीछ भालू शृगाल खरगोश और उल्लुओंसे व्याप्त है तथा जहाँ मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता ऐसे बीहड़ वनमें दुखी होती हुई तू कैसे रहेगी ? ॥७२॥ अथवा हे प्रिये ! जिसका मुख दाढ़ोंसे भयंकर है, अंगड़ाई लेनेसे जिसका शरीर कम्पित है तथा जो तीव्र भूखसे युक्त है ऐसे किसी व्याघ्रने तुम्हें शब्दागोचर अवस्थाको प्राप्त करा दिया है ? ॥७३॥ अथवा जिसकी जिह्वा लप-लपा रही है और जिसकी गरदनके बालोंका समूह सुशोभित है ऐसे किसी सिंहने तुम्हें शब्दातीत दशाको प्राप्त करा दिया है क्योंकि ऐसा कौन है जो स्त्रियोंके विषयमें शक्ति-शाली न हो ? ॥७४॥ अथवा हे देवि ! ज्वालाओंके समूहसे युक्त, तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंका अभाव करने वाले दावानलके द्वारा तू क्या अशोभन अवस्थाको प्राप्त कराई गई है ? ॥७५॥ अथवा तू छायामें जाने के लिए असमर्थ रही होगी इसलिए क्या सूर्यकी अत्यन्त दुःसह किरणोंसे मरणको प्राप्त हो गई है ॥७६॥ अथवा तू प्रशस्त शीलकी धारक थी और मैं अत्यन्त क्रूर प्रकृतिका था। फिर भी तूने मुझमें अपना चित्त लगाया। क्या इसी असमञ्जसभावसे तेरा हृदय विदीर्ण हो गया होगा और तू मृत्युको प्राप्त हुई होगी ॥७७॥ हनूमान् और रत्नजटीके समान इस समय कौन है ? जो सीताकी कुशल वार्ता प्राप्त करा देगा ? ॥७८॥ हा प्रिये ! हा महाशीलवति ! हा मनस्विनि ! हा शुभे ! तू कहाँ है ? कहाँ चली गई ? क्या कर रही है ? क्या कुछ भी नहीं जानती ? ॥७९॥ अहो कृतान्तवक्त्र ! क्या सचमुच ही तुमने प्रियाको अत्यन्त भयानक वनमें छोड़ दिया है ? नहीं नहीं तुम ऐसा कैसे करोगे ? ॥८०॥ इस मुखचन्द्रसे अमृतके समूहको झराते हुएके समान तुम कहो-कहो कि मैंने तुम्हारी उस कान्ताको नहीं छोड़ा है ॥८१॥ इस प्रकार कहने पर लज्जाके भारसे जिसका मुख नीचा हो गया था, जिसकी प्रभा समाप्त हो गई थी, और जो स्वीकृतिसे रहित था ऐसा

---

१. के योषितीदृशी ब० । किं योषितीदृशः म० ।

स्थिते निर्वचने तस्मिन् ध्यात्वा सीतां सुदुःखिताम् । पुनर्मूर्च्छां गतो रामः कृच्छ्रात्संज्ञां च लम्भितः ॥८३॥
लक्ष्मणोऽत्रान्तरे प्राप्तो जगादान्तःशुचं स्पृशन् । आकुलोऽसि किमित्येवं देव धैर्यं समाश्रय ॥८४॥
फलं पूर्वार्जितस्येदं कर्मणः समुपागतम् । सकलस्यापि लोकस्य राजपुत्र्या न केवलम् ॥८५॥
प्राप्तव्यं येन यल्लोके दुःखं कल्याणमेव वा । स तं स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्व्यपदेशतः[1] ॥८६॥
आकाशमपि नीतः सन् वनं वा श्वापदाकुलम् । मूर्धानं वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ॥८७॥
देव सीतापरित्यागश्रवणाद्भरतावनौ । अकरोदास्पदं दुःखं प्राकृतीयमनःस्वपि ॥८८॥
प्रजानां दुःखतप्तानां विलीनानां समन्ततः । अश्रुधारापदेशेन हृदयं न्यंगलन्निव ॥८९॥
परिदेवनमेवं च चक्रेऽत्यन्तसमाकुलः । हिमाहतप्रभाम्भोजखण्डसम्मितवक्त्रकः ॥९०॥
हा दुष्टजनवाक्याग्निप्रदीपितशरीरिके । गुणसस्यसमुद्भूतिभूमिभूतसुभावने ॥९१॥
राजपुत्रि क्व यातासि सुकुमाराङ्घ्रिपल्लवे । शीलाद्रिधरणक्षोणि सीते सौम्ये मनस्विनि ॥९२॥
खलवाक्यतुषारेण मातः पश्य समन्ततः । गुणराट् विसिनी दग्धा राजहंसनिषेविता ॥९३॥
सुभद्रासदृशी भद्रा सर्वाचारविचक्षणा । सुखासिकेव लोकस्य मूर्ता क्वासि वरे गता ॥९४॥
भास्करेण विना का द्यौः का निशा शशिना विना । स्त्रीरत्नेन विना तेन साकेता वाऽपि कीदृशी ॥९५॥

सेनापति व्याकुल हो गया ॥८२॥ जब कृतान्तवक्त्र चुप खड़ा रहा तब अत्यन्त दुःखसे युक्त सीता का ध्यान कर राम पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और बड़ी कठिनाईसे सचेत किये गये ॥८३॥

इसी बीचमें लक्ष्मणने आकर हृदयमें शोक धारण करनेवाले रामका स्पर्श करते हुए कहा कि हे देव ! इस तरह व्याकुल क्यों होते हो ? धैर्य धारण करो ॥८४॥ यह पूर्वोपार्जित कर्मका फल समस्त लोकको प्राप्त हुआ है न केवल राजपुत्रीको ही ॥८५॥ संसारमें जिसे जो दुःख अथवा सुख प्राप्त करना है वह उसे किसी निमित्तसे स्वयमेव प्राप्त करता है ॥८६॥ यह प्राणी चाहे आकाशमें ले जाया जाय, चाहे वन्य पशुओंसे व्याप्त वनमें ले जाया जाय और चाहे पर्वतकी चोटी पर ले जाया जाय सर्वत्र अपने पुण्यसे ही रक्षित होता है ॥८७॥ हे देव ! सीताके परित्यागका समाचार सुनकर इस भरतक्षेत्रकी समस्त वसुधामें साधारणसे साधारण मनुष्योंके भी मनमें दुःखने अपना स्थान कर लिया है ॥८८॥ दुःखसे संतप्त एवं सब ओरसे द्रवीभूत प्रजा-जनोंके हृदय अश्रुधाराके बहाने मानो गल-गलकर बह रहे हैं ॥८९॥ रामसे इतना कहकर अत्यन्त व्याकुल हो लक्ष्मण स्वयं विलाप करने लगे और उनका मुख हिमसे ताडित कमल-वनके समान निष्प्रभ हो गया ॥९०॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरा शरीर दुष्टजनोंके वचन रूपी अग्निसे प्रज्वलित हो रहा है, तू गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए भूमि स्वरूप है तथा उत्तम भावनासे युक्त है ॥९१॥ हे राजपुत्रि ! तू कहाँ गई ? तेरे चरण-किसलय अत्यन्त सुकुमार थे ? तू शील रूपी पर्वतको धारण करनेके लिए पृथिवी रूप थी, हे सीते ! तू बड़ी ही सौम्य और मनस्विनी थी ॥९२॥ हे मातः ! देख, दुष्ट मनुष्योंके वचनरूपी तुषारसे गुणोंसे सुशोभित तथा राजहंसोंसे निषेवित यह कमलिनी सब ओरसे दग्ध हो गई है । भावार्थ—यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा विसिनी शब्दसे सीताका उल्लेख किया गया है । जिस प्रकार कमलिनी गुण अर्थात् तन्तुओंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार सीता भी गुण अर्थात् दया दाक्षिण्य आदि गुणोंसे सुशोभित थी और जिस प्रकार कमलिनी राजहंस पक्षियोंसे सेवित होती है उसी प्रकार सीता भी राजहंस अर्थात् राजशिरोमणि रामचन्द्रसे सेवित थी ॥९३॥ हे उत्तमे ! तू सुभद्राके समान भद्र और सर्व आचारके पालन करनेमें निपुण थी तथा समस्त लोकको मूर्तिधारिणी सुख स्थिति स्वरूप थी ! तू कहाँ गई ? ॥९४॥ सूर्यके विना आकाश क्या ? और चन्द्रमाके विना रात्रि क्या ? उसी प्रकार उस स्त्रीरत्नके विना अयोध्या कैसी ? भावार्थ—जिस प्रकार सूर्यके विना आकाशकी और

१. कुतश्चिद्वापदेशतः म० ।

वेणुवीणामृदङ्गादिनिःस्वानपरिवर्जिता । नगरी देव सञ्जाता करुणाक्रन्दपूरिता ॥९६॥
रथ्यासूद्यानदेशेषु कान्तारेषु सरित्सु च । त्रिकचत्वरभागेषु भवनेष्वापणेषु च ॥९७॥
सन्तताभिपतन्तीभिरश्रुधाराभिरुद्गतः । पङ्कः समस्तलोकस्य घनकालभवोपमः ॥९८॥
बाष्पगद्गदया वाचा कृच्छ्रेण समुदाहरन् । गुणप्रसूनवर्षेण परोक्षामपि जानकीम् ॥९९॥
पूजयत्यखिलो लोकस्तदेकगतमानसः । सा हि सर्वसतीमूर्ध्नि पदं चक्रे गुणोज्ज्वला ॥१००॥
समुत्कण्ठापराधीनैः स्वयं देव्याऽनुपालितैः । छेकैरपि परं दीनं रुदितं धूतविग्रहैः ॥१०१॥
तदेवं गुणसम्बन्धसमस्तजनचेतसः । कृते कस्य न जानक्या वर्तते शुगनुत्तरा ॥१०२॥
किन्तु कोविद नोपायः पश्चात्तापो मनीषिते । इति सञ्चिन्त्य धीरत्वमवलम्बितुमर्हसि ॥१०३॥
इति लक्ष्मणवाक्येन पद्मनाभः प्रसादितः । शोकं किञ्चित्परित्यज्य कर्त्तव्ये निदधे मनः ॥१०४॥
प्रेतकर्मणि जानक्याः सादरं जनमादिशत् । द्राग् भद्रकलशं चैव समाहूय जगाविति ॥१०५॥
समादिष्टोऽसि वैदेह्या पूर्वं भद्र यथाविधम् । तेनैव विधिना दानं तामुद्दिश्य प्रदीयताम् ॥१०६॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा कोषाध्यक्षः सुमानसः । अर्थिनामीप्सितं द्रव्यं नवमासानशिश्रणत् ॥१०७॥
सहस्रैरष्टभिः स्त्रीणां सेव्यमानोऽपि सन्ततम् । वैदेहीं मनसा रामो निमेषमपि नात्यजत् ॥१०८॥
सीताशब्दमयस्तस्य समालापः सदाऽभवत् । सर्वं ददर्श वैदेहीं तद्गुणाकृष्टमानसः ॥१०९॥
क्षितिरेणुपरीताङ्गीं गिरिगह्वरवर्तिनीम् । अपश्यज्जानकीं स्वप्ने नेत्राम्बुकृतदुर्दिनाम् ॥११०॥

चन्द्रमाके विना रात्रिकी शोभा नहीं है उसी प्रकार सीताके विना अयोध्याकी शोभा नहीं है ॥९५॥ हे देव ! समस्त नगरी बाँसुरी वीणा तथा मृदङ्ग आदिके शब्दसे रहित तथा करुण क्रन्दनसे पूर्ण हो रही है ॥९६॥ गलियोंमें, बागबगीचोंके प्रदेशोंमें, वनोंमें, नदियोंमें, तिराहों-चौराहोंमें, महलोंमें और बाजारोंमें निरन्तर निकलने वाली समस्त लोगोंकी अश्रुधाराओंसे वर्षा ऋतुके समान कीचड़ उत्पन्न हो गया है ॥९७–९८॥ यद्यपि जानकी परोक्ष हो गई है तथापि उसी एकमें जिसका मन लग रहा है ऐसा समस्त संसार अश्रुसे गद्गद वाणीके द्वारा बड़ी कठिनाईसे उच्चारण करता हुआ गुणरूप फूलोंकी वर्षासे उसकी पूजा करता है सो ठीक ही है क्योंकि गुणोंसे उज्ज्वल रहनेवाली उस जानकीने समस्त सती स्त्रियोंके मस्तक पर स्थान किया था अर्थात् समस्त सतियोंमें शिरोमणि थी ॥९९–१००॥ स्वयं सीतादेवीने जिनका पालन किया था तथा जो उसके अभावमें उत्कण्ठासे विवश हैं ऐसे शुक आदि चतुर पक्षी भी शरीरको कँपाते हुए अत्यन्त दीन रुदन करते रहते हैं ॥१०१॥ इस प्रकार समस्त मनुष्योंके चित्तके साथ जिसके गुणोंका संबन्ध था ऐसी जानकीके लिए किस मनुष्यको भारी शोक नहीं है ? ॥१०२॥ किन्तु हे विद्वन् ! पश्चात्ताप करना इच्छित वस्तुके प्राप्त करनेका उपाय नहीं है ऐसा विचार कर धैर्य धारण करना योग्य है ॥१०३॥ इस प्रकार लक्ष्मणके वचनसे प्रसन्न रामने कुछ शोक छोड़कर कर्तव्य—करने योग्य कार्यमें मन लगाया ॥१०४॥ उन्होंने जानकीके मरणोत्तर कार्यके विषयमें आदर सहित लोगोंको आदेश दिया तथा भद्रकलश नामक खजानचीको शीघ्र ही बुलाकर यह आदेश दिया कि हे भद्र ! सीताने तुझे पहले जिस विधिसे दान देनेका आदेश दिया था उसी विधिसे उसे लक्ष्य कर अब भी दान दिया जाय ॥१०५–१०६॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाला कोषाध्यक्ष नौ मास तक याचकोंके लिए इच्छित दान देता रहा ॥१०७॥ यद्यपि आठ हजार स्त्रियाँ निरन्तर रामकी सेवा करती थीं तथापि राम पल भरके लिए भी मनसे सीताको नहीं छोड़ते थे ॥१०८॥ उनका सदा सीता शब्द रूप ही समालाप होता था अर्थात् वे सदा 'सीता-सीता' कहते रहते थे और उसके गुणोंसे आकृष्ट चित्त हो सबको सीता रूप ही देखते थे अर्थात् उन्हें सर्वत्र सीता-सीता ही दिखाई देती थी ॥१०९॥ पृथिवीकी धूलिसे जिसका शरीर व्याप्त है, जो पर्वतकी गुफामें वास कर रही है तथा अश्रुओंकी जो लगातार वर्षा कर रही

मनसा च सशल्येन गाढशोको विबुद्धवान् । अचिन्तयत्ससूत्कारो बाष्पाच्छादितलोचनः ॥१११॥
कष्टं लोकान्तरस्थाऽपि सीता सुन्दरचेष्टिता । न विमुञ्चति मां साध्वी सानुबन्धा हितोद्यता ॥११२॥
स्वैरं स्वैरं ततः सीताशोके विरलतामिते । परिशिष्टवरस्त्रीभिः पद्मो धृतिमुपागमत् ॥११३॥
तौ सीरचक्रदिव्यास्त्रौ परमन्यायसङ्गतौ । प्रीत्याऽनन्तरया युक्तौ प्रशस्तगुणसागरौ ॥११४॥
पालयन्तौ महीं सम्यङ्निम्नगापतिमेखलाम् । सौधर्मेशानदेवेन्द्राविव रेजतुरुत्कटम् ॥११५॥

आर्याच्छन्दः

तौ तत्र कोशलायां सुरलोकसमानमानवायां राजन् ।
परमान् प्राप्तौ भोगान् सुप्रभ[1]पुरुषोत्तमौ यथा पुरुषेन्द्रौ ॥११६॥
[2]स्वकृतसुकर्मोदयतः सकलजनानन्ददानकोविदचरितौ ।
सुखसागरे निमग्नौ रविभाव[3]ज्ञातकालमवतस्थाते ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामशोकाभिधानं नाम नवनवतितमं पर्व ॥९९॥

है ऐसी सीताको वे स्वप्नमें देखते थे ॥११०॥ अत्यधिक शोकको धारण करनेवाले राम जब जागते थे तब सशल्य मनसे आंसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करते हुए सू-सू शब्दके साथ चिन्ता करने लगते थे कि अहो ! बड़े कष्टकी बात है कि सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाली सीता लोकान्तरमें स्थित होने पर भी मुझे नहीं छोड़ रही है । वह साध्वी पूर्व संस्कारसे सहित होनेके कारण अब भी मेरा हित करनेमें उद्यत है ॥१११-११२॥ तदनन्तर धीरे-धीरे सीताका शोक विरल होने पर राम अवशिष्ट स्त्रियोंसे धैर्यको प्राप्त हुए ॥११३॥ जो परम न्यायसे सहित थे, अविरल प्रीतिसे युक्त थे, प्रशस्त गुणोंके सागर थे, और समुद्रान्त पृथिवीका अच्छी तरह पालन करते थे ऐसे हल और चक्र नामक दिव्य अस्त्रको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण सौधर्मेन्द्रके समान अत्यधिक सुशोभित होते थे ॥११४-११५॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जहाँ देवोंके समान मनुष्य थे ऐसी उस अयोध्या नगरीमें उत्तम कान्तिको धारण करने वाले दोनों पुरुषोत्तम, इन्द्रोंके समान परम भोगोंको प्राप्त हुए थे ॥११६॥ अपने द्वारा किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे जिनका चरित समस्त मनुष्योंके लिए आनन्द देने वाला था, तथा जो सूर्यके समान कान्ति वाले थे ऐसे राम लक्ष्मण अज्ञात काल तक सुखसागरमें निमग्न रहे ॥११७॥

इसप्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराणमें रामके शोकका वर्णन करने वाला निन्यानबेवां पर्व समाप्त हुआ ॥९९॥

---

१. सुप्रभौ म० । २. सुकृत -म० । ३. रविभौ + अज्ञातकालम्, इतिच्छेदः ।

शतं पर्व

एवं तावदिदं जातमिदमन्यन्नरेश्वर । शृणु वक्ष्यामि तं वृत्तं लवणाङ्कुशगोचरम् ॥१॥
अथ सर्वप्रजापुण्यैर्गृहीताया इवामलैः । अधत्त पाण्डुतामङ्गयष्टिर्जनकजन्मनः[1] ॥२॥
श्यामतासमवष्टब्धचारुचूचुकचूलिकैः । पयोधरघटौ पुत्रपानार्थमिव मुद्रितौ ॥३॥
स्तन्यार्थमानने न्यस्ता दुग्धसिन्धुरिवायता । सुस्निग्धधवला दृष्टिर्माधुर्यमदधात्परम् ॥४॥
सर्वमङ्गलसंघातैर्गात्रयष्टिरधिष्ठिता । अमन्दायतकल्याणगौरवोद्भवनादिव ॥५॥
मन्दं मन्दं प्रयच्छन्त्याः क्रमं निर्मलकुट्टिमे । प्रतिबिम्बाम्बुजेन क्ष्मा पूर्वसेवामिवाकरोत् ॥६॥
सूतिकालकृताकांक्षा कपोलप्रतिबिम्बिता । समलक्ष्यत लक्ष्मीर्वा शय्याऽपाश्रयपुत्रिका ॥७॥
रात्रौ सौधोपयातायाः व्यंशुके स्तनमण्डले । श्वेतच्छत्रमिवाधारि सङ्क्रान्तं शशिमण्डलम् ॥८॥
वासवेश्मनि सुप्ताया अपि प्रचलबाहुकाः । चित्रचामरधारिण्यश्चामराणि व्यधूनयन् ॥९॥
स्वप्ने पयोजिनीपुत्रपुटवारिभिरादरात्[2] । अभिषेको महानागैरकारि परिमण्डितैः ॥१०॥
असकृज्जयनिःस्वानं व्रजन्त्याः प्रतिबुद्धताम् । सच्चन्द्रशालिकाशालभञ्जिका अपि चक्रिरे ॥११॥
परिवारजनाह्वानेष्वादिशेति ससम्भ्रमाः । अशरीरा विनिश्चेरुर्वाचः परमकोमलाः ॥१२॥

अथानन्तर श्री गौतम स्वामी कहते हैं कि हे नरेश्वर ! इसप्रकार यह वृत्तान्त तो रहा अब दूसरा लवणाङ्कुशसे सम्बन्ध रखनेवाला वृत्तान्त कहता हूँ सो सुन ॥१॥ तदनन्तर जनकनन्दिनी-के कृश शरीरने धवलता धारण की, सो ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त प्रजाजनोंके निर्मल पुण्यने उसे ग्रहण किया था, इसलिए उसकी धवलतासे ही उसने धवलता धारण की हो ॥२॥ स्तनोंके सुन्दर चूचुक सम्बन्धी अग्रभाग श्यामवर्णसे युक्त हो गये, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो पुत्रके पीनेके लिए स्तनरूपी घट मुहरबन्द करके ही रख दिये हों ॥३॥ उसकी स्नेहपूर्ण धवल दृष्टि उस प्रकार परम माधुर्यको धारण कर रही थी मानो दूधके लिए उसके मुख पर लम्बी-चौड़ी दूधकी नदी ही लाकर रख दी हो ॥४॥ उसकी शरीरयष्टि सब प्रकारके मङ्गलोंके समूहसे युक्त थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो अपरिमित एवं विशाल कल्याणोंका गौरव प्रकट करनेके लिए ही युक्त थी ॥५॥ जब सीता मणिमयी निर्मल फर्सपर धीरे-धीरे पैर रखती थी तब उनका प्रति-बिम्ब नीचे पड़ता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवी प्रतिरूपी कमलके द्वारा उसकी पहलेसे ही सेवा कर रही हो ॥६॥ प्रसूति कालमें जिसकी आकांक्षा की जाती है ऐसी जो पुत्तलिका सीताकी शय्याके समीप रखी गई थी उसका प्रतिबिम्ब सीताके कपोलमें पड़ता था उससे वह पुत्तलिका लक्ष्मीके समान दिखाई देती थी ॥७॥ रात्रिके समय सीता महलकी छत पर चली जाती थी, उस समय उसके वस्त्र रहित स्तनमण्डल पर जो चन्द्रबिम्बका प्रतिबिम्ब पड़ता था वह ऐसा जान पड़ता था मानो गर्भके ऊपर सफेद छत्र ही धारण किया गया हो ॥८॥ जिस समय वह निवास-गृहमें सोती थी उस समय भी चञ्चल भुजाओंसे युक्त एवं नाना प्रकारके चमर धारण करनेवाली स्त्रियाँ उसपर चमर ढोरती रहती थीं ॥९॥ स्वप्नमें अलंकारोंसे अलंकृत बड़े-बड़े हाथी, कमलिनीके पत्रपुटमें रखे हुए जलके द्वारा उसका आदरपूर्वक अभिषेक करते थे ॥१०॥ जब वह जागती थी तब बार-बार जय-जय शब्द होता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो महलके ऊर्ध्व भागमें सुशोभित पुत्तलियाँ ही जय-जय शब्द कर रही हों ॥११॥ जब वह परिवार-के लोगोंको बुलाती थी तब 'आज्ञा देओ' इस प्रकारके संभ्रम सहित शरीर रहित परम कोमल

१. सीतायाः । २. पुटं वारिभि -म० ।

क्रीडयाऽपि कृतं सेहे नाज्ञाभङ्गं मनस्विनी । सुक्षिप्रेष्वपि कार्येषु भ्रूरभ्राम्यत्सविभ्रमम् ॥१३॥
यथेच्छं विद्यमानेऽपि मणिदर्पणसन्निधौ । मुखमुत्खातखड्गाग्रे जातं व्यसनमीक्षितुम् ॥१४॥
समुत्सारितवीणाद्या नारीजनविरोधिनः । श्रोत्रयोरसुखायन्त कार्मुकध्वनयः परम् ॥१५॥
चक्षुः पञ्जरसिंहेषु जगाम परमां रतिम् । ननाम कथमप्युत्तमुत्तमं स्तम्भितं यथा ॥१६॥
पूर्णेऽथ नवमे मासि चन्द्रे श्रवणसङ्गते । श्रावणस्य दिने देवी पौर्णमास्यां सुमङ्गला ॥१७॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना । सुखं सुखकरात्मानमसूत सुतयुग्मकम् ॥१८॥
नृतमय्य इवाभूवंस्तयोरुद्गतयोः प्रजाः । भेरीपटहनिःस्वाना जाताः शङ्खस्वनान्विताः ॥१९॥
उन्मत्तमर्त्यलोकाभश्चारुसम्पत्समन्वितः । स्वसृप्रीत्या नरेन्द्रेण जनितः परमोत्सवः ॥२०॥
अनङ्गलवणाभिख्यामेकोऽमण्डयदेतयोः । मदनाङ्कुशनामान्यः सद्भूतार्थनियोगतः ॥२१॥
ततः क्रमेण तौ वृद्धिं बालकौ भजतस्तदा । जननीहृदयानन्दौ प्रवीरपुरुषाङ्कुरौ ॥२२॥
रक्षार्थं सर्षपकणा विन्यस्ता मस्तके तयोः । समुन्मिषत्प्रतापाग्निस्फुलिङ्गा इव रेजिरे ॥२३॥
वपुर्गोरोचनापङ्कपिञ्जरं परिवारितम् । समभिव्यज्यमानेन सहजेनेव तेजसा ॥२४॥
विकटा हाटकाबद्धवैयाघ्रनखपंक्तिका । रेजे दर्पाङ्कुरालीव समुद्भेदमिता हृदि ॥२५॥
आद्यं जल्पितमव्यक्तं सर्वलोकमनोहरम् । बभूव जन्मपुण्याहः[1] सत्यग्रहणसन्निभम्[2] ॥२६॥
मुग्धस्मितानि रम्याणि कुसुमानीव सर्वतः । हृदयानि समाकर्षन् कुलानीव मधुव्रतान्[3] ॥२७॥

वचन अपने-आप उच्चरित होने लगते थे ॥१२॥ वह मनस्विनी क्रीड़ामें भी किये गये आज्ञा भङ्गको नहीं सहन करती थी तथा अत्यधिक शीघ्रताके साथ किये हुए कार्योंमें भी विभ्रम पूर्वक भौंहें घुमाती थी ॥१३॥ यद्यपि समीपमें इच्छानुकूल मणियोंके दर्पण विद्यमान रहते थे तथापि उसे उभारी हुई तलवारके अग्रभागमें मुख देखनेका व्यसन पड़ गया था ॥१४॥ वीणा आदिको दूर कर स्त्रीजनोंको नहीं रुचनेवाली धनुषकी टंकारका शब्द ही उसके कानोंमें सुख उत्पन्न करता था ॥१५॥ उसके नेत्र पिंजड़ोंमें बन्द सिंहोंके ऊपर परम प्रीतिको प्राप्त होते थे और मस्तक तो बड़ी कठिनाईसे नम्रीभूत होता मानो खड़ा ही हो गया हो ॥१६॥

तदनन्तर नवम महीना पूर्ण होने पर जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर था, तब श्रावण मास की पूर्णिमाके दिन, उत्तम मङ्गलाचारसे युक्त समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण एवं पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली सीताने सुखपूर्वक सुखदायक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१७–१८॥ उन दोनोंके उत्पन्न होने पर प्रजा नृत्यमयीके समान हो गई और शङ्खोंके शब्दोंके साथ भेरियों एवं नगाड़ोंके शब्द होने लगे ॥१९॥ बहिनकी प्रीतिसे राजाने ऐसा महान् उत्सव किया जो उन्मत्त मनुष्य लोकके समान था और सुन्दर सम्पत्तिसे सहित था ॥२०॥ उनमेंसे एकने अनङ्गलवण नामको अलंकृत किया और दूसरेने सार्थक भावसे मदनाङ्कुश नामको सुशोभित किया ॥२१॥

तदनन्तर माताके हृदयको आनन्द देनेवाले, प्रवीर पुरुषके अंकुर स्वरूप वे दोनों बालक क्रम-क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥२२॥ रक्षाके लिए उनके मस्तक पर जो सरसोंके दाने डाले गये थे वे देदीप्यमान प्रतापरूपी अग्निके तिलगोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२३॥ गोरोचना की पङ्कसे पीला पीला दिखने वाला उनका शरीर ऐसा जान पड़ता था मानो अच्छी तरहसे प्रकट होनेवाले स्वाभाविक तेजसे ही घिरा हो ॥२४॥ सुवर्णमालामें खचित व्याघ्र सम्बन्धी नखोंकी बड़ी-बड़ी पंक्ति उनके हृदय पर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो दर्पके अंकुरोंका समूह ही हो ॥२५॥ सब लोगोंके मनको हरण करनेवाला जो उनका अव्यक्त प्रथम शब्द था वह उनके जन्म दिनकी पवित्रताके सत्यंकारके समान जान पड़ता था अर्थात् उनका जन्म दिन पवित्र दिन है, यह सूचित कर रहा था ॥२६॥ जिस प्रकार पुष्प भ्रमरोंके समूहको आकर्षित करते हैं,

---

१. पुण्याह -म० । २. सत्यग्रहणं सत्यंकारः श्री० टी० । ३. मधुभ्रताम् म० ।

जननीक्षीरसेकोत्थविलासहसितैरिव । जातं दशनकैर्वक्त्रपद्मकं लब्धमण्डनम् ॥२८॥
धात्रीकराङ्गुलीलग्नौ पञ्चषाणि पदानि तौ । एवंभूतौ प्रयच्छन्तौ मनः कस्य न जह्रतुः ॥२९॥
पुत्रकौ तादृशौ वीक्ष्य चारुक्रीडनकारिणौ । शोकहेतुं विसस्मार समस्तं जनकात्मजा ॥३०॥
वर्द्धमानौ च तौ कान्तौ निसर्गोदात्तविभ्रमौ । देहावस्थां परिप्राप्तौ विद्यासंग्रहणोचिताम् ॥३१॥
ततस्तत्पुण्ययोगेन सिद्धार्थो नाम विश्रुतः । शुद्धात्मा क्षुल्लकः प्राप वज्रजङ्घस्य मन्दिरम् ॥३२॥
सन्ध्यात्रयमवन्ध्यं यो महाविद्यापराक्रमः । मन्दरोरसि वन्दित्वा जिनानेति पदं क्षणात् ॥३३॥
प्रशान्तवदनो धीरो लुञ्चरञ्जितमस्तकः । साधुभावनचेतस्को वस्त्रमात्रपरिग्रहः ॥३४॥
उत्तमाणुव्रतो नानागुणशोभनभूषितः । जिनशासनतत्त्वज्ञः कलाजलधिपारगः ॥३५॥
अंशुकेनोपवीतेन सितेन प्रचलात्मना । मृणालकाण्डजालेन नागेन्द्र इव मन्थरः ॥३६॥
करञ्जालिकां कक्षे कृत्वा प्रियसखीमिव । मनोज्ञममृतास्वादं धर्मवृद्धिरिति ब्रुवन् ॥३७॥
गृहे गृहे शनैर्भिक्षां पर्यटन् विधिसङ्गतः । गृहोत्तमं समासीदद्यत्र तिष्ठति जानकी ॥३८॥
जिनशासनदेवीव सा मनोहरभावना । दृष्ट्वा क्षुल्लकमुत्तीर्य सम्भ्रान्ता नवमालिकाम्[2] ॥३९॥
उपगत्य समाधाय करवारिरुहद्वयम् । इच्छाकारादिना सम्यक् सम्पूज्य विधिकोविदा ॥४०॥
विशिष्टेनान्नपानेन समतर्पयदादरात् । जिनेन्द्रशासनाऽऽसक्तान् सा हि पश्यति बान्धवान् ॥४१॥
निवर्तितान्यकर्तव्यः सविश्रब्धः सुखं स्थितः । पृष्टो जगाद सीतायै स्ववार्तां भ्रमणादिकम् ॥४२॥

उसी प्रकार उनकी भोली भाली मनोहर मुसकानें सब ओरसे हृदयोंको आकर्षित करती थीं ॥२७॥ माताके क्षीरके सिञ्चनसे उत्पन्न विलास हास्यके समान जो छोटे-छोटे दाँत थे उनसे उनका मुखरूपी कमल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ धायके हाथकी अँगुली पकड़ कर पाँच छह डग देनेवाले उन दोनों बालकोंने किसका मन हरण नहीं किया था ॥२९॥ इस प्रकार सुन्दर क्रीड़ा करनेवाले उन पुत्रोंको देखकर माता सीता शोकके समस्त कारण भूल गई ॥३०॥ इस तरह क्रम-क्रमसे बढ़ते तथा स्वभावसे उदार विभ्रमको धारण करते हुए वे दोनों सुन्दर बालक विद्या ग्रहणके योग्य शरीरकी अवस्थाको प्राप्त हुए ॥३१॥

तदनन्तर उनके पुण्य योगसे सिद्धार्थ नामक एक प्रसिद्ध शुद्ध हृदय क्षुल्लक, राजा वज्रजङ्घके घर आया ॥३२॥ वह क्षुल्लक महाविद्याओंके द्वारा इतना पराक्रमी था कि तीनों संध्याओंमें प्रतिदिन मेरुपर्वत पर विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना कर क्षण भरमें अपने स्थान पर आ जाता था ॥३३॥ वह प्रशान्त मुख था, धीर वीर था, केशलुंच करनेसे उसका मस्तक सुशोभित था, उसका चित्त शुद्ध भावनाओंसे युक्त था, वह वस्त्र मात्र परिग्रहका धारक था, उत्तम अणुव्रती था, नानागुण रूपी अलंकारोंसे अलंकृत था, जिन शासनके रहस्यको जाननेवाला था, कलारूपी समुद्रका पारगामी था, धारण किये हुए सफेद चञ्चल वस्त्रसे ऐसा जान पड़ता था मानो मृणालोंके समूहसे वेष्टित मन्द मन्द चलनेवाला गजराज ही हो, जो पीछीको प्रिय सखी के समान बगलमें धारण कर अमृतके स्वादके समान मनोहर 'धर्मवृद्धि' शब्दका उच्चारण कर रहा था, और घर घरमें भिक्षा लेता हुआ धीरे-धीरे चल रहा था, इस तरह भ्रमण करता हुआ संयोगवश उस उत्तम घरमें पहुँचा, जहाँ सीता बैठी थी ॥३४-३८॥ जिनशासन देवीके समान मनोहर भावनाको धारण करनेवाली सीताने ज्योंही क्षुल्लकको देखा, त्योंही वह संभ्रमके साथ नौखण्डा महलसे उतर कर नीचे आ गई ॥३९॥ तथा पास जाकर और दोनों हाथ जोड़कर उसने इच्छाकार आदिके द्वारा उसकी अच्छी तरह पूजा की । तदनन्तर विधिके जाननेमें निपुण सीताने उसे आदर पूर्वक विशिष्ट अन्न पान देकर संतुष्ट किया, सो ठीक ही है क्योंकि वह जिन-शासनमें आसक्त पुरुषोंको अपना बन्धु समझती है ॥४०-४१॥ भोजनके बाद अन्य कार्य

१. तादृशौ -म० । २. नवमालिका म० ।

महोपचारविनयप्रयोगहृतमानसः । क्षुल्लकः परितुष्टात्मा ददर्श लवणाङ्कुशौ ॥४३॥
महानिमित्तमष्टाङ्गं ज्ञाता[1] सुश्राविकामसौ । सम्भाषयितुमप्राक्षीद् वार्त्तां पुत्रकसङ्गताम् ॥४४॥
तयावेदितवृत्तान्तो बाष्पदुर्दिननेत्रया । क्षणं शोकसमाक्रान्तः क्षुल्लको दुःखितोऽभवत् ॥४५॥
उवाच च न देवि त्वं विधातुं शोकमर्हसि । यस्या देवकुमाराभौ प्रशस्तौ बालकाविमौ ॥४६॥
अथ तेन घनप्रेमप्र[2]वणीकृतचेतसा । अचिराच्छस्त्रशास्त्राणि ग्राहितौ लवणाङ्कुशौ ॥४७॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नौ कलागुणविशारदौ । दिव्यास्त्रक्षेपसंहारविषयातिविचक्षणौ ॥४८॥
बिभ्रतुस्तौ परां लक्ष्मीं महापुण्यानुभावतः । ध्वस्तावरणसम्बन्धौ निधानकलशाविव ॥४९॥
न हि कश्चिद्गुरोः खेदः शिष्ये शक्तिसमन्विते । सुखेनैव प्रदर्श्यन्ते भावाः सूर्येण नेत्रिणे ॥५०॥
भजतां संस्तवं पूर्वं गुणानामागमः सुखम् । खेदोऽवतरतां कोऽसौ हंसानां मानसं ह्रदम् ॥५१॥
उपदेशं ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम् । अनर्थकः समुद्योतो रवेः कौशिकगोचरः ॥५२॥
स्फुरद्यशःप्रतापाभ्यामाक्रान्तभुवनावथ । अभिरामदुरालोकौ शीततिग्मकराविव ॥५३॥
व्यक्ततेजोबलावग्निमारुताविव सङ्गतौ । शिलादृढवपुःस्कन्धौ हिमविन्ध्याचलाविव ॥५४॥
महावृषौ यथा कान्तयुगसंयोजनोचितौ । धर्माश्रमाविवात्यन्तरमणीयौ सुखावहौ ॥५५॥

छोड़ वह क्षुल्लक निश्चित हो सुखसे बैठ गया । तदनन्तर पूछने पर उसने सीताके लिए अपने भ्रमण आदिकी वार्ता सुनाई ॥४२॥ अत्यधिक उपचार और विनयके प्रयोगसे जिसका मन हरा गया था, ऐसे क्षुल्लकने अत्यन्त संतुष्ट होकर लवणांकुशको देखा ॥४३॥ अष्टाङ्ग महानिमित्तके ज्ञाता उस क्षुल्लकने वार्तालाप बढ़ानेके लिए श्राविकाके व्रत धारण करनेवाली सीतासे उसके पुत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाली वार्ता पूछी ॥४४॥ तब नेत्रोंसे अश्रुकी वर्षा करती हुई सीताने क्षुल्लकके लिए सब समाचार सुनाया, जिसे सुनकर क्षुल्लक भी शोकाक्रान्त हो दुःखी हो गया ॥४५॥ उसने कहा भी कि हे देवि ! जिसके देवकुमारोंके समान ये दो बालक विद्यमान हैं ऐसी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ॥४६॥

अथानन्तर अत्यधिक प्रेमसे जिसका हृदय वशीभूत था ऐसे उस क्षुल्लकने थोड़े ही समयमें लवणाङ्कुशको शस्त्र और शास्त्र विद्या ग्रहण करा दी ॥४७॥ वे पुत्र थोड़े ही समयमें ज्ञान-विज्ञानसे संपन्न, कलाओं और गुणोंमें विशारद तथा दिव्य शस्त्रोंके आह्वान एवं छोड़नेके विषयमें अत्यन्त निपुण हो गये ॥४८॥ महापुण्यके प्रभावसे वे दोनों, जिनके आवरणका सम्बन्ध नष्ट हो गया था, ऐसे खजानेके कलशोंके समान परम लक्ष्मीको धारण कर रहे थे ॥४९॥ यदि शिष्य शक्तिसे सहित है, तो उससे गुरुको कुछ भी खेद नहीं होता, क्योंकि सूर्यके द्वारा नेत्रवान् पुरुषके लिए समस्त पदार्थ सुखसे दिखा दिये जाते हैं ॥५०॥ पूर्व परिचयको धारण करनेवाले मनुष्योंको गुणोंकी प्राप्ति सुखसे हो जाती है सो ठीक ही है क्योंकि मानस-सरोवरमें उतरनेवाले हंसोंको क्या खेद होता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥५१॥ पात्रके लिए उपदेश देनेवाला गुरु कृतकृत्यताको प्राप्त होता है । क्योंकि जिस प्रकार उल्लूके लिए किया हुआ सूर्यका प्रकाश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार अपात्रके लिए दिया हुआ गुरुका उपदेश व्यर्थ होता है ॥५२॥

अथानन्तर बढ़ते हुए यश और प्रतापसे जिन्होंने लोकको व्याप्त कर रक्खा था ऐसे वे दोनों पुत्र चन्द्र और सूर्यके समान सुन्दर तथा दुरालोक हो गये अर्थात् वे चन्द्रमाके समान सुन्दर थे और सूर्यके समान उनकी ओर देखना भी कठिन था ॥५३॥ प्रकट तेज और बलके धारण करनेवाले वे दोनों पुत्र परस्पर मिले हुए अग्नि और पवनके समान जान पड़ते थे अथवा जिनके शरीरके कन्धे शिलाके समान दृढ़ थे ऐसे वे दोनों भाई हिमाचल और विन्ध्याचलके समान दिखाई देते थे ॥५४॥ अथवा वे कान्त युग संयोजन अर्थात् सुन्दर जुवा धारण करनेके योग्य

---

१. ज्ञात्वा म० । २. प्रवीण म० ।

पूर्वापरककुभागाविव लोकालिलक्षितौ[1] । उदयास्तमयाधाने सर्वतेजस्विनां क्षमौ ॥५६॥
अभ्यर्णार्णवसंरोधसङ्कटे कुकुटीरके । तेजसः परिनिन्दन्तौ छायामपि पराङ्मुखीम् ॥५७॥
अपि पादनखस्थेन प्रतिबिम्बेन लज्जितौ । केशानामपि भङ्गेन प्राप्नुवन्तावशं परम् ॥५८॥
चूडामणिगतेनापि च्छत्रेणानेन सत्रपौ । अपि दर्पणदृष्टेन प्रतिपुंसोपतापिनौ ॥५९॥
अम्भोधरधृतेनाऽपि धनुषा कृतकोपनौ । अनानमच्चित्रालेख्यपार्थिवैरपि खेदितौ ॥६०॥
स्वल्पमण्डलसन्तोषसङ्गतस्य रवेरपि । अनादरेण पश्यन्तौ तेजसः प्रतिघातकम् ॥६१॥
भिन्दन्तौ बलिनं वायुमप्यर्वाक्षितविग्रहम् । हिमवत्यपि सामर्षौ चमरीवालवीजिते ॥६२॥
शङ्खैः सलिलनाथानामपि खेदितमानसौ । प्रचेतसमपीशानममृष्यन्तावुदन्वताम् ॥६३॥
सच्छत्रानपि निश्छायान् कुर्वाणौ धरणीक्षितः[2] । मुखेन मधु मुञ्चन्तौ प्रसन्नौ सत्सुसेवितौ ॥६४॥
दुष्टभूपालवंशानामप्यनासन्नवर्तिनाम् । कुर्वाणावूष्मणा ग्लानिं सम्प्राप्तसहजन्मना ॥६५॥
शस्त्रसंस्तवनश्याममुद्वहन्तौ करोदरम् । शेषराजप्रतापाग्निपरिनिर्वापणादिव ॥६६॥
धीरैः कार्मुकनिःस्वानैर्योग्या[3]काले समुद्गतैः । आलपन्ताविवासन्नाभोगाः सकलदिग्वधूः ॥६७॥
ईदृशो लवणस्तादृगीदृशस्तादृशोऽङ्कुशः । इत्यलं विकसच्छब्दप्रादुर्भावौ शुभोदयौ ॥६८॥

(पक्षमें युगकी उत्तम व्यवस्था करनेमें निपुण) महावृषभोंके समान थे अथवा धर्माश्रमोंके समान रमणीय और सुखको धारण करनेवाले थे ॥५५॥ अथवा वे समस्त तेजस्वी मनुष्योंके उदय तथा अस्त करनेमें समर्थ थे, इसलिए लोग उन्हें पूर्व और पश्चिम दिशाओंके समान देखते थे ॥५६॥ यह विशाल पृथिवी, निकटवर्ती समुद्रसे घिरी होनेके कारण उन्हें छोटी-सी कुटियाके समान जान पड़ती थी और इस पृथिवी रूपी कुटियामें यदि उनकी छाया भी तेजसे विमुख जाती थी तो उसकी भी वे निन्दा करते थे ॥५७॥ पैरके नखोंमें पड़नेवाले प्रतिबिम्बसे भी वे लज्जित हो उठते थे और बालोंके भंगसे भी अत्यधिक दुःख प्राप्त करते थे ॥५८॥ चूड़ामणिमें प्रतिबिम्बित छत्रसे भी वे लज्जित हो जाते थे और दर्पणमें दिखनेवाले पुरुषके प्रतिबिम्बसे भी खीझ उठते थे ॥५९॥ मेघके द्वारा धारण किये हुए धनुषसे भी उन्हें क्रोध उत्पन्न हो जाता था और नमस्कार नहीं करनेवाले चित्रलिखित राजाओंसे भी वे खेदखिन्न हो उठते थे ॥६०॥ अपने विशाल तेज की बात दूर रहे—अत्यन्त अल्प मण्डलमें सन्तोषको प्राप्त हुए सूर्यके भी तेजमें यदि कोई रुकावट डालता था तो वे उसे अनादरकी दृष्टिसे देखते थे ॥६१॥ जिसका शरीर दिखाई नहीं देता था ऐसी बलिष्ठ वायुको भी वे खण्डित कर देते थे तथा चमरी गायके बालोंसे वीजित हिमालयके ऊपर भी उनका क्रोध भड़क उठता था ॥६२॥ समुद्रोंमें भी जो शङ्ख पड़ रहे थे उन्हींसे उनके चित्त खिन्न हो जाते थे तथा समुद्रोंके अधिपति वरुणको भी वे सहन नहीं करते थे ॥६३॥ छत्रोंसे सहित राजाओंको भी वे निश्छाय अर्थात् छायासे रहित (पक्षमें कान्तिसे रहित) कर देते थे और सत्पुरुषोंके द्वारा सेवित होनेपर प्रसन्न हो मुखसे मधु छोड़ते थे अर्थात् उनसे मधुर वचन बोलते थे ॥६४॥ वे साथ-साथ उत्पन्न हुए प्रतापसे दूरवर्ती दुष्ट राजाओंके वंशको भी ग्लानि उत्पन्न कर रहे थे अर्थात् दूरवर्त्ती दुष्ट राजाओंको भी अपने प्रतापसे हानि पहुँचाते थे फिर निकटवर्ती दुष्ट राजाओंका तो कहना ही क्या है ? ॥६५॥ निरन्तर शस्त्र धारण करने से उनके हस्ततल काले पड़ गये थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शेष अन्य राजाओंके प्रताप रूप अग्निको बुझानेसे ही काले पड़ गये थे ॥६६॥ अभ्यासके समय उत्पन्न धनुषके गम्भीर शब्दोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो निकटवर्ती समस्त दिशारूपी स्त्रियोंसे वार्तालाप ही कर रहे हों ॥६७॥ 'जैसा लवण है वैसा ही अंकुश है' इस प्रकार उन दोनोंके विषयमें

---

१. लाञ्छितौ म०। २. नृपान्। ३. अभ्यासकाले 'योग्या गुणनिकाभ्यासः' इति कोषः। योग्यकाले म०।

नवयौवनसम्पन्नौ महासुन्दरचेष्टितौ । प्रकाशतां परिप्राप्तौ धरण्यां लवणाङ्कुशौ ॥६९॥
अभिनन्द्यौ समस्तस्य लोकस्योत्सुकताकरौ । पुण्येन घटितात्मानौ सुखकारणदर्शनौ ॥७०॥
युवत्यास्य[1] कुमुद्वत्याः शरत्पूर्णेन्दुतां गतौ । वैदेहीहृदयानन्दमयजङ्गममन्दरौ ॥७१॥
कुमारादित्यसङ्काशौ पुण्डरीकनिभेक्षणौ । द्वीपदेवकुमाराभौ श्रीवत्साङ्कितवक्षसौ ॥७२॥
अनन्तविक्रमाधारौ भवाम्भोधितटस्थितौ[2] । परस्परमहाप्रेमबन्धनप्रवणीकृतौ ॥७३॥
मनोहरणसंसक्तौ धर्ममार्गस्थितावपि । वक्रतापरिनिर्मुक्तौ कोटिस्थितगुणावपि ॥७४॥
विजित्य तेजसा भानुं स्थितौ कान्त्या निशाकरम् । ओजसा त्रिदशाधीशं गाम्भीर्येण महोदधिम् ॥७५॥
मेरुं स्थिरत्वयोगेन क्षमाधर्मेण मेदिनीम् । शौर्येण मेघनिःस्वानं गत्या मारुतनन्दनम् ॥७६॥
गृह्णीयातामिषुं मुक्तमपि वेगाददूरतः । मकरग्राहनक्राद्यैः कृतक्रीडौ महाजले ॥७७॥
श्रमसौख्यमसम्प्राप्तौ मत्तैरपि महाद्विपैः । भयादिव तनुच्छायात् [3]स्खलितार्ककरोत्करौ ॥७८॥
धर्मतः सम्मितौ साधोरर्ककीर्तेश्च[4] सत्त्वतः । सम्यग्दर्शनतोऽगस्य दानाच्छ्रीविजयस्य च ॥७९॥
अयोध्यावभिमानेन साहसान्मधुकैटभौ । महाहवसमुद्योगादिन्द्रजिन्मेघवाहनौ ॥८०॥
गुरुशुश्रूषणोद्युक्तौ जिनेश्वरकथारतौ । शत्रूणां जनितत्रासौ नाममात्रश्रुतेरपि ॥८१॥

लोगोंके मुखसे शब्द प्रकट होते थे तथा दोनों ही शुभ अभ्युदयसे सहित थे ॥६८॥ जो नव यौवनसे सम्पन्न थे और महासुन्दर चेष्टाओंके धारक थे, ऐसे लवण और अङ्कुश पृथिवीमें प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥६९॥ वे दोनों समस्त लोगोंके द्वारा अभिनन्दन करनेके योग्य थे और सभी लोगोंको उत्सुकताको बढ़ानेवाले थे। पुण्यसे उनके स्वरूपकी रचना हुई थी तथा उनका दर्शन सबके लिए सुखका कारण था ॥७०॥ युवती स्त्रियोंके मुखरूपी कुमुदिनीके विकासके लिए वे दोनों शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमा थे और सीताके हृदय सम्बन्धी आनन्दके लिए मानो चलते फिरते सुमेरु ही हों॥७१॥ वे दोनों अन्य कुमारोंमें सूर्यके समान थे, सफेद कमलोंके समान उनके नेत्र थे। वे द्वीपकुमार नामक देवोंके समान थे तथा उनके वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नसे अलंकृत थे ॥७२॥ अनन्त पराक्रमके आधार थे, संसार-समुद्रके तट पर स्थित थे, परस्पर महाप्रेमरूपी बन्धनसे बँधे थे ॥७३॥ वे धर्मके मार्गमें स्थित होकर भी मनके हरण करनेमें लीन थे—मनोहारी थे और कोटिस्थित गुणों अर्थात् धनुषके दोनों छोरों पर डोरीके स्थित होने पर भी वक्रता अर्थात् कुटिलतासे रहित थे (परिहार पक्षमें उनके गुण करोड़ोंकी संख्यामें स्थित थे तथा वे मायाचार रूपी कुटिलतासे रहित थे) ॥७४॥ वे तेजसे सूर्यको, कान्तिसे चन्द्रमाको, ओजसे इन्द्रको, गाम्भीर्यसे समुद्रको, स्थिरताके योगसे सुमेरुको, क्षमाधर्मसे पृथिवीको, शूर-वीरतासे जयकुमारको और गतिसे हनुमान्‌को, जीतकर स्थित थे ॥७५–७६॥ वे छोड़े हुए बाणको भी अपने वेगसे पास ही में पकड़ सकते थे तथा विशाल जलमें मगरमच्छ तथा नाके आदि जल जन्तुओंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥७७॥ मदमाते महागजोंके साथ युद्ध कर भी वे श्रमसम्बन्धी सुखको प्राप्त नहीं होते थे तथा उनके शरीरकी प्रभासे भयभीत होकर ही मानो सूर्यकी किरणोंका समूह स्खलित हो गया था ॥७८॥ वे धर्मकी अपेक्षा साधुके समान, सत्त्व अर्थात् धैर्यकी अपेक्षा अर्ककीर्तिके समान, सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा पर्वतके समान और दानकी अपेक्षा श्री विजय बलभद्रके समान थे ॥७९॥ अभिमानसे अयोध्य थे अर्थात् उनके साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता था, साहससे मधुकैटभ थे और महायुद्ध सम्बन्धी उद्योग से इन्द्रजित् तथा मेघवाहन थे ॥८०॥ वे गुरुओंकी सेवा करनेमें तत्पर रहते थे, जिनेन्द्रदेवकी कथा अर्थात् गुणगान करनेमें लीन रहते थे तथा नामके सुनने मात्रसे शत्रुओंको भय उत्पन्न

---

१. युवत्यास्याः म० । २. तटस्थितौ म० । ३. तनुच्छाया स्खलिता -ज० । ४. अर्ककीर्तिश्च म० ।

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं तौ गुणरत्नपर्वतवरौ विज्ञानपातालिनौ
लक्ष्मीश्रीद्युतिकीर्तिकान्तिनिलयौ चित्तद्विपेन्द्राङ्कुशौ ।
सौराज्यालयभारधारणदृढस्तम्भौ महीभास्करौ
संवृत्तौ लवणाङ्कुशौ नरवरौ चित्रैककर्माकरौ ॥८२॥

आर्यावृत्तम्

धीरौ प्रपौण्डनगरे रेमाते तौ यथेप्सितं नरनागौ ।
लज्जितरवितेजस्कौ हलधरनारायणौ यथायोग्यम् ॥८३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लवणांकुशोद्भवाभिधानं नाम शतसंख्यं पर्व ॥१००॥

करनेवाले थे ॥८१॥ इस प्रकार वे दोनों भाई लवण और अंकुश गुणरूपी रत्नोंके उत्तम पर्वत थे, विज्ञानके सागर थे, लक्ष्मी श्री द्युति कीर्ति और कान्तिके घर थे, मनरूपी गजराजके लिए अंकुश थे, सौराज्यरूपी घरका भार धारण करनेके लिए मजबूत खम्भे थे, पृथिवीके सूर्य थे, मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, आश्चर्यपूर्ण कार्योंकी खान थे ॥८२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा सूर्यके तेजको लज्जित करने वाले वे दोनों कुमार प्रपौण्ड नगरमें बलभद्र और नारायणके समान इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥८३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणांकुश की उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला सौवां पर्व पूर्ण हुआ ॥१००॥

एकाधिकशतं पर्व

ततो दारक्रियायोग्यौ दृष्ट्वा तावतिसुन्दरौ । वज्रजङ्घो मतिं चक्रे कन्यान्वेषणतत्पराम् ॥१॥
लक्ष्मीदेव्याः समुत्पन्नां शशिचूलाभिधानकाम् । द्वात्रिंशत्कन्यकायुक्तामाद्यस्याकल्पयत्सुताम् ॥२॥
विवाहमङ्गलं द्रष्टुमुभयोर्युगपन्नृपः । अभिलष्यन् द्वितीयस्य कन्यां योग्यां समन्ततः ॥३॥
अपश्यन्मनसा खेदं परिप्राप्त इवोत्तमाम् । सस्मार सहसा सद्यः कृतार्थत्वमिवाव्रजत् ॥४॥
पृथिवीनगरेशस्य राज्ञोऽस्ति प्रवराङ्गजा । शुद्धा कनकमालाख्याऽमृतवत्यङ्गसम्भवा ॥ ५॥
रजनीपतिलेखेव सर्वलोकमलिम्लुचा । श्रियं जयति या पद्मवती पद्मविवर्जिता ॥६॥
या साम्यं शशिचूलायाः समाश्रितवती शुभा । इति सञ्चिन्त्य तद्धेतोर्दूतं प्रेषितवान्नृपः ॥७॥
पृथिवीपुरमासाद्य स क्रमेण विचक्षणः । जगाद कृतसम्मानो राजानं पृथुसंज्ञकम्[1] ॥८॥
तावदेवेक्षितो दृष्ट्या दूतो राज्ञा विशुद्धया । कन्यायाचनसम्बन्धं यावद् गृह्णाति नो वचः ॥९॥
उवाच च न ते[2] दूत काचिदप्यस्ति दूषिता । यतो भवान् पराधीनः परवाक्यानुवादकृत् ॥१०॥
निरूष्माणश्चलात्मानो बहुभङ्गसमाकुलाः । जलौघा इव नीयन्ते यथेष्टं हि भवद्विधाः ॥११॥
कर्तुं तथापि ते युक्तो निग्रहः पापभाषिणः । परेण प्रेरितं किन्न[3] यन्त्रं हन्तृ विहन्यते ॥१२॥
किञ्चित्कर्तुमशक्तस्य रजःपातसमात्मनः । अपाकरणमात्रेण मया ते दूत सत्कृतम् ॥१३॥

अथानन्तर उन सुन्दर कुमारोंको विवाहके योग्य देख, राजा वज्रजंघने कन्याओंके खोजने में तत्पर बुद्धि की ॥१॥ सो प्रथम ही अपनी लक्ष्मी रानीसे उत्पन्न शशिचूला नामकी पुत्रीको अन्य बत्तीस कन्याओंके साथ लवणको देना निश्चित किया ॥२॥ राजा वज्रजङ्घ दोनों कन्याओंका विवाह मङ्गल एक साथ देखना चाहता था । इसलिए वह द्वितीय पुत्रके योग्य कन्याओंकी सब ओर खोज करता रहा ॥३॥ उत्तम कन्याको न देख एक दिन वह मनमें खेदको प्राप्त हुएके समान बैठा था कि अकस्मात् उसे शीघ्र ही स्मरण आया और उससे वह मानो कृतकृत्यताको ही प्राप्त हो गया ॥४॥ उसने स्मरण किया कि 'पृथिवी नगरके राजाकी अमृतवती रानीके गर्भसे उत्पन्न कनकमाला नामकी एक शुद्ध तथा श्रेष्ठ पुत्री है ॥५॥ वह चन्द्रमाकी रेखाके समान सब लोगोंको हरण करनेवाली है, लक्ष्मीको जीतती है और कमलोंसे रहित मानो कमलिनी ही है ॥६॥ वह शशिचूलाकी समानताको प्राप्त है तथा शुभ है' । इस प्रकार विचार कर उसके निमित्तसे राजा वज्रजंघने दूत भेजा ॥७॥ बुद्धिमान् दूतने क्रम-क्रमसे पृथिवीपुर पहुँच कर तथा सन्मान कर वहाँके राजा पृथुसे वार्तालाप किया ॥८॥ उसी समय राजा पृथुने विशुद्ध दृष्टिसे दूतकी ओर देखा और दूत जब तक कन्याकी याचनासे सम्बन्ध रखनेवाला वचन ग्रहण नहीं कर पाता है कि उसके पहले ही राजा पृथु बोल उठे कि रे दूत ! इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि तू पराधीन है और परके वचनोंका अनुवाद करनेवाला है ॥९-१०॥ जो स्वयं ऊष्मा-आत्मगौरव (पक्षमें गरमी) से रहित हैं, जिनकी आत्मा चञ्चल है तथा जो बहुभंगों-अनेक अपमानों (पक्षमें अनेक तरंगों) से व्याप्त हैं इस तरह जलके प्रवाहके समान जो आप जैसे लोग हैं, वे इच्छानुसार चाहे जहाँ ले जाये जाते हैं ॥११॥ यद्यपि यह सब है तथापि तूने पापपूर्ण वचनोंका उच्चारण किया है, अतः तेरा निग्रह करना योग्य है क्योंकि दूसरेके द्वारा चलाया हुआ विघातक यन्त्र क्या नष्ट नहीं किया जाता ? ॥१२॥ हे दूत ! मैं जानता हूँ कि तू धूली पानके समान है, और कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है इसलिए यहाँसे हटा देना मात्र ही तेरा सत्कार (?) अर्थात्

---

१. पृथुसंज्ञगम् म० । २. वचनं दूतः म० । ३. केन म० ।

कुलं शीलं धनं रूपं समानत्वं बलं वयः । देशो विद्यागमश्चेति यद्यप्युक्ता वरे गुणाः ॥१४॥
तथापि तेषु सर्वेषु सन्तोऽभिजनमेककम् । वरिष्ठमनुरुध्यन्ते शेषेषु तु मनःसमम् ॥१५॥
स च न ज्ञायते यस्य वरस्य प्रथमो गुणः । कथं प्रदीयते तस्मै कन्या मान्या समन्ततः ॥१६॥
निस्त्रपं भाषमाणाय तस्मै सुप्रतिकूलनम् । दातुं युक्तं [1]कुमारीं न [2]कुमारीं तु ददाम्यहम् ॥१७॥
इत्येकान्तपरिध्वस्तवचनो निरुपायकः । दूतः श्रीवज्रजंघाय गत्वाऽवस्थां न्यवेदयत् ॥१८॥
ततो गत्वार्धमध्वानं स्वयमेव प्रपन्नवान् । अयाचत महादूतवदनेन पृथुं पुनः ॥१९॥
अलब्ध्वाऽसौ ततः कन्यां तथापि जनितादरः । पृथोर्ध्वंसयितुं देशं क्रोधतुन्नः समुद्यतः ॥२०॥
पृथुदेशावधेः पाता नाम्ना व्याघ्ररथो नृपः । वज्रजङ्घेन सङ्ग्रामे जित्वा बन्धनमाहृतः ॥२१॥
ज्ञात्वा व्याघ्ररथं बद्धं सामन्तं सुमहाबलम् । देशं विनाशयन्तं च वज्रजङ्घं समुद्यतम् ॥२२॥
पृथुः सहायताहेतोः पोदनाधिपतिं नृपम् । मित्रमाह्वाययामास यावत्परमसैनिकम् ॥२३॥
तावत्कुलिशजंघेन पौण्डरीकपुरं द्रुतम् । समाह्वाययितुं पुत्रान् प्रहितो लेखवाहकः ॥२४॥
पितुराज्ञां समाकर्ण्य राजपुत्रास्त्वरान्विताः । भेरीशङ्खादिनिःस्वानं सन्नाहार्थमदापयन् ॥२५॥
ततः कोलाहलस्तुङ्गो महान् संक्षोभकारणः । पौण्डरीकपुरे जातो घूर्णमानार्णवोपमः ॥२६॥
तावदश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा सन्नाहनिःस्वनम् ॥ किमेतदिति पार्श्वस्थानप्राष्टां लवणाङ्कुशौ ॥२७॥
स्वनिमित्तं ततः श्रुत्वा वृत्तान्तं तत्समन्ततः । वैदेहीनन्दनौ गन्तुमुद्यतौ समरार्थिनौ ॥२८॥

निग्रह है ॥१३॥ यद्यपि कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्या गम ये नौ वरके गुण कहे गये हैं तथापि उत्तम पुरुष उन सबमें एक कुलको ही श्रेष्ठ गुण मानते हैं— इसका होना आवश्यक समझते हैं,शेष गुणोंमें इच्छानुसार प्रवृत्ति है अर्थात् हों तो ठीक न हों तो ठीक ॥१४-१५॥ परन्तु वही कुल नामका प्रथम गुण जिस वरमें न हो उसे सब ओरसे माननीय कन्या कैसे दी जा सकती है ? ॥१६॥ सो इस तरह निर्लज्जतापूर्वक विरुद्ध वचन कहनेवाले उसके लिए कुमारी अर्थात् पुत्रीका देना तो युक्त नहीं है परन्तु कुमारी अर्थात् खोटा मरण मैं अवश्य देता हूँ ॥१७॥ इस प्रकार जिसके वचन सर्वथा उपेक्षित कर दिये गये थे ऐसे दूतने निरुपाय हो वापिस जाकर वज्रजङ्घके लिए सब समाचार कह सुनाया ॥१८॥

तदनन्तर यद्यपि राजा वज्रजङ्घने स्वयं आधे मार्ग तक जाकर किसी महादूतके द्वारा पृथुसे कन्याकी याचना की ॥१९॥ और उसके प्रति आदर व्यक्त किया तथापि वह कन्याको प्राप्त नहीं कर सका । फलस्वरूप वह क्रोधसे प्रेरित हो पृथुका देश उजाड़नेके लिए तत्पर हो गया ॥२०॥ राजा पृथुके देशकी सीमाका रक्षक एक व्याघ्ररथ नामका राजा था उसे वज्रजङ्घने संग्राममें जीत कर बन्धनमें डाल दिया ॥२१॥ महाबलवान् अथवा बड़ी भारी सेनासे सहित व्याघ्ररथ सामन्तको युद्धमें बद्ध तथा वज्रजङ्घको देश उजाड़नेके लिए उद्यत जानकर राजा पृथुने सहायताके निमित्त पोदनदेशके अधिपति अपने मित्र राजाको जो कि उत्कृष्ट सेनासे युक्त था जबतक बुलवाया तबतक वज्रजङ्घने भी अपने पुत्रोंको बुलानेके लिए शीघ्र ही एक पत्र सहित आदमी पौण्डरीकपुरको भेज दिया ॥२२-२४॥ पिताकी आज्ञा सुनकर राजपुत्रोंने शीघ्र ही युद्धके लिए भेरी तथा शङ्ख आदिके शब्द दिलवाये ॥२५॥

तदनन्तर पौण्डरीकपुरमें लहराते हुए समुद्रके समान क्षोभ उत्पन्न करनेवाला बहुत बड़ा कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥२६॥ वह अश्रुतपूर्व युद्धकी तैयारीका शब्द सुन लवण और अङ्कुशने निकटवर्ती पुरुषोंसे पूछा कि यह क्या है ? ॥२७॥ तदनन्तर यह सब वृत्तान्त हमारे ही निमित्त से हो रहा है, यह सब ओरसे सुन युद्धकी इच्छा रखनेवाले सीताके दोनों पुत्र जानेके लिए

१. कन्यां । २. कुमृत्युम् ।

अतित्वरापरीतौ तौ पराभूत्युद्भवासहौ । अपि नासहतां यानमभिव्यक्तमहाद्युती ॥२९॥
तौ वारयितुमुद्युक्ता वज्रजङ्घस्य सूनवः । सर्वमन्तःपुरं चैव परिवर्गश्च यत्नतः ॥३०॥
अपकर्णिततद्वाक्यौ जानकी वीक्ष्य पुत्रकौ । जगाद तनयस्नेहपरिद्रवितमानसा ॥३१॥
बालकौ नैष युद्धस्य भवतः समयः समः[1] । न हि वत्सौ नियुज्येते महारथधुरामुखे ॥३२॥
ऊचतुस्तौ त्वया मातः किमेतदिति भाषितम् । किमत्र वृद्धकैः कार्यं वीरभोग्या[2] वसुन्धरा ॥३३॥
कियता देहभारेण ज्वलनस्य प्रयोजनम् । दिधक्षतो महाकक्षं स्वभावेनेह कारणम् ॥३४॥
एवमुद्गतवाक्यौ तौ तनयौ वीक्ष्य जानकी । बाष्पं मिश्ररसोत्पन्नं नेत्रयोः किञ्चिदाश्रयत् ॥३५॥
सुस्नातौ तौ कृताहारौ ततोऽलङ्कृतविग्रहौ । प्रणम्य प्रयतौ सिद्धान् वपुषा मनसा गिरा ॥३६॥
प्रणिपत्य सवित्रीं च समस्तविधिपण्डितौ । उपयातावगारस्य बहिः सत्तममङ्गलैः ॥३७॥
रथौ ततः समारुह्य परमौ जविवाजिनौ । सम्पूर्णौ विविधैरस्त्रैरुपरि प्रस्थितौ पृथोः ॥३८॥
तौ महासैन्यसम्पन्नौ चापन्यस्तसहायकौ । मूर्त्यैव सङ्गतिं प्राप्तौ समुद्योगपराक्रमौ ॥३९॥
परमोदारचेतस्कौ पुरुसङ्ग्रामकौतुकौ । पञ्चभिर्दिवसैः प्राप्तौ वज्रजङ्घं महोदयौ ॥४०॥
ततः शत्रुबलं श्रुत्वा परमोद्योगमन्तिकम् । निरैन्महाबलान्तस्थः पृथिवीनगरात्पृथुः ॥४१॥
भ्रातरः सुहृदः पुत्रा मातुला मातुलाङ्गजाः । एकपात्रभुजोऽन्ये च परमप्रीतिसङ्गताः ॥४२॥

उद्यत हो गये ॥२८॥ जो अत्यन्त उतावलीसे सहित थे, जो पराभवकी उत्पत्तिको रंचमात्र भी सहन नहीं कर सकते थे और जिनका विशाल तेज प्रकट हो रहा था ऐसे उन दोनों वीरोंने वाहनका विलम्ब भी सहन नहीं किया था ॥२९॥ वज्रजङ्घके पुत्र, समस्त अन्तःपुर तथा परिकरके समस्त लोग उन्हें यत्नपूर्वक रोकनेके लिए उद्यत हुए परन्तु उन्होंने उनके वचन अनसुने कर दिये। तदनन्तर पुत्रस्नेहसे जिसका हृदय द्रवीभूत हो रहा था ऐसी सीताने उन्हें युद्धके लिए उद्यत देख कहा कि हे बालको! यह तुम्हारा युद्धके योग्य समय नहीं है क्योंकि महारथकी धुराके आगे बछड़े नहीं जोते जाते ॥३०–३२॥ इसके उत्तरमें दोनों पुत्रोंने कहा कि हे मातः! तुमने ऐसा क्यों कहा? इसमें वृद्धजनोंकी क्या आवश्यकता है? पृथिवी तो वीरभोग्या है ॥३३॥ महावनको जलानेवाली अग्निके लिए कितने बड़े शरीरसे प्रयोजन है? अर्थात् अग्निका बड़ा शरीर होना अपेक्षित नहीं है, इस विषयमें तो उसे स्वभावसे ही प्रयोजन है ॥३४॥ इस प्रकारके वचनोंका उच्चारण करनेवाले पुत्रोंको देखकर सीताके नेत्रोंमें मिश्ररससे उत्पन्न आँसुओंने कुछ आश्रय लिया अर्थात् उसके नेत्रोंसे हर्ष और शोकके कारण कुछ-कुछ आँसू निकल आये ॥३५॥

तदनन्तर जिन्होंने अच्छी तरह स्नानकर आहार किया शरीरको अलंकारोंसे अलंकृत किया और मन, वचन, कायसे सिद्ध परमेष्ठीको बड़ी सावधानीसे नमस्कार किया, ऐसे समस्त विधि-विधानके जाननेमें निपुण दोनों कुमार माताको नमस्कार कर उत्तम मङ्गलाचार पूर्वक घरसे बाहर निकले ॥३६–३७॥ तदनन्तर जिनमें वेगशाली घोड़े जुते थे और जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण थे ऐसे उत्तम रथोंपर सवार होकर दोनों भाइयोंने राजा पृथुके ऊपर प्रस्थान किया ॥३८॥ बड़ी भारी सेनासे सहित एवं धनुषमात्रको सहायक समझनेवाले दोनों कुमार ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरधारी उद्योग और पराक्रम ही हों ॥३९॥ जिनका हृदय अत्यन्त उदार था तथा जो संग्रामके बहुत भारी कौतुकसे युक्त थे ऐसे महाभ्युदयके धारक दोनों भाई छह दिनमें वज्रजङ्घके पास पहुँच गये ॥४०॥

तदनन्तर परमोद्योगी शत्रुकी सेनाको निकटवर्ती सुनकर बड़ी भारी सेनाके मध्यमें स्थित राजा पृथु अपने पृथिवीपुरसे बाहर निकला ॥४१॥ उसके भाई, मित्र, पुत्र, मामा, मामाके

---

१. समे म० । २. वीरभोज्या म० ।

सुह्माङ्गा वङ्गमगधप्रभृतिक्षितिगोचराः । समन्तेन महीपालाः प्रस्थिताः सुमहाबलाः ॥४३॥
रथाश्वनागपादाताः कटकेन समावृताः । वज्रजङ्घं प्रति क्रुद्धाः प्रययुस्ते सुतेजसः ॥४४॥
रथेभतुरगस्थानं श्रुत्वा तूर्यस्वनान्वितम् । सामन्ता वज्रजङ्घीयाः सन्नद्धा योद्धुमुद्यताः ॥४५॥
प्रत्यासन्नं समायाते सेनाऽस्यद्वितये ततः । परानीकं महोत्साहौ प्रविष्टौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
अतिक्षिप्रपरावर्त्तौ तावुदाररुषाविव । आरेभाते परिक्रीडां [1]परसैन्यमहाह्रदे ॥४७॥
इतस्ततश्च तौ दृष्टादृष्टौ विद्युल्लतोपमौ । दुरालक्ष्यत्वमापन्नौ परासोढपराक्रमौ ॥४८॥
गृह्णन्तौ सन्दधानौ वा मुञ्चन्तौ वा शिलीमुखान् । नादृश्येतामदृश्यन्त केवलं निहताः परे ॥४९॥
विभिन्नैः विशिखैः क्रूरैः पतितैः सह वाहनैः । महीतलं समाक्रान्तं कृतमत्यन्तदुर्गमम् ॥५०॥
निमेषेण पराभग्नं सैन्यमुन्मत्तसन्निभम् । द्विपयूथं [2]परिभ्रान्तं सिंहवित्रासितं यथा ॥५१॥
ततोऽसौ क्षणमात्रेण पृथुराजस्य वाहिनी । लवणाङ्कुशसूर्येषुमयूखैः परिशोषिता ॥५२॥
कुमारयोस्तयोरिच्छामन्तरेण भयार्दिताः । अर्कतूलसमूहाभा नष्टा शेषा यथा ककुप् ॥५३॥
असहायो विषण्णात्मा पृथुर्भङ्गपथे स्थितः । अनुधाव्य कुमाराभ्यां सचापाभ्यामितीरितः ॥५४॥
नरखेट पृथो व्यर्थं क्वापि प्रपलाय्यते । एतौ तावागतावावामज्ञातकुलशीलकौ ॥५५॥
अज्ञातकुलशीलाभ्यामावाभ्यां त्वं ततोऽन्यथा । पलायनमिदं कुर्वन् कथं न त्रपसेऽधुना ॥५६॥
ज्ञापयावोऽधुनात्मीये कुलशीले शिलीमुखैः । अवधानपरस्तिष्ठ बलाद्वा स्थाप्यसेऽथवा ॥५७॥

लड़के तथा एक बर्तनमें खानेवाले परमप्रीतिसे युक्त अन्य लोग एवं सुह्म, अङ्ग, वङ्ग, मगध आदि के महाबलवान् राजा उसके साथ चले ॥४२-४३॥ कटक-सेनासे घिरे हुए परम प्रतापी रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल सैनिक क्रुद्ध होकर वज्रजंघकी ओर बढ़े चले आ रहे थे ॥४४॥ रथ, हाथी और घोड़ोंके स्थानको तुरहीके शब्दसे युक्त सुनकर वज्रजंघके सामन्त भी युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४५॥ तदनन्तर जब दोनों सेनाओंके अग्रभाग अत्यन्त निकट आ पहुँचे तब अत्यधिक उत्साहको धारण करनेवाले लवण और अङ्कुश शत्रुकी सेनामें प्रविष्ट हुए ॥४६॥ अत्यधिक शीघ्रतासे घूमनेवाले वे दोनों कुमार, महाक्रोधको धारण करते हुएके समान शत्रुदलरूपी महा-सरोवरमें सब ओर क्रीड़ा करने लगे ॥४७॥ बिजलीरूपी लताकी उपमाको धारण करनेवाले वे कुमार कभी यहाँ और कभी वहाँ दिखाई देते थे और फिर अदृश्य हो जाते थे। शत्रु जिनका पराक्रम नहीं सह सका था ऐसे वे दोनों वीर बड़ी कठिनाईसे दिखाई देते थे अर्थात् उनकी ओर आँख उठाकर देखना भी कठिन था ॥४८॥ बाणोंको ग्रहण करते, डोरीपर चढ़ाते और छोड़ते हुए वे दोनों कुमार दिखाई नहीं देते थे, केवल मारे हुए शत्रु ही दिखाई देते थे ॥४९॥ तीक्ष्ण बाणों द्वारा घायल होकर गिरे हुए वाहनोंसे व्याप्त हुआ पृथिवीतल अत्यन्त दुर्गम हो गया था ॥५०॥ शत्रुकी सेना पागलके समान निमेषमात्रमें पराभूत हो गई—तितर-बितर हो गई और हाथियोंका समूह सिंहसे डराये हुएके समान इधर-उधर दौड़ने लगा ॥५१॥ तदनन्तर पृथु राजा की सेनारूपी नदी, लवणाङ्कुशरूपी सूर्यकी बाणरूपी किरणोंसे क्षणमात्रमें सुखा दी गई ॥५२॥ जो योद्धा शेष बचे थे वे भयसे पीड़ित हो अर्कतूलके समूहके समान उन कुमारोंकी इच्छाके बिना ही दिशाओंमें भाग गये ॥५३॥ असहाय एवं खेदखिन्न पृथु पराजयके मार्गमें स्थित हुआ अर्थात् भागने लगा तब धनुर्धारी कुमारोंने उसका पीछाकर उससे इस प्रकार कहा कि अरे नीच नरपृथु ! अब व्यर्थ कहाँ भागता है ? जिनके कुल और शीलका पता नहीं ऐसे ये हम दोनों आ गये ॥५४-५५॥ जिनका कुल और शील अज्ञात है ऐसे हम लोगोंसे भागता हुआ तू इस समय लज्जित क्यों नहीं होता है ? ॥५६॥ अब हम बाणोंके द्वारा अपने कुल और शीलका पता

१. परसैन्यं महाह्रदे म० । २. परिभ्रान्तैः म० ।

इत्युक्ते विनिवृत्यासौ पृथुराह कृताञ्जलिः । अज्ञानजनितं दोषं वीरौ मे क्षन्तुमर्हथ ॥५८॥
माहात्म्यं भवदीयं मे नाऽऽयातं मतिगोचरम् । भास्करीयं यथा तेजः कुमुदप्रचयोदरम् ॥५९॥
ईदृगेव हि धीराणां कुलशीलनिवेदनम् । शस्यते न तु भारत्या तद्धि सन्देहसङ्कतम् ॥६०॥
अरण्यदाहशक्तस्य पावकस्य न को जनः । ज्वलनादेव सम्भूतिं मूढोऽपि प्रतिपद्यते ॥६१॥
भवन्तौ परमौ धीरौ महाकुलसमुद्भवौ । अस्माकं स्वामिनौ प्राप्तौ यथेष्टसुखदायिनौ ॥६२॥
एवं प्रशस्यमानौ तौ कुमारौ नतमस्तकौ । जातौ निर्वासिताशेषकोपौ शान्तमनोमुखौ ॥६३॥
वज्रजङ्घप्रधानेषु ततः प्राप्तेषु राजसु । ससाक्षिकाऽभवत्प्रीतिः पृथुना सह वीरयोः ॥६४॥
प्रणाममात्रतः प्रीता जायन्ते मानशालिनः । नोन्मूलयन्ति नद्योघा वेतसान् प्रणतात्मकान् ॥६५॥
ततस्तौ सुमहाभूत्या पृथुना पृथिवीपुरम् । प्रवेशितौ समस्तस्य जनस्यानन्दकारिणौ ॥६६॥
मदनाङ्कुशवीरस्य पृथुना परिकल्पिता । कन्या कनकमालाऽसौ महाविभवसङ्गता ॥६७॥
अत्र नीत्वा निशामेकां करणीयविचक्षणौ । निर्गतौ [1]नगराज्जेतुं समस्तां पृथिवीमिमाम् ॥६८॥
सुह्माङ्गमगधैर्वङ्गैः पोदनेशादिभिस्तथा । [2]वृतौ लोकाक्षनगरं गन्तुमेतौ[3] समुद्यतौ ॥६९॥
आक्रामन्तौ सुखं तस्य सम्बद्धान् विषयान् बहून् । अभ्यर्णत्वं परिप्राप्तौ तौ महासाधनान्वितौ ॥७०॥
कुबेरकान्तनामानं राजानं तत्र मानिनम् । समक्षोभयतां[4] नागं पक्षाविव गरुत्मतः ॥७१॥

देते हैं, सावधान होकर खड़े हो जाओ अथवा बलात् खड़े किये जाते हो ॥५७॥ इस प्रकार कहने पर पृथुने लौटकर तथा हाथ जोड़कर कहा कि हे वीरो ! मेरा अज्ञात जनित दोष क्षमा करनेके योग्य हो ॥५८॥ जिस प्रकार सूर्यका तेज कुमुद-समूहके मध्य नहीं आता उसी प्रकार आप लोगों का माहात्म्य मेरी बुद्धिमें नहीं आया ॥५९॥ धीर, वीर मनुष्योंका अपने कुल, शीलका परिचय देना ऐसा ही होता है । वचनों द्वारा जो परिचय दिया जाता है वह ठीक नहीं है क्योंकि उसमें सन्देह हो सकता है ॥६०॥ ऐसा कौन मूढ़ मनुष्य है जो जलने मात्रसे, वनके जलानेमें समर्थ अग्निकी उत्पत्तिको नहीं जान लेता है ? । भावार्थ—अग्नि प्रज्वलित होती है इतने मात्रसे ही उसकी वनदाहक शक्तिका अस्तित्व मूर्खसे मूर्ख व्यक्ति भी स्वीकृत कर लेता है ॥६१॥ आप दोनों परम धीर, महाकुलमें उत्पन्न एवं यथेष्ट सुख देनेवाले हमारे स्वामी हो ॥६२॥ इस प्रकार जिनकी प्रशंसाकी जा रही थी ऐसे दोनों कुमार नतमस्तक, शान्तचित्त तथा शान्त मुख हो गये और उनका सब क्रोध दूर हो गया ॥६३॥ तदनन्तर जब वज्रजंघ आदि प्रधान राजा आ गये तब उनकी साक्षी पूर्वक दोनों वीरोंकी पृथुके साथ मित्रता हो गई ॥६४॥ आचार्य कहते हैं कि मानशाली मनुष्य प्रणाममात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं, सो ठीक ही है क्योंकि नदियोंके प्रवाह नम्रीभूत वेतसके पौधोंको नहीं उखाड़ते ॥६५॥

तदनन्तर राजा पृथुने, सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाले दोनों वीरोंको बड़े वैभवके साथ नगरमें प्रविष्ट कराया ॥६६॥ वहाँ पृथुने महाविभवसे सहित अपनी कनकमाला कन्या वीर मदनाङ्कुशके लिए देना निश्चित किया ॥६७॥ तदनन्तर कार्य करनेमें निपुण दोनों वीर वहाँ एक रात्रि व्यतीतकर इस समस्त पृथिवीको जीतनेके लिए नगरसे बाहर निकल पड़े ॥६८॥ सुह्म, अङ्ग, मगध, वङ्ग तथा पोदनपुर आदिके राजाओंसे घिरे हुए दोनों कुमार लोकाक्षनगरको जानेके लिए उद्यत हुए ॥६९॥ बहुत बड़ी सेनासे सहित दोनों वीर उससे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक देशोंपर सुखसे आक्रमण करते हुए लोकाक्ष नगरके समीप पहुँचे ॥७०॥ वहाँ जिस प्रकार गरुड़के पङ्ख नागको क्षोभित करते हैं उसी प्रकार उन दोनोंने वहाँके कुबेरकान्त नामक अभि-

१. नगरीं जेतुं म० । २. कृतौ म० । ३. मेतैः ज० । ४. समवक्षोभतां म० ।

चतुरङ्गाकुले भीमे परमे समराङ्गणे । जित्वा कुबेरकान्तं तौ पूर्यमाणबलौ भृशम् ॥७२॥
सहस्रैर्नरनाथानामावृतौ वश्यतां गतैः । कृच्छ्राधिगमने यानैर्लम्पाकविषयं गतौ ॥७३॥
एककर्णं विनिर्जित्य राजानं तत्र पुष्कलम् । गतौ मार्गानुकूलत्वाद्वरेन्द्रौ विजयस्थलीम् ॥७४॥
तत्र भ्रातृशतं जित्वा समालोकनमात्रतः । गतौ गङ्गां समुत्तीर्य कैलासस्योत्तरां दिशम् ॥७५॥
तत्र नन्दनचारूणां देशानां कृतसङ्गमौ । पूज्यमानौ नरश्रेष्ठैर्नानोपायनपाणिभिः ॥७६॥
भाषकुन्तलकालाम्बुनन्दिनन्दनसिंहलान् । शलभाननलांश्चौलान्भीमान् भूतरवादिकान् ॥७७॥
नृपान् वश्यत्वमानीय सिन्धोः कूलं परं गतौ । परार्णवतटान्तस्थान् चक्रतुः प्रणतान्नृपान् ॥७८॥
पुरखेटमटम्बेन्द्रा विषयाद्रीश्वराश्च ये । वशत्वे स्थापितास्ताभ्यां कांश्चित्तान् कीर्तयामि ते ॥७९॥
एते जनपदाः केचिदार्या म्लेच्छास्तथा परे । विद्यमानद्वयाः केचिद् विविधाचारसम्मताः ॥८०॥
भीरवो यवनाः कक्षाश्चारवस्त्रिजटा नटाः । शककेरलनेपाला मालवारुलशर्वराः ॥८१॥
वृषाणवैद्यकाश्मीरा हिडिम्बावष्टबर्बराः । त्रिशिराः पारशैलाश्च गौशीलोशीनरात्मकाः ॥८२॥
सूर्यारकाः सनर्ताश्च खशा विन्ध्याः शिखापदाः । मेखलाः शूरसेनाश्च बाह्लीकोलूककोसलाः ॥८३॥
दरीगान्धारसौवीराः पुरीकौबेरकोहराः । अन्ध्रकालकलिङ्गाद्या नानाभाषा पृथग्गुणाः ॥८४॥
विचित्ररत्नवस्त्राद्या बहुपादपजातयः । नानाकरसमायुक्ता हेमादिवसुशालिनः ॥८५॥
देशानामेवमादीनां स्वामिनः समराजिरे । जिताः केचिद्गताः केचित्प्रतापादेव वश्यताम् ॥८६॥
ते महाविभवैर्युक्ता देशभाजोऽनुरागिणः । लवणाङ्कुशयोरिच्छां कुर्वाणा बभ्रमुर्महीम् ॥८७॥

मानी राजाको क्षोभयुक्त किया ॥७१॥ तदनन्तर चतुरङ्ग सेनासे युक्त अत्यन्त भयंकर रणाङ्गण में कुबेरकान्तको जीतकर वे आगे बढ़े, उस समय उनकी सेना अत्यधिक बढ़ती जाती थी ॥७२॥ वहाँसे चलकर आधीनताको प्राप्त हुए हजारों राजाओंसे घिरे हुए लम्पाक देशको गये वहाँ स्थलमार्गसे जाना कठिन था इसलिए नौकाओंके द्वारा जाना पड़ा ॥७३॥ वहाँ एककर्ण नामक राजाको अच्छी तरह जीतकर मार्गकी अनुकूलता होनेसे दोनों ही कुमार विजयस्थली गये ॥७४॥ वहाँ देखने मात्रसे ही सौ भाइयोंको जीतकर तथा गङ्गा नदी उतरकर दोनों कैलास की ओर उत्तर दिशामें गये ॥७५॥ वहाँ उन्होंने नन्दनवनके समान सुन्दर-सुन्दर देशोंमें अच्छी तरह गमन किया तथा नाना प्रकारकी भेंट हाथमें लिये हुए उत्तम मनुष्योंने उनकी पूजा की॥७६॥ तदनन्तर भाषकुन्तल,कालाम्बु, नन्दी, नन्दन, सिंहल, शलभ, अनल, चौल, भीम तथा भूतरव आदि देशोंके राजाओंको वशकर वे सिन्धुके दूसरे तटपर गये तथा वहाँ पश्चिम समुद्रके दूसरे तटपर स्थित राजाओंको नम्रीभूत किया ॥७७–७८॥ पुरखेट तथा मटम्ब आदिके स्वामी एवं अन्य जिन देशोंके अधिपतियोंको उन दोनों कुमारोंने वश किया था हे श्रेणिक ! मैं यहाँ तेरे लिए उनका कुछ वर्णन करता हूँ ॥७९॥ ये देश कुछ तो आर्य देश थे, कुछ म्लेच्छ देश थे, और कुछ नाना प्रकारके आचारसे युक्त दोनों प्रकारके थे ॥८०॥ भीरु, यवन, कक्ष, चारु, त्रिजट, नट, शक, केरल, नेपाल, मालव, आरुल, शर्वर, वृषाण, वैद्य, काश्मीर, हिडिम्ब, अवष्ट, बर्बर, त्रिशिर, पारशैल, गौशील, उशीनर, सूर्यारक, सनर्त, खश, विन्ध्य, शिखापद, मेखल, शूरसेन, वाह्लीक, उलूक, कोसल, दरी, गांधार, सौवीर, पुरी, कौबेर, कोहर, अन्ध्र, काल और कलिङ्ग इत्यादि अनेक देशोंके स्वामी रणाङ्गणमें जीते गये थे और कितने ही प्रतापसे ही आधीनताको प्राप्त हो गये थे। इन सब देशोंमें अलग-अलग नाना प्रकार की भाषाएँ थीं, पृथक्-पृथक् गुण थे, नाना प्रकार रत्न तथा वस्त्रादिका पहिराव था, वृक्षोंकी नाना जातियाँ थीं, अनेक प्रकारकी खानें थीं और सुवर्णादि धनसे सब सुशोभित थे ॥८१–८६॥ महावैभवसे युक्त तथा अनुरागसे सहित नाना देशोंके मनुष्य लवणाङ्कुशकी इच्छानुसार कार्य

प्रसाद्य पृथिवीमेतामथ तौ पुरुषोत्तमौ । नानाराजसहस्राणां महतामुपरि स्थितौ ॥८८॥
रक्षन्तौ विषयान् सम्यङ् नानाचारुकथारतौ । पौण्डरीकपुरं (?) तेन प्रस्थितौ पुरुसम्मदौ ॥८९॥
राष्ट्राद्यधिकृतैः पूजां प्राप्यमाणौ च भूयसीम् । समीपीभावतां प्राप्तौ पुण्डरीकस्य पार्थिवैः ॥९०॥
ततः सप्तमभूपृष्ठं प्रासादस्य समाश्रिता । वृता परमनारीभिः सुखासनपरिग्रहा ॥९१॥
तरलच्छ्रातजीमूतपरिधूसरमुत्थितम् । रजःपटलमद्राक्षीदप्राक्षीच सखीजनम् ॥९२॥
किमिदं दृश्यते सख्यो दिगाक्रमणचञ्चलम् । ऊचुस्ता देवि सैन्यस्य रजश्चक्रमिदं भवेत् ॥९३॥
तथा हि पश्य मध्येऽस्य ज्ञायते स्वच्छवारिणः । अश्वीयं मकराणां वा प्लवमानकदम्बकम् ॥९४॥
नूनं स्वामिनि सिद्धार्थौ कुमारावागताविमौ । तथा ह्येतौ प्रदृश्येते तावेव भुवनोत्तमौ ॥९५॥
आसीदेवं कथा यावत्सीतादेव्या मनोहरा । तावदग्रेसराः प्राप्ता नरा इष्टनिवेदिनः ॥९६॥
उपशोभा ततः पृथ्वी समस्ता[1] नगरे कृता । लोकेनादरयुक्तेन बिभ्रता तोषमुत्तमम् ॥९७॥
प्राकारशिखरावल्पामुच्छ्रिता विमलध्वजाः । मार्गदेशाः कृता दिव्यतोरणासङ्गसुन्दराः ॥९८॥
आगुल्फं पूरितो राजमार्गः पुष्पैः सुगन्धिभिः । चारुवन्दनमालाभिः शोभमानः पदे पदे ॥९९॥
स्थापिता द्वारदेशेषु कलशाः पल्लवाननाः । पट्ट[2]वस्त्रादिभिः शोभा कृता चापणवर्त्मनि ॥१००॥
विद्याधरैः कृतं देवैराहोस्वित्पद्मया स्वयम् । पौण्डरीकपुरं जातमयोध्यासमदर्शनम् ॥१०१॥
दृष्ट्वा सम्प्रविशन्तौ तौ महाविभवसङ्गतौ । आसीन्नगरनारीणां लोको दुःशक्यवर्णनः ॥१०२॥

करते हुए पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥८७॥ इस प्रकर इस पृथिवीको प्रसन्न कर वे दोनों पुरुषोत्तम, अनेक हजार बड़े-बड़े राजाओंके ऊपर स्थित थे ॥८८॥ नाना प्रकारकी सुन्दर कथाओंमें तत्पर तथा अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाले वे दोनों कुमार देशोंकी अच्छी तरह रक्षा करते हुए पौण्डरीकपुरकी ओर चले ॥८९॥ राष्ट्रोंके प्रथम अधिकारी राजाओंके द्वारा अत्यधिक सन्मानको प्राप्त कराये गये दोनों भाई क्रम-क्रमसे पौण्डरीकपुरकी समीपताको प्राप्त हुए ॥९०॥

तदनन्तर महलकी सातवीं भूमिपर सुखसे बैठी एवं उत्तम स्त्रियोंसे घिरी सीताने चञ्चल पतले मेघके समान धूसर वर्ण धूलिपटलको उठते देखा तथा सखीजनोंसे पूछा कि हे सखियो ! दिशाओंपर आक्रमण करनेमें चञ्चल अर्थात् सब ओर फैलनेवाली यह क्या वस्तु दिखाई देती है ? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि यह सेनाका धूलिपटल होना चाहिये ॥९१-९३॥ इसीलिए तो देखो स्वच्छ जलके समान इस धूलिपटलके बीचमें मगरमच्छोंके तैरते हुए समूहके समान घोड़ोंका समूह दिखाई दे रहा है ॥९४॥ हे स्वामिनि ! जान पड़ता है कि ये दोनों कुमार कृत-कृत्य होकर आये हैं, हाँ देखो, वे ही लोकोत्तम कुमार दिखाई दे रहे हैं ॥९५॥ इस तरह जब तक सीता देवीकी मनोहर कथा चल रही थी कि तब तक इष्ट समाचारकी सूचना देनेवाले अग्रगामी पुरुष आ पहुँचे ॥९६॥ तदनन्तर उत्तम सन्तोषको धारण करनेवाले आदरयुक्त मनुष्यों ने नगरमें सब प्रकारकी विशाल शोभा की ॥९७॥ कोटके शिखरोंके ऊपर निर्मल ध्वजाएँ फहराई गईं, मार्ग दिव्यतोरणोंसे सुन्दर किये गये ॥९८॥ राजमार्ग घुटनों तक सुगन्धित फूलोंसे भरा गया एवं पद-पद पर सुन्दर वन्दनमालाओंसे युक्त किया गया ॥९९॥ द्वारों पर पल्लवोंसे युक्त कलश रक्खे गये और बाजारकी गलियोंमें रेशमी वस्त्रादिसे शोभा की गई ॥१००॥ उस समय पौण्डरीकपुर अयोध्याके समान दिखाई देता था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो विद्याधरों ने, देवोंने अथवा लक्ष्मीने ही स्वयं उसकी वैसी रचना की हो ॥१०१॥ महा वैभवके साथ प्रवेश करते हुए उन दोनों कुमारोंको देखकर नगरकी स्त्रियोंमें जो चेष्टा हुई उसका वर्णन करना

१. समस्तां नगरे म० । २. पदवस्त्रादिभिः म० ।

आरात्पुत्रौ समालोक्य कृतकृत्यावुपागतौ । निममज्जेव वैदेही [1]सिन्धावमृतवारिणि ॥१०३॥

आर्याच्छन्दः

विरचितकरपुटकमलौ जननीमुपगम्य सादरौ परमम् ।
नेमतुरवनतशिरसौ सैन्यरजोधूसरौ वीरौ ॥१०४॥
तनयस्नेहप्रवणा पद्मप्रमदा सुतौ परिष्वज्य ।
करतलकृतपरमर्शा शिरसि [2]निनिचोत्तमानन्दा ॥१०५॥
जननीजनितं[3] तौ पुनरभिनन्द्य परं प्रसादमानत्या[4] ।
रविचन्द्राविव लोकव्यवहारकरौ स्थितौ योग्यम् ॥१०६॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशदिग्विजयकीर्त्तनं नामैकाधिकशतं पर्व ॥१०१॥

अशक्य है ॥१०२॥ कृतकृत्य होकर पास आये हुए पुत्रोंको देखकर सीता तो मानो अमृतके समुद्रमें ही डूब गई ॥१०३॥ तदनन्तर जिन्होंने कमलके समान अञ्जलि बाँध रक्खी थी, जो अत्यधिक आदरसे सहित थे, जिनके शिर झुके हुए थे तथा जो सेना की धूलिसे धूसर थे ऐसे दोनों वीरोंने पास आकर माताको नमस्कार किया ॥१०४॥ जो पुत्रोंके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें निपुण थी, हस्ततलसे जो उनका स्पर्श कर रही थी तथा जो उत्तम आनन्दसे युक्त थी ऐसी रामकी पत्नी-सीताने उनका मस्तक चूमा ॥१०५॥ तदनन्तर वे माताके द्वारा किये हुए परम प्रसादको पुनः पुनः नमस्कारके द्वारा स्वीकृत कर सूर्य चन्द्रमाके समान लोक व्यवहारको सम्पन्न करते हुए यथायोग्य सुखसे रहने लगे ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा रचित श्री पद्मपुराणमें लवणांकुश की दिग्विजयका वर्णन करनेवाला एकसौ एकवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०॥

---

१. सिद्धा–म० । २. चुचुम्ब । ३. जननीं जनितौ । ४. प्रसादमानयत्या म० ।

द्व्युत्तरशतं पर्व

एवं तौ परमैश्वर्यं प्राप्तावुत्तममानवौ । स्थितावाज्ञां प्रयच्छन्तावुन्नतानां महीभृताम् ॥१॥
तदा कृतान्तवक्त्रं तु नारदः परिपृष्टवान् । जानकीत्यजनोद्देशं दुःखी भ्राम्यन् गवेषकः ॥२॥
दर्शनेऽवस्थितौ वीरौ प्राप ताभ्यां च पूजितः । आसनादिप्रदानेन गृहस्थमुनिवेषभृत् ॥३॥
ततः सुखं समासीनः परमं तोषमुद्वहन् । अब्रवीत्तावबद्धारः कृतस्निग्धनिरीक्षणः ॥४॥
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीर्यादृशी नरनाथयोः । तादृशी सर्वथा भूयादचिराद्भवतोरपि ॥५॥
ततस्तावूचतुः कौ तौ भगवन् रामलक्ष्मणौ । कीदृग्गुणसमाचारौ कस्य वा कुलसम्भवौ ॥६॥
ततो जगाववद्वारः कृत्वा [1]विस्मितमाननम् । स्थिरमूर्त्तिः क्षणं स्थित्वा [2]भ्रमयन् करपल्लवम् ॥७॥
भुजाभ्यामुत्क्षिपेन्मेरुं प्रतरेन्निम्नगापतिम् । नरो न तद्गुणान् वक्तुं समर्थः कश्चिदेतयोः ॥८॥
अनन्तेनाऽपि कालेन वदनैरन्तवर्जितैः । सकलोऽपि न लोकोऽयं तयोर्वक्तुं गुणान् क्षमः ॥९॥
इदं तद्गुणसम्प्रश्नप्रतीकारसमाकुलम् । हृदयं कम्पमानं मे पश्यतां जातकौतुकौ ॥१०॥
तथापि भवतोर्वाक्यात् स्थूलोक्षयसमाश्रयात् । वदामि तद्गुणं किञ्चिच्छृणुतं पुण्यवर्द्धनम् ॥११॥
अस्तीक्ष्वाकुकुलव्योमसकलामलचन्द्रमाः । नाम्ना दशरथो राजा दुर्वृत्तेन्धनपावकः ॥१२॥
अधितिष्ठन् महातेजोमूर्त्तिरुत्तरकोसलम् । सवितेव प्रकाशत्वं धत्ते यः सर्वविष्टपे ॥१३॥
पुरुषाद्रीन्द्रतो यस्मान्निःसृताः कीर्तिसिन्धवः । उदन्वत् सङ्गता वीध्रा ह्लादयन्त्यखिलं जगत् ॥१४॥
तस्य राज्यमहाभारवहनक्षमचेष्टिताः । चत्वारो गुणसम्पन्नास्तनया सुनया इव ॥१५॥

अथानन्तर परम ऐश्वर्यको प्राप्त हुए वे दोनों पुरुषोत्तम बड़े-बड़े राजाओंको आज्ञा प्रदान करते हुए स्थित थे॥१॥ उसी समय कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे सीताके छोड़नेका स्थान पूछकर उसकी खोज करनेवाले दुखी नारद भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचे। सो दोनों ही वीर उनकी दृष्टिमें पड़े। गृहस्थमुनि अर्थात् क्षुल्लकका वेष धारण करनेवाले उन नारदजीका दोनों ही कुमारोंने आसनादि देकर सम्मान किया॥२-३॥ तदनन्तर सुखसे बैठे परम सन्तोषको धारण करते एवं स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए नारदने उन कुमारोंसे कहा कि राजा राम लक्ष्मणकी जैसी विभूति है सर्वथा वैसी ही विभूति शीघ्र ही आप दोनोंकी भी हो ॥४-५॥ इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि हे भगवन्! वे राम लक्ष्मण कौन हैं? कैसे उनके गुण और समाचार हैं तथा किस कुलमें उत्पन्न हुए हैं? ॥६॥

तदनन्तर क्षणभरके लिए निश्चल शरीर बैठकर मुखको आश्चर्यसे चकित करते एवं करपल्लवको हिलाते हुए नारद बोले ॥७॥ कि मनुष्य भुजाओंसे मेरुको उठा सकता है और समुद्रको तैर सकता है परन्तु इन दोनोंके गुण कहनेके लिए कोई समर्थ नहीं है ॥८॥ यह सबका सब संसार, अनन्तकाल तक और अनन्त जिह्वाओंके द्वारा भी उनके गुण कहनेके लिए समर्थ नहीं है ॥९॥ आपने उनके गुणोंका प्रश्न किया सो इनके उत्तर स्वरूप प्रतिकारसे आकुल हुआ हमारा हृदय काँपने लगा है। आप कौतुकके साथ देखिये ॥१०॥ फिर भी आपलोगोंके कहनेसे स्थूलरूपमें उनके कुछ पुण्यवर्धक गुण कहता हूँ सो सुनो ॥११॥

इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाशके पूर्णचन्द्रमा तथा दुराचाररूपी ईन्धनके लिए अग्निस्वरूप एक दशरथ नामके राजा थे ॥१२॥ जो महातेजस्वरूप थे। उत्तर कोसल देशपर शासन करते थे तथा सूर्यके समान समस्त संसारमें प्रकाश करते थे ॥१३॥ जिस पुरुषरूपी पर्वतराजसे निकलीं और समुद्रमें गिरी हुई कीर्तिरूपी उज्ज्वल नदियाँ समस्त संसारको आनन्दित करती हैं ॥१४॥ राज्यका

---

१. विस्मितमानसम् म० । २. भ्रामयन् म० ।

राम इत्यादितस्तेषामभिरामः समन्ततः । आद्यः सर्वश्रुतज्ञोऽपि विश्रुतः सर्वविष्टपे ॥१६॥
लक्ष्मणेनानुजेनासौ सीतया च द्वितीयया । जनकस्य नरेन्द्रस्य सुतयाऽत्यन्तभक्तया ॥१७॥
[1]जानकं पालयन् सत्यं कृत्वाऽयोध्यां वितानिकाम् । छद्मस्थः पर्यटन् क्षोणीं प्राविशद्दण्डकं वनम् ॥१८॥
स्थानं तत्र परं दुर्गं महाविद्याभृतामपि । सोऽध्यास्त स्त्रैणवृत्तान्तं जातं चन्द्रनखाभवम् ॥१९॥
संग्रामे वेदितुं वार्त्तां पद्मोऽगाद्दनुजस्य च । दशग्रीवेण वैदेही हृता च छलवर्तिना ॥२०॥
ततो महेन्द्रकिष्किन्धश्रीशैलमलयेश्वराः । नृपा विराधिताद्याश्च प्रधानाः कपिकेतवः ॥२१॥
महासाधनसम्पन्ना महाविद्यापराक्रमाः । रामगुणानुरागेण पुण्येन च समाश्रिताः ॥२२॥
लङ्केश्वरं रणे जित्वा वैदेही पुनराहृता । देवलोकपुरीतुल्या विनीता च कृता खगैः ॥२३॥
तत्र तौ परमैश्वर्यसेवितौ पुरुषोत्तमौ । नागेन्द्राविव मोदेते [2]सम्मुखं रामलक्ष्मणौ ॥२४॥
रामो वां न कथं ज्ञातो यस्य लक्ष्मीधरोऽनुजः । चक्रं सुदर्शनं यस्य मोघतापरिवर्जितम् ॥२५॥
एकैकं रक्ष्यते यस्य तदेकगतचेतसा । रत्नं देवसहस्रेण राजराजस्य कारणम् ॥२६॥
सन्त्यक्ता जानकी येन प्रजानां हितकाम्यया । तस्य रामस्य लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिदवेदकः ॥२७॥
आस्तां तावदयं लोकः स्वर्गेऽप्यस्य गुणैः कृताः । मुखरा देवसङ्घातास्तत्परायणचेतसः ॥२८॥
ततोऽङ्कुशो जगादासौ मुने रामेण जानकी । कस्य हेतोः परित्यक्ता वद वाञ्छामि वेदितुम् ॥२९॥
ततः कथितनिःशेषवृत्तान्तमिदमभ्यधात् । तद्गुणाकृष्टचेतस्को देवर्षिः साश्रवीक्षणः ॥३०॥

महाभार उठानेमें जिनकी चेष्टाएँ समर्थ हैं तथा जो गुणोंसे सम्पन्न हैं ऐसे उनके सुनयके समान चार पुत्र हैं ॥१५॥ उन सब पुत्रोंमें राम प्रथम पुत्र हैं जो सब ओरसे सुन्दर हैं तथा सर्वशास्त्रों के ज्ञाता होनेपर भी जो समस्त संसारमें विश्रम अर्थात् शास्त्रसे रहित (पक्षमें—प्रसिद्ध) हैं ॥१६॥ अपने छोटे भाई लक्ष्मण और स्त्री सीताके साथ जो कि राजा जनककी पुत्री थी तथा अत्यन्त भक्त थी, पिताके सत्यकी रक्षा कराते हुए अयोध्याको सूनीकर छद्मस्थवेषमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगे तथा भ्रमण कते हुए दण्डकवनमें प्रविष्ट हुए ॥१७–१८॥ वहाँ महाविद्याधरोंके लिए भी अत्यन्त दुर्गम स्थानमें वे रहते थे और वहीं चन्द्रनखा सम्बन्धी स्त्रीका वृत्तान्त हुआ अर्थात् चन्द्रनखाने अपना त्रियाचरित्र दिखाया ॥१९॥ उधर राम, छोटे भाईकी वार्ता जाननेके लिए युद्धमें गये उधर कपटवृत्ति रावणने सीताका हरण कर लिया ॥२०॥ तदनन्तर महेन्द्र, किष्किन्ध, श्रीशैल और मलयके अधिपति तथा विराधित आदि प्रधान-प्रधान वानरवंशी राजा जो कि महासाधनसे सम्पन्न और विद्यारूप महापराक्रमके धारक थे, रामके गुणोंके अनुरागसे अथवा अपने पुण्योदयसे इनके समीप आये और युद्धमें रावणको जीतकर सीताको वापिस ले आये। विद्याधरोंने अयोध्याको स्वर्गपुरीके समान कर दिया ॥२१–२३॥ परम ऐश्वर्यसे सेवित, पुरुषोंमें उत्तम श्रीराम लक्ष्मण वहाँ नागेन्द्रोंके समान एक दूसरेके सम्मुख आनन्दसे समय बिताते थे ॥२४॥ अथवा अभीतक आप दोनोंको उन रामका ज्ञान क्यों नहीं हुआ जिनका कि वह लक्ष्मण अनुज हैं, जिनके पास कभी व्यर्थ नहीं जाने वाला सुदर्शन चक्र विराजमान है॥२५॥ इसके सिवाय जिसके पास ऐसे और भी रत्न हैं जिनकी एकाग्रचित्त होकर प्रत्येककी हजार-हजार देव रक्षा करते हैं तथा जो उसके राजाधिराजत्वके कारण हैं ॥२६॥ जिन्होंने प्रजाके हित की इच्छासे सीताका परित्याग कर दिया, इस संसारमें ऐसा कौन है जो रामको नहीं जानता हो ॥२७॥ अथवा इस लोककी बात जाने दो इसके गुणोंसे स्वर्गमें भी देवोंके समूह शब्दायमान तथा तत्परचित्त हो रहे हैं ॥२८॥

तदनन्तर अङ्कुशने कहा कि हे मुने ! रामने सीता किस कारण छोड़ी सो कहो मैं जानना चाहता हूँ ॥२९॥ तत्पश्चात् सीताके गुणोंसे जिनका चित्त आकृष्ट हो रहा था तथा जिनके नेत्रोंमें

१. जनकस्येदं जानकं पितृसम्बन्धि इत्यर्थः । २. सत्सुखं म० ।

विशुद्धगोत्रचारित्रहृदया गुणशालिनी । अष्टयोषित्सहस्राणामग्रणीः सुविचक्षणा ॥३१॥
सावित्रीं सह गायत्रीं श्रियं कीर्त्तिं धृतिं ह्रियम् । पवित्रत्वेन निर्जित्य स्थिता जैनश्रुतेः समा ॥३२॥
नूनं जन्मान्तरोपात्तपापकर्मानुभावतः । जनापवादमात्रेण त्यक्ताऽसौ विजने वने ॥३३॥
दुर्लोकघर्मभानूक्तिर्दीधितिप्रतितापिता । प्रायेण विलयं प्राप्ता सती सा सुखवर्द्धिता ॥३४॥
सुकुमाराः प्रपद्यन्ते दुःखमप्यणुकारणात्[1] । म्लायन्ति मालतीमालाः प्रदीपालोकमात्रतः ॥३५॥
अरण्ये किं पुनर्भीमे व्यालजालसमाकुले । वैदेही धारयेत् प्राणानसूर्यंपश्यलोचना ॥३६॥
जिह्वा दुष्टभुजङ्गीव सन्दूष्यानागसं जनम् । कथं न पापलोकस्य व्रजत्येव[2] निवर्त्तनम् ॥३७॥
आर्जवादिगुणश्लाघ्यामत्यन्तविमलां सतीम् । अपोद्य तादृशीं लोको दुःखं प्रेत्येह चाश्नुते ॥३८॥
अथवा स्वोचिते नित्यं कर्मण्याश्रितजागरे । किमत्र भाष्यतां कस्य संसारोऽत्र जुगुप्सितः ॥३९॥
इत्युक्त्वा शोकभारेण समाक्रान्तमना मुनिः । न किञ्चिच्छक्नुवन्वक्तुं मौनयोगमुपाश्रितः ॥४०॥
अथाङ्कुशो विहस्योचे ब्रह्मन्न कुलशोभनम् । कृतं रामेण वैदेहीं मुञ्चता भीषणे वने ॥४१॥
बहवो जनवादस्य निराकरणहेतवः । सन्ति तत्र किमित्येवं विद्धां किल चकार सः ॥४२॥
अनङ्गलवणोऽप्रोचद्विनीता नगरी मुने । कियद्दूरं ततोऽवोचद्वद्वारगतिप्रियः ॥४३॥
योजनानामयोध्या स्यादितः षष्ट्यधिकं शतम् । यस्यां स वर्तते रामः शशाङ्कविमलप्रियः ॥४४॥
कुमारावूचतुर्यावस्तं निर्जेतुं किमास्यते । महीकुटीरके ह्यस्मिन् कस्यान्यस्य प्रधानता ॥४५॥

आँसू छलक आये थे ऐसे नारदने कथा पूरी करते हुए कहा ॥३०॥ कि उसका गोत्र, चारित्र तथा हृदय अत्यन्त शुद्ध है, वह गुणोंसे सुशोभित है, आठ हजार स्त्रियोंकी अग्रणी है, अतिशय पण्डिता है, अपनी पवित्रतासे सावित्री, गायत्री, श्री, कीर्ति, धृति और ह्री देवीको पराजितकर विद्यमान है तथा जिनवाणीके समान है ॥३१-३२॥ निश्चित ही जन्मान्तरमें उपार्जित पाप कर्मके प्रभावसे केवल लोकापवादके कारण उन्होंने उसे निर्जन वनमें छोड़ा है ॥३३॥ सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुई वह सती दुर्जनरूपी सूर्यकी कटूक्तिरूपी किरणोंसे संतप्त होकर प्रायः नष्ट हो गई होगी ॥३४॥ क्योंकि सुकुमार प्राणी थोड़े ही कारणसे दुःखको प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि मालतीकी माला दीपकके प्रकाशमात्रसे मुरझा जाती है ॥३५॥ जिसने अपने नेत्रोंसे कभी सूर्य नहीं देखा ऐसी सीता हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए भयंकर वनमें क्या जीवित रह सकती है ? ॥३६॥ पापी मनुष्यकी जिह्वा दुष्ट भुजङ्गीके समान निरपराध लोगोंको दूषित कर निवृत्त क्यों नहीं होती है ? ॥३७॥ आर्जवादि गुणोंसे प्रशंसनीय और अत्यन्त निर्मल सीता जैसी सतीका जो अपवाद करता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह दुःखको प्राप्त होता है ॥३८॥ अथवा अपने द्वारा वंचित कर्म आश्रित प्राणीके नष्ट करनेके लिए जहाँ सदा जागरूक रहते हैं वहाँ किससे क्या कहा जाय ? इस विषयमें तो यह संसार ही निन्दाका पात्र है ॥३९॥ इतना कहकर जिनका मन शोकके भारसे आक्रान्त हो गया था ऐसे नारदमुनि आगे कुछ भी नहीं कह सके अतः चुप बैठ गये ॥४०॥

अथानन्तर अङ्कुशने हँस कर कहा कि हे ब्रह्मन् ! भयंकर वनमें सीताको छोड़ते हुए रामने कुलकी शोभाके अनुरूप कार्य नहीं किया ॥४१॥ लोकापवादके निराकरण करनेके अनेक उपाय हैं फिर उनके रहते हुए क्यों उन्होंने इस तरह सीताको विद्ध किया—घायल किया ॥४२॥ अनंगलवण नामक दूसरे कुमारने भी कहा कि हे मुने ! यहाँसे अयोध्या नगरी कितनी दूर है ? इसके उत्तरमें भ्रमणके प्रेमी नारदने कहा कि वह अयोध्या यहाँसे साठ योजन दूर है जिसमें चन्द्रमाके समान निर्मल प्रियाके स्वामी राम रहते हैं ॥४३-४४॥ यह सुन दोनों कुमारोंने कहा कि हम उन्हें

---

१. -मप्यनुकारणात् म० । २. व्रजत्यवनिवर्तनम् म० ।

ऊचतुर्वज्रजङ्घं च मामास्मिन्वसुधातले । सुह्मसिन्धुकलिङ्गाद्या राजानः सर्वसाधनाः ॥४६॥
आज्ञाप्यन्तां यथा क्षिप्रमयोध्यागमनं प्रति । सज्जीभवत सर्वेण रणयोग्येन वस्तुना ॥४७॥
संलक्ष्यन्तां महानागा विमदा मदशालिनः । समुद्भूतमहाशब्दा वाजिनो वायुरंहसः ॥४८॥
योधाः कटकविख्याताः समरादपलायिनः । निरीक्ष्यन्तां सुशस्त्राणि मार्ज्यन्तां कण्टकादिकम् ॥४९॥
तूर्यनादा प्रदाप्यन्तां शङ्खनिःस्वानसङ्गताः । महाहवसमारम्भसम्भाषणविचक्षणाः ॥५०॥
एवमाज्ञाप्य सङ्ग्रामसमानन्दसमागतम् । आधाय मानसे धीरौ महासम्मदसङ्गतौ ॥५१॥
शक्राविव विनिश्चिन्त्य त्रिदशान् धरणीपतीन् । महाविभवसम्पन्नौ यथास्वं तस्थतुः सुखम् ॥५२॥
ततस्तयोः समाकर्ण्य पद्मनाभाभिषेणनम् । उत्कण्ठां बिभ्रती तुङ्गां रुरोद जनकात्मजा ॥५३॥
ततः सीतासमीपस्थं सिद्धार्थो नारदं जगौ । इदमीदृक्त्वयाऽऽरब्धं कथं कार्यमशोभनम् ॥५४॥
सम्प्रोत्साहनशीलेन रणकौतुकिना परम् । त्वयेदं रचितं पश्य कुटुम्बस्य विभेदनम् ॥५५॥
स जगाद न जानामि वृत्तान्तमहमीदृशम् । यतः सङ्कथनं न्यस्तं पद्मलक्ष्मणगोचरम् ॥५६॥
एवं गतेऽपि मा भैषीर्नेह किञ्चिदसुन्दरम् । भविष्यतीति जानामि स्वस्थतां नीयतां मनः ॥५७॥
ततः समीपतां गत्वा तां कुमाराववोचताम् । अम्बेदं रुद्यते कस्माद्द्राक्षेपविवर्जितम् ॥५८॥
प्रतिकूलं कृतं केन केन वा परिभाषितम् । दुर्मानसस्य कस्याद्य करोम्यसुवियोजनम् ॥५९॥
अनौषधकरः कोऽसौ क्रीडनं कुरुतेऽहिना । कोऽसौ ते मानवः शोकं करोति त्रिदशोऽपि वा ॥६०॥
कस्यासि कुपिता मातर्जनस्य गलितायुषः । प्रसादः क्रियतामम्ब शोकहेतुनिवेदने ॥६१॥

जीतनेके लिए चलते हैं । इस पृथिवीरूपी कुटियामें किसी दूसरेकी प्रधानता कैसे रह सकती है ? ॥४५॥ उन्होंने वज्रजंघसे भी कहा कि हे माम ! इस वसुधा तल पर जो सुह्म, सिन्धु तथा कलिङ्ग आदि सर्वसाधनसम्पन्न राजा हैं उन्हें आज्ञा दी जाय कि आप लोग अयोध्याके प्रति चलनेके लिए रण के योग्य सब वस्तुएँ लेकर शीघ्र ही तैयार हो जावें ॥४६–४७॥ मद रहित तथा मद सहित बड़े-बड़े हाथी, महाशब्द करनेवाले तथा वायुके समान शीघ्रगामी घोड़े, सेनामें प्रसिद्ध तथा युद्धसे नहीं भागनेवाले योद्धा देखे जावें, उत्तम शस्त्रोंका निरीक्षण किया जाय, कवच आदि साफ किये जावें और महायुद्धके प्रारम्भकी खबर देनेमें निपुण तथा शङ्खके शब्दोंसे मिश्रित तुरहीके शब्द दिलाये जावें ॥४८–५०॥ इस प्रकार राजाओंको आज्ञा दे जो प्राप्त हुए युद्ध सम्बन्धी आनन्दको हृदयमें धारण कर अत्यधिक हर्षसे युक्त थे ऐसे धीर-वीर तथा महावैभवसे सम्पन्न दोनों कुमार उन इन्द्रोंके समान जो देवोंको आज्ञा देकर निश्चिन्त हो जाते हैं निश्चिन्त हो यथा योग्य सुखसे विद्यमान हुए ॥५१–५२॥

तदनन्तर उनकी रामके प्रति चढ़ाई सुन अत्यधिक उत्कण्ठाको धारण करती हुई सीता रोने लगी ॥५३॥ तत्पश्चात् सीताके समीप खड़े नारदसे सिद्धार्थने कहा कि तुमने यह ऐसा अशोभन कार्य क्यों प्रारम्भ किया ? ॥५४॥ रणके कौतुकी एवं रणका प्रोत्साहन देनेवाले तुमने देखो यह कुटुम्बका बड़ा भेद कर दिया है—घरमें बड़ी फूट डाल दी है ॥५५॥ नारदने कहा कि मैं इस वृत्तान्तको ऐसा थोड़े ही जानता था । मैंने तो केवल उनके सामने राम-लक्ष्मण सम्बन्धी चर्चा ही रक्खी थी ॥५६॥ किन्तु ऐसा होने पर भी डरो मत कुछ भी अशोभन कार्य नहीं होगा यह मैं जानता हूँ अतः मनको स्वस्थ करो ॥५७॥ तदनन्तर दोनों कुमार समीप जाकर सीतासे बोले कि हे अम्ब ! क्यों रो रही हो ? बिना किसी विलम्बके शीघ्र ही कहो ॥५८॥ किसने तुम्हारे विरुद्ध काम किया है अथवा किसने तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहा है ? आज किस दुष्ट हृदयके प्राणोंका वियोग करूँ ? ॥५९॥ ओषधि जिसके हाथमें नहीं ऐसा वह कौन मनुष्य साँपके साथ क्रीड़ा करता है ? वह कौन मनुष्य अथवा देव है जो तुम्हें शोक उत्पन्न करता है ? ॥६०॥ हे मातः ! आज किस क्षीणायुष्क पर कुपित हुई हो ? हे अम्ब ! शोक

एवमुक्ता सती देवी जगाद विधृतास्रका । न कस्यचिदहं पुत्रौ कुपिता कमलेक्षणौ ॥६२॥
भवत्पितुर्मया ध्यातमद्य तेनाऽस्मि दुःखिता । रोदिमि प्रबलायातनयनोदकसन्ततिः ॥६३॥
उक्तवत्यामिदं तस्यां तदा श्रेणिक वीरयोः । सिद्धार्थो न पिताऽस्माकमिति बुद्धिः समुद्गता ॥६४॥
ततस्तावूचतुर्मातः कोऽस्माकं जनकः क वा । इति पृष्टाऽगदत्सीता स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥६५॥
स्वस्य सम्भवमाचख्यौ रामसम्भवमेव च । अरण्यागमनं चैव हृतिमागमनं तथा ॥६६॥
यथा देवर्षिणा ख्यातं तच्च सर्वं सविस्तरम् । वर्ततेऽद्यापि कः कालो वृत्तान्तस्य निगूहने ॥६७॥
एतदुक्त्वा जगौ पुत्रौ भवतोर्गर्भजातयोः । किंवदन्तीभयेनाहं युष्मत्पित्रोज्झिता वने ॥६८॥
तत्र सिंहरवाख्यायामटव्यां कृतरोदना । वारणार्थं गतेनाहं वज्रजङ्घेन वीक्षिता ॥६९॥
अनेन प्राप्तनागेन विनिवर्तनकारिणा । विशुद्धशीलरत्नेन श्रावकेण महात्मना ॥७०॥
अहं स्वसेति सम्भाष्य करुणासक्तचेतसा । आनीतेदं निजं स्थानं पूजया चानुपालिता ॥७१॥
तस्यास्य जनकस्येव भवने विभवान्विते । भवन्तौ सम्प्रसूताऽहं पद्मनाभशरीरजौ ॥७२॥
तेनेयं पृथिवी वत्सौ हिमवत्सागरावधिः । लक्ष्मणानुजयुक्तेन विहिता परिचारिका ॥७३॥
महाऽऽहवेऽधुना जाते श्रोष्यामि किमशोभनम् । नाथस्य भवतोः किंवा किं वा देवरगोचरम् ॥७४॥
अनेन ध्यानभारेण परिपीडितमानसा । अहं रोदिमि सत्पुत्रौ कुतोऽन्यदिह कारणम् ॥७५॥
तच्छ्रुत्वा परमं प्राप्तौ सम्मदं स्मितकारिणौ । विकासिवदनाम्भोजावूचतुर्लवणाङ्कुशौ ॥७६॥

का कारण बतलानेकी प्रसन्नता करो ॥६१॥ इस प्रकार कहने पर सीता देवीने अश्रु धारण करते हुए कहा कि हे कमललोचन पुत्रो ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ ॥६२॥ आज मुझे तुम्हारे पिताका स्मरण हो आया है इसीलिए दुःखी हो गई हूँ और इसीलिए बलात् अश्रु डालती हुई रो रही हूँ ॥६३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताके इस प्रकार कहने पर उन दोनों वीरोंकी यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि सिद्धार्थ हमारा पिता नहीं है ॥६४॥ तत्पश्चात् उन दोनोंने पूछा कि हे मातः ! हमारा पिता कौन है ? कहाँ है ? इस प्रकार पूछने पर सीताने अपना सब वृत्तान्त कह दिया ॥६५॥ अपना जन्म, रामका जन्म, वनमें जाना, वहाँ हरण होना तथा पुनः वापिस आना आदि जैसा वृत्तान्त नारदने कहा था वैसा सब विस्तारसे कह सुनाया क्योंकि वृत्तान्तके छिपाने का अब कौन-सा अवसर है ? ॥६६–६७॥

यह कह कर सीताने कहा कि जब तुम दोनों गर्भमें थे तब लोकापवादके भयसे तुम्हारे पिताने मुझे वनमें छोड़ दिया था ॥६८॥ मैं उस सिंहरवा नामकी अटवीमें रो रही थी कि हाथी पकड़नेके लिए गये हुए वज्रजंघने मुझे देखा ॥६९॥ जो हाथी प्राप्त कर अटवीसे लौट रहा था, जो विशुद्ध शक्ति रूपी रत्नका धारक था, महात्मा था एवं दयालुचित्त था, ऐसा यह श्रावक वज्रजंघ मुझे बहिन कह इस स्थान पर ले आया और बड़े सन्मानके साथ उसने हमारा पालन किया ॥७०–७१॥ जो तुम्हारे पिताके ही समान है ऐसे इस वज्रजंघके वैभवशाली घरमें मैंने तुम दोनोंको जन्म दिया है । तुम दोनों श्रीरामके शरीरसे उत्पन्न हो ॥७२॥ हे वत्सो ! लक्ष्मण नामक छोटे भाईसे सहित उन श्रीरामने हिमालयसे लेकर समुद्रपर्यन्तकी इस समस्त पृथिवीको अपनी दासी बनाया है ॥७३॥ अब आज उनके साथ तुम्हारा महायुद्ध होनेवाला है सो मैं क्या पतिकी अमाङ्गलिक वार्ता सुनूँगी ? या तुम्हारी ? अथवा देवर की ? ॥७४॥ इसी ध्यानके कारण खिन्न चित्त होनेसे मैं रो रही हूँ । हे भले पुत्रो ! यहाँ और दूसरा कारण क्या हो सकता है ? ॥७५॥

यह सुनकर लवणाङ्कुश परम हर्षको प्राप्त हो आश्चर्य करने लगे, और उनके मुखकमल खिल उठे । उन्होंने कहा कि अहो ! वह सुधन्वा, लोकश्रेष्ठ, श्रीमान् , विशाल एवं उज्ज्वल कीर्तिके

अहो सोऽसौ पिताऽस्माकं [1]सुधन्वा लोकपुङ्गवः । श्रीमान् विशालसत्कीर्तिः कृतानेकमहाद्भुतः ॥७७॥
विषादं मा गमः मातर्वने [2]त्यक्ताहमित्यतः । भग्नां मानोन्नतिं पश्य रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् ॥७८॥
सीताऽब्रवीदलमलं विरोद्धुं गुरुणा सुतौ । न वर्तत इदं कर्तुं व्रजतां सौम्यचित्तताम् ॥७९॥
महाविनययोगेन समागत्य कृतानती । पितरं [3]पश्यतं वत्सौ मार्गोऽयं नयसङ्गतः ॥८०॥
ऊचतुस्तौ रिपुस्थानप्राप्तं मातः कथं नु तम् । ब्रूवो गत्वा वचः क्लीबमावां ते तनयाविति ॥८१॥
वरं मरणमावाभ्यां प्राप्तं सङ्ग्राममूर्द्धनि । न तु भाषितमीदृक्षं प्रवीरजननिन्दितम् ॥८२॥
स्थितायामथ वैदेह्यां जोषं चिन्तार्तचेतसि । अभिषेकादिकं कृत्यं भेजाते लवणाङ्कुशौ ॥८३॥
श्रितमङ्गलसङ्गौ च कृतसिद्धनमस्कृती । [4]प्रसान्त्व्य मातरं किञ्चित् प्रणम्य च सुमङ्गलौ ॥८४॥
आरूढौ द्विरदौ चन्द्रसूर्यौ वा नगमस्तकम् । प्रस्थितावभिसाकेतं लङ्कां वा रामलक्ष्मणौ ॥८५॥
ततः सन्नाहशब्देन ज्ञात्वा निर्गमनं तयोः । क्षिप्रं योधसहस्राणि निर्जग्मुः पौण्डरीकतः ॥८६॥
परस्परप्रतिस्पर्द्धासमुत्कर्षितचेतसाम् । सैन्यं दर्शयतां राज्ञां संघट्टः परमोऽभवत् ॥८७॥
स्वैरं योजनमात्रं तौ महाकटकसङ्गतौ । पालयन्तौ महीं सम्यङ्[5]नानाशस्योपशोभिताम् ॥८८॥
अग्रतः प्रसृतोदारप्रतापौ परमेश्वरौ । प्रयातौ विषयन्यस्तैः पूज्यमानौ नरेश्वरैः ॥८९॥
महाकुठारहस्तानां तथा कुद्दालधारिणाम् । पुंसां दशसहस्राणि संप्रयांति तदग्रतः ॥९०॥
छिन्दन्तः पादपादींस्ते जनयन्ति समन्ततः । उच्चावचविनिर्मुक्तां महीं दर्पणसन्निभाम् ॥९१॥

धारक तथा अनेक महान् आश्चर्यके करनेवाले श्री राम हमारे पिता हैं ॥७६–७७॥ हे मातः ! 'मैं वनमें छोड़ी गई हूँ' इस बातका विषाद मत करो । तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मणका अहंकार खण्डित देखो ॥७८॥ तब सीताने कहा कि हे पुत्रो ! पिताके साथ विरोध करना रहने दो । यह करना उचित नहीं है । तुम लोग शान्तचित्तताको प्राप्त करो ॥७९॥ हे वत्सो ! बड़ी विनयके साथ जाओ और नमस्कार कर पिताके दर्शन करो यही मार्ग न्यायसंगत है ॥८०॥

यह सुन लवणाङ्कुशने कहा कि वे हमारे शत्रुके स्थानको प्राप्त हैं अतः हे मातः ! हम लोग जाकर यह दीन वचन उनसे किस प्रकार कहें कि हम तुम्हारे लड़के हैं ॥८१॥ संग्रामके अग्रभाग में यदि हम लोगोंको मरण प्राप्त होता है तो अच्छा है परन्तु वीर मनुष्योंके द्वारा निन्दित ऐसा विचार रखना अच्छा नहीं है ॥८२॥ अथानन्तर जिसका चित्त चिन्तासे दुःखी हो रहा था ऐसी सीता चुप हो रही और लवणांकुशने स्नान आदि कार्य सम्पन्न किये ॥८३॥ तत्पश्चात् जिन्होंने मङ्गलमय मुनिसंघकी सेवा की थी, सिद्ध भगवान्को नमस्कार किया था तथा माताको सान्त्वना देकर प्रणाम किया था ऐसे मङ्गलमय वेषको धारण करनेवाले दोनों कुमार दो हाथियों पर उस प्रकार आरूढ़ हुए जिस प्रकार कि चन्द्रमा और सूर्य पर्वतके शिखर पर आरूढ़ होते हैं । तदनन्तर दोनोंने अयोध्याकी ओर उस तरह प्रयाण किया जिस तरह कि राम-लक्ष्मणने लङ्काकी ओर किया था ॥८४–८५॥ तत्पश्चात् तैयारीके शब्दसे उन दोनोंका निर्गमन जानकर हजारों योधा शीघ्र ही पौण्डरीकपुरसे बाहर निकल पड़े ॥८६॥ परस्परकी प्रतिस्पर्धासे जिनका चित्त बढ़ रहा था ऐसे अपनी-अपनी सेनाएँ दिखलानेवाले राजाओंमें बड़ी धक्कम-धक्का हो रही थी ॥८७॥ तदनन्तर जो एक योजन तक फैली हुई बड़ी भारी सेनासे सहित थे जो नाना प्रकारके धान्यसे सुशोभित पृथिवीका अच्छी तरह पालन करते थे, जिनका उत्कृष्ट प्रताप आगे-आगे चल रहा था और जो उन-उन देशोंमें स्थापित राजाओंके द्वारा पूजा प्राप्त कर रहे थे, ऐसे दोनों भाई प्रजाकी रक्षा करते हुए चले जा रहे थे ॥८८–८९॥ बड़े-बड़े कुल्हाड़े और कुदालें धारण करनेवाले दश हजार पुरुष उनके आगे-आगे चलते थे ॥९०॥ वे वृक्षों आदिको

---

१. सुधन्वी म० । २. त्यक्त्वाह-म० । ३. पश्यत म० । ४. प्रशान्त्य म० । ५. नाशस्योप -म० ।

महिषोष्ट्रमहोक्षाद्या कोशसंभारवाहिनः । प्रयान्ति प्रथमं [1]गन्त्री पत्तयश्च मृदुस्वनाः ॥९२॥
ततः पदातिसङ्घाता युवसारङ्गविभ्रमाः । पश्चात्तुरङ्गवृन्दानि कुर्वन्त्युत्तमवल्गितम् ॥९३॥
अथ काञ्चनकक्षाभिर्नितान्तकृतराजनाः । महाघण्टाकृतस्वानाः शङ्खचामरधारिणः ॥९४॥
बुद्बुदादर्शलम्बूषचारुवेषा महोद्धताः । अयस्ताम्रसुवर्णादिबद्धशुभ्रमहारदाः ॥९५॥
रत्नचामीकराद्यात्मकण्ठमालाविभूषिताः । चलत्पर्वतसङ्काशा नानावर्णकसङ्गिनः ॥९६॥
केचिन्निर्भरनिश्च्योतद्गण्डा मुकुलितेक्षणाः । हृष्टा दानोद्गमाः केचिद्वेगचण्डा घनोपमाः ॥९७॥
अधिष्ठिताः सुसन्नाहैर्नानाशास्त्रविशारदैः । समुद्भूतमहाशब्दैः पुरुषैः पुरुदीप्तिभिः ॥९८॥
स्वान्यसैन्यमुद्भूतनिनादज्ञानकोविदाः । सर्वशिक्षासुसम्पन्ना दन्तिनश्चारुविभ्रमाः ॥९९॥
बिभ्राणाः कवचं चारु पश्चाद्विन्यस्तखेटकाः । सादिनस्तत्र राजन्ते परमं कुन्तपाणयः ॥१००॥
आश्ववृन्दखुराघातसमुद्भूतेन रेणुना । नभः पाण्डुरजीमूतचयैरिव [2]समन्ततम् ॥१०१॥
शस्त्रान्धकारपिहिता नानाविभ्रमकारिणः । [3]अहंयवः समुद्वृत्ताः प्रवर्त्तन्ते पदातयः ॥१०२॥
शयनासनताम्बूलगन्धमाल्यैर्मनोहरैः । न कश्चिद्दुःस्थितस्तत्र वस्त्राहारविलेपनैः ॥१०३॥
नियुक्ता राजवाक्येन सन्तताः पथि मानवाः । दिने दिने महादक्षा बद्धकक्षाः सुचेतसः ॥१०४॥
मधु शीधु घृतं वारि नानान्नं रसवत्परम् । परमादरसम्पन्नं प्रयच्छन्ति समन्ततः ॥१०५॥

काटते हुए ऊँची-नीची भूमिको सब ओरसे दर्पणके समान करते जाते थे ॥९१॥ सबसे पहले खजानेके भारको धारण करनेवाले भैंसे ऊँट तथा बड़े-बड़े बैल जा रहे थे। फिर कोमल शब्द करते हुए गाड़ियोंके सेवक चल रहे थे। तदनन्तर तरुण हरिणके समान उछलनेवाले पैदल सैनिकोंके समूह और उनके बाद उत्तम चेष्टाएँ करनेवाले घोड़ोंके समूह जा रहे थे ॥९२-९३॥ उनके पश्चात् जो सुवर्णकी मालाओंसे अत्यधिक सुशोभित थे, जिनके गलेमें बँधे हुए बड़े-बड़े घण्टा शब्द कर रहे थे, जो शङ्खों और चामरोंको धारण कर रहे थे, काँचके छोटे-छोटे गोले तथा दर्पण तथा फन्नूसों आदिसे जिनका वेष बहुत सुन्दर जान पड़ता था, जो महाउद्दण्ड थे, जिनकी सफेद रङ्गकी बड़ी-बड़ी खीसें लोहा तामा तथा सुवर्णादिसे जड़ी हुई थीं, जो रत्न तथा सुवर्णादिसे निर्मित कण्ठमालाओंसे विभूषित थे, चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ते थे, नाना रङ्गके चित्रामसे सहित थे, जिनमेंसे किन्हींके गण्डस्थलोंसे अत्यधिक मद झर रहा था, कोई नेत्र बन्द कर रहे थे, कोई हर्षसे परिपूर्ण थे, किन्हींके मदकी उत्पत्ति होनेवाली थी, कोई वेगसे तीक्ष्ण थे और कोई मेघोंके समान थे, जो कवच आदिसे युक्त, नाना शास्त्रोंमें निपुण, महाशब्द करनेवाले और अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोंसे अधिष्ठित थे, जो अपनी तथा परायी सेनामें उत्पन्न हुए शब्दके जाननेमें निपुण थे, सर्वप्रकारकी शिक्षासे सम्पन्न थे और सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाले थे ऐसे हाथी जा रहे थे ॥९४-९९॥ उनके पश्चात् जो सुन्दर कवच धारण कर रहे थे, जिन्होंने पीछेकी ओर ढाल टाँग रक्खी थी तथा भाले जिनके हाथोंमें थे ऐसे घुड़सवार सुशोभित हो रहे थे ॥१००॥ अश्वसमूहके खुराघातसे उठी धूलिसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो सफेद मेघोंके समूहसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१०१॥ उनके पश्चात् जो शस्त्रोंके अन्धकारसे आच्छादित थे, नाना प्रकारकी चेष्टाओंको करनेवाले थे, अहङ्कारी थे तथा उदात्त आचारसे युक्त थे ऐसे पदाति चल रहे थे ॥१०२॥ उस विशाल सेनामें शयन, आसन, पान, गन्ध, माला तथा मनोहर वस्त्र, आहार और विलेपन आदिसे कोई दुःखी नहीं था अर्थात् सबके लिए उक्त पदार्थ सुलभ थे ॥१०३॥ राजाकी आज्ञानुसार नियुक्त होकर जो मार्गमें सब जगह व्याप्त थे, अत्यन्त चतुर थे, कार्य करनेके लिए जो सदा कमर कसे रखते थे और उत्तम हृदयसे युक्त थे ऐसे मनुष्य प्रतिदिन

---

१. मन्त्री म० । २. समन्ततः म० । ३. अहङ्कारयुक्ताः 'अहंशुभयोर्युस्' इति युस्प्रत्ययः ।

नादर्शि मलिनस्तत्र न दीनो न बुभुक्षितः । तृषितो न कुवस्त्रो वा जनो न च विचिन्तकः ॥१०६॥
नानाभरणसम्पन्नाश्चारुवेषाः सुकान्तयः । पुरुषास्तत्र नार्यश्च रेजुः सैन्यमहार्णवे ॥१०७॥
विभूत्या परया युक्तावेवं जनकजात्मजौ । साकेताविषयं प्राप्ताविन्द्राविव सुरास्पदम् ॥१०८॥
यवपुण्ड्रेक्षुगोधूमप्रभृत्युत्तमसम्पदा । सस्येन शोभिता यत्र वसुधान्तरवर्जिता ॥१०९॥
सरितो राजहंसौघैः सरांसि कमलोत्पलैः । पर्वता विविधैः पुष्पैर्गीतैरुद्यानभूमयः ॥११०॥
नैचिकीमहिषीव्रातैर्महोक्षखरहारिभिः । गोपीभिर्मञ्चसक्ताभिर्यत्र भान्ति वनानि च ॥१११॥[1]
सीमान्तावस्थिता यत्र ग्रामा नगरसन्निभाः । त्रिविष्टपपुराभानि राजन्ते नगराणि च ॥११२॥
स्वैरं तमुपभुञ्जानौ विषयं विषयप्रियम् । परेण तेजसा युक्तौ गच्छन्तौ लवणाङ्कुशौ ॥११३॥
दन्तिनां रणचण्डानां गण्डनिर्गतवारिणा[2] । कर्दमत्वं समानीता सकलाः पथि पांसवः ॥११४॥
भृशं पटुखुराघातैर्वाजिनां चञ्चलात्मनाम् । जर्जरत्वमिवानीता कोसलाविषयावनिः ॥११५॥
ततः सन्ध्यासमासक्तघनौघेनेव सङ्गतम् । दूरे नभः समालक्ष्य जगदुर्लवणांकुशौ ॥११६॥
किमेतद्दृश्यते माम तुङ्गशोणमहाद्युति[3] । वज्रजङ्घस्ततोऽवोचत्परिज्ञाय चिरादिव ॥११७॥
देवावेषा विनीतासौ दृश्यते नगरी परा । हेमप्राकारसञ्जाता यस्याश्छायेयमुन्नता ॥११८॥
अस्यां हलधरः श्रीमानास्तेऽसौ [4]भवतोः पिता । यस्य नारायणो भ्राता शत्रुघ्नश्च महागुणः ॥११९॥
शौर्यमानसमेताभिः कथाभिरिति[5]सक्तयोः । सुखेन गच्छतोरासीदन्तराले तयोर्नदी ॥१२०॥

बड़े आदरके साथ सबके लिए मधु, स्वादिष्ट पेय, घी, पानी और नाना प्रकारके रसीले भोजन सब ओर प्रदान करते रहते थे ॥१०४-१०५॥ उस सेनामें न तो कोई मनुष्य मलिन दिखाई देता था, न दीन, न भूखा, न प्यासा, न कुत्सित वस्त्र धारण करनेवाला और न चिन्तातुर ही दिखाई पड़ता था ॥१०६॥ उस सेनारूपी महासागरमें नाना आभरणोंसे युक्त, उत्तम वेशसे सुसज्जित एवं उत्तम कान्तिसे युक्त पुरुष और स्त्रियाँ सुशोभित थीं ॥१०७॥ इस प्रकार परमविभूतिसे युक्त सीताके दोनों पुत्र उस तरह अयोध्याके उस देशमें पहुँचे जिस तरह कि इन्द्र देवोंके स्थानमें पहुँचते हैं ॥१०८॥ जौ, पौंडे, ईख तथा गेहूँ आदि उत्तमोत्तम धान्योंसे जहाँकी भूमि निरन्तर सुशोभित है ॥१०९॥ वहाँकी नदियाँ राजहंसोंके समूहोंसे, तालाब कमलों और कुवलयोंसे, पर्वत नाना प्रकारके पुष्पोंसे और बाग-बगीचोंकी भूमियाँ सुन्दर संगीतोंसे सुशोभित हैं ॥११०॥ जहाँ के वन बड़े-बड़े बैलोंके शब्दोंसे, सुन्दर गायों और भैंसोंके समूहसे तथा मचानपर बैठी गोपालिकाओंसे सुशोभित हैं ॥१११॥ जहाँकी सीमाओंपर स्थित गाँव नगरोंके समान और नगर स्वर्गपुरीके समान सुशोभित हैं ॥११२॥ इस तरह पञ्चेन्द्रियके विषयोंसे प्रिय उस देशका इच्छानुसार उपभोग करते हुए, परमतेजके धारक लवणाङ्कुश आनन्दसे चले जाते थे ॥११३॥ रणके कारण तीव्र क्रोधको प्राप्त हुए हाथियोंके गण्डस्थलसे झरनेवाले जलसे मार्गकी समस्त धूलि कीचड़पनेको प्राप्त हो गई थी ॥११४॥ चञ्चल घोड़ोंके तीक्ष्ण खुराघातसे उस कोमल देशकी भूमि मानो अत्यन्त जर्जर अवस्थाको प्राप्त हो गई थी ॥११५॥

तदनन्तर लवणाङ्कुश, दूरसे ही आकाशको सन्ध्याकालीन मेघोंके समूह सहित जैसा देखकर बोले कि हे माम ! जिसकी लाल-लाल विशाल कान्ति बहुत ऊँची उठ रही है ऐसा यह क्या दिखाई दे रहा है ? यह सुन वज्रजङ्घने बहुत देरतक पहिचाननेके बाद कहा कि हे देवो! यह वह उत्कृष्ट अयोध्या नगरी दिखाई दे रही है जिसके सुवर्णमय कोटकी यह कान्ति इतनी ऊँची उठ रही है ॥११६-११८॥ इस नगरीमें वह श्रीमान् बलभद्र रहते हैं जो कि तुम दोनोंके पिता हैं तथा नारायण और महागुणवान् शत्रुघ्न जिनके भाई हैं ॥११९॥ इस तरह शूर-वीरता

१. नैत्रिकी—म०, नैचिकी = धेनुः । २. वारिणां म० । ३. द्युतिः म० । ४. भवतः म० । ५. रात्तसक्तयोः म० ।

[1]प्रवृत्तवेगमात्रेण नगरी ग्रहणैषिणोः । जाताऽसावन्तरे तृष्णा सिद्धिप्रस्थितयोरिव ॥१२१॥
सैन्यमावासितं तत्र परिश्रमसमागतम् । सुरसैन्यमिवोदारमुपनन्दननिम्नगाम् ॥१२२॥
अथ श्रुत्वा परानीकं स्थितमासन्नगोचरे । किञ्चिद्विस्मयमापन्नावूचतुः पद्मलक्ष्मणौ ॥१२३॥
त्वरितं कः पुनर्मर्तुमयं वाञ्छति मानवः । युद्धापदेशमाश्रित्य यदेत्यन्तिकमावयोः ॥१२४॥
ददौ नारायणश्चाज्ञां विराधितमहीभृते । क्रियतां साधनं सज्जं युद्धाय क्षेपवर्जितम् ॥१२५॥
वृषनागप्लवङ्गादिकेतनाः खेचराधिपाः । क्रियन्तामुदितज्ञाना सम्प्राप्ते रणकर्मणि ॥१२६॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा विराधितखगेश्वरः । नृपान् किष्किन्धनाथाद्यान् समाहूय समुद्यतः ॥१२७॥
दूतदर्शनमात्रेण सर्वे ते खेचरेश्वराः । अयोध्यानगरीं प्राप्ता महासाधनसङ्गताः ॥१२८॥
अथात्यन्ताकुलात्मानौ तदा सिद्धार्थनारदौ । प्रभामण्डलराजाय गत्वा ज्ञापयतां द्रुतम् ॥१२९॥
श्रुत्वा स्वसुर्यथा वृत्तं वात्सल्यगुणयोगतः । बभूव परमं दुःखी प्रभामण्डलमण्डितः ॥१३०॥
विषादं विस्मयं हर्षं बिभ्राणश्च त्वरान्वितः । आरुह्य मनसा तुल्यं विमानं पितृसङ्गतः ॥१३१॥
समेतः सर्वसैन्येन किङ्कर्तव्यत्वविह्वलः । पौण्डरीकपुरं चैव प्रस्थितः स्नेहनिर्भरः ॥१३२॥
प्रभामण्डलमायातं जनकं मातरं तथा । दृष्ट्वा सीता नवीभूतशोकोत्थाय त्वरान्विता ॥१३३॥
विप्रलापं परिष्वज्य चक्रेऽस्रकृतदुर्दिना । निर्वासनादिकं दुःखं वेदयन्ती सुविह्वला ॥१३४॥
सान्त्वयित्वाऽतिकृच्छ्रेण तां प्रभामण्डलो जगौ । देवि संशयमापन्नौ पुत्रौ ते साधु नो कृतम् ॥१३५॥

और गौरवसे सहित कथाओंसे जो अत्यन्त प्रसन्न थे ऐसे सुखसे जाते हुए उन दोनोंके बीच नदी आ पड़ी ॥१२०॥ जो अपने चालू वेगसे ही उस नगरीको ग्रहण करनेकी इच्छा रखते थे ऐसे उन दोनों वीरोंके बीच वह नदी उस प्रकार आ पड़ी जिसप्रकार कि मोक्षके लिए प्रस्थान करनेवालेके बीच तृष्णा आ पड़ती है ॥१२१॥ जिस प्रकार नन्दन वनकी नदीके समीप देवोंकी विशाल सेना ठहराई जाती है उसी प्रकार उस नदीके समीप थकी मांदी सेना ठहरा दी गई ॥१२२॥

अथानन्तर शत्रुकी सेनाको निकटवर्ती स्थानमें स्थित सुन परम आश्चर्यको प्राप्त होते हुए राम लक्ष्मणने कहा कि ॥१२३॥ यह कौन मनुष्य शीघ्र ही मरना चाहता है जो युद्धका बहाना लेकर हम दोनोंके पास चला आ रहा है ॥१२४॥ लक्ष्मणने उसी समय राजा विराधितको आज्ञा दी कि विना किसी विलम्बके युद्धके लिए सेना तैयार की जाय ॥१२५॥ रणका कार्य उपस्थित हुआ है इसलिए वृष, नाग तथा वानर आदिकी पताकाओंको धारण करने वाले विद्याधर राजाओंको सब समाचारका ज्ञान कराओ अर्थात् उनके पास सब समाचार भेजे जाँय ॥१२६॥ 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कह कर राजा विराधित सुग्रीव आदि राजाओंको बुला कर युद्धके लिए उद्यत हो गया ॥१२७॥ दूतके देखते ही वे सब विद्याधर राजा बड़ी-बड़ी सेनाएं लेकर अयोध्या आ पहुँचे ॥१२८॥

अथानन्तर जिनकी आत्मा अत्यन्त आकुल हो रही थी ऐसे सिद्धार्थ और नारदने शीघ्र ही जा कर भामण्डलके लिए सब खबर दी ॥१२९॥ बहिन सीताका जो हाल हुआ था उसे सुन कर वात्सल्य गुणके कारण भामण्डल बहुत दुखी हुआ ॥१३०॥ तदनन्तर विषाद विस्मय और हर्षको धारण करने वाला, शीघ्रतासे सहित एवं स्नेहसे भरा भामण्डल, किंकर्तव्यविमूढ हो पिता सहित मनके समान शीघ्रगामी विमान पर आरूढ़ हो सब सेनाके साथ पौण्डरीकपुरकी ओर चला ॥१३१-१३२॥ भामण्डल, पिता और माताको आया देख जिसका शोक नया हो गया था ऐसी सीता शीघ्रतासे उठ सबका आलिङ्गन कर आसुंओंकी लगातार वर्षा करती हुई विलाप करने लगी। वह उस समय अपने परित्याग आदिके दुःखको बतलाती हुई विह्वल हो उठती थी ॥१३३-१३४॥ भामण्डलने उसे बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना देकर कहा कि हे देवि ! तेरे पुत्र

---

१. प्रवृत्ते ज० ।

हलचक्रधरी ताभ्यामुपेत्य क्षोभितौ यतः । सुराणामपि यौ वीरौ न जय्यौ पुरुषोत्तमौ ॥१३६॥
कुमारयोस्तयोर्यावत्प्रमादो नोपजायते । व्रजामस्तावदेवाशु चिन्तयामोऽभिरक्षणम् ॥१३७॥
ततः स्नुषासमेताऽसौ भामण्डलविमानगा । प्रवृत्ता तनयौ तेन वज्रजङ्घबलान्वितौ ॥१३८॥
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीं कोऽसौ वर्णयितुं क्षमः । इति श्रेणिक संक्षेपात्कीर्त्यमानमिदं शृणु ॥१३९॥
रथाश्वगजपादातमहार्णवसमावृतौ । वहन्ताविव संरम्भं निर्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥१४०॥
अश्वयुक्तरथारूढः शत्रुघ्नश्च प्रतापवान् । हारराजितवक्षस्को निर्ययौ युद्धमानसः ॥१४१॥
ततोऽभवत्कृतान्तास्यः सर्वसैन्यपुरःसरः । मानी हरिणकेशीव नाकौकःसैनिकाग्रणीः ॥१४२॥
शरासनकृतच्छायं चतुरङ्गं महाद्युति । अप्रमेयं बलं तस्य प्रतापपरिवारणम् ॥१४३॥
सुरप्रासादसङ्काशो मध्यस्तम्भोऽन्तकध्वजः । शात्रवानीकदुःप्रेक्षो रेजे तस्य महारथः ॥१४४॥
अनुमार्गं त्रिमूर्धोऽस्य ततो वह्निशिखो नृपः । सिंहविक्रमनामा च तथा दीर्घभुजश्रुतिः ॥१४५॥
सिंहोदरः सुमेरुश्च बालिखिल्यो महाबलः । प्रचण्डो रौद्रभूतिश्च शरभः स्यन्दनः पृथुः ॥१४६॥
कुलिशश्रवणश्चण्डो मारिदत्तो रणप्रियः । मृगेन्द्रवाहनाद्याश्च सामन्ता मत्तमानसाः ॥१४७॥
सहस्रपञ्चकेयत्ता नानाशस्त्रान्धकारिणः । निर्जग्मुर्वन्दिनां वृन्दैरुद्गीतगुणकोटयः ॥१४८॥
एवं कुमारकौघ्योऽपि कुटिलानीकसङ्गताः । दृष्टप्रत्ययशस्त्राङ्के क्षणविन्यस्तचक्षुषः ॥१४९॥
युद्धानन्दकृतोत्साहा नाथभक्तिपरायणाः । महाबलास्त्वरावन्तो निरीयुः कम्पितक्ष्माः ॥१५०॥
रथैः केचिन्नगैस्तुङ्गैर्द्विपैः केचिद्घनोपमैः । महार्णवतरङ्गाभैस्तुरङ्गैरपरैः परे ॥१५१॥

संशयको प्राप्त हुए है । उन्होंने यह अच्छा नहीं किया ॥१३५॥ उन्होंने जाकर उन बलभद्र और नारायणको क्षोभित किया है जो पुरुषोत्तम वीर देवोंके भी अजेय हैं ॥१३६॥ जब तक उन कुमारोंका प्रमाद नहीं होता है तब तक आओ शीघ्र ही चलें और रक्षाका उपाय सोचें ॥१३७॥ तदनन्तर पुत्र-वधुओं सहित सीता भामण्डलके विमानमें बैठ उस ओर चली जिस ओर कि वज्रजङ्घ और सेनासे सहित दोनों पुत्र गये थे ॥१३८॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! राम लक्ष्मणकी पूर्ण लक्ष्मीका वर्णनके लिए कौन समर्थ है ? इसलिए संक्षेपसे ही यहाँ कहते हैं सो सुन ॥१३९॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक रूप महासागरसे घिरे हुए राम लक्ष्मण क्रोधको धारण करते हुएके समान निकले ॥१४०॥ जो घोड़े जुते हुए रथ पर सवार था, जिसका वक्षः स्थल हारसे सुशोभित था तथा जिसका मन युद्धमें लग रहा था ऐसा प्रतापी शत्रुघ्न भी निकल कर बाहर आया ॥१४१॥ जिस प्रकार हरिणकेशी देव सैनिकोंका अग्रणी होता है उसी प्रकार मानी कृतान्तवक्त्र सब सेनाका अग्रसर हुआ ॥१४२॥ जिसमें धनुषोंकी छाया हो रही थी तथा जो महा कान्तिसे युक्त थी ऐसी उसकी अपरिमित चतुरङ्गिणी सेना उसके प्रतापको बढ़ा रही थी ॥१४३॥ जिसमें बीचके खम्भा के ऊपर ध्वजा फहरा रही थी, तथा जो शत्रुओंकी सेनाके द्वारा दुर्निरीक्ष्य था ऐसा उसका बड़ा भारी रथ देवोंके महलके समान सुशोभित हो रहा था ॥१४४॥ कृतान्तवक्त्रके पीछे त्रिमूर्ध, फिर अग्निशिख, फिर सिंहविक्रम, फिर दीर्घबाहु, फिर सिंहोदर, सुमेरु, महाबलवान् बालिखिल्य, अत्यन्त क्रोधी रौद्रभूति, शरभ, स्यन्दन, क्रोधी वज्रकर्ण, युद्धका प्रेमी मारिदत्त, और मदोन्मत्त मनके धारक मृगेन्द्रवाहन आदि पाँच हजार सामन्त बाहर निकले। ये सभी सामन्त नाना शस्त्र रूपी अन्धकारको धारण करनेवाले थे तथा चारणोंके समूह उनके करोड़ों गुणोंका उद्गान कर रहे थे ॥१४५-१४८॥ इसी प्रकार जो कुटिल सेनाओंसे सहित थी, जिन्होंने विश्वासप्रद शस्त्र के ऊपर क्षण भरके लिए अपनी दृष्टि डाली था, युद्ध सम्बन्धी हर्षसे जिनका उत्साह बढ़ रहा था, जो स्वामीकी भक्तिमें तत्पर थीं, महाबलवान् थीं, शीघ्रतासे सहित थीं और जिन्होंने पृथिवीको कम्पित कर दिया था ऐसी कुमारोंकी अनेक श्रेणियाँ भी बाहर निकलीं ॥१४९-१५०॥ नाना प्रकार

शिबिकाशिखरैः केचिद्युग्यैर्योग्यतरैः परे । भियंगुर्बहुवादित्रबधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥१५२॥
सकङ्कटशिरस्त्राणाः क्रोधालिङ्गितचेतसः । पुराहष्टसुविक्रान्तप्रसादपरसेवकाः ॥१५३॥
ततः श्रुत्वा परानीकनिःस्वनं सम्भ्रमान्वितः । सन्नह्यतेति सैन्यं स्वं वज्रजङ्घः समादिशत् ॥१५४॥
ततस्ते परसैन्यस्य श्रुत्वा निःस्वनमावृताः । स्वयमेव सुसन्नद्धास्तस्यान्तिकमुपागमन् ॥१५५॥
कालानला[1]प्रचण्डाङ्गवङ्गा नेपालवर्वराः । पौण्ड्रा मागधसौस्नाश्च पारशैलाः ससिंहलाः ॥१५६॥
कालिङ्गकाश्च राजानो रत्नाङ्काद्या महाबलाः । एकादशसहस्राणि युक्ता ह्युत्तमतेजसा[2] ॥१५७॥
एवं तत्परमं सैन्यं परसैन्यकृताननम् । सङ्घट्टमुत्तमं प्राप्तं चलितं प्रचलायुधम् ॥१५८॥
तयोः समागमो रौद्रो देवासुरकृताद्भुतः । [3]बभूव सुमहाशब्दः क्षुब्धाकूपारयोरिव ॥१५९॥
प्रहर प्रथमं क्षुद्र मुञ्चास्त्रं किमुपेक्षसे । प्रहन्तुं प्रथमं शस्त्रं न मे जातु प्रवर्तते ॥१६०॥
प्रहृतं लघुना तेन विशदोऽभूद्भुजो मम । प्रहरस्व वपुर्गाढं दृढपीडितमुष्टिकः ॥१६१॥
किञ्चिद् व्रज पुरोभागं सञ्चारो नास्ति सङ्गरे । सायकस्यैनमुज्झित्वा छुरिकां वा समाश्रय ॥१६२॥
किं वेपसे न हन्मि त्वां मुञ्च मार्गमयं परः । भटो युद्धमहाकण्डूचपलोऽग्रेऽवतिष्ठताम् ॥१६३॥
किं वृथा गर्जसि क्षुद्र न वीर्यं वाचि तिष्ठति । अयं ते चेष्टितेनैव करोमि रणपूजनम् ॥१६४॥
एवमाद्या महारावा भटानां शौर्यशालिनाम् । निश्चेरुरतिगम्भीरा वदनेभ्यः समन्ततः ॥१६५॥

के वादित्रोंसे जिन्होंने दिशाओंको बहिरा कर दिया था, जो कवच और टोपसे सहित थे, जिनके चित्त क्रोधसे व्याप्त थे, तथा जिनके सेवक पूर्व दृष्ट, परम पराक्रमी और प्रसन्नता प्राप्त करनेमें तत्पर थे ऐसे कितने ही लोग पर्वतोंके समान ऊँचे रथोंसे, कितने ही मेघोंके समान हाथियोंसे, कितने ही महासागरकी तरङ्गोंके समान घोड़ोंसे, कितने ही पालकीके शिखरोंसे और कितने ही अत्यन्त योग्य वृषभोंसे अर्थात् इन पर आरूढ हो बाहर निकले ॥१५१-१५३॥

तदनन्तर परकीय सेनाका शब्द सुनकर संभ्रमसे सहित वज्रजङ्घने अपनी सेनाको आदेश दिया कि तैयार होओ ॥१५४॥ तदनन्तर पर-सेनाका शब्द सुनकर कवच आदिसे आवृत सब सैनिक तैयार हो वज्रजङ्घके पास स्वयं आ गये ॥१५५॥ प्रलय कालकी अग्निके समान प्रचण्ड अङ्ग, वङ्ग, नेपाल, वर्वर, पौण्ड, मागध, सौस्न, पारशैल, सिंहक, कालिङ्गक तथा रत्नाङ्क आदि महाबलवान् एवं उत्तमतेजसे युक्त ग्यारह हजार राजा युद्धके लिए तैयार हुए ॥१५६-१५७॥ इसप्रकार जिसने शत्रुसेनाकी ओर मुख किया था, तथा जिसमें शस्त्र चल रहे थे ऐसी वह चञ्चल उत्कृष्ट सेना उत्तम संघट्टको प्राप्त हुई अर्थात् दोनों सेनाओंमें तीव्र मुठभेड़ हुई ॥१५८॥ उन दोनों सेनाओंमें ऐसा भयंकर समागम हुआ जो पहले हुए देव और असुरोंके समागमसे भी कहीं आश्चर्यकारी था तथा क्षोभको प्राप्त हुए दो समुद्रोंके समागमके समान महाशब्द कर रहा था ॥१५९॥ 'अरे क्षुद्र! पहले प्रहार कर, शस्त्र छोड़, क्यों उपेक्षा कर रहा है? मेरा शस्त्र पहले प्रहार करनेके लिए कभी प्रवृत्त नहीं होता ॥१६०॥ अरे, उसने हलका प्रहार किये इससे मेरी भुजा स्वस्थ रही आई अर्थात् उसमें कुछ हुआ ही नहीं, जरा दृढ़ मुट्ठी कसकर शरीरपर जोरदार प्रहार कर ॥१६१॥ कुछ सामने आ, युद्धमें बाणका संचार ठीक नहीं हो रहा है, अथवा फिर बाणको छोड़ छुरी उठा ॥१६२॥ क्यों काँप रहा है? मैं तुझे नहीं मारता, मार्ग छोड़, युद्धकी महाखाजसे चपल यह दूसरा प्रबल योद्धा सामने खड़ा हो ॥१६३॥ अरे क्षुद्र! व्यर्थ क्यों गरज रहा है? वचनमें शक्ति नहीं रहती, यह मैं तेरी चेष्टासे ही रणकी पूजा करता हूँ' ॥१६४॥ इन्हें आदि लेकर, पराक्रमसे सुशोभित योद्धाओंके मुखोंसे सब ओर अत्यन्त गम्भीर महाशब्द निकल रहे

१. कालानलाः प्रचूडाङ्ग-म०, ज० । २. तेजसः म० । ३. वर्तते म० ।

हलचक्रधरौ ताभ्यामुपेत्य क्षोभितौ यतः । सुराणामपि यौ वीरौ न जय्यौ पुरुषोत्तमौ ॥१३६॥
कुमारयोस्तयोर्यावत्प्रमादो नोपजायते । व्रजामस्तावदेवाशु चिन्तयामोऽभिरक्षणम् ॥१३७॥
ततः स्नुषासमेतासौ भामण्डलविमानगा । प्रवृत्ता तनयौ तेन वज्रजङ्घबलान्वितौ ॥१३८॥
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीं कोऽसौ वर्णयितुं क्षमः । इति श्रेणिक संक्षेपात्कीर्त्यमानमिदं शृणु ॥१३९॥
रथाश्वगजपादातमहार्णवसमावृतौ । वहन्ताविव संरम्भं निर्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥१४०॥
अश्वयुक्तरथारूढः शत्रुघ्नश्च प्रतापवान् । हारराजितवक्षस्को निर्ययौ युद्धमानसः ॥१४१॥
ततोऽभवत्कृतान्तास्यः सर्वसैन्यपुरःसरः । मानी हरिणकेशीव नाकौकःसैनिकाग्रणीः ॥१४२॥
शरासनकृतच्छायं चतुरङ्गं महाद्युति । अप्रमेयं बलं तस्य प्रतापपरिवारणम् ॥१४३॥
सुरप्रासादसङ्काशो मध्यस्तम्भोऽन्तकध्वजः । शात्रवानीकदुःप्रेक्ष्यो रेजे तस्य महारथः ॥१४४॥
अनुमार्गं त्रिमूर्धोऽस्य ततो वह्निशिखो नृपः । सिंहविक्रमनामा च तथा दीर्घभुजश्रुतिः ॥१४५॥
सिंहोदरः सुमेरुश्च वालिखिल्यो महाबलः । प्रचण्डो रौद्रभूतिश्च शरभः स्यन्दनः पृथुः ॥१४६॥
कुलिशश्रवणश्चण्डो मारिदत्तो रणप्रियः । मृगेन्द्रवाहनाद्याश्च सामन्ता मत्तमानसाः ॥१४७॥
सहस्रपञ्चकेयत्ता नानाशस्त्रान्धकारिणः । निर्जग्मुर्वन्दिनां वृन्दैरुद्गीतगुणकोटयः ॥१४८॥
एवं कुमारकोट्योऽपि कुटिलानीकसङ्गताः । दृष्टप्रत्ययसच्छास्त्रे क्षणविन्यस्तचक्षुषः ॥१४९॥
युद्धानन्दकृतोत्साहा नाथभक्तिपरायणाः । महाबलास्त्वरावन्त्यो निरीयुः कम्पितक्षमाः ॥१५०॥
रथैः केचिन्नगैस्तुङ्गैर्द्विपैः केचिद्घनोपमैः । महार्णवतरङ्गाभैस्तुरङ्गैरपरैः परे ॥१५१॥

संशयको प्राप्त हुए हैं । उन्होंने यह अच्छा नहीं किया ॥१३५॥ उन्होंने जाकर उन बलभद्र और नारायणको क्षोभित किया है जो पुरुषोत्तम वीर देवोंके भी अजेय हैं ॥१३६॥ जब तक उन कुमारोंका प्रमाद नहीं होता है तब तक आओ शीघ्र ही चलें और रक्षाका उपाय सोचें ॥१३७॥ तदनन्तर पुत्र-वधुओं सहित सीता भामण्डलके विमानमें बैठ उस ओर चली जिस ओर कि वज्रजङ्घ और सेनासे सहित दोनों पुत्र गये थे ॥१३८॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! राम लक्ष्मणकी पूर्ण लक्ष्मीका वर्णनके लिए कौन समर्थ है ? इसलिए संक्षेपसे ही यहाँ कहते हैं सो सुन ॥१३९॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक रूप महासागरसे घिरे हुए राम लक्ष्मण क्रोधको धारण करते हुएके समान निकले ॥१४०॥ जो घोड़े जुते हुए रथ पर सवार था, जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था तथा जिसका मन युद्धमें लग रहा था ऐसा प्रतापी शत्रुघ्न भी निकल कर बाहर आया ॥१४१॥ जिस प्रकार हरिणकेशी देव सैनिकोंका अग्रणी होता है उसी प्रकार मानी कृतान्तवक्त्र सब सेनाका अग्रसर हुआ ॥१४२॥ जिसमें धनुषोंकी छाया हो रही थी तथा जो महा कान्तिसे युक्त थी ऐसी उसकी अपरिमित चतुरङ्गिणी सेना उसके प्रतापको बढ़ा रही थी ॥१४३॥ जिसमें बीचके खम्भा के ऊपर ध्वजा फहरा रही थी, तथा जो शत्रुओंकी सेनाके द्वारा दुर्निरीक्ष्य था ऐसा उसका बड़ा भारी रथ देवोंके महलके समान सुशोभित हो रहा था ॥१४४॥ कृतान्तवक्त्रके पीछे त्रिमूर्ध, फिर अग्निशिख, फिर सिंहविक्रम, फिर दीर्घबाहु, फिर सिंहोदर, सुमेरु, महाबलवान् बालिखिल्य, अत्यन्त क्रोधी रौद्रभूति, शरभ, स्यन्दन, क्रोधी वज्रकर्ण, युद्धका प्रेमी मारिदत्त, और मदोन्मत्त मनके धारक मृगेन्द्रवाहन आदि पाँच हजार सामन्त बाहर निकले । ये सभी सामन्त नाना शस्त्र रूपी अन्धकारको धारण करनेवाले थे तथा चारणोंके समूह उनके करोड़ों गुणोंका उद्गान कर रहे थे ॥१४५–१४८॥ इसी प्रकार जो कुटिल सेनाओंसे सहित थी, जिन्होंने विश्वासप्रद शास्त्र के ऊपर क्षण भरके लिए अपनी दृष्टि डाली था, युद्ध सम्बन्धी हर्षसे जिनका उत्साह बढ़ रहा था, जो स्वामीकी भक्तिमें तत्पर थीं, महाबलवान् थीं, शीघ्रतासे सहित थीं और जिन्होंने पृथिवीको कम्पित कर दिया था ऐसीं कुमारोंकी अनेक श्रेणियाँ भी बाहर निकलीं ॥१४९–१५०॥ नाना प्रकार

शिबिकाशिखरैः केचिद्युग्यैर्योग्यतरैः परे । निर्ययुर्बहुवादित्रबधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥१५२॥
सकङ्कटशिरस्त्राणाः क्रोधालिङ्गितचेतसः । पुरादृष्टसुविक्रान्तप्रसादपरसेवकाः ॥१५३॥
ततः श्रुत्वा परानीकनिःस्वनं सम्भ्रमान्वितः । सन्नद्धतेति सैन्यं स्वं वज्रजङ्घः समादिशत् ॥१५४॥
ततस्ते परसैन्यस्य श्रुत्वा निःस्वनमावृताः । स्वयमेव सुसन्नद्धास्तस्यान्तिकमुपागमन् ॥१५५॥
कालानलाःप्रचण्डाङ्गवङ्गा[1] नेपालवर्बराः । पौण्ड्रा मागधसौस्नाश्च पारशैलाः ससिंहलाः ॥१५६॥
कालिङ्गकाश्च राजानो रत्नाङ्काद्या महाबलाः । एकादशसहस्राणि युक्ता ह्युत्तमतेजसा[2] ॥१५७॥
एवं तत्परमं सैन्यं परसैन्यकृताननम् । सङ्घट्टमुत्तमं प्राप्तं चलितं प्रचलायुधम् ॥१५८॥
तयोः समागमो रौद्रो देवासुरकृताद्भुतः । [3]बभूव सुमहाशब्दः क्षुब्धाकूपारयोरिव ॥१५९॥
प्रहर प्रथमं क्षुद्र मुञ्चास्त्रं किमुपेक्षसे । प्रहर्तुं प्रथमं शस्त्रं न मे जातु प्रवर्तते ॥१६०॥
प्रहृतं लघुना तेन विशल्योऽभूद्भुजो मम । प्रहरस्व वपुर्गाढं दृढपीडितमुष्टिकः ॥१६१॥
किञ्चिद् व्रज पुरोभागं सञ्चारो नास्ति सङ्गरे । सायकस्यैनमुज्झित्वा छुरिकां वा समाश्रय ॥१६२॥
किं वेपसे न हन्मि त्वां मुञ्च मार्गमयं परः । भटो युद्धमहाकण्डूचपलोऽग्रेऽवतिष्ठताम् ॥१६३॥
किं वृथा गर्जसि क्षुद्र न वीर्यं वाचि तिष्ठति । अयं ते चेष्टितेनैव करोमि रणपूजनम् ॥१६४॥
एवमाद्या महारावा भटानां शौर्यशालिनाम् । निश्चेरुरतिगम्भीरा वदनेभ्यः समन्ततः ॥१६५॥

के वादित्रोंसे जिन्होंने दिशाओंको बहिरा कर दिया था, जो कवच और टोपसे सहित थे, जिनके चित्त क्रोधसे व्याप्त थे, तथा जिनके सेवक पूर्व दृष्ट, परम पराक्रमी और प्रसन्नता प्राप्त करनेमें तत्पर थे ऐसे कितने ही लोग पर्वतोंके समान ऊँचे रथोंसे, कितने ही मेघोंके समान हाथियोंसे, कितने ही महासागरकी तरङ्गोंके समान घोड़ोंसे, कितने ही पालकीके शिखरोंसे और कितने ही अत्यन्त योग्य वृषभोंसे अर्थात् इन पर आरूढ हो बाहर निकले ॥१५१-१५३॥

तदनन्तर परकीय सेनाका शब्द सुनकर संभ्रमसे सहित वज्रजङ्घने अपनी सेनाको आदेश दिया कि तैयार होओ ॥१५४॥ तदनन्तर पर-सेनाका शब्द सुनकर कवच आदिसे आवृत सब सैनिक तैयार हो वज्रजङ्घके पास स्वयं आ गये ॥१५५॥ प्रलय कालकी अग्निके समान प्रचण्ड अङ्ग, वङ्ग, नेपाल, वर्वर, पौण्ड, मागध, सौस्न, पारशैल, सिंहक, कालिङ्गक तथा रत्नाङ्क आदि महाबलवान् एवं उत्तमतेजसे युक्त ग्यारह हजार राजा युद्धके लिए तैयार हुए ॥१५६-१५७॥ इसप्रकार जिसने शत्रुसेनाकी ओर मुख किया था, तथा जिसमें शस्त्र चल रहे थे ऐसी वह चञ्चल उत्कृष्ट सेना उत्तम संघट्टको प्राप्त हुई अर्थात् दोनों सेनाओंमें तीव्र मुठभेड़ हुई ॥१५८॥ उन दोनों सेनाओंमें ऐसा भयंकर समागम हुआ जो पहले हुए देव और असुरोंके समागमसे भी कहीं आश्चर्यकारी था तथा क्षोभको प्राप्त हुए दो समुद्रोंके समागमके समान महाशब्द कर रहा था ॥१५९॥ 'अरे क्षुद्र ! पहले प्रहार कर, शस्त्र छोड़, क्यों उपेक्षा कर रहा है ? मेरा शस्त्र पहले प्रहार करनेके लिए कभी प्रवृत्त नहीं होता ॥१६०॥ अरे, उसने हलका प्रहार किये इससे मेरी भुजा स्वस्थ रही आई अर्थात् उसमें कुछ हुआ ही नहीं, जरा दृढ़ मुट्ठी कसकर शरीरपर जोरदार प्रहार कर ॥१६१॥ कुछ सामने आ, युद्धमें वाणका संचार ठीक नहीं हो रहा है, अथवा फिर वाणको छोड़ छुरी उठा ॥१६२॥ क्यों काँप रहा है ? मैं तुझे नहीं मारता, मार्ग छोड़, युद्धकी महाखाजसे चपल यह दूसरा प्रबल योद्धा सामने खड़ा हो ॥१६३॥ अरे क्षुद्र ! व्यर्थ क्यों गरज रहा है ? वचनमें शक्ति नहीं रहती, यह मैं तेरी चेष्टासे ही रणको पूजा करता हूँ ' ॥१६४॥ इन्हें आदि लेकर, पराक्रमसे सुशोभित योद्धाओंके मुखोंसे सब ओर अत्यन्त गम्भीर महाशब्द निकल रहे

१. कालानलाः प्रचूडाङ्ग-म०, ज० । २. तेजसः म० । ३. वर्तते म० ।

भूगोचरनरेन्द्राणां यथाघातः समन्ततः । नभश्चरनरेन्द्राणां तथैवात्यन्तसङ्कुलः[1] ॥१६६॥
लवणाङ्कुशयोः पक्षे स्थितो जनकनन्दनः । वीरः पवनवेगश्च मृगाङ्को विद्युदुज्ज्वलः ॥१६७॥
महासैन्यसमायुक्ता सुरछन्दादयस्तथा । महाविद्याधरेशानां महारणविशारदाः ॥१६८॥
लवणाङ्कुशसम्भूतिं श्रुतवानथ तत्त्वतः । उद्ध्वंसेचरसामन्तसङ्घट्टश्लथतां नयन् ॥१६९॥
यथा कर्तव्यविज्ञानप्रयोगात्यन्तकोविदः । वैदेहीसुतयोः पक्षं वायुपुत्रोऽप्यशिश्रियत् ॥१७०॥
लाङ्गूलपाणिना तेन निर्यता[2] रामसैन्यतः । प्रभामण्डलवीरस्य चित्तमानन्दवत्कृतम् ॥१७१॥
विमानशिखरारूढां ततः संदृश्य जानकीम् । औदासीन्यं ययुः सर्वे विहायश्चरपार्थिवाः ॥१७२॥
कृताञ्जलिपुटाश्चैनां प्रणम्य परमादराः । तस्थुरावृत्य बिभ्राणा विस्मयं परमोन्नतम् ॥१७३॥
वित्रस्तहरिणीनेत्रा समुद्भूततनूरुहा । वैदेही बलयोः सङ्गमालुलोके सवेपथुः ॥१७४॥
क्षोभयन्तावथोदारं तत्सैन्यं प्रचलद्ध्वजम्[3] । पद्मलक्ष्मीधरौ तेन प्रवृत्तौ लवणाङ्कुशौ ॥१७५॥
मृगनागारिसंलक्ष्यध्वजयोरनयोः पुरः । स्थितौ कुमारवीरौ तौ प्रतिपक्षमुखं श्रितौ ॥१७६॥
आपातमात्रकेणैव रामदेवस्य सद्ध्वजम् । अनङ्गलवणश्चापं चिच्छेद कृतायुधः ॥१७७॥
विहस्य कार्मुकं यावत्सोऽन्यदादातुमुद्यतः । तावल्लवणवीरेण तरसा विरथीकृतः ॥१७८॥
अथान्यं रथमारुह्य काकुत्स्थोऽलघुविक्रमः । अनङ्गलवणं क्रोधात्ससर्प भ्रकुटीं वहन् ॥१७९॥
घर्मार्कदुर्निरीक्ष्याक्षः समुत्क्षिप्तशरासनः । चमरासुरनाथस्य वज्रीवासौ गतोऽन्तिकम् ॥१८०॥

थे ॥१६५॥ जिसप्रकार भूमिगोचरी राजाओंकी ओरसे भयंकर शब्द आ रहा था उसी तरह विद्याधर राजाओंकी ओरसे भी अत्यन्त महान् शब्द आ रहा था ॥१६६॥ भामण्डल, वीर पवन-वेग, बिजलीके समान उज्ज्वल मृगाङ्क तथा महा विद्याधर राजाओंके प्रतिनिधि देवच्छन्द आदि जो कि बड़ी बड़ी सेनाओंसे युक्त तथा महायुद्धमें निपुण थे, लवणाङ्कुशके पक्षमें खड़े हुए ॥१६७–१६८॥

अथानन्तर जब कर्तव्यके ज्ञान और प्रयोगमें अत्यन्त निपुण हनूमान्ने लवणाङ्कुशकी वास्तविक उत्पत्ति सुनी तब वह विद्याधर राजाओंके संघट्टको शिथिल करता हुआ लवणाङ्कुशके पक्षमें आ गया ॥१६९–१७०॥ लाङ्गूल नामक शस्त्रको हाथमें धारण कर रामकी सेनासे निकलते हुए हनूमानने भामण्डलका चित्त हर्षित कर दिया ॥१७१॥ तदनन्तर विमानके शिखरपर आरूढ जानकीको देखकर सब विद्याधर राजा उदासीनताको प्राप्त हो गये ॥१७२॥ और हाथ जोड़ बड़े आदरसे उसे प्रणाम कर अत्यधिक आश्चर्यको धारण करते हुए उसे घेरकर खड़े हो गये ॥१७३॥ सीताने जब दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ देखी तब उसके नेत्र भयभीत हरिणीके समान चञ्चल हो गये, उसके शरीरमें रोमाञ्च निकल आये और कँपकँपी छूटने लगी ॥१७४॥

अथानन्तर चञ्चल ध्वजाओंसे युक्त उस विशालसेनाको क्षोभित करते हुए लवणाङ्कुश, जिस ओर राम लक्ष्मण थे उसी ओर बढ़े ॥१७५॥ इसतरह प्रतिपक्ष भावको प्राप्त हुए दोनों कुमार सिंह और गरुड़की ध्वजा धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणके सामने आ डटे ॥१७६॥ आते ही के साथ अनङ्गलवणने शस्त्र चलाकर रामदेवकी ध्वजा काट डाली और धनुष छेद दिया ॥१७७॥ हँसकर राम जब तक दूसरा धनुष लेनेके लिए उद्यत हुए तब तक वीर लवणने वेगसे उन्हें रथ रहित कर दिया ॥१७८॥ अथानन्तर प्रबल पराक्रमी राम, भौंह तानते हुए, दूसरे रथ पर सवार हो क्रोधवश अनङ्गलवणकी ओर चले ॥१७९॥ ग्रीष्म कालके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य नेत्रोंसे युक्त एवं धनुष उठाये हुए राम अनङ्ग-लवणके समीप उस प्रकार पहुँचे जिस प्रकार कि असुर कुमारोंके इन्द्र चमरेन्द्रके पास इन्द्र

---

१. संकुलं ज० । २. निर्जिता म० । ३. प्रचलद्ध्वजे म० ।

स चापि जानकीसूनुरुद्धृत्य सशरं धनुः । रणप्राघूर्णकं दातुं पद्मनाभमुपागमत् ॥१८१॥
ततः परमभूद्युद्धं पद्मस्य लवणस्य च । परस्परं समुत्कृत्तशस्त्रसङ्घातकर्कशम् ॥१८२॥
महाहवो यथा जातः पद्मस्य लवणस्य च । अनुक्रमेण तेनैव लक्ष्मणस्याङ्कुशस्य च ॥१८३॥
एवं द्वन्द्वमभूद्युद्धं स्वामिरागमुपेयुषाम् । सामन्तानामपि स्वस्ववीरशोभाभिलाषिणाम् ॥१८४॥
अश्ववृन्दं क्वचित्तुङ्गं तरङ्गकृतरङ्गणम् । निरुद्धं परचक्रेण घनं चक्रे रणाङ्गणम् ॥१८५॥
कश्चिद्विच्छिन्नसन्नाहं प्रतिपक्षं पुरःस्थितम् । निरीक्ष्य रणकण्डूलो निदधे मुखमन्यतः ॥१८६॥
केचिन्नाथं समुत्सृज्य प्रविष्टाः परवाहिनीम् । स्वामिनाम समुच्चार्य निजघ्नुरभिलक्षितम् ॥१८७॥
अनादृतनराः केचिद्दर्पशौण्डा महाभटाः । प्रवरद्दानधाराणां करिणामरितामिताः ॥१८८॥
दन्तशय्यां समाश्रित्य कश्चित्समददन्तिनः । [1]रणनिद्रासुखं लेभे परमं भटसत्तमः ॥१८९॥
कश्चिदभ्यायतोऽश्वस्य भग्नशस्त्रो महाभटः । अदत्त्वा पदवीं प्राणान् ददौ स करताडनम् ॥१९०॥
प्रच्युतं प्रथमाघाताद्भटं कश्चित्त्रपान्वितः । भणन्तमपि नो भूयः प्रजहार महामनाः ॥१९१॥
च्युतशस्त्रं क्वचिद्वीक्ष्य भटमच्युतमानसः । शस्त्रं दूरं परित्यज्य बाहुभ्यां योद्धुमुद्यतः ॥१९२॥
दातारोऽपि प्रविख्याताः सदा समरवर्त्तिनः । प्राणानपि ददुर्वीरा न पुनः पृष्ठदर्शनम् ॥१९३॥
असृक्कर्दमनिमग्नचक्रकृच्छ्रचलद्रथम् । तीव्रप्रतोदनोद्युक्तः त्वरितश्च न सारथिः ॥१९४॥
क्वणदश्वसमुद्यूढस्यन्दनोन्मुक्तचीत्कृतम् । तुरङ्गजवविक्षिप्तभटसीमन्तिताविलम् ॥१९५॥

पहुँचता है ॥१८०॥ इधर सीतासुत अनङ्गलवण भी वाण सहित धनुष उठाकर रणकी भेंट देनेके लिए रामके समीप गये ॥१८१॥ तदनन्तर राम और लवणके बीच परस्पर कटे हुए शस्त्रोंके समूहसे कठिन परम युद्ध हुआ ॥१८२॥ इधर जिस प्रकार राम और लवणका महायुद्ध हो रहा था उधर उसी प्रकार लक्ष्मण और अङ्कुशका भी महायुद्ध हो रहा था ॥१८३॥ इसी प्रकार स्वामीके रागको प्राप्त तथा अपने अपने वीरोंकी शोभा चाहने वाले सामन्तोंमें भी द्वन्द्व-युद्ध हो रहा था ॥१८४॥ कहीं परचक्रसे रुका और तरङ्गोंके समान चञ्चल ऊँचे घोड़ोंका समूह रणाङ्गणको सघन कर रहा था—वहाँकी भीड़ बढ़ा रहा था ॥१८५॥ कवच टूट गया था ऐसे सामने खड़े शत्रुको देख रणकी खाजसे युक्त योद्धा दूसरी ओर मुख कर रहा था ॥१८६॥ कितने ही योद्धा स्वामीको छोड़ शत्रुकी सेनामें घुस पड़े और अपने स्वामीका नाम ले कर जो भी दिखे उसे मारने लगे ॥१८७॥ तीव्र अहंकारसे भरे कितने ही महायोद्धा, मनुष्योंकी उपेक्षा कर मदस्रावी हाथियोंकी शत्रुताको प्राप्त हुए ॥१८८॥ कोई एक उत्तम योद्धा मदोन्मत्त हाथीकी दन्तरूपी शय्याका आश्रय ले रणनिद्राके उत्तम सुखको प्राप्त हुआ अर्थात् हाथीके दांतोंसे घायल हो कर कोई योद्धा मरणको प्राप्त हुआ ॥१८९॥ जिसका शस्त्र टूट गया था ऐसे किसी योद्धाने सामने आते हुए घोड़ेके लिए मार्ग तो नहीं दिया किन्तु हाथ ठोक कर प्राण दे दिये ॥१९०॥ कोई एक योधा प्रथम प्रहारमें ही गिर गया था इसलिए उसके बकने पर भी उदारचेता किसी महायोद्धाने लज्जित हो उस पर पुनः प्रहार नहीं किया ॥१९१॥ जिसका हृदय नहीं टूटा था ऐसा कोई योद्धा, सामनेके वीरको शस्त्र रहित देख, अपना भी शस्त्र फेंककर मात्र भुजाओंसे ही युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥१९२॥ कितने ही वीरोंने सदाके सुप्रसिद्ध दानी हो कर भी युद्ध क्षेत्रमें आकर अपने प्राण तो दे दिये थे पर पीठके दर्शन किसीको नहीं दिये ॥१९३॥ किसी सारथिका रथ रुधिरकी कीचड़में फँस जानेके कारण बड़ी कठिनाईसे चल रहा था इसलिए वह चाबुकसे ताड़ना देनेमें तत्पर होने पर भी शीघ्रताको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥१९४॥ इस प्रकार उन दोनों सेनाओंमें वह महायुद्ध हुआ जिसमें कि शब्द करने वाले घोड़ोंके द्वारा खींचे गये रथ चीं चीं शब्द कर

---

१. रणनिद्रां सुखं म०, ज०, फ० ।

निःक्रामद्रुधिरोद्गारसहितोरुभटस्वनम् । वेगवच्छस्त्रसम्पातजातवह्निकणोत्करम् ॥१९६॥
करिशूत्कृतसम्भूतसीकरासारजालकम् । करिदारितवक्षस्कभटसङ्कटभूतलम् ॥१९७॥
पर्यस्तकरिसङ्रुद्धरणमार्गाकुलायतम् । नागमेघपरिश्च्योतन्मुक्ताफलमहोपलम् ॥१९८॥
मुक्तासारसमाघातविकटं कर्मरङ्गकम् । नागोच्छालितपुन्नागकृतखेचरसङ्गमम् ॥१९९॥
शिरःक्रीतयशोरत्नं मूर्छाजनितविश्रमम् । मरणप्राप्तनिर्वाणं बभूव रणमाकुलम् ॥२००॥

आर्याच्छन्दः

जीविततृष्णारहितं साधुस्वनजलधिलुब्धयौधेयम् ।
समरं समरसमासीन्महति लघिष्ठे च वीराणाम् ॥२०१॥
भक्तिः स्वामिनि परमा निष्क्रयदानं प्रचण्डरणकण्डूः ।
रवितेजसां भटानां जग्मुः सङ्ग्रामहेतुत्वम् ॥२०२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशसमेतयुद्धाभिधानं द्व्युत्तरशतं पर्व ॥१०२॥

रहे थे, जो घोड़ोंके वेगसे उड़े हुए सामन्त भटोंसे व्याप्त था ॥१९५॥ जिसमें महायोद्धाओंके शब्द निकलते हुए खूनके उद्‌गारसे सहित थे, जहाँ वेगशाली शस्त्रोंके पड़नेसे अग्निकणोंका समूह उत्पन्न हो रहा था ॥१९६॥ जहाँ हाथियोंके सू सू शब्दके साथ जलके छींटोंका समूह निकल रहा था, जहाँ हाथियोंके द्वारा विदीर्ण वक्षःस्थल वाले योद्धाओंसे भूतल व्याप्त था ॥१९७॥ जहाँ इधर-उधर पड़े हुए हाथियोंसे युद्धका मार्ग रुक जानेके कारण यातायातमें गड़बड़ी हो रही थी। जहाँ हाथी रूपी मेघोंसे मुक्ताफल रूपी महोपलों—बड़े बड़े ओलोंकी वर्षा हो रही थी, ॥१९८॥ जो मोतियोंकी वर्षाके समाघातसे विकट था, नाना प्रकारके कर्मोंकी रङ्गभूमि था, जहाँ हाथियों के द्वारा उखाड़ कर ऊपर उछाले हुए पुंनागके वृक्ष, विद्याधरोंका संगम कर रहे थे ॥१९९॥ जहाँ शिरोंके द्वारा यशरूपी रत्न खरीदा गया था, जहाँ मूर्च्छासे विश्राम प्राप्त होता था, और मरणसे जहाँ निर्वाण मिलता था ॥२००॥ इस प्रकार वीरोंकी चाहे बड़ी टुकड़ी हो चाहे छोटी, सबमें वह युद्ध हुआ कि जो जीवनकी तृष्णासे रहित था, जिसमें योधाओंके समूह धन्य धन्य शब्दरूपी समुद्रके लोभी थे तथा जो समरससे सहित था—किसी भी पक्षकी जय पराजयसे रहित था ॥२०१॥ स्वामीमें अटूट भक्ति, जीविका प्राप्तिका बदला चुकाना और रणकी तेज खाज यही सब सूर्यके समान तेजस्वी योद्धाओंके संग्रामके कारणपनेको प्राप्त हुए थे ॥२०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणांकुश के युद्धका वर्णन करने वाला एक सौ दोवां पर्व समाप्त हुआ ॥१०२॥

त्र्युत्तरशतं पर्व

अतो मगधराजेन्द्र भवावहितमानसः । निवेदयामि युद्धं ते विशेषकृतवर्णनम् ॥१॥
सव्येष्टा[1] वज्रजङ्घोऽभूदनङ्गलवणाम्बुधेः । मदनांकुशनाथस्य पृथुः प्रथितविक्रमः ॥२॥
सुमित्रातनुजातस्य चन्द्रोदरनृपात्मजः । कृतान्तवक्त्रतिग्मांशुः पद्मनाभमरुत्वतः ॥३॥
वज्रावर्तं समुद्धृत्य धनुरत्युद्धुरध्वनिः । पद्मनाभः कृतान्तास्यं जगौ गम्भीरभारतिः ॥४॥
कृतान्तवक्त्र वेगेन रथं प्रत्यरि वाहय । मोघीभवत्तनूभारः किमेवमलसायसे ॥५॥
सोऽवोचद्देव वीक्षस्व वाजिनो जर्जरीकृतान् । अमुना नरवीरेण सुनिशातैः शिलीमुखैः ॥६॥
अमी निद्रामिव प्राप्ता देहविद्राणकारिणीम् । दूरं[2] विकारनिर्मुक्ता जाता गलितरंहसः ॥७॥
नैते चाटुशतान्युक्ता[3] न हस्ततलताडिताः । वहन्त्यायतमङ्गं तु [4]क्वणन्तः कुर्वते परम् ॥८॥
शोणं शोणितधाराभिः कुर्वाणा धरणीतलम् । अनुरागमिवोदारं भवते दर्शयन्त्यमी ॥९॥
इमौ च पश्य मे बाहू शरैः कङ्कटभेदिभिः । समुत्फुल्लकदम्बस्रग्गुणसाम्यमुपागतौ ॥१०॥
पद्मोऽवदन्ममाप्येवं कार्मुकं शिथिलायते । ज्ञायते कर्मनिर्मुक्तं चित्रार्पितशरासनम् ॥११॥
एतन्मुशलरत्नं च कार्येण परिवर्जितम् । सूर्यावर्तगुरूभूतं दोर्दण्डमुपविध्यति ॥१२॥
दुर्वाररिपुनागेन्द्रसृणितां यच्च भूरिशः । गतं[5] लाङ्गलरत्नं मे तदिदं विफलं स्थितम् ॥१३॥
परपक्षपरिक्षोददक्षाणां पक्षरक्षिणाम्[6] । अमोघानां महास्त्राणामीदृशी वर्तते गतिः[7] ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधराजेन्द्र ! सावधान चित्त होओ अब मैं तेरे लिए युद्धका विशेष वर्णन करता हूँ ॥१॥ अलङ्गलवण रूपी सागरका सारथि वज्रजङ्घ था, मदनाङ्कुशका प्रसिद्ध पराक्रमी राजा पृथु, लक्ष्मणका चन्द्रोदरका पुत्र विराधित और राम रूपी इन्द्रका सारथि कृतान्तवक्त्र रूपी सूर्य था ॥२-३॥ विशाल गर्जना करने वाले रामने गम्भीर वाणी द्वारा वज्रावर्त नामक धनुष उठा कर कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे कहा ॥४॥ कि हे कृतान्तवक्त्र ! शत्रुकी ओर शीघ्र ही रथ बढ़ाओ । इस तरह शरीरके भारको शिथिल करते हुए क्यों अलसा रहे हो ? ॥५॥ यह सुन कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देव ! इस नर वीरके द्वारा अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे जर्जर हुए इन घोड़ोंको देखो ॥६॥ वे शरीरको दूर करने वाली निद्राको ही मानो प्राप्त हो रहे हैं अथवा विकारसे निर्मुक्त हो वेग रहित हो रहे हैं ? ॥७॥ अब ये न तो सैकड़ों मीठे शब्द कहने पर और न हथेलियोंसे ताड़ित होने पर शरीरको लम्बा करते हैं—शीघ्रतासे चलते हैं किन्तु अत्यधिक शब्द करते हुए स्वयं ही लम्बा शरीर धारण कर रहे हैं ॥८॥ ये रुधिर की धारासे पृथिवीतलको लाल लाल कर रहे हैं सो मानों आपके लिए अपना महान् अनुराग ही दिखला रहे हों ॥९॥ और इधर देखो, ये मेरी भुजाएं कवचको भेदन करने वाले बाणोंसे फूले हुए कदम्ब पुष्पोंकी मालाके सादृश्यको प्राप्त हो रही हैं ॥१०॥ यह सुन रामने भी कहा कि इसी तरह मेरा भी धनुष शिथिल हो रहा है और चित्रलिखित धनुषकी तरह क्रिया शून्य हो रहा है ॥११॥ यह मुशल रत्न कार्यसे रहित हो गया है और सूर्यावर्त धनुषके कारण भारी हुए भुजदण्ड को पीड़ा पहुँचा रहा है ॥१२॥ जो दुर्वार शत्रु रूपी हाथियोंको वश करनेके लिए अनेकों बार अङ्कुशपनेको प्राप्त हुआ था ऐसा यह मेरा हल रत्न निष्फल हो गया है ॥१३॥ शत्रुपक्षको नष्ट करने में समर्थ एवं अपने पक्षकी रक्षा करने वाले अमोघ महा शस्त्रोंकी भी ऐसी दशा हो रही है

१. सारथिः । २. द्वारं म० । ३. न्युक्त्वा म० । ४. क्रणताम् म० । ५. भङ्गं म० । ६. दक्षिणां म० । ७. मतिः मः ।

यथापराजितजस्य वर्ततेऽनर्थकास्त्रता । तथा लक्ष्मीधरस्यापि मदनाङ्कुशगोचरे ॥१५॥
विज्ञातजातिसम्बन्धौ सापेक्षौ लवणाङ्कुशौ । युयुधातेऽनपेक्षौ तु निर्ज्ञातौ रामलक्ष्मणौ ॥१६॥
तथाप्यलं सदिव्यास्त्रो विषादपरिवर्जितः । प्रासचक्रशरासारं मुमुचे लक्ष्मणोऽङ्कुशे ॥१७॥
वज्रदण्डैः शरैर्वृष्टिं तामपाकिरदङ्कुशः[२] । पद्मनाभविनिर्मुक्तामनङ्गलवणो यथा ॥१८॥
उपवक्षस्ततः पद्मं प्रासेन लवणोऽक्षिणोत् । मदनाङ्कुशवीरश्च लक्ष्मणं नैपुणान्वितः ॥१९॥
लक्ष्मणं घूर्णमानाक्षिहृदयं वीक्ष्य सम्भ्रमी । विराधितो रथं चक्रे प्रतीपं कोशलां प्रति ॥२०॥
ततः संज्ञां परिप्राप्य रथं दृष्ट्वाऽन्यतः स्थितम् । जगाद लक्ष्मणः कोपकपिलीकृतलोचनः ॥२१॥
भो विराधित सद्बुद्धे किमिदं भवता कृतम् । रथं निवर्तय क्षिप्रं रणे पृष्ठं न दीयते ॥२२॥
पुङ्खपूरितदेहस्य स्थितस्याभिमुखं रिपोः । शूरस्य मरणं श्लाघ्यं नेदं कर्म जुगुप्सितम् ॥२३॥
सुरमानुषमध्येऽस्मिन् परामप्यापदं श्रिताः । कथं भजन्ति कातर्यं स्थिताः पुरुषमूर्द्धनि ॥२४॥
पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता लाङ्गललक्ष्मणः । नारायणः क्षितौ ख्यातस्तस्येदं सदृशं कथम् ॥२५॥
त्वरितं गदितेनैवं रथस्तेन निवर्तितः । पुनर्युद्धमभूद्घोरं प्रत्यागतसैनिकम् ॥२६॥
लक्ष्मणेन ततः कोपात्सङ्ग्रामान्तचिकीर्षया । अमोघमुद्धृतं चक्रं देवासुरभयङ्करम् ॥२७॥

॥१४॥ इधर लवणाङ्कुशके विषयमें जिस प्रकार रामके शस्त्र निरर्थक हो रहे थे उधर उसी प्रकार मदनाङ्कुशके विषयमें लक्ष्मणके शस्त्र भी निरर्थक हो रहे थे ॥१५॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इधर लवणाङ्कुशको तो राम लक्ष्मणके साथ अपने जाति सम्बन्धका ज्ञान था अतः वे उनकी अपेक्षा रखते हुए युद्ध करते थे—अर्थात् उन्हें घातक चोट न लग जावे इसलिए बचा बचा कर युद्ध करते थे पर उधर राम लक्ष्मणको कुछ ज्ञान नहीं था इसलिए वे निरपेक्ष हो कर युद्ध कर रहे थे ॥१६॥ यद्यपि इस तरह लक्ष्मणके शस्त्र निरर्थक हो रहे थे तथापि वे दिव्यास्त्रसे सहित होनेके कारण विषादसे रहित थे। अबकी बार उन्होंने अङ्कुशके ऊपर भाले सामान्य चक्र तथा बाणोंकी जोरदार वर्षा की सो उसने वज्रदण्ड तथा बाणोंके द्वारा उस वर्षाको दूर कर दिया। इसी तरह अनंगलवणने भी रामके द्वारा छोड़ी अस्त्र-वृष्टिको दूर कर दिया था ॥१७-१८॥

तदनन्तर इधर लवणने वक्षःस्थलके समीप रामको प्रास नामा शस्त्रसे घायल किया और उधर चातुर्यसे युक्त वीर मदनांकुशने भी लक्ष्मणके ऊपर प्रहार किया ॥१९॥ उसकी चोटसे जिसके नेत्र और हृदय घूमने लगे थे ऐसे लक्ष्मणको देख विराधितने घबड़ा कर रथ उलटा अयोध्याकी ओर फेर दिया ॥२०॥ तदनन्तर चेतना प्राप्त होने पर जब लक्ष्मणने रथको दूसरी ओर देखा तब लक्ष्मणने क्रोधसे लाल लाल नेत्र करते हुए कहा कि हे बुद्धिमन्! विराधित! तुमने यह क्या किया? शीघ्र ही रथ लौटाओ। क्या तुम नहीं जानते कि युद्धमें पीठ नहीं दी जाती है? ॥२१-२२॥ बाणोंसे जिसका शरीर व्याप्त है ऐसे शूर वीरका शत्रुके सन्मुख खड़े खड़े मर जाना अच्छा है पर यह घृणित कार्य अच्छा नहीं है ॥२३॥ जो मनुष्य, पुरुषोंके मस्तक पर स्थित हैं अर्थात् उनमें प्रधान हैं वे देवों और मनुष्योंके बीच परम आपत्तिको प्राप्त हो कर भी कातरताको कैसे प्राप्त हो सकते हैं? ॥२४॥ मैं दशरथका पुत्र, रामका भाई और पृथिवी पर नारायण नामसे प्रसिद्ध हूँ उसके लिए यह काम कैसे योग्य हो सकता है? ॥२५॥ इस प्रकार कह कर लक्ष्मणने शीघ्र ही पुनः रथ लौटा दिया और पुनः जिसमें सैनिक लौट कर आये थे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ ॥२६॥

तदनन्तर कोप वश लक्ष्मणने संग्रामका अन्त करनेकी इच्छासे देवों और असुरोंको भी

---

१. अपराजितजस्य कौशल्यापुत्रस्य। यथा पराजिता यस्य ज०। २. तामपाकरदंशुकः म०।

ज्वालावलीपरीतं तद्दुःप्रेक्ष्यं पूषसन्निभम्[1] । नारायणेन दीप्तेन प्रहितं हन्तुमङ्कुशम् ॥२८॥
अङ्कुशस्यान्तिकं गत्वा चक्रं विगलितप्रभम् । । निवृत्त्य लक्ष्मणस्यैव पुनः पाणितलं गतम् ॥२९॥
क्षिप्तं क्षिप्तं सुकोपेन लक्ष्मणेन त्वरावता । चक्रमन्तिकमस्यैव प्रवियाति पुनः पुनः ॥३०॥
अथाङ्कुशकुमारेण विभ्रता विभ्रमं परम् । धनुर्दण्डः सुधीरेण भ्रामितो रणशालिना ॥३१॥
तथाभूतं समालोक्य सर्वेषां रणमीयुषाम् । विस्मयव्याप्तचित्तानां शेमुषीयमजायत ॥३२॥
अयं परमसत्त्वोऽसौ जातश्चक्रधरोऽधुना । भ्रमता यस्य चक्रेण संशये सर्वमाहितम् ॥३३॥
किमिदं स्थिरमाहोस्विद् भ्रमणं समुपाश्रितम् । ननु न स्थिरमेतद्धि श्रूयतेऽत्यातिगर्जितम् ॥३४॥
अलीकं लक्षणैः ख्यातं नूनं कोटिशिलादिभिः । यतस्तदिहमुत्पन्नं चक्रमन्यस्य साम्प्रतम् ॥३५॥
कथं वा मुनिवाक्यानामन्यथात्वं प्रजायते । किं भवन्ति वृथोक्तानि जिनेन्द्रस्यापि शासने ॥३६॥
भ्रमितश्चापदण्डोऽयं चक्रमेतदिति स्वनः । समाकुलः समुत्तस्थौ वक्त्रेभ्योऽस्तमनीषिणाम् ॥३७॥
तावल्लक्ष्मणवीरोऽपि परमं सत्त्वमुद्वहन् । जगाद नूनमेतौ तावुदितौ बलचक्रिणौ ॥३८॥
इति व्रीडापरिष्वक्तं निष्क्रियं वीक्ष्य लक्ष्मणम् । समीपं तस्य सिद्धार्थो गत्वा नारदसम्मतः ॥३९॥
जगौ नारायणो देव त्वमेवात्र कुतोऽन्यथा । जिनेन्द्रशासनोक्तं हि निष्कम्पं मन्दरादपि ॥४०॥
जानक्यास्तनयावेतौ कुमारौ लवणाङ्कुशौ । ययोर्गर्भस्थयोरासीदसौ[2] विरहिता वने ॥४१॥
परिज्ञातमितः पश्चादापप्तद् दुःखसागरे । भवानिति न रत्नानामत्र जाता कृतार्थता ॥४२॥

भय उत्पन्न करने वाला अमोघ चक्ररत्न उठाया ॥२७॥ और ज्वालावलीसे व्याप्त, दुष्प्रेक्ष्य एवं सूर्यके सदृश वह चक्ररत्न क्रोधसे देदीप्यमान लक्ष्मणने अंकुशको मारनेके लिए चला दिया ॥२८॥ परन्तु वह चक्र अंकुशके समीप जा कर निष्प्रभ हो गया और लौट कर पुनः लक्ष्मणके ही हस्ततलमें आ गया ॥२९॥ तीव्र क्रोधके कारण वेगसे युक्त लक्ष्मणने कई बार वह चक्र अंकुशके समीप फेंका परन्तु वह बार बार लक्ष्मणके ही समीप लौट जाता था ॥३०॥

अथानन्तर परम विभ्रमको धारण करने वाले रणशाली, सुधीर अंकुश कुमारने अपने धनुष दण्डको उस तरह घुमाया कि उसे वैसा देख रणमें जितने लोग उपस्थित थे उन सबका चित्त आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा सबके यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि अब यह परम शक्तिशाली दूसरा चक्रधर नारायण उत्पन्न हुआ है जिसके कि घूमते हुए चक्रने सबको संशयमें डाल दिया है ॥३१-३३॥ क्या यह चक्र स्थिर है अथवा भ्रमणको प्राप्त है ? अत्यधिक गर्जना सुनाई पड़ रही है ॥३४॥ चक्ररत्न कोटिशिला आदि लक्षणोंसे प्रसिद्ध है सो यह मिथ्या जान पड़ता है क्योंकि इस समय यह चक्र यहाँ दूसरेको ही उत्पन्न हो गया है ॥३५॥ अथवा मुनियोंके वचनोंमें अन्यथापन कैसे हो सकता है ? क्या जिनेन्द्र भगवान्‌के भी शासनमें कही हुई बातें व्यर्थ होती हैं ? ॥३६॥ यद्यपि वह धनुष दण्ड घुमाया गया था तथापि जिनकी बुद्धि मारी गई थी ऐसे लोगोंके मुखसे व्याकुलतासे भरा हुआ यही शब्द निकल रहा था कि यह चक्ररत्न है ॥३७॥ उसी समय परम शक्तिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने भी कहा कि जान पड़ता है ये दोनों बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए ॥३८॥

अथानन्तर लक्ष्मणको लज्जित और निश्चेष्ट देख नारदकी संमतिसे सिद्धार्थ लक्ष्मणके पास जा कर बोला कि हे देव ! नारायण तो तुम्हीं हो, जिन शासनमें कही बात अन्यथा कैसे हो सकती है ? वह तो मेरु पर्वतसे भी कहीं अधिक निष्कम्प है ॥३९-४०॥ ये दोनों कुमार जानकीके लवणाङ्कुश नामक वे पुत्र हैं जिनके कि गर्भमें रहते हुए वह वनमें छोड़ दी गई थी ॥४१॥ मुझे यह ज्ञात है कि आप सीता-परित्यागके पश्चात् दुःख रूपी सागरमें गिर गये थे अर्थात् अपने

१. सूर्यसदृशम् । २. जानकी ।

लवणाङ्कुशमाहात्म्यं ततो ज्ञात्वा समन्ततः । मुमोच कवचं शस्त्रं लक्ष्मणः शोककर्षितः ॥४३॥
श्रुत्वा तमथ वृत्तान्तं विषादभरपीडितः । परित्यक्तधनुर्वर्मा घूर्णमाननिरीक्षणः ॥४४॥
स्यन्दनात्तरसोत्तीर्णो दुःखस्मरणसङ्गतः । पर्यस्तक्ष्मातले पद्मो मूर्छामीलितलोचनः ॥४५॥
चन्दनोदकसिक्तश्च स्पष्टां सम्प्राप्य चेतनाम् । स्नेहाकुलमना यातः पुत्रयोरन्तिकं द्रुतम् ॥४६॥
ततो रथात्समुत्तीर्य तौ युक्तकरकुड्मलौ । तातस्यानमतां पादौ शिरसा स्नेहसङ्गतौ ॥४७॥
ततः पुत्रौ परिष्वज्य स्नेहद्रवितमानसः । विलापमकरोत्पद्मो बाष्पदुर्दिनिताननः ॥४८॥
हा मया तनयौ कष्टं गर्भस्थौ मन्दबुद्धिना । निर्दोषौ भीषणेऽरण्ये विमुक्तौ सह सीतया ॥४९॥
हा वत्सौ विपुलैः पुण्यैर्मयाऽपि कृतसम्भवौ । उदरस्थौ कथं प्राप्तौ व्यसनं परमं वने ॥५०॥
हा सुतौ वज्रजङ्घोऽयं वने चेत्तत्र नो भवेत् । पश्येयं वा तदा वक्त्रपूर्णचन्द्रमिमं कुतः ॥५१॥
हा शावकाविमैरस्त्रैरमोघैर्निहतौ न यत् । तत्सुरैः पालितौ यद्वा सुकृतैः परमोदयैः ॥५२॥
हा वत्सौ विशिखैर्विद्धौ[1] पतितौ सङ्ख्युगक्षितौ । भवन्तौ जानकी वीक्ष्य किं कुर्यादिति वेद्मि न[2] ॥५३॥
निर्वासनकृतं दुःखमितरैरपि दुःसहम् । भवन्मृर्धां सा सुपुत्राभ्यां त्याजिता गुणशालिनी ॥५४॥
भवतोरन्यथाभावं प्रतिपद्य सुजातयोः । वेद्मि जीवेत् ध्रुवं नेति जानकी शोकविह्वला ॥५५॥
लक्ष्मणोऽपि सबाष्पाक्षः सम्भ्रान्तः शोकविह्वलः । स्नेहनिर्भरमालिङ्गद् विनयप्रणताविमौ ॥५६॥

सीता परित्यागका बहुत दुःख अनुभव किया था और आपके दुखी रहते रत्नोंकी सार्थकता नहीं थी ॥४२॥

तदनन्तर सिद्धार्थसे लवणाङ्कुशका माहात्म्य जान कर शोकसे कृश लक्ष्मणने कवच और शस्त्र छोड़ दिये ॥४३॥ अथानन्तर इस वृत्तान्तको सुन जो विषादके भारसे पीड़ित थे, जिन्होंने धनुष और कवच छोड़ दिये थे, जिनके नेत्र घूम रहे थे, जिन्हें पिछले दुःखका स्मरण हो आया था, जो बड़े वेगसे रथसे उतर पड़े थे तथा मूर्च्छाके कारण जिनके नेत्र निमीलित हो गये थे ऐसे राम पृथिवीतल पर गिर पड़े ॥४४–४५॥ तदनन्तर चन्दन मिश्रित जलके सींचनेसे जब सचेत हुए तब स्नेहसे आकुल हृदय होते हुए शीघ्र ही पुत्रोंके समीप चले ॥४६॥

तदनन्तर स्नेहसे भरे हुए दोनों पुत्रोंने रथसे उतर कर हाथ जोड़ शिरसे पिताके चरणोंको नमस्कार किया ॥४७॥ तत्पश्चात् जिनका हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हो गया था और जिनका मुख आंसुओंसे दुर्दिनके समान जान पड़ता था ऐसे राम दोनों पुत्रोंका आलिङ्गन कर विलाप करने लगे ॥४८॥ वे कहने लगे कि हाय पुत्रो ! जब तुम गर्भमें स्थित थे तभी मुझ मन्दबुद्धिने तुम दोनों निर्दोष बालकोंको सीताके साथ भीषण वनमें छोड़ दिया था ॥४९॥ हाय पुत्रो ! बड़े पुण्यके कारण मुझसे जन्म लेकर भी तुम दोनोंने उदरस्थ अवस्थामें वनमें परम दुःख कैसे प्राप्त किया ? ॥५०॥ हाय पुत्रो ! यदि उस समय उस वनमें यह वज्रजङ्घ नहीं होता तो तुम्हारा यह मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमा किस प्रकार देख पाता ? ॥५१॥ हाय पुत्रो ! जो तुम इन अमोघ शस्त्रोंसे नहीं हने गये हो सो जान पड़ता है कि देवोंने अथवा परम अभ्युदयसे युक्त पुण्यने तुम्हारी रक्षा की है ॥५२॥ हाय पुत्रो ! बाणोंसे विधे और युद्धभूमिमें पड़े तुम दोनोंको देखकर जानकी क्या करती यह मैं नहीं जानता ॥५३॥ निर्वासन-परित्यागका दुःख तो अन्य मनुष्योंको भी दुःसह होता है फिर आप जैसे सुपुत्रोंके द्वारा छोड़ी गुणशालिनी सीताकी क्या दशा होती ? ॥५४॥ आप दोनों पुत्रोंका मरण जान शोकसे विह्वल सीता निश्चित ही जीवित नहीं रहती ॥५५॥

जिनके नेत्र अश्रुओंसे पूर्ण थे, तथा जो संभ्रान्त हो शोकसे विह्वल हो रहे थे ऐसे लक्ष्मणने

---

१. बद्धौ म० । २. नः म० ।

शत्रुघ्नाद्या महीपालाः श्रुत्वा वृत्तान्तमीदृशम् । तमुद्देशं गताः सर्वे प्राप्ताः प्रीतिमनुत्तमाम् ॥५७॥
ततः समागमो जातः सेनयोरुभयोरपि । स्वामिनोः सङ्गमे जाते सुखविस्मयपूर्णयोः ॥५८॥
सीताऽपि पुत्रमाहात्म्यं दृष्ट्वा सङ्गममेव च । पौण्डरीकं विमानेन प्रतीतहृदयाऽगमत् ॥५९॥
अवतीर्य ततो व्योम्नः सम्भ्रमी जनकात्मजः । स्वस्रीयौ निर्व्रणौ पश्यन्नालिलिङ्ग सवाष्पदृक् ॥६०॥
लाङ्गूलपाणिरप्येवं प्राप्तः प्रीतिपरायणः । आलिङ्गति स्म तौ साधु जातमित्युच्चरन्मुहुः ॥६१॥
श्रीविराधितसुग्रीवावेवं प्राप्तौ सुसङ्गमम् । नृपा विभीषणाद्याश्च सुसम्भाषणतत्पराः ॥६२॥
अथ भूव्योमचाराणां [1]सुराणामिव सङ्कुलः । जातः समागमोऽत्यन्तमहानन्दसमुद्भवः ॥६३॥
परिप्राप्य परं कान्तं पद्मः पुत्रसमागमम् । बभार परमां लक्ष्मीं धृतिनिर्भरमानसः ॥६४॥
मेने सुपुत्रलम्भं च भुवनत्रयराज्यतः । सुदूरमधिकं रम्यं भावं कमपि संश्रितः ॥६५॥
विद्याधर्यः समानन्दं ननृतुर्गगनाङ्गणे । भूगोचरस्त्रियो भूमौ समुन्मत्तजगन्निभम् ॥६६॥
परं कृतार्थमात्मानं मेने नारायणस्तथा । जितं च भुवनं कृत्स्नं प्रमोदोत्फुल्ललोचनः ॥६७॥
सगरोऽहमिमौ तौ मे वीरभीमभगीरथौ । इति बुद्ध्या [2]कृतौपम्यो दधार परमद्युतिम् ॥६८॥
पद्मः प्रीतिं परां बिभ्रद्वज्रजङ्घमपूजयत् । भामण्डलसमस्त्वं मे सुचेता इति चावदत् ॥६९॥
ततः पुरैव रम्यासौ पुनः स्वर्गसमा कृता । साकेता नगरी भूयः कृता परमसुन्दरी ॥७०॥
रम्या या स्त्रीस्वभावेन कलाज्ञानविशेषतः । आचारमात्रतस्तस्या क्रियते भूषणादरः ॥७१॥

भी विनयसे नम्रीभूत दोनों पुत्रोंका बड़े स्नेहके साथ आलिङ्गन किया ॥५६॥ शत्रुघ्न आदि राजा भी इस वृत्तान्तको सुन उस स्थानपर गये और सभी उत्तम आनन्दको प्राप्त हुए ॥५७॥ तदनन्तर जब दोनों सेनाओंके स्वामी समागम होनेपर सुख और आश्चर्यसे पूर्ण हो गये तब दोनों सेनाओंका परस्पर समागम हुआ ॥५८॥ सीता भी पुत्रोंका माहात्म्य तथा समागम देख निश्चित हृदय हो विमान द्वारा पौण्डरीकपुर वापिस लौट गई ॥५९॥

तदनन्तर संभ्रमसे भरे भामण्डलने आकाशसे उतर कर घाव रहित दोनों भानेजोंको साश्रुदृष्टिसे देखते हुए उनका आलिङ्गन किया ॥६०॥ प्रीति प्रकट करनेमें तत्पर हनूमानने भी 'बहुत अच्छा हुआ' इस शब्दका बार-बार उच्चारण कर उन दोनोंका आलिङ्गन किया ॥६१॥ विराधित तथा सुग्रीव भी इसी तरह सत्समागमको प्राप्त हुए और विभीषण आदि राजा भी कुमारोंसे वार्तालाप करनेमें तत्पर हुए ॥६२॥

अथानन्तर देवोंके समान भूमिगोचरियों तथा विद्याधरोंका वह समागम अत्यधिक महान् आनन्दका कारण हुआ ॥६३॥ अत्यन्त सुन्दर पुत्रोंका समागम पाकर जिनका हृदय धैर्यसे भर गया था ऐसे रामने उत्कृष्ट लक्ष्मी धारण की ॥६४॥ किसी अनिर्वचनीय भावको प्राप्त हुए श्रीरामने उन सुपुत्रोंके लाभको तीनलोकके राज्यसे भी कहीं अधिक सुन्दर माना ॥६५॥ विद्याधरोंकी स्त्रियाँ बड़े हर्षके साथ आकाशरूपी आँगनमें और भूमिगोचरियोंकी स्त्रियाँ उन्मत्त संसारकी नाईं पृथ्वीपर नृत्य कर रही थीं ॥६६॥ हर्षसे जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे नारायणने अपने आपको कृतकृत्य माना और समस्त संसारको जीता हुआ समझा ॥६७॥ मैं सगर हूँ और ये दोनों वीर भीम तथा भगीरथ हैं इस प्रकार बुद्धिसे उपमाको करते हुए लक्ष्मण परम दीप्तिको धारण कर रहे थे ॥६८॥ परमप्रीतिको धारण करते हुए रामने वज्रजंघका खूब सम्मान किया और कहा कि सुन्दर हृदयसे युक्त तुम मेरे लिए भामण्डलके समान हो ॥६९॥

तदनन्तर वह अयोध्या नगरी स्वर्गके समान तो पहले ही की जा चुकी थी उस समय और भी अधिक सुन्दर की गई थी ॥७०॥ जो स्त्री कला और ज्ञानकी विशेषतासे स्वभावतः

---

१. सुराणामेव म० । २. कृतौपम्यौ म०, ज० ।

तती गजघटापृष्ठे स्थितं सूर्यसमप्रभम् । आरूढः पुष्पकं रामः सपुत्रो भास्करो यथा ॥७२॥
नारायणोऽपि तत्रैव स्थितो रेजे स्वलङ्कृतः । विद्युत्वाँश्च महामेघः सुमेरोः शिखरे यथा ॥७३॥
बाह्योद्यानानि चैत्यानि प्राकारं च ध्वजाकुलम् । पश्यन्तो विविधैर्यानैः प्रस्थितास्ते शनैः शनैः ॥७४॥
[1]त्रिप्रस्नुतद्विपाश्वीयरथपादातसङ्कुलाः । अभवन्विशिखाश्चापध्वजछत्रान्धकारिताः ॥७५॥
वरसीमन्तिनीवृन्दैर्गवाक्षाः परिपूरिताः । महाकुतूहलाकीर्णैर्लवणाङ्कुशदर्शने ॥७६॥
नयनाञ्जलिभिः पातुं सुन्दर्यो लवणाङ्कुशौ । प्रवृत्ताः न पुनः प्रापुस्तृप्तिमुत्तानमानसाः ॥७७॥
तदेकगतचित्तानां पश्यन्तीनां सुयोषिताम् । महासङ्घट्टतो भ्रष्टं न ज्ञातं हारकुण्डलम् ॥७८॥
मातर्मनागितो वक्त्रं कुरु मे [2]किन्न कौतुकम् । आत्मम्भरित्वमेतत्ते कियदच्छिन्नकौतुके ॥७९॥
विनतं कुरु मूर्धानं सखि किञ्चित्प्रसादतः । उन्नताऽसि किमित्येवं धम्मिल्लकमितो नय ॥८०॥
किमेव परमप्राणे [3]तुदसि छिन्नमानसे । पुरः पश्यसि किं नेमां पीडितां भर्तृदारिकाम् ॥८१॥
मनागपसृता तिष्ठ पतितास्मि गताऽसि किम् । निश्चेतनत्वमेवं त्वं किं कुमारं न वीक्षसे ॥८२॥
हा मातः कीदृशी योषिद्यदि पश्यामि तेऽत्र किम् । इमां मे प्रेरिकां कस्मात्त्वं वारयसि दुर्बले ॥८३॥
एतौ तावदर्धचन्द्राभललाटौ लवणाङ्कुशौ । यावेतौ रामदेवस्य कुमारौ पार्श्वयोः स्थितौ ॥८४॥
अनङ्गलवणः कोऽत्र कतरो मदनाङ्कुशः । अहो परममेतौ हि तुल्याकारावुभावपि ॥८५॥
महारजतरागाक्तं [4]वारबाणं दधाति यः । लवणोऽयं शुकच्छायवक्षोऽसावङ्कुशो भवेत् ॥८६॥

सुन्दर है उसका आभूषण सम्बन्धी आदर पद्धति मात्रसे किया जाता है अर्थात् वह पद्धति मात्रसे आभूषण धारण करती है ॥७१॥ तदनन्तर जो गजघटाके पृष्ठ पर स्थित सूर्यके समान कान्तिसम्पन्न था ऐसे पुष्पक विमान पर राम अपने पुत्रों सहित आरूढ हो सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥७२॥ जिस प्रकार बिजलीसे सहित महामेघ, सुमेरुके शिखर पर आरूढ होता है उसी प्रकार उत्तम अलंकारोंसे सहित लक्ष्मण भी उसी पुष्पक विमान पर आरूढ हुए ॥७३॥ इस प्रकार वे सब नगरीके बाहरके उद्यान, मन्दिर और ध्वजाओंसे व्याप्त कोटको देखते हुए नानाप्रकारके वाहनोंसे धीरे-धीरे चले ॥७४॥ जिनके तीन स्थानोंसे मद झर रहा था ऐसे हाथी, घोड़ोंके समूह, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे व्याप्त नगरके मार्ग, धनुष, ध्वजा और छत्रोंके द्वारा अन्धकार युक्त हो रहे थे ॥७५॥ महलोंके झरोखे, लवणांकुशको देखनेके लिए महा कौतूहलसे युक्त उत्तम स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण थे ॥७६॥ नयन रूपी अञ्जलियोंके द्वारा लवणांकुशका पान करनेके लिए प्रवृत्त उदारहृदया स्त्रियाँ संतोषको प्राप्त नहीं हो रहीं थीं ॥७७॥ उन्हीं एकमें जिनका चित्त लग रहा था ऐसी देखने वाली स्त्रियोंके पारस्परिक धक्का धूमीके कारण हार और कुण्डल टूट कर गिर गये थे पर उन्हें पता भी नहीं चल सका था ॥७८॥ हे मातः! जरा मुख यहाँसे दूर हटा, क्या मुझे कौतुक नहीं है? हे अखण्डकौतुके! तेरी यह स्वार्थपरता कितनी है? ॥७९॥ हे सखि! प्रसन्न होकर मस्तक कुछ नीचा कर लो, इतनी तनी क्यों खड़ी हो। यहाँसे चोटीको हटा लो ॥८०॥ हे प्राणहीने! हे छिन्नहृदये! इस तरह दूसरेको क्यों पीड़ित कर रही है? क्या आगे इस पीड़ित लड़कीको नहीं देख रही है? ॥८१॥ जरा हटकर खड़ी होओ, मैं गिर पड़ी हूँ, इस तरह तू क्या निश्चेतनताको प्राप्त हो रही है? अरे कुमारको क्यों नहीं देखती है? ॥८२॥ हाय मातः! कैसी स्त्री है? यदि मैं देखती हूँ तो तुझे इससे क्या प्रयोजन? हे दुर्बले! मेरी इस प्रेरणा देनेवालीको क्यों मना करती है? ॥८३॥ जो ये दो कुमार श्रीरामके दोनों ओर बैठे हैं ये ही अर्धचन्द्रमाके समान ललाटको धारण करनेवाले लवण और अंकुश हैं ॥८४॥ इनमें अनंग लवण कौन है और मदनांकुश कौन है? अहो! ये दोनों ही कुमार अत्यन्त सदृश आकारके धारक हैं ॥८५॥ जो यह महारजतके रंगसे रँगे—लालरंगके कवचको

१. त्रिप्रश्रुतद्विपाश्वीयं रथपादात- म० । २. किन्तु म० । ३. तुदसि ज० । ४. वरं वार्णं म० ।

अहो पुण्यवती सीता यस्याः सुतनयाविमौ । अहो धन्यतमा सा स्त्री यानयो रमणी भवेत् ॥८७॥
एवमाद्याः कथास्तत्र मनःश्रोत्रमलिम्लुचाः । प्रवृत्ताः परमस्त्रीणां तदेकगतचक्षुषाम् ॥८८॥
कपोलमतिसंघट्टात्कुण्डलोरगदंष्ट्रया । न विवेद तदा काचिद् विक्षतं तद्गतात्मिका ॥८९॥
अन्यनारीभुजोत्पीडात्कस्याश्चित्सकवाटके । कञ्चुकेऽभ्युन्नतो रेजे स्तनांशः सघनेन्दुवत् ॥९०॥
न विवेद च्युतां काञ्चीं काचिन्निक्वणिनीमपि । प्रत्यागमनकाले तु सन्दिता स्खलिताऽभवत् ॥९१॥
धम्मिल्लमकरीदंष्ट्राकोटिस्फाटितमंशुकम् । महत्तरिकया काचिद्दृष्ट्वैषत्परिभाषिता ॥९२॥
विभ्रंशिमनसोऽन्यस्य वपुषि श्लथतां गते[3] । विस्रस्तबाहुलतिकावदनात्कटकोऽपतत् ॥९३॥
कस्याश्चिदन्यवनिताकर्णाभरणसङ्गतः । विच्छिन्नपतितो हारः कुसुमाञ्जलितां गतः ॥९४॥
बभूवुर्दृष्टयस्तासां निमेषपरिवर्जिताः । गतयोरपि कासाञ्चित्तयोर्दूरं तथा स्थिताः ॥९५॥

मालिनीवृत्तम्

इति वरभवनाद्रिस्त्रीलतामुक्तपुष्पप्रकरगलितधूलीधूसराकाशदेशाः ।
परमविभवभाजो भूभुजो राघवाद्याः प्रविविशुरतिरम्याः [4]मन्दिरं मङ्गलाढ्यम् ॥९६॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

अनभिसंहितमीदृशमुत्तमं दयितजंतुसमागमनोत्सवम् ।
भजति पुण्यरविप्रतिबोधितप्रवरमानसवारिरुहो जनः ॥९७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलवणांकुशसमागमाभिधानं नाम त्र्युत्तरशतं पर्व ॥१०३॥

धारण करता है वह लवण है और जो तोताके पङ्खके समान हरे रंगके वस्त्र पहने है वह अंकुश है ॥८६॥ अहो ! सीता बड़ी पुण्यवती है जिसके कि ये दोनों उत्तम पुत्र हैं। अहो ! वह स्त्री अत्यन्त धन्य है जो कि इनकी स्त्री होगी ॥८७॥ इस प्रकार उन्हीं एकमें जिनके नेत्र लग रहे थे ऐसी उत्तमोत्तम स्त्रियोंके बीच मन और कानोंको हरण करनेवाली अनेक कथाएँ चल रही थीं ॥८८॥ उनमें जिसका चित्त लग रहा था ऐसी किसी स्त्रीने उस समय अत्यधिक धक्काधूमीके कारण कुण्डल रूपी साँपकी दाँढ़से विमान-घायल हुए अपने कपोलको नहीं जानती थी ॥८९॥ अन्य स्त्रीकी भुजाके उत्पीड़नसे बन्द चोलीके भीतर उठा हुआ किसीका स्तन मेघ सहित चन्द्रमाके सुशोभित हो रहा था ॥९०॥ किसी एक स्त्रीकी मेखला शब्द करती हुई नीचे गिर गई फिर भी उसे पता नहीं चला किन्तु लौटते समय उसी करधनीसे पैर फँस जानेके कारण वह गिर पड़ी ॥९१॥ किसी स्त्रीकी चोटीमें लगी मकरीकी डाँढ़से फटे हुए वस्त्रको देखकर कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री किसीसे कुछ कह रही थी ॥९२॥ जिसका मन ढीला हो रहा था ऐसे किसी दूसरे मनुष्यके शरीरके शिथिलताको प्राप्त करने पर उसकी नीचेको ओर लटकती हुई बाहुरूपी लताके अग्रभागसे कड़ा नीचे गिर गया ॥९३॥ किसी एक स्त्रीके कर्णाभरणमें उलझा हुआ हार टूटकर गिर गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो फूलोंकी अञ्जलि ही बिखेर दी गई हो ॥९४॥ उन दोनों कुमारोंको देखकर किन्हीं स्त्रियोंके नेत्र निर्निमेष हो गये और उनके दूर चले जाने पर भी वैसे ही निर्निमेष रहे आये ॥९५॥ इस प्रकार उत्तमोत्तम भवनरूपी पर्वतों पर विद्यमान स्त्री रूपी लताओंके द्वारा छोड़े हुए फूलोंके समूहसे निकली धूलीसे जिन्होंने आकाशके प्रदेशोंको धूसर-वर्ण कर दिया था तथा जो परम वैभवको प्राप्त थे ऐसे श्रीराम आदि अत्यन्त सुन्दर राजाओंने मङ्गलसे परिपूर्ण महलमें प्रवेश किया ॥९६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि पुण्यरूपी सूर्यके द्वारा जिसका उत्तम मनरूपी कमल विकसित हुआ है ऐसा मनुष्य इस प्रकारके अचिन्तित तथा उत्तम प्रियजनोंके समागमसे उत्पन्न आनन्दको प्राप्त होता है ॥९७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम तथा लवणांकुशके समागमका वर्णन करने वाला एक सौ तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥१०३॥

---

१. सङ्कटा म० । २. तद्गतात्मिकाः म० । ३. गता क० । ४. मङ्गलं म० ।

चतुरुत्तरशतं पर्व

अथ विज्ञापितोऽन्यस्मिन्दिने हलधरो नृपः । मरुन्नन्दनसुग्रीवबिभीषणपुरःसरैः ॥१॥
नाथ प्रसीद विषयेऽन्यस्मिञ्जनकदेहजा । दुःखमास्ते समानेतुं तामादेशो विधीयताम् ॥२॥
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च क्षणं किञ्चिद्विचिन्त्य च । ततो जगाद पद्माभो बाष्पश्यामितदिङ्मुखः ॥३॥
अनघं वेद्मि सीतायाः शीलमुत्तमचेतसः । प्राप्तायाः परिवादं तु पश्यामि वदनं कथम् ॥४॥
समस्तं भूतले लोकं प्रत्याययतु जानकी । ततस्तया समं वासो भवेदेव कुतोऽन्यथा ॥५॥
एतस्मिन्भुवने तस्मान्नृपाः जनपदैः समम् । निमंत्र्यंतां परं प्रीत्या सकलाश्च नभश्चराः ॥६॥
समक्षं शपथं तेषां कृत्वा सम्यग्विधानतः । निरघप्रभवं सीता शचीव प्रतिपद्यताम् ॥७॥
एवमस्त्विति तैरेवं कृतं क्षेपविवर्जितम् । राजानः सर्वदेशेभ्यः सर्वदिग्भ्यः समाहृताः ॥८॥
नानाजनपदा बालवृद्धयोषित्समन्विताः । अयोध्यानगरीं प्राप्ता महाकौतुकसंगताः ॥९॥
असूर्यपश्यनार्योऽपि यत्राऽऽजग्मुः ससंभ्रमाः । ततः किं प्रकृतिस्थस्य जनस्यान्यस्य भण्यताम् ॥१०॥
वर्षीयांसोऽतिमात्रं ये बहुवृत्तान्तकोविदाः । राष्ट्रप्राग्रहराः ख्यातास्ते चान्ये च समागताः ॥११॥
तदा दिक्षु समस्तासु मार्गत्वं सर्वमेदिनीम् । नीता जनसमूहेन परसङ्घट्टमीयुषा ॥१२॥
तुरगैः स्यन्दनैर्युग्यैः शिबिकाभिर्मतङ्गजैः । अन्यैश्च विविधैर्यानैर्लोकस्तत्र समागताः ॥१३॥
आगच्छद्भिः खगैरूर्ध्वमधश्च क्षितिगोचरैः । जगज्जंगममेवेति तदा समुपलक्ष्यते ॥१४॥

अथानन्तर किसी दिन हनूमान् सुग्रीव तथा विभीषण आदि प्रमुख राजाओंने श्री रामसे प्रार्थना की कि हे देव ! प्रसन्न होओ, सीता अन्य देशमें दुःखसे स्थित है इसलिए लानेकी आज्ञा की जाय ॥१-२॥ तब लम्बी और गरम श्वास ले तथा क्षण भर कुछ विचार कर भापोंसे दिशाओं को मलिन करते हुए श्रीरामने कहा कि यद्यपि मैं उत्तम हृदयको धारण करने वाली सीताके शील को निर्दोष जानता हूँ तथापि वह यतश्च लोकापवादको प्राप्त है अतः उसका मुख किस प्रकार देखूँ ॥३-४॥ पहले सीता पृथिवीतल पर समस्त लोगोंको विश्वास उत्पन्न करावे उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है अन्य प्रकार नहीं ॥५॥ इसलिए इस संसारमें देशवासी लोगोंके साथ समस्त राजा तथा समस्त विद्याधर बड़े प्रेमसे निमन्त्रित किये जावें ॥६॥ उन सब के समक्ष अच्छी तरह शपथ कर सीता इन्द्राणीके समान निष्कलङ्क जन्मको प्राप्त हो ॥७॥ 'एव-मस्तु'—'ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर उन्होंने विना किसी विलम्बके उक्त बात स्वीकृत की; फल स्वरूप नाना देशों और समस्त दिशाओंसे राजा लोग आ गये ॥८॥ बालक वृद्ध तथा स्त्रियोंसे सहित नाना देशोंके लोग महाकौतुकसे युक्त होते हुए अयोध्या नगरीको प्राप्त हुए ॥९॥ सूर्यको नहीं देखने वाली स्त्रियाँ भी जब संभ्रमसे सहित हो वहाँ आई थीं तब साधारण अन्य मनुष्यके विषयमें तो कहा ही क्या जावे ? ॥१०॥ अत्यन्त वृद्ध अनेक लोगोंका हाल जाननेमें निपुण जो राष्ट्रके श्रेष्ठ प्रसिद्ध पुरुष थे वे तथा अन्य सब लोग वहाँ एकत्रित हुए ॥११॥ उस समय परम भीड़को प्राप्त हुए जन समूहने समस्त दिशाओंमें समस्त पृथिवीको मार्ग रूपमें परिणत कर दिया था ॥१२॥ लोगोंके समूह घोड़े, रथ, बैल, पालकी तथा नाना प्रकारके अन्य वाहनोंके द्वारा वहाँ आये थे ॥१३॥ ऊपर विद्याधर आ रहे थे और नीचे भूमिगोचरी, इसलिए उन सबसे उस समय यह जगत् ऐसा जान पड़ता था मानो जंगम ही हो अर्थात् चलने फिरने वाला ही हो ॥१४॥

सुप्रपञ्चाः कृता मंचाः क्रीडापर्वतसुन्दराः । विशालाः परमाः शाला मण्डिता ¹दूष्यमण्डपाः ॥१५॥
अनेकपुरसम्पन्नाः प्रासादाः स्तम्भधारिताः । उदारजालकोपेता रचितोदारमण्डपाः ॥१६॥
तेषु स्त्रियः समं स्त्रीभिः पुरुषाः पुरुषैः समम् । यथायोग्यं स्थिताः सर्वे शपथेक्षणकांक्षिणः ॥१७॥
शयनासनताम्बूलभक्तमाल्यादिनाऽखिलम् । कृतमागन्तुलोकस्य सौस्थित्यं राजमानवैः ॥१८॥
ततो रामसमादेशात्प्रभामण्डलसुन्दरः । लङ्केशो वायुपुत्रश्च किष्किन्धाधिपतिस्तथा ॥१९॥
चन्द्रोदरसुतो रत्नजटी चेति महानृपाः । पौंडरीकं पुरं याता बलिनो नभसा क्षणात् ॥२०॥
ते विन्यस्य बहिः सैन्यमन्तरङ्गजनान्विताः । विविशुर्जानकीस्थानं ज्ञापिताः सानुमोदनाः ॥२१॥
विधाय जयशब्दं च प्रकीर्य कुसुमाञ्जलिम् । पादयोः पाणियुग्माङ्कमस्तकेन प्रणम्य च ॥२२॥
उपविष्टा महीपृष्ठे चारुकुट्टिमभासुरे । क्रमेण सङ्कथां चक्रुः पौरस्त्या विनयानताः ॥२३॥
सम्भाषिता सुगम्भीरा सीतात्रपिहितेक्षणा । ²आत्माभिनिन्दनाप्रायं जगाद परिमन्थरम् ॥२४॥
असज्जनवचोदावदग्धान्यङ्गानि साम्प्रतम् । क्षीरोदधिजलेनापि न मे ³गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥२५॥
ततस्ते जगदुर्देवि भगवत्यधुनोत्तमे । शोकं सौम्ये च मुञ्चस्व प्रकृतौ कुरु मानसम् ॥२६॥
असुमान्विष्टपे कोऽसौ त्वयि यः परिवादकः । कोऽसौ चालयति क्षोणीं वह्नेः पिबति कः शिखाम् ॥२७॥
सुमेरुमूर्तिमुत्क्षेप्तुं साहसं कस्य विद्यते । जिह्वया लेढि मूढात्मा कोऽसौ चन्द्रार्कयोस्तनुम् ॥२८॥
गुणरत्नमहीध्रं ते कोऽसौ चालयितुं क्षमः । न स्फुटत्यपवादेन कस्य जिह्वा सहस्रधा ॥२९॥
अस्माभिः किङ्करगणा नियुक्ता भरतावनौ । परिवादरतो देव्या दुष्टात्मा वध्यतामिति ॥३०॥

क्रीड़ा-पर्वतोंके समान लम्बे चौड़े मञ्च तैयार किये गये, उत्तमोत्तम विशाल शालाएँ, कपड़ेके उत्तम तम्बू, तथा जिनकी अनेक गाँव समा जावें ऐसे खम्भों पर खड़े किये गये, बड़े बड़े झरोखोंसे युक्त तथा विशाल मण्डपोंसे सुशोभित महल बनवाये गये ॥१५-१६॥ उन सब स्थानोंमें स्त्रियाँ स्त्रियोंके साथ और पुरुष पुरुषोंके साथ, इस प्रकार शपथ देखनेके इच्छुक सब लोग यथायोग्य ठहर गये ॥१७॥ राजाधिकारी पुरुषोंने आगन्तुक मनुष्योंके लिए शयन आसन ताम्बूल भोजन तथा माला आदिके द्वारा सब प्रकारकी सुविधा पहुँचाई थी ॥१८॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे भामण्डल, विभीषण, हनूमान्, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े बड़े बलवान् राजा क्षणभरमें आकाश मार्गसे पौण्डरीकपुर गये ॥१९-२०॥ वे सब, सेनाको बाहर ठहरा कर अन्तरङ्ग लोगोंके साथ सूचना देकर तथा अनुमति प्राप्त कर सीताके स्थानमें प्रविष्ट हुए ॥२१॥ प्रवेश करते ही उन्होंने सीतादेवीका जय जयकार किया, पुष्पाञ्जलि बिखेरी, हाथ जोड़ मस्तकसे लगा चरणोंमें प्रणाम किया, सुन्दर मणिमय फर्ससे सुशोभित पृथिवी पर बैठे और सामने बैठ विनयसे नम्रीभूत हो क्रमपूर्वक वार्तालाप किया ॥२२-२३॥ तदनन्तर संभाषण करनेके बाद अत्यन्त गम्भीर सीता, आंसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करती हुई अधिकांश आत्म निन्दा रूप वचन धीरे धीरे बोली ॥२४॥ उसने कहा कि दुर्जनोंके वचन रूपी दावानलसे जले हुए मेरे अङ्ग इस समय क्षीरसागरके जलसे भी शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥२५॥ तब उन्होंने कहा कि हे देवि ! हे भगवति ! हे उत्तमे ! हे सौम्ये ! इस समय शोक छोड़ो और मनको प्रकृतिस्थ करो ॥२६॥ संसारमें ऐसा कौन प्राणी है जो तुम्हारे विषयमें अपवाद करने वाला हो। वह कौन है जो पृथिवी चला सके और अग्निशिखाका पान कर सके ? ॥२७॥ सुमेरु पर्वतको उठानेका किसमें साहस है ? चन्द्रमा और सूर्यके शरीरको कौन मूर्ख जिह्वासे चाटता है ? ॥२८॥ तुम्हारे गुण रूपी पर्वतको चलानेके लिए कौन समर्थ है ? अपवादसे किसकी जिह्वा के हजार टुकड़े नहीं होते ? ॥२९॥ हम लोगोंने भरत क्षेत्रकी भूमिमें किंकरोंके समूह यह कह कर नियुक्त कर रक्खे हैं कि जो भी देवीकी निन्दा करनेमें तत्पर हो उसे मार डाला जाय ॥३०॥

१. वस्त्रनिर्मितमण्डपाः । २. आत्मभिनन्दनप्रायं म० । ३. गच्छति म० ।

पृथिव्यां योऽतिनीचोऽपि सीतागुणकथारतः । विनीतस्य गृहे तस्य रत्नवृष्टिर्निपात्यताम् ॥३१॥
अनुरागेण ते धान्यराशिषु क्षेत्रमानवाः । कुर्वन्ति [1]स्थापनां [2]सस्यसम्पत्प्रार्थनतत्परा ॥३२॥
एतत्ते पुष्पकं देवि प्रेषितं रघुभानुना । प्रसीदारुह्यतामेतद्गम्यतां कोशलां पुरीम् ॥३३॥
पद्मः पुरं च देशश्च न शोभन्ते त्वया विना । यथा तरुगृहाकाशं लतादीपेन्दुमूर्तिभिः ॥३४॥
मुखं मैथिलि पश्याद्य सद्यः पूर्णेन्दुरुक्प्रभोः । ननु पत्युर्वचः कार्यमवश्यं कोविदे त्वया ॥३५॥
एवमुक्ता प्रधानस्त्रीशतोत्तमपरिच्छदा । महद्धर्या पुष्पकारूढा तरसा नभसा ययौ ॥३६॥
अथायोध्यां पुरीं दृष्ट्वा भास्करं [3]चास्तसङ्गतम् । सा महेन्द्रोदयोद्याने निन्ये चिन्तातुरा निशाम् ॥३७॥
यदुद्यानं सपद्मायास्तदासीत्सुमनोहरम् । तदेतत्स्मृतपूर्वायास्तस्या जातमसाम्प्रतम् ॥३८॥
सीताशुद्ध्यनुरागाद्वा पद्मबन्धावथोदिते । प्रसाधितेऽखिले लोके किरणैः किङ्करैरिव ॥३९॥
शपथादिव दुर्वादे भीते ध्वान्ते क्षयं गते । समीपं पद्मनाभस्य प्रस्थिता जनकात्मजा ॥४०॥
सा करेणुसमारूढा दौर्मनस्याहतप्रभा । भास्करालोकदृष्टेव सानुगाऽऽसीन्महौषधिः ॥४१॥
तथाप्युत्तमनारीभिरावृता भद्रभावना । रेजे सा नितरां तन्वी ताराभिर्वा विधोः कला ॥४२॥
ततः परिषदं पृथ्वीं गम्भीरां विनयस्थिताम् । वन्द्यमानेड्यमाना च धीरा रामाङ्गनाविशत् ॥४३॥
विषादी विस्मयी हर्षी संक्षोभी जनसागरः । वर्द्धस्व जय नन्देति चकाराम्रेडितं स्वनम् ॥४४॥

और जो पृथिवीमें अत्यन्त नीच होने पर भी सीताकी गुण कथामें तत्पर हो उस विनीतके घरमें रत्नवर्षा की जाय ॥३१॥ हे देवि ! धान्य रूपी सम्पत्तिकी इच्छा करने वाले खेतके पुरुष अर्थात् कृषक लोग अनुराग वश धान्यकी राशियोंमें तुम्हारी स्थापना करते हैं ? भावार्थ—लोगोंका विश्वास है कि धान्य राशिमें सीताकी स्थापना करनेसे अधिक धान्य उत्पन्न होता है ॥३२॥ हे देवि ! रामचन्द्र जी ने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है सो प्रसन्न हो कर इस पर चढ़ा जाय और अयोध्याकी ओर चला जाय ॥३३॥ जिस प्रकार लताके विना वृक्ष, दीपके विना घर और चन्द्रमाके विना आकाश सुशोभित नहीं होते उसी प्रकार तुम्हारे विना राम, अयोध्या नगरी और देश सुशोभित नहीं होते ॥३४॥ हे मैथिलि ! आज शीघ्र ही स्वामीका पूर्णचन्द्रके समान मुख देखो । हे कोविदे ! तुम्हें पति वचन अवश्य स्वीकृत करना चाहिए ॥३५॥ इस प्रकार कहने पर सैकड़ों उत्तम स्त्रियोंके परिकरके साथ सीता पुष्पक विमान पर आरूढ हो गई और बड़े वैभव के साथ वेगसे आकाशमार्गसे चली ॥३६॥ अथानन्तर जब उसे अयोध्यानगरी दिखी उसी समय सूर्य अस्त हो गया अतः उसने चिन्तातुर हो महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें रात्रि व्यतीत की ॥३७॥ रामके साथ होने पर जो उद्यान पहले उसके लिए अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था वही उद्यान पिछली घटना स्मृत होने पर उसके लिए अयोग्य जान पड़ता था ॥३८॥

अथानन्तर सीताकी शुद्धिके अनुरागसे ही मानों जब सूर्य उदित हो चुका, किङ्करोंके समान किरणोंसे जब समस्त संसार अलंकृत हो गया और शपथसे दुर्वादके समान जब अन्धकार भयभीत हो क्षयको प्राप्त हो गया तब सीता रामके समीप चली ॥३९–४०॥ मनकी अशान्तिसे जिसकी प्रभा नष्ट हो गई थी ऐसी हस्तिनीपर चढ़ी सीता, सूर्यके प्रकाशसे आलोकित, पर्वतके शिखर पर स्थित महौषधिके समान यद्यपि निष्प्रभ थी तथापि उत्तम स्त्रियोंसे घिरी, उत्तम भावनावाली दुबली पतली सीता, ताराओंसे घिरी चन्द्रमाकी कलाके समान अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४१–४२॥

तदनन्तर जिसे सब लोग वन्दना कर रहे थे तथा जिसकी सब स्तुति कर रहे थे ऐसी धीर वीरा सीताने विशाल, गम्भीर एवं विनयसे स्थित सभामें प्रवेश किया ॥४३॥ विषाद, विस्मय,

---

१. प्रार्थनां म० । २. शस्य—म० । ३. चास्सङ्गतं म० ।

अहोरूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः । अहो महानुभावत्वमहो गाम्भीर्यमुत्तमम् ॥४५॥
अहोऽस्या वीतपङ्कत्वं समागमनसूचितम् । श्रीमज्जनकराजस्य सुतायाः सितकर्मणः ॥४६॥
एवमुद्धृषिताङ्गानां नराणां सहयोषिताम् । वदनेभ्यो विनिश्चेरुर्वाचो व्याप्तदिगन्तराः ॥४७॥
गगने खेचरो लोको धरण्यां धरणीचरः । उद्दामकौतुकस्तस्थौ निमेषरहितेक्षणः ॥४८॥
प्रजातसम्मदाः केचित्पुरुषाः प्रमदास्तथा । अभीक्ष्णाञ्चक्रिरे रामं सङ्क्रन्दनमिवामराः ॥४९॥
पार्श्वस्थौ वीक्ष्य रामस्य केचिच्च लवणांकुशौ । जगदुः सदृशावस्य सुकुमाराविमाविति ॥५०॥
लक्ष्मणं केचिदैक्षन्त प्रतिपक्षक्षयक्षमम् । शत्रुघ्नसुन्दरं केचिदेके जनकनन्दनम् ॥५१॥
ख्यातं केचिद्धनूमन्तं त्रिकूटाधिपतिं परे । अन्ये विराधितं केचित्किष्किन्धनगरेश्वरम् ॥५२॥
केचिज्जनकराजस्य सुतां विस्मितचेतसः । वसतिः सा हि नेत्राणां क्षणमात्रान्यचारिणाम् ॥५३॥
उपसृत्य ततो रामं दृष्ट्वा व्याकुलमानसा । वियोगसागरस्यान्तं प्राप्तं जानक्यमन्यत ॥५४॥
प्राप्तायाः पद्मभार्याया लक्ष्मणोऽर्घं ददौ ततः । प्रणामं चक्रिरे भूपाः सम्भ्रान्ता रामपार्श्वगाः ॥५५॥
ततोऽभिमुखमायान्तीं वीक्ष्य तां रभसान्विताम् । राघवोऽक्षोभ्यसत्त्वोऽपि सकम्पहृदयोऽभवत् ॥५६॥
अचिन्तयच्च मुक्ताऽपि वने व्यालसमाकुले । मम लोचनचौरीयं कथं भूयः समागता ॥५७॥
अहो विगतलज्जेयं महासत्त्वसमन्विता । यैवं निर्वास्यमानापि विरागं न प्रपद्यते ॥५८॥
ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा वितानीभूतमानसा । विरहो न मयोत्तीर्ण इति साऽभूद्विषादिनी ॥५९॥

हर्ष और क्षोभसे सहित मनुष्योंका अपार सागर बार-बार यह शब्द कह रहा था कि वृद्धिको प्राप्त होओ, जयवन्त होओ और समृद्धिसे सम्पन्न होओ ॥४४॥ अहो ! उज्ज्वल कार्य करनेवाली श्रीमान् राजा जनककी पुत्री सीताका रूप धन्य है ? धैर्य धन्य है, पराक्रम धन्य है, उसकी कान्ति धन्य है, महानुभावता धन्य है, और समागमसे सूचित होनेवाली इसकी निष्कलंकता धन्य है ॥४५-४६॥ इस प्रकार उल्लसित शरीरोंको धारण करनेवाले मनुष्यों और स्त्रियोंके मुखोंसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले शब्द निकल रहे थे ॥४७॥ आकाशमें विद्याधर और पृथिवीमें भूमिगोचरी मनुष्य, अत्यधिक कौतुक और टिमकार रहित नेत्रोंसे युक्त थे ॥४८॥ अत्यधिक हर्षसे सम्पन्न कितनी ही स्त्रियाँ तथा कितने ही मनुष्य रामको टकटकी लगाये हुए उस प्रकार देख रहे थे जिस प्रकार कि देव इन्द्रको देखते हैं ॥४९॥ कितने ही लोग रामके समीपमें स्थित लवण और अंकुशको देखकर यह कह रहे थे कि अहो ! ये दोनों सुकुमार कुमार इनके ही सदृश हैं ॥५०॥ कितने ही लोग शत्रुका क्षय करनेमें समर्थ लक्ष्मणको, कितने ही शत्रुघ्नको, कितने ही भामण्डलको, कितने ही हनूमान्‌को, कितने ही विभीषणको, कितने ही विराधितको और कितने ही सुग्रीवको देख रहे थे ॥५१-५२॥ कितने ही आश्चर्यसे चकित होते हुए जनकसुता को देख रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि वह क्षण मात्रमें अन्यत्र विचरण करनेवाले नेत्रोंकी मानो वसति ही थी ॥५३॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त आकुल हो रहा था ऐसी सीताके पास जाकर तथा रामको देख कर माना था कि अब वियोगरूपी सागरका अन्त आ गया है ॥५४॥ आई हुई सीताके लिए लक्ष्मणने अर्घ दिया तथा रामके समीप बैठे हुए राजाओंने हड़बड़ा कर उसे प्रणाम किया ॥५५॥

तदनन्तर वेगसे सामने आती हुई सीताको देख कर यद्यपि राम अक्षोभ्य पराक्रमके धारक थे तथापि उनका हृदय कांपने लगा ॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मैंने तो इसे हिंसक जन्तुओंसे भरे वनमें छोड़ दिया था फिर मेरे नेत्रोंको चुरानेवाली यह यहाँ कैसे आ गई ? ॥५७॥ अहो ! यह बड़ी निर्लज्ज है तथा महाशक्तिसे सम्पन्न है जो इस तरह निकाली जाने पर भी विरागको प्राप्त नहीं होती ॥५८॥ तदनन्तर रामकी चेष्टा देख, शून्यहृदया सीता यह सोचकर विषाद करने

---

१. वन्द्यमानेक्ष्यमाना च म० ।

विरहोदन्वतः कूलं मे मनःपात्रमागतम् । नूनमेष्यति विध्वंसमिति चिन्ताकुलाऽभवत् ॥६०॥
किंकर्तव्यविमूढा सा पादाङ्गुष्ठेन सङ्गता । विलिखन्ती क्षितिं तस्थौ बलदेवसमीपगा ॥६१॥
अग्रतोऽवस्थिता तस्य विरेजे जनकात्मजा । पुरन्दरपुरे[1] जाता लक्ष्मीरिव शरीरिणी ॥६२॥
ततोऽभ्यधायि रामेण सीते तिष्ठसि किं पुरः । अपसर्प न शक्तोऽस्मि भवतीमभिवीक्षितुम् ॥६३॥
मध्याह्ने दीधितिं सौरीमाशीविषमणेः शिखाम् । वरमुत्सहते चक्षुरीक्षितुं भवतीं तु नो ॥६४॥
दशास्यभवने मासान् बहूनन्तः पुरावृता । स्थिता यदाहृता भूयः समस्तं किं ममोचितम् ॥६५॥
ततो जगाद वैदेही निष्ठुरो नास्ति त्वत्समः[2] । तिरस्करोषि मां येन सुविद्यां प्राकृतो यथा[3] ॥६६॥
दोहलच्छद्मना नीत्वा वनं कुटिलमानसः[4] । गर्भाधानसमेतां मे त्यक्तुं किं सदृशं तव ॥६७॥
असमाधिमृतिं प्राप्ता तत्र स्यामहकं यदि । ततः किं ते भवेत् सिद्धं मम दुर्गतिदायिनः ॥६८॥
अतिस्वल्पोऽपि सद्भावो मय्यस्ति यदि वा कृपा । चान्त्यार्याणां ततः किं न नीत्वा वसतिमुज्झिता ॥६९॥
अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् । जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् ॥७०॥
एवं गतेऽपि पद्माभ प्रसीद किमिहोरुणा । कथितेन प्रयच्छाऽऽज्ञामित्युक्त्वा दुःखिताऽरुदत् ॥७१॥
रामो जगाद जानामि देवि शीलं तवानघम् । मदनुव्रततां चोच्चैर्भावस्य च विशुद्धताम् ॥७२॥
परिवादमिमं किन्तु प्राप्ताऽसि प्रकटं परम् । स्वभावकुटिलस्वान्तामेतां प्रत्यायय प्रजाम् ॥७३॥

लगी कि मैंने विरह रूपी सागर अभी पार नहीं कर पाया है ॥५९॥ विरह रूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मेरा मनरूपी जहाज निश्चित ही विध्वंसको प्राप्त हो जायगा—नष्ट हो जायगा ऐसी चिन्तासे वह व्याकुल हो उठी ॥६०॥ 'क्या करना चाहिए' इस विषयका विचार करनेमें मूढ़ सीता, पैरके अंगूठेसे भूमिको कुरेदती हुई रामके समीप खड़ी थी ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय रामके आगे खड़ी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो शरीरधारिणी स्वर्गकी लक्ष्मी ही हो अथवा इन्द्रके आगे मूर्तिमती लक्ष्मी ही खड़ी हो ॥६२॥

तदनन्तर रामने कहा कि सीते ! सामने क्यों खड़ी है ? दूर हट, मैं तुम्हें देखनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६३॥ मेरे नेत्र मध्याह्नके समय सूर्यकी किरणको अथवा आशीविष-सर्पके मणिकी शिखाको देखनेके लिए अच्छी तरह उत्साहित हैं परन्तु तुझे देखनेके लिए नहीं ॥६४॥ तू रावणके भवनमें कई मास तक उसके अन्तःपुरसे आवृत्त होकर रही फिर भी मैं तुम्हें ले आया सो यह सब क्या मेरे लिए उचित था ? ॥६५॥

तदनन्तर सीताने कहा कि तुम्हारे समान निष्ठुर कोई दूसरा नहीं है। जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य उत्तम विद्याका तिरस्कार करता है उसी प्रकार तुम मेरा तिरस्कार कर रहे हो ॥६६॥ हे वक्रहृदय ! दोहलाके बहाने वनमें ले जाकर मुझ गर्भिणीको छोड़ना क्या तुम्हें उचित था ? ॥६७॥ यदि मैं वहाँ कुमरणको प्राप्त होती तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता ? केवल मेरी ही दुर्गति होती ॥६८॥ यदि मेरे ऊपर आपका थोड़ा भी सद्भाव होता अथवा थोड़ी भी कृपा होती तो मुझे शान्तिपूर्वक आर्यिकाओंकी वसतिके पास ले जाकर क्यों नहीं छोड़ा ॥६९॥ यथार्थमें अनाथ, अबन्धु, दरिद्र तथा अत्यन्त दुःखी मनुष्योंका यह जिनशासन ही परम शरण है ॥७०॥ हे राम ! यहाँ अधिक कहनेसे क्या ? इस दशामें भी आप प्रसन्न हों और मुझे आज्ञा दें। इस प्रकार कह कर वह अत्यन्त दुःखी हो रोने लगी ॥७१॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे देवि ! मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पातिव्रत्यधर्म एवं अभिप्रायकी उत्कृष्ट विशुद्धताको जानता हूँ किन्तु यतश्च तुम लोगोंके द्वारा इस प्रकट भारी अपवादको प्राप्त हुई हो अतः स्वभावसे ही कुटिलचित्तको धारण करनेवाली इस प्रजाको विश्वास दिलाओ। इसकी

---

१. पुरो -म० । २. ते समः ब० । ३. साधारणो जनः । ४. कुटिलमानसः म०, ब० ।

एवमस्त्विति वैदेही जगौ सम्मदिनी ततः । दिव्यैः पञ्चभिरप्येषा लोकं प्रत्याययाम्यहम् ॥७४॥
विषाणां विषमं नाथ कालकूटं पिबाम्यहम् । आशीविषोऽपि यं घ्रात्वा सद्यो गच्छति भस्मताम् ॥७५॥
आरोहामि तुलां वह्निज्वालां रौद्रां विशामि वा । यो वा भवद्भिप्रेतः समयस्तं करोम्यहम् ॥७६॥
क्षणं विचिन्त्य पद्माभो जगौ वह्निं विशेत्यतः । जगौ सीता विशामीति महासम्मदधारिणी ॥७७॥
प्रतिपन्नोऽनया मृत्युरित्यदीर्यंत[1] नारदः । शोकोत्पीडैरपीड्यन्त श्रीशैलाद्या नरेश्वराः ॥७८॥
पावकं प्रविविक्षन्तीं परिनिश्चित्य मातरम् । चक्रतुस्तद्गतिं बुद्धावात्मनोर्लवणाङ्कुशौ ॥७९॥
महाप्रभावसम्पन्नः प्रहर्षं धारयंस्ततः । सिद्धार्थक्षुल्लकोऽवोचदुद्धृत्य भुजमुन्नतम् ॥८०॥
न सुरैरपि वैदेह्याः शीलव्रतमशेषतः । शक्यं कीर्तयितुं कैव कथा क्षुद्रशरीरिणाम् ॥८१॥
पातालं प्रविशेन्मेरुः शुष्येयुर्मकरालयाः । न पद्मचलनं किञ्चित्सीताशीलव्रतस्य तु ॥८२॥
इन्दुरर्कत्वमागच्छेदर्कः शीतांशुतां व्रजेत् । न तु सीतापरीवादः कथञ्चित्सत्यतां व्रजेत् ॥८३॥
विद्याबलसमृद्धेन मया पञ्चसु मेरुषु । वन्दना जिनचन्द्राणां कृता शाश्वतधामसु ॥८४॥
सा मे विफलतां[2] यायात्पद्मनाभ सुदुर्लभा । विपत्तिर्यदि सीतायाः शीलस्यास्ति मनागपि ॥८५॥
भूरिवर्षसहस्राणि सचेलेन मया कृतम् । तपस्तेन[3] शपे नाहं यथेमौ तव पुत्रकौ ॥८६॥
भीमज्वालावलीभङ्गं[4] सर्वभक्षं सुनिष्ठुरम् । मा विशद्नलं सीता तस्मात्पद्म विचक्षण ॥८७॥

शङ्का दूर करो ॥७२-७३॥ तब सीताने हर्षयुक्त हो 'एवमस्तु' कहते हुए कहा कि मैं पाँचों ही दिव्य शपथोंसे लोगोंको विश्वास दिलाती हूँ ॥७४॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मैं उस कालकूटको पी सकती हूँ जो विषोंमें सबसे अधिक विषम है तथा जिसे सूंघकर आशीविष सर्प भी तत्काल भस्मपनेको प्राप्त हो जाता है ॥७५॥ मैं तुलापर चढ़ सकती हूँ अथवा भयङ्कर अग्निकी ज्वालामें प्रवेश कर सकती हूँ अथवा जो भी शपथ आपको अभीष्ट हो उसे कर सकती हूँ ॥७६॥ क्षणभर विचारकर रामने कहा कि अच्छा अग्निमें प्रवेश करो। इसके उत्तरमें सीताने बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि हाँ, प्रवेश करती हूँ ॥७७॥ 'इसने मृत्यु स्वीकृत कर ली' यह विचारकर नारद विदीर्ण हो गया और हनूमान् आदि राजा शोकके भारसे पीडित हो उठे ॥७८॥ 'माता अग्निमें प्रवेश करना चाहती है' यह निश्चयकर लवण और अङ्कुशने बुद्धिमें अपनी भी उसी गतिका विचार कर लिया अर्थात् हम दोनों भी अग्निमें प्रवेश करेंगे ऐसा उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया ॥७९॥ तदनन्तर महाप्रभावसे सम्पन्न एवं बहुत भारी हर्षको धारण करनेवाले सिद्धार्थ क्षुल्लकने भुजा ऊपर उठाकर कहा कि सीताके शीलव्रतका देव भी पूर्णरूपसे वर्णन नहीं कर सकते फिर क्षुद्र प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥८०-८१॥ हे राम ! मेरु पातालमें प्रवेश कर सकता है और समुद्र सूख सकते हैं परन्तु सीताके शीलव्रतमें कुछ चञ्चलता उत्पन्न नहीं की जा सकती ॥८१॥ चन्द्रमा सूर्यपनेको प्राप्त हो सकता है और सूर्य चन्द्रपनेको प्राप्त कर सकता है परन्तु सीताका अपवाद किसी भी तरह सत्यताको प्राप्त नहीं हो सकता ॥८२-८३॥ मैं विद्याबलसे समृद्ध हूँ और और मैंने पाँचों मेरु पर्वतोंपर स्थित शाश्वत-अकृत्रिम चैत्यालयोंमें जो जिन-प्रतिमाएँ हैं उनकी वन्दना की है। हे राम ! मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीताके शीलमें थोड़ी भी कमी है तो मेरी वह दुर्लभ वन्दना निष्फलताको प्राप्त हो जाय ॥८४-८५॥ मैंने वस्त्रखण्ड धारण कर कई हजार वर्ष तक तप किया सो यदि ये तुम्हारे पुत्र न हों तो मैं उस तपकी शपथ करता हूँ अर्थात् तपकी शपथपूर्वक कहता हूँ कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं ॥८६॥ इसलिए हे बुद्धिमन् राम ! जिसमें भयङ्कर ज्वालावली रूप लहरें उठ रही हैं तथा जो सबका संहार करनेवाली है ऐसी अग्निमें

१. रित्युदीर्यत म० । २. विपुलतां म० । ३. ततस्तेन म० । ४. ज्वालावती- म० ।

व्योम्नि वैद्याधरो लोको धरण्यां धरणीचरः । जगाद साधु साधूक्तमिति मुक्तमहास्वनः ॥८८॥
प्रसीद देव पद्माभ प्रसीद व्रज सौम्यताम् । नाथ मा राम मा राम कार्षीः पावकमानसम् ॥८९॥
सती सीता सती सीता न सम्भाव्यमिहान्यथा । महापुरुषपत्नीनां जायते न विकारिता ॥९०॥
इति बाष्पभराद्वाचो गद्गदा[1] जनसागरात् । संक्षुब्धाद्भिनिश्चेरुर्व्याप्तसर्वदिगन्तराः ॥९१॥
महाकोलाहलस्वानैः समं सर्वासुधारिणाम् । अत्यन्तशोकिनां स्थूला निपेतुर्बाष्पबिन्दवः ॥९२॥
पद्मो जगाद यद्येवं भवन्तः करुणापराः । ततः पुरा परिवादमभाषिध्वं कुतो जनाः ॥९३॥
एवमाज्ञापयत्सीघ्रमनपेक्ष्य किङ्करान् । आलम्ब्य परमं सत्त्वं विशुद्धिन्यस्तमानसः ॥९४॥
पुरुषौ द्वावधस्ताद्द्राक् खन्यतामत्र मेदिनी । शतानि त्रीणि हस्तानां चतुष्कोणा प्रमाणतः ॥९५॥
[2]विधायैवंविधां वापीं सुशुष्कैः परिपूर्यताम् । इन्धनैः परमस्थूलैः कृष्णागरुकचन्दनैः ॥९६॥
प्रचण्डबहुलज्वालो ज्वाल्यतामाशुशुक्षणिः । साक्षान्मृत्युरिवोपात्तविग्रहो निर्विलम्बितम् ॥९७॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा महाकुद्दालपाणिभिः । किङ्करैस्तत्कृतं सर्वं कृतान्तपुरुषोत्तमैः ॥९८॥
यस्यामेवाथ वेलायां संवादः पद्मसीतयोः । क्रियते किङ्करैर्भीममनुष्ठानं च दाहनम् ॥९९॥
तदनन्तरं शर्वर्यां ध्यानमुत्तममीयुषः । महेन्द्रोदयमेदिन्यां सर्वभूषणयोगिनः ॥१००॥
उपसर्गो महानासीज्जनितः पूर्ववैरतः । अत्यन्तरौद्ररात्रस्या विद्युद्वक्त्राभिधानया ॥१०१॥
अपृच्छदथ सम्बन्धं श्रेणिको मुनिपुङ्गवम् । ततो गणधरोऽवोचन्नरेन्द्र श्रूयतामिति ॥१०२॥

सीता प्रवेश नहीं करे ॥८७॥ क्षुल्लककी बात सुन आकाशमें विद्याधर और पृथ्वीपर भूमिगोचरी लोग 'अच्छा कहा-अच्छा कहा' इस प्रकारकी जोरदार आवाज लगाते हुए बोले कि 'हे देव प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, सौम्यताको प्राप्त होओ, हे नाथ ! हे राम ! हे राम ! मनमें अग्निका विचार मत करो ॥८८–८९॥ सीता सती है, सीता सती है, इस विषयमें अन्यथा सम्भावन नहीं हो सकती । महापुरुषोंकी पत्नियोंमें विकार नहीं होता ॥९०॥ इस प्रकार समस्त दिशाओंके अन्तराल-को व्याप्त करनेवाले, तथा अश्रुओंके भारसे गद्गद अवस्थाको प्राप्त हुए शब्द, संक्षुभित जन-सागरसे निकलकर सब ओर फैल रहे थे ॥९१॥ तीव्र शोकसे युक्त समस्त प्राणियोंके आंसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें महान् कलकल शब्दोंके साथ-साथ निकलकर नीचे पड़ रही थीं ॥९२॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे मानवो ! यदि इस समय आप लोग इस तरह दया प्रकट करनेमें तत्पर हैं तो पहले आप लोगोंने अपवाद क्यों कहा था ? ॥९३॥ इस प्रकार लोगोंके कथनकी अपेक्षा न कर जिन्होंने मात्र विशुद्धतामें मन लगाया था ऐसे रामने परम दृढ़ताका आलम्बनकर किङ्करोंको आज्ञा दी कि ॥९४॥ यहाँ शीघ्र ही दो पुरुष गहरी और तीन सौ हाथ चौड़ी चौकोन पृथ्वी प्रमाणके अनुसार खोदो और ऐसी वापी बनाकर उसे कालागुरु तथा चन्दनके सूखे और बड़े मोटे ईन्धन परिपूर्ण करो । तदनन्तर उसमें बिना किसी विलम्बके ऐसी अग्नि प्रज्वलित करो कि जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण ज्वालाएँ निकल रही हों तथा जो शरीरधारी साक्षात् मृत्युके समान जान पड़ती हो ॥९५–९७॥ तदनन्तर बड़े-बड़े कुदाले जिनके हाथमें थे तथा जो यमराजके सेवकोंसे भी कहीं अधिक थे ऐसे सेवकोंने 'जो आज्ञा' कहकर रामकी आज्ञा-नुसार सब काम कर दिया ॥९८॥

अथानन्तर जिस समय राम और सीताका पूर्वोक्त संवाद हुआ था तथा किङ्कर लोग जिस समय अग्नि प्रज्वालनका भयङ्कर कार्य कर रहे थे उसी समयसे लगी हुई रात्रिमें सर्वभूषण मुनिराज महेन्द्रोदय उद्यानकी भूमिमें उत्तम ध्यान कर रहे थे सो पूर्व वैरके कारण विद्युद्वक्त्रा नामकी राक्षसीने उनपर महान् उपसर्ग किया ॥९९–१०१ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे

---

१. गद्गदाजन- म० । २. एष श्लोकः म० पुस्तके नास्ति ।

विजयार्द्धोत्तरे वास्ये [1]सर्वपूर्वत्र शोभिते । गुञ्जाभिधाननगरे राजाऽभूत् सिंहविक्रमः ॥१०३॥
तस्य श्रीरित्यभूद्भार्या पुत्रः सकलभूषणः । अष्टौ शतानि तत्कान्ता अग्रा किरणमण्डला ॥१०४॥
कदाचित्सा सपत्नीभिरुच्यमाना सुमानसा । चित्रे मैथुनिकं चक्रे देवी हेमशिखाभिधम् ॥१०५॥
तं राजा सहसा वीक्ष्य परमं कोपमागतः । पत्नीभिश्चोच्यमानश्च प्रसादं पुनरागमत् ॥१०६॥
सम्मदेनान्यदा सुप्ता साध्वी किरणमण्डला । मुहुर्हेमशिखाभिख्यां प्रमादात्समुपाददे ॥१०७॥
श्रुत्वा तां सुतरां क्रुद्धो राजा वैराग्यमागतः । प्राव्राजीत्साऽपि मृत्वाऽभूद्विद्युदास्येति राक्षसी ॥१०८॥
तस्य सा भ्रमतो भिक्षां कृत्वा त्रुटितबन्धनम् । मतङ्गजं परिक्रुद्धा प्रत्यूहनिरताऽभवत् ॥१०९॥
गृहदाहं रजोवर्षमश्वोक्षाभिमुखागमम् । कण्टकावृतमार्गत्वं तथा चक्रे दुरीहिता ॥११०॥
छित्वाऽन्यदा गृहे सन्धिमेतं प्रतिमया स्थितम् । स्थापयत्यानने तस्य स चौर इति गृह्यते ॥१११॥
मुच्यते च परामृष्य परमार्थपराङ्मुखैः । महता जनवृन्देन स्वनता बद्धमण्डलः ॥११२॥
कृतभिक्षस्य निर्यातः कदाचिद्भिक्षदा स्त्रियः । हारं गलेऽस्य बध्नाति स चौर इति कथ्यते ॥११३॥
अतिक्रूरमनाः पापा एवमादीनुपद्रवान् । चक्रे सा तस्य निर्वेदरहिता सततं परान् ॥११४॥
ततोऽस्य प्रतिमास्थस्य महेन्द्रोद्यानगोचरे । उपसर्गं परं चक्रे पूर्ववैरानुबन्धतः ॥११५॥
वेतालैः करिभिः सिंहैर्व्याघ्रैरुग्रैर्महोरगैः । नानारूपैर्गुणैर्दिव्यनारीदर्शनलोचनैः ॥११६॥

इनके पूर्व वैरका सम्बन्ध पूछा सो गणधर भगवान् बोले कि हे नरेन्द्र ! सुनो ॥१०२॥ विजयार्धपर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सर्वत्र सुशोभित गुंजा नामक नगरमें एक सिंहविक्रमनामक राजा रहता था। उसकी रानीका नाम श्री था और उन दोनोंका सकलभूषण नामका पुत्र था। सकलभूषणकी आठ सौ स्त्रियाँ थीं उनमें किरणमण्डला प्रधान स्त्री थी ॥१०३-१०४॥ शुद्धहृदयको धारण करनेवाली किरणमण्डलाने किसी समय सपत्नियोंके कहनेपर चित्रपटमें अपने मामाके पुत्र हेमशिख का रूप लिखा उसे देख राजा सहसा परम कोपको प्राप्त हुआ परन्तु अन्य पत्नियोंके कहनेपर वह पुनः प्रसन्नताको प्राप्त हो गया ॥१०५-१०६॥ पतिव्रता किरणमण्डला किसी समय हर्ष सहित अपने पतिके साथ सोई हुई थी सो सोते समय प्रमादके कारण उसने बार-बार हेमरथका नाम उच्चारण किया जिसे सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुआ और कुपित होकर उसने वैराग्य धारण कर लिया। उधर किरणमण्डला भी साध्वी हो गई और मरकर विद्युद्वक्त्रा नामकी राक्षसी हुई ॥१०७-१०८॥ जब सकलभूषणमुनि भिक्षाके लिए भ्रमण करते थे तब वह दुष्ट राक्षसी कुपित हो अन्तराय करनेमें तत्पर हो जाती थी। कभी वह मत्त हाथीका बन्धन तोड़ देती थी, कभी घरमें आग लगा देती थी, कभी रजकी वर्षा करने लगती थी, कभी घोड़ा अथवा बैल बनकर उनके सामने आ जाती थी और कभी मार्गको कण्टकोंसे आवृत कर देती थी ॥१०९-११०॥ कभी प्रतिमायोगसे विराजमान मुनिराजको, घरमें सन्धि फोड़कर उसके आगे लाकर रख देती थी और यह कहकर पकड़ लेती थी कि यही चोर है तब हल्ला करते हुए लोगोंकी भीड़ उन्हें घेर लेती थी, कुछ परमार्थसे विमुख लोग उनका अनादर कर उसके बाद उन्हें छोड़ देते थे ॥१११-११२॥ कभी आहार कर जब बाहर निकलने लगते तब आहार देनेवाली स्त्रीका हार इनके गलेमें बाँध देती और कहने लगती कि यह चोर है ॥११३॥ इस प्रकार अत्यन्त क्रूर हृदयको धारण करनेवाली वह पापिनी राक्षसी निर्वेदसे रोहित हो सदा एकसे बढ़कर उपसर्ग करती रहती थी ॥११४॥ तदनन्तर यही मुनिराज महेन्द्रोदयनामा उद्यानमें प्रतिमा योगसे विराजमान थे सो उस राक्षसीने पूर्व वैरके संस्कारसे उनपर परम उपसर्ग किया ॥११५॥ वह कभी वेताल बनकर कभी हाथी सिंह व्याघ्र तथा भयङ्कर सर्प होकर और कभी नानाप्रकारके गुणोंसे

---

१. सर्वत्र भी० टि० ।

उपद्रवैर्यदाऽमीभिः स्खलितं नास्य मानसम् । तदा तस्य मुनीन्द्रस्य ज्ञानं केवलमुद्गतम् ॥११७॥
ततः केवलसम्भूतिमहिमाहितमानसाः । सुरासुराः समायाताः सुनाशीरपुरःसराः ॥११८॥
स्तम्बेरमैर्मृगाधीशैः स्थूरीपृष्ठैः क्रमेलकैः । बालेयैरुरुभिर्व्याघ्रैः शरभैः सृमरैः खगैः ॥११९॥
विमानैः स्यन्दनैर्युग्यैर्यानैरन्यैश्च चारुभिः । ज्योतिःपथं समासाद्य महासम्पत्समन्विताः ॥१२०॥
पवनोद्धूतसत्केशवस्त्रकेतनपंक्तयः । मौलिकुण्डलहारांशुसमुद्योतितपुष्कराः ॥१२१॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णाः साकेताभिमुखाः सुराः । अवतेरुरलं हृष्टाः पश्यन्तो धरणीतलम् ॥१२२॥
अवलोक्य ततः सीतावृत्तान्तं मेषकेतनः । शक्रं जगाद देवेन्द्र पश्येदमपि दुष्करम् ॥१२३॥
सुराणामपि दुःस्पर्शो महाभयसमुद्भवः । सीताया उपसर्गोऽयं कथं नाथ प्रवर्तते ॥१२४॥
श्राविकायाः सुशीलायाः परमस्वच्छचेतसः । दुरीक्ष्यः कथमेतस्या जायतेऽयमुपप्लवः ॥१२५॥
आखण्डलस्ततोऽवोचदहं सकलभूषणम् । त्वरितं वन्दितुं यामि कर्तव्यं त्वमिहाश्रय ॥१२६॥
अभिधायेति देवेन्द्रो महेन्द्रोदयसम्मुखम् । ययावेषोऽपि मेषाङ्कः सीतास्थानमुपागमत् ॥१२७॥
तत्र व्योमतलस्थोऽसौ विमानशिखरे स्थितः । सुमेरुशिखरच्छाये [1]समुद्योतयते दिशाम् ॥१२८॥

आर्यागीतिच्छन्दः

.... ।

रविरिव विराजमानः सर्वजनमनोहरं स पश्यति रामम् ॥१२९॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सकलभूषणदेवागमनाभिधानं नाम चतुरुत्तरशतं पर्व ॥१०४॥

दिव्य स्त्रियोंका रूप दिखाकर उपसर्ग किया ॥११६॥ परन्तु जब इन उपसर्गोंसे इनका मन विचलित नहीं हुआ तब इन मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥११७॥

तदनन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी महिमामें जिनका मन लग रहा था ऐसे इन्द्रष्ट आदि समस्त सुर असुर वहाँ आये ॥११८॥ हाथी, सिंह, घोड़े, ऊँट, गधे, बड़े-बड़े व्याघ्र, अष्टापद, सामर, पक्षी, विमान, रथ, बैल, तथा अन्य अन्य सुन्दर वाहनोंसे आकाशको आच्छादित कर सब लोग अयोध्याकी ओर आये। जिनके केश, वस्त्र तथा पताकाओंकी पङ्क्तियाँ वायुसे हिल रही थीं तथा जिनके मुकुट, कुण्डल और हारकी किरणोंसे आकाश प्रकाशमान हो रहा था ॥११८-१२१॥ जो अप्सराओंके समूहसे व्याप्त थे तथा जो अत्यन्त हर्षित हो पृथिवीतलको अच्छी तरह देख रहे थे ऐसे देव लोग नीचे उतरे ॥१२२॥ तदनन्तर सीताका वृत्तान्त देख मेषकेतु नामक देवने अपने इन्द्रसे कहा कि हे देवेन्द्र! जरा इस अत्यन्त कठिन कार्यको भी देखो ॥१२३॥ हे नाथ! देवोंको भी जिसका स्पर्श करना कठिन है तथा जो महाभयका कारण है ऐसा यह सीताका उपसर्ग क्यों हो रहा है? सुशील एवं अत्यन्त स्वच्छ हृदयको धारण करनेवाली इस श्राविकाके ऊपर यह दुरीक्ष्य उपद्रव क्यों हो रहा है? ॥१२४-१२५॥ तदनन्तर इन्द्रने कहा कि मैं सकलभूषण केवलीकी वन्दना करनेके लिए शीघ्रतासे जा रहा हूँ इसलिए यहाँ जो कुछ करना योग्य हो वह तुम करो ॥१२६॥ इतना कहकर इन्द्र महेन्द्रोदय उद्यानके सन्मुख चला और यह मेषकेतु देव सीताके स्थान पर पहुँचा ॥१२७॥ वहाँ यह आकाशतलमें सुमेरुके शिखरके समान कान्तिसे युक्त दिशाओंको प्रकाशित करने लगा। विमानके शिखरपर स्थित हुआ ॥१२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस विमानकी शिखरपर सूर्यके समान सुशोभित होनेवाले उस मेषकेतु देवने वहींसे सर्वजन मनोहारी रामको देखा ॥१२९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित श्री पद्मपुराणमें सकलभूषणके केवलज्ञानोत्सवमें देवोंके आगमनका वर्णन करनेवाला एकसौचौथा पर्व समाप्त हुआ ॥१०४॥

---

१. 'समुद्योतयते दिशाम्' इति पाठः न पुस्तके एव विद्यते। अन्येषु पुस्तकेषु पाठो नास्त्येव। २. १२९ तमश्लोकस्य पूर्वार्धः पुस्तकचतुष्टयेऽपि नास्ति।

पञ्चोत्तरशतं पर्व

तां निरीक्ष्य ततो वापीं तृणकाष्ठप्रपूरिताम् । समाकुलमना दध्याविति काकुत्स्थचन्द्रमाः ॥१॥
कुतः पुनरिमां कान्तां पश्येयं गुणतूणिकाम् । महालावण्यसम्पन्नां द्युतिशीलपरावृताम् ॥२॥
विकासिमालतीमालासुकुमारशरीरिका । नूनं यास्यति विध्वंसं स्पृष्टमात्रेव वह्निना ॥३॥
अभविष्यदियं नो चेत्कुले जनकभूभृतः । परिवादमिमं नाप्स्यन्मरणं च हुताशने ॥४॥
उपलप्स्ये कुतः सौख्यं क्षणमप्यनया विना । वरं वासोऽनयाऽरण्ये न विना दिवि राजते ॥५॥
महानिश्चिन्तचित्तेयमपि मर्त्तुं व्यवस्थिता । प्रविशन्ती कृतास्थाग्निं रोद्धुं लोकस्य लज्यते ॥६॥
उन्मुक्तसुमहाशब्दः सिद्धार्थः क्षुल्लकोऽप्ययम् । तूष्णीं स्थितः किमु व्याजं करोम्येतन्निवर्त्तते ॥७॥
अथ वा येन यादृक्षं मरणं समुपार्जितम् । नियमं स तदाऽऽप्नोति कस्तद्वारयितुं क्षमः ॥८॥
तदाऽपह्रियमाणाया ऊर्ध्वं क्षारमहोदधेः । मद्नुव्रतचित्ताया नेच्छत्येवेति कोपिना[1] ॥९॥
लङ्काधिपतिना किं नालुनमस्याः शिरोऽसिना । येनाऽयमपरः प्रातः संशयोऽत्यन्तदुस्तरः ॥१०॥
वरं हि मरणं श्लाघ्यं न वियोगः सुदुःसहः । श्रुतिस्मृतिहरोऽसौ हि परमः कोऽपि निन्दितः ॥११॥
यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः । मृतेति छिद्यते स्वैरं कथाकांक्षा च तद्गता ॥१२॥
इति चिन्तातुरे तस्मिन् वाप्यां प्रज्वाल्यतेऽनलः । समुत्पन्नोरुकारुण्या रुरुदुर्नरयोषितः ॥१३॥

अथानन्तर तृण और काष्ठसे भरी उस वापीको देख श्रीराम व्याकुलचित्त होते हुए इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१॥ गुणोंकी पुञ्ज, महा सौन्दर्यसे सम्पन्न एवं कान्ति और शीलसे युक्त इस कान्ताको अब पुनः कैसे देख सकूँगा ॥२॥ खिली हुई मालतीकी मालाके समान सुकुमार शरीरको धारण करनेवाली यह कान्ता निश्चित ही अग्निके द्वारा स्पृष्ट होते ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥३॥ यदि यह राजा जनकके कुलमें उत्पन्न नहीं हुई होती तो इस लोकापवादको तथा अग्निमें मरणको प्राप्त नहीं होती ॥४॥ इसके बिना मैं क्षण भरके लिए भी और किससे सुख प्राप्त कर सकूँगा ? इसके साथ वनमें निवास करना भी अच्छा है पर इसके बिना स्वर्गमें रहना भी शोभा नहीं देता ॥५॥ यह भी महा निश्चिन्तहृदया है कि मरनेके लिए उद्यत हो गई । अब दृढ़ताके साथ अग्निमें प्रवेश करनेवाली है सो इसे कैसे रोका जाय ? लोगोंके समक्ष रोकनेमें लज्जा उत्पन्न हो रही है ॥६॥ उस समय बड़े जोरसे हल्ला करनेवाला यह सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक भी चुप बैठा है, अतः इसे रोकनेमें क्या बहाना करूँ ? ॥७॥ अथवा जिसने जिस प्रकारके मरणका अर्जन किया है नियमसे वह उसी मरणको प्राप्त होता है उसे रोकनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥८॥ उस समय जब कि यह पतिव्रता लवण समुद्रके ऊपर हरकर ले जाई जा रही थी तब 'यह मुझे नहीं चाहती है' इस भावसे कुपित हो रावणने खड्गसे इसका शिर क्यों नहीं काट डाला ? जिससे कि यह इस अत्यन्त दुस्तर संशयको प्राप्त हुई है ॥९-१०॥ मर जाना अच्छा है परन्तु दुःसह वियोग अच्छा नहीं है क्योंकि श्रुति तथा स्मृतिको हरण करनेवाला वियोग कोई अत्यन्त निन्दित पदार्थ है ॥११॥ विरह तो जीवन-पर्यन्तके लिए चित्तका संपता प्रदान करता रहता है और 'मर गई' यह सुन उस सम्बन्धी कथा और इच्छा तत्काल छूट जाती है ॥१२॥ इस प्रकार रामके चिन्तातुर होनेपर वापीमें अग्नि जलाई जाने लगी । दयावती स्त्रियाँ रो उठीं ॥१३॥

---

१. कोपिता म० ।

ततोऽन्धकारितं व्योम धूमेन घनमुद्यता । अभूदकालसम्प्राप्तप्रावृण्मेघैरिवावृतम् ॥१४॥
भृङ्गात्मकमिवोद्भूतं जगदन्यदिदं तदा । कोकिलात्मकमाहोस्विदाहो पारापतात्मकम् ॥१५॥
अशक्नुवन्निव द्रष्टुमुपसर्गं तथाविधम् । दयार्द्रहृदयः शीघ्रं भानुः क्वापि तिरोदधे ॥१६॥
[1]जज्वालज्वलनश्चोग्रः सर्वाशासु महाजवः । गव्यूतिपरिमाणाभिर्ज्वालाभिर्विकरालितः ॥१७॥
किं निरन्तरतीव्रांशुसहस्रैश्छादितं नभः । [2]पातालकिंशुकागौघाः सहसा किं समुत्थिताः ॥१८॥
आहोस्विद्गगनं प्राप्तमुत्पातमयसन्ध्यया । हाटकात्मकमेकं तु प्रारब्धं भवितुं जगत् ॥१९॥
सौदामिनीमयं किन्नु[3] सञ्जातं भुवनं तदा । जिगीषया परो जातः किमु जङ्गममन्दरः ॥२०॥
ततः सीता समुत्थाय नितान्तस्थिरमानसा । [4]कायोत्सर्गं क्षणं कृत्वा स्तुत्वा भावार्पितान् जिनान् ॥२१॥
ऋषभादीन्नमस्कृत्य धर्मतीर्थस्य देशकान् । सिद्धान् समस्तसाधूंश्च सुव्रतं च जिनेश्वरम् ॥२२॥
यस्य संसेव्यते तीर्थं तदा सम्मदधारिभिः । परमैश्वर्यसंयुक्तैस्त्रिदशासुरमानवैः ॥२३॥
सर्वप्राणिहिताऽऽचार्यचरणौ च मनःस्थितौ । प्रणम्योदारगम्भीरा विनीता जानकी जगौ ॥२४॥
कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरम् । समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम ॥२५॥
यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावकः । भस्मसाद्भावमप्राप्तामपि प्रापयतु क्षणात् ॥२६॥
अथ पद्माकरं नान्यं मनसाऽपि वहाम्यहम् । ततोऽयं ज्वलनो धाक्षीन्मा मां शुद्धिसमन्विताम् ॥२७॥

तदनन्तर अत्यधिक उठते हुए धूमसे आकाश अन्धकारयुक्त हो गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो असमयमें प्राप्त हुए वर्षाकालीन मेघोंसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१४॥ उस समय जगत् ऐसा जान पड़ने लगा मानो भ्रमरोंसे युक्त, कोकिलाओंसे युक्त अथवा कबूतरोंसे युक्त दूसरा ही जगत् उत्पन्न हुआ है ॥१५॥ सूर्य आच्छादित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दयासे आर्द्र हृदय होनेके कारण उस प्रकारके उपसर्गको देखनेके लिए असमर्थ होता हुआ शीघ्र ही कहीं जा छिपा हो ॥१६॥ उस वापीमें ऐसी भयङ्कर अग्नि प्रज्वलित हुई कि समस्त दिशाओंमें जिसका महावेग फैल रहा था और जो कोशों प्रमाण लम्बी-लम्बी ज्वालाओंसे विकराल थी ॥१७॥ उस समय उस अग्निको देख इस प्रकार संशय उत्पन्न होता था कि क्या एक साथ उदित हुए हजारों सूर्योंसे आकाश आच्छादित हो रहा है ? अथवा पाताललोकके पलाश वृक्षोंका समूह क्या सहसा ऊपर उठ आया है ? अथवा आकाशको क्या प्रलयकालीन सन्ध्याने घेर लिया है ? अथवा यह समस्त जगत् एक सुवर्णरूप होनेकी तैयारी कर रहा है अथवा समस्त संसार बिजलीमय हो रहा है अथवा जीतनेकी इच्छासे क्या दूसरा चलता-फिरता मेरु ही उत्पन्न हुआ है ? ॥१८-२०॥

तदनन्तर जिसका मन अत्यन्त दृढ़ था ऐसी सीताने उठकर क्षणभरके लिए कायोत्सर्ग किया, भावनासे प्राप्त जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति की, ऋषभादि तीर्थंकरोंको नमस्कार किया, सिद्ध परमेष्ठी, समस्त साधु और मुनिसुव्रत जिनेन्द्र, जिनके कि तीर्थकी उस समय हर्षके धारक एवं परम ऐश्वर्यसे युक्त देव असुर और मनुष्य सदा सेवा करते हैं और मनमें स्थित सर्वप्राणि हितैषी आचार्यके चरणयुगल इन सबको नमस्कार कर उदात्त गाम्भीर्य और अत्यधिक विनयसे युक्त सीताने कहा ॥२१-२४॥ कि मैंने रामको छोड़कर किसी अन्य मनुष्यको स्वप्नमें भी मन-वचन और कायसे धारण नहीं किया है यह मेरा सत्य है ॥२५॥ यदि मैं यह मिथ्या कह रही हूँ तो यह अग्नि दूर रहनेपर भी मुझे क्षण भरमें भस्मभावको प्राप्त करा दे—राखका ढेर बना दे ॥२६॥ और यदि मैंने रामके सिवाय किसी अन्य मनुष्यको मनसे भी धारण नहीं किया है तो विशुद्धिसे

---

१. प्रज्वाल-म० । २. पातालं किंशुकां गौघाः म० । ३. किन्तु म० । ४. कार्यांत्सर्गं म० ।

[1]मिथ्यादर्शनिनीं पापां क्षुद्रिकां व्यभिचारिणीम् । ज्वलनो मां दहत्येष सतीं व्रतस्थितां तु मा ॥२८॥
अभिधायेति सा देवि प्रविवेशानलं च तम् । जातं च [2]स्फटिकस्वच्छं सलिलं सुखशीतलम् ॥२९॥
भित्त्वेव सहसा क्षोणीं तरसा पयसोद्धता । परमं पूरिता वापी रङ्गद्भङ्गकुलाऽभवत् ॥३०॥
[3]नोल्मुकानि न काष्ठानि नाङ्गारा[4] न तृणादिकम् । आलोक्यते तदा तत्र [5]वृत्तपावकसूचनम् ॥३१॥
पर्यन्तबद्धफेनौघवलया वेगशालिनः । आवर्तास्तत्र संवृद्धा गम्भीरा भीमदर्शनाः ॥३२॥
भवन्मृदङ्गनिस्वानात् क्वचिद् गुलुगुलायते । भुंभुंद्भुम्भायतेऽन्यत्र क्वचित् पटपटायते ॥३३॥
क्वचिन्मुञ्चति हुङ्कारान्धूंकारान्क्वचिदायतान् । क्वचिद्दिमिदिमिस्वानान् जुगुधुद्गुदिति क्वचित् ॥३४॥
क्वचित्कलकलारावांच्छसद्भसदिति क्वचित् । दुद्दु[6] घण्टासमुद्घुष्टमिति क्वचिदितीति च ॥३५॥
एवमादिपरिक्षुब्धसागराकारनिःस्वना । क्षणाद्रोधःस्थितं वापी लग्ना प्लावयितुं जनम् ॥३६॥
जानुमात्रं क्षणादम्भः श्रोणिदघ्नमभूत्क्षणात् । पुनर्निमेषमात्रेण स्तनद्वयसतां गतम् ॥३७॥
नैति पौरुषतां यावत्तावत्त्रस्ता महीचराः । किङ्कर्तव्यातुरा जाताः खेचरा वियदाश्रिताः ॥३८॥
कण्ठस्पर्शि ततो जाते वारिण्युरुजवान्विते । विह्वलाः सङ्गता मञ्चास्तेऽपि चञ्चलतां गताः ॥३९॥
केचित् [7]प्लवितुमारब्धा जातेऽम्भसि शिरोतिगे । वस्त्रडिम्भकसम्बन्धसन्दिग्धोर्ध्वैकबाहुगाः[8] ॥४०॥
त्रायस्व देवि त्रायस्व मान्ये लक्ष्मि सरस्वति । महाकल्याणि धर्माढ्ये सर्वप्राणिहितैषिणि ॥४१॥

सहित मुझे यह अग्नि नहीं जलावे ॥२७॥ यदि मैं मिथ्यादृष्टि, पापिनी, क्षुद्रा और व्यभिचारिणी होऊँगी तो यह अग्नि मुझे जला देगी और यदि सदाचारमें स्थित सती होऊँगी तो नहीं जला सकेगी ॥२८॥ इतना कहकर उस देवीने उस अग्निमें प्रवेश किया परन्तु आश्चर्यकी बात कि वह अग्नि स्फटिकके समान स्वच्छ, सुखदायी तथा शीतल जल हो गई ॥२९॥ मानो सहसा पृथिवीको फोड़ कर वेगसे उठते हुए जलसे वह वापिका लबालब भर गई तथा चञ्चल तरङ्गोंसे व्याप्त हो गई ॥३०॥ वहाँ अग्नि थी इस बातकी सूचना देने वाले न लूगर, न काष्ठ, न अंगार और न तृणादिक कुछ भी दिखाई देते थे ॥३१॥ उस वापिकामें ऐसी भयंकर भँवरें उठने लगीं जिनके कि चारों ओर फेनोंके समूह चक्कर लगा रहे थे जो अत्यधिक वेगसे सुशोभित थीं तथा अत्यन्त गंभीर थीं ॥३२॥ कहीं मृदङ्ग जैसा शब्द होनेसे 'गुलु गुल' शब्द होने लगा, कहीं 'भुं भुंद्भुंभ'की ध्वनि उठने लगी और कहीं 'पट पट'की आवाज आने लगी ॥३३॥ उस वापीमें कहीं हुँकार, कहीं लम्बी-चौड़ी धूंकार, कहीं दिमिदिमि, कहीं जुगुद् जुगुद्, कहीं कल कल ध्वनि, कहीं शसद्-भसद, और कहीं चांदीके घण्टा जैसी आवाज आ रही थी ॥३४-३५॥ इस प्रकार जिसमें क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द उठ रहा था ऐसी वह वापी क्षणभरमें तटपर स्थित मनुष्योंको डुबाने लगी ॥३६॥ वह जल क्षणभरमें घुटनोंके बराबर, फिर नितम्बके बराबर, फिर निमेष मात्रमें स्तनोंके बराबर हो गया ॥३७॥ वह जल पुरुष प्रमाण नहीं हो पाया कि उसके पूर्व ही पृथिवी पर चलने वाले लोग भयभीत हो उठे तथा क्या करना चाहिए इस विचारसे दुखी विद्याधर आकाशमें जा पहुँचे ॥३८॥ तदनन्तर तीव्र वेगसे युक्त जल जब कण्ठका स्पर्श करने लगा तब लोग व्याकुल हो कर मंचोंपर चढ़ गये किन्तु थोड़ी देर वाद वे मञ्च भी डूब गये ॥३९॥ तदनन्तर जब वह जल शिरको उल्लंघन कर गया तब कितने ही लोग तैरने लगे। उस समय उनकी एक भुजा वस्त्र तथा बच्चोंको संभालनेके लिए ऊपरकी ओर उठ रही था ॥४०॥ "हे देवि !

---

१. अत्रायमुपयुक्तः श्लोको महानाटकस्य—'मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे, मम यदि प्रतिभावो राघवादन्य पुंसि । तदिह दह शरीरं पावके मामकीनं, मम सुकृतदुरितकार्ये देव साक्षी त्वमेव' इति । २. स्फटिकं स्वच्छं म० । ३. नोत्सुकानि म० । ४. नागाराः म० । ५. वृद्धं म० । ६. दुद्दु घंटा समुत्तस्था -म० । ७. स्तवितु-म० । ८. वाहनाः म० ।

दयां कुरु महासाध्वि मुनिमानसनिर्मले । इति वाचो विनिश्चेरुर्वारिविह्वललोकतः ॥४२॥
ततः सरसिजगर्भकोमलं नखभावितम् । स्पृष्ट्वा वापीवधूरूर्मिहस्तैः पद्मक्रमद्वयम् ॥४३॥
प्रशान्तकलुषावर्ता त्यक्तभीषणनिस्वना । क्षणेन सौम्यतां प्राप्ता ततो लोकोऽभवत्सुखी ॥४४॥
उत्पलैः कुमुदैः [1]पद्मैः संछन्ना साऽभवत्क्षणात् । सौरभ्यक्षीबभृंगौघसङ्गीतकमनोहरा ॥४५॥
क्रौंचानां चक्रवाकानां हंसानां च कदम्बकैः । तथा कादम्बकादीनां सुस्वनानां विराजिता ॥४६॥
मणिकाञ्चनसोपानैर्वीचीसन्तानसन्निभिः । पुष्पैर्मरकतच्छायाकोमलैश्चातिसत्तटा ॥४७॥
उत्तस्थावथ मध्येऽस्या विपुलं विमलं शुभम् । सहस्रच्छदनं पद्मविकचं विकटं मृदु ॥४८॥
नानाभक्तिपरीतांगं रत्नोद्योतांशुकावृतम् । आसीत्सिंहासनं तस्य मध्ये तुल्येन्दुमण्डलम् ॥४९॥
तत्रामरवरस्त्रीभिर्मा भैषीरिति सांत्विता । सीताऽवस्थापिता रेजे श्रीरिवात्यद्भुतोदया ॥५०॥
कुसुमाञ्जलिभिः सार्द्धं साधु साध्विति निःस्वनः । गगनस्थैः समुत्सृष्टस्तुष्टैर्देवकदम्बकैः ॥५१॥
गुगुंगुमंजवो गुंजा विनेदुः पटहाः पटु । नांद्यो ननन्दुरायातं [2]चक्रणुः काहलाः कलम् ॥५२॥
अशब्दायन्त शङ्खौघा धीरं तूर्याणि दध्वनुः । ववणुर्विशदं वंशाः कांसतालानि चक्रणुः ॥५३॥
[3]वल्गिता क्ष्वेडितोद्घुष्टकुष्टादिकरणोद्यताः । तुष्टा ननृतुरन्योन्यश्लिष्टा वैद्याधरा गणाः ॥५४॥
श्रीमज्जनकराजस्य तनया परमोदया । श्रीमतो बलदेवस्य पत्नी विजयतेतराम् ॥५५॥

रक्षा करो, हे मान्ये ! हे लक्ष्मि ! हे सरस्वति ! हे महाकल्याणि ! हे धर्मसहिते ! हे सर्वप्राणिहितैषिणि ! रक्षा करो ॥४१॥ हे महापतिव्रते ! हे मुनिमानसनिर्मले ! दया करो । इस प्रकार जलसे भयभीत मनुष्योंके मुखसे शब्द निकल रहे थे ॥४२॥

तदनन्तर वापीरूपी वधू, तरङ्गरूपी हाथोंके द्वारा कमलके मध्यभागके समान कोमल एवं नखोंसे सुशोभित रामके चरणयुगलका स्पर्शकर क्षणभरमें सौम्यदशाको प्राप्त हो गई। उसकी मलिन भँवरें शान्त हो गईं और उसका भयंकर शब्द छूट गया। इससे लोग भी सुखी हुए ॥४३-४४॥ वह वापी क्षण भरमें नील कमल, सफेद कमल तथा सामान्य कमलोंसे व्याप्त हो गई और सुगन्धिसे मदोन्मत्त भ्रमर समूहके संगीतसे मनोहर दिखने लगी ॥४५॥ सुन्दर शब्द करनेवाले क्रौञ्च, चक्रवाक, हंस तथा बदक आदि पक्षियोंके समूहसे सुशोभित हो गई ॥४६॥ मणि तथा स्वर्ण निर्मित सीढ़ियों और लहरोंके बीचमें स्थित मरकतमणिकी कान्तिके समान कोमल पुष्पोंसे उसके किनारे अत्यन्त सुन्दर दिखने लगे ॥४७॥

अथानन्तर उस वापीके मध्यमें एक विशाल, विमल, शुभ, खिला हुआ तथा अत्यन्त कोमल सहस्र दल कमल प्रकट हुआ और उस कमलके मध्यमें एक ऐसा सिंहासन स्थित हुआ कि जिसका आकार नानाप्रकारके वेल-बूटोंसे व्याप्त था, जो रत्नोंके प्रकाश रूपी वस्त्रसे वेष्टित था, और कान्तिसे चन्द्रमण्डलके समान था ॥४८-४९॥ तदनन्तर 'डरो मत' इसप्रकार उत्तम देवियाँ जिसे सान्त्वना दे रहीं थीं ऐसी सीता सिंहासन पर बैठाई गई। उस समय आश्चर्यकारी अभ्युदयको धारण करनेवाली सीता लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थी ॥५०॥ आकाशमें स्थित देवोंके समूहने संतुष्ट होकर पुष्पाञ्जलियोंके साथ-साथ 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' यह शब्द छोड़े ॥५१॥ गुँजा नामके मनोहर वादित्र गूँजने लगे, नगाड़े जोरदार शब्द करने लगे, नान्दी लोग अत्यधिक हर्षित हो उठे, काहल मधुर शब्द करने लगे, शङ्खोंके समूह बज उठे, तूर्य गम्भीर शब्द करने लगे, बाँसुरी स्पष्ट शब्द कर उठीं तथा काँसेकी झाँझें मधुर शब्द करने लगीं ॥५२-५३॥ वल्गित, क्ष्वेडित, उद्घुष्ट तथा कुष्ट आदिके करनेमें तत्पर, संतोषसे युक्त विद्याधरोंके समूह परस्पर एक दूसरेसे मिलकर नृत्य करने लगे ॥५४॥ सब ओरसे यही ध्वनि आकाश और पृथिवीके अन्त-

१. पद्मैः म० । २. -रायत्तं म० । ३. वल्गितान् म० ।

अहो चित्रमहो चित्रमहो शीलं सुनिर्मलम् । एवं स्वनः समुत्तस्थौ रोदसी प्राप्य सर्वतः ॥५६॥
ततोऽकृत्रिमसावित्रीस्नेहसम्मग्नमानसौ । तीर्त्वा ससम्भ्रमौ प्राप्तौ जानकीं लवणाङ्कुशौ ॥५७॥
स्थितौ च पार्श्वयोः पद्मपुत्रप्रीतिप्रवृद्धया[1] । समाश्वास्य समाघ्रातौ मस्तके प्रणताङ्गकौ ॥५८॥
जाम्बूनदमयीयष्टिमिव शुद्धां हुताशने । अत्युत्तमप्रभाचक्रपरिवारितविग्रहाम् ॥५९॥
मैथिलीं राघवो वीक्ष्य कमलालयवासिनीम् । महानुरागरक्तात्मा तदन्तिकमुपागमत् ॥६०॥
जगौ च देवि कल्याणि प्रसीदोत्तमपूजिते । शरत्सम्पूर्णचन्द्रास्ये महाद्भुतविचेष्टिते ॥६१॥
कदाचिदपि नो भूयः करिष्याम्याग[2] ईदृशम् । दुःखं वा ते ततोऽतीतं दोषं मे साध्वि मर्षय ॥६२॥
योषिदष्टसहस्राणामपि त्वं परमेश्वरी । स्थिता मूर्ध्नि ददस्वाज्ञां मय्यपि प्रभुतां कुरु ॥६३॥
अज्ञानप्रवणीभूतचेतसा मयकेदृशम् । किंवदन्तीभयात्सृष्टं कष्टं प्राप्तासि सत्सति ॥६४॥
सकाननवनामेतां सखेचरजनां महीम् । समुद्रान्तां मया साकं यथेष्टं विचर प्रिये ॥६५॥
पूज्यमाना समस्तेन जगता परमादरम् । त्रिविष्टपसमान् भोगान् भावय स्वमहीतले ॥६६॥
उद्यद्भास्करसङ्काशं पुष्पकं कामगत्वरम् । आरूढा मेरुसानूनि पश्य देवि समं मया ॥६७॥
तेषु तेषु प्रदेशेषु भवतीचित्तहारिषु । क्रियतां रमणं कान्ते मया वचनकारिणा ॥६८॥
विद्याधरवरस्त्रीभिः सुरस्त्रीभिरिवावृता । मनस्विनि भजैश्वर्यं सद्यः सिद्धमनीषिता ॥६९॥

रालको व्याप्त कर उठ रही थी कि श्रीमान् राजा जनककी पुत्री और श्रीमान् बलभद्र श्रीरामकी परम अभ्युदयवती पत्नीकी जय हो ॥५५॥ अहो बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है इसका शील अत्यन्त निर्मल है ॥५५-५६॥

तदनन्तर माताके अकृत्रिम स्नेहमें जिनके हृदय डूब रहे थे ऐसे लवण और अंकुश शीघ्रतासे जलको तैर कर सीताके पास पहुँच गये ॥५७॥ पुत्रोंकी प्रीतिसे बढ़ी हुई सीताने आश्वासन देकर जिनके मस्तक पर सूंघा था तथा जिनका शरीर विनयसे नम्रीभूत था ऐसे दोनों पुत्र उसके दोनों ओर खड़े हो गये ॥५८॥ अग्निमें शुद्ध हुई स्वर्णमय यष्टिके समान जिसका शरीर अत्यधिक प्रभाके समूहसे व्याप्त था तथा जो कमल रूपी गृहमें निवास कर रही थी ऐसी सीताको देख बहुत भारी अनुरागसे अनुरक्त चित्त होते हुए राम उसके पास गये ॥५९-६०॥ और बोले कि हे देवि ! प्रसन्न होओ, तुम कल्याणवती हो, उत्तम मनुष्योंके द्वारा पूजित हो, तुम्हारा मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान है, तथा तुम अत्यन्त अद्भुत चेष्टाकी करनेवाली हो ॥६१॥ अब ऐसा अपराध फिर कभी नहीं करूँगा अथवा अब तुम्हारा दुःख बीत चुका है । हे साध्वि ! मेरा दोष क्षमा करो ॥६२॥ तुम आठ हजार स्त्रियोंकी परमेश्वरी हो । उनके मस्तक पर विद्यमान हो, आज्ञा देओ और मेरे ऊपर भी अपनी प्रभुता करो ॥६३॥ हे सति ! जिसका चित्त अज्ञानके आधीन था ऐसे मेरे द्वारा लोकापवादके भयसे दिया दुःख तुमने प्राप्त किया है ॥६४॥ हे प्रिये ! अब बन-अटवी सहित तथा विद्याधरोंसे युक्त इस समुद्रान्त पृथिवीमें मेरे साथ इच्छानुसार विचरण करो ॥६५॥ समस्त जगत्के द्वारा परम आदर पूर्वक पूजी गई तुम, अपने पृथिवी तल पर देवोंके समान भोगोंको भोगो ॥६६॥ हे देवि ! उदित होते हुए सूर्यके समान तथा इच्छानुसार गमन करनेवाले पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो तुम मेरे साथ सुमेरुके शिखरोंको देखो अर्थात् मेरे साथ सर्वत्र भ्रमण करो ॥६७॥ हे कान्ते ! जो जो स्थान तुम्हारे चित्तको हरण करने वाले हैं उन उन स्थानोंमें मुझ आज्ञाकारीके साथ यथेच्छ क्रीड़ा की जाय ॥६८॥ हे मनस्विनि ! देवाङ्गनाओंके समान विद्याधरोंकी उत्कृष्ट स्त्रियोंसे घिरी रह कर तुम शीघ्र ही ऐश्वर्यका उपभोग करो । तुम्हारे

---

१. प्रबुद्धया म० । २. अपराधम् म० ।

दोषाब्धिमग्नकस्यापि विवेकरहितस्य मे । उपसन्नस्य सुश्लाघ्ये प्रसीद क्रोधमुत्सृज ॥७०॥
ततो जगाद वैदेही राजन्नैवास्मि कस्यचित् । कुपिता किं विषादं त्वमीदृशं समुपागतः ॥७१॥
न कश्चिदत्र ते दोषस्तीव्रो जानपदो न च । स्वकर्मणा फलं दत्तमिदं मे परिपाकिना ॥७२॥
बलदेव प्रसादात्ते भोगा भुक्ताः सुरोपमाः । अधुना तदहं कुर्वे जाये स्त्री न यतः पुनः ॥७३॥
एतैर्विनाशिभिः क्षुद्रैरवसन्नैः सुदारुणैः । किं वा प्रयोजनं भोगैर्मूढमानवसेवितैः ॥७४॥
योनिलक्षाध्वसङ्क्रान्त्या खेदं प्राप्ताऽस्म्यनुत्तमम् । साहं दुःखक्षयाकांक्षा दीक्षां जैनेश्वरीं भजे ॥७५॥
इत्युक्त्वाऽभिनवाशोकपल्लवोपमपाणिना । मूर्द्धजान् स्वयमुद्धृत्य पद्मायाऽर्पयदस्पृहा ॥७६॥
इन्द्रनीलद्युतिच्छायान् सुकुमारान् मनोहरान् । केशान्वीक्ष्य ययौ मोहं रामोऽपतच्च भूतले ॥७७॥
यावदाश्वासनं तस्य प्रारब्धं चन्दनादिना । पृथ्वीमत्यार्यया [1]तावद्दीक्षिता जनकात्मजा ॥७८॥
ततो दिव्यानुभावेन सा विघ्नपरिवर्जिता । संवृत्ता श्रमणा साध्वी वस्त्रमात्रपरिग्रहा ॥७९॥
महाव्रतपवित्राङ्गा महासंवेगसङ्गता । देवासुरसमायोगं ययौ चोद्यानमुत्तमम् ॥८०॥
पद्मो मौक्तिकगोशीर्षतालवृन्तानिलादिभिः । सम्प्राप्तस्पष्टचैतन्यस्तद्दिङ्न्यस्तनिरीक्षणः ॥८१॥
अदृष्ट्वा राघवः सीतां शून्यीभूतद[2]शाशकः । शोककोपकषायात्मा समारुह्य महागजम् ॥८२॥
समुच्छ्रितसितच्छत्रश्चामरोत्करवीजितः । नरेन्द्रैरिन्द्रवद्देवैर्वृतो हस्तितलाकुल[3]ः ॥८३॥
प्रौढकोकनदच्छायः क्षणसंवृतलोचनः । उदात्तनिनदोऽत्रोचद्वचोऽपि निजर्भातिदम् ॥८४॥

सब मनोरथ सिद्ध हुए हैं ॥६९॥ हे प्रशंसनीये ! मैं दोष रूपी सागरमें निमग्न हूँ तथा विवेकसे रहित हूँ । अब तुम्हारे समीप आया हूँ सो प्रसन्न होओ और क्रोधका परित्याग करो ॥७०॥

तदनन्तर सीताने कहा कि हे राजन् ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ, तुम इस तरह विषाद को क्यों प्राप्त हो रहे हो ? ॥७१॥ इसमें न तुम्हारा दोष है न देशके अन्य लोगोंका । यह तो परिपाकमें आनेवाले अपने कर्मके द्वारा दिया हुआ फल है ॥७२॥ हे बलदेव ! मैंने तुम्हारे प्रसादसे देवोंके समान भोग भोगे हैं इसलिए उनकी इच्छा नहीं । अब तो वह काम करूँगी जिससे फिर स्त्री न होना पड़े ॥७३॥ इन विनाशी, क्षुद्र प्राप्त हुए आकुलतामय अत्यन्त कठोर एवं मूर्ख मनुष्यों के द्वारा सेवित इन भोगोंसे मुझे क्या प्रयोजन है ? ॥७४॥ लाखों योनियोंके मार्गमें भ्रमण करती करती इस भारी दुःखको प्राप्त हुई हूँ । अब मैं दुःखोंका क्षय करनेकी इच्छासे जैनेश्वरी दीक्षा धारण करती हूँ ॥७५॥ यह कह उसने निःस्पृह हो अशोकके नवीन पल्लव तुल्य हाथसे स्वयं केश उखाड़ कर रामके लिए दे दिये ॥७६॥ इन्द्रनील मणिके समान कान्ति वाले अत्यन्त कोमल मनोहर केशोंको देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो पृथिवी पर गिर पड़े ॥७७॥ इधर जब तक चन्दन आदिके द्वारा रामको सचेत किया जाता है तब तक सीता पृथ्वीमति आर्यिकासे दीक्षित हो गई ॥७८॥

तदनन्तर देवकृत प्रभावसे जिसके सब विघ्न दूर हो गये थे ऐसी पतिव्रता सीता वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करने वाली आर्यिका हो गई ॥७९॥ महाव्रतोंके द्वारा जिसका शरीर पवित्र हो चुका था तथा जो महासंवेगको प्राप्त थी ऐसी सीता देव और असुरोंके समागमसे सहित उत्तम उद्यानमें चली गई ॥८०॥ इधर मोतियोंकी माला, गोशीर्षचन्दन तथा व्यजन आदिकी वायुसे जब रामकी मूर्च्छा दूर हुई तब वे उसी दिशाकी ओर देखने लगे परन्तु वहाँ सीताको न देख उन्हें दशों दिशाएँ शून्य दिखने लगीं । अन्तमें शोक और क्रोधके कारण कलुषित चित्त होते हुए महागज पर सवार हो चले ॥८१-८२॥ उस समय उनके शिर पर सफ़ेद छत्र फहरा रहा था, चमरोंके समूह ढोरे जा रहे थे, तथा वे स्वयं अनेक राजाओंसे घिरे हुए थे । इसलिए देवोंसे

---

१. तावदीक्षिता म० । २. दशांशकः म० । ३. हस्तितलायतः म० ।

प्रियस्य प्राणिनो मृत्युर्वरिष्ठो विरहस्तु न । इति पूर्वं प्रतिज्ञातं मया निश्चितचेतसा ॥८५॥
यदि तत् किं वृथा देवैः प्रातिहार्यमिदं शठैः । वैदेह्या विहितं येन ययेदं समनुष्ठितम् ॥८६॥
लुप्तकेशीमपीमां मे यदि नार्पयत द्रुतम् । अद्य देवानदेवान्वः करोमि च जगद्वियत् ॥८७॥
कथं मे ह्रियते पत्नी सुरैर्न्यायव्यवस्थितैः । पुरस्तिष्ठन्तु मे शस्त्रं गृह्णन्तु क्व नु ते गताः ॥८८॥
एवमादिकृताचेष्टो लक्ष्मणेन विनीतिना । सान्त्व्यमानो बहूपायं प्राप्तः सुरसमागमम् ॥८९॥
[1]सर्वभूषणमैक्षिष्ट ततः श्रवणपुङ्गवम् । गाम्भीर्यधैर्यसम्पन्नं वरासनकृतस्थितिम् ॥९०॥
ज्वलज्ज्वलनतो दीप्तिं बिभ्राणं परमर्द्धिकम् । वहन्तं दहनं देहं कलुषस्योपसेदुषाम्[2] ॥९१॥
[3]विबुधेष्वपि राजन्तं केवलज्ञानतेजसा । वीतजीमूतसङ्घातं भानुबिम्बमिवोदितम् ॥९२॥
चक्षुःकुमुद्वतीकान्तं चन्द्रं वा वीतलाञ्छनम् । परेण परिवेषेण [4]प्रवृत्तं देहतेजसा ॥९३॥
तमालोक्य मुनिश्रेष्ठं सद्योगाद् भ्रष्टमानतम् । अवतीर्य च नागेन्द्रादजगामास्य समीपताम् ॥९४॥
विधाय चाञ्जलिं भक्त्या कृत्वा शान्तः प्रदक्षिणाम् । त्रिविधं गृहिणां नाथोऽनंसीन्नाथं[5]मवेश्मनाम् ॥९५॥
मुनीन्द्रदेहजच्छायास्तमितांशुकिरीटकाः । वैलक्ष्यादिव चञ्चद्भिः कुण्डलैः श्लिष्टगण्डकाः ॥९६॥

आवृत इन्द्रके समान जान पड़ते थे, उन्होंने लाङ्गल नामक शस्त्र हाथमें ले रक्खा था, तरुण कोकनद—रक्त कमलके समान उनकी कान्ति थी और वे क्षण-क्षणमें लोचन बन्द कर लेते थे तदनन्तर उच्चस्वरके धारक रामने ऐसे वचन कहे जो आत्मीयजनोंको भी भय देने वाले थे ॥८३-८४॥ उन्होंने कहा कि प्रिय प्राणीकी मृत्यु हो जाना श्रेष्ठ है परन्तु विरह नहीं; इसी लिए मैंने पहले दृढ़चित्त हो कर अग्नि-प्रवेशकी अनुमति दी थी ॥८५॥ जब यह बात थी तब फिर क्यों अविवेकी देवोंने सीताका यह अतिशय किया जिससे कि उसने यह दीक्षाका उपक्रम किया ॥८६॥ हे देवो ! यद्यपि उसने केश उखाड़ लिये हैं तथापि तुम लोग यदि उस दशामें भी उसे मेरे लिए शीघ्र नहीं सौंप देते हो तो मैं आजसे तुम्हें अदेव कर दूँगा—देव नहीं रहने दूँगा और जगत्को आकाश बना दूँगा ॥८७॥ न्यायकी व्यवस्था करनेवाले देवों द्वारा मेरी पत्नी कैसे हरी जा सकती है ? वे मेरे सामने खड़े हों तथा शस्त्र ग्रहण करें, कहाँ गये वे सब ? ॥८८॥ इस प्रकार जो अनेक चेष्टाएँ कर रहे थे तथा विविध नीतिको जाननेवाले लक्ष्मण जिन्हें अनेक उपायोंसे सान्त्वना दे रहे थे ऐसे राम, जहाँ देवोंका समागम था ऐसे उद्यानमें पहुँचे ॥८९॥

तदनन्तर उन्होंने मुनियोंमें श्रेष्ठ उन सर्वभूषण केवलीको देखा कि जो गाम्भीर्य और धैर्यसे सम्पन्न थे, उत्तम सिंहासन पर विराजमान थे ॥९०॥ जलती हुई अग्निसे कहीं अधिक कान्तिको धारण कर रहे थे, परम ऋद्धियोंसे युक्त थे, शरणागत मनुष्योंके पापको जलानेवाले शरीरको धारण कर रहे थे ॥९१॥ जो केवलज्ञान रूपी तेजके द्वारा देवोंमें भी सुशोभित हो रहे थे, मेघोंके आवरणसे रहित उदित हुए सूर्य मण्डलके समान जान पड़ते थे, ॥९२॥ जो चक्षुरूपी कुमुदिनियोंके लिए प्रिय थे, अथवा कलङ्क रहित चन्द्रमाके समान थे, और मण्डलाकार परिणत अपने शरीरके उत्तम तेजसे आवृत थे ॥९३॥

तदनन्तर जो अभी-अभी ध्यानसे उन्मुक्त हुए थे तथा सर्व सुरासुर जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे उन मुनिश्रेष्ठको देखकर राम हाथीसे नीचे उतर कर उनके समीप गये ॥९४॥ तत्पश्चात् गृहस्थोंके स्वामी श्रीरामने शान्त हो भक्तिपूर्वक अञ्जलि जोड़ प्रदक्षिणा देकर उन मुनिराजको मन-वचन-कायसे नमस्कार किया ॥९५॥ अथानन्तर उन मुनिराजकी शरीर सम्बन्धी कान्तिके कारण जिनके मुकुट निष्प्रभ हो गये थे तथा लज्जाके कारण ही मानो चमकते हुए कुण्डलों द्वारा

---

१. एष श्लोकः म० पुस्तके नास्त्येव । २. सेदुषम् म० । ३. विबुद्धेष्वपि म० । ४. वृत्तं देहस्य तेजसा म० । ५. मुनीनां नाथम् ।

भावार्पितनमस्काराः करकुड्मलमस्तकाः । मानवेन्द्रैः समं योग्यमुपविष्टाः सुरेश्वराः ॥९७॥
चतुर्भेदजुषो देवा नानालङ्कारधारिणः । अलक्ष्यन्त मुनीन्द्रस्य रवेरिव मरीचयः ॥९८॥
रराज राजराजोऽपि [1]रामो नात्यन्तदूरगः । मुनेः सुमेरुकूटस्य पार्श्वे कल्पतरुर्यथा ॥९९॥
लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽपि मौलिकुण्डलराजितः । विद्युत्वानिव जीमूतः शुशुभेऽन्तिकपर्वतः ॥१००॥
शत्रुघ्नोऽपि महाशत्रुभयदानविचक्षणः । द्वितीय इव भाति स्म कुबेरश्चारुदर्शनः ॥१०१॥
गुणसौभाग्यतूणीरौ वीरौ तौ च सुलक्षणौ । सूर्याचन्द्रमसौ यद्वद्रेजतुर्लवणाङ्कुशौ ॥१०२॥
बाह्यालङ्कारमुक्ताऽपि वस्त्रमात्रपरिग्रहा । आर्या रराज वैदेही रविमूर्त्येव संयता ॥१०३॥
मनुष्यनाकवासेषु धर्मश्रवणकांक्षिषु । धरण्यामुपविष्टेषु ततो विनयशालिषु ॥१०४॥
धीरोऽभयनिनादाख्यो मुनिः शिष्यगणाग्रणीः । सन्देहतापशान्त्यर्थं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥१०५॥
विपुलं निपुणं शुद्धं तत्त्वार्थं मुनिबोधनम् । ततो जगाद योगीशः कर्मक्षयकरं वचः ॥१०६॥
रहस्यं तत्तदा तेन विबुधानां महात्मनाम् । कथितं तत्समुद्रस्य कणमेकं वदाम्यहम् ॥१०७॥
प्रशस्तदर्शनज्ञाननन्दनं भव्यसम्मतम् । वस्तुतत्त्वमिदं तेन प्रोक्तं परमयोगिना ॥१०८॥
अनन्तालोकखान्तस्थो मृदङ्गद्वयसन्निभः । लोको व्यवस्थितोऽधस्तात्तिर्यगूर्ध्वंव्यवस्थितः ॥१०९॥
त्रैविध्येनामुना तस्य ख्याता त्रिभुवनाभिधा । अधस्तान् मन्दरस्याद्रेर्विज्ञेयाः सप्तभूमयः ॥११०॥

जिनके कपोल आलिङ्गित थे, जिन्होंने भाव पूर्वक नमस्कार किया था, और जो हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए थे ऐसे देवेन्द्र वहाँ नरेन्द्रके समान यथायोग्य बैठे थे ॥९६-९७॥ नाना अलंकारोंको धारण करनेवाले चारों प्रकारके देव, मुनिराजके समीप ऐसे दिखाई देते थे मानो सूर्यके समीप उसकी किरणें ही हों ॥९८॥ मुनिराजके निकट स्थित राजाधिराज राम भी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सुमेरुके शिखरके समीप कल्प वृक्ष ही हो ॥९९॥ मुकुट और कुण्डलोंसे सुशोभित लक्ष्मण भी, किसी पर्वतके समीप स्थित बिजलीसे सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१००॥ महाशत्रुओंको भय देनेमें निपुण सुन्दर शत्रुघ्न भी द्वितीय कुबेरके समान सुशोभित हो रहा था ॥१०१॥ गुण और सौभाग्यके तरकस तथा उत्तम लक्षणोंसे युक्त वे दोनों वीर लवण और अंकुश सूर्य और चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१०२॥ वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करनेवाली आर्या सीता यद्यपि बाह्य अलंकारोंसे सहित थी तथापि वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सूर्यकी मूर्तिसे ही सम्बद्ध हो ॥१०३॥

तदनन्तर धर्मश्रवणके इच्छुक तथा विनयसे सुशोभित समस्त मनुष्य और देव जब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये तब शिष्य समूहमें प्रधान, अभयनिनाद नामक, धीर वीर मुनिने सन्देह रूपी संतापको शान्त करनेके लिए सर्वभूषण मुनिराजसे पूछा ॥१०४-१०५॥ तदनन्तर मुनिराजने वह वचन कहे कि जो अत्यन्त विस्तृत थे, चातुर्यपूर्ण थे, शुद्ध थे, तत्त्वार्थके प्रतिपादक थे, मुनियोंके प्रबोधक थे और कर्मोंका क्षय करनेवाले थे ॥१०६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय उन योगिराजने विद्वानों तथा महात्माओंके लिए जो रहस्य कहा था वह समुद्रके समान भारी था। हे श्रेणिक ! मैं तो यहाँ उसका एक कण ही कहता हूँ ॥१०७॥ उन परम योगीने जो वस्तुतत्त्वका निरूपण किया था वह प्रशस्त दर्शन और ज्ञानके धारक पुरुषोंके लिए आनन्द देनेवाला था तथा भव्य जीवोंको इष्ट था ॥१०८॥

उन्होंने कहा कि यह लोक अनन्त अलोकाकाशके मध्यमें स्थित दो मृदङ्गोंके समान है, नीचे, बीचमें तथा ऊपरकी ओर स्थित है ॥१०९॥ इस तरह तीन प्रकारसे स्थित होनेके कारण इस लोकको त्रिलोक अथवा त्रिविध कहते हैं। मेरु पर्वतके नीचे सात भूमियाँ हैं ॥११०॥

१. रामोऽत्यन्तदूरगः।

रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजाः सुराः । षडधस्तास्ततः क्षोण्यो महाभयसमावहाः ॥१११॥
शर्करावालुकापङ्कधूमध्वान्ततमोनिभाः । सुमहादुःखदायिन्यो नित्यान्धध्वान्तसंकुलाः ॥११२॥
तप्तायस्तलदुःस्पर्शमहाविषमदुर्गमाः । शीतोग्रवेदनाः काश्चिद्वसारुधिरकर्दमाः ॥११३॥
श्वसर्पमनुजादीनां कुथितानां कलेवरैः । सम्मिश्रो यो भवेद्गन्धस्तादृशस्तत्र कीर्त्तितः ॥११४॥
नानाप्रकारदुःखौघकारणानि समाहरन् । वाति तत्र महाशब्दः प्रचण्डोद्दण्डमारुतः ॥११५॥
रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत् कर्म कुर्वते । गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥११६॥
हिंसावितथचौर्यान्यस्त्रीसङ्गादनिवर्तनाः । नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरूकृताः ॥११७॥
मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सततं भोगसङ्गताः । जनाः प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥११८॥
विधाय कारयित्वा च पापं समनुमोद्य च । रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकबीजताम् ॥११९॥
वज्रोपमेषु कुड्येषु निःसन्धिकृतपूरणाः[1] । नारकेनाग्निना पापा दह्यन्ते कृतविस्वराः ॥१२०॥
ज्वलद्वह्निचयाद्भीता यान्ति वैतरणीं नदीम् । शीतलाम्बुकृताकांक्षास्तस्यां मुञ्चन्ति देहकम् ॥१२१॥
ततो महोत्कटक्षारदग्धदेहोरुवेदनाः । मृगा इव परित्रस्ता असिपत्रवनं स्थिताः ॥१२२॥
छायाप्रत्याशया यत्र सङ्गता दुष्कृतप्रियाः । प्राप्नुवन्त्यसिनाराचचक्रकुन्तादिदारणम्[2] ॥१२३॥
खरमारुतनिर्धूतै[3]नरकागसमीरितैः । तीक्ष्णैरस्त्रसमूहैस्ते दार्यन्ते शरणोज्झिताः ॥१२४॥

उनमें पहली भूमि रत्नप्रभा है जिसके अब्बहुल भागको छोड़कर ऊपरके दो भागोंमें भवनवासी तथा व्यन्तर देव रहते हैं। उस रत्नप्रभाके नीचे महाभय उत्पन्न करनेवाली शर्करा प्रभा, बालुका-प्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा नामकी छह भूमियाँ और हैं जो अत्यन्त तीव्र दुःखको देनेवाली हैं तथा निरन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त रहती हैं ॥१११-११२॥ उनमेंसे कितनी ही भूमियाँ संतप्त लोहेके तलके समान दुःखदायी गरम स्पर्श होनेके कारण अत्यन्त विषम और दुर्गम हैं तथा कितनी ही शीतकी तीव्र वेदनासे युक्त हैं। उन भूमियोंमें चर्बी और रुधिरकी कीच मची रहती है ॥११३॥ जिनके शरीर सड़ गये हैं ऐसे अनेक कुत्ते, सर्प तथा मनुष्यादिकी जैसी मिश्रित गन्ध होती है वैसी ही उन भूमियोंकी बतलाई गई है ॥११४॥ वहाँ नानाप्रकारके दुःख-समूहके कारणोंको साथमें ले आनेवाली महाशब्द करती हुई प्रचण्ड वायु चलती है ॥११५॥ स्पर्शन तथा रसना इन्द्रियके वशीभूत जीव उस कर्मका सञ्चय करते हैं कि जिससे वे लोहेके पिण्डके समान भारी हो उन नरकोंमें पड़ते हैं ॥११६॥ हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्रीसंग तथा परिग्रहसे निवृत्त नहीं होनेवाले मनुष्य पापके भारसे बोझिल हो नरकोंमें उत्पन्न होते हैं ॥११७॥ जो मनुष्य-जन्म पाकर निरन्तर भोगोंमें आसक्त रहते हैं ऐसे प्रचण्डकर्मा मनुष्य नरकभूमिमें जाते हैं ॥११८॥ जो जीव स्वयं पाप करते हैं, दूसरेसे कराते हैं तथा अनुमोदन करते हैं, वे रौद्र तथा आर्त्तध्यानमें तत्पर रहनेवाले जीव नरकायुको प्राप्त होते हैं ॥११९॥ वज्रोपम दीवालोंमें ठूँस-ठूँस कर भरे हुए पापी जीव नरकोंकी अग्निसे जलाये जाते हैं और तब वे महाभयंकर शब्द करते हैं ॥१२०॥ जलती हुई अग्निके समूहसे भयभीत हो नारकी, शीतल जलकी इच्छा करते हुए वैतरणी नदीकी ओर जाते हैं और उसमें अपने शरीरको छोड़ते हैं अर्थात् गोता लगाते हैं ॥१२१॥ गोता लगाते ही अत्यन्त तीव्र क्षारके कारण उनके जले हुए शरीरमें भारी वेदना होती है। तदनन्तर मृगोंकी तरह भयभीत हो उस असिपत्रवनमें पहुँचते हैं ॥१२२॥ जहाँ कि पापी जीव छायाकी इच्छासे इकट्ठे होते हैं परन्तु छायाके बदले खड्ग, बाण, चक्र तथा भाले आदि शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न दशाको प्राप्त होते हैं ॥१२३॥ तीक्ष्ण वायुसे कम्पित नरकके वृक्षोंसे प्रेरित तीक्ष्ण अस्त्रोंके

---

१. पारणाः म० । २. दारुणं म०, ज० । ३. नारकांग-ज० ।

छिन्नपादभुजस्कन्धकर्णवक्त्राक्षिनासिकाः[1] । भिन्नतालुशिरःकुक्षिहृदया निपतन्ति ते ॥१२५॥
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते केचिदूर्ध्वीकृताङ्घ्रयः । यन्त्रैः केचिन्निपीड्यन्ते बलिभिः परुषस्वनम् ॥१२६॥
अरिभिः परमक्रोधैः केचिन् मुद्गरपीडिताः । कुर्वते लोठनं भूमौ सुमहावेदनाकुलाः ॥१२७॥
महातृष्णार्दिता दीना याचन्ते वारिविह्वलाः । ततः प्रदीयते तेषां त्रपुताम्रादिविद्रुतम् ॥१२८॥
स्फुलिङ्गोद्गमरौद्रं तं तत्रोद्वीक्ष्य विकम्पिताः । परावर्तितचेतस्का बाष्पपूरितकण्ठकाः ॥१२९॥
ब्रुवते नास्ति तृष्णा मे मुञ्च मुञ्च व्रजाम्यहम् । अनिच्छतां ततस्तेषां तद्बलेन प्रदीयते ॥१३०॥
विनिपात्य क्षिताबेषां क्रन्दतां लोहदण्डकैः । विदार्यास्यं विषं रक्तं कलिलं च निधीयते ॥१३१॥
तत्तेषां प्रदहत्कण्ठं हृदयं स्फोटयद् भृशम् । जठरं प्राप्य निर्याति पुरीषराशिना समम् ॥१३२॥
पश्चात्तापहताः पश्चात् पालकैर्नरकावनेः । स्मार्यन्ते दुष्कृतं दीनाः कुशास्त्रपरिभाषितम् ॥१३३॥
गुरुलोकं समुल्लंघ्य तदा वाक्पटुना सता । मांसं निर्दोषमित्युक्तं यत्ते तत् वक्वाधुना गतम् ॥१३४॥
माङ्सेन बहुभेदेन मधुना च पुरा कृतम् । श्राद्धं गुणवदित्युक्तं यत्ते तत् क्वाधुना गतम् ॥१३५॥
इत्युक्त्वा वैक्रियैरन्यैराहत्याहत्य निष्ठुरम् । कुर्वाणाः कृपणं चेष्टाः खाद्यन्ते स्वशरीरकम् ॥१३६॥
स्वप्नदर्शननिःसारां स्मारयित्वा च राजताम् । तज्जातैरेव पीड्यन्ते विरुवन्तो विडम्बनैः ॥१३७॥
एवमादीनि दुःखानि जीवाः पापकृतो नृप । निमेषमप्यविश्रान्ता लभन्ते नारकक्षितौ ॥१३८॥

समूहसे वे शरण रहित नारकी छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥१२४॥ जिनके पैर, भुजा, स्कन्ध, कर्ण, मुख, आँख और नाक आदि अवयव कट गये हैं तथा जिनके तालु, शिर, पेट और हृदय विदीर्ण हो गये हैं ऐसे लोग वहाँ गिरते रहते हैं ॥१२५॥ जिनके पैर ऊपरको उठे हुए हैं ऐसे कितने ही नारकी दूसरे बलवान् नारकियोंके द्वारा कुम्भीपाकमें पकाये जाते हैं और कितने ही कठोर शब्द करते हुए घानियोंमें पेल दिये जाते हैं ॥१२६॥ तीव्र क्रोधसे युक्त शत्रुओंने जिन्हें मुद्गरसे पीड़ित किया है ऐसे कितने ही नारकी अत्यन्त तीव्र वेदनासे व्याकुल हो पृथिवी पर लोट जाते हैं ॥१२७॥ तीव्र प्याससे पीड़ित दीन हीन नारकी विह्वल हो पानी माँगते हैं पर पानीके बदले उन्हें पिघला हुआ राँगा और ताँबा दिया जाता है ॥१२८॥ निकलते हुए तिलगोंसे भयंकर उस राँगा आदिके द्रवको देखकर वे प्यासे नारकी काँप उठते हैं, उनके चित्त फिर जाते हैं तथा कण्ठ आँसुओंसे भर जाते हैं ॥१२९॥ वे कहते हैं कि मुझे प्यास नहीं है, छोड़ो-छोड़ो मैं जाता हूँ पर नहीं चाहने पर भी उन्हें बलात् वह द्रव पिलाया जाता है ॥१३०॥ चिल्लाते हुए उन नारकियोंको पृथिवी पर गिराकर तथा लोहेके डंडेसे उनका मुख फाड़कर उसमें बलात् विष, रक्त तथा ताँबा आदिका द्रव डाला जाता है ॥१३१॥ वह द्रव उनके कण्ठको जलाता और हृदयको फोड़ता हुआ पेटमें पहुँचता है और मलकी राशिके साथ-साथ बाहर निकल जाता है ॥१३२॥ तदनन्तर जब वे पश्चात्तापसे दुःखी होते हैं तब उन दीन हीन नारकियोंको नरक भूमिके रक्षक मिथ्याशास्त्रों द्वारा कथित पापका स्मरण दिलाते है ॥१३३॥ वे कहते हैं कि उस समय तुमने बोलनेमें चतुर होनेके कारण गुरुजनोंका उल्लंघन कर 'मांस निर्दोष है' यह कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३४॥ 'नानाप्रकारके मांस और मदिराके द्वारा किया हुआ श्राद्ध अधिक फलदायी होता है, ऐसा जो तुमने पहले कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३५॥ यह कहकर उन्हें विक्रिया युक्त नारकी बड़ी निर्दयतासे मार-मारकर उन्हींका शरीर खिलाते हैं तथा वे अत्यन्त दीन चेष्टाएँ करते हैं ॥१३६॥ 'राज्य-अवस्था स्वप्न-दर्शनके समान निःसार है' यह स्मरण दिलाकर उन्हींसे उत्पन्न हुए विडम्बनाकारी उन्हें पीड़ित करते हैं और वे करुणक्रन्दन करते हैं ॥१३७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पाप करनेवाले जीव नारकियोंकी भूमिमें

---

१. वर्ण-म० ।

तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदुःसहम् । प्रशान्तहृदयाः सन्तः सेवध्वं जिनशासनम् ॥१३९॥
अनन्तरमधोवासा ज्ञाता भवनवासिनाम् । देवारण्यार्णवद्वीपास्तथा योग्याश्च भूमयः ॥१४०॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च मातरिश्वा वनस्पतिः । शेषास्त्रसाश्च जीवानां निकायाः षट् प्रकीर्त्तिताः ॥१४१॥
धर्माधर्मवियत्कालजीवपुद्गलभेदतः । षोढा द्रव्यं समुद्दिष्टं सरहस्यं जिनेश्वरैः ॥१४२॥
सप्तभङ्गीवचोमार्गः सम्यक्प्रतिपदं मतः । प्रमाणं सकलादेशो नयोऽवयवसाधनम् ॥१४३॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चहृषीकेष्वविरोधतः । सत्त्वं जीवेषु विज्ञेयं प्रतिपक्षसमन्वितम् ॥१४४॥
सूक्ष्मबादरभेदेन ज्ञेयास्ते च शरीरतः । पर्याप्ता इतरे चैव पुनस्ते परिकीर्त्तिताः ॥१४५॥
भव्याभव्यादिभेदं च जीवद्रव्यमुदाहृतम् । संसारे तद्द्वयोन्मुक्ताः सिद्धास्तु परिकीर्त्तिताः ॥१४६॥
ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु परिणामः स्वशक्तितः । उपयोगश्च तद्रूपं ज्ञानदर्शनतो द्विधा ॥१४७॥
ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं चतुर्धा दर्शनं मतम् । संसारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतसः ॥१४८॥
वनस्पतिपृथिव्याद्याः स्थावराः शेषकास्त्रसाः । पञ्चेन्द्रियाः श्रुतिघ्राणचक्षुस्त्वग्रसनान्विताः ॥१४९॥
पोताण्डजजरायूनामुदितो[1] गर्भसम्भवः । देवानामुपपादस्तु नारकाणां च कीर्त्तितः ॥१५०॥
सम्मूर्च्छनं समस्तानां शेषाणां जन्मकारणम् । योन्यस्तु विविधाः प्रोक्ताः महादुःखसमन्विताः ॥१५१॥

क्षणभरके लिए भी विश्राम लिये बिना पूर्वोक्त प्रकारके दुःख पाते रहते हैं ॥१३८॥ इसलिए हे शान्त हृदयके धारक सत्पुरुषो ! 'यह अधर्मका फल अत्यन्त दुःसह है' ऐसा जानकर जिन-शासनकी सेवा करो ॥१३९॥ अनन्तरवर्ती रत्नप्रभाभूमि भवनवासी देवोंकी निवास भूमि है यह पहले ज्ञात कर चुके हैं। इसके सिवाय देवारण्य वन, सागर तथा द्वीप आदि भी उनके निवासके योग्य स्थान हैं ॥१४०॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर और एक त्रस ये जीवोंके छह निकाय कहे गये हैं ॥१४१॥ धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गलके भेदसे द्रव्य छह प्रकारके हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने रहस्य सहित कहा है ॥१४२॥ प्रत्येक पदार्थका सप्तभङ्गी द्वारा निरूपण करनेका जो मार्ग है वह प्रशस्त मार्ग माना गया है। प्रमाण और नयके द्वारा पदार्थोंका कथन होता है। पदार्थके समस्त विरोधी धर्मोंका एक साथ वर्णन करना प्रमाण है और किसी एक धर्मका सिद्ध करना नय है ॥१४३॥ एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय जीवोंमें विना किसी विरोधके सत्त्व–सत्ता-नामका गुण रहता है और यह अपने प्रतिपक्ष-विरोधी तत्त्वसे सहित होता है ॥१४४॥ वे जीव शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म और बादरके भेदसे दो प्रकारके जानना चाहिए। उन्हीं जीवोंके फिर पर्याप्तक और अपर्याप्तककी अपेक्षा दो भेद और भी कहे गये हैं ॥१४५॥ जीवद्रव्यके भव्य अभव्य आदि भेद भी कहे गये हैं परन्तु यह सब भेद संसार अवस्थामें ही होते हैं, सिद्ध जीव इन सब भेदों रहित कहे गये हैं ॥१४६॥ ज्ञेय और दृश्य स्वभावोंमें जीवका जो अपनी शक्तिसे परिणमन होता है वह उपयोग कहलाता है, उपयोग ही जीवका स्वरूप है, यह उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसे दो प्रकारका है ॥१४७॥ ज्ञानोप-योग मतिज्ञानादिके भेदसे आठ प्रकारका है, और दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन आदिके भेदसे चार प्रकारका है। जीवके संसारी और मुक्तकी अपेक्षा दो भेद हैं तथा संसारी जीव संज्ञी और असंज्ञी भेदसे दो प्रकारके हैं ॥१४८॥ वनस्पतिकायिक तथा पृथिवीकायिक आदि स्थावर कहलाते हैं, शेष त्रस कहे जाते हैं। जो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाँचों इन्द्रियोंसे सहित हैं वे पञ्चेन्द्रिय कहलाते हैं ॥१४९॥ पोतज, अण्डज तथा जरायुज जीवोंके गर्भजन्म कहा गया है तथा देवों और नारकियोंके उपपाद जन्म बतलाया गया है ॥१५०॥ शेष जीवोंकी उत्पत्तिका कारण सम्मूर्च्छन जन्म है। इस तरह गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छनकी अपेक्षा जन्मके

---

१. -मादितो म०।

औदारिकं शरीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा । तैजसं कार्मणं चैव विद्धि सूक्ष्मं परं परम् ॥१५२॥
असङ्ख्येयं प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे । [1]आदिसम्बन्धमुक्ते च चतुर्णामेककालता ॥१५३॥
जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागराः । प्रकीर्तिताः शुभा नाम संख्यानपरिवर्जिताः ॥१५४॥
पूर्वाद् द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविक्षेपवर्तिनः । वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीपः प्रकीर्तितः ॥१५५॥
मेरुनाभिरसौ वृत्तो लक्षयोजनमानभृत् । त्रिगुणं तत्परिक्षेपाद्धिकं परिकीर्तितम् ॥१५६॥
पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः । हिमवांश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ॥१५७॥
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसङ्गताः । वास्यान्यैर्भिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ॥१५८॥
भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः । विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च ॥१५९॥
ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः । प्रोक्तं द्विर्धातकीखण्डे पुष्करार्द्धे च पूर्वकम् ॥१६०॥
आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतोऽपरे । विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च संख्यानपरिवर्जिताः ॥१६१॥
विदेहे कर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा । देवोत्तरकुरुर्भोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमयः ॥१६२॥
त्रिपल्यान्तर्मुहूर्तं तु स्थिती नृणां परावरे । मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥१६३॥
अष्टभेदजुषो देवा व्यन्तराः किन्नरादयः । तेषां क्रीडनकावासा यथायोग्यमुदाहृताः ॥१६४॥

तीन भेद हैं परन्तु तीव्र दुःखोंसे सहित योनियाँ अनेक प्रकारकी कही गई हैं ॥१५१॥ औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं। ये शरीर आगे-आगे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं ऐसा जानना चाहिए ॥१५२॥ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर प्रदेशोंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित हैं तथा तैजस और कार्मण ये दो शरीर उत्तरोत्तर अनन्त गुणित हैं। तैजस और कार्मण ये दो शरीर आदि सम्बन्धसे युक्त हैं अर्थात् जीवके साथ अनादि कालसे लगे हुए हैं और उपर्युक्त पाँच शरीरोंमेंसे एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं ॥१५३॥

मध्यम लोकमें जम्बूद्वीपको आदि लेकर शुभ नामवाले असंख्यात द्वीप और लवण समुद्रको आदि लेकर असंख्यात समुद्र कहे गये हैं ॥१५४॥ ये द्वीप-समुद्र पूर्वके द्वीप-समुद्रसे दूने विस्तार वाले हैं, पूर्व-पूर्वको घेरे हुए हैं तथा वलयके आकार हैं। सबके बीचमें जम्बूद्वीप कहा गया है ॥१५५॥ जम्बूद्वीप मेरु पर्वतरूपी नाभिसे सहित है, गोलाकार है तथा एक लाख योजन विस्तार वाला है, इसकी परिधि तिगुनीसे कुछ अधिक कही गई है ॥१५६॥ उस जम्बूद्वीपमें पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं। ये सभी समुद्रके जलसे मिले हैं तथा इन्हींके द्वारा जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रोंका विभाग हुआ है ॥१५७-१५८॥ यह भरत क्षेत्र है इसके आगे हैमवत, उसके आगे हरि, उसके आगे विदेह, उसके आगे रम्यक, उसके आगे हैरण्यवत और उसके आगे ऐरावत—ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीपमें हैं। इसी जम्बूद्वीपमें गङ्गा, सिन्धु आदि चौदह नदियाँ हैं। धातकीखण्ड तथा पुष्करार्धमें जम्बूद्वीपसे दूनी-दूनी रचना है ॥१५९-१६०॥ मनुष्य, मानुषोत्तर पर्वतके इसी ओर रहते हैं, इनके आर्य और म्लेच्छकी अपेक्षा मूलमें दो भेद हैं तथा इनके उत्तर भेद असंख्यात हैं ॥१६१॥ देवकुरु, उत्तरकुरु रहित विदेह क्षेत्र, तथा भरत और ऐरावत इन तीन क्षेत्रोंमें कर्मभूमि है और देवकुरु, उत्तर कुरु तथा अन्य क्षेत्र भोगभूमिके क्षेत्र हैं ॥१६२॥ मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है। तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति मनुष्योंके समान तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्तकी है ॥१६३॥

व्यन्तर देवोंके किन्नर आदि आठ भेद जानना चाहिए। इन सबके क्रीड़ाके स्थान यथा-

---

१. आदिसम्बन्धमुक्तश्च म०, ज०।

ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां ज्योतिषां चक्रमुज्ज्वलम् । मेरुप्रदक्षिणं नित्यगतिश्चन्द्रार्कराजकम् ॥१६५॥
संख्येयानि सहस्राणि योजनानां व्यतीत्य च । तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेयः कल्पवासिनाम् ॥१६६॥
सौधर्माख्यस्तथैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्तितः । ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः ॥१६७॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्तितः । कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥१६८॥
शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चानतशब्दितः । प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणच्युतौ ॥१६९॥
नव ग्रैवेयकास्ताभ्यामुपरिष्टात्प्रकीर्तिताः । अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशाः स्थिताः ॥१७०॥
विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः । सर्वार्थसिद्धिनामा च पञ्चैतेऽनुत्तराः स्मृताः ॥१७१॥
अग्रे त्रिभुवनस्यास्य क्षेत्रमुत्तमभासुरम् । कर्मबन्धनमुक्तानां पदं ज्ञेयं महाद्भुतम् ॥१७२॥
ईषत्प्राग्भारसंज्ञासौ पृथिवी शुभदर्शना । उत्तानधवलच्छत्रप्रतिरूपा शुभावहा ॥१७३॥
सिद्धा यत्रावतिष्ठन्ते पुनर्भवविवर्जिताः । महासुखपरिप्राप्ताः स्वात्मशक्तिव्यवस्थिताः ॥१७४॥
रामो जगाद भगवन् तेषां विगतकर्मणाम् । संसारभावनिर्मुक्तं निर्दुःखं कीदृशं सुखम् ॥१७५॥
उवाच केवली लोकत्रितयस्यास्य यत्सुखम् । व्याबाधभङ्गदुःपाकैर्दुःखमेव हि तन्मतम् ॥१७६॥
कर्मणाऽष्टप्रकारेण परतन्त्रस्य सर्वदा । नास्य संसारिजीवस्य सुखं नाम मनागपि ॥१७७॥
यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् । आत्मीया नश्यति छाया तथा जीवस्य कर्मणा ॥१७८॥
मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रैः सततं जनाः । मानसैश्च महादुःखैः पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१७९॥
असिधारामधुस्वादसमं विषयजं सुखम् । दग्धे[1] चन्दनवद्दिव्यं चक्रिणां सविषान्नवत् ॥१८०॥

योग्य कहे गये हैं ॥१६४॥ व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका निवास ऊपर मध्यलोकमें है। इनमें ज्योतिषी देवोंका चक्र देदीप्यमान कान्तिका धारक है, मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता हुआ निरन्तर चलता रहता है तथा सूर्य और चन्द्रमा उसके राजा हैं ॥१६५॥ ज्योतिश्चक्रके ऊपर संख्यात हजार योजन व्यतीत कर कल्पवासी देवोंका महालोक शुरू होता है यही ऊर्ध्वलोक कहलाता है ॥१६६॥ ऊर्ध्वलोकमें सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत और आरण, अच्युत ये आठ युगलोंमें सोलह स्वर्ग हैं ॥१६७–१६९॥ उनके ऊपर ग्रैवेयक कहे गये हैं जिनमें अहमिन्द्र रूपसे उत्कृष्ट देव स्थित हैं। (नव ग्रैवेयकके आगे नव अनुदिश हैं और उनके ऊपर) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान हैं ॥१७०-१७१॥ इस लोकत्रयके ऊपर उत्तम देदीप्यमान तथा महा आश्चर्यसे युक्त सिद्धक्षेत्र है जो कर्म बन्धनसे रहित जीवोंका स्थान जानना चाहिए ॥१७२॥ ऊपर ईषत्प्राग्भार नामकी वह शुभ पृथ्वी है, जो ऊपरकी ओर किये हुए धवलछत्रके आकार है, शुभरूप है, और जिसके ऊपर पुनर्भवसे रहित, महासुख सम्पन्न तथा स्वात्मशक्तिसे युक्त सिद्धपरमेष्ठी विराजमान रहते हैं ॥१७३–१७४॥

तदनन्तर इसी बीचमें रामने कहा कि हे भगवन् ! उन कर्मरहित जीवोंके संसार भावसे रहित तथा दुःखसे दूर कैसा सुख होता है ? ॥१७५॥ इसके उत्तरमें केवली भगवान्‌ने कहा कि इस तीन लोकका जो सुख है वह आकुलतारूप, विनाशात्मक तथा दुरन्त होनेके कारण दुःख-रूप ही माना गया है ॥१७६॥ आठप्रकारके कर्मसे परतन्त्र इस संसारी जीवको कभी रञ्चमात्र भी सुख नहीं होता ॥१७७॥ जिस प्रकार लोहेसे वेष्टित सुवर्णपिण्डकी अपनी निजकी कान्ति नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कर्मसे वेष्टित जीवकी अपनी निजकी कान्ति बिलकुल ही नष्ट हो जाती है ॥१७८॥ इस संसारके प्राणी निरन्तर जन्म-जरामरण तथा बीमारी आदिके हजारों एवं मानसिक महादुखोंसे पीडित रहते हैं अतः यहाँ क्या सुख है ? ॥१७९॥ विषय-जन्यसुख खड्गधारा

---

१. -दग्धचन्दन -म० ।

ध्रुवं परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् । आत्मस्वाभाविकं सौख्यं सिद्धानां परिकीर्त्तितम् ॥१८१॥
सुसथा किं ध्वस्तनिद्राणां नीरोगाणां किमौषधैः । सर्वज्ञानां कृतार्थानां किं दीपतपनादिना ॥१८२॥
आयुधैः किमभीतानां निर्मुक्तानामरातिभिः । पश्यतां विपुलं सर्वं सिद्धार्थानां किमीहया ॥१८३॥
[1]हात्म सुखतृप्तानां किं कृत्यं भोजनादिना । देवेन्द्रा अपि यत्सौख्यं वाञ्छन्ति सततोन्मुखाः ॥१८४॥
नास्ति यद्यपि तत्त्वेन प्रतिमाऽस्य तथाऽपि ते । वदामि प्रतिबोधार्थं सिद्धात्मसुखगोचरे ॥१८५॥
[2]सचक्रवर्त्तिनो मर्त्याः सेन्द्रा यच्च सुराः सुखम् । कालेनान्तविमुक्तेन सेवन्ते भवहेतुजम् ॥१८६॥
अनन्तपूरणस्यापि भागस्य तदकर्मणाम् । सुखस्य तुल्यतां नैति सिद्धानामीदृशं सुखम् ॥१८७॥
जनेभ्यः सुखिनो भूपाः भूपेभ्यश्चक्रवर्त्तिनः । चक्रिभ्यो व्यन्तरास्तेभ्यः सुखिनो ज्योतिषाऽमराः ॥१८८॥
ज्योतिर्भ्यो भवनावासास्तेभ्यः कल्पभुवः क्रमात् । ततो ग्रैवेयकावासास्ततोऽनुत्तरवासिनः ॥१८९॥
अनन्तानन्तगुणतस्तेभ्यः सिद्धिपदस्थिताः । सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः ॥१९०॥
अनन्तं दर्शनं ज्ञानं वीर्यं च सुखमेव च । आत्मनः स्वमिदं रूपं तच्च सिद्धेषु विद्यते ॥१९१॥
संसारिणस्तु तान्येव कर्मोपशमभेदतः । वैचित्र्यवन्ति जायन्ते बाह्यवस्तुनिमित्ततः ॥१९२॥
शब्दादिप्रभवं सौख्यं शल्यितं व्याधिकीलकैः । नवव्रणभवे तत्र सुखाशा मोहहेतुका ॥१९३॥
गत्यागतिविमुक्तानां प्रक्षीणक्लेशसम्पदाम् । लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसमं सुखम् ॥१९४॥

पर लगे हुए मधुके स्वादके समान है, स्वर्गका सुख जले हुए घावपर चन्दनके लेपके समान है और चक्रवर्तीका सुख विषमिश्रित अन्नके समान है ॥१८०॥ किन्तु सिद्ध भगवान्‌का जो सुख है वह नित्य है, उत्कृष्ट है, आबाधासे रहित है, अनुपम है, और आत्मस्वभावसे उत्पन्न है ॥१८१॥ जिनकी निद्रा नष्ट हो चुकी है उन्हें शयनसे क्या ? नीरोग मनुष्योंको औषधिसे क्या ? सर्वज्ञ तथा कृतकृत्य मनुष्योंको दीपक तथा सूर्य आदिसे क्या ? शत्रुओंसे रहित निर्भीक मनुष्योंके लिए आयुधोंसे क्या ? देखते-देखते जिनके पूर्ण रूपमें सब मनोरथ सिद्ध हो गये हैं ऐसे मनुष्योंको चेष्टासे क्या ? और आत्मसम्बन्धी महा सुखसे संतुष्ट मनुष्योंको भोजनादिसे क्या प्रयोजन है ? इन्द्र लोग भी सिद्धोंके जिस सुखकी सदा उन्मुख रहकर इच्छा करते रहते हैं । यद्यपि यथार्थमें उस सुखकी उपमा नहीं है तथापि तुम्हें समझानेके लिए सिद्धोंके उस आत्मसुखके विषयमें कुछ कहता हूँ ॥१८२-१८५॥ चक्रवर्ती सहित समस्त मनुष्य और इन्द्र सहित समस्त देव अनन्त कालमें जिस सांसारिक सुखका उपभोग करते हैं वह कर्म रहित सिद्ध भगवान्‌के अनन्तवें सुखकी भी सदृशताको प्राप्त नहीं होता । ऐसा सिद्धोंका सुख है ॥१८६-१८७॥ साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा राजा सुखी हैं, राजाओंकी अपेक्षा चक्रवर्ती सुखी हैं, चक्रवर्तियोंकी अपेक्षा व्यन्तर देव सुखी हैं, व्यन्तर देवोंकी अपेक्षा ज्यौतिष देव सुखी हैं ॥१८८॥ ज्यौतिष देवोंकी अपेक्षा भवनवासी देव सुखी हैं, भवनवासियोंकी अपेक्षा कल्पवासी देव सुखी हैं, कल्पवासी देवोंकी अपेक्षा ग्रैवेयक वासी सुखी हैं, ग्रैवेयकवासियोंकी अपेक्षा अनुत्तरवासी सुखी हैं ॥१८९॥ और अनुत्तरवासियोंसे अनन्तानन्त गुणित सुखी सिद्ध जीव हैं । सिद्ध जीवोंके सुखसे उत्कृष्ट दूसरा सुख नहीं है ॥१९०॥ अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख यह चतुष्टय आत्माका निज स्वरूप है और वह सिद्धोंमें विद्यमान है ॥१९१॥ परन्तु संसारी जीवोंके वे ही ज्ञान दर्शन आदि कर्मोंके उपशममें भेद होनेसे तथा बाह्य वस्तुओंके निमित्तसे अनेक प्रकारके होते हैं ॥१९२॥ शब्द आदि इन्द्रियोंके विषयोंसे होनेवाला सुख व्याधिरूपी कीलोंके द्वारा शल्य युक्त है इसलिए शरीरसे होनेवाले सुखमें सुखकी आशा करना मोहजनित आशा है ॥१९३॥ जो गमनागमनसे विमुक्त हैं, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके हैं एवं जो लोकके मुकुट स्वरूप हैं अर्थात् लोकाग्रमें विद्यमान

१. माहात्म्य- म० । २. सुचक्र—म०, ज० ।

यदीयं दर्शनं ज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् । क्षुद्रद्रव्यप्रकाशेन नैव ते भानुना समाः ॥१९५॥
करस्थामलकज्ञानसर्वभागेऽप्यपुष्कलम् । छद्मस्थपुरुषोत्पन्नं सिद्धज्ञानस्य नो समम् ॥१९६॥
समं त्रिकालभेदेषु सर्वभावेषु केवली । ज्ञानदर्शनयुक्तात्मा नेतरः सोऽपि सर्वथा ॥१९७॥
ज्ञानदर्शनभेदोऽयं यथा सिद्धेतरात्मनाम् । सुखेऽपि दृश्यतां तद्वत्तथा वीर्येऽपि दृश्यताम् ॥१९८॥
दर्शनज्ञानसौख्यानि सकलत्वेन तत्त्वतः । सिद्धानां केवली वेत्ति शेषेष्वौपमिकं वचः ॥१९९॥
अभव्यात्मभिरप्राप्यमिदं जैनेन्द्रमास्पदम् । अत्यन्तमपि यत्नाढ्यैः[1] कायसंक्लेशकारिभिः ॥२००॥
अनादिकालसम्बद्धां बिरहेण विवर्जिताम् । अविद्यागेहिनीं ते हि शश्वदाश्लिष्य शेरते ॥२०१॥
विमुक्तिवनिताऽऽश्लेषसमुत्कण्ठापरायणाः । भव्यास्तु दिवसान् कृच्छ्रं प्रेरयन्ति तपःस्थिताः ॥२०२॥
सिद्धिशक्तिविनिर्मुक्ता अभव्याः परिकीर्त्तिताः । भविष्यत्सिद्धयो जीवा भव्यशब्दमुपाश्रिताः ॥२०३॥
जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन । न[2] सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणां क्षयः ॥२०४॥
यत्कर्म क्षपयत्यज्ञो भूरिभिर्भवकोटिभिः । ज्ञानी मुहूर्तयोगेन त्रिगुप्तस्तदपोहयेत् ॥२०५॥
प्रतीतो जगतोऽप्येतत्परमात्मा निरञ्जनः । दृश्यते परमार्थेन यथा प्रक्षीणकर्मभिः ॥२०६॥
गृहीतं बहुभिर्विद्धि लोकमार्गमसारकम् । परमार्थपरिप्राप्त्यै गृहाण जिनशासनम् ॥२०७॥
एवं रघूत्तमः श्रुत्वा वचः साकलभूषणम् । प्रणिपत्य जगौ नाथ तारयाऽस्माद्भवादिति ॥२०८॥

हैं उन सिद्धोंका सुख अपनी समानता नहीं रखता ॥१९४॥ जिनका दर्शन और ज्ञान लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला है, वे क्षुद्र द्रव्योंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके समान नहीं कहे जा सकते ॥१९५॥ जो हाथ पर स्थित आँवलेके सर्वभागोंके जाननेमें असमर्थ है ऐसा छद्मस्थ पुरुषोंका ज्ञान सिद्धोंके समान नहीं है ॥१९६॥ त्रिकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थोंके विषयमें एक केवली ही ज्ञान दर्शनसे सम्पन्न होता है, अन्य नहीं ॥१९७॥ सिद्ध और संसारी जीवोंमें जिस प्रकार यह ज्ञान दर्शनका भेद है उसी प्रकार उनके सुख और वीर्यमें भी यह भेद समझना चाहिए ॥१९८॥ यथार्थमें सिद्धोंके दर्शन, ज्ञान और सुखको सम्पूर्ण रूपसे केवली ही जानते हैं अन्य लोगोंके वचन तो उपमा रूप ही होते हैं ॥१९९॥ यह जिनेन्द्र भगवान्का स्थान—सिद्धपद, अभव्य जीवोंको अप्राप्य है, भले हो वे अनेक यत्नोंसे सहित हों तथा अत्यधिक काय-क्लेश करनेवाले हों॥२००॥ इसका कारण भी यह है कि वे अनादि कालसे सम्बद्ध तथा विरहसे रहित अविद्यारूपी गृहिणीका निरन्तर आलिङ्गन कर शयन करते रहते हैं ॥२०१॥ इनके विपरीत मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गन करनेमें जिनकी उत्कण्ठा बढ़ रही है ऐसे भव्य जीव तपश्चरणमें स्थित होकर बड़ी कठिनाईसे दिन व्यतीत करते हैं अर्थात् वे जिस किसी तरह संसारका समय बिताकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं ॥२०२॥ जो मुक्ति प्राप्त करनेकी शक्तिसे रहित हैं वे अभव्य कहलाते हैं और जिन्हें मुक्ति प्राप्त होगी वे भव्य कहे जाते हैं ॥२०३॥ सर्वभूषण केवली कहते हैं कि हे रघुनन्दन ! जिनेन्द्रशासनको छोड़कर अन्यत्र सर्व प्रकारका यत्न होने पर भी कर्मोंका क्षय नहीं होता है ॥२०४॥ अज्ञानी जीव जिस कर्मको अनेक करोड़ों भवोंमें क्षीण कर पाता है उसे तीन गुप्तियोंका धारक ज्ञानी मनुष्य एक मुहूर्तमें ही क्षय कर देता है ॥२०५॥ यह बात संसारमें भी प्रसिद्ध है कि यथार्थमें निरञ्जन—निष्कलङ्क परमात्माका दर्शन वही कर पाते हैं जिनके कि कर्म क्षीण हो गये हैं ॥२०६॥ यह सारहीन संसारका मार्ग तो अनेक लोगोंने पकड़ रक्खा है पर इससे परमार्थकी प्राप्ति नहीं, अतः परमार्थकी प्राप्तिके लिए एक जिनशासनको ही ग्रहण करो ॥२०७॥ इस प्रकार सकलभूषणके वचन सुनकर श्रीरामने प्रणाम कर कहा कि हे नाथ ! इस संसार-सागरसे पार

१. यत्नाद्यैः म० । २. सर्वरत्नम-० ।

भगवन्नधमा मध्या उत्तमाश्चासुधारिणः । भव्याः केन विमुच्यन्ते विधिना भववासतः ॥२०९॥
उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितम् । मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिदं जैनेन्द्रशासने ॥२१०॥
तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते । चेतनाचेतनं तत्त्वमनन्तगुणपर्ययम् ॥२११॥
निसर्गाधिगमद्वाराद्भक्त्या तत्त्वमुपाददत् । सम्यग्दृष्टिरिति प्रोक्तो जीवो जिनमते रतः ॥२१२॥
शङ्का काङ्क्षा [1]विचिकित्सा च परशासनसंस्तवः । प्रत्यक्षोदारदोषाद्या एते सम्यक्त्वदूषणाः ॥२१३॥
स्थैर्यं जिनवरागारे रमणं भावना पराः । शङ्कादिरहितत्वं च सम्यग्दर्शनशोधनम् ॥२१४॥
सर्वज्ञशासनोक्तेन विधिना ज्ञानपूर्वकम् । क्रियते यदसाध्येन सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१५॥
गोपायितहृषीकत्वं वचोमानसयन्त्रणम् । विद्यते यत्र निष्पापं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१६॥
अहिंसा यत्र भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च । क्रियते न्याययोगेषु सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१७॥
मनःश्रोत्रपरिह्लादं स्निग्धं मधुरमर्थवत् । शिवं यत्र वचः सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१८॥
अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा । दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१९॥
सुराणामपि सम्पूज्यं दुर्धरं महतामपि । ब्रह्मचर्यं शुभं यत्र सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२०॥
शिवमार्गमहाविघ्नमूर्च्छात्यजनपूर्वकः । परिग्रहपरित्यागः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२१॥
[2]परपीडाविनिर्मुक्तं दानं श्रद्धादिसङ्गतम् । दीयते यतिवृत्तेभ्यः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२२॥

लगाओ ॥२०८॥ उन्होंने यह भी पूछा कि हे भगवन्! जघन्य मध्यम तथा उत्तमके भेदसे भव्य जीव तीन प्रकारके हैं सो ये संसार-वाससे किसी विधिसे छूटते हैं? ॥२०९॥

तब सर्वभूषण भगवान्ने कहा कि जैनेन्द्र शासन—जैनधर्ममें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनकी एकता ही को मोक्षका मार्ग बताया है ॥२१०॥ इनमेंसे तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। अनन्त गुण और अनन्त पर्यायोंको धारण करनेवाला तत्त्व चेतन, अचेतनके भेदसे दो प्रकारका है ॥२११॥ स्वभाव अथवा परोपदेशके द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्वको ग्रहण करता है वह जिनमतका श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है ॥२१२॥ शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्योंमें दोषादि लगाना—उनकी निन्दा करना ये सम्यग्दर्शनके पाँच अतिचार हैं ॥२१३॥ परिणामोंकी स्थिरता रखना, जिनायतन आदि धर्म क्षेत्रोंमें रमण करना—स्वभावसे उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शङ्कादि दोषोंसे रहित होना ये सब सम्यग्दर्शनको शुद्ध रखनेके उपाय हैं ॥२१४॥ सर्वज्ञके शासनमें कही हुई विधिके अनुसार सम्यग्ज्ञान पूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्यके द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१५॥ जिसमें इन्द्रियोंका वशीकरण और वचन तथा मनका नियन्त्रण होता है वही निष्पाप—निर्दोष सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१६॥ जिसमें न्यायपूर्ण प्रवृत्ति करनेवाले त्रस स्थावर जीवोंपर अहिंसा की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१७॥ जिसमें मन और कानोंको आनन्दित करनेवाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याणकारी वचन कहे जाते हैं उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१८॥ जिसमें अदत्तवस्तुके ग्रहणमें मन, वचन, कायसे निवृत्ति की जाती है तथा न्यायपूर्ण दी हुई वस्तु ग्रहण की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१९॥ जहाँ देवोंके भी पूज्य और महापुरुषोंके भी कठिनतासे धारण करने योग्य शुभ ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२२०॥ जिसमें मोक्षमार्गमें महाविघ्नकारी मूर्च्छाके त्यागपूर्वक परिग्रहका त्याग किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२१॥ जिसमें मुनियोंके लिए परपीडासे रहित तथा श्रद्धा आदि गुणोंसे सहित दान दिया जाता है उसे

---

१. च कुत्सा च म० । २. परिपीडा—म० ।

विनयो नियमः शीलं ज्ञानं दानं दया दमः । ध्यानं च यत्र मोक्षार्थं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२३॥
एतद्गुणसमायुक्तं जिनेन्द्रवचनोदितम् । श्रेयः सम्प्राप्तये सेव्यं चारित्रं परमोदयम् ॥२२४॥
शक्यं करोत्यशक्ये तु श्रद्धावान् स्वस्य निन्दकः । सम्यक्त्वसहितो जन्तुः शक्तश्चारित्रसङ्गतः ॥२२५॥
यत्र त्वेते न विद्यन्ते समीचीना महागुणाः । तत्र नास्ति सुचारित्रं न च संसारनिर्गमः ॥२२६॥
दयादमक्षमा यत्र न विद्यन्ते न संवरः । न ज्ञानं न परित्यागस्तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२७॥
हिंसावितथचौर्यस्त्रीसमारम्भसमाश्रयः । क्रियते यत्र धर्मार्थं तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२८॥
दीक्षामुपेत्य यः पापे मूढचेताः प्रवर्त्तते । [2]आरम्भिणोऽस्य चारित्रं विमुक्तिर्वा न विद्यते ॥२२९॥
षण्णां जीवनिकायानां क्रियते यत्र पीडनम् । धर्मव्याजेन सौख्यार्थं न तेन शिवमाप्यते ॥२३०॥
वधताडनबन्धाङ्कदोहनादिविधायिनः । ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रव्रज्या का हतात्मनः ॥२३१॥
क्रयविक्रयसक्तस्य पक्तियाचनकारिणः । सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीक्षितस्य दुरात्मनः ॥२३२॥
मर्दनस्नानसंस्कारमाल्यधूपानुलेपनम् । सेवन्ते दुर्विदग्धा ये दीक्षितास्ते न मोक्षगाः ॥२३३॥
हिंसां दोषविनिर्मुक्तां वदन्तः स्वमनीषया । शास्त्रं वेषं च वृत्तं च दूषयन्ति समूढकाः ॥२३४॥
एकरात्रं वसन् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् । नित्यमूर्ध्वभुजस्तिष्ठन् मासे मासे च पारयन् ॥२३५॥
मृगैः सममरण्यान्यां शयानो विचरन्नपि । कुर्वन्नपि भृगोः पातं मौनवान्निःपरिग्रहः ॥२३६॥
मिथ्यादर्शनदुष्टात्मा कुलिङ्गो बीजवर्जितः । पद्भ्यामगम्यदेशं [3]वा नैवाप्नोति शिवालयम् ॥२३७॥

सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२२॥ जिसमें विनय, नियम, शील, ज्ञान, दया, दम और मोक्षके लिए ध्यान धारण किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२३॥ इस प्रकार इन गुणोंसे सहित, जिन शासनमें कथित, परम अभ्युदयका कारण जो सम्यक्चारित्र है, कल्याण प्राप्तिके लिए उसका सेवन करना चाहिए ॥२२४॥ सम्यग्दृष्टि जीव शक्य कार्यको करता है और अशक्य कार्यकी श्रद्धा रखता है परन्तु जो शक्त अर्थात् समर्थ होता है वह चारित्र धारण करता है ॥२२५॥ जिसमें पूर्वोक्त समीचीन महागुण नहीं हैं उसमें सम्यक्चारित्र नहीं है, और न उसका संसारसे निकलना होता है ॥२२६॥ जिसमें दया, दम, क्षमा नहीं हैं, संवर नहीं है, ज्ञान नहीं है, और परित्याग नहीं हैं उसमें धर्म नहीं रहता ॥२२७॥ जिसमें धर्मके लिए हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहका आश्रय किया जाता है वहाँ धर्म नहीं है ॥२२८॥ जो मूर्ख हृदय दीक्षा लेकर पापमें प्रवृत्ति करता है उस आरम्भीके न चारित्र है और न उसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥२२९॥ जिसमें धर्मके बहाने सुख प्राप्त करनेके लिए छह कायके जीवोंको पीडा की जाती है उस धर्मसे कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥२३०॥ जो मारना, ताडना, बाँधना, आँकना तथा दोहना आदि कार्य करता है तथा गाँव, खेत आदिमें आसक्त रहता है उस अनात्मज्ञका दीक्षा लेना क्या है ? ॥२३१॥ जो वस्तुओंके खरीदने और बेंचनेमें आसक्त है, स्वयं भोजनादि पकाता है अथवा दूसरेसे याचना करता है, और स्वर्णादि परिग्रह साथ रखता है, ऐसे आत्महीन दीक्षित मनुष्यको क्या मुक्ति प्राप्त होगी ? ॥२३२॥ जो अविवेकी मनुष्य दीक्षित होकर मर्दन, स्नान, संस्कार, माला, धूप तथा विलेपन आदिका सेवन करते हैं वे मोक्षगामी नहीं हैं—उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होता ॥२३३॥ जो अपनी बुद्धिसे हिंसाको निर्दोष कहते हुए शास्त्र वेष तथा चारित्रमें दोष लगाते हैं वे मूढ़तासे सहित हैं—मिथ्यादृष्टि हैं ॥२३४॥ जो गाँवमें एक रात और नगरमें पाँच रात रहता है, निरन्तर ऊपरकी ओर भुजा उठाये रहता है, महीने-महीनेमें एक बार भोजन करता है, मृगोंके साथ अटवीमें शयन करता है, उन्हींके साथ विचरण करता है, भृगुपात भी करता है, मौनसे रहता है, और परिग्रहका त्याग करता है, वह मिथ्या दर्शनसे दूषित होनेके कारण कुलिङ्गी है तथा मोक्षके कारण जो सम्यग्दर्शनादि उनसे रहित है। ऐसा जीव पैरोंसे चलकर किसी अगम्य-

१. भुंक्त—म० । २. आरम्भितोऽ -म० । ३. च म० ।

अग्निवारिप्रवेशादिपापं धर्मधिया श्रयन् । प्रयाति दुर्गतिं जीवो मूढः स्वहितवर्त्मनि ॥२३८॥
रौद्रार्तध्यानसक्तस्य सकामस्य कुकर्मणः । उपायविपरीतस्य जायते निन्दिता गतिः ॥२३९॥
मिथ्यादर्शनयुक्तोऽपि यो दद्यात्साध्वसाधुषु । धर्मबुद्धिरसौ पुण्यं बध्नाति विपुलोदयम् ॥२४०॥
भुञ्जानोऽपि फलं तस्य धर्मस्यासौ त्रिविष्टपे । लक्षभागदलेनाऽपि सम्यग्दृष्टेर्न सम्मितः ॥२४१॥
सम्यग्दर्शनमुत्कृष्टं सुश्लाघ्याः संवहन्ति ये । देवलोकप्रधानास्ते भवन्ति नियमप्रियाः ॥२४२॥
क्लेशित्वाऽपि महायत्नं मिथ्यादृष्टिः कुलिङ्गकः । देवकिङ्करभावेन फलं हीनमवाश्नुते ॥२४३॥
सप्ताष्टसु नृदेवत्वभवसङ्क्रान्तिसौख्यभाक् । श्रमणत्वं समाश्रित्य सम्यग्दृष्टिर्विमुच्यते ॥२४४॥
वीतरागैः समस्तज्ञैरिमं मार्गं प्रदर्शितम् । जन्तुर्विषयमूढात्मा प्रतिपत्तुं न वाञ्छति ॥२४५॥
आशापाशैर्दृढं बद्धा मोहेनाधिष्ठिता भृशम् । तृष्णागारं समानीताः [१]पापहिञ्जीरवाहिनः ॥२४६॥
रसनं स्पर्शनं प्राप्य दुःखसौख्याभिमानिनः । वराका विविधा जीवाः क्लिश्यन्ते शरणोज्झिताः ॥२४७॥
[२]बिभेति मृत्युतो नास्य ततो मोक्षः प्रजायते । काङ्क्षत्यनारतं सौख्यं न च लाभोऽस्य सिद्ध्यति ॥२४८॥
इत्ययं भीतिकामाभ्यां विफलाभ्यां वशीकृतः । केवलं तापमायाति चेतनो निरुपायकः ॥२४९॥
आशया नित्यमाविष्टो भोगान् भोक्तुं समीहते । न करोति धृतिं घर्मं काञ्चने मशको यथा ॥२५०॥

स्थान अथवा मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकता ॥२३५-२३७॥ जो धर्म बुद्धिसे अग्निप्रवेश तथा जलप्रवेश आदि पाप करता है वह आत्महितके मार्गमें मूढ है और दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥२३८॥ जो रौद्र और आर्तध्यानमें आसक्त है, कामपर जिसने विजय प्राप्त नहीं की है, जो खोटे काम करता है तथा उपायसे विपरीत प्रवृत्ति करता है उसकी निन्दित गति—कुगति होती है ॥२३९॥ जो मनुष्य मिथ्यादर्शनसे युक्त होकर भी धर्म बुद्धिसे साधु और असाधुके लिए दान देता है वह विपुल अभ्युदयको देनेवाले पुण्य कर्मका बन्ध करता है ॥२४०॥ यद्यपि ऐसा जीव स्वर्गमें उस धर्मका फल भोगता है तथापि वह सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होनेवाले फलके लाखमेंसे एक भागके भी बराबर नहीं है ॥२४१॥ जो मनुष्य उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन धारण करते हैं तथा चारित्रसे प्रेम रखते हैं वे इस लोकमें भी प्रशंसनीय होते हैं और मरनेके बाद देवलोकमें प्रधान होते हैं ॥२४२॥ मिथ्यादृष्टि कुलिङ्गी मनुष्य, बड़े प्रयत्नसे क्लेश उठाकर भी देवोंका किङ्कर बन तुच्छ फलको प्राप्त होता है। भावार्थ—मिथ्यादृष्टि कुलिङ्गी मनुष्य यद्यपि तपश्चरणके अनेक क्लेश उठाता है तथापि वह उसके फलस्वरूप स्वर्गमें उत्तम पद प्राप्त नहीं कर पाता किन्तु देवोंका किङ्कर होकर हीन फल प्राप्त कर पाता है ।।२४३॥ सम्यग्दृष्टि मनुष्य, सात आठ भवोंमें मनुष्य और देव पर्यायमें परिभ्रमणसे उत्पन्न हुए सुखको भोगता हुआ अन्तमें मुनिदीक्षा धारणकर मुक्त हो जाता है ॥२४४॥ वीतराग सर्वज्ञ देवके द्वारा दिखाये हुए इस मार्गको, विषयी मनुष्य प्राप्त नहीं करना चाहता ॥२४५॥ जो आशारूपी पाशसे मजबूत बँधे हैं, मोहसे अत्यधिक आक्रान्त हैं, तृष्णारूपी घरमें लाकर डाले गये हैं, पापरूपी जञ्जीरको धारण कर रहे हैं तथा स्पर्श और रसको पाकर जो दुःखको ही सुख मान बैठे हैं इस तरह नाना प्रकारके शरण रहित बेचारे दीन प्राणी निरन्तर क्लेश उठाते रहते हैं ॥२४६-२४७॥ यह प्राणी मृत्युसे डरता है पर उससे छुटकारा नहीं हो पाता। इसी प्रकार निरन्तर सुख चाहता है पर उसकी प्राप्ति नहीं हो पाती ॥२४८॥ इस प्रकार निष्फल भय और कामसे वश हुआ यह प्राणी निरुपाय हो मात्र संतापको प्राप्त होता रहता है ॥२४९॥ निरन्तर आशासे घिरा हुआ यह प्राणी भोग भोगनेकी चेष्टा करता है परन्तु जिस प्रकार मच्छर स्वर्णमें संतोष नहीं करता उसी

१. पापशृङ्खलावाहिनः । २. बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः । तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः । बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रे ।

संक्लेशवह्नितप्तो बह्वारम्भक्रियोद्यतः । न कश्चिदर्थमाप्नोति ह्रियते वास्य सङ्गतम् ॥२५१॥
असौ पुराकृतात्पापादप्राप्यार्थं मनोगतम् । प्रत्युताऽनर्थमाप्नोति महान्तमतिदुर्जरम् ॥२५२॥
इदं कृतमिदं कुर्वे करिष्येऽहंसुनिश्चितम् । मर्ताहे वस्त्वदः पापान्मृत्युं यान्तीति चिन्तकाः ॥२५३॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युरसुभाजां कृताकृतम् । समाक्रामत्यकाण्डेऽसौ मृगकं केसरी यथा ॥२५४॥
अहिते हितमित्याशा सुदुःखे सुखसम्मतिः । अनित्ये शाश्वताकूतं शरणाशा भयावहे ॥२५५॥
हिते सुखे परित्राणे ध्रुवे च विपरीतधीः । अहो कुदृष्टिसक्तानामन्यथैव व्यवस्थितिः ॥२५६॥
भार्यावारीप्रविष्टः सन् मनुष्यो वनवारणः । विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्धं समश्नुते ॥२५७॥
कुटुम्बसुमहापङ्के विस्तरे मोहसागरे । मग्नोऽवसीदति स्फूर्जन्दुर्बलो गवली यथा ॥२५८॥
मोक्षो निगडबद्धस्य भवेदन्धाच्च कूपतः । निबद्धः स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते ॥२५९॥
बोधिं मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्रीं सुष्ठु दुर्लभाम् । प्राप्तुमर्हत्यभव्यस्तु[1] नैव मार्गं जिनोदितम् ॥२६०॥
घनकर्मकलङ्काक्ता अभव्या नित्यमेव हि । संसारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिताः ॥२६१॥
ततः कृत्वाञ्जलिं मूर्ध्नि जगाद रघुनन्दनः । किमस्मि भगवन् भव्यो मुच्ये कस्मादुपायतः ॥२६२॥
शक्नोमि पृथिवीमेतां त्यक्तुं सान्तःपुरामहम् । लक्ष्मीधरस्य सुकृतं न शक्नोम्येकमुज्झितुम् ॥२६३॥
स्नेहोर्मिषु चन्द्रखण्डेषु तरन्तं लप्रतोज्झितम् । अवलम्बनदानेन मां त्रायस्व मुनीश्वर ॥२६४॥

प्रकार यह प्राणी धर्ममें धैर्य धारण नहीं करता ॥२५०॥ संक्लेशरूपी अग्निसे संतप्त हुआ यह प्राणी बहुत प्रकारके आरम्भ करनेमें तत्पर रहता है परन्तु किसी भी प्रयोजनको प्राप्त नहीं अपितु इसके पासका जो सुख है वह भी चला जाता है ॥२५१॥ यह जीव पूर्वकृत पापके कारण मनोभिलषित पदार्थको प्राप्त नहीं होता किन्तु अत्यन्त दुर्जर बहुत भारी अनर्थको प्राप्त होता है ॥२५२॥ 'मैं यह कर चुका, यह करता हूँ और यह आगे करूँगा।' इस प्रकार मनुष्य निश्चय कर लेता है पर कभी मरूँगा भी इस बातका कोई विचार नहीं करते ॥२५३॥ मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि प्राणी, कौन काम कर चुके और कौन काम नहीं कर पाये। वह तो जिस प्रकार सिंह मृग पर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमयमें भी आक्रमण कर बैठती है ॥२५४॥ अहो! मिथ्या दृष्टि मनुष्य, अहितको हित, दुःखको सुख, अनित्यको नित्य, भयदायकको शरणदायक, हितको अहित, सुखको दुःख, रक्षकको अरक्षक और ध्रुवको अध्रुव समझते हैं। इस प्रकार कहना पड़ता है कि मिथ्यादृष्टि मनुष्योंकी व्यवस्था अन्य प्रकार ही है ॥२५५-२५६॥ यह मनुष्य रूपी जङ्गली हाथी, भार्या रूपी बन्धनमें पड़कर बन्धको प्राप्त होता है अथवा यह मनुष्य रूपी मत्स्य विषय रूपी मांसमें आसक्त हो बन्धका अनुभव करता है ॥२५७॥ कुटुम्बरूपी बहुत कीचड़से युक्त एवं लम्बे-चौड़े मोहरूपी महासागरमें फँसा हुआ यह प्राणी दुबले-पतले भैंसेके समान छटपटाता हुआ दुःखी हो रहा है ॥२५८॥ बेड़ियोंसे बँधे हुए मनुष्यका अन्धे कुँएसे छुटकारा हो सकता है परन्तु स्नेह रूपी पाशसे बँधा प्राणी उससे बड़ी कठिनाईसे छूट पाता है ॥२५९॥ जिसका पाना मनुष्यलोकमें भी अत्यन्त दुर्लभ है ऐसी जिनेन्द्र प्रतिपादित बोधिको प्राप्त करनेके लिए अभव्य प्राणी योग्य नहीं है। इसी प्रकार जिनेन्द्र कथित रत्नत्रय मार्गको भी प्राप्त करनेके लिए अभव्य समर्थ नहीं हैं ॥२६०॥ तीव्र कर्म मल कलंकसे युक्त रहनेवाले अभव्य जीव, निरन्तर संसाररूपी चक्रपर आरूढ हो क्लेश उठाते हुए घूमते रहते हैं ॥२६१॥

तदनन्तर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर रामने कहा कि हे भगवन्! क्या मैं भव्य हूँ? और किस उपायसे मुक्त होऊँगा? ॥२६२॥ मैं अन्तःपुरसे सहित इस पृथिवीको छोड़नेके लिए समर्थ हूँ, परन्तु एक लक्ष्मणका उपकार छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥२६३॥ मैं विना किसी

---

१. -त्यभव्यास्तु म० ।

उवाच भगवान् राम न शोकं कर्तुमर्हसि । ऐश्वर्यं बलदेवस्य भोक्तव्यं भवता ध्रुवम् ॥२६५॥
राज्यलक्ष्मीं परिप्राप्य दिवीव त्रिदशाधिपः । जैनेश्वरं व्रतं प्राप्य कैवल्यमयमेष्यसि ॥२६६॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा केवलिभाषितमुत्तमहर्षप्रजातपुलको रामः ।
विकसितनयनः श्रीमान् प्रसन्नवदनो बभूव धृत्या युक्तः ॥२६७॥
विज्ञाय चरमदेहं दाशरथिं विस्मिताः सुरासुरमनुजाः ।
केवलिरविणोद्योतितमत्यन्तप्रीतिमानसाः समशंसन् ॥२६८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामधर्मश्रवणाभिधानं नाम पञ्चोत्तरशतं पर्व ॥१०५॥

आधारके स्नेहरूपी सागरकी तरङ्गोंमें तैर रहा हूँ, सो हे मुनीन्द्र ! अवलम्बन देकर मेरी रक्षा करो ॥२६४॥ तदनन्तर भगवान् सर्वभूषण केवलीने कहा कि हे राम ! तुम शोक करनेके योग्य नहीं हो । आपको बलदेवका वैभव अवश्य भोगना चाहिए । जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गकी राज्यलक्ष्मीको प्राप्त होता है उसी प्रकार यहाँकी राज्यलक्ष्मीको पाकर तुम अन्तमें जिनेश्वर दीक्षाको धारण करोगे तथा केवलज्ञानमय मोक्षधामको प्राप्त होओगे ॥२६५-२६६॥ इस प्रकार केवली भगवान्का उपदेश सुनकर जिन्हें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये थे, जिनके नेत्र विकसित थे, जो श्रीमान् थे एवं प्रसन्नमुख थे ऐसे श्रीराम धैर्य—सुख संतोषसे युक्त हुए ॥२६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वहाँ जो भी सुर-असुर और मनुष्य थे वे रामको चरम शरीरी जानकर आश्चर्यसे चकित हो गये तथा अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो केवलीरूपी सूर्यके द्वारा प्रकाशित वस्तुतत्त्वकी प्रशंसा करने लगे ॥२६८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रामके धर्म-श्रवणका वर्णन करनेवाला एकसौ पाँचवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०५॥

षडुत्तरशतं पर्व

वृषभः खेचराणां तद्भक्तिभूषो विभीषणः । निर्भीषणमहा[1]भूषं वृषभं व्योमवाससाम् ॥१॥
पाणियुग्ममहाम्भोजभूषितोत्तमदेहभृत् । स नमस्कृत्य पप्रच्छ धीमान् सकलभूषणम् ॥२॥
भगवन् पद्मनाभेन किमनेन भवान्तरे । सुकृतं येन माहात्म्यं प्रतिपन्नोऽयमीदृशम् ॥३॥
अस्य पत्नी सती सीता दण्डकारण्यवर्तिनः । केनानुबन्धदोषेण रावणेन तदा हृता ॥४॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु शास्त्राणि सकलं विदन् । कृत्याकृत्यविवेकज्ञो धर्माधर्मविचक्षणः ॥५॥
प्रधानगुणसम्पन्नो भूत्वा मोहवशं गतः । पतङ्गत्वमितः कस्मात्परस्त्रीलोभपावके ॥६॥
भ्रातृपक्षातिसक्तेन भूत्वा वनविचारिणा । लक्ष्मीधरेण संग्रामे स कथं भुवि मूर्च्छितः ॥७॥
स तादृग्बलवानासीद्विद्याधरमहेश्वरः । कृतानेका[2]द्भुतः प्राप्तः कथं मरणमीदृशम् ॥८॥
अथ केवलिनो वाणी जगाद बहुजन्मगाम् । [3]संसारे परमं वैरमेतेनाऽऽसीत्सहानयोः ॥९॥
इह जम्बूमतिद्वीपे भरते क्षेत्रनामनि । नगरे नयदत्ताख्यो वाणिजोऽभूत्समस्वकः ॥१०॥
सुनन्दा गेहिनी तस्य धनदत्तः शरीरजः । द्वितीयो वसुदत्तस्तत्सुहृद्यज्ञबलिद्विजः ॥११॥
वणिक्सागरदत्ताख्यस्तत्रैव नगरेऽपरः । पत्नी रत्नप्रभा तस्य गुणवत्युदितात्मजा ॥१२॥
रूपयौवनलावण्यकान्तिसद्विभ्रमात्मिका । अनुजो गुणवान्नामा तस्या आसीत्सुचेतसः ॥१३॥

अथानन्तर जो विद्याधरोंमें प्रधान था, रामकी भक्ति ही जिसका आभूषण थी, और जो हस्तयुगलरूपी महाकमलोंसे सुशोभित मस्तकको धारण कर रहा था ऐसे बुद्धिमान् विभीषणने निर्भय तेजरूपी आभूषणसे सहित एवं निर्ग्रन्थ मुनियोंमें प्रधान उन सकलभूषण केवलीको नमस्कार कर पूछा कि ॥१-२॥ हे भगवन् ! इन रामने भवान्तरमें ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जिसके फलस्वरूप ये इस प्रकारके माहात्म्यको प्राप्त हुए हैं ॥३॥ जब ये दण्डकवनमें रह गये थे तब इनकी पतिव्रता पत्नी सीताको किस संस्कार दोषसे रावणने हरा था ॥४॥ रावण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षविषयक समस्त शास्त्रोंका अच्छा जानकार था, कृत्य-अकृत्यके विवेकको जानता था और धर्म-अधर्मके विषयमें पण्डित था। इस प्रकार यद्यपि वह प्रधान गुणोंसे सम्पन्न था तथापि मोहके वशीभूत हो वह किस कारण परस्त्रीके लोभरूपी अग्निमें पतङ्गपनेको प्राप्त हुआ था ? ॥५-६॥ भाईके पक्षमें अत्यन्त आसक्त लक्ष्मणने वनचारी होकर संग्राममें उसे कैसे मार दिया ॥७॥ रावण वैसा बलवान्, विद्याधरोंका राजा और अनेक अद्भुत कार्योंका कर्ता होकर भी इस प्रकारके मरणको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥८॥

तदनन्तर केवली भगवान्‌की वाणीने कहा कि इस संसारमें राम-लक्ष्मणका रावणके साथ अनेक जन्मसे उत्कट वैर चला आता था ॥९॥ जो इस प्रकार है—इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एकक्षेत्र नामका नगर था उसमें नयदत्त नामका एक वणिक् रहता था जो कि साधारण धनका स्वामी था। उसकी सुनन्दा नामकी स्त्रीसे एक धनदत्त नामका पुत्र था जो कि रामका जीव था, दूसरा वसुदत्तनामका पुत्र था जो कि लक्ष्मणका जीव था। एक यज्ञबलिनामका ब्राह्मण वसुदेवका मित्र था सो तुम—विभीषणका जीव था ॥१०-११॥ उसी नगरमें एक सागरदत्त नामक दूसरा वणिक् रहता था, उसकी स्त्रीका नाम रत्नप्रभा था और दोनोंके एक गुणवती नामकी पुत्री थी जो कि सीताकी जीव थी ॥१२॥ वह गुणवती, रूप, यौवन, लावण्य, कान्ति और उत्तम विभ्रमसे युक्त थी। सुन्दर चित्तको धारण करनेवाली उस गुणवतीका एक गुणवान् नामका छोटा भाई था

---

१. महाभूषं म० । २. कृतानेकाद्भुतं म० । ३. ससारो ख० ।

पित्राकूतं परिज्ञाय प्रीतेन कुलकांक्षिणा । दत्ता प्रौढकुमारी सा धनदत्ताय सूरिणा ॥१४॥
श्रीकान्त इति विख्यातो वणिक्पुत्रोऽपरो धनी । स तां सन्ततमाकांक्षद्रूपस्तनितमानसः ॥१५॥
वित्तस्याल्पतयावज्ञां धनदत्ते विधाय च । श्रीकान्तायोद्यता[1] दातुं माता तां क्षुद्रमानसा ॥१६॥
विचेष्टितमिदं ज्ञात्वा वसुदत्तः प्रियाग्रजः । यज्ञवल्क्युपदेशेन श्रीकान्तं हन्तुमुद्यतः ॥१७॥
मण्डलाग्रं समुद्यम्य रात्रौ तमसि गह्वरे । निःशब्दपदविन्यासो नीलवस्त्रावगुण्ठितः ॥१८॥
श्रीकान्तं भवनोद्याने प्रमादिनमवस्थितम् । गत्वा प्राहरदेषोऽपि श्रीकान्तेनासिना हतः ॥१९॥
एवमन्योन्यघातेन मृत्युं तौ समुपागतौ । विन्ध्यपादमहारण्ये समुद्भूतौ कुरङ्गकौ ॥२०॥
दुर्जनैर्धनदत्ताय कुमारी वारिता ततः । क्रुध्यन्ति ते हि निर्व्याजादुपदेशे तु किं पुनः ॥२१॥
तेन दुर्मृत्युना भ्रातुः कुमार्यपगमेन च । धनदत्तो गृहाद्दुःखी देशानभ्रमदाकुलः ॥२२॥
धनदत्तापरिप्राप्तया साऽपि बाला सुदुःखिता । अनिष्टान्यवरा गेहे नियुक्तान्नप्रदाविधौ[2] ॥२३॥
मिथ्यादृष्टिस्वभावेन द्वेष्टि दृष्ट्वा निरम्बरम् । साऽसूयते समाक्रोशत्यपि निर्भर्त्संयत्यपि ॥२४॥
जिनशासनमेकान्तान्न श्रद्धत्तेऽतिदुर्जना । मिथ्यादर्शनसक्तात्मा कर्मबन्धानुरूपतः ॥२५॥
ततः कालावसानेन सार्तध्यानपरायणा । जाता तत्र मृगी यत्र वसतस्तौ कुरङ्गकौ ॥२६॥
पूर्वानुबन्धदोषेण तस्या एव कृते पुनः । मृगावन्योन्यमुद्वृत्तौ हत्वा शूकरतां गतौ ॥२७॥

जो कि भामण्डलका जीव था ॥१३॥ जब गुणवती युवावस्थाको प्राप्त हुई तब पिताका अभिप्राय जानकर कुलकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् गुणवान्ने प्रसन्न होकर उसे नयदत्तके पुत्र धनदत्तके लिए देना निश्चित कर दिया ॥१४॥ उसी नगरीमें एक श्रीकान्त नामका दूसरा वणिक् पुत्र था जो अत्यन्त धनाढ्य था तथा गुणवतीके रूपसे अपहृतचित्त होनेके कारण निरन्तर उसकी इच्छा करता था। यह श्रीकान्त रावणका जीव था ॥१५॥ गुणवतीकी माता क्षुद्र हृदयवाली थी, इसलिए वह धनकी अल्पताके कारण धनदत्तके ऊपर अवज्ञाका भाव रख श्रीकान्तको गुणवती देनेके लिए उद्यत हो गई। तदनन्तर धनदत्तका छोटा भाई वसुदत्त यह चेष्टा जान यज्ञवलिके उपदेशसे श्रीकान्तको मारनेके लिए उद्यत हुआ ॥१६-१७॥ एक दिन वह रात्रिके सघन अन्धकारमें तलवार उठा चुपके-चुपके पद रखता हुआ नीलवस्त्रसे अवगुण्ठित हो श्रीकान्तके घर गया सो वह घरके उद्यानमें प्रमादसहित बैठा था जिससे वसुदत्तने जाकर उसपर प्रहार किया। बदलेमें श्रीकान्तने भी उसपर तलवारसे प्रहार किया ॥१८-१९॥ इस तरह परस्परके घातसे दोनों मरे और मरकर विन्ध्याचलकी महाअटवीमें मृग हुए ॥२०॥ दुर्जन मनुष्योंने धनदत्तके लिए कुमारीका लेना मना कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि दुर्जन किसी कारणके बिना ही क्रोध करते हैं फिर उपदेश मिलनेपर तो कहना ही क्या है ? ॥२१॥ भाईके कुमरण और कुमारीके नहीं मिलनेसे धनदत्त बहुत दुःखी हुआ जिससे वह घरसे निकलकर आकुल होता हुआ अनेक देशोंमें भ्रमण करता रहा ॥२२॥ इधर जिसे दूसरा वर इष्ट नहीं था ऐसी गुणवती धनदत्तकी प्राप्ति नहीं होनेसे बहुत दुःखी हुई। वह अपने घरमें अन्न देनेके कार्यमें नियुक्त की गई अर्थात् घरमें सबके लिए भोजन परोसनेका काम उसे सौंपा गया ॥२३॥ वह अपने मिथ्यादृष्टि स्वभावके कारण निर्ग्रन्थ मुनिको देखकर उनसे सदा द्वेष करती थी, उनके प्रति ईर्ष्या रखती थी, उन्हें गाली देती थी तथा उनका तिरस्कार भी करती थी ॥२४॥ कर्मबन्धके अनुरूप जिसकी आत्मा सदा मिथ्यादर्शनमें आसक्त रहती थी ऐसी वह अतिदुष्टा जिनशासनका बिलकुल ही श्रद्धान नहीं करती थी ॥२५॥

तदनन्तर आयु समाप्त होने पर आर्त्तध्यानसे मर कर वह उसी अटवीमें मृगी हुई जिसमें कि वे श्रीकान्त और वसुदत्तके जीव मृग हुए थे ॥२६॥ पूर्व संस्कारके दोषसे उसी मृगीके लिए

---

१. श्रीकान्तायोद्यतो दान्तुं भ्रान्तां तां क्षुद्रमानसः म० । २. नियुक्तान्तप्रदा-म० ।

द्विरदौ महिषौ गावौ प्लवगौ द्वीपिनौ वृकौ। रुरू च तौ समुत्पन्नावन्योन्यं च हतस्तथा ॥२८॥
जले स्थले च भूयोऽपि वैरानुसरणोद्यतौ। म्रियतः पापकर्माणौ म्रियमाणौ तथाविधम् ॥२९॥
परमं दुःखितः सोऽपि धनदत्तोऽध्वखेदितः। अन्यदाऽस्तङ्गते भानौ श्रमणाश्रममागमत् ॥३०॥
तत्र साधूनभाषिष्ट तृषितोऽस्म्युदकं मम। प्रयच्छत सुखिन्नस्य यूयं हि सुकृतप्रियाः ॥३१॥
तत्रैकश्रमणोऽवोचन् मधुरं परिसान्त्वयन्। रात्रावप्यमृतं युक्तं न पातुं किं पुनर्जलम् ॥३२॥
चक्षुर्व्यापारनिर्मुक्ते काले पापैकदारुणे। अदृष्टसूक्ष्मजन्त्वाढ्ये माशीर्वत्स [1]विभास्करे ॥३३॥
आतुरेणाऽपि भोक्तव्यं विकाले भद्र न त्वया। मापप्तो व्यसनोदारसलिले भवसागरे ॥३४॥
उपशान्तस्ततः पुण्यकथाभिः सोऽल्पशक्तिकः। अणुव्रतधरो जातो दयालिङ्गितमानसः ॥३५॥
कालधर्मं च सम्प्राप्य सौधर्मे सत्सुरोऽभवत्। मौलिकुण्डलकेयूरहारमुद्रा[2]ङ्गदोज्ज्वलः ॥३६॥
पूर्वपुण्योदयात्तत्र सुरस्त्रीसुखलालितः। महाप्सरःपरिवारो मोदते वज्रपाणिवत् ॥३७॥
ततश्च्युतः समुत्पन्नः पुरश्रेष्ठमहापुरे। धारिण्यां श्रेष्ठिनो मेरोर्जैनात् पद्मरुचिः सुतः ॥३८॥
तत्रैव च पुरे नाम्ना छत्रच्छायो नरेश्वरः। महिषीगुणमञ्जूषा श्रीदत्ता तस्य भामिनी ॥३९॥
आगच्छन्नन्यदा गोष्ठं गत्वा तुरगपृष्ठतः। अपश्यद् भुवि पर्यस्तं मैरवो[3] जीर्णकं वृषम् ॥४०॥

दोनों फिर लड़े और परस्पर एक दूसरेको मार कर शूकर अवस्थाको प्राप्त हुए ॥२७॥ तदनन्तर वे दोनों हाथी, भैंसा, बैल, वानर, चीता, भेड़िया और कृष्ण मृग हुए तथा सभी पर्यायोंमें एक दूसरेको मार कर मरे ॥२८॥ पाप कार्यमें तत्पर रहने वाले वे दोनों जलमें, स्थलमें जहाँ भी उत्पन्न होते थे वहीं बैरका अनुसरण करनेमें तत्पर रहते थे और उसी प्रकार परस्पर एक दूसरे को मार कर मरते थे ॥२९॥

अथानन्तर मार्गके खेदसे थका अत्यन्त दुःखी धनदत्त, एक दिन सूर्यास्त होजाने पर मुनियों के आश्रममें पहुँचा ॥३०॥ वह प्यासा था इसलिए उसने मुनियोंसे कहा कि मैं बहुत दुःखी होरहा हूँ अतः मुझे पानी दीजिए आप लोग पुण्य करना अच्छा समझते हैं ॥३१॥ उनमेंसे एक मुनिने सान्त्वना देते हुए मधुर शब्द कहे कि रात्रिमें अमृत पीना भी उचित नहीं है फिर पानीकी तो बात ही क्या है ? ॥३२॥ हे वत्स ! जब नेत्र अपना व्यापार छोड़ देते हैं, जो पापकी प्रवृत्ति होने से अत्यन्त दारुण है, जो नहीं दिखनेवाले सूक्ष्म जन्तुओंसे सहित है, तथा जब सूर्यका अभाव हो जाता है ऐसे समय भोजन मत कर ॥३३॥ हे भद्र ! तुझे दुःखी होने पर भी असमयमें नहीं खाना चाहिए। तू दुःखरूपी गम्भीर पानीसे भरे हुए संसार-सागरमें मत पड़ ॥३४॥ तदनन्तर मुनिराजकी पुण्य कथासे वह शान्त हो गया, उसका चित्त दयासे आलिङ्गित हो उठा और इनके फलस्वरूप वह अणुव्रतका धारी हो गया। यतश्च वह अल्पशक्तिका धारक था इसलिए महाव्रती नहीं बन सका ॥३५॥ तदनन्तर आयुका अन्त आनेपर मरणको प्राप्त हो वह सौधर्म स्वर्गमें मुकुट, कुंडल, बाजूबन्द, हार, मुद्रा और अनन्तसे सुशोभित उत्तम देव हुआ ॥३६॥ वहाँ वह पूर्व-पुण्योदयके कारण देवाङ्गनाओंके सुखसे लालित था, अप्सराओंके बड़े भारी परिवारसे सहित था तथा इन्द्रके समान आनन्दसे समय व्यतीत करता था ॥३७॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर महापुर नामक श्रेष्ठ नगरमें जैनधर्मके श्रद्धालु मेरु नामक सेठकी धारिणी नामक स्त्रीसे पद्मरुचि नामक पुत्र हुआ ॥३८॥ उसी नगरमें एक छत्रच्छाय नामका राजा रहता था। उसकी श्रीदत्ता नामकी स्त्री थी जो कि रानीके गुणोंकी मानो पिटारी ही थी ॥३९॥ किसी एक दिन पद्मरुचि घोड़े पर चढ़ा अपने गोकुलकी ओर आ रहा था, सो मार्गमें

---

१. विभावरे म० । २. तुद्यङ्गदो-ख०, ज०, क० । ३. मेरुपुत्रः=पद्मरुचिः ।

सुगन्धिवस्त्रमाल्योऽसाववतीर्य तुरङ्गतः । आदरेण तमुक्षाणं दयावानातुरं गतः ॥४१॥
दीयमाने जपे तेन कर्णे पञ्चनमस्कृतेः । शृण्वन्नुक्षशरीरो स शरीरान्निरितस्ततः[1] ॥४२॥
श्रीदत्तायां च सञ्जज्ञे तनुदुःकर्मजालकः । छत्रच्छायोऽभवत्तोषी दुर्लभे पुत्रजन्मनि ॥४३॥
उदारा नगरे शोभा जनिता द्रव्यसम्पदा । समुत्सवो महान् जातो वादित्रबधिरीकृतः ॥४४॥
ततः कर्मानुभावेन पूर्वजन्मसमस्मरन् । गोदुःखं दारुणं तच्च वाहशीतातपादिजम् ॥४५॥
श्रुतिं पाञ्चनमस्कारीं चेतसा च सदा वहन् । बाललीलाप्रसक्तोऽपि महासुभगविभ्रमः ॥४६॥
कदाचिद् विहरन् प्राप्तः स तां वृषमृतक्षितिम् । पर्यंशासीत् प्रदेशांश्च पूर्वमाचरितान् स्वयम् ॥४७॥
वृषभध्वजनामासौ कुमारो वृषभूमिकाम् । अवतीर्य गजात् स्वैरमपश्यद् दुःखिताशयः ॥४८॥
बुधं समाधिरत्नस्य दातारं श्लाघ्यचेष्टितम् । अपश्यन् दर्शने तस्य दध्यौ चौपयिकं ततः ॥४९॥
अथ कैलासश्रृङ्गाभं कारयित्वा जिनालयम् । चरितानि पुराणानि पट्टकादिष्वलेखयत् ॥५०॥
द्वारदेशे च तस्यैव पटं स्वभवचित्रितम् । पुरुषैः पालने न्यस्तैरधिष्ठितमतिष्ठिपत् ॥५१॥
वन्दारुश्चैत्यभवनं तत् पद्मरुचिरागमत् । अपश्यच्च प्रहृष्टात्मा तच्चित्रं विस्मितस्ततः ॥५२॥

उसने पृथिवी पर पड़ा एक बूढ़ा बैल देखा ॥४०॥ सुगन्धित वस्त्र तथा माला आदिको धारण करनेवाला पद्मरुचि घोड़ेसे उतर कर दयालु होता हुआ आदरपूर्वक उस बैलके पास गया ॥४१॥ पद्मरुचिने उसके कानमें पञ्चनमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया। सो जब पद्मरुचि उसके कानमें पञ्च-नमस्कार मन्त्रका जप दे रहा था तभी उस मन्त्रको सुनती हुई बैलकी आत्मा उस शरीरसे बाहर निकल गई अर्थात् नमस्कार मन्त्र सुनते-सुनते उसके प्राण निकल गये ॥४२॥ मन्त्रके प्रभावसे जिसके कर्मोंका जाल कुछ कम हो गया था ऐसा वह पद्मरुचि, उसी नगरके राजा छत्रच्छायकी श्रीदत्ता नामकी रानीके पुत्र हुआ। यतश्च छत्रच्छायके पुत्र नहीं था इसलिए वह उसके उत्पन्न होनेपर बहुत संतुष्ट हुआ ॥४३॥ नगरमें बहुत भारी संपदा खर्च कर अत्यधिक शोभा की गई तथा बाजोंसे जो बहरा हो रहा था ऐसा महान् उत्सव किया गया ॥४४॥

तदनन्तर कर्मोंके संस्कारसे उसे अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो गया। बैलपर्यायमें बोझा ढोना, शीत तथा आतप आदिसे उत्पन्न दारुण दुःख उसने भोगे थे तथा जो उसे पञ्चनमस्कार मन्त्र श्रवण करनेका अवसर मिला था वह सब उसकी स्मृतिपटलमें झूलने लगा। महासुन्दर चेष्टाओंको धारण करता हुआ वह, जब बालकालीन क्रीड़ाओंमें आसक्त रहता था तब भी मनमें पञ्चनमस्कार मन्त्रके श्रवणका सदा ध्यान रखता था ॥४५-४६॥ किसी एक दिन वह विहार करता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उस बैलका मरण हुआ था। उसने एक-एक कर अपने घूमनेंके सब स्थानोंको पहिचान लिया ॥४७॥

तदनन्तर वृषभध्वज नामको धारण करनेवाला वह राजकुमार हाथीसे उतर कर दुःखित चित्त होता हुआ इच्छानुसार बहुत देर तक बैलके मरनेकी उस भूमिको देखता रहा ॥४८॥ समाधि मरण रूपी रत्नके दाता तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित उस बुद्धिमान पद्मरुचिको जब वह नहीं देख सका तब उसने उसके देखनेके लिए योग्य उपायका विचार किया ॥४९॥ अथानन्तर उसने उसी स्थान पर कैलासके शिखरके समान एक जिनमन्दिर बनवाया, उसमें चित्रपट आदि पर महापुरुषोंके चरित तथा पुराण लिखवाये ॥५०॥ उसी मन्दिरके द्वारपर उसने अपने पूर्वभवके चित्रसे चित्रित एक चित्रपट लगवा दिया तथा उसकी परीक्षा करनेके लिए चतुर मनुष्य उसके समीप खड़े कर दिये ॥५१॥

तदनन्तर वन्दनाकी इच्छा करता हुआ पद्मरुचि एक दिन उस मन्दिरमें आया और

---

१. निर्गतः।

तच्चित्रद्रेषणो यावदसौ तच्चित्रमीक्षते । वृषध्वजस्य पुरुषैस्तावत् संवादितं श्रुतम् ॥५३॥
ततो महर्द्धिसम्पन्नः समारुह्य द्विपोत्तमम् । इष्टसङ्गमनाकाङ्क्षी राजपुत्रः समागमत् ॥५४॥
अवतीर्य च नागेन्द्रादविशज्जिनमन्दिरम् । पश्यन्तं च तदासक्तं धारणेयं निरैक्षत ॥५५॥
नेत्राऽऽस्यहस्तसञ्चारसूचितोत्तुङ्गविस्मयम् । अनंसीत् पादयोरेनं परिज्ञाय वृषध्वजः ॥५६॥
गोदुःखमरणं तस्मै धारिणीसूनुरब्रवीत् । राजपुत्रोऽगदीत् सोऽहमिति विस्तारिलोचनः ॥५७॥
सम्भ्रमेण च सम्पूज्य गुरुं शिष्यवरो यथा । तुष्टः [1]पद्मरुचिं राजतनयः समुदाहरन् ॥५८॥
मृत्युव्यसनसम्बद्धे काले तस्मिन् भवान् मम । प्रियबन्धुरिव प्राप्तः समाधेः प्रापकोऽभवत् ॥५९॥
समाध्यमृतपाथेयं त्वया दत्तं दयालुना । स पश्य तृप्तिसम्पन्नः सम्प्राप्तोऽहमिमं भवम् ॥६०॥
नैव तत् कुरुते माता न पिता न सहोदरः । न बान्धवा न गीर्वाणाः प्रियं यन्मे त्वया कृतम् ॥६१॥
नेक्षे पञ्चनमस्कारश्रुतिदानविनिष्क्रयम् । तथापि मे परा भक्तिः त्वयि कारयतीरितम् ॥६२॥
आज्ञां प्रयच्छ मे नाथ ब्रूहि किं करवाणि ते । आज्ञादानेन मां भक्तं भजस्व पुरुषोत्तम ॥६३॥
गृहाण सकलं राज्यमहं ते दासरूपकः । नियुज्यतामयं देहः कर्मण्यभिसमीहिते ॥६४॥
एवमादिसुसम्भाषं तयोः प्रेमाभवत् परम् । सम्यक्त्वं चैव राज्यं च सम्प्रयोगश्च सन्ततः ॥६५॥
[2]अस्थिमज्जानुरक्तौ तौ [3]सागारव्रतसङ्गतौ । जिनबिम्बानि चैत्यानि भुव्यतिष्ठिपतां स्थिरौ ॥६६॥

हर्षित चित्त होता हुआ उस चित्रको देखने लगा। तदनन्तर आश्चर्यचकित हो उसी चित्रपर नेत्र गड़ा कर ज्यों ही वह उसे देखता है कि वृषभध्वज राजकुमारके सेवकोंने उसे उसका समाचार सुना दिया ॥५२-५३॥ तदनन्तर विशाल सम्पदासे सहित राजपुत्र, इष्टके समागमकी इच्छा करता हुआ उत्तम हाथी पर सवार हो वहाँ आया ॥५४॥ हाथीसे उतर कर उसने जिन-मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ बड़ी तल्लीनताके साथ उस चित्रपटको देखते हुए धारिणीसुत—पद्मरुचिको देखा ॥५५॥ जिसके नेत्र, मुख तथा हाथोंके सञ्चारसे अत्यधिक आश्चर्य सूचित हो रहा था ऐसे उस पद्मरुचिको पहिचान कर वृषभध्वजने उसके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५६॥ पद्मरुचिने उसके लिए बैलके दुःखपूर्ण मरणका समाचार कहा जिसे सुन कर उत्फुल्ल लोचनोंको धारण करनेवाला राजपुत्र बोला कि वह बैल मैं ही हूँ ॥५७॥ जिस प्रकार उत्तम शिष्य गुरुकी पूजा कर सन्तुष्ट होता है उसी प्रकार वृषभध्वज राजकुमार भी शीघ्रतासे पद्मरुचिकी पूजा कर सन्तुष्ट हुआ। पूजाके बाद राजपुत्रने पद्मरुचिसे कहा कि मृत्युके संकटसे परिपूर्ण उस कालमें आप मेरे प्रियबन्धुके समान समाधि प्राप्त करानेके लिए आये थे ॥५८-५९॥ उस समय तुमने दयालु होकर जो समाधिरूपी अमृतका सम्बल मेरे लिए दिया था देखो, उसीसे तृप्त होकर मैं इस भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥६०॥ तुमने जो मेरा भला किया है वह न माता करती है, न पिता करता है, न सगा भाई करता है, न परिवारके अन्य लोग करते हैं और न देव ही करते हैं ॥६१॥ तुमने जो मुझे पञ्चनमस्कार मन्त्र श्रवणका दान दिया था उसका मूल्य यद्यपि मैं नहीं देखता तथापि आपमें जो मेरी परम भक्ति है वही यह चेष्टा करा रही है ॥६२॥ हे नाथ! मुझे आज्ञा दो मैं आपका क्या करूँ? हे पुरुषोत्तम! आज्ञा देकर मुझ भक्तको अनुगृहीत करो ॥६३॥ तुम यह समस्त राज्य ले लो, मैं तुम्हारा दास रहूँगा। अभिलषित कार्यमें इस शरीरको नियुक्त कीजिए ॥६४॥ इत्यादि उत्तम शब्दोंके साथ-साथ उन दोनोंमें परम प्रेम होगया, दोनोंको ही सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई, वह राज्य दोनोंका सम्मिलित राज्य हुआ और दोनोंका संयोग चिर संयोग होगया ॥६५॥ जिनका अनुराग ऊपर ही ऊपर न रहकर हड्डी तथा मज्जा तक पहुँच गया था ऐसे वे दोनों श्रावकके व्रतसे सहित हुए। स्थिर चित्तके धारण करनेवाले उन दोनोंने पृथिवी

१. धारिण्याः पुत्रं पद्मरुचिम् । २. अस्थिमज्जनुरक्तौ म० । ३. सागरव्रत म० ।

स्तूपैश्च धवलाम्भोजमुकुलप्रतिमामितैः । समपादयतां क्षोणीं शतशः कृतभूषणाम् ॥६७॥
ततः समाधिमाराध्य मरणे वृषभध्वजः । त्रिदशोऽभवदीशाने पुण्यकर्मफलाशुभूः ॥६८॥
सुरस्त्रीनयनाम्भोजविकासिनयनद्युतिः । तथाऽक्रीडत् परिध्यातसम्पन्नसकलेप्सितः ॥६९॥
काले पद्मरुचिः प्राप्य समाधिमरणं तथा । ईशान एव गीर्वाणः कान्तो वैमानिकोऽभवत् ॥७०॥
च्युत्वापरविदेहे तु विजयाचलमस्तके । नन्द्यावर्तपुरेशस्य राज्ञो नन्दीश्वरश्रुतेः ॥७१॥
उत्पन्नः कनकाभायां नयनानन्दसंज्ञकः । खेचरेन्द्रश्रियं तत्र बुभुजे परमायताम् ॥७२॥
ततः श्रामण्यमास्थाय कृत्वा सुविकटं तपः । कालधर्मं समासाद्य माहेन्द्रं कल्पमाश्रयत् ॥७३॥
मनोज्ञपञ्चविषयद्वारं परमसुन्दरम् । परिप्राप सुखं तत्र पुण्यवल्लीमहाफलम् ॥७४॥
च्युतस्ततो गिरेर्मेरोर्भागे पूर्वदिशि स्थिते । क्षेमायां पुरि सञ्जातः श्रीचन्द्र इति विश्रुतः ॥७५॥
माता पद्मावती तस्य पिता विपुलवाहनः । तत्र स्वर्गोपभुक्तस्य निष्यन्दं कर्मणोऽभजत् ॥७६॥
तस्य पुण्यानुभावेन कोशो विषयसाधनम् । दिने दिने[1] परां वृद्धिमसेवत समन्ततः ॥७७॥
ग्रामस्थानीयसम्पन्नां पृथिवीं विविधाकराम् । प्रियामिव महाप्रीत्या श्रीचन्द्रः समपालयत् ॥७८॥
हावभावमनोज्ञाभिर्नारीभिस्तत्र लालितः । पर्यरंसीत् सुरस्त्रीभिः सुरेन्द्र इव सङ्गतः ॥७९॥
संवत्सरसहस्राणि सुभूरीणि क्षणोपमम् । तस्य दोदुन्दुकस्येव महैश्वर्ययुजोऽगमन् ॥८०॥
गुप्तिव्रतसमित्युच्चः सङ्घेन महतावृतः । समाधिगुप्तयोगीन्द्रः पुरं तदन्यदागमत् ॥८१॥

पर अनेक जिनमन्दिर और जिनबिम्ब बनवाये ॥६६॥ सफेद कमलकी बोंड़ियोंके समान स्तूपोंसे सैकड़ों बार पृथिवीको अलंकृत किया ॥६७॥

तदनन्तर मरणके समय समाधिकी आराधना कर वृषभध्वज ईशान स्वर्गमें पुण्य कर्मका फल भोगनेवाला देव हुआ ॥६८॥ उस देवके नयनोंकी कान्ति देवाङ्गनाओंके नयनकमलोंको विकसित करनेवाली थी, तथा क्रीड़ा करते समय ध्यान करते ही उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते थे ॥६९॥ इधर पद्मरुचि भी आयुके अन्तमें समधिमरण प्राप्तकर ईशान स्वर्गमें ही सुन्दर वैमानिक देव हुआ ॥७०॥ तदनन्तर पद्मरुचिका जीव वहाँसे चय कर पश्चिम विदेह क्षेत्रके विजयार्ध पर्वत पर नन्द्यावर्त नगरके राजा नन्दीश्वरकी कनकाभा रानीसे नयनानन्द नामका पुत्र हुआ। वहाँ उसने चिरकाल तक विद्याधर राजाकी विशाल लक्ष्मीका उपभोग किया ॥७१-७२॥ तदनन्तर मुनि-दीक्षा ले अत्यन्त विकट तप किया और अन्तमें समाधिमरण प्राप्त कर माहेन्द्र स्वर्ग प्राप्त किया ॥७३॥ वहाँ उसने पुण्यरूपी लताके महाफलके समान पञ्चेन्द्रियोंके विषय द्वारसे अत्यन्त सुन्दर मनोहर सुख प्राप्त किया ॥७४॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर मेरु पर्वतके पश्चिम दिग्भागमें स्थित क्षेमपुरी नगरीमें श्रीचन्द्र नामका प्रसिद्ध राजपुत्र हुआ ॥७५॥ वहाँ उसकी माताका नाम पद्मावती और पिताका नाम विपुलवाहन था। वह वहाँ स्वर्गमें भोगे हुए कर्मका जो निःस्यन्द शेष रहा था उसीका मानो उपभोग करता था ॥७६॥ उसके पुण्य प्रभावसे उसका खजाना, देश तथा सैन्य बल सब ओरसे प्रतिदिन परम वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥७७॥ वह श्रीचन्द्र, एक ग्रामके स्थानापन्न, नानाखानोंसे सहित विशाल पृथिवीका प्रियाके समान महाप्रीतिसे पालन करता था ॥७८॥ वहाँ वह हाव-भावसे मनोज्ञ स्त्रियोंके द्वारा लालित होता हुआ देवाङ्गनाओंसे सहित देवेन्द्रके समान क्रीड़ा करता था ॥७९॥ दोदुंदुक देवके समान महान् ऐश्वयको प्राप्त हुए उस श्रीचन्द्रके कई हजार वर्ष एक क्षणके समान व्यतीत हो गये ॥८०॥

अथानन्तर किसी समय व्रत समिति और गुप्तिसे श्रेष्ठ एवं बहुत भारी संघसे आवृत

---

1. दिनं म० ।

उद्यानेऽवस्थितस्यास्य तत्र ज्ञात्वा जनोऽखिलः । वन्दनामगमत् कर्तुं सम्मदालापतत्परः[1] ॥८२॥
स्तुवतोऽस्य परं भक्त्या नादं घनकुलोपमम् । कर्णमादाय संश्रुत्य श्रीचन्द्रोऽपृच्छदन्तिकान् ॥८३॥
कस्यैष श्रूयते नादो महासागरसम्मितः । अजानद्भिः समादिष्टैस्तैरमात्यः कृतोऽन्तिकः ॥८४॥
ज्ञायतां कस्य नादोऽयमिति राज्ञा स भाषितः । गत्वा ज्ञात्वा परावृत्य मुनिं प्राप्तमवेदयत् ॥८५॥
ततो विकचराजीवराजमाननिरीक्षणः । सस्त्रीकः सम्मदोद्भूतपुलकः प्रस्थितो नृपः ॥८६॥
प्रसन्नमुखतारेशं निरीक्ष्य मुनिपुङ्गवम् । सम्भ्रमी शिरसा नत्वा न्यसीदद्विनयाद्भुवि ॥८७॥
भव्याम्भोजप्रधानस्य मुनिभास्करदर्शने । तस्यासीदात्मसंवेद्यः कोऽपि प्रेममहाभरः ॥८८॥
ततः परमगम्भीरः सर्वश्रुतिविशारदः । अद्राक्षनमहौघाय मुनिस्तत्त्वोपदेशनम् ॥८९॥
अनगारं सहागारं धर्मं [3]द्विविधमब्रवीत् । अनेकभेदसंयुक्तं संसारोत्तारणावहम् ॥९०॥
करणं चरणं द्रव्यं प्रथमं च सभेदकम् । अनुयोगमुखं[4] योगी जगाद वदतां वरः ॥९१॥
आक्षेपणीं पराक्षेपकारिणीमकरोत् कथाम् । ततो निक्षेपणीं तत्त्वमतनिक्षेपकोविदाम् ॥९२॥
संवेजनीं च संसारभयप्रचयबोधनीम् । निर्वेदनीं तथा पुण्यां भोगवैराग्यकारिणीम् ॥९३॥
सन्धावतोऽस्य संसारे कर्मयोगेन देहिनः । कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥९४॥

समाधिगुप्त नामक मुनिराज उस नगरमें आये ॥॥८१॥ 'मुनिराज आकर उद्यानमें ठहरे हैं।' यह जानकर मुनिकी वन्दना करनेके लिए नगरके सब लोग हर्षपूर्वक बात-चीत करते हुए उद्यानमें गये ॥८२॥ भक्तिपूर्वक स्तुति करनेवाले जनसमूहका मेघमण्डलके समान जो भारी शब्द हो रहा था उसे कान लगाकर श्रीचन्द्रने सुना और निकटवर्ती लोगोंसे पूछा कि यह महासागरके समान किसका शब्द सुनाई दे रहा है ? जिन लोगोंसे राजाने पूछा था वे उस शब्दका कारण नहीं जानते थे इसलिए उन्होंने मन्त्रीको राजाके निकट कर दिया ॥८३–८४॥ तब राजाने मंत्रीसे कहा कि मालूम करो यह किसका शब्द है ? इसके उत्तरमें मंत्रीने जाकर तथा सब समाचार जानकर वापिस आ निवेदन किया कि उद्यानमें मुनिराज आये हैं ॥८५॥

तदनन्तर जिसके नेत्र खिले हुए कमलके समान सुशोभित हो रहे थे तथा जिसके हर्षके रोमाञ्च उठ आये थे ऐसा राजा श्रीचन्द्र अपनी स्त्रीके साथ मुनिवन्दनाके लिए चला ॥८६॥ वहाँ प्रसन्न मुखचन्द्रके धारक मुनिराजके दर्शन कर राजाने शीघ्रतासे शिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया और उसके बाद वह विनयपूर्वक पृथिवी पर बैठ गया ॥८७॥ भव्यरूपी कमलोंमें प्रधान राजा श्रीचन्द्रको मुनिरूपी सूर्यके दर्शन होनेपर अपने आप अनुभवमें आने योग्य कोई अद्भुत महाप्रेम उत्पन्न हुआ ॥८८॥ तत्पश्चात् परमगम्भीर और सर्वशास्त्रोंके विशारद मुनिराजने उस अपार जनसमूहके लिए तत्त्वोंका उपदेश दिया ॥८९॥ उन्होंने कहा कि अवान्तर अनेक भेदोंसे सहित तथा संसार सागरसे तारने वाला धर्म, अनगार और सागारके भेदसे दो प्रकारका है॥९०॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिराजने अनुयोग द्वारसे वर्णन करते हुए कहा कि अनुयोगके १ प्रथमानुयोग २ करणानुयोग ३ चरणानुयोग और ४ द्रव्यानुयोगके भेदसे चार भेद हैं ॥९१॥ तदनन्तर उन्होंने अन्य मत-मतान्तरोंकी आलोचना करनेवाली आक्षेपणी कथा की। फिर स्वकीय तत्त्वका निरूपण करनेमें निपुण निक्षेपणी कथा की। तदनन्तर संसारसे भय उत्पन्न करनेवाली संवेजनी कथा की और उसके बाद भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली पुण्यवर्धक निर्वेदनी कथा की ॥९२–९३॥ उन्होंने कहा कि कर्मयोगसे संसारमें दौड़ लगानेवाले इस प्राणीको मोक्षमार्गकी प्राप्ति बड़े कष्टसे

---

१. सम्मदं तोषतत्परः म० । २. तैरमा कृत्यतोऽन्तिकः ब०, -रमात्यकृतोऽन्तिकः ख०, ज० । ३. विविध-म० । ४. मुख्यं म० ।

सन्ध्याबुद्बुदफेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनुःसमः । भङ्गुरत्वेन लोकोऽयं न किञ्चिदिह सारकम् ॥९५॥
नरके दुःखमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽसुमान् । मनुष्यत्रिदशानां च सुखेनैवैष तृप्यति ॥९६॥
माहेन्द्रभोगसम्पत्तिर्यो न तृप्तिमुपागतः । स कथं क्षुद्रकैस्तृप्तिं व्रजेन्मनुजभोगकैः ॥९७॥
कथञ्चिद् दुर्लभं लब्ध्वा निधानमधनो यथा । नरत्वं मुञ्चति व्यर्थं विषयास्वादलोभतः ॥९८॥
कानने: शुष्केन्धनैस्तृप्तिः काम्बुधेरापगाजलैः । विषयास्वादसौख्यैः का तृप्तिरस्य शरीरिणः ॥९९॥
मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहितः । दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽन्धीकृतमानसः ॥१००॥
दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् । समस्ति वारणं भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥१०१॥
जन्ममृत्युजरादुःखं संसारे स्मृतिभीतिदम् । अरहट्टघटीयन्त्रसन्ततं कर्मसम्भवम् ॥१०२॥
अजङ्गमं यथाऽन्येन यन्त्रं कृतपरिभ्रमम् । शरीरमध्रुवं पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहतः[1] ॥१०३॥
जलबुद्बुदनिःसारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् । निर्विण्णाः कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ॥१०४॥
उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्वस्थसादिनः । ध्यानखड्गधरा धीराः प्रस्थिताः सुगतिं प्रति ॥१०५॥
अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिताः । तथा शरीरके स्नेहं धर्मं कुरुत मानवाः ॥१०६॥
सुखदुःखादयस्तुल्याः स्वजनेतरयोः समाः । रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ॥१०७॥
तैरियं परमोदारा धवलध्यानतेजसा । कृत्स्ना कर्माटवी दग्धा दुःखश्वापदसङ्कुला ॥१०८॥

होती है ॥९४॥ यह संसार विनाशी होनेके कारण संन्ध्या, बबूले, फेन, तरङ्ग, बिजली और इन्द्र-धनुषके समान है । इसमें कुछ भी सार नहीं है ॥९५॥ यह प्राणी नरक अथवा तिर्यञ्चगतिमें एकान्त रूपसे दुःख ही प्राप्त करता है और मनुष्य तथा देवोंके सुखमें यह तृप्त नहीं होता है ॥९६॥ जो इन्द्र सम्बन्धी भोग-सम्पदाओंसे तृप्त नहीं हुआ वह मनुष्योंके क्षुद्र भोगोंसे कैसे तृप्त हो सकता है ? ॥९७॥ जिस प्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका वह खजाना व्यर्थ चला जाता है । इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर विषय स्वादके लोभमें पड़ यदि प्रमाद करता है तो उसकी मनुष्य-पर्याय व्यर्थ चली जाती है ॥९८॥ सूखे ईन्धनसे अग्निकी तृप्ति क्या है ? नदियोंके जलसे समुद्रकी तृप्ति क्या है ? और विषयोंके आस्वाद-सम्बन्धी सुखसे संसारी प्राणीकी तृप्ति क्या है ? ॥९९॥ जलमें डूबते हुए खिन्न मनुष्यके समान विषय रूपी आमिषसे मोहित हुआ चतुर मनुष्य भी मोहान्धीकृत चित्त होकर मन्दताको प्राप्त हो जाता है ॥१००॥ सूर्य तो दिनमें ही तपता है पर काम रात दिन तपता रहता है । सूर्यका आवरण तो है पर कामका आवरण नहीं है ॥१०१॥ संसारमें अरहटकी घटीके समान निरन्तर कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला जो जन्म, जरा और मृत्यु सम्बन्धी दुःख है वह स्मरण आते ही भय देने वाला है ॥१०२॥ जिस प्रकार अजंगम यन्त्र जंगम प्राणीके द्वारा घुमाया जाता है उसी प्रकार यह अनित्य तथा बीभत्स शरीर भी चेतन द्वारा घुमाया जाता है । इस शरीरमें जो स्नेह है वह मोहके कारण ही है ॥१०३॥ यह मनुष्य जन्म पानीके बबूलेके समान निःसार है ऐसा जानकर कुलीन मनुष्य विरक्त हो जिन-प्रतिपादित मार्गको प्राप्त होते हैं ॥१०४॥ जो उत्साह रूपी कवचसे आच्छादित हैं, निश्चय रूपी घोड़ेपर सवार हैं और ध्यानरूपी खड्गको धारण करनेवाले हैं ऐसे धीर वीर मनुष्य सुगतिके प्रति प्रस्थान करते हैं ॥१०५॥ हे मानवो ! शरीर जुदा है और मैं जुदा हूँ ऐसा विचार कर निश्चय करो तथा शरीरमें स्नेह छोड़कर धर्म करो ॥१०६॥ जिन्हें सुख-दुःखादि समान हैं, जो स्वजन और परजनोंमें समान हैं तथा राग-द्वेष आदिसे रहित हैं ऐसे मुनि ही पुरुषोत्तम हैं ॥१०७॥ उन्हीं

१. 'अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम् । बीभत्सु पूति अपि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः' ॥ बृहत्स्वयंभूस्तोत्रे समन्तभद्रस्य ।

निशम्येति मुनेरुक्तं श्रीचन्द्रो बोधिमाश्रितः । पराचीनत्वमागच्छन् विषयास्वादसौख्यतः ॥१०९॥
धृतिकान्ताय पुत्राय दत्त्वा राज्यं महामनाः । समाधिगुप्तनाथस्य पार्श्वे श्रामण्यमग्रहीत् ॥११०॥
सम्यग्भावनया युक्तस्त्रैयोगीं शुद्धिमादधन् । समित्यान्वितो गुप्तया रागद्वेषपराङ्मुखः ॥१११॥
रत्नत्रयमहाभूषः क्षान्त्यादिगुणसङ्गतः । जिनशासनसम्पूर्णः श्रमणः सुसमाहितः ॥११२॥
पञ्चोदारव्रताधारः सत्त्वानामनुपालकः । सप्तभीस्थाननिर्मुक्तो धृत्या परमयान्वितः ॥११३॥
सुविहारपरः सोढा परीषहगणान् मुनिः । षष्ठाष्टमार्द्धमासादिकृतसंशुद्धपारणः ॥११४॥
ध्यानस्वाध्याययुक्तात्मा निर्ममोऽतिजितेन्द्रियः । निर्निदानकृतिः शान्तः परः शासनवत्सलः ॥११५॥
प्रासुकाचारकुशलः सङ्घानुग्रहतत्परः । बालाग्रकोटिमात्रेऽपि स्पृहामुक्तः परिग्रहे ॥११६॥
अस्नानमलसाध्वङ्गो[1] निराबन्धो निरम्बरः । एकरात्रस्थितिर्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रभाक् ॥११७॥
कन्दरापुलिनोद्याने प्रशस्तावाससङ्गमः । व्युत्सृष्टाङ्गः स्थिरो मौनी विद्वान् सम्यक्तपोरतः ॥११८॥
एवमादिगुणः कृत्वा जर्जरं कर्मपञ्जरम् । श्रीचन्द्रः कालमासाद्य ब्रह्मलोकाधिपोऽभवत् ॥११९॥
निवासे परमे तत्र श्रीकीर्तिद्युतिकान्तिभाक् । चूडामणिकृतालोको भुवनत्रयविश्रुतः ॥१२०॥
ऋद्धया परमया क्रीडन्समनुध्यानजन्मना । अहमिन्द्रसुरो यद्वदासीद् भरतभूपतिः ॥१२१॥
नन्दनादिषु देवेन्द्राः सौधर्माद्याः सुसम्पदः । तिष्ठंत्युदीक्षमाणास्तं तदुत्कण्ठापरायणाः ॥१२२॥

मुनियोंने अपने शुक्ल ध्यान रूपी नेत्रके द्वारा दुःख रूपी वन्य पशुओंसे व्याप्त इस अत्यन्त विशाल समस्त कर्मरूपी अटवीको भस्म किया है ॥१०८॥ इस प्रकार मुनिराजका उपदेश सुन कर श्रीचन्द्र विषयास्वाद-सम्बन्धी सुखसे पराङ्मुख हो रत्नत्रयको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ फल-स्वरूप उस उदारचेताने धृतिकान्त नामक पुत्रके लिए राज्य देकर समाधिगुप्त मुनिराजके समीप मुनिदीक्षा धारण कर ली ॥११०॥ अब वे श्रीचन्द्रमुनि समीचीन भावनासे सहित थे, त्रियोग सम्बन्धी शुद्धिको धारण करते थे, समितियों और गुप्तियोंसे सहित थे तथा राग-द्वेषसे विमुख थे ॥१११॥ रत्नत्रय रूपी उत्तम अलंकारोंसे युक्त थे, क्षमा आदि गुणोंसे सहित थे, जिन-शासन से ओत-प्रोत थे, श्रमण थे और उत्तम समाधानसे युक्त थे ॥११२॥ पञ्च महाव्रतोंके धारक थे, प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले थे, सात भयोंसे निर्मुक्त थे तथा उत्तम धैर्यसे सहित थे ॥११३॥ ईर्यासमितिपूर्वक उत्तम विहार करनेमें तत्पर थे, परीषहोंके समूहको सहन करने वाले थे, मुनि थे, तथा बेला, तेला और पक्षोपवासादि करनेके बाद पारणा करते थे ॥११४॥ ध्यान और स्वाध्यायमें निरन्तर लीन रहते थे; ममता रहित थे, इन्द्रियोंको तीव्रतासे जीतने वाले थे, उनके कार्य निदान अर्थात् आगामी भोगाकांक्षासे रहित होते थे, वे परम शान्त थे और जिन शासनके परम स्नेही थे ॥११५॥ अहिंसक आचरण करनेमें कुशल थे, मुनिसंघपर अनुग्रह करनेमें तत्पर थे, और बालकी अनीमात्र परिग्रहमें भी इच्छासे रहित थे ॥११६॥ स्नानके अभावमें उनका शरीर मलसे सुशोभित था, वे आसक्तिसे रहित थे, दिगम्बर थे, गाँवमें एक रात्रि और नगरमें पाँच रात्रि तक ही ठहरते थे ॥११७॥ पर्वतकी गुफाओं, नदियोंके तट अथवा बाग-बगीचोंमें ही उनका उत्तम निवास होता था, उन्होंने शरीरसे ममता छोड़ दी थी, वे स्थिर थे, मौनी थे, विद्वान् थे और सम्यक् तपमें तत्पर थे ॥११८॥ इत्यादि गुणोंसे सहित श्रीचन्द्रमुनि कामरूपी पञ्जरको जर्जर—जीर्ण-शीर्णकर तथा समाधिमरण प्राप्तकर ब्रह्मस्वर्गके इन्द्र हुए ॥११९॥

वहाँ वे उत्तम विमानमें श्री, कीर्ति, द्युति और कान्तिको प्राप्त थे, चूड़ामणिके द्वारा प्रकाश करनेवाले थे, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे ॥१२०॥ यद्यपि ध्यान करते ही उत्पन्न होनेवाली परम ऋद्धिसे क्रीड़ा करते थे तथापि अहमिन्द्रदेवके समान अथवा भरत चक्रवर्तीके समान निर्लिप्त ही रहते थे ॥१२१॥ नन्दन वन आदि स्थानोंमें उत्तम सम्पदाओंसे युक्त सौधर्म आदि इन्द्र जब

१. साध्वङ्गे म० ।

मणिहेमात्मके कान्ते मुक्ताजालविराजिते । रमते स्म विमानेऽसौ दिव्यस्त्रीनयनोत्सवः ॥१२३॥
या [1]श्रीश्चन्द्रचरस्यास्य न वा वाचस्पतेरपि । संवत्सरशतेनाऽपि शक्या वक्तुं विभीषण ॥१२४॥
अनर्घ्यं परमं रत्नं रहस्यमुपमोज्झितम् । त्रैलोक्यप्रकटं मूढा न विदुर्जिनशासनम् ॥१२५॥
मुनिधर्मजिनेन्द्राणां माहात्म्यमुपलभ्य सत् । मिथ्याभिमानसंमूढा धर्मं प्रति पराङ्मुखाः ॥१२६॥
इहलोकसुखस्यार्थं शिशुर्यः कुमते रतः । तदसौ कुरुते स्वस्य ध्यायन्नपि न यद्द्विषः ॥१२७॥
कर्मबन्धस्य चित्रत्वान्न सर्वो बोधिभाग्जनः । केचिल्लब्ध्वाऽपि मुञ्चन्ति पुनरन्यव्यपेक्षया ॥१२८॥
बहुकुत्सितलोकेन गृहीते बहुदोषके । [2]मारंध्वं निन्दिते धर्मे कुरुध्वं [3]चित्स्वबन्धुताम् ॥१२९॥
जिनशासनतोऽन्यत्र दुःखमुक्तिर्न विद्यते । तस्मादनन्यचेतस्का जिनमर्चयताऽनिशम् ॥१३०॥
त्रिदशत्वान्मनुष्यत्वं सुरत्वं मानुषत्वतः । एवं [4]मनोहरं प्राप्तो धनदत्तो निवेदितः ॥१३१॥
वक्ष्याम्यतः समासेन वसुदत्तादिसंसृतिम् । कर्मणां चित्रतायोगात् चित्रत्वमनुबिभ्रतीम् ॥१३२॥
पुरे मृणालकुण्डाख्यो[5] प्रतापी यशसोज्ज्वलः । राजा विजयसेनाख्ये रत्नचूलास्य भामिनी ॥१३३॥
वज्रकम्बुः सुतस्तस्य हेमवत्यस्य भामिनी । शम्भुनामा तयोः पुत्रः प्रख्यातो धरणीतले ॥१३४॥
पुरोधाः परमस्तस्य श्रीभूतिस्तत्त्वदर्शनः । तस्य पत्नीगुणैर्युक्ता पत्नी नाम्ना सरस्वती ॥१३५॥
आसीद्गुणवती याऽसौ तिर्यग्योनिषु सा चिरम् । भ्रान्त्वा कर्मानुभावेन सम्यग्धर्मविवर्जिता ॥१३६॥

उनकी ओर देखते थे तब उन जैसा वैभव प्राप्त करनेके लिए उत्कण्ठित हो जाते थे ॥१२२॥ देवाङ्गनाओंके नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले वे ब्रह्मेन्द्र, मणि तथा सुवर्णसे निर्मित एवं मोतियोंकी जालीसे सुशोभित सुन्दर विमानमें रमण करते थे ॥१२३॥ श्रीसकलभूषण केवली कहते हैं कि हे विभीषण ! श्रीचन्द्रके जीव ब्रह्मेन्द्रकी जो विभूति थी उसे बृहस्पति भी सौ वर्षमें भी नहीं कह सकता ॥१२४॥ जिनशासन अमूल्य रत्न है, अनुपम रहस्य है तथा तीनों लोकोंमें प्रकट है परन्तु मोही जीव इसे नहीं जानते ॥१२५॥ मुनिधर्म तथा जिनेन्द्रदेवके उत्तम माहात्म्य को जानकर भी मिथ्या अभिमानमें चूर रहनेवाले मनुष्य धर्मसे विमुख रहते हैं ॥१२६॥ जो बालक अर्थात् अज्ञानी इस लोकसम्बन्धी सुखके लिए मिथ्यामतमें प्रीति करता है वह अपना ध्यान रखता हुआ भी उसका वह अहित करता है जिसे शत्रु भी नहीं करते ॥१२७॥ कर्म-बन्धकी विचित्रता होनेसे सभी लोग रत्नत्रयके धारक नहीं हो जाते । कितने ही लोग उसे प्राप्त कर भी दूसरेके चक्रमें पड़कर पुनः छोड़ देते हैं ॥१२८॥ हे भव्यजनो ! अनेक खोटे मनुष्यों के द्वारा गृहीत एवं बहुत दोषोंसे सहित निन्दित धर्ममें रमण मत करो । अपने चित् स्वरूपके साथ बन्धुताका काम करो ॥१२९॥ जिनशासनको छोड़कर अन्यत्र दुःखसे मुक्ति नहीं है इसलिए हे भव्यजनो ! अनन्यचित्त हो निरन्तर जिनभगवान्‌की अर्चा करो ॥१३०॥ इस प्रकार देवसे उत्तम मनुष्य पर्याय और मनुष्यसे उत्तम देवपर्यायको प्राप्त करनेवाले धनदत्तका वर्णन किया ॥१३१॥ अब संक्षेपसे कर्मोंकी विचित्रताके कारण विविधरूपताको धारण करनेवाले, वसुदत्तादिके भ्रमणका वर्णन करता हूँ ॥१३२॥

अथानन्तर मृणालकुण्डनामक नगरमें प्रतापवान् तथा यशसे उज्ज्वल विजयसेन नामका राजा रहता था । रत्नचूला उसकी स्त्री थी ॥१३३॥ उन दोनोंके वज्रकम्बु नामका पुत्र था और हेमवती उसकी स्त्री थी । उन दोनोंके पृथिवीतलपर प्रसिद्ध शम्भु नामका पुत्र था ॥१३४॥ उसके श्रीभूति नामका परमतत्त्वदर्शी पुरोहित था और उसकी स्त्रीके योग्य गुणोंसे सहित सरस्वती नामकी स्त्री थी ॥१३५॥ पहले जिस गुणवतीका उल्लेख कर आये हैं वह समीचीन धर्मसे रहित

१. श्रीचन्द्रचरस्यास्य म० । २. रागं मा कुरुत । मारध्वं म० । ३. चेत्स्वबन्धुना म०, ख०, ज० । ४. मनोहरप्राप्तो म० । ५. मृणालकुण्डाख्यो म० ।

मोहेन निन्दनैः स्त्रैणैर्निदानैरभिगूहनैः । स्त्रीत्वमुत्तमदुःखाक्तं भजमाना[1] पुनः पुनः ॥१३७॥
साधुष्ववर्णवादेन दुरवस्थाखलीकृता । परिप्राप्ता करेणुत्वमासीन्मन्दाकिनीतटे ॥१३८॥
सुमहापङ्कनिर्मग्ना परायत्तस्थिराङ्गिका । विमुक्तमन्दसूत्कारा मुकुलीकृतलोचना ॥१३९॥
मुमूर्षन्ती समालोक्य खेचरेण कृपावता । तरङ्गवेगनाम्नासौ कर्णजपमुपाहृता ॥१४०॥
ततस्तनुकषायत्वात्तत्क्षेत्रगुणतोऽपि च । प्रत्याख्यानाच्च तद्दत्ताच्छ्रीभूतेः सा सुताऽभवत् ॥१४१॥
भिक्षार्थिनं मुनिं गेहं प्रविष्टमवलोक्य सा । उपहासात्ततः पित्रा शामिता श्राविकाऽभवत् ॥१४२॥
तस्याः परमरूपायाः सुकन्यायाः कृतेऽवनौ । उत्कण्ठिता महीपालाः शम्भुस्तेषु विशेषतः ॥१४३॥
मिथ्यादृष्टिः कुबेरेण समो भवति यद्यपि । तथाऽपि नास्मै देयेयं प्रतिज्ञेति पुरोधसः ॥१४४॥
ततः प्रकुपितेनासौ शम्भुना शयितो निशि । हिंसितः सुरतां प्राप्तो जिनधर्मप्रसादतः ॥१४५॥
ततो वेदवतीमेनां प्रत्यक्षां देवतामिव । अनिच्छन्तीं प्रभुत्वेन बलादुद्वोढुमुद्यतः ॥१४६॥
मनसा कामतप्तेन[2] तामालिङ्ग्योपचुम्ब्य च । विस्फुरन्तीं रतिं साक्षान्मैथुनेनोपचक्रमे ॥१४७॥
ततः प्रकुपितात्यन्तं चण्डा वह्निशिखेव सा । विरक्तहृदया बाला वेपमानशरीरिका ॥१४८॥
आत्मनः शीलनाशेन वधेन जनकस्य च । बिभ्राणा परमं दुःखं प्राह लोहिततलोचना ॥१४९॥
व्यापाद्य पितरं पाप कामिताऽस्मि बलेन यत् । [3]भवद्वधार्थमुत्पत्स्ये ततोऽहं पुरुषाधम ॥१५०॥

हो कर्मोंके प्रभावसे तिर्यञ्च योनिमें चिरकाल तक भ्रमण करती रही ॥१३६॥ वह मोह, निन्दा, स्त्री सम्बन्धी निदान तथा अपवाद आदिके कारण बार-बार तीव्र दुःखसे युक्त स्त्रीपर्यायको प्राप्त करती रही ॥१३७॥ तदनन्तर साधुओंका अवर्णवाद करनेके कारण वह दुःखमयी अवस्थासे दुखी होती हुई गङ्गा नदीके तटपर हथिनी हुई ॥१३८॥ वहाँ वह बहुत भारी कीचड़में फँस गई जिससे उसका शरीर एकदम पराधीन होकर अचल हो गया। वह धीरे-धीरे सू-सू शब्द छोड़ने लगी तथा नेत्र बन्दकर मरणासन्न अवस्थाको प्राप्त हुई ॥१३९॥ तदनन्तर उसे मरती देख तरङ्गवेग नामक दयालु विद्याधरने उसे कानमें नमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया ॥१४०॥ उस मन्त्रके प्रभावसे उसकी कषाय मन्द पड़ गई, उसने उसी स्थानका क्षेत्र संन्यास धारण किया तथा उक्त विद्याधरने उसे प्रत्याख्यान-संयम दिया। इन सब कारणोंके मिलनेसे वह श्रीभूतिनामक पुरोहितके वेदवती नामकी पुत्री हुई ॥१४१॥ एक बार भिक्षाके लिए घरमें प्रविष्ट मुनिको देखकर उसने उनकी हँसी की तब पिताने उसे समझाया जिससे वह श्राविका हो गई ॥१४२॥ वेदवती परम सुन्दरी कन्या थी अतः उसे प्राप्त करनेके लिए पृथिवीतलके राजा अत्यन्त उत्कण्ठित थे और उनमें शम्भु विशेष रूपसे उत्कण्ठित था ॥१४३॥ पुरोहितकी यह प्रतिज्ञा थी कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि पुरुष सम्पत्तिमें कुबेरके समान हो तथापि उसके लिए यह कन्या नहीं दूँगा ॥१४४॥ इस प्रतिज्ञासे शम्भु बहुत कुपित हुआ और उसने रात्रिमें सोते हुए पुरोहितको मार डाला। पुरोहित मरकर जिनधर्मके प्रसादसे देव हुआ ॥१४५॥

तदनन्तर जो साक्षात् देवताके समान जान पड़ती थी ऐसी इस वेदवतीको उसकी इच्छा न रहनेपर भी शम्भु अपने अधिकारसे बलात् विवाहनेके लिए उद्यत हुआ ॥१४६॥ साक्षात् रतिके समान शोभायमान उस वेदवतीका शम्भुने कामके द्वारा संतप्त मनसे आलिङ्गन किया। चुम्बन किया और उसके साथ बलात् मैथुन किया ॥१४७॥ तदनन्तर जो अत्यन्त कुपित थी, अग्निशिखाके समान तीक्ष्ण थी, जिसका हृदय विरक्त था, शरीर काँप रहा था, जो अपने शील के नाश और पिताके वधसे तीव्र दुःख धारण कर रही थी—तथा जिसके नेत्र लाल-लाल थे ऐसी उस वेदवतीने शम्भुसे कहा कि अरे पापी! नीच पुरुष! तूने पिताको मारकर बलात् मेरे

---

१. भजमानाः म० । २. कामतृप्तेन म० । ३. -मुत्पश्ये म० ।

परलोकगतस्यापि पितुर्नाहं मनोरथम् । लुम्पामि तेन दुर्दृष्टिकामनान्मरणं वरम् ॥१५१॥
हरिकान्तार्यिकायाश्च पार्श्वं गत्वा ससम्भ्रमम् । प्रव्रज्य साऽकरोद्बाला तपः परमदुष्करम् ॥१५२॥
लुञ्चनोत्थितसंरूक्षमूर्द्धजा मांसवर्जिता । प्रकटास्थिसिराजाला तपसा शुष्कदेहिका ॥१५३॥
कालधर्मं परिप्राप्य ब्रह्मलोकमुपागता । पुण्योदयसमानीतं सुरसौख्यमसेवत ॥१५४॥
तया विरहितः शम्भुर्लघुत्वं भुवने गतः । विबन्धुभृत्यलक्ष्मीको प्रापदुन्मत्ततां कुधीः ॥१५५॥
मिथ्याभिमानसम्मूढो जिनवाक्यात्पराङ्मुखः । हसति श्रमणान् दृष्ट्वा दुरुक्ते च प्रवर्त्तते ॥१५६॥
मधुमांससुराहारः पापानुमननोद्यतः । तिर्यङ्नरकवासेषु सुदुःखेष्वभ्रमच्चिरम् ॥१५७॥
अथोपशमनात्किञ्चित्कर्मणः क्लेशकारिणः । कुशध्वजस्य विप्रस्य सावित्र्यां तनयोऽभवत् ॥१५८॥
प्रभासकुन्दनामासौ प्राप्य बोधिं सुदुर्लभाम् । पार्श्वे विचित्रसेनस्य मुनेर्दीक्षामसेवत ॥१५९॥
विमुक्तरतिकन्दर्पगर्वसंरम्भमत्सरः । निर्विकारस्तपश्चक्रे दयावाञ्जितेन्द्रियः ॥१६०॥
षष्ठाष्टमार्द्धमासादिनिराहारः स्पृहोज्झितः । यत्रास्तमितनिलयो वसन् शून्यवनादिषु ॥१६१॥
गुणशीलसुसम्पन्नः परीषहसहः परः । आतापनरतो ग्रीष्मे पिनद्धमलकञ्चुकः ॥१६२॥
वर्षासु मेघमुक्ताभिरद्भिः क्लिन्नस्तरोरधः । प्रालेयपटसंवीतो हेमन्ते पुलिनस्थितः ॥१६३॥
एवमादिक्रियायुक्तः सोऽन्यदा सिद्धमन्दिरम् । सम्मेदं वन्दितुं यातः स्मृतमप्यघनाशनम् ॥१६४॥

साथ काम सेवन किया है, इसलिए मैं तेरे वधके लिए ही आगामी पर्यायमें उत्पन्न होऊँगी। यद्यपि मेरे पिता परलोक चले गये हैं तथापि मैं उनकी इच्छा नष्ट नहीं करूँगी। मिथ्यादृष्टि पुरुषको चाहनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है ॥१४८-१५१॥

तदनन्तर उस बालाने शीघ्र ही हरिकान्ता नामक आर्यिकाके पास जाकर दीक्षा ले अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया ॥१५२॥ लोंच करनेके बाद उसके शिरपर रूखे बाल निकल आये थे, तपके कारण उसका शरीर ऐसा सूख गया था मानो मांस उसमें है ही नहीं और हड्डी तथा नसोंका समूह स्पष्ट दिखाई देने लगा था ॥१५३॥ आयुके अन्तमें मरण कर वह ब्रह्मस्वर्ग गई। वहाँ पुण्योदयसे प्राप्त हुए देवोंके सुखका उपभोग करने लगी ॥१५४॥ वेदवतीसे रहित शम्भु, संसारमें एकदम हीनताको प्राप्त हो गया, उसके भाई-बन्धु, दासी-दास तथा लक्ष्मी आदि सब छूट गये और वह दुर्बुद्धि उन्मत्त अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥१५५॥ वह झूठ-मूठके अभिमानमें चूर हो रहा था तथा जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंसे पराङ्मुख रहता था। वह मुनियोंको देख उनकी हँसी उड़ाता तथा उनके प्रति दुष्ट वचन कहता था ॥१५६॥ इस प्रकार मधु मांस और मदिरा ही जिसका आहार था तथा जो पापकी अनुमोदना करनेमें उद्यत रहता था ऐसा शम्भु तीव्र दुःख देनेवाले नरक और तिर्यञ्चगतिमें चिरकाल तक भ्रमण करता रहा ॥१५७॥

अथानन्तर दुःखदायी पाप कर्मका कुछ उपशम होनेसे वह कुशध्वज ब्राह्मणकी सावित्री नामक स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५८॥ प्रभासकुन्द उसका नाम था। फिर अत्यन्त दुर्लभ रत्नत्रयको पाकर उसने विचित्रसेन मुनिके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१५९॥ जिसने रति काम, गर्व, क्रोध तथा मत्सरको छोड़ दिया था, जो दयालु था तथा इन्द्रियोंको जीतनेवाला था ऐसे उस प्रभासकुन्दने निर्विकार होकर तपश्चरण किया ॥१६०॥ वह दो दिन, तीन दिन तथा एक पक्ष आदिके उपवास करता था, उसकी सब प्रकारकी इच्छाएँ छूट गई थीं, जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह शून्य वन आदिमें ठहर जाता था ॥१६१॥ गुण और शीलसे सम्पन्न था, परीषहोंको सहन करनेवाला था, ग्रीष्मऋतुमें आतापनयोग धारण करनेमें तत्पर रहता था, मलरूपी कञ्चुकसे सहित था, वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे मेघोंके द्वारा छोड़े हुए जलसे भींगता रहता था और हेमन्तऋतुमें बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत होकर नदियोंके तटपर स्थित रहता था, इत्यादि क्रियाओंसे युक्त हुआ वह प्रभासकुन्द किसी समय उस सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरकी वन्दना करनेके लिए गया

कनकप्रभसंज्ञस्य तत्र विद्याभृतां विभोः । विभूतिं गगने वीक्ष्य [1]प्रशान्तोऽपि न्यदानयत् ॥१६५॥
अलं विभवमुक्तेन तावन्मुक्तिपदेन मे । ईदृशैश्वर्यमाप्नोमि तपोमाहात्म्यमस्ति चेत् ॥१६६॥
अहो पश्यत मूढत्वं जनितं पापकर्मभिः । रत्नं त्रैलोक्यमूल्यं यद्विक्रीतं शाकमुष्टिना ॥१६७॥
भवन्त्युन्नवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये । धियः कर्मानुभावेन केन किं क्रियतामिह ॥१६८॥
निदानदूषितात्मासौ कृत्वातिविकटं तपः । सनत्कुमारमारुह्य तत्र भोगानसेवत ॥१६९॥
च्युतः पुण्यावशेषेण भोगस्मरणमानसः । रत्नश्रवःसुतो जातो कैकस्यां रावणाभिधः ॥१७०॥
लङ्कायां च महैश्वर्यं प्राप्तो दुर्लङ्घितक्रियम् । कृतानेकमहाश्चर्यं प्रतापाक्रान्तविष्टपम् ॥१७१॥
असौ तु ब्रह्मलोकेशो दशसागरसम्मितम् । स्थित्वा कालं च्युतो जातो रामो दशरथात्मजः ॥१७२॥
तस्यापराजितासूनोः पूर्वपुण्यावशेषतः । भूत्या रूपेण वीर्येण समो जगति दुर्लभः ॥१७३॥
धनदत्तोऽभवद्योऽसौ सोऽयं पद्मो मनोहरः । यशसा चन्द्रकान्तेन समाविष्टधविष्टपः ॥१७४॥
वसुदत्तोऽभवद्यश्च श्रीभूतिश्च द्विजः क्रमात् । जातो नारायणः सोऽयं सौमित्रिः श्रीलतातरुः ॥१७५॥
श्रीकान्तः क्रमयोगेन योऽसौ शम्भुत्वमागतः । अभूत्प्रभासकुन्दश्च सञ्जातः स दशाननः ॥१७६॥
येनेह भरतक्षेत्रे खण्डत्रयमखण्डितम् । अङ्गुलान्तरविन्यस्तमिव वश्यत्वमाहृतम् ॥१७७॥
आसीद् गुणवती या तु श्रीभूतेश्च सुता क्रमात् । सेयं जनकराजस्य सीतेति तनयाऽजनि ॥१७८॥

जो कि स्मृतिमें आते ही पापका नाश करनेवाला था ॥१६२-१६४॥ यद्यपि वह शान्त था तथापि उसने वहाँ आकाशमें कनकप्रभ नामक विद्याधरकी विभूति देख निदान किया कि मुझे वैभवसे रहित मुक्तिपदकी आवश्यकता नहीं है। यदि मेरे तपमें कुछ माहात्म्य है तो मैं ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करूँ ॥१६५-१६६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो पापकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मूर्खता तो देखो कि उसने त्रिलोकी मूल्य रत्नको शाककी एक मुट्ठीमें बेच दिया ॥१६७॥ अथवा ठीक है क्योंकि कर्मोंके प्रभावसे अभ्युदयके समय मनुष्यके सद्बुद्धि उत्पन्न होती है और विपरीत समय में सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है। इस संसारमें कौन क्या कर सकता है ? ॥१६८॥

तदनन्तर जिसकी आत्मा निदानसे दूषित हो चुकी थी ऐसा प्रभासकुन्द, अत्यन्त विकट तप कर सनत्कुमार स्वर्गमें आरूढ़ हुआ और वहाँ भोगोंका उपभोग करने लगा ॥१६९॥ तत्पश्चात् भोगोंके स्मरण करनेमें जिसका मन लग रहा था ऐसा वह देव अवशिष्ट पुण्यके प्रभाव वश वहाँसे च्युत हो लङ्का नगरीमें राजा रत्नश्रवा और उनकी रानी कैकसीके रावण नामका पुत्र हुआ। वहाँ वह निदानके अनुसार उस महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ जिसकी क्रियाएँ अत्यन्त विलासपूर्ण थीं, जिसमें बड़े-बड़े आश्चर्यके काम किये गये थे तथा जिसने प्रतापसे समस्त लोकको व्याप्त कर रक्खा था ॥१७०-१७१॥

तदनन्तर श्रीचन्द्रका जीव, जो ब्रह्मलोकमें इन्द्र हुआ था वहाँ दश सागर प्रमाण काल तक रह कर च्युत हो दशरथका पुत्र राम हुआ। उसकी माताका नाम अपराजिता था। पूर्व पुण्यके अवशिष्ट रहनेसे इस संसारमें विभूति, रूप और पराक्रमसे रामकी तुलना करनेवाला पुरुष दुर्लभ था ॥१७२-१७३॥ पहले जो धनदत्त था वही चन्द्रमाके समान यशसे संसारको व्याप्त करने वाला मनोहर राम हुआ है ॥१७४॥ पहले जो वसुदत्त था फिर श्रीभूति ब्राह्मण हुआ वही क्रमसे लक्ष्मी रूपी लताके आधारके लिए वृक्षस्वरूप नारायण पदका धारी यह लक्ष्मण हुआ है ॥१७५॥ पहले जो श्रीकान्त था वही क्रम-क्रमसे शम्भु हुआ फिर प्रभासकुन्द हुआ और अब रावण हुआ था ॥१७६॥ वह रावण कि जिसने भरतक्षेत्रके सम्पूर्ण तीन खण्ड अंगुलियोंके बीचमें दबे हुएके समान अपने वश कर लिये थे ॥१७७॥ जो पहले गुणवती थी फिर क्रमसे श्रीभूति

---

१. निदानं चक्रेऽप्यन्यदा नयन् म० ।

जाता च बलदेवस्य पत्नी विनयशालिनी । शीलकोशी सुरेशस्य शचीव सुविचेष्टिता ॥१७९॥
योऽसौ गुणवतीभ्राता गुणवानभवत्तदा । सोऽयं भामण्डलो जातः सुहृद्रामललक्ष्मणः ॥१८०॥
यत्रामृतवतीदेवी ब्रह्मलोकनिवासिनी । च्यवतेऽश्येति तत्रैव काले कुण्डलमण्डितः ॥१८१॥
विदेहायास्तयोर्गर्भे समुत्पन्नः समागमः । तद्भ्रातृयुगलं जातमनघं सुमनोहरम् ॥१८२॥
योऽसौ यज्ञवलिर्विप्रः स त्वं जातो विभीषणः । असौ वृषभकेतुस्तु सुग्रीवोऽयं कपिध्वजः ॥१८३॥
त एते पूर्वया प्रीत्या तथा पुण्यानुभावतः । यूयं रक्तात्मका जाता रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥१८४॥
पूर्वमाजननं बालेर्यदपृच्छद् विभीषणः । केवली च समाचख्यौ शृणु ते श्रेणिकाधुना ॥१८५॥
रत्यरत्यादिदुःखौघे संसारे चतुरन्तके । वृन्दारण्यस्थले जन्तुरेकः कृष्णमृगोऽभवत् ॥१८६॥
साधुस्वाध्यायनिःस्वानं श्रुत्वायुर्विलये मृगः । ऐरावते दितिस्थाने प्राप नृत्वमनिन्दितम् ॥१८७॥
सम्यग्दृष्टिः पितास्यासीद् विहीताख्यः सुचेष्टितः । माता शिवमतिः पुत्रो मेघदत्तस्तयोरयम् ॥१८८॥
अणुव्रतधरः सोऽयं जिनपूजासमुद्यतः । वन्दारुः कृतसत्कालः कल्पमैशानमाश्रयत् ॥१८९॥
च्युत्वा जम्बूमति द्वीपे विदेहे पूर्वभूमिके । पुरोऽस्ति विजयावत्याः समीपे सततोत्सवः ॥१९०॥
सुग्रामः पत्तनाकारो नामतो मत्तकोकिलः । कान्तशोकः प्रभुस्तत्र तस्य रत्नाकिनी प्रिया ॥१९१॥
तयोः सुप्रभनामाऽभूत्तनयश्चारुदर्शनः । बहुबन्धुजनाकीर्णः शुभैकचरितप्रियः ॥१९२॥
संसारे दुर्लभां प्राप्य बोधिं जिनमतानुगाम् । अग्रहीत् संयमं पार्श्वे संयतस्य महामुनेः ॥१९३॥

पुरोहितकी वेदवती पुत्री हुई थी वही अब क्रमसे राजा जनक की सीता नामकी पुत्री हुई है ॥१७८॥ यह सीता बलदेव—रामकी विनयवती पत्नी है, शीलका खजाना है तथा इन्द्रकी इन्द्राणीके समान सुन्दर चेष्टाओंको धारण करने वाली है ॥१७९॥ उस समय जो गुणवतीका भाई गुणवान् था वही यह रामका परममित्र भामण्डल हुआ है ॥१८०॥ ब्रह्मलोकमें निवास करने वाली गुणवतीका जीव अमृतमती देवी जिस समय च्युत हुई थी उसी समय कुण्डलमण्डित भी च्युत हुआ था सो इन दोनोंका जनककी रानी विदेहाके गर्भमें समागम हुआ। यह बहिन-भाईका जोड़ा अत्यन्त मनोहर तथा निर्दोष था ॥१८१-१८२॥ जो पहले यज्ञवलि ब्राह्मण था वह तू विभीषण हुआ है और जो वृषभकेतु था वह यह वानरकी ध्वजासे युक्त सुग्रीव हुआ है ॥१८३॥ इस प्रकार तुम सभी पूर्व प्रीतिसे तथा पुण्यके प्रभावसे पुण्यकर्मा रामके साथ प्रीति रखने वाले हुए हो ॥१८४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद विभीषणने सकलभूषण केवलीसे बालिके पूर्वभव पूछे सो केवलीने जो निरूपण किया उसे मैं कहता हूँ सो सुन ॥१८५॥

राग, द्वेष आदि दुःखोंके समूहसे भरे हुए इस चतुर्गति रूप संसारमें वृन्दावनके बीच एक कृष्णमृग रहता था ॥१८६॥ आयुके अन्तके समय वह मृग मुनियोंके स्वाध्यायका शब्द सुन ऐरावत क्षेत्रके दितिनामा नगरमें उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ ॥१८७॥ वहाँ सम्यग्दृष्टि तथा उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला विहीत नामका पुरुष इसका पिता था और शिवमति इसकी माता थी। उन दोनोंके यह मेघदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥१८८॥ मेघदत्त अणुव्रतका धारी था, जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमें सदा उद्यत रहता था और जिन-चैत्यालयोंकी वन्दना करने वाला था। आयुके अन्तमें समाधिमरण कर वह ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥१८९॥ जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें विजयावती नगरीके समीप एक मत्तकोकिल नामका उत्तम ग्राम है जिसमें निरन्तर उत्सव होता रहता है तथा जो नगरके समान सुन्दर है। उस ग्रामका स्वामी कान्तशोक था तथा रत्नाकिनी उसकी स्त्री थी। मेघदत्तका जीव ऐशान स्वर्गसे च्युत होकर उन्हीं दोनोंके सुप्रभ नामका सुन्दर पुत्र हुआ। यह सुप्रभ अनेक बन्धुजनोंसे सहित था तथा शुभ आचार ही उसे प्रिय था ॥१९०-१९२॥ उसने संसारमें दुर्लभ जिनमतानुगामी रत्नत्रयको पाकर संयतनामा महामुनिके

अतएव तपस्तीव्रं यथाविधि महाशयः । संवत्सरसहस्राणि बहूनि सुमहामनाः ॥१९४॥
नानाऋद्धिसमेतोऽपि यो न गर्वमुपागतः । संयोगजेषु भावेषु तत्याज ममतां च यः ॥१९५॥
विकषायसितध्यानसिद्धः स्यात्स महामुनिः । पर्याप्तं केवलं नायुरतः सर्वार्थसिद्धिमैत् ॥१९६॥
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुस्तत्र भुक्त्वा महासुखम् । वालिनाम्नाऽजनिष्टासौ प्रतापी खेचराधिपः ॥१९७॥
भ्रव्यदर्शनराज्यं यः प्राप किष्किन्धभूधरे । भ्राता यस्यैव सुग्रीवो महागुणसमन्वितः ॥१९८॥
विरोधमतिरूढोऽपि लङ्काधिपतिना समम् । विन्यस्यात्र श्रियं जीवदयार्थं दीक्षितोऽभवत् ॥१९९॥
दशाननेन गर्वेण सामर्थ्येन समुद्धृतः । पादाङ्गुष्ठेन कैलासस्त्याजितो येन साधुना ॥२००॥
निर्दह्य स भवारण्यं परमध्यानतेजसा । [1]त्रिलोकाग्रं समारूढः प्राप्तो जीवनिजस्थितिम् ॥२०१॥
परस्परमनेकत्र भवेऽन्योन्यवधः कृतः । श्रीकान्तवसुदत्ताभ्यां महावैरानुबन्धतः ॥२०२॥
पूर्वं वेदवतीकाले सम्बन्धप्रीतिना परम् । रावणेन हृता सीता तया कर्मानुभावतः ॥२०३॥
श्रीभूतिर्वेदविद्विप्रः सम्यग्दृष्टिरनुत्तमः । हिंसितो वेदवत्यर्थे शम्भुना कामिना यतः ॥२०४॥
श्रीभूतिः स्वर्गमारुह्य प्रतिष्ठनगरे च्युतः । भूत्वा पुनर्वसुः शोकात्सनिदानतपोऽन्वितः ॥२०५॥
सनत्कुमारमारुह्य च्युत्वा दशरथात्मजः । भूत्वा रामानुजस्तीव्रस्नेहो लक्ष्मणचक्रभृत् ॥२०६॥
शम्भुपूर्वं ततः शत्रुमवधीत्पूर्ववैरतः । [2]दशाननमयं वीरः सुमित्राजो निकाचितात् ॥२०७॥
भ्रातुर्वियोगजं दुःखं यदाऽऽसीत्सह सीतया । निमित्तमात्रमासीत्तद्दशवक्त्रस्य संक्षये ॥२०८॥

पास जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥१९३॥ इस प्रकार उदार अभिप्राय और विशाल हृदयको धारण करनेवाले सुप्रभ मुनिने कई हजार वर्ष तक विधिपूर्वक कठिन तपश्चरण किया ॥१९४॥ वे सुप्रभ मुनि नानाऋद्धियोंसे सहित होनेपर भी गर्वको प्राप्त नहीं हुए थे तथा संयोगजन्य भावोंमें उन्होंने सब ममता छोड़ दी थी ॥१९५॥ तदनन्तर जिन्हें कषायकी उपशम अवस्थामें होनेवाला शुक्ल-ध्यानका प्रथम भेद प्रकट हुआ था ऐसे वे महामुनि सिद्ध अवस्थाको अवश्य प्राप्त होते परन्तु आयु अधिक नहीं थी इसलिए उसी उपशान्त दशामें मरणकर सर्वार्थसिद्धि गये ॥१९६॥ वहाँ तैंतीस सागर तक महासुख भोगकर वे वालिनामके प्रतापी विद्याधरोंके राजा हुए ॥१९७॥ जिन्होंने किष्किन्ध पर्वत पर विविध सामग्रीसे युक्त राज्य प्राप्त किया था, महागुणवान् सुग्रीव जिनका भाई है। लंकाधिपति रावणके साथ विरोध होने पर भी जो इस सुग्रीवके ऊपर राज्य-लक्ष्मी छोड़ जीवदयाके अर्थ दीक्षित हो गये थे, तथा गर्व वश रावणके द्वारा उठाये हुए कैलास को जिन्होंने साधु अवस्थामें अपनी सामर्थ्यसे केवल पैरका अंगूठा दबा कर छुड़वा दिया था। वही वालि मुनि उत्कृष्ट ध्यानके तेजसे संसार रूपी वनको भस्म कर तीन लोकके अग्रभाग पर आरूढ़ हो आत्माके निज स्वरूपमें स्थितिको प्राप्त हुए हैं ॥१९८–२०१॥

श्रीकान्त और वसुदत्तने महावैरके कारण अनेक भवोंमें परस्पर एक दूसरेका वध किया है ॥२०२॥ पहले वेदवतीकी पर्यायमें रावणका जीव सीताके साथ सम्बन्ध करना चाहता था उसी संस्कारसे उसने रावणकी पर्यायमें सीताका हरण किया ॥२०३॥ जब रावण शम्भु था तब उसने कामी होकर वेदवतीकी प्राप्तिके लिए वेदोंके जाननेवाले, उत्तम सम्यग्दृष्टि श्रीभूति ब्राह्मण की हत्या की थी ॥२०४॥ वह श्रीभूति स्वर्ग गया वहाँसे च्युत होकर प्रतिष्ठ नगरमें पुनर्वसु विद्याधर हुआ सो शोकवश निदान सहित तपकर सानत्कुमार स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो दशरथका पुत्र तथा रामका छोटा भाई परम स्नेही लक्ष्मण नामका चक्रधर हुआ ॥२०५–२०६॥ इस वीर लक्ष्मणने, नहीं छूटनेवाले पूर्व वैरके कारण ही शम्भुका जीव जो दशानन हुआ था उसे मारा है ॥२०७॥ यतश्च पूर्वभवमें सीताके जीवको रावणके जीवके द्वारा भाईके वियोगका दुःख उठाना पड़ा था इसलिए सीता रावणके क्षयमें निमित्त हुई है ॥२०८॥

१. त्रिलोकाग्रं म० । २. दशाननमयं म० ।

अकूपारं समुत्तीर्य धरणीचारिणा सता । हिंसितो हिंसकः पूर्वं लक्ष्मणेन दशाननः ॥२०९॥
राक्षसीश्रीक्षपाचन्द्रं तं निहत्य दशाननम् । सौमित्रिणा समाक्रान्ता पृथिवीयं ससागरा ॥२१०॥
क्वासौ तथाविधः शूरः क्व चेयं गतिरीदृशी । माहात्म्यं कर्मणामेतदसम्भाव्यमवाप्यते ॥२११॥
वध्यघातकयोरेवं जायते व्यत्ययः पुनः । संसारभावसक्तानां जन्तूनां स्थितिरीदृशी ॥२१२॥
क्व नाके परमा भोगाः क्व दुःखं नरके पुनः । विपरीतमहोऽत्यन्तं कर्मणां दुर्विचेष्टितम् ॥२१३॥
परमान्नमहाकूटं यादृशं विषदूषितम् । तपस्तादृशमेवोग्रनिदानकृतनन्दनम् ॥२१४॥
छूयं शार्क द्रुमं छित्वा कोद्रवाणां वृतिः कृता । अमृतद्रवसेकेन पोषितो विषपादपः ॥२१५॥
सूत्रार्थे चूर्णिता सेयं परमा रत्नसंहतिः । गोशीर्षं चन्दनं दग्धमङ्गारहितचेतसा ॥२१६॥
जीवलोकेऽबला नाम सर्वदोषमहाखनिः । किं नाम न कृते तस्याः क्रियते कर्म कुत्सितम् ॥२१७॥
प्रत्यावृत्य कृतं कर्म फलमर्पयति ध्रुवम् । तत्कर्तुमन्यथा केन शक्यते भुवनत्रये ॥२१८॥
कृत्वापि सङ्गति धर्मे यज्जन्तोर्दृशीं गतिम् । उच्यतामितरेषां किं तत्र निर्धर्मचेतसाम् ॥२१९॥
श्रामण्यसङ्गतस्यापि साध्यमत्सरसेविनः । कृत्वाऽप्युग्रतपो नास्ति शिवं संज्वलनस्पृशः ॥२२०॥
न शमो[1] न तपो यस्य मिथ्यादृष्टेर्न संयमः । संसारोत्तरणे तस्य क उपायो दुरात्मनः ॥२२१॥
ह्रियन्ते वायुना यत्र गजेन्द्रा मदशालिनः । पूर्वमेव हृतास्तत्र शशकाः स्थलवर्तिनः ॥२२२॥
एवं परमदुःखानां ज्ञात्वा कारणमीदृशम् । मा कार्ष्ट वैरसम्बन्धं जनाः स्वहितकाङ्क्षिणः ॥२२३॥

लक्ष्मणने भूमिगोचरी होनेपर भी समुद्रको पारकर पूर्व पर्यायमें अपना घात करनेवाले रावणको मारा है ॥२०९॥ राक्षसोंकी लक्ष्मीरूपी रात्रिको सुशोभित करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप रावणको मारकर लक्ष्मणने इस सागर सहित समस्त पृथिवीपर अपना अधिकार किया है ॥२१०॥ सकलभूषण केवली कहते हैं कि कहाँ तो वैसा शूर वीर और कहाँ ऐसी गति ? यह कर्मोंका ही माहात्म्य है कि असम्भव वस्तु भी प्राप्त हो जाती है ॥२११॥ इस प्रकार वध्य और घातक जीवोंमें पुनः-पुनः बदली होती रहती है अर्थात् पहली पर्यायमें जो वध्य होता है वह आगामी पर्यायमें उसका घातक होता है और पहली पर्यायमें जो घातक होता है वह आगामी पर्यायमें वध्य होता है। संसारी जीवोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२१२॥ कहाँ तो स्वर्गमें उत्तम भोग और कहाँ नरकमें तीव्र दुःख ? अहो ! कर्मोंकी बड़ी विपरीत चेष्टा है ॥२१३॥ जिस प्रकार परम स्वादिष्ट अन्नकी महाराशि विषसे दूषित हो जाती है, उसी प्रकार परम उत्कृष्ट तप भी निदानसे दूषित हो जाता है ॥२१४॥ निदान अर्थात् भोगाकांक्षाके लिए तपको दूषित करना ऐसा है जैसा कि कल्पवृक्ष काटकर कोदोंके खेतकी बाड़ी लगाना अथवा अमृत सींचकर विषवृक्षको बढ़ाना अथवा सूतके लिए उत्तम मणियोंकी मालाका चूर्ण करना अथवा अंगारके लिए गोशीर्ष चन्दनका जलाना ॥२१५-२१६॥ संसारमें स्त्री समस्त दोषोंकी महाखान है। ऐसा कौन निन्दित कार्य है जो उसके लिए नहीं किया जाता हो ? ॥२१७॥ किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है उसे भुवनत्रयमें अन्यथा करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२१८॥ जब धर्म धारण करनेवाले मनुष्य भी इस गतिको प्राप्त होते हैं तब धर्महीन मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥२१९॥ जो मुनिपद धारण करके भी साध्यपदार्थोंके विषयमें मत्सर भाव रखते हैं ऐसे संज्वलन कषायके धारक मुनियोंको उग्र तपश्चरण करने पर भी शिव अर्थात् मोक्ष अथवा वास्तविक कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥२२०॥ जिस मिथ्यादृष्टिके न शम अर्थात् शान्ति है, न तप है और न संयम है उस दुरात्मा के पास संसार-सागरसे उतरनेका उपाय क्या है ? ॥२२१॥ जहाँ वायुके द्वारा मदोन्मत्त हाथी हरण किये जाते हैं वहाँ स्थलमें रहनेवाले खरगोश तो पहले ही हरे जाते हैं ॥२२२॥ इस प्रकार

१. समो म० ।

भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी । सीतायाः पश्यत [1]प्राप्तो दुर्वादः शब्दमात्रतः ॥२२४॥
ग्रामो मण्डलिको नाम तमायातः सुदर्शनः । मुनिमुद्यानमायातं[2] वन्दित्वा तं गता जनाः ॥२२५॥
सुदर्शनां स्थितां तत्र स्वसारं सद्वचो ब्रुवन् । ईक्षितो वेदवत्याऽसौ सत्या[3] श्रमणया तया ॥२२६॥
ततो ग्रामीणलोकाय सम्यग्दर्शनतत्परा । जगाद पश्यतेदृक्षं[4] श्रमणं ब्रूथ सुन्दरम् ॥२२७॥
मया सुयोषिता साकं स्थितो रहसि वीक्षितः । ततः कैश्चित् प्रतीतं तन्न तु कैश्चिद्विचक्षणैः ॥२२८॥
अनादरो मुनेर्लोकैः कृतश्चावग्रहोऽमुना । वेदवत्या मुखं [5]शूनं देवताया नियोगतः ॥२२९॥
[6]अपुण्यया मयाऽलीकं चोदितं भवतामिति[7] । तया प्रत्यायितो लोक इत्यायत्र कथा स्मृता ॥२३०॥
एवं सद्भ्रातृयुगलं निन्दितं यत्तदानया । अवर्णवादमीदृक्षं प्राप्तेयं वितथं ततः ॥२३१॥
दृष्टः सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमताश्रिता । उच्यमानोऽपि चान्येन धार्यः सर्वप्रयत्नतः ॥२३२॥
ब्रुवाणो लोकविद्वेषकरणं शासनाश्रितम् । प्रतिपद्य चिरं दुःखं संसारमवगाहते ॥२३३॥
सम्यग्दर्शनरत्नस्य गुणोऽत्यन्तमयं महान् । यद्दोषस्य कृतस्यापि प्रयत्नादुपगूहनम् ॥२३४॥
अज्ञानान्मत्सराद्वापि दोषं वितथमेव तु । प्रकाशयञ्जनोऽत्यन्तं जिनमार्गाद्बहिः स्थितः ॥२३५॥
इति श्रुत्वा मुनीन्द्रस्य भाषितं परमाद्भुतम् । सुरासुरमनुष्यास्ते विस्मयं परमं गताः ॥२३६॥

परम दुःखोंका ऐसा कारण जानकर हे आत्महितके इच्छुक भव्य जनो ! किसीके साथ वैरका सम्बन्ध मत रक्खो ॥२२३॥

जिससे पापबन्ध हो ऐसा एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए । देखो, शब्द मात्रसे सीता को कैसा अपवाद प्राप्त हुआ ? ॥२२४॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि जब सीता वेदवतीकी पर्यायमें थी तब एक मण्डलिक नामका ग्राम था । उस ग्राममें एक सुदर्शन नामक मुनि आये । मुनिको उद्यानमें आया देख लोग उनकी वन्दनाके लिए गये । वन्दना कर जब सब लोग चले गये तब उनके पास एक सुदर्शना नामकी आर्यिका जो कि मुनिकी बहिन थी बैठी रही और मुनि उसे सद्वचन कहते रहे । वेदवतीने उस उत्तम साध्वी—आर्यिकाके साथ मुनिको देखा । तदनन्तर अपने आपको सम्यग्दृष्टि बतानेमें तत्पर वेदवतीने गाँवके लोगोंसे कहा कि हाँ, आप लोग ऐसे साधुके अवश्य दर्शन करो और उन्हें अच्छा बतलाओ । मैंने उन साधुको एकान्तमें एक सुन्दर स्त्रीके साथ बैठा देखा है । वेदवतीकी यह बात किन्हींने मानी और जो विवेकी थे ऐसे किन्हीं लोगोंने नहीं मानी ॥२२५–२२८॥ इस प्रकरणसे लोगोंने मुनिका अनादर किया । तथा मुनिने यह प्रतिज्ञा ली कि जब तक यह अपवाद दूर न होगा तबतक आहारके लिए नहीं निकलूँगा । इस अपवादसे वेदवतीका मुख फूल गया तब उसने नगरदेवताकी प्रेरणा पा मुनिसे कहा कि मुझ पापिनीने आपके विषयमें झूठ कहा है । इस तरह मुनिसे क्षमा कराकर उसने अन्य लोगोंको भी विश्वास दिलाया । इस प्रकार वेदवतीकी पर्यायमें सीताने उन बहिन-भाईके युगलकी झूठी निन्दा की थी इसलिए इस पर्यायमें यह इस प्रकारके मिथ्या अपवादको प्राप्त हुई है ॥२२९–२३१॥ यदि यथार्थ दोष भी देखा हो तो जिनमतके अवलम्बीको नहीं कहना चाहिए और कोई दूसरा कहता भी हो तो उसे सब प्रकारसे रोकना चाहिए ॥२३२॥ फिर लोकमें विद्वेष फैलानेवाले शासन सम्बन्धी दोषको जो कहता है वह दुःख पाकर चिरकाल तक संसारमें भटकता रहता है ॥२३३॥ किये हुए दोषको भी प्रयत्नपूर्वक छिपाना यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्नका बड़ा भारी गुण है ॥२३४॥ अज्ञान अथवा मत्सर भावसे भी जो किसीके मिथ्या दोष को प्रकाशित करता है वह मनुष्य जिनमार्गसे बिलकुल ही बाहर स्थित है ॥२३५॥ इस प्रकार सकलभूषण केवलीका अत्यधिक आश्चर्यसे भरा हुआ उपदेश सुनकर समस्त सुर असुर और

---

१. प्राप्ता म० । २. -मायान्तं म० । ३. श्रवणया म० । ४. -तेदृशं म० । ५. सूनं म० । ६. अपुण्यामा म० । ७. भगवानिति म० ।

ज्ञात्वा सुदुर्धरं वैरं सौमित्रेः रावणस्य च । महादुःखभयोपेतं निर्मत्सरमभूत्सदः ॥२३७॥
मुनयः शङ्किता जाता देवाश्चिन्तां [1]परां गताः । राजानः प्रापुरुद्वेगं प्रतिबुद्धाश्च केचन ॥२३८॥
विमुक्तगर्वसम्भाराः परिशान्ताः प्रवादिनः । अपि सम्यक्त्वमायाता आसन्ये कर्मकर्कशाः ॥२३९॥
कर्मदौरात्म्यसम्भारक्षणमात्रकमूर्छिता । समाश्वसत्सभा हा ही धिक् चित्रमिति वादिनी ॥२४०॥
कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । [3]मनुष्यासुरगीर्वाणाः प्रशशंसुर्विभीषणम् ॥२४१॥
भवत्समाश्रयाद्भद्र श्रुतमस्माभिरुत्तमम् । चरितं बोधनं पुण्यं मुनिपादप्रसादतः ॥२४२॥
ततो नरेन्द्रदेवेन्द्रमुनीन्द्राः सम्मदोत्कटाः । सर्वज्ञं तुष्टुवुः सर्वे परिवर्गसमन्विताः ॥२४३॥
त्रैलोक्यं भगवन्नेतत्त्वया सकलभूषण । भूषितं तेन नामेदं तव युक्तं सहार्थकम् ॥२४४॥
तिरस्कृत्य श्रियं सर्वां ज्ञानदर्शनवर्तिनी । केवलश्रीरियं भाति तव दूरीकृतोपमा ॥२४५॥
अनाथमध्रुवं दीनं जन्ममृत्युवशीकृतम् । क्लिश्यतेऽद्यो जगत्प्राप्तं स्वं पदं जैनमुत्तमम् ॥२४६॥

शार्दूलविक्रीडितम्

नानाव्याधिजरावियोगमरणप्रोद्भूतिदुःखं परं ।
प्राप्तानां मृगयुप्रवेजितमृगव्रातोपमावर्तिनाम् ।
कृच्छ्रोत्सर्जनदारुणाशुभमहाकर्मावरुद्धात्मना-
मस्माकं कृतकार्य यच्छ निकटं कर्मक्षयं केवलिन् ॥२४७॥

मनुष्य परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥२३६॥ लक्ष्मण और रावणके सुदृढ़ वैरको जानकर समस्त सभा महादुःख और भयसे सिहर उठी तथा निर्वैर हो गई। अर्थात् सभाके सब लोगोंने वैरभाव छोड़ दिया ॥२३७॥ मुनि संसारसे भयभीत हो गये, देवलोग परम चिन्ताको प्राप्त हुए, राजा उद्वेगको प्राप्त हुए और कितने ही लोग प्रतिबुद्ध हो गये ॥२३८॥ अपनी वक्तृत्व-शक्तिका अभिमान रखनेवाले कितने ही लोग अहंकारका भार छोड़ शान्त हो गये। जो कर्मोदयसे कठिन थे अर्थात् चारित्रमोहके तीव्रोदयसे जो चारित्र धारण करनेके लिए असमर्थ थे उन्होंने केवल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया ॥२३९॥ कर्मोंकी दुष्टताके भारसे जो क्षणभरके लिए मूर्च्छित हो गई थी ऐसी सभा 'हा हा, धिक् चित्रम्' आदि शब्द कहती हुई साँसें भरने लगी ॥२४०॥ मनुष्य, असुर और देव हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मुनिराजको प्रणामकर विभीषणकी प्रशंसा करने लगे कि हे भद्र! आपके आश्रयसे ही मुनिराजके चरणोंका प्रसाद प्राप्त हुआ है और उससे हमलोग इस उत्तम ज्ञानवर्धक पुण्य चरितको सुन सके हैं ॥२४१-२४२॥

तदनन्तर हर्षसे भरे एवं अपने-अपने परिकरसे सहित समस्त नरेन्द्र सुरेन्द्र और मुनीन्द्र सर्वज्ञदेवकी स्तुति करने लगे ॥२४३॥ कि हे सकलभूषण! भगवन्! आपके द्वारा ये तीनों लोक भूषित हुए हैं इसलिए आपका यह 'सकलभूषण' नाम सार्थक है ॥२४४॥ ज्ञान और दर्शनमें वर्तमान तथा उपमासे रहित आपकी यह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी संसारकी अन्य समस्त लक्ष्मियोंका तिरस्कार कर अत्यधिक सुशोभित हो रही है ॥२४५॥ अनाथ, अध्रुव, दीन तथा जन्म जरा मृत्युके वशीभूत हुआ यह संसार अनादि कालसे क्लेश उठा रहा है पर आज आपके प्रसादसे जिनप्रदर्शित उत्तम आत्मपदको प्राप्त हुआ है ॥२४६॥ हे केवलिन्! हे कृतकृत्य! जो नाना प्रकारके रोग, बुढ़ापा, वियोग तथा मरणसे उत्पन्न होनेवाले परम दुःखको प्राप्त हैं, जो शिकारीके द्वारा डराये हुए मृगसमूहकी उपमाको प्राप्त हैं तथा कठिनाईसे छूटनेयोग्य दारुण एवं अशुभ महाकर्मोंसे जिनकी आत्मा अवरुद्ध है—घिरी हुई हैं ऐसे हम लोगोंके लिए शीघ्र ही कर्मोंका क्षय

---

१. चिन्तान्तरं ज० । २. दूरात्म म० । दूरात्म्य ज० । ३. मनुष्यसुरगीर्वाणाः म० ।

नष्टानां विषयान्धकारगहने संसारवासे भव
त्वं दीपः शिवलब्धिकांक्षणमहातृष्णार्दितानां सरः ।
वह्निः कर्मसमूहकक्षदहने व्यग्रीभवच्चेतसां
नानादुःखमहातुषारपतनव्याकम्पितानां रविः ॥२४८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते श्रीपद्मचरिते सपरिवर्गरामदेवपूर्वभवाभिधानं नाम षडुत्तरशतं पर्व ॥१०६॥

प्रदान कीजिए ॥२४७॥ हे नाथ ! विषयरूपी अन्धकारसे व्याप्त संसार-वासमें भूले हुए प्राणियोंके आप दीपक हो, मोक्षप्राप्तिकी इच्छारूप तीव्र प्याससे पीड़ित मनुष्योंके लिए सरोवर हो, कर्म-समूहरूपी वनको जलानेके लिए अग्नि हो, तथा व्याकुलचित्त एवं नाना दुःखरूपी महातुषारके पड़नेसे कम्पित पुरुषोंके लिए सूर्य हो ॥२४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें परिवर्ग सहित रामदेवके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ छठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०६॥

सप्तोत्तरशतं पर्व

ततः श्रुत्वा महादुःखं भवसंसृतिसम्भवम् । कृतान्तवदनो[1]ऽवोचत्पद्मं दीक्षाभिकाङ्क्षया ॥१॥
मिथ्यापथपरिभ्रान्त्या संसारेऽस्मिन्ननादिके । खिन्नोऽहमधुनेच्छामि श्रामण्यं समुपासितुम् ॥२॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचदुत्सृज्य स्नेहमुत्तमम् । अत्यन्तदुर्धरां चर्यां कथं धारयसीदृशीं[2] ॥३॥
कथं सहिष्यसे तीव्रान् शीतोष्णादीन् परीषहान् । महाकण्टकतुल्यानि वाक्यानि च दुरात्मनाम् ॥४॥
अज्ञातक्लेशसम्पर्कः कमलकोडकोमलः । कथं भूमितलेऽरण्ये निशां[3] व्यालिनि नेष्यसि ॥५॥
प्रकटास्थिसिराजालः पक्षमासाद्युपोषितः । कथं परगृहे भिक्षां भोक्ष्यसे पाणिभाजने ॥६॥
नासहिष्ट द्विषां सैन्यं यो मातङ्गघटाकुलम् । नीचात्परिभवं स त्वं कथं वा विसहिष्यसे ॥७॥
कृतान्तास्यस्ततोऽवोचद् यस्त्वत्स्नेहरसायनम् । परित्यक्तुमहं सोढुस्तस्यान्यत्किमसह्यकम् ॥८॥
यावन्न मृत्युवज्रेण देहस्तम्भो निपात्यते । तावदिच्छामि निर्गन्तुं दुःखान्धाद्भवसङ्कटात् ॥९॥
धारयन्ति न निर्यातं वह्निज्वालाकुलालयात् । दयावन्तो यथा तद्वद्दुःखतप्ताद्भवादपि ॥१०॥
वियोगः सुचिरेणापि जायते यत्त्वद्विधैः । ततो निन्दितसंसारः को न वेत्त्यात्मनो हितम् ॥११॥
अवश्यं त्वद्वियोगेन दुःखं भावि सुदुःसहम् । मा भूत्पुनरपीदृक्षमिति मे मतिरुद्यता ॥१२॥

अथानन्तर भव-भ्रमणसे उत्पन्न महादुःखको सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने दीक्षा लेनेकी इच्छासे रामसे कहा कि मिथ्यामार्गमें भटक जानेके कारण मैं इस अनादि संसारमें खेद-खिन्न हो रहा हूँ अतः अब मुनिपद धारण करनेकी इच्छा करता हूँ ॥१-२॥ तब रामने कहा कि उत्तम स्नेह छोड़कर इस अत्यन्त दुर्धरचर्याको किस प्रकार धारण करोगे ? ॥३॥ शीत उष्ण आदिके तीव्र परीषह तथा महाकण्टकोंके समान दुर्जन मनुष्योंके वचन किस प्रकार सहोगे ? ॥४॥ जिसने कभी क्लेशका सम्पर्क जाना नहीं तथा जो कमलके मध्यभागके समान कोमल है ऐसे तुम हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए वनमें पृथिवी तलपर रात्रि किस तरह बिताओगे ? ॥५॥ जिसकी हड्डियों तथा नसोंका जाल स्पष्ट दिख रहा है तथा जिसने एक पक्ष, एक मास आदिका उपवास किया है ऐसे तुम परगृहमें हस्तरूपी पात्रमें भिक्षा-भोजन कैसे ग्रहण करोगे ? ॥६॥ जिसने हाथियोंके समूहसे व्याप्त शत्रुओंकी सेना कभी सहन नहीं की है ऐसे तुम नीचजनोंसे प्राप्त पराभवको किस प्रकार सहन करोगे ? ॥७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रने कहा कि जो आपके स्नेहरूपी रसायनको छोड़नेके लिए समर्थ है उसके लिए अन्य क्या असह्य है ? ॥८॥ जब तक मृत्युरूपी वज्रके द्वारा शरीर रूपी स्तम्भ नहीं गिरा दिया जाता है तब तक मैं दुःखसे अन्धे इस संसाररूपी संकटसे बाहर निकल जाना चाहता हूँ ॥९॥ अग्निकी ज्वालाओंसे प्रज्वलित घरसे निकलते हुए मनुष्योंको जिस प्रकार दयालु मनुष्य रोककर उसी घरमें नहीं रखते हैं उसी प्रकार दुःखसे संतप्त संसारसे निकले हुए प्राणीको दयालु मनुष्य उसी संसारमें नहीं रखते हैं ॥१०॥ जब कि अभी नहीं तो बहुत समय बाद भी आप जैसे महान् पुरुषोंके साथ वियोग होगा ही तब संसारको बुरा समझनेवाला कौन पुरुष आत्माके हित को नहीं समझेगा ? ॥११॥ यह ठीक है कि आपके वियोगसे होनेवाला दुःख अवश्य ही अत्यन्त असह्य है फिर भी ऐसा दुःख पुनः प्राप्त न हो इसीलिए मेरी यह बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥१२॥

---

१. कृतान्तवक्त्रः सेनापतिः । २. सीदृशम् म० । ३. दुष्टसत्त्वयुक्ते ।

नियम्याश्रूणि कृच्छ्रेण व्याकुलो राघवोऽवदत् । मत्तुल्यां श्रियमुज्झित्वा धन्यस्त्वं सद्व्रतोन्मुखः ॥१३॥
एतेन जन्मना नो चेत्त्वं निर्वाणमपेष्यसि । ततो बोध्योऽस्मि देवेन त्वया सङ्कटमागतः ॥१४॥
यद्येकमपि किञ्चिन्मे जानास्युपकृतं ततः । नेदं विस्मरणीयं ते भद्रैवं कुरु सङ्गरम् ॥१५॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य च यथाविधि । उपसृत्योरुसंवेगः सेनानीः सर्वभूषणम् ॥१६॥
प्रणम्य सकलं त्यक्त्वा बाह्यान्तरपरिग्रहम् । सौम्यवक्त्रः सुविक्रान्तो निष्क्रान्तः कान्तचेष्टितः ॥१७॥
एवमाद्या महाराजा वैराग्यं परमं गताः । महासंवेगसम्पन्ना नैर्ग्रन्थ्यं व्रतमाश्रिताः ॥१८॥
केचिच्छ्रावकतां प्राप्ताः सम्यग्दर्शनतां परे । मुदित्वैवं सभा साऽभाद्रत्नत्रयविभूषणा ॥१९॥
प्रयाति नगतो[1] नाथे ततः सकलभूषणे । प्रणम्य भक्तितो याता यथायातं सुरासुराः ॥२०॥
पद्मोपमेक्षणः पद्मो नत्वा सकलभूषणम् । अनुक्रमेण साधूंश्च मुक्तिसाधनतत्परान् ॥२१॥
उपागमद्विनीतात्मा सीतां विमलतेजसम्[2] । घृताहुत्या समुद्भूतां स्फीतां वह्निशिखामिव ॥२२॥
शान्त्याऽऽर्यागणमध्यस्थां स्फुरत्स्वकिरणोत्कराम् । सुभ्रूयुगां ध्रुवामन्यामिव [3]तारां गणावृताम् ॥२३॥
सद्वृत्तात्यन्तनिभृतां त्यक्तस्रग्गन्धभूषणाम् । धृतिकीर्तिरतिश्रीह्रीपरिवारां तथापि ताम् ॥२४॥
मृदुधारसितश्लक्ष्णप्रलम्बाम्बरधारिणीम् । मन्दानिलचलत्फेनपटां पुण्यनदीमिव ॥२५॥
[4]विकासिकाशसङ्घातविशदां शरदं यथा । कौमुद्वतीमिव ज्योत्स्नां कुमुदाकरहासिनीम् ॥२६॥

तदनन्तर व्यग्र हुए रामने बड़ी कठिनाईसे आँसू रोककर कहा कि मेरे समान लक्ष्मीको छोड़कर जो तुम उत्तम व्रत धारण करनेके लिए उन्मुख हुए हो अतः तुम धन्य हो ॥१३॥ इस जन्मसे यदि तुम निर्वाणको प्राप्त न हो सको और देव होओ तो संकटमें पड़ा हुआ मैं तुम्हारे द्वारा सम्बोधने योग्य हूँ ॥१४॥ हे भद्र ! यदि मेरे द्वारा किया हुआ एक भी उपकार तुम मानते हो तो यह बात भूलना नहीं। ऐसी प्रतिज्ञा करो ॥१५॥ 'जैसी आप आज्ञा कर रहे हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कहकर तथा विधिपूर्वक प्रणामकर उत्कट वैराग्यसे भरा सेनापति सर्वभूषण केवलीके पास गया और प्रणाम कर तथा बाह्याभ्यन्तर सर्व प्रकारका परिग्रह छोड़ सौम्यवक्त्र हो गया। अब वह आत्महितके विषयमें तीव्र पराक्रमी हो गया, गृह जंजालसे निकल चुका तथा सुन्दर चेष्टाका धारक हो गया ॥१६-१७॥ इस प्रकार परम वैराग्यको प्राप्त एवं महासंवेगसे सम्पन्न कितने ही महाराजाओंने निर्ग्रन्थ व्रत धारण किया—जिन-दीक्षा ली ॥१८॥ कितने ही लोग श्रावक हुए और कितने ही लोग सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए। इस प्रकार हर्षित हो रत्नत्रयरूपी आभूषणोंसे विभूषित वह सभा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥१९॥

अथानन्तर जब सकलभूषण स्वामी उस पर्वतसे विहार कर गये तब भक्तिपूर्वक प्रणाम कर सुर और असुर यथास्थान चले गये ॥२०॥ कमललोचन राम सकलभूषण केवली तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमें तत्पर साधुओंको यथाक्रमसे प्रणामकर विनीत भावसे उस सीताके पास गये जो कि निर्मल तेजको धारण कर रही थी तथा घीकी आहुतिसे उत्पन्न अग्निकी शिखाके समान देदीप्यमान थी ॥२१-२२॥ वह शान्तिपूर्वक आर्यिकाओंके समूहके मध्यमें स्थित थी, उसकी स्वयंकी किरणोंका समूह देदीप्यमान हो रहा था, वह उत्तम शान्त भौंहोंसे युक्त थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो समूहसे आवृत दूसरी ही ध्रुवतारा हो ॥२३॥ जो सम्यक्चारित्रके धारण करनेमें अत्यन्त दृढ़ थी, जिसने माला, गन्ध तथा आभूषण छोड़ दिये थे, फिर भी जो धृति, कीर्ति, रति, श्री और लज्जारूप परिवारसे युक्त थी। जो कोमल सफेद चिकने एवं लम्बे वस्त्रको धारण कर रही थी, अतएव मन्द-मन्द वायुसे जिसके फेनका समूह मिल रहा था ऐसी पुण्यकी नदीके समान जान पड़ती थी अथवा खिले हुए काशके फूलोंके समूहसे विशद शरद् ऋतुके

---

१. नामतो म० । २. विमलतेजसाम् म० । ३. तारागणावृताम् म० । ४. विकाशिकाशसंकाशां म० ।

महाविरागतः साक्षादिव प्रव्रजितां श्रियम् । वपुष्मतीमिव प्राप्तां जिनशासनदेवताम् ॥२७॥
एवंविधां समालोक्य सम्भ्रमभ्रष्टमानसः । कल्पद्रुम इवाकम्पो बलदेवः क्षणं स्थितः ॥२८॥
प्रकृतिस्थिरनेत्रभ्रूप्राप्तावेतां विचिन्तयन् । शरत्पयोदमालानां समीप इव पर्वतः ॥२९॥
इयं सा मद्भुजारम्भरतिप्रवरसारिका । विलोचनकुमुद्वत्याश्चन्द्रलेखा स्वभावतः ॥३०॥
मद्युक्ताऽप्यगमत्त्रासं या पयोदरवादपि । अरण्ये सा कथं भीमे न भेष्यति तपस्विनी ॥३१॥
नितम्बगुरुतायोगाल्लिलालसगामिनी । तपसा विलयं नूनं प्रयास्यति सुकोमला ॥३२॥
क्वेदं वपुः क्व जैनेन्द्रं तपः परमदुष्करम् । पद्मिन्यां क इवाऽऽयासो हिमस्य तरुदाहिनः ॥३३॥
अन्नं यथेप्सितं भुक्तं यया [1]परममनोहरम् । यथालाभं कथं भिक्षां सैषा समधियास्यति ॥३४॥
वीणावेणुमृदङ्गैर्या कृतमङ्गलनिःस्वनाम् । निद्राऽसेवत सत्तल्पे [2]कल्पकल्पालयस्थिताम् ॥३५॥
दर्भशल्याचिते सेयं वने मृगरवाकुले । कथं भयानकीं भीरुः प्रेरयिष्यति शर्वरीम् ॥३६॥
किं मयोपचितं पश्य मोहसङ्गतचेतसा । पृथग्जनपरीवादाद्धारिता प्राणवल्लभा ॥३७॥
अनुकूला प्रिया साध्वी सर्वविष्टपसुन्दरी । प्रियंवदा सुखक्षोणी कुतोऽन्या प्रमदेदृशी ॥३८॥
एवं चिन्ताभराक्रान्तचित्तः परमदुःखितः । वेपितात्माऽभवत्पद्मश्चलत्पद्माकरोपमः ॥३९॥
ततः केवलिनो वाक्यं संस्मृत्य विधृतास्रकः । कृच्छ्रसंस्तम्भितौत्सुक्यो बभूव विगतज्वरः ॥४०॥

समान मालूम होती थी अथवा कुमुदोंके समूहको विकसित करनेवाली कार्तिकी पूर्णिमाकी चाँदनीके समान विदित होती थी, अथवा जो महाविरागसे ऐसी जान पड़ती थी मानो दीक्षाको प्राप्त हुई साक्षात् लक्ष्मी ही हो, अथवा शरीरको धारण करनेवाली साक्षात् जिनशासनकी देवी ही हो ॥२४-२७॥ ऐसी उस सीताको देख संभ्रमसे जिनका हृदय टूट गया था ऐसे राम क्षण भर कल्पवृक्षके समान निश्चल खड़े रहे ॥२८॥ स्वभावसे निश्चल नेत्र और भृकुटियोंकी प्राप्ति होने पर इस साध्वी सीताका ध्यान करते हुए राम ऐसे जान पड़ते थे मानो शरद् ऋतुकी मेघमालाके समीप कोई पर्वत ही खड़ा हो ॥२९॥ सीताको देख-देखकर राम विचार कर रहे थे कि यह मेरी भुजाओं रूपी पिंजरेके भीतर विद्यमान उत्तम सेना है अथवा मेरे नेत्ररूपी कुमुदिनीके लिए स्वभावतः चन्द्रमाकी कला है ॥३०॥ जो मेरे साथ रहनेपर भी मेघके शब्दसे भी भयको प्राप्त हो जाती थी वह बेचारी तपस्विनी भयंकर वनमें किस प्रकार भयभीत नहीं होगी ? ॥३१॥ विलम्बकी गुरुताके कारण जो सुन्दर एवं अलसाई हुई चाल चलती थी वह सुकोमल सीता तप के द्वारा निश्चित ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥३२॥ कहाँ यह शरीर और कहाँ जिनेन्द्रका कठोर तप ? जो हिम वृक्षको जला देता है उसे कमलिनीके जलानेमें क्या परिश्रम है ? ॥३३॥ जिसने पहले इच्छानुसार परम मनोहर अन्न खाया है, वह अब जिस किसी तरह प्राप्त हुई भिक्षाको कैसे ग्रहण करेगा ? ॥३४॥ वीणा, बाँसुरी तथा मृदङ्गके माङ्गलिक शब्दोंसे युक्त तथा स्वर्गलोकके सदृश उत्तम भवनमें स्थित जिस सीताकी निद्रा, उत्तम शय्यापर सेवा करती थी वही कातर सीता अब डाभकी अनियोंसे व्याप्त एवं मृगोंके शब्दसे व्याप्त वनमें भयानक रात्रिको किस तरह बितावेगी ? ॥३५-३६॥ देखो, चित्त मोहसे युक्त है ऐसे मैंने क्या किया ? न कुछ साधारण मनुष्योंकी निन्दा से प्रेरित हो प्राणवल्लभा छोड़ दी ॥३७॥ जो अनुकूल है, प्रिय है, पतिव्रता है, सर्व संसारकी अद्वितीय सुन्दरी है, प्रिय वचन बोलनेवाली है, और सुखकी भूमि है ऐसी दूसरी स्त्री कहाँ है ? ॥३८॥ इस तरह चिन्ताके भारसे जिनका चित्त व्याप्त था, जो अत्यन्त दुखी थे, तथा जिनकी आत्मा काँप रही थी ऐसे राम चञ्चल कमलाकरके समान हो गये ॥३९॥ तदनन्तर केवलीके वचनोंका स्मरण कर जिन्होंने उमड़ते हुए आँसू रोके थे तथा जो बड़ी कठिनाईसे अपनी उत्सुकता

---

१. परं मनोहरं म० । २. स्वर्गतुल्यभवनस्थिताम् ।

अथ स्वाभाविकीं दृष्टिं बिभ्राणः सहसम्भ्रमः । अधिगम्य सतीं सीतां भक्तिस्नेहान्वितोऽनमत् ॥४१॥
नारायणोऽपि सौम्यात्मा प्रणम्य रचिताञ्जलिः । अभ्यनन्दयदार्यां तां पद्मनाभमनुव्रुवन् ॥४२॥
धन्या भगवति त्वं नो वन्द्या जाता सुचेष्टिता । शीलाचलेश्वरं या त्वं क्षितिवद्वहसेऽधुना ॥४३॥
जिनवागमृतं लब्धं परमं प्रथमं त्वया । [1]निरुक्तं येन संसारसमुद्रं प्रतरिष्यसि ॥४४॥
अपरासामपि स्त्रीणां सतीनां चारुचेतसाम् । इयमेव गतिर्भूयाल्लोकद्वितयशंसिता ॥४५॥
आत्मा कुलद्वयं लोकस्त्वया सर्वं प्रसाधितम् । एवंविधं क्रियायोगं भजन्त्या साधुचित्तया ॥४६॥
क्षन्तव्यं यत्कृतं किञ्चित्सुनये साध्वसाधु वा । संसारभावसक्तानां स्खलितं च पदे पदे ॥४७॥
त्वयैवंविधया शान्ते जिनशासनसक्तया । परमानन्दितं चित्तं विषाद्यपि मनस्विनि ॥४८॥
अभिनन्द्येति वैदेहीं [2]प्रहृष्टमनसाविव । प्रयातौ नगरीं कृत्वा पुरस्ताल्लवणाङ्कुशौ ॥४९॥
विद्याधरमहीपालाः प्रमोदं परमं गताः । विस्मयाकम्पिता भूत्या परया ययुरग्रतः ॥५०॥
मध्ये राजसहस्राणां वर्तमानौ मनोहरौ । पुरं विविशतुर्वीराविन्द्राविव सुरावृतौ ॥५१॥
देव्यस्तदग्रतो नानायानारूढा विचेतसः । प्रययुः परिवारेण यथाविधि समाश्रिता ॥५२॥
प्रविशन्तं [3]बलं वीक्ष्य नार्यः प्रासादमूर्द्धगाः । विचित्ररससम्पन्नमभाषन्त परस्परम् ॥५३॥
अयं श्रीबलदेवोऽसौ मानी शुद्धिपरायणः । अनुकूला प्रिया येन हारिता सुविपश्चिता ॥५४॥
जगौ काचित्प्रवीराणां विशुद्धकुलजन्मनाम् । नराणां स्थितिरेषैव कृतमेतेन सुन्दरम् ॥५५॥

को रोक सके थे ऐसे श्रीराम किसी तरह पीड़ा रहित हुए ॥४०॥ अथानन्तर स्वाभाविक दृष्टिको धारण करते हुए रामने सम्भ्रमके साथ सती सीताके पास जाकर भक्ति और स्नेहके साथ उसे नमस्कार किया ॥४१॥ रामके साथ ही साथ सौम्यहृदय लक्ष्मणने भी हाथ जोड़ प्रणामकर आर्या सीताका अभिनन्दन किया ॥४२॥ और कहा कि हे भगवति ! तुम धन्य हो, उत्तम चेष्टा की धारक हो और यतश्च इस समय पृथिवीके समान शीलरूपी सुमेरुको धारण कर रही हो अतः हम सबकी वन्दनीय हो ॥४३॥ जिसके द्वारा तुम संसार-समुद्रको चुपचाप पार करोगी वह श्रेष्ठ जिनवचन रूपी अमृत सर्व प्रथम तुमने ही प्राप्त किया है ॥ ४४॥ हम चाहते हैं कि सुन्दर चित्तकी धारक अन्य पतिव्रता स्त्रियोंकी भी दोनों लोकोंमें प्रशंसनीय यही गति हो ॥४५॥ इस प्रकारके क्रियायोगको प्राप्त करनेवाली एवं उत्तम चित्तकी धारक तुमने अपनी आत्मा दोनों कुल तथा लोक सब कुछ वशमें किया है ॥४६॥ हे सुनये ! हमने जो कुछ साधु अथवा असाधु-अच्छा या बुरा कर्म किया है वह क्षमा करने योग्य है क्योंकि संसार दशामें आसक्त मनुष्योंसे भूल पद-पदपर होती है ॥४७॥ हे शान्ते ! हे मनस्विनि ! इस तरह जिन-शासनमें आसक्त रहनेवाली तुमने मेरे विषाद युक्त चित्तको भी अत्यन्त आनन्दित कर दिया है ॥४८॥ इस प्रकार सीताकी प्रशंसा कर प्रसन्न चित्तकी तरह राम तथा लक्ष्मण, लवण और अंकुशको आगे कर नगरीकी ओर चले ॥४९॥ परम हर्षको प्राप्त हुए विद्याधर राजा विस्मयाकम्पित होते हुए बड़े वैभवसे आगे-आगे जा रहे थे ॥५०॥ हजारों राजाओंके मध्यमें वर्तमान दोनों मनोहर वीरोंने, देवोंसे घिरे हुए इन्द्रोंके समान नगरमें प्रवेश किया ॥५१॥ उनके आगे नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़, बेचैन एवं अपने-अपने परिकरसे विधिपूर्वक सेवित रानियाँ जा रही थीं ॥५२॥ रामको प्रवेश करते देख महलके शिखरों पर आरूढ़ स्त्रियाँ, विचित्र रससे युक्त परस्पर वार्तालाप कर रही थीं ॥५३॥ कोई कह रही थी कि ये राम बड़े मानी तथा शुद्धिमें तत्पर हैं कि जिन्होंने विद्वान् होकर भी अपनी अनुकूल प्रिया हरा दी है—छोड़ दी है ॥५४॥ कोई कह रही थी कि विशुद्ध कुलमें जन्म लेनेवाले वीर मनुष्यों

---

१. निसर्कं -म० । २. प्रकृष्टमनसाविव म० । ३. रामम् ।

एवं सति विशुद्धात्मा प्रव्रज्यां समुपागता । कस्य नो जानकी जाता मनसः सौख्यकारिणी ॥५६॥
अन्योचे सखि पश्येमं वैदेह्या पद्मसुज्झितम् । ज्योत्स्नया शशिनं मुक्तं दीप्त्या विरहितं रविम् ॥५७॥
अन्योचे किं परायत्तकान्तिरस्य करिष्यति । स्वयमेवातिकान्तस्य बलदेवस्य धीमतः ॥५८॥
काचिदूचे त्वया सीते किं कृतं पुरुषोत्तमम् । ईदृशं नाथमुज्झित्वा वज्रदारुणचित्तया ॥५९॥
जगावन्या परं सीता धन्या चित्तवती सती । यथार्था या गृहानर्थान्निःसृता स्वहितोद्यता ॥६०॥
काचिदूचे कथं धीरौ त्वयेमौ सुकुमारकौ । रहितौ मानसानन्दौ सुभक्तौ सुकुमारकौ ॥६१॥
कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्तं भर्तरि योषिताम् । स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ॥६२॥
अन्योचे परमावेतौ पुरुषौ पुण्यपोषणौ । किमत्र कुरुते माता स्वकर्मनिरते जने ॥६३॥
एवमादिकृतालापाः पद्मवीक्षणतत्पराः । न तृप्तियोगमासेदुर्मधुकर्य इव स्त्रियः ॥६४॥
केचिल्लक्ष्मणमैक्षन्त जगदुश्च नरोत्तमाः । सोऽयं नारायणः श्रीमान्प्रभावाक्रान्तविष्टपः ॥६५॥
चक्रपाणिरयं राजा लक्ष्मीपतिरनुत्तमः । साक्षादरातिदाराणां वैधव्यव्रतविग्रहः ॥६६॥

आर्याजातिः

एवं प्रशस्यमानौ नमस्यमानौ च पौरलोकसमूहैः ।
स्वभवनमनुप्रविष्टौ स्वयंप्रभं वरविमानमिव देवेन्द्रौ ॥६७॥

की यही रीति है। इन्होंने जो किया है वह ठीक किया है ॥५५॥ इस प्रकारकी घटनासे निष्कलङ्क हो दीक्षा धारण करनेवाली जानकी किसके मनके लिए सुख उत्पन्न करनेवाली नहीं है ? ॥५६॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! सीतासे रहित इन रामको देखो । ये चाँदनीसे रहित चन्द्रमा और दीप्तिसे रहित सूर्यके समान जान पड़ते हैं ॥५७॥ कोई कह रही थी कि बुद्धिमान् राम स्वयं ही अत्यन्त सुन्दर हैं, दूसरेके आधीन होनेवाली कान्ति इनका क्या करेगी ? ॥५८॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! ऐसे पुरुषोत्तम पतिको छोड़कर तूने क्या किया ? यथार्थमें तू वज्रके समान कठोर चित्तवाली है ॥५९॥ कोई कह रही थी कि सीता परमधन्य, विवेकवती, पतिव्रता एवं यथार्थ स्त्री है जो कि आत्महितमें तत्पर हो घरके अनर्थसे निकल गई—दूर हो गई ॥६०॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! तेरे द्वारा ये दोनों सुकुमार, मनको आनन्द देनेवाले तथा अत्यन्त भक्त पुत्र कैसे छोड़े गये ? ॥६१॥ कदाचित् भर्तापर स्थित स्त्रियोंका प्रेम विचलित हो जाता है परन्तु अपने दूधसे पुष्ट किये हुए पुत्रोंपर कभी विचलित नहीं होता ॥६२॥ कोई कह रही थी कि दोनों कुमार पुण्यसे पोषण प्राप्त करनेवाले परमोत्तम पुरुष हैं। यहाँ माता क्या करती है ? जब कि सब लोग अपने-अपने कर्ममें निरत हैं अर्थात् कर्मानुसार फल प्राप्त करते हैं ॥६३॥ इस प्रकार वार्तालाप करनेवाली तथा पद्म अर्थात् राम (पक्षमें कमल) के देखनेमें तत्पर स्त्रियाँ भ्रमरियोंके समान तृप्तिको प्राप्त नहीं हुईं ॥६४॥ कितने ही उत्तम मनुष्य लक्ष्मणको देखकर कह रहे थे कि यह वह नारायण है कि जो अद्भुत लक्ष्मीसे सहित है, अपने प्रभावसे जिसने संसारको आक्रान्त कर रक्खा है, जो हाथमें चक्ररत्नको धारण करनेवाला है, देदीप्यमान है, लक्ष्मीपति है, सर्वोत्तम है और शत्रु स्त्रियोंका मानो साक्षात् शरीरधारी वैधव्य व्रत ही है ॥६५-६६॥ इस प्रकार नगरवासी लोगोंके समूह प्रशंसा कर जिन्हें नमस्कार कर रहे थे ऐसे राम और लक्ष्मण अपने भवनमें उस तरह प्रविष्ट हुए जिस तरह कि दो इन्द्र स्वयं विमानमें प्रविष्ट होते हैं ॥६७॥

अनुष्टुप्

[1]एतत् पद्मस्य चरितं यो निबोधति संततम् ।
अपापो लभते लक्ष्मीं स भाति च परं रवेः ॥६८॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते प्रव्रजितसीताभिधानं नाम सप्तोत्तरशतं पर्व ॥१०७॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य रामके इस चरितको निरन्तर जानता है—अच्छी तरह इसका अध्ययन करता है वह निष्पाप हो लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा सूर्यसे भी अधिक शोभायमान होता है ॥६८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित श्री पद्मपुराणमें सीताकी दीक्षा का वर्णन करनेवाला एक सौ सातवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०७॥

---

१. एवं म० ।

अष्टोत्तरशतं पर्व

पद्मस्य चरितं राजा श्रुत्वा दुरितदारणम् । निर्मुक्तसंशयात्मानं व्यशोचदिति चेतसा ॥१॥
निरस्तः सीतया दूरं स्नेहबन्धः स तादृशः । सहिष्यते महाचर्यां सुकुमारा कथं नु सा ॥२॥
पश्य धात्रा[1] मृगाक्षौ तौ मात्रा विरहमाहृतौ । सर्वर्द्धिद्युतिसम्पन्नौ कुमारौ लवणाङ्कुशौ ॥३॥
तातावशेषतां प्राप्तौ कथं मातृवियोगजम् । दुःखं तौ विसहिष्येते निरन्तरसुखैधितौ ॥४॥
महौजसामुदाराणां विषमं जायते तदा । तत्र शेषेषु काऽवस्था ध्यात्वेत्यूचे गणाधिपम् ॥५॥
सर्वज्ञेन ततो दृष्टं जगत्प्रत्ययमागतम् । इन्द्रभूतिर्जगौ तस्मै चरितं लवणाङ्कुशम् ॥६॥
अभूच्च पुरि काकन्द्यामधिपो रतिवर्द्धनः । पत्नी सुदर्शना तस्य पुत्रौ प्रियहितङ्करौ ॥७॥
अमात्यः सर्वगुप्ताख्यो राज्यलक्ष्मीधुरन्धरः । श्रेयः प्रभोः प्रतिस्पर्द्धी वधोपायपरायणः ॥८॥
अमात्यवनिता रक्ता राजानं विजयावली । शनैरबोधयद्गत्वा पत्या कार्यं समीहितम् ॥९॥
बहिरप्रत्ययं राजा श्रितः प्रत्ययमान्तरम् । अभिज्ञानं ततोऽवोचद्देतस्मै विजयावली ॥१०॥
कलहं सदसि श्वोऽसौ समुत्कोपयिता तव । परस्त्रीविरतो राजा बुद्ध्यैव पुनरग्रहीत् ॥११॥
अब्रवीच्च कथं मेऽसौ परं भक्तोऽपभाषते । विजयावलि सम्भाव्यं कदाचिदपि नेदृशम् ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिक रामका पापापहारी चरित सुनकर अपने आपको संशययुक्त मानता हुआ मनमें इस प्रकार विचार करने लगा कि यद्यपि सीताने दूरतक बढ़ा हुआ उस प्रकारका स्नेहबन्धन तोड़ दिया है फिर भी सुकुमार शरीरकी धारक सीता महाचर्याको किस प्रकार कर सकेगी ? ॥१-२॥ देखो, विधाताने मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले, सर्व-ऋद्धि और कान्तिसे सम्पन्न दोनों लवणांकुश कुमारोंको माताका विरह प्राप्त करा दिया। अब पिता ही उनके शेष रह गये सो निरन्तर सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों कुमार माताके वियोग-जन्य-दुखको किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥३-४॥ जब महाप्रतापी बड़े-बड़े पुरुषोंकी भी ऐसी विषम दशा होती है तब अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या है ? ऐसा विचार कर श्रेणिक राजाने गौतम गणधरसे कहा कि सर्वज्ञदेवने जगत्का जो स्वरूप देखा है उसका मुझे प्रत्यय है— श्रद्धान है। तदनन्तर इन्द्रभूति गणधर, श्रेणिकके लिए लवणांकुशका चरित कहने लगे ॥५-६॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! काकन्दी नगरीमें राजा रतिवर्धन रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुदर्शना था और उन दोनोंके प्रियङ्कर नामक दो पुत्र थे ॥७॥ राजाका एक सर्वगुप्त नामका मन्त्री था जो यद्यपि राज्यलक्ष्मीका भार धारण करनेवाला था तथापि वह राजाके साथ भीतर ही भीतर स्पर्धा रखता था और उसके मारनेके उपाय जुटानेमें तत्पर रहता था ॥८॥ मन्त्रीकी स्त्री विजयावली राजामें अनुरक्त थी इसलिए उसने धीरेसे जाकर राजाको मन्त्रीकी सब चेष्टा बतला दी ॥९॥ राजाने बाह्यमें तो विजयावलीकी बातका विश्वास नहीं किया किन्तु अन्तरङ्गमें उसका विश्वास कर लिया। तदनन्तर विजयावलीने राजाके लिए उसका चिह्न भी बतलाया ॥१०॥ उसने कहा कि मन्त्री कल सभामें आपकी कलहको बढ़ावेगा अर्थात् आपके प्रति बक-झक करेगा। परस्त्री विरत राजाने इस बातको बुद्धिसे ही पुनः ग्रहण किया अर्थात् अन्तरङ्गमें तो इसका विश्वास किया बाह्यमें नहीं ॥११॥ बाह्यमें राजाने कहा कि हे विजयावलि ! वह तो मेरा

---

१. दैवेन ।

ततोऽन्यत्र दिने चिह्नं भावं ज्ञात्वा महीपतिः । क्षमानिवारणेनैव प्रैरयद्दुरितागमम् ॥१३॥
राजा क्रोशति मामेव इत्युक्त्वा प्रतिपत्तितः । सामन्तानभिनत्सर्वानमात्यः पापमानसः ॥१४॥
राजवासगृहं रात्रौ ततोऽमात्यो महेन्धनैः । अदीपयन्महीशस्तु प्रमादरहितः सदा ॥१५॥
प्राकारपुटगुप्तेन प्रदेशेन सुरङ्गया । भार्यां पुत्रौ पुरस्कृत्य निःससार शनैः सुधीः ॥१६॥
यातश्च कशिपुं तेन काशीपुर्यां महीपतिम् । न्यायशीलं स्वसामन्तमुग्रवंशधुरन्धरम् ॥१७॥
राज्यस्थः सर्वगुप्तोऽथ दूतं सम्प्राहिणोद्यथा । कशिपो मां नमस्येति ततोऽसौ प्रत्यभाषत ॥१८॥
[1]स्वामिघातकृतो हन्ता दुःखदुर्गतिभाक् खलः । एवंविधो न नाम्नाऽपि कीर्त्यते सेव्यते कथम् ॥१९॥
सयोषित्तनयो दग्धो येनेशो रतिवर्द्धनः । स्वामिस्त्रीबालघातं तं न स्मर्तुमपि वर्तते ॥२०॥
पापस्यास्य शिरश्छित्त्वा सर्वलोकस्य पश्यतः । नन्वद्यैव करिष्यामि रतिवर्द्धननिष्क्रयम् ॥२१॥
एवं तं दूतमत्यस्य दूरं वाक्यमपास्य सः । अमूढो दुर्मतं यद्वत्स्थितः कर्तव्यवस्तुनि ॥२२॥
स्वामिभक्तिपरस्यास्य कशिपोर्बलशालिनः । अभूद्दृष्टिः प्रयान्तव्यममात्यं प्रति सर्वदा ॥२३॥
सर्वगुप्तो महासैन्यसमेतः सह पार्थिवैः । दूतप्रचोदितः प्राप चक्रवर्तीव मानवान् ॥२४॥
काशिदेशं तु विस्तीर्णं प्रविष्टः सागरोपमः । सन्धानं कशिपुर्नैच्छद्योद्धव्यमिति निश्चितः ॥२५॥
रतिवर्द्धनराजेन प्रेषितः कशिपुं प्रति । दण्डपाणिर्युवा प्राज्ञः प्रविष्टश्च निशागमे ॥२६॥

परम भक्त है वह ऐसा विरुद्ध भाषण कैसे कर सकता है ? तुमने जो कहा है वह तो किसी तरह सम्भव नहीं है ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन राजाने उक्त चिह्न जानकर अर्थात् कलहका अवसर जान क्षमारूप शस्त्रके द्वारा उस अनिष्टको टाल दिया ॥१३॥ 'यह राजा मेरे प्रति क्रोध रखता है—अपशब्द कहता है' ऐसा कहकर पापी मन्त्रीने सब सामन्तोंको भीतर ही भीतर फोड़ लिया ॥१४॥ तदनन्तर किसी दिन उसने रात्रिके समय राजाके निवासगृहको बहुत भारी ईंधनसे प्रज्वलित कर दिया परन्तु राजा सदा सावधान रहता था ॥१५॥ इसलिए वह बुद्धिमान्, स्त्री और दोनों पुत्रोंको लेकर प्राकार-पुटसे सुगुप्त प्रदेशमें होता हुआ सुरङ्गसे धीरे-धीरेसे बाहर निकल गया ॥१६॥ उस मार्गसे निकलकर वह काशीपुरीके राजा कशिपुके पास गया । राजा कशिपु न्यायशील, उग्रवंशका प्रधान एवं उसका सामन्त था ॥१७॥ तदनन्तर जब सर्वगुप्त मन्त्री राज्यगद्दी पर बैठा तब उसने दूत द्वारा सन्देश भेजा कि हे कशिपो ! मुझे नमस्कार करो । इसके उत्तरमें कशिपुने कहा ॥१८॥ वह स्वामीका घात करनेवाला दुष्ट दुःखपूर्ण दुर्गतिको प्राप्त होगा । ऐसे दुष्टका तो नाम भी नहीं लिया जाता फिर सेवा कैसे की जावे ॥१९॥ जिसने स्त्री और पुत्रों सहित अपने स्वामी रतिवर्धनको जला दिया उस स्वामी, स्त्री और बालघातीका तो स्मरण करना भी योग्य नहीं है ॥२०॥ इस पापीका सब लोगोंके देखते-देखते शिर काटकर आज ही रतिवर्धनका बदला चुकाऊँगा, यह निश्चय समझो ॥२१॥ इस तरह, जिस प्रकार विवेकी मनुष्य मिथ्यामतको दूर हटा देता है उसी प्रकार उस दूतको दूर हटाकर तथा उसकी बात काटकर वह करने योग्य कार्यमें तत्पर हो गया ॥२२॥ तदनन्तर स्वामि-भक्तिमें तत्पर इस बलशाली कशिपु की दृष्टि, सदा चढ़ाई करनेके योग्य मन्त्रीके प्रति लगी रहती थी ॥२३॥

तदनन्तर दूतसे प्रेरित, चक्रवर्तीके समान मानी, सर्वगुप्त मन्त्री बड़ी भारी सेना लेकर अनेक राजाओंके साथ आ पहुँचा ॥२४॥ यद्यपि समुद्रके समान विशाल सर्वगुप्त, लम्बे चौड़े काशी देशमें प्रविष्ट हो चुका था तथापि कशिपुने सन्धि करनेकी इच्छा नहीं की किन्तु युद्ध करना चाहिए इसी निश्चयपर वह दृढ़ रहा आया ॥२५॥ उसी दिन रात्रिका प्रारम्भ होते ही

---

१. कृत स्वामिघातो येन सः स्वामिघातकृतः 'वाहिताग्न्यादिषु' इति क्तान्तस्य परनिपातः । स्वामिघात-कृतं हन्ता म०, ब०, ज० ।

जगौ च वर्द्धसे दिष्ट्या देवेतो रतिवर्द्धनः । क्वासौ क्वासाविति स्फीतः तुष्टः कशिपुरभ्यधात् ॥२७॥
उद्याने स्थित इत्युक्ते सुतरां प्रमदान्वितः । निर्ययावर्घपाद्येन सोऽन्तःपुरपुरःसरः ॥२८॥
जयत्यजेयराजेन्द्रो रतिवर्द्धन इत्यभूत् । उत्सवो दर्शने तस्य कशिपोर्दानमानतः ॥२९॥
संयुगे सर्वगुप्तस्य जीवतो ग्रहणं ततः । रतिवर्द्धनराजस्य काकन्द्यां राज्यसङ्गमः ॥३०॥
विज्ञाय ते हि जीवन्तं स्वामिनं रतिवर्द्धनम् । सामन्ताः सङ्गता [1]मुक्त्वा सर्वगुप्तं रणान्तरे ॥३१॥
पुनर्जन्मोत्सवश्चक्रे रतिवर्द्धनभूभृतः । महद्भिर्दानसम्मानैर्देवतानां च पूजनैः ॥३२॥
नीतः प्रत्यन्तवासित्वं मृततुल्यममात्यकः । दर्शनेनोज्झितः पापः सर्वलोकविगर्हितः ॥३३॥
कशिपुः काशिराजोऽसौ वाराणस्यां महाद्युतिः । रेमे परमया लक्ष्म्या लोकपाल इवापरः ॥३४॥
अथ भोगविनिर्विण्णः कदाचिद्रतिवर्द्धनः । श्रमणत्वं भदन्तस्य सुभानोरन्तिकेऽग्रहीत् ॥३५॥
आसीत्तया कृतो भेदः सर्वगुप्तेन निश्चितः । ततो विद्वेष्यतां प्राप्ता परमं तस्य भामिनी ॥३६॥
नाहं जाता नरेन्द्रस्य न पत्युरिति शोकिनी । अकामतपसा जाता राक्षसी विजयावली ॥३७॥
उपसर्गे तयोदारे क्रियमाणेऽतिवैरतः । सुध्याने कैवलं राज्यं सम्प्राप्तो रतिवर्द्धनः ॥३८॥
श्रामण्यं विमलं कृत्वा प्रियङ्करहितङ्करौ । ग्रैवेयकस्थितिं प्राप्तौ चतुर्थभवतः परम् ॥३९॥
शामल्यां दामदेवस्य तत्रैव पुरि नन्दनौ । वसुदेवसुदेवाख्यौ गुण्यावस्थामितौ[2] द्विजौ ॥४०॥

रतिवर्धन राजाके द्वारा कशिपुके प्रति भेजा हुआ एक युवा दण्ड हाथमें लिये वहाँ आया और बोला कि हे देव ! आप भाग्यसे बढ़ रहे हैं क्योंकि राजा रतिवर्द्धन यहाँ विद्यमान हैं। इसके उत्तरमें हर्षसे फूले हुए कशिपुने सन्तुष्ट होकर कहा कि वे कहाँ हैं ? वे कहाँ हैं ? २६–२७॥ 'उद्यानमें स्थित हैं' इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त हर्षसे युक्त कशिपु अन्तःपुरके साथ अर्घ तथा पादोदक साथ ले निकला ॥२८॥ 'जो किसीके द्वारा जीता न जाय ऐसा राजाधिराज रतिवर्धन जयवन्त हैं' यह सोचकर उसके दर्शन होनेपर कशिपुने दान-सन्मान आदिसे बड़ा उत्सव किया ॥२९॥ तदनन्तर युद्धमें सर्वगुप्त जीवित पकड़ा गया और राजा रतिवर्धनको राज्यकी प्राप्ति हुई ॥३०॥ जो सामन्त पहले सर्वगुप्तसे आ मिले थे वे स्वामी रतिवर्धनको जीवित जानकर रणके बीचमें ही सर्वगुप्तको छोड़ उसके पास आ गये थे ॥३१॥ बड़े-बड़े दान सन्मान देवताओंका पूजन आदिसे रतिवर्धन राजाका फिरसे जन्मोत्सव किया गया ॥३२॥ और सर्वगुप्त मन्त्री चाण्डालके समान नगरके बाहर बसाया गया, वह मृतकके समान निस्तेज हो गया, उस पापीकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता था तथा सर्वलोकमें वह निन्दित हुआ ॥३३॥ महाकान्तिको धारण करनेवाला काशीका राजा कशिपु वाराणसीमें उत्कृष्ट लक्ष्मीसे ऐसी क्रीड़ा करता था मानो दूसरा लोकपाल ही हो ॥३४॥

अथानन्तर किसी समय राजा रतिवर्धनने भोगोंसे विरक्त हो सुभानु नामक मुनिराजके समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥३५॥ सर्वगुप्तने निश्चय कर लिया कि यह सब भेद उसकी स्त्री विजयावलीका किया हुआ है इससे वह परम विद्वेष्यताको प्राप्त हुई अर्थात् मन्त्रीने अपनी स्त्रीसे अधिक द्वेष किया ॥३६॥ विजयावलीने देखा कि मैं न तो राजाकी हो सकी और न पतिकी ही रही इसीलिए शोकयुक्त हो अकाम तप कर वह राक्षसी हुई ॥३७॥ तीव्र वैरके कारण उसने रतिवर्धन मुनिके ऊपर घोर उपसर्ग किया परन्तु वे उत्तम ध्यानमें लीन हो केवलज्ञान रूपी राज्यको प्राप्त हुए ॥३८॥

राजा रतिवर्धनके पुत्र प्रियङ्कर और हितङ्कर निर्मल मुनिपद धारण कर ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुए। इस भवसे पूर्व चतुर्थ भवमें वे शामली नामक नगरमें दामदेव नामक ब्राह्मणके वसुदेव

---

१. मुक्ताः म० । २. -मिमौ म० ।

विश्वाप्रियङ्गुनामानौ ज्ञेये सुवनिते तयोः। आसीद्गृहस्थभावश्च शंसनीयो मनीषिणाम् ॥४१॥
साधौ श्रीतिलकाभिख्ये दानं दत्त्वा सुभावनौ। त्रिपल्यभोगितां प्राप्तौ सस्त्रीकावुत्तरे कुरौ ॥४२॥
साधुसद्दानवृक्षोत्थमहाफलसमुद्भवम्। भुक्त्वा भोगं परं तत्र प्राप्तावीशानवासिताम् ॥४३॥
भुक्तभोगौ ततश्च्युत्वा बोधिलक्ष्मीसमन्वितौ। क्षीणदुर्गतिकर्माणौ जातौ प्रियहितङ्करौ ॥४४॥
चतुष्कर्ममयारण्यं शुक्लध्यानेन वह्निना। निर्दह्य निर्वृतिं प्राप्तो मुनीन्द्रो रतिवर्द्धनः ॥४५॥
कथितौ यौ समासेन वीरौ प्रियहितङ्करौ। ग्रैवेयकाच्च्युतावेतौ भव्यौ तौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
राजन् सुदर्शना देवी तनयात्यन्तवत्सला। भर्तृपुत्रवियोगार्त्ता स्त्रीस्वभावानुभावतः ॥४७॥
निदानश्रृङ्खलाबद्धा भ्राम्यन्ती दुःखसङ्कटम्। कृच्छ्रं स्त्रीत्वं विनिर्जित्य भुक्त्वा विविधयोनिषु ॥४८॥
अयं क्रमेण सम्पन्नो मनुष्यः पुण्यचोदितः। सिद्धार्थो धर्मसक्तात्मा विद्याविधिविशारदः ॥४९॥
तत्पूर्वस्नेहसंसक्तौ बालकौ लवणाङ्कुशौ। अनेन संस्कृतौ जातौ त्रिदशैरपि दुर्जयौ ॥५०॥

उपजातिवृत्तम्

एवं विदित्वा सुलभौ नितान्तं जीवस्य लोके पितरौ सदैव।
कर्त्तव्यमेतद्बुधैर्वा प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदुःखात् ॥५१॥
विमुच्य सर्वं भववृद्धिहेतुं कर्मोरुदुःखप्रभवं जुगुप्सम्।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रविं तिरस्कृत्य शिवं प्रयात ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे रविषेणाचार्यप्रोक्ते लवणाङ्कुशपूर्वभवाभिधानं नामाष्टोत्तरशतं पर्व ॥१०८॥

और सुदेव नामके गुणी पुत्र थे ॥३९–४०॥ विश्वा और प्रियङ्गु नामकी उनकी स्त्रियाँ थीं जिनके कारण उनका गृहस्थ पद विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय था ॥४१॥ श्रीतिलक नामक मुनिराजके लिए उत्तम भावोंसे दान देकर वे स्त्री सहित उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयुको प्राप्त हुए ॥४२॥ वहाँ साधु-दान रूपी वृक्षसे उत्पन्न महाफलसे प्राप्त हुए उत्तम भोग भोग कर वे ऐशान स्वर्गमें निवासको प्राप्त हुए ॥४३॥ तदनन्तर जो आत्मज्ञान रूपी लक्ष्मीसे सहित थे, तथा जिनके दुर्गतिदायक कर्म क्षीण हो गये थे ऐसे दोनों देव, वहाँसे भोग भोग कर च्युत हुए तथा पूर्वोक्त राजा रतिवर्धनके प्रियङ्कर और हितङ्कर नामक पुत्र हुए ॥४४॥

रतिवर्धन मुनिराज शुक्ल ध्यान रूपी अग्निके द्वारा अघातिया कर्म रूपी वनको जला कर निर्वाणको प्राप्त हुए ॥४५॥ संक्षेपसे जिन प्रियङ्कर और हितङ्कर वीरोंका वर्णन किया गया है वे ग्रैवेयकसे ही च्युत हो भव्य लवण और अंकुश हुए ॥४६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! काकन्दीके राजा रतिवर्धनकी जो पुत्रोंसे अत्यन्त स्नेह करनेवाली सुदर्शना नामकी रानी थी वह पति और पुत्रोंके वियोगसे पीड़ित हो स्त्रीस्वभावके कारण निदानबन्ध रूपी साँकलसे बद्ध होती हुई दुःख रूपी सङ्कटमें घूमती रही और नाना योनियोंमें स्त्री पर्यायका उपभोग कर तथा बड़ी कठिनाईसे उसे जीत कर क्रमसे मनुष्य हुई। उसमें भी पुण्यसे प्रेरित धार्मिक तथा विद्याओंकी विधिमें निपुण सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक हुई ॥४७–४९॥ उनमें पूर्व स्नेह होनेके कारण इस क्षुल्लकने लवण और अंकुश कुमारोंका विद्याओंसे इस प्रकार संस्कृत—सुशोभित किया जिससे कि वे देवोंके द्वारा भी दुर्जय हो गये ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार 'संसारमें प्राणीको माता-पिता सदा सुलभ हैं' ऐसा जान कर विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक ऐसा काम करना चाहिए कि जिससे वे शरीर सम्बन्धी दुःखसे छूट जावें ॥५१॥ संसार वृद्धिके कारण, विशाल दुःखोंके जनक एवं निन्दित समस्त कर्मको छोड़ कर हे भव्यजनो! जैनमतमें कहा हुआ तप कर तथा सूर्यको तिरस्कृत कर मोक्षकी ओर प्रयाण करो ॥५२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मपुराणमें लवणाङ्कुशके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ आठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०८॥

नवोत्तरशतं पर्व

पतिपुत्रान् परित्यज्य विष्टपख्यातचेष्टिता । निष्क्रान्ता कुरुते सीता यत्तद्वक्ष्यामि ते शृणु ॥१॥
तस्मिन् विहरते काले श्रीमान् सकलभूषणः । दिव्यज्ञानेन यो लोकमलोकं चावबुध्यते ॥२॥
अयोध्या सकला येन गृहाश्रमविधौ कृता । सुधृत्यां सुस्थितिं प्राप्ता सद्धर्मप्रतिलम्भिता ॥३॥
प्रजा च सकला तस्य वाक्ये भगवतः स्थिता । रेजे साम्राज्ययुक्तेन राज्ञेव कृतपालना ॥४॥
सद्धर्मोत्सवसन्तानस्तत्र काले महोदयः । सुप्रबोधतमो लोकः साधुपूजनतत्परः ॥५॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तत्तीर्थं भवनाशनम् । विराजतेतरां यद्वदरमल्लिजिनान्तरम् ॥६॥
अपि या त्रिदशस्त्रीणामतिशेते मनोज्ञताम् । तपसा शोषिता साऽभूत्सीता दग्धेव माधवी ॥७॥
महासंवेगसम्पन्ना दुर्भावपरिवर्जिता । अत्यन्तनिन्दितं स्त्रीत्वं चिन्तयन्ती सती सदा ॥८॥
संसक्तभूरजोवस्त्रबद्धोरस्कशिरोरुहा । अस्नानस्वेदसञ्जातमलकञ्चुकधारिणी ॥९॥
अष्टमार्द्धर्तु कालादिकृतशास्त्रोक्तपारणा । शीलव्रतगुणासक्ता रत्यरत्यपवर्जिता ॥१०॥
अध्यात्मनियतात्यन्तं शान्ता स्वान्तवशात्मिका । तपोऽधिकुरुतेऽत्युग्रं जनान्तरसुदुःसहम् ॥११॥
मांसवर्जितसर्वाङ्गा व्यक्तास्थिस्नायुपञ्जरा । पार्थिवद्रव्यनिर्मुक्ता [1]पौस्तीव [2]प्रतियातना ॥१२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिसकी चेष्टाएँ समस्त संसारमें प्रसिद्धि पा चुकी थीं ऐसी सीता पति तथा पुत्रका परित्याग कर तथा दीक्षित हो जो कुछ करती थी वह तेरे लिए कहता हूँ सो सुन ॥ १ ॥ उस समय यहाँ उन श्रीमान् सकलभूषण केवलीका विहार हो रहा था जो कि दिव्यज्ञानके द्वारा लोक अलोकको जानते थे ॥ २ ॥ जिन्होंने समस्त अयोध्याको गृहाश्रमका पालन करनेमें निपुण, संतोषसे उत्तम अवस्थाको प्राप्त एवं समीचीन धर्मसे सुशोभित किया था ॥ ३ ॥ उन भगवान्के वचनमें स्थित समस्त प्रजा ऐसी सुशोभित होती थी मानो साम्राज्यसे युक्त राजा ही उसका पालन कर रहा हो ॥ ४ ॥ उस समयके मनुष्य समीचीन धर्मके उत्सव करनेवाले, महाभ्युदयसे सम्पन्न, सम्यग् ज्ञानसे युक्त एवं साधुओंकी पूजा करनेमें तत्पर रहते थे ॥५॥ मुनिसुव्रत भगवान्का वह संसारापहारी तीर्थ उस तरह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था जिस तरह कि अरनाथ और मल्लिनाथ जिनेन्द्रका अन्तर काल सुशोभित होता था ॥६॥

तदनन्तर जो सीता देवाङ्गनाओंकी भी सुन्दरताको जीतती थी वह तपसे सूखकर ऐसी हो गई जैसी जली हुई माधवी लता हो ॥७॥ वह सदा महासंवेगसे सहित तथा खोटे भावोंसे दूर रहती थी तथा स्त्री पर्यायको सदा अत्यन्त निन्दनीय समझती रहती थी ॥८॥ पृथिवीकी धूलिसे मलिन वस्त्रसे जिसका वक्षःस्थल तथा शिरके बाल सदा आच्छादित रहते थे, जो स्नानके अभावमें पसीनासे उत्पन्न मैल रूपी कञ्चुकको धारण कर रही थी, जो चार दिन, एक पक्ष तथा ऋतुकाल आदिके बाद शास्त्रोक्त विधिसे पारणा करती थी, शीलव्रत और मूलगुणोंके पालन करनेमें तत्पर रहती थी, राग-द्वेषसे रहित थी, अध्यात्मके चिन्तनमें तत्पर रहती थी, अत्यन्त शान्त थी, जिसने अपने आपको अपने मनके अधीन कर रक्खा था, जो अन्य मनुष्योंके लिए दुःसह, अत्यन्त कठिन तप करती थी, जिसका समस्त शरीर मांससे रहित था, जिसकी हड्डी और आँतोंका पञ्जर प्रकट दिख रहा था, जो पार्थिव तत्त्वसे रहित लकड़ी आदिसे बनी प्रतिमा

१. पुस्तनिर्मिता । २. प्रतिमेव ।

अवलीनकगण्डान्ता सम्बद्धा केवलं त्वचा । उत्कटभ्रूतटा शुष्का नदीव नितरामभात् ॥१३॥
युगमानमहीपृष्ठन्यस्तसौम्यनिरीक्षणा । तपःकारणदेहार्थं भिक्षां चक्रे यथाविधि ॥१४॥
[1]अन्यथात्वमिवानीता तपसा साधुचेष्टिता । नाऽऽत्मीयपरकीयेन जनेनाऽज्ञायि गोचरे ॥१५॥
दृष्ट्वा तामेव कुर्वन्ति तस्या एव सदा कथाम् । न च प्रत्यभिजानन्ति तदा तामार्यिकां जनाः ॥१६॥
एवं द्वाषष्टिवर्षाणि तपः कृत्वा समुन्नतम् । त्रयस्त्रिंशद्दिनं कृत्वा परमाराधनाविधिम् ॥१७॥
उच्छिष्टं संस्तरं यद्वत्परित्यज्य शरीरकम् । आरणाच्युतमारुह्य प्रतीन्द्रत्वमुपागमत् ॥१८॥
माहात्म्यं पश्यतेदृक्षं धर्मस्य जिनशासने । जन्तुः स्त्रीत्वं यदुज्झित्वा पुमान् जातः सुरप्रभुः ॥१९॥
तत्र कल्पे मणिच्छायासमुद्योतितपुष्करे । काञ्चनादिमहाद्रव्यविचित्रपरमाद्भुते ॥२०॥
सुमेरुशिखराकारे विमाने परिवारिणि । परमैश्वर्यसम्पन्ना सम्प्राप्ता त्रिदशेन्द्रताम् ॥२१॥
देवीशतसहस्राणां नयनानां समाश्रयः । तारागणपरीवारः शशाङ्क इव राजते ॥२२॥
इत्यन्यानि च साधूनि चरितानि नरेश्वरः । पापघातीनि शुश्राव पुराणानि गणेश्वरात् ॥२३॥
राजोचे कस्तदा नाथो देवानामारणाच्युते । बभौ यस्य प्रतिस्पर्द्धी सीतेन्द्रोऽपि तपोबलात् ॥२४॥
मधुरित्याह भगवान् भ्राता यस्य स कैटभः । येन भुक्तं महैश्वर्यं द्वाविंशत्यब्धिसम्मितम् ॥२५॥
चतुःषष्टिसहस्रेषु किञ्चिदभ्येष्वनुक्रमात् । वर्षाणां समतीतेषु सुकृतस्यावशेषतः ॥२६॥

के समान जान पड़ती थी, जिसके कपोल भीतर घुस गये थे, जो केवल त्वचासे आच्छादित थी, जिसका भ्रूकुटितल ऊँचा उठा हुआ था तथा उससे जो सूखी नदीके समान जान पड़ती थी। युग प्रमाण पृथिवी पर जो अपनी सौम्यदृष्टि रखकर चलती थी, जो तपके कारण शरीरकी रक्षाके लिए विधिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करती थी, जो उत्तम चेष्टासे युक्त थी, तथा तपके द्वारा उस प्रकार अन्यथाभावको प्राप्त हो गई थी कि विहारके समय उसे अपने पराये लोग भी नहीं पहिचान पाते थे ॥६–१५॥ ऐसी उस सीताको देखकर लोग सदा उसीकी कथा करते रहते थे। जो लोग उसे एक बार देखकर पुनः देखते थे वे उसे 'यह वही है' इस प्रकार नहीं पहिचान पाते थे ॥१६॥ इस प्रकार बासठ वर्ष तक उत्कृष्ट तप कर तथा तैंतीस दिनकी उत्तम सल्लेखना धारणकर उपभुक्त विस्तरके समान शरीरको छोड़कर वह आरण-अच्युत युगलमें आरूढ़ हो प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥१७–१८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो ! जिन-शासनमें धर्मका ऐसा माहात्म्य देखो कि यह जीव स्त्री पर्यायको छोड़ देवोंका स्वामी पुरुष हो गया ॥१९॥

जहाँ मणियोंकी कान्तिसे आकाश देदीप्यमान हो रहा था तथा जो सुवर्णादि महाद्रव्योंके कारण विचित्र एवं परम आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला था ऐसे उस अच्युत स्वर्गमें वह अपने परिवारसे युक्त सुमेरुके शिखरके समान विमानमें परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥२०–२१॥ वहाँ लाखों देवियोंके नेत्रोंका आधारभूत वह प्रतीन्द्र, तारागणोंके परिवारसे युक्त चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥२२॥ इस प्रकार राजा श्रेणिकने श्रीगौतम गणधरके मुखारविन्दसे अन्य उत्तमोत्तम चरित्र तथा पापोंको नष्ट करनेवाले अनेक पुराण सुने ॥२३॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि उस समय आरणाच्युत कल्पमें देवोंका ऐसा कौन अधिपति अर्थात् इन्द्र सुशोभित था कि सीतेन्द्र भी तपोबलसे जिसका प्रतिस्पर्धी था ॥२४॥ इसके उत्तरमें गणधर भगवान्ने कहा कि उस समय वह मधुका जीव आरणाच्युत स्वर्गका इन्द्र था, जिसका भाई कैटभ था तथा जिसने बाईस सागर तक इन्द्रके महान् ऐश्वर्यका उपभोग किया था ॥२५॥ अनुक्रमसे कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष बीत जानेपर अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे वे मधु

१. अन्यथामिवानीता म० [अन्यथात्वमिवानीता] इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति । अन्यथामिव सा नीता ज० ।

इह प्रद्युम्नशाम्बौ तौ यावेतौ मधुकैटभौ । द्वारिकायां समुत्पन्नौ पुत्रौ कृष्णस्य भारते ॥२७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि चत्वारि च ततः परम् । रामायणस्य विज्ञेयमन्तरं भारतस्य च ॥२८॥
अरिष्टनेमिनाथस्य तीर्थे नाकादिह च्युतः । मधुर्बभूव रुक्मिण्यां वासुदेवस्य नन्दनः ॥२९॥
मगधाधिपतिः प्राह नाथ वागमृतस्य ते । अतृप्तिमुपगच्छामि धनस्येव धनेश्वरः ॥३०॥
तावन्मधोः सुरेन्द्रस्य चरितं विनिगद्यताम् । भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रसादः क्रियतां मम ॥३१॥
कैटभस्य च तद्भ्रातुरवधानपरायण । गणेन्द्र चरितं ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥३२॥
आसीदन्यभवे तेन किं कृतं प्रकृतं भवेत् । कथं वा त्रिजगच्छ्रेष्ठा लब्धा बोधिः सुदुर्लभा ॥३३॥
क्रमवृत्तिरियं वाणी तावकी धीश्च मामिका । उत्सुकं च परं चित्तमहो युक्तमनुक्रमात् ॥३४॥
गण्याह मगधाभिख्ये देशेऽस्मिन्सर्वसस्यके । चातुर्वर्ण्यप्रमुदिते धर्मकामार्थसंयुते ॥३५॥
चारुचैत्यालयाकीर्णे पुरग्रामाकराऽऽचिते । नद्युद्यानमहारम्ये साधुसङ्घसमाकुले ॥३६॥
राजा नित्योदितो नाम तत्र कालेऽभवन्महान् । शालिग्रामोऽस्ति तत्रैव देशे ग्रामः पुरोपमः ॥३७॥
ब्राह्मणः सोमदेवोऽत्र भार्या तस्याग्निलेत्यभूत् । विज्ञेयौ तनयौ तस्या [1]वह्निमारुतभूतिकौ ॥३८॥
षट्कर्मविधिसम्पन्नौ वेदशास्त्रविशारदौ । अस्मत्तः कोऽपरोऽस्तीति नित्यं पण्डितमानिनौ ॥३९॥
अभिमानमहादाहसञ्जातोद्धतविभ्रमौ । भोग एव सदा सेव्य इति धर्मपराङ्मुखौ ॥४०॥

और कैटभके जीव भरतक्षेत्रकी द्वारिका नगरीमें महाराज श्रीकृष्णके प्रद्युम्न तथा शाम्ब नामके पुत्र हुए ॥२६-२७॥ इस तरह रामायण और महाभारतका अन्तर कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष जानना चाहिए ॥२८॥ अरिष्टनेमि तीर्थंकरके तीर्थमें मधुका जीव स्वर्गसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रमें श्रीकृष्णकी रुक्मिणी नामक स्त्रीसे प्रद्युम्न नामका पुत्र हुआ ॥२९॥ यह सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामीसे कहा कि हे नाथ ! जिस प्रकार धनवान् मनुष्य धनके विषयमें तृप्तिको प्राप्त नहीं होता है उसी प्रकार मैं भी आपके वचन रूपी अमृतके विषयमें तृप्तिको प्राप्त नहीं हो रहा हूँ ॥३०॥ हे भगवन् ! आप मुझे अच्युतेन्द्र मधुका पूरा चरित्र कहिए मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ, मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३१॥ इसी प्रकार हे ध्यानमें तत्पर गणराज ! मधुके भाई कैटभका भी पूर्ण चरित कहिए क्योंकि आपको वह अच्छी तरह विदित है ॥३२॥ उसने पूर्वभवमें कौन सा उत्तम कार्य किया था तथा तीनों जगत्में श्रेष्ठ अतिशय दुर्लभ रत्नत्रयकी प्राप्ति उसे किस प्रकार हुई थी ? ॥३३॥ हे भगवन् ! आपकी यह वाणी क्रम-क्रमसे प्रकट होती है, और मेरी बुद्धि भी क्रम-क्रमसे पदार्थको ग्रहण करती है तथा मेरा चित्त भी अनुक्रमसे अत्यन्त उत्सुक हो रहा है इस तरह सब प्रकरण उचित ही जान पड़ता है ॥३४॥

तदनन्तर गौतम गणधर कहने लगे कि जो सर्व प्रकारके धान्यसे सम्पन्न है, जहाँ चारों वर्णके लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं, जो धर्म, अर्थ और कामसे सहित है, सुन्दर-सुन्दर चैत्यालयोंसे युक्त है, पुर ग्राम तथा खानों आदिसे व्याप्त है, नदियों और बाग-बगीचोंसे अत्यन्त सुन्दर है, मुनियोंके संघसे युक्त है ऐसे इस मगध नामक देशमें उस समय नित्योदित नामका बड़ा राजा था। उसी देशमें नगरकी समता करनेवाला एक शालिग्राम नामका गाँव था ॥३५-३७॥ उस ग्राममें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण था। अग्निला उसकी स्त्री थी और उन दोनोंके अग्निभूति तथा वायुभूति नामके दो पुत्र थे ॥३८॥ वे दोनों ही पुत्र सन्ध्या-वन्दनादि षट् कर्मोंकी विधिमें निपुण, वेद-शास्त्रके पारङ्गत, और 'हमसे बढ़ कर दूसरा कौन है' इस प्रकार पाण्डित्यके अभिमानमें चूर थे ॥३९॥ अभिमान रूपी महादाहके कारण जिन्हें अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हुआ था ऐसे वे दोनों भाई 'सदा भोग ही सेवन करने योग्य हैं' यह सोच कर धर्मसे विमुख रहते थे ॥४०॥

---

१. अग्निभूतिवायुभूतिनामानौ ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य विहरन् पृथिवीमिमाम् । बहुभिः साधुभिर्गुप्तः सम्प्राप्तो नन्दिवर्द्धनः ॥४१॥
मुनिः स चावधिज्ञानात्समस्तं जगदीक्षते । अध्युवास बहिर्ग्राममुद्यानं साधुसम्मतम् ॥४२॥
ततश्चागमनं श्रुत्वा श्रमणानां महात्मनाम् । शालिग्रामजनो भूत्या सर्व एव विनिर्ययौ ॥४३॥
अपृच्छतां ततो वह्निवायुभूती विलोक्य तम् । क्वायं जनपदो याति सुसङ्कीर्णः परस्परम् ॥४४॥
ताभ्यां कथितमन्येन मुनिः प्राप्तो निरम्बरः । तस्यैव वन्दनां कर्तुमखिलः प्रस्थितो जनः ॥४५॥
अग्निभूतिस्ततः क्रुद्धः सह भ्रात्रा विनिर्गतः । विवादे श्रमणान्सर्वान् जयामीति वचोऽवदत् ॥४६॥
उपगम्य च साधूनां मुनीन्द्रं मध्यवर्तिनम् । अपश्यद्ग्रहताराणां मध्ये चन्द्रमिवोदितम् ॥४७॥
प्रधानसंयतेनैतौ प्रोक्तौ [1]सात्यकिना ततः । एवमागच्छतां विप्रौ किञ्चिद्विधिनुतं[2] गुरौ ॥४८॥
उवाच प्रहसन्नग्निर्भवद्भिः किं प्रयोजनम् । जगादागतयोरत्र दोषो नास्तीति संयतः ॥४९॥
द्विजेनैकेन च प्रोक्तमेतान् श्रमणपुङ्गवान् । वादे जेतुमुपायातौ दूरे किमधुना स्थितौ ॥५०॥
एवमस्त्विति सामर्षौ मुनीन्द्रस्य पुरः स्थितौ । ऊचतुश्च समुद्धतौ किं वेत्सीति पुनः पुनः ॥५१॥
सावधिर्भगवानाह भवन्तावागतौ कुतः । ऊचतुस्तौ न ते ज्ञातौ शालिग्रामात्किमागतौ ॥५२॥
मुनिराहावगच्छामि शालिग्रामादुपागतौ । अनादिजन्मकान्तारे भ्रमन्तावागतौ कुतः ॥५३॥
तौ समूचतुरन्योऽपि को वेत्तीति ततो मुनिः । जगाद शृणुतां विप्रावधुना कथयाम्यहम् ॥५४॥

अथानन्तर किसी समय अनेक साधुओंके साथ इस पृथ्वी पर विहार करते हुए नन्दिवर्धन नामक मुनिराज उस शालिग्राममें आये ॥४१॥ वे मुनि अवधि-ज्ञानसे समस्त जगत्‌को देखते थे तथा आकर गाँवके बाहर मुनियोंके योग्य उद्यानमें ठहर गये ॥४२॥ तदनन्तर उत्कृष्ट आत्माके धारक मुनियोंका आगमन सुन शालिग्रामके सब लोग वैभवके साथ बाहर निकले ॥४३॥ तत्पश्चात् अग्निभूति और वायुभूतिने उन नगरवासी लोगोंको जाते देख किसीसे पूछा कि ये गाँवके लोग परस्पर एक दूसरेसे मिल कर समुदाय रूपमें कहाँ जा रहे हैं ? ॥४४॥ तब उसने उन दोनोंसे कहा कि एक निर्वस्त्र दिगम्बर मुनि आये हुए हैं उन्हींकी वन्दना करनेके लिए वे सब लोग जा रहे हैं ॥४५॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा अग्निभूति, भाईके साथ निकल कर बाहर आया और कहने लगा कि मैं समस्त मुनियोंको वादमें अभी जीतता हूँ ॥४६॥ तत्पश्चात् पास जाकर उसने ताराओंके बीचमें उदित चन्द्रमा के समान मुनियोंके बीचमें बैठे हुए उनके स्वामी नन्दिवर्द्धन मुनिको देखा ॥४७॥ तदनन्तर सात्यकि नामक प्रधान मुनिने उनसे कहा कि हे विप्रो ! आओ और गुरुसे कुछ पूछो ! ॥४८॥ तब अग्निभूतिने हँसते हुए कहा कि हमें आप लोगोंसे क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तरमें मुनिने कहा कि यदि आप लोग यहाँ आ गये हैं तो इसमें दोष नहीं है ॥४९॥ उसी समय एक ब्राह्मणने कहा कि ये दोनों इन मुनियोंको वादमें जीतनेके लिए आये हैं इस समय दूर क्यों बैठे हैं ॥५०॥ तदनन्तर 'अच्छा ऐसा ही सही' इस प्रकार कहते हुए क्रोधसे युक्त दोनों ब्राह्मण, मुनिराजके सामने बैठ गये और बड़े अहंकारमें चूर होकर बार-बार कहने लगे कि बोल क्या जानता है ? बोल क्या जानता है ? ॥५१॥ तदनन्तर अवधिज्ञानी मुनिराजने कहा कि आप दोनों कहाँ से आ रहे हैं ? इसके उत्तरमें विप्र-पुत्र बोले कि क्या तुझे यह भी ज्ञात नहीं है कि हम दोनों शालिग्रामसे आये हैं ॥५२॥ तदनन्तर मुनिराजने कहा कि आप शालिग्रामसे आये हैं यह तो मैं जानता हूँ मेरे पूछनेका अभिप्राय यह है कि इस अनादि संसार-रूपी वनमें घूमते हुए आप इस समय किस पर्यायसे आये हैं ? ॥५३॥ तब उन्होंने कहा कि इसे क्या और भी कोई जानता है या मैं ही जानूँ। तत्पश्चात् मुनिराजने कहा कि अच्छा विप्रो ! सुनो मैं कहता हूँ ॥५४॥

---

१. सत्युकिना ज०, ख । सत्यकिना क० । २. विधुननं क० ।

ग्रामस्यैतस्य सीमान्ते वनस्थस्यामुभौ समम् । अन्योन्यानुरतावास्तां शृगालौ विकृताननौ ॥५५॥
आसीदत्रैव च ग्रामे चिरवासः कृषीबलः । ख्यातः प्रामरको नाम गतोऽसौ क्षेत्रमन्यदा ॥५६॥
पुनरेमीति सञ्चिन्त्य भानावस्ताभिलाषिणि । [1]त्यक्त्वोपकरणं क्षेत्रे सञ्जतः क्षुधितो गृहम् ॥५७॥
तावदञ्जनशैलाभाः प्लावयन्तो महीतलम् । अकस्मादुन्नता मेघा ववृषुर्नक्तवासरम् ॥५८॥
प्रशान्ता सप्तरात्रेण रात्रौ तमसि भीषणे । जम्बुकौ तौ विनिष्क्रान्तौ गह्वरादर्दितौ क्षुधा ॥५९॥
अथोपकरणं क्लिन्नं कर्दमोपलसङ्गतम् । ताभ्यां भक्षितं सर्वं प्राप्तौ चोदरवेदनाम् ॥६०॥
अकामनिर्जरायुक्तौ वर्षानिलसमाहतौ । ततः कालं गतौ जातौ सोमदेवस्य नन्दनौ ॥६१॥
स च प्रामरकः प्राप्तोऽन्वेषकोऽपश्यदेतकौ । निर्जीवौ जम्बुकौ तेन गृहीत्वा जनितौ दृती ॥६२॥
अचिरेण मृतश्चासौ सुतस्यैवाभवत्सुतः । जातिस्मरत्वमासाद्य मूकीभूय व्यवस्थितः ॥६३॥
पुत्रं[2] पितुरिति ज्ञात्वेत्याहरामि कथं त्वहम् । स्नुषां च मातुरित्यस्माद्धेतोर्मौनमुपाश्रितः ॥६४॥
यदि न प्रत्ययः सम्यक् तत्तिष्ठत्यसावयम् । मध्ये स्वजनवर्गस्य द्विजो मां द्रष्टुमागतः ॥६५॥
आहूय गुरुणा चोक्तः स त्वं प्रामरकस्तथा । आसीस्त्वमधुना जातस्तोकस्यैव शरीरजः ॥६६॥
संसारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नटः । राजा भूत्वा भवेद्भृत्यः प्रेष्यश्च प्रभुतां व्रजेत् ॥६७॥
एवं पिताऽपि [3]तोकत्वमेति तोकश्च तातताम् । माता पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ॥६८॥

इस गाँवकी सीमाके पास वनकी भूमिमें दो शृगाल साथ-साथ रहते थे। वे दोनों ही परस्पर एक दूसरेसे अधिक प्रेम रखते थे तथा दोनों ही विकृत मुखके धारक थे ॥५५॥ इसी गाँवमें एक प्रामरक नामका पुराना किसान रहता था। वह एक दिन अपने खेतपर गया। जब सूर्यास्तका समय आया तब वह भूखसे पीड़ित होकर घर गया और अभी वापिस आता हूँ यह सोचकर अपने उपकरण खेतमें ही छोड़ आया ॥५६-५७॥ वह घर आया नहीं कि इतनेमें अकस्मात् उठे तथा अञ्जनगिरिके समान काले बादल पृथिवीतलको डुबाते हुए रात-दिन बरसने लगे। वे मेघ सात दिनमें शान्त हुए अर्थात् सात दिन तक झड़ी लगी रही। ऊपर जिन दो शृगालोंका उल्लेख कर आये हैं वे भूखसे पीड़ित हो रात्रिके घनघोर अन्धकारमें वनसे बाहर निकले ॥५८-५९॥

अथानन्तर वर्षासे भींगे और कीचड़ तथा पत्थरोंमें पड़े वे सब उपकरण जिन्हें कि किसान छोड़ आया था दोनों शृगालोंने खा लिये। खाते हीके साथ उनके उदरमें भारी पीड़ा उठी। अन्तमें वर्षा और वायुसे पीड़ित दोनों शृगाल अकामनिर्जराकर मरे और सोमदेव ब्राह्मणके पुत्र हुए ॥६०-६१॥ तदनन्तर वह प्रामरक किसान अपने उपकरण ढूँढ़ता हुआ खेतमें पहुँचा तो वहाँ उसने इन मरे हुए दोनों शृगालोंको देखा। किसान उन मृतक शृगालोंको लेकर घर गया और वहाँ उसने उनकी मशकें बनाईं ॥६२॥ वह प्रामरक भी जल्दी ही मर गया और मरकर अपने ही पुत्रके पुत्र हुआ। उस पुत्रको जाति-स्मरण हो गया जिससे वह गूँगा बनकर रहने लगा ॥६३॥ 'मैं अपने पूर्वभवके पुत्रको पिताके स्थानमें समझ कर कैसे बोलूँ तथा पूर्वभवकी पुत्र-वधूको माताके स्थानमें जानकर कैसे बोलूँ' यह विचार कर ही वह मौनको प्राप्त हुआ है ॥६४॥ यदि तुम्हें इस बातका ठीक ठीक विश्वास नहीं है तो वह ब्राह्मण मेरे दर्शन करनेके लिए यहाँ आया है तथा अपने परिवारके बीचमें बैठा है ॥६५॥ मुनिराजने उसे बुलाकर कहा कि तू वही प्रामरक किसान है और इस समय अपने पुत्रका ही पुत्र हुआ है ॥६६॥ यह संसारका स्वभाव है। जिस प्रकार रङ्गभूमिके मध्य नट राजा होकर दास बन जाता है और दास प्रभुताको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार पिता भी पुत्रपनेको प्राप्त हो जाता है, और पुत्र पितृ पर्यायको प्राप्त

१. त्यक्तोपकरणं म० । २. पुत्रः म० । ३. पुत्रत्वम् ।

उद्घाटनघटीयन्त्रसदृशोऽस्मिन् भवात्मनि । [1]उपर्यधरतां यान्ति जीवाः कर्मवशं गताः ॥६९॥
इति ज्ञात्वा भवावस्थां नितान्तं वत्स निन्दिताम् । अधुना मूकतां मुञ्च कुरु वाचां क्रियां सतीम् ॥७०॥
इत्युक्तः परमं हृष्ट उत्थाय विगतज्वरः । [2]उद्भूतघनरोमाञ्चः प्रोत्फुल्लनयनाननः ॥७१॥
गृहीत इव भूतेन परिभ्रम्य प्रदक्षिणाम् । निपपातोत्तमाङ्गेन छिन्नमूलतरुर्यथा ॥७२॥
उवाच विस्मितश्चोच्चैस्त्वं सर्वज्ञपराक्रमः । इहस्थः सर्वलोकस्य सकलां पश्यसि स्थितिम् ॥७३॥
संसारसागरे घोरे कष्टमेवं निमज्जतः । सत्त्वानुकम्पया बोधिस्त्वया मे नाथ दर्शिता ॥७४॥
मनोगतं मम ज्ञातं भवता दिव्यबुद्धिना । इत्युक्त्वा जगृहे दीक्षां सान्नान् संत्यज्य बान्धवान् ॥७५॥
तस्य प्रामरकस्यैतच्छ्रुत्वोपाख्यानमीदृशम् । संवृत्ता बहवो लोके श्रमणाः श्रावकास्तथा ॥७६॥
गत्वा च ते दृतौ दृष्टे सर्वलोकेन तद्गृहे । ततः कलकलो जातो विस्मयश्च समन्ततः ॥७७॥
अथोपहसितौ राजंस्तौ अनेन द्विजातिकौ । इमौ तौ पशुमांसादौ जम्बुकौ द्विजतां गतौ ॥७८॥
एताभ्यां [3]ब्रह्मताबादे विमूढाभ्यां सुखार्थिनी । प्रजेयं मुषिता सर्वा सक्ताभ्यां पशुहिंसने ॥७९॥
अमी तपोधनाः शुद्धाः श्रमणा [4]ब्राह्मणाधिकाः । ब्राह्मणा इति विख्याता हिंसामुक्तिव्रतश्रिताः ॥८०॥
महाव्रतशिखाटोपाः क्षान्तियज्ञोपवीतिनः । ध्यानाग्निहोत्रिणः शान्ता मुक्तिसाधनतत्पराः ॥८१॥
सर्वारम्भप्रवृत्ता ये नित्यमब्रह्मचारिणः । द्विजाः स्म इति भाषन्ते क्रियया न पुनर्द्विजाः ॥८२॥

हो जाता है । माता पत्नी हो जाती है और पत्नी माता बन जाती है ॥६७-६८॥ यह संसार अरहटके घटीयन्त्रके समान है इसमें जीव कर्मके वशीभूत हो ऊपर-नीची अवस्थाको प्राप्त होता रहता है ॥६९॥ इसलिए हे वत्स ! संसार दशाको अत्यन्त निन्दित जानकर इस समय गूँगापन छोड़ और वचनोंको उत्तम क्रिया कर अर्थात् प्रशस्त वचन बोल ॥७०॥

मुनिराजके इतना कहते ही वह अत्यन्त हर्षित होता हुआ उठा, वह ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसका ज्वर उतर गया हो, उसके शरीरमें सघन रोमाञ्च निकल आये, तथा उसके नेत्र और मुख हर्षसे फूल उठे ॥७१॥ भूतसे आक्रान्त हुएके समान उसने मुनिकी प्रदक्षिणाएँ दीं । तदनन्तर कटे वृक्षके समान मस्तकके बल उनके चरणोंमें गिर पड़ा ॥७२॥ उसने आश्चर्य चकित हो जोरसे कहा कि हे भगवन्, आप सर्वज्ञ हैं । यहाँ बैठे-बैठे ही आप समस्त लोककी सम्पूर्ण स्थितिको देखते रहते हैं ॥७३॥ मैं इस भयंकर संसार-सागरमें डूब रहा था सो आपने प्राण्यनुकम्पासे हे नाथ ! मेरे लिए रत्नत्रय रूप बोधिका दर्शन कराया है ॥७४॥ आप दिव्यबुद्धि हैं अतः आपने मेरा मनोगत भाव जान लिया । इस प्रकार कहकर उस प्रामरकके जीव ब्राह्मणने रोते हुए भाई-बान्धवोंको छोड़कर दीक्षा धारण कर ली ॥७५॥ प्रामरकका यह ऐसा व्याख्यान सुन बहुतसे लोग मुनि तथा श्रावक हो गये ॥७६॥ सब लोगोंने उसके घर जाकर पूर्वोक्त शृगालोंके शरीरसे बनी मशकें देखीं जिससे सब ओर कलकल तथा आश्चर्य छा गया ॥७७॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लोगोंने यह कहकर उन ब्राह्मणोंकी बहुत हँसी की कि ये वे ही पशुओंका मांस खानेवाले शृगाल ब्राह्मण पर्यायको प्राप्त हुए हैं ॥७८॥ 'सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है' इस प्रकारके ब्रह्माद्वैतवादमें मूढ एवं पशुओंकी हिंसामें आसक्त रहनेवाले इन दोनों ब्राह्मणोंने सुखकी इच्छुक समस्त प्रजाको लूट डाला है ॥७९॥ तपरूपी धनसे युक्त ये शुद्ध मुनि ब्राह्मणोंसे अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि यथार्थमें ब्राह्मण वे ही कहलाते हैं जो अहिंसा व्रतको धारण करते हैं ॥८०॥ जो महाव्रत रूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, जो क्षमारूपी यज्ञोपवीतसे सहित हैं, जो ध्यानरूपी अग्निमें होम करनेवाले हैं, शान्त हैं तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमें तत्पर हैं वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं ॥८१॥ इसके विपरीत जो सब प्रकारके आरम्भमें

---

१. उपर्युपरितां म०। २. उद्भूतघनरोमाञ्च प्रोत्फुल्ल- म०। ३. ब्रह्मतावाद—म० । ४. ब्राह्मणोधिपाः म०।

यथा केचिन्नरा लोके सिंहदेवाग्निनामकाः। तथामी विरतेर्भ्रष्टा ब्राह्मणा नामधारकाः ॥८३॥
अमी सुश्रमणा धन्या ब्राह्मणाः परमार्थतः। ऋषयः संयता धीराः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥८४॥
भदन्तास्त्यक्तसन्देहा भगवन्तः सतापसाः। मुनयो यतयो वीरा लोकोत्तरगुणस्थिताः ॥८५॥
परिव्रजन्ति ये मुक्तिं भवहेतौ परिग्रहे। ते परिव्राजका ज्ञेया निर्ग्रन्था एव निस्तमाः ॥८६॥
तपसा क्षपयन्ति स्वं क्षीणरागाः क्षमान्विताः। छिन्दन्ति च यतः पापं क्षपणास्तेन कीर्तिताः ॥८७॥
यमिनो वीतरागाश्च निर्मुक्ताङ्गा निरम्बराः। योगिनो ध्यानिनो वन्द्या ज्ञानिनो निःस्पृहा बुधाः ॥८८॥
निर्वाणं साधयन्तीति साधवः परिकीर्तिताः। आचार्या यत्सदाचारं चरन्त्याचारयन्ति च ॥८९॥
अनगारगुणोपेता भिक्षवः शुद्धभिक्षया। श्रमणाः [1]सितकर्माणः परमश्रमवर्तिनः ॥९०॥
इति साधुस्तुतिं श्रुत्वा तथा निन्दनमात्मनः। रहःस्थितौ विलक्षौ च विमानौ विगतप्रभौ ॥९१॥
गते च सवितर्यस्तं [2]प्रकाशनसुदुःखितौ। अन्विष्यन्तौ गतौ स्थानं यत्रासौ भगवान् स्थितः ॥९२॥
निःसङ्गः सङ्घमुत्सृज्य वनैकान्तेऽतिगह्वरे। करङ्कैः सङ्कटेऽत्यन्तं विविधचितिकाचिते ॥९३॥
[3]क्रव्याच्छ्वापदनादाढ्ये पिशाचभुजगाकुले। सूचीभेद्यतमश्छन्ने महाबीभत्सदर्शने ॥९४॥
एवंविधे श्मशानेऽसौ निर्जन्तुनि शिलातले। पादाभ्यामीक्षितस्ताभ्यां प्रतिमास्थानमास्थितः ॥९५॥

प्रवृत्त हैं तथा जो निरन्तर कुशीलमें लीन रहते हैं वे केवल यह कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं परन्तु क्रियासे ब्राह्मण नहीं हैं ॥८२॥ जिस प्रकार कितने ही लोग सिंह, देव अथवा अग्नि नामके धारक हैं उसी प्रकार व्रतसे भ्रष्ट रहनेवाले ये लोग भी ब्राह्मण नामके धारक हैं इनमें वास्तविक ब्राह्मणत्व कुछ भी नहीं है ॥८३॥ जो ऋषि, संयत, धीर, क्षान्त, दान्त और जितेन्द्रिय हैं ऐसे ये मुनि ही धन्य हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण हैं ॥८४॥ जो भद्रपरिणामी है, संदेहसे रहित हैं, ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, अनेक तपस्वियोंसे सहित हैं, यति हैं और वीर हैं ऐसे मुनि ही लोकोत्तर गुणोंके धारण करनेवाले हैं ॥८५॥ जो परिग्रहको संसारका कारण समझ उसे छोड़ मुक्तिको प्राप्त करते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं सो यथार्थमें मोहरहित निर्ग्रन्थ मुनि ही परिव्राजक हैं ऐसा जानना चाहिए ॥८६॥ चूँकि ये मुनि क्षीणराग तथा क्षमासे सहित होकर तपके द्वारा अपने आपको कृश करते हैं, पापको नष्ट करते हैं इसलिए क्षपण कहे गये हैं ॥८७॥ ये सब यमी, वीतराग, निर्मुक्तशरीर, निरम्बर, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, निःस्पृह और बुध हैं अतः ये ही वन्दना करने योग्य हैं ॥८८॥ चूँकि ये निर्वाणको सिद्ध करते हैं इसलिए साधु कहलाते हैं, और उत्तम आचारका स्वयं आचरण करते हैं तथा दूसरोंको भी आचरण कराते हैं इसलिए आचार्य कहे जाते हैं ॥८९॥ ये गृहत्यागीके गुणोंसे सहित हैं तथा शुद्ध भिक्षासे भोजन करते हैं इसलिए भिक्षुक कहलाते हैं और उज्ज्वल कार्य करनेवाले हैं, अथवा कर्मोंका नष्ट करनेवाले हैं तथा परम निर्दोष श्रममें वर्तमान हैं इसलिए श्रमण कहे जाते हैं ॥९०॥ इस प्रकार साधुओंकी स्तुति और अपनी निन्दा सुनकर वे अहंकारी विप्र पुत्र लज्जित, अपमानित तथा निष्प्रभ हो एकान्तमें जा बैठे ॥९१॥

अथानन्तर जो अपने शृगालादि पूर्व भवोंके उल्लेखसे अत्यन्त दुखी थे ऐसे दोनों पुत्र सूर्यके अस्त होनेपर खोज करते हुए उस स्थानपर पहुँचे जहाँ कि वे भगवान् नन्दिवर्धन मुनीन्द्र विराजमान थे ॥९२॥ वे मुनीन्द्र संघ छोड़, निःस्पृह हो वनके एकान्त भागमें स्थित उस श्मशान प्रदेशमें विद्यमान थे कि जो अत्यधिक गर्तोंसे युक्त था, नरकङ्कालोंसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारकी चिताओंसे व्याप्त था, मांसभोजी वन्य पशुओंके शब्दसे व्याप्त था, पिशाच और सर्पोंसे आकीर्ण था, सुईके द्वारा भेदने योग्य—गाढ अन्धकारसे आच्छादित था, और जिसका देखना तीव्र घृणा उत्पन्न करनेवाला था। ऐसे श्मशानमें जीव-जन्तु रहित शिलातलपर प्रतिमायोगसे विराज-

१. सितं विनाशितं श्री० टि०। २. प्रकाशनं शृगालादिकथनं श्री० टि०। ३. क्रव्यश्वापद म०।

आकृष्टखड्गहस्तौ च क्रुद्धौ जगदतुः समम् । जीवं रक्षतु ते लोकः क्व यासि श्रमणाधुना ॥९६॥
पृथिव्यां ब्राह्मणाः श्रेष्ठा वयं प्रत्यक्षदेवताः । निर्लज्जस्त्वं महादोषो जम्बुका इति भाषसे ॥९७॥
ततोऽत्यन्तप्रचण्डौ तौ दुष्टौ रक्तकलोचनौ । आक्रमौ कृपाविनिर्मुक्तौ सुयक्षेण निरीक्षितौ ॥९८॥
सुमनाश्चिन्तयामास पश्य निर्दोषमीदृशम् । हन्तुमभ्युद्यतौ साधुं मुक्ताङ्गं ध्यानतत्परम् ॥९९॥
ततः संस्थानमास्थाय तौ चोदगिरतामसी । यक्षेण च तदग्रेण स्तम्भितौ निश्चलौ स्थितौ ॥१००॥
विक्रमं कर्तुमिच्छन्तावुपसर्गं महामुनेः । प्रतीहाराविव क्रूरौ तस्थतुः पार्श्वयोरिमौ ॥१०१॥
ततः सुविमले काले जाते जाताब्जबान्धवे । संहृत्य सन्मुनिर्योगं निःसृत्यैकान्ततः स्थितः ॥१०२॥
सङ्घश्चतुर्विधः सर्वः शालिग्रामजनस्तथा । प्राप्तः परमयोगीशमिति विस्मयवान् जगौ १०३॥
कावेतावीदृशौ पापौ धिक्कष्टं कर्तुमीहितौ अग्निवायू दुराचारावेतौ तावाततायिनौ ॥१०४॥
तौ चाचिन्तयतामुच्चैः प्रभावोऽयं महामुनेः । आवां येन बलोद्वृत्तौ स्तम्भितौ स्थावरीकृतौ ॥१०५॥
अनयाऽवस्थया मुक्तौ जीविष्यामो वयं यदा । तदा सम्प्रतिपत्स्यामो दर्शनं [1]मौनिसत्तमम् ॥१०६॥
अत्रान्तरे परिप्राप्तः सोमदेवः ससंभ्रमः । भार्ययाऽग्निलया साकं प्रसादयति तं मुनिम् ॥१०७॥
भूयो भूयः प्रणामेन बहुभिश्च प्रियोदितैः । दम्पती चक्रतुश्चाटुं पादमर्दनतत्परौ ॥१०८॥

मान उन मुनिराजको उन दोनों पापियोंने देखा ॥९३-९५॥ उन्हें देखते ही जिन्होंने तलवार खींचकर हाथमें ले ली थी तथा जो अत्यन्त कुपित हो रहे थे ऐसे उन ब्राह्मणोंने एक साथ कहा कि लोग आकर तेरे प्राणोंकी रक्षा करें। अरे श्रमण! अब तू कहाँ जायगा? ॥९६॥ हम ब्राह्मण पृथिवीमें श्रेष्ठ हैं तथा प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं और तू महादोषोंसे भरा निर्लज्ज है फिर भी हम लोगोंको तू 'शृगाल थे' ऐसा कहता है ॥९७॥

तदनन्तर जो अत्यन्त तीव्र क्रोधसे युक्त थे, दुष्ट थे, लाल-लाल नेत्रोंके धारक थे, बिना विचारे काम करनेवाले थे और दयासे रहित थे ऐसे उन दोनों ब्राह्मणोंको यक्षने देखा ॥९८॥ उन्हें देखकर वह देव विचार करने लगा कि अहो! देखो; ये ऐसे निर्दोष, शरीरसे निःस्पृह और ध्यानमें तत्पर मुनिको मारनेके लिए उद्यत हैं ॥९९॥ तदनन्तर तलवार चलानेके आसनसे खड़े होकर उन्होंने अपनी-अपनी तलवार ऊपर उठाई नहीं कि यक्षने उन्हें कील दिया जिससे वे मुनिराजके आगे उसी मुद्रामें निश्चल खड़े रह गये ॥१००॥ महामुनिके विरुद्ध उपसर्ग करनेकी इच्छा रखनेवाले वे दोनों दुष्ट उनकी दोनों ओर इस प्रकार खड़े थे मानो उनके अंगरक्षक ही हों ॥१०१॥

तदनन्तर निर्मल प्रातःकालके समय सूर्योदय होनेपर वे मुनिराज योग समाप्त कर एकान्त स्थानसे निकल बाहर मैदानमें बैठे ॥१०२॥ उसी समय चतुर्विध संघ तथा शालिग्रामवासी लोग उन योगिराजके पास आये सो यह दृश्य देख आश्चर्यचकित हो बोले कि अरे! ये कौन पापी हैं? हाय हाय कष्ट पहुँचानेके लिए उद्यत इन पापियोंको धिक्कार है। अरे ये उपद्रव करनेवाले तो वे ही आततायी अग्निभूति और वायुभूति हैं ॥१०३-१०४॥ अग्निभूति और वायुभूति भी विचार करने लगे कि अहो! महामुनिका यह कैसा उत्कृष्ट प्रभाव है कि जिन्होंने बलका दर्प रखनेवाले हम लोगोंको कीलकर स्थावर बना दिया ॥१०५॥ इस अवस्थासे छुटकारा होनेपर यदि हम जीवित रहेंगे तो इन उत्तम मुनिराजके दर्शन अवश्य करेंगे ॥१०६॥ इसी बीचमें घबड़ाया हुआ सोमदेव अपनी अग्निला स्त्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा और उन मुनिराजको प्रसन्न करने लगा ॥१०७॥ पैर दबानेमें तत्पर दोनों ही स्त्री पुरुष, बार-बार प्रणाम करके तथा अनेक

---

१. मुनिसत्तमम् म० ।

जीवतां देव दुःपुत्रावेतौ नः कोपमुत्सृज । सम्प्रेष्यबान्धवा नाथ वयमाज्ञाकरास्तव ॥१०९॥
संयतो वक्ति कः कोपः साधूनां यद्ब्रवीष्यदः । वयं सर्वस्य सदयाः सममित्रारिबान्धवाः ॥११०॥
प्राह यक्षोऽतिरक्ताक्षो बृहद्गम्भीरनिस्वनः । माऽस्याख्यानं गुरोरस्य जनमध्ये प्रदातकम् ॥१११॥
साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते । न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्यं दोषं कुर्वन्ति साधुषु ॥११२॥
यथाऽऽदर्शतले कश्चिदात्मानमवलोकयन् । यादृशं कुरुते वक्त्रं तादृशं पश्यति ध्रुवम् ॥११३॥
तद्वत्साधुं समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यतः । यादृशं कुरुते भावं तादृशं लभते फलम् ॥११४॥
प्ररोदनं प्रहासेन कलहं परुषोक्तितः । वधेन मरणं प्रोक्तं विद्वेषेण च पातकम् ॥११५॥
इति साधोर्नियुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना । फलेन तादृशेनैव कर्ता योगमुपाश्नुते ॥११६॥
एतौ स्वोपचितैर्दोषैः प्रेर्यमाणौ स्वकर्मभिः । तव पुत्रौ मया विप्र स्तम्भितौ न हि साधुना ॥११७॥
वेदाभिमाननिर्दग्धावेतौ [1]छद्मवनीपकौ । म्रियेतां धिक्क्रियाचारौ संयतस्यातितायिनौ ॥११८॥
इति जल्पन्तमत्युग्रं यक्षं [2]प्रतिभयभीषणम् । प्रसादयति साधुं च विप्रः प्राञ्जलिमस्तकः ॥११९॥
उद्र्ध्वबाहुः परिक्रोशन्निन्दयन्ताडयन्नुरः । सममग्निलया विप्रो [3]विप्रकीर्णात्मकोऽभवत् ॥१२०॥

मीठे वचन कहकर उनकी सेवा करने लगे ॥१०८॥ उन्होंने कहा कि हे देव ! ये मेरे दुष्ट पुत्र जीवित रहें, क्रोध छोड़िए, हे नाथ ! हम सब भाई-बान्धवों सहित आपके आज्ञाकारी हैं ॥१०९॥

इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि मुनियोंको क्या क्रोध है ? जो तुम यह कह रहे हो, हम तो सबके ऊपर दयासहित हैं तथा मित्र शत्रु भाई बान्धव आदि सब हमारे लिए समान हैं ॥११०॥ तदनन्तर जिसके नेत्र अत्यन्त लाल थे ऐसा यक्ष अत्यधिक गम्भीर स्वरमें बोला कि यह कार्य इन गुरु महाराजका है ऐसा जनसमूहके बीच नहीं कहना चाहिए ॥१११॥ क्योंकि जो मनुष्य साधुओंको देखकर उनके प्रति घृणा करते हैं वे शीघ्र ही अनर्थको प्राप्त होते हैं। दुष्ट मनुष्य अपनी दुष्टता तो देखते नहीं और साधुओंपर दोष लगाते हैं ॥११२॥ जिस प्रकार दर्पणमें अपने आपको देखता हुआ कोई मनुष्य मुखको जैसा करता है उसे अवश्य ही वैसा देखता है ॥११३॥ उसी प्रकार साधुको देखकर सामने जाना, खड़े होना आदि क्रियाओंके करनेमें उद्यत मनुष्य जैसा भाव करता है वैसा ही फल पाता है ॥११४॥ जो मुनिकी हँसी करता है वह उसके बदले रोना प्राप्त करता है। जो उनके प्रति कठोर शब्द कहता है वह उसके बदले कलह प्राप्त करता है, जो मुनिको मारता है वह उसके बदले मरणको प्राप्त होता है जो उनके प्रति विद्वेष करता है वह उसके बदले पाप प्राप्त करता है ॥११५॥ इस प्रकार साधुके विषयमें किये हुए निन्दनीय कार्यसे उसका करनेवाला वैसे ही कार्यके साथ समागम प्राप्त करता है ॥११६॥ हे विप्र ! तेरे ये पुत्र अपने ही द्वारा संचित दोष और अपने ही द्वारा कृत कर्मोंसे प्रेरित होते हुए मेरे द्वारा कीले गये हैं साधु महाराजके द्वारा नहीं ॥११७॥ जो वेदके अभिमानसे जल रहे हैं, अत्यन्त कठिन हैं, निन्दनीय क्रियाका आचरण करनेवाले हैं तथा संयमी साधुकी हिंसा करनेवाले है ऐसे तेरे ये पुत्र मृत्युको प्राप्त हों इसमें क्या हानि है ? ॥११८॥ हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए ब्राह्मण, इस प्रकार कहते हुए, तीव्र, क्रोध युक्त तथा शत्रु भयदायी यक्ष और मुनिराज—दोनोंको प्रसन्न करने लगा ॥११९॥ जिसने अपनी भुजा ऊपर उठाकर रक्खी थी, जो अत्यधिक चिल्लाता था, अपनी तथा अपने पुत्रोंकी निन्दा करता था, और अपनी छाती पीट रहा था ऐसा विप्र अग्निलाके साथ अत्यन्त पीड़ित हो रहा था ॥१२०॥

---

१. कुटिलौ श्री० टि० । २. शत्रुभयंकरम् । ३. विप्रकीर्णः पीडितः श्री० टि० ।

गुरुराह ततः कान्त हे यक्ष कमलेक्षण । मृष्यतामनयोर्दोषो मोहप्रजडचित्तयोः ॥१२१॥
जिनशासनवात्सल्यं कृतं सुकृतिना त्वया । नैतं प्राणिवध [1]भद्र मदर्थं कर्तुमर्हसि ॥१२२॥
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा गुह्यकेन विसर्जितौ । आश्वस्योपसृतौ भक्त्या पादमूलं गुरोस्ततः ॥१२३॥
नत्वा प्रदक्षिणां कृत्वा शिरःस्थकरकुड्मलौ । साधवीयां महाचर्यां ग्रहीतुं शक्तिवर्जितौ ॥१२४॥
अणुव्रतानि गृहीत्वा सम्यग्दर्शनभूषितौ । अभूतां श्रावकौ जातौ गृहधर्मसुखे रतौ ॥१२५॥
पितरावनयोः सम्यक्श्रद्धयाऽपरिकीर्तितौ । कालं गतौ विना [2]धर्मात्क्रमितौ भवसागरे ॥१२६॥
तौ तु सन्त्यक्तसन्देहौ जिनशासनभावितौ । हिंसाद्यं लौकिकं कार्यं वर्जयन्तौ विषं यथा ॥१२७॥
कालं कृत्वा समुत्पन्नौ सौधर्मे विबुधोत्तमौ । सर्वेन्द्रियमनोह्लादं यत्र दिव्यं महत्सुखम् ॥१२८॥
एत्यायोध्यां समुद्रस्य धारण्याः कुक्षिसम्भवौ । नन्दनौ नयनानन्दौ श्रेष्ठिनस्तौ बभूवतुः ॥१२९॥
पूर्णकाञ्चनभद्राख्यौ भ्रातरावेव तौ सुखम् । पुनः श्रावकधर्मेण गतौ सौधर्मदेवताम् ॥१३०॥
अयोध्यानगरीन्द्रस्य हेमनाभस्य भामिनी । नाम्नाऽमरावती तस्यां समुत्पन्नौ दिवश्च्युतौ ॥१३१॥
जगतीह प्रविख्यातौ संज्ञया मधुकैटभौ । अजय्यौ भ्रातरौ चारू कृतान्तसमविभ्रमौ ॥१३२॥
ताभ्यामियं समाक्रान्ता मही सामन्तसङ्कटा । स्थापिता स्ववशे राजन् प्रज्ञाभ्यां शेमुषी यथा ॥१३३॥
नेच्छत्याज्ञां नरेन्द्रैको भीमो नाम महाबलः । शैलान्तः पुरमाश्रित्य चमरो नन्दनं यथा ॥१३४॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे कमललोचन ! सुन्दर ! यक्ष ! जिनका चित्त मोहसे अत्यन्त जड़ हो रहा है ऐसे इन दोनोंका दोष क्षमा कर दिया जाय ॥१२१॥ तुझ पुण्यात्माने जिन-शासनके साथ वात्सल्य दिखलाया यह ठीक है किन्तु हे भद्र ! मेरे निमित्त यह प्राणिवध करना उचित नहीं है ॥१२२॥ तत्पश्चात् 'जैसी आप आज्ञा करें' यह कहकर यक्षने दोनों विप्र-पुत्रोंको छोड़ दिया । तदनन्तर दोनों ही विप्र-पुत्र समाधान होकर भक्तिपूर्वक गुरुके चरण-मूलमें पहुँचे ॥१२३॥ और दोनोंने ही हाथ जोड़ मस्तकसे लगा प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया तथा साधु दीक्षा प्रदान करनेकी प्रार्थना की । परन्तु साधु-सम्बन्धी कठिन चर्याको ग्रहण करनेके लिए उन्हें शक्तिरहित देख मुनिराजने कहा कि तुम दोनों सम्यग्दर्शनसे विभूषित होकर अणुव्रत ग्रहण करो। आज्ञानुसार वे गृहस्थ धर्मके सुखमें लीन विवेकी श्रावक हो गये ॥१२४-१२५॥इनके माता-पिता समीचीन श्रद्धासे रहित थे इसलिए मरकर धर्मके विना संसार सागरमें भ्रमण करते रहे ॥१२६॥ परन्तु अग्निभूति और वायुभूति संदेह छोड़ जिनशासनकी भावनासे ओत-प्रोत हो गये थे, तथा हिंसादिक लौकिक कार्य उन्होंने विषके समान छोड़ दिये थे इसलिए वे मरकर उस सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुए जहाँ कि समस्त इन्द्रियों और मनको आह्लादित करनेवाला दिव्य महान् सुख उपलब्ध था ॥१२७-१२८॥

तदनन्तर वे दोनों अयोध्या आकर वहाँके समुद्र सेठकी धारिणी नामक स्त्रीके उदरसे नेत्रोंको आनन्द देनेवाले पुत्र हुए ॥१२९॥ पूर्णभद्र और काञ्चनभद्र उनके नाम थे । ये दोनों भाई सुखसे समय व्यतीत करते थे । तदनन्तर पुनः श्रावक धर्म धारणकर उसके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ॥१३०॥ अबकी बार वे दोनों, स्वर्गसे च्युत हो अयोध्या नगरीके राजा हेमनाभ और उनकी रानी अमरावतीके इस संसारमें मधु, कैटभ नामसे प्रसिद्ध पुत्र हुए । ये दोनों भाई अजेय, सुन्दर तथा यमराजके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे ॥१३१-१३२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिस प्रकार विद्वान् लोग अपनी बुद्धिको अपने आधीन कर लेते हैं उसी प्रकार इन दोनोंने सामन्तोंसे भरी हुई इस पृथिवीको आक्रमण कर अपने आधीन कर लिया था ॥१३३॥ किन्तु एक भीम नामका महाबलवान् राजा उनकी आज्ञा नहीं मानता था । जिस

---

१. भद्रं म० । २. धर्माद्भ्रमतः म० ।

वीरसेनेन लेखश्च प्रेषितस्तस्य भूपतेः । उद्वासितानि धामानि पृथिव्यां भीमवह्निना ॥१३५॥
ततो मधु क्षणं क्रुद्धो भीमकस्योपरि द्रुतम् । ययौ सर्वबलौघेन युक्तो योधैः समन्ततः ॥१३६॥
क्रमान्मार्गवशात्प्राप्तो न्यग्रोधनगरं च तत् । वीरसेनो नृपो यत्र प्रीतियुक्तो विवेश च ॥१३७॥
चन्द्राभा चन्द्रकान्तास्या वीरसेनस्य भामिनी । देवी निरीक्षिता तेन मधुना जगदिन्दुना ॥१३८॥
अनया सह संवासो वरं विन्ध्यवनान्तरे । चन्द्राभया विना भूतं न राज्यं सार्वभूमिकम् ॥१३९॥
इति सञ्चिन्तयन् राजा भीमं निर्जित्य संयुगे । आस्थापयद्वशे शत्रूनन्यांश्च तत्कृताशयः ॥१४०॥
अयोध्यां पुनरागत्य सपत्नीकान्नराधिपान् । आहूय विपुलैर्दानैर्विसर्जयति मानितान् ॥१४१॥
आहूतो वीरसेनोऽपि सह पत्न्या ययौ द्रुतम् । अयोध्याबहिरुद्याने मध्येऽस्थात्सरयूतटे ॥१४२॥
देव्या सह समाहूतः प्रविष्टो भवनं मधोः । [1]उदारदानसन्मानो वीरसेनो विसर्जितः ॥१४३॥
अद्यापि मन्यते नेयमिति रुद्धा मनोहरा । चन्द्राभा नरचन्द्रेण प्रेषितान्तःपुरं ततः ॥१४४॥
महादेव्यभिषेकेण प्रापिता चाभिषेचनम् । आरूढा सर्वदेवीनामुपरिस्थितमास्पदम् ॥१४५॥
श्रियेव स तया साकं निमग्नः सुखसागरे । स्वं सुरेन्द्रसमं मेने भोगान्धीकृतमानसः ॥१४६॥

प्रकार चमरेन्द्र नन्दन वनको पाकर प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार वह पहाड़ी दुर्गका आश्रय कर प्रफुल्लित था ॥१३४॥ राजा मधुके एक भक्त सामन्त वीरसेनने उसके पास इस आशयका पत्र भी भेजा कि हे नाथ ! इधर भीमरूपी अग्निने पृथिवीके समस्त घर उजाड़ कर दिये हैं ॥१३५॥

तदनन्तर उसी क्षण क्रोधको प्राप्त हुआ राजा मधु, अपनी सब सेनाओंके समूह तथा योधाओंसे परिवृत हो राजा भीमके प्रति चल पड़ा ॥१३६॥ क्रम-क्रमसे चलता हुआ वह मार्ग-वश उस न्यग्रोध नगरमें पहुँचा जहाँ कि उसका भक्त वीरसेन रहता था। राजा मधुने बड़े प्रेमके साथ उसमें प्रवेश किया ॥१३७॥ वहाँ जाकर जगत्के चन्द्र स्वरूप राजा मधुने वीरसेनकी चन्द्राभा नामकी चन्द्रमुखी भार्या देखी। उसे देखकर वह विचार करने लगा कि इसके साथ विन्ध्याचलके वनमें निवास करना अच्छा है। इस चन्द्राभाके विना मेरा राज्य सार्वभूमिक नहीं है—अपूर्ण है ॥१३८-१३९॥ ऐसा विचार करता हुआ राजा उस समय आगे चला गया और युद्धमें भीमको जीतकर अन्य शत्रुओंको भी उसने वश किया। परतु यह सब करते हुए भी उसका मन उसी चन्द्राभामें लगा रहा ॥१४०॥ फलस्वरूप उसने अयोध्या आकर राजाओंको अपनी-अपनी पत्नियोंके सहित बुलाया और उन्हें बहुत भारी भेंट देकर सम्मानके साथ विदा कर दिया ॥१४१॥ राजा वीरसेनको भी बुलाया सो वह अपनी पत्नीके साथ शीघ्र ही गया और अयोध्याके बाहर बगीचेमें सरयू नदीके तटपर ठहर गया ॥१४२॥ तदनन्तर सन्मानके साथ बुलाये जानेपर उसने अपनी रानीके साथ मधुके भवनमें प्रवेश किया। कुछ समय बाद उसने विशेष भेंटके द्वारा सन्मान कर वीरसेनको तो विदा कर दिया और चन्द्राभाको अपने अन्तःपुरमें भेज दिया परन्तु भोला वीरसेन अब भी यह नहीं जान पाया कि हमारी सुन्दरी प्रिया यहाँ रोक ली गई है ॥१४३-१४४॥

तदनन्तर महादेवीके अभिषेक द्वारा, अभिषेकको प्राप्त हुई चन्द्राभा सब देवियोंके ऊपर स्थानको प्राप्त हुई। भावार्थ—सब देवियोंमें प्रधान देवी बन गई ॥१४५॥ भोगोंसे जिसका मन अन्धा हो रहा था ऐसा राजा मधु, लक्ष्मीके समान उस चन्द्राभाके साथ सुखरूपी सागरमें निमग्न होता हुआ अपने आपको इन्द्रके समान मानने लगा ॥१४६॥

---

१. उदारदार म० ।

वीरसेननृपः सोऽयं विज्ञाय विहृतां प्रियाम् । उन्मत्तत्वं परिप्राप्तो रतिं क्वापि न विन्दते ॥१४७॥
मण्डवस्याभवच्छिष्यस्तापसोऽसौ जलप्रियः । मूढं विस्मापयंल्लोकं तपः पञ्चाग्निकं श्रितः ॥१४८॥
अन्यदा मधुराजेन्द्रो धर्मासनमुपागतः । करोति मन्त्रिभिः सार्द्धं व्यवहारविचारणम् ॥१४९॥
भूपाकाचारसम्पन्नं सत्यं सम्मदसङ्गतम् । प्रविष्टोऽन्तःपुरं धीरस्तपनेऽस्ताभिकाङ्क्षुके ॥१५०॥
खिन्ना तं प्राह चन्द्राभा किमित्यद्य चिरायितम् । वयं क्षुदर्दिता नाथ दुःखं वेलामिमां स्थिताः ॥१५१॥
सोऽवोचद्व्यवहारोऽयमरालः[1] पारदारिकः । छेत्तुं न शक्यते यस्मात्तस्मादद्य चिरायितम् ॥१५२॥
विहस्योवाच चन्द्राभा को दोषोऽन्यप्रियारतौ । परभार्या प्रिया यस्य तं पूजय यथेप्सितम् ॥१५३॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा क्रुद्धो मधुविभुर्जगौ । ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः ॥१५४॥
दण्ड्याः पञ्चकदण्डेन निर्वास्याः पुरुषाधमाः । स्पृशन्तोऽप्यबलामन्यां भाषयन्तोऽपि दुर्मताः ॥१५५॥
सम्मूढाः परदारेषु ये पापादनिवर्तिनः । अधः प्रपतनं येषां ते पूज्याः कथमीदृशाः ॥१५६॥
देवी पुनरुवाचेदं सहसा कमलेक्षणा । अहो धर्मपरो जातु भवान् भूपालनोद्यतः ॥१५७॥
महान् यद्येष दोषोऽस्ति परदारैषिणां नृणाम् । एतं निग्रहमुर्वीश न करोषि किमात्मनः ॥१५८॥
प्रथमस्तु भवानेव परदाराभिगामिनाम् । कोऽन्येषां क्रियते दोषो यथा राजा तथा प्रजाः ॥१५९॥
स्वयमेव नृपो यत्र नृशंसः पारदारिकः । तत्र किं व्यवहारेण कारणं स्वस्थतां व्रज ॥१६०॥

इधर राजा वीरसेनको जब पता चला कि हमारी प्रिया हरी गई है तो वह पागल हो गया और किसी भी स्थानमें रतिको प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् उसे कहीं भी अच्छा नहीं लगा ॥१४७॥ अन्तमें मूर्ख मनुष्योंको आनन्द देनेवाला राजा वीरसेन किसी मण्डवनामक तापसका शिष्य हो गया और मूर्ख मनुष्योंको आश्चर्यमें डालता हुआ पञ्चाग्नितप तपने लगा ॥१४८॥

किसी एक दिन राजा मधु धर्मासनपर बैठकर मन्त्रियोंके साथ राज्यकार्यका विचार कर रहा था। सो ठीक ही है क्योंकि राजाओंके आचारसे सम्पन्न सत्य ही हर्षदायक होता है। उस दिन राज्यकार्यमें व्यस्त रहनेके कारण धीरवीर राजा अन्तःपुरमें तब पहुँचा जब कि सूर्य अस्त होनेके सन्मुख था ॥१४९-१५०॥ खेदखिन्न चन्द्राभाने राजासे कहा कि नाथ! आज इतनी देर क्यों की? हमलोग भूखसे अबतक पीड़ित रहे ॥१५१॥ राजाने कहा कि यतश्च यह परस्त्री सम्बन्धी व्यवहार (मुकद्दमा) टेढ़ा व्यवहार था अतः बीचमें नहीं छोड़ा जा सकता था इसीलिए आज देर हुई है ॥१५२॥ तब चन्द्राभाने हँसकर कहा कि परस्त्रीसे प्रेम करनेमें दोष ही क्या है? जिसे परस्त्री प्यारी है उसको तो इच्छानुसार पूजा करनी चाहिए ॥१५३॥ उसके उक्त वचन सुन राजा मधुने क्रुद्ध होकर कहा कि जो दुष्ट परस्त्री-लम्पट हैं वे अवश्य ही दण्ड देनेके योग्य हैं इसमें संशय नहीं है ॥१५४॥ जो परस्त्रीका स्पर्श करते हैं अथवा उससे वार्तालाप करते हैं ऐसे दुष्ट नीच पुरुष भी पाँच प्रकारके दण्डसे दण्डित करने योग्य हैं तथा देशसे निकालनेके योग्य हैं फिर जो पापसे निवृत्त नहीं होनेवाले परस्त्रियोंमें अत्यन्त मोहित हैं अर्थात् परस्त्रीका सेवन करते हैं उनका तो अधःपात—नरक जाना निश्चित ही है ऐसे लोग पूजा करने योग्य कैसे हो सकते हैं? ॥१५५-१५६॥ तदनन्तर कमललोचना देवी चन्द्राभाने बीचमें ही बात काटते हुए कहा कि अहो! आप बड़े धर्मात्मा हैं? तथा पृथिवीका पालन करनेमें उद्यत हैं ॥१५७॥ यदि परदाराभिलाषी मनुष्योंका यह बड़ा भारी दोष माना जाता है तो हे राजन्! अपने आपके लिए भी आप यह दण्ड क्यों नहीं देते? ॥१५८॥ परस्त्रीगामियोंमें प्रथम तो आप ही हैं फिर दूसरोंको दोष क्यों दिया जाता है क्योंकि यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है ॥१५९॥ जहाँ राजा स्वयं क्रूर एवं परस्त्रीगामी है वहाँ व्यवहार-अभियोग

१. वक्रः।

येन बीजाः प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम् । जातस्ततो ज्वालाद्भिः किमिहापरमुच्यताम् ॥१६१॥
उपलभ्येदृशं वाक्यं प्रतिरुद्धोऽभवन्मधुः । एवमेवेति तां देवीं पुनः पुनरभाषत ॥१६२॥
तथाप्यैश्वर्यपाशेन वेष्टितो दुःखोदधेः । भोगसंवर्तनो येन कर्मणा नावमुच्यते ॥१६३॥
द्राघीयसि[1] गते काले सुप्रबोधसुखान्विते । सिंहपादाह्वयः साधुः प्राप्तोऽयोध्यां महागुणः ॥१६४॥
सहस्राम्रवने कान्ते मुनीन्द्रं समवस्थितम् । श्रुत्वा मधुः समायासीत्सपत्नीकः सहानुगः ॥१६५॥
गुरुं प्रणम्य विधिना संविश्य धरणीतले । धर्मं संश्रुत्य जैनेन्द्रं भोगेभ्यो विरतोऽभवत् ॥१६६॥
राजपुत्री महागोत्रा रूपेणाप्रतिमा भुवि । अत्याक्षीदधिराज्यं च ज्ञात्वा दुर्गतिवेदनाम् ॥१६७॥
विदित्वैश्वर्यमानाय्यं मुनीभूतः स कैटभः । महाचर्यासमाक्लिष्टो विजहार महीं मधुः ॥१६८॥
ररक्ष माधवीं क्षोणीं राज्यं च कुलवर्द्धनः । सर्वस्य नयनानन्दः स्वजनस्य परस्य च ॥१६९॥

वंशस्थवृत्तम्

मधुः सुघोरं परमं तपश्चरन्महामनाः वर्षशतानि भूरिशः ।
विधाय कालं विधिनाऽऽरणाच्युते जगाम देवेन्द्रपदं रणच्युतः ॥१७०॥

उपजातिः

अयं प्रभावो जिनशासनस्य यदिन्द्रतापीदृशपूर्ववृत्तैः ।
को विस्मयो वा त्रिदशेश्वरत्वे प्रयान्ति यन्मोक्षपुरं प्रयत्नात् ॥१७१॥

देखनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? सर्वप्रथम आप स्वस्थताको प्राप्त होइए ॥१६०॥ जिससे अङ्कुरोंकी उत्पत्ति होती है तथा जो जगत्का जीवनस्वरूप है उस जलसे भी यदि अग्नि उत्पन्न होती है तब फिर और क्या कहा जाय ? ॥१६१॥ इस प्रकारके वचन सुनकर राजा मधु निरुत्तर हो गया और 'इसी प्रकार है' यह वचन बार-बार चन्द्राभासे कहने लगा ॥१६२॥ इतना सब हुआ फिर भी ऐश्वर्यरूपी पाशसे वेष्टित हुआ वह दुःखरूपी सागरसे निकल नहीं सका सो ठीक है क्योंकि भोगोंमें आसक्त मनुष्य कर्मसे छूटता नहीं है ॥१६३॥

अथानन्तर सम्यक्प्रबोध और सुखसे सहित बहुत भारी समय बीत जानेके बाद एक बार महागुणोंके धारक सिंहपादनामक मुनि अयोध्या आये ॥१६४॥ और वहाँके अत्यन्त सुन्दर सहस्राम्र वनमें ठहर गये। यह सुन अपनी पत्नी तथा अनुचरोंसे सहित राजा मधु उनके पास गया ॥१६५॥ वहाँ विधिपूर्वक गुरुको प्रणामकर वह पृथिवीतलपर बैठ गया तथा जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म श्रवणकर भोगोंसे विरक्त हो गया ॥१६६॥ जो उच्च कुलीन थी तथा सौन्दर्यके कारण जो पृथ्वीपर अपनी सानी नहीं रखती थी ऐसी राजपुत्री तथा विशाल राज्यको उसने दुर्गतिकी वेदना जान तत्काल छोड़ दिया ॥१६७॥ उधर मधुका भाई कैटभ भी ऐश्वर्यको चञ्चल जानकर मुनि हो गया। तदनन्तर मुनिव्रतरूपी महाचर्यासे क्लेशका अनुभव करता हुआ मधु पृथ्वीपर विहार करने लगा ॥१६८॥ स्वजन और परजन-सभीके नेत्रोंको आनन्द देनेवाला कुलवर्धन राजा मधुकी विशाल पृथ्वी और राज्यका पालन करने लगा ॥१६९॥ महामनस्वी मधुमुनि सैकड़ों वर्षों तक अत्यन्त कठिन एवं उत्कृष्ट तपश्चरण करते रहे। अन्तमें विधिपूर्वक मरणकर रणसे रहित आरणाच्युत स्वर्गमें इन्द्रपदको प्राप्त हुए ॥१७०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो ! जिनशासनका प्रभाव आश्चर्यकारी है क्योंकि जिनका पूर्वजीवन ऐसा निन्दनीय रहा उन लोगोंने भी इन्द्रपद प्राप्त कर लिया। अथवा इन्द्रपद प्राप्त कर लेनेमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि प्रयत्न

---

१. दीर्घतरे।

अनुष्टुप्

मधोरिन्द्रस्य संभूतिरेषा ते कथिता मया। सीता यस्य प्रतिस्पर्द्धी संभूतः पाकशासनः ॥१७२॥

वंशस्थवृत्तम्

अतः परं चित्तहरं मनीषिणां कुमारवीराष्टकचेष्टितं परम्।
वदामि पापस्य विनाशकारणं कुरु श्रुतौ श्रेणिक भूभृतां रवे ॥१७३॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते मधूपाख्यानं नाम नवोत्तरशतं पर्व ॥१०९॥

करनेसे तो मोक्षनगर तक पहुँच जाते हैं ॥१७१॥ हे श्रेणिक ! मैंने तेरे लिए उस मधु इन्द्रकी उत्पत्ति कही जिसकी कि प्रतिस्पर्धा करनेवाली सीता प्रतीन्द्र हुई है ॥१७२॥ हे राजाओंके सूर्य ! श्रेणिक महाराज ! अब मैं इसके आगे विद्वानोंके चित्तको हरनेवाला, आठ वीर कुमारोंका वह चरित्र कहता हूँ कि जो पापका नाश करनेवाला है, उसे तू श्रवण कर ॥१७३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधुका वर्णन करनेवाला एक सौ नौवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१०९॥

दशाधिकशतं पर्व

काञ्चनस्थाननाथस्य तनये रूपगर्विते । द्वे काञ्चनरथस्याऽऽस्तां ययोर्माता शतह्रदा ॥१॥
तयोः स्वयंवरार्थेन समस्तान् भूनभश्चरान् । आह्वाययत्पिता प्रीत्या लेखवाहैर्महाजवैः ॥२॥
दत्तो विज्ञापितो लेखो विनीतापतये[1] तथा । स्वयंवरविधानं मे दुहितुश्चिन्त्यतामिति ॥३॥
ततस्तौ रामलक्ष्मीशौ समुत्पन्नकुतूहलौ । ऋद्ध्या परमया युक्तान् सर्वान् प्राहिणुतां सुतान् ॥४॥
ततः कुमारधीरास्ते कृत्वाऽग्रे लवणाङ्कुशौ । प्रययुः काञ्चनस्थानं सुप्रेमाणः परस्परम् ॥५॥
विमानशतमारूढा विद्याधरगणावृताः । श्रिया देवकुमाराभा वियन्मार्गं समागताः ॥६॥
आपूर्यमाणसत्सैन्याः पश्यन्तो दूरगां महीम् । काञ्चनस्यन्दनस्याऽऽयुः पुटभेदनमुत्तमम् ॥७॥
यथार्हं द्वे अपि श्रेण्यौ निविष्टे तत्र रेजतुः । सदसीव सुधर्मायां नानालङ्कारभूषिते ॥८॥
समस्तविभवोपेता नरेन्द्रास्तत्र रेजिरे । विचित्रकृतसञ्चेष्टास्त्रिदशा इव नन्दने ॥९॥
तत्र कन्ये दिनेऽन्यस्मिन्प्रशस्ते कृतमङ्गले । निर्जग्मतुर्निजावासाद्‌ह्री[2] लक्ष्म्याविव सद्‌गुणे ॥१०॥
देशतः कुलतो वित्ताच्चेष्टितान्नामधेयतः । ताभ्यामकथयत्सर्वान् कञ्चुकी जगतीपतीन् ॥११॥
प्लवङ्गहरिशार्दूलवृषनागादिकेतनान् । विद्याधरान् सुकन्ये ते आलोकेतां शनैः क्रमात् ॥१२॥
दृष्ट्वा निश्चित्य ते प्राप्ता वैलक्ष्यं [3]विहतत्विषः । दृश्यमानाः समारूढास्तुलां सन्देहविग्रहाम् ॥१३॥

अथानन्तर काञ्चनस्थान नामक नगरके राजा काञ्चनरथकी दो पुत्रियाँ थीं जो सौन्दर्यके गर्वसे गर्वित थीं तथा जिनकी माताका नाम शतह्रदा था ॥१॥ उन दोनों कन्याओंके स्वयंवरके लिए उनके पिताने महावेगशाली पत्रवाहक दूत भेजकर समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंको बुलवाया ॥२॥ एक पत्र इस आशयका अयोध्याके राजाके पास भी भेजा गया कि मेरी पुत्रीका स्वयंवर है अतः विचारकर कुमारोंको भेजिए ॥३॥ तदनन्तर जिन्हें कुतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे राम और लक्ष्मणने परम सम्पदासे युक्त अपने सब कुमार वहाँ भेजे ॥४॥ तत्पश्चात् परस्पर प्रेमसे भरे हुए, वे सब कुमार, लवण और अंकुशको आगेकर काञ्चनस्थानकी ओर चले ॥५॥ सैकड़ों विमानोंमें बैठे, विद्याधरोंके समूहसे आवृत एवं लक्ष्मीसे देवकुमारोंके समान दिखनेवाले वे सब कुमार आकाश-मार्गसे जा रहे थे ॥६॥ जिनकी सेना उत्तरोत्तर बढ़ रही थी तथा जो दूर छूटी पृथिवीको देखते जाते थे ऐसे सब कुमार काञ्चनरथके उत्तम नगरमें पहुँचे ॥७॥ वहाँ देव-सभाके समान सुशोभित सभामें नाना अलंकारोंसे भूषित यथायोग्य स्थापित विद्याधरों और भूमिगोचरियोंकी दोनों श्रेणियाँ सुशोभित हो रहीं थीं ॥८॥ समस्त वैभवोंसे सहित राजा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए उन श्रेणियोंमें उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कि नन्दन वनमें देव सुशोभित होते हैं ॥९॥

वहाँ दूसरे दिन जिनका मङ्गलाचार किया गया था तथा जो उत्तम गुणोंको धारण करने वाली थी ऐसी दोनों कन्याएँ ह्री और लक्ष्मीके समान अपने निवास-स्थानसे बाहर निकलीं ॥१०॥ स्वयंवर-सभामें जो राजा आये थे कंचुकीने उन सबका देश, कुल, धन, चेष्टा तथा नामकी अपेक्षा दोनों कन्याओंके लिए वर्णन किया ॥११॥ ये सब वानर, सिंह, शार्दूल, वृषभ तथा नाग आदिकी पताकाओंसे सहित विद्याधर बैठे हैं। हे उत्तम कन्याओ ! इन्हें तुम क्रम-क्रम से देखो ॥१२॥ उन कन्याओंको देखकर जो लज्जाको प्राप्त हो रहे थे तथा जिनकी कान्ति फीकी

१. अयोध्यापतये । २. -ह्रीलक्ष्म्याविव म० । ३. विहितत्विषः म० ।

प्रेक्ष्यन्ते ये तु ते स्वस्य सज्जयन्तो विभूषणम् । नाज्ञासिषुः क्रियः कृत्यास्तिष्ठाम इति चञ्चलाः ॥१४॥
प्रवरिष्यति कं त्वेषा रूपगर्वज्वराकुला । मन्येऽस्माकमिति प्राप्ताश्चिन्तां ते चलमानसाः ॥१५॥
गृहीते किं विजित्यैते सुरासुरजगद्द्वयम् । पताके कामदेवेन लोकोन्मादनकारणे ॥१६॥
अथोत्तमकुमार्यौ ते निरीक्ष्य लवणाङ्कुशौ । विद्धे मन्मथबाणेन निश्चलत्वमुपागते ॥१७॥
महादृष्ट्याऽनुरागेण बद्ध्यातिमनोहरः । अनङ्गलवणोऽग्राहि मन्दाकिन्याऽग्रकन्यया ॥१८॥
शशाङ्कवक्त्रया चारुभाग्यया वरकन्यया । शशाङ्कभाग्यया युक्तो जगृहे मदनाङ्कुशः ॥१९॥
ततो हलहलारावस्तस्मिन् सैन्ये समुत्थितः । जयोत्कृष्टहरिस्वानसहितः परमाकुलः ॥२०॥
मन्ये व्यपाटयन् व्योम हरितो वा समन्ततः । उड्डीयमानैर्लोकस्य मनोभिः परमत्रपैः ॥२१॥
अहो सदृशसम्बन्धो दृष्टोऽस्माभिरयं परः । गृहीतो यत्सुकन्याभ्यामेतौ[1] पद्माभनन्दनौ ॥२२॥
गम्भीरं भुवनाख्यातमुदारं[2] लवणं गता । मन्दाकिनी यदेतं हि नापूर्णं कृतमेतया ॥२३॥
जेतुं सर्वजगत्कान्तिं चन्द्रभाग्या समुद्यता । अकरोत्साधु यद्योग्यं मदनाङ्कुशमग्रहीत् ॥२४॥
इति तत्र विनिश्चेरुः सज्जनानां गिरः पराः । सतां हि साधुसम्बन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥२५॥
विशल्यादिमहादेवीनन्दनाश्चारुचेतसः । अष्टौ कुमारवीरास्ते प्रख्याता [3]वसवो यथा ॥२६॥
शतैरर्धतृतीयैर्वा भ्रातृणां प्रीतिमानसैः । युक्तास्तारागणान्तस्था ग्रहा इव विरेजिरे ॥२७॥

पड़ गई थी ऐसे राजकुमार उन कन्याओंके द्वारा देखे जाकर संशयकी तराजूपर आरूढ़ हो रहे थे ॥१३॥ जो राजकुमार उन कन्याओंके द्वारा देखे जाते थे वे अपने आभूषणोंको सजाते हुए करने योग्य क्रियाओंको भूल जाते थे तथा हम कहाँ बैठे हैं यह भूल चञ्चल हो उठते थे ॥१४॥ सौन्दर्यरूपी गर्वके ज्वरसे आकुल यह कन्या हम लोगोंमेंसे किसे वरेगी इस चिन्ताको प्राप्त हुए राजकुमार चञ्चलचित्त हो रहे थे ॥१५॥ वे उन कन्याओंको देखकर विचार करने लगते थे कि क्या देव और दानवोंके दोनों जगत्को जीतकर कामदेवके द्वारा ग्रहण की हुई, लोगोंके उन्मादकी कारणभूत ये दो पताकाएँ ही हैं ॥१६॥

अथानन्तर वे दोनों कुमारियाँ लवणाङ्कुशको देख कामबाणसे विद्ध हो निश्चल खड़ी हो गयीं ॥१७॥ उन दोनों कन्याओंमें मन्दाकिनी नामकी जो बड़ी कन्या थी उसने अनुरागपूर्ण महादृष्टिसे अनङ्गलवणको ग्रहण किया ॥१८॥ और चन्द्रमुखी तथा सुन्दर भाग्यसे युक्त चन्द्र-भाग्या नामकी दूसरी उत्तम कन्याने अपने योग्य मदनाङ्कुशको ग्रहण किया ॥१९॥ तदनन्तर उस सेनामें जयध्वनिसे उत्कृष्ट सिंहनादसे सहित हलहलका तीव्र शब्द उठा ॥२०॥ ऐसा जान पड़ता था कि तीव्र लज्जासे भरे हुए लोगोंके जो मन सब ओर उड़े जा रहे थे उनसे मानों आकाश अथवा दिशाएँ ही फटी जा रही थीं ॥२१॥ उस कोलाहलके बीच समझदार मनुष्य कह रहे थे कि अहो ! हम लोगोंने यह योग्य उत्कृष्ट सम्बन्ध देख लिया जो इन कन्याओंने रामके इन पुत्रोंको ग्रहण किया है ॥२२॥ मन्दाकिनी अर्थात् गङ्गानदी, गम्भीर तथा संसारप्रसिद्ध, लवणसमुद्रके पास गयी है सो इस लवण अर्थात् अनंग लवणके पास जाती हुई इस मन्दाकिनी नामा कन्याने भी कुछ अपूर्ण अयोग्य काम नहीं किया है ॥२३॥ और सर्व जगत्की कान्तिको जीतनेके लिए उद्यत इस चन्द्रभाग्याने जो मदनांकुशको ग्रहण किया है सो अत्यन्त योग्य कार्य किया है ॥२४॥ इस प्रकार उस सभामें सज्जनोंकी उत्तम वाणी सर्वत्र फैल रही थी सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम सम्बन्धसे सज्जनोंका चित्त आनन्दको प्राप्त होता ही है ॥२५॥ लक्ष्मणकी विशल्या आदि आठ महादेवियोंके जो आठ वीर कुमार, सुन्दर चित्तके धारक, आठ वसुओंके समान सर्वत्र प्रसिद्ध थे वे प्रीतिसे भरे हुए अपने अढ़ाई सौ भाइयोंसे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो तारागणोंके मध्यमें स्थित ग्रह ही हों ॥२६-२७॥

१. -मेता म० । २. भुवनं ख्यातं म० । ३. वासवो म० ।

बलवन्तः समुद्वृत्तास्तेऽन्ये लक्ष्मणनन्दनाः । क्रोधादुत्पतितुं शक्ता वैदेहीनन्दनौ यतः ॥२८॥
ततोऽष्टाभिः[1] सुकन्याभि[2] तद्भ्रातृबलमुद्धतम् । मन्त्रैरिव शमं नीतं भुजङ्गमकुलं[3] चलम् ॥२९॥
प्रशान्ति भ्रातरो यात तद्भ्रातृभ्यां समं ननु । किमाभ्यां क्रियते कार्यं कन्याभ्यामधुना शुभाः ॥३०॥
स्वभावाद्वनिता जिह्मा विशेषादन्यचेतसः । ततः [4]सुहृदयस्तासामर्थे को विकृतिं भजेत् ॥३१॥
अपि निर्जितदेवीभ्यामेताभ्यां नास्ति कारणम् । अस्माकं चेत्प्रियं कर्तु[5] निवर्तध्वमितो मनः ॥३२॥
एवमष्टकुमाराणां वचनैः [6]प्रग्रहैरिव । तुरङ्गमबलं[7] वृन्दं भ्रातॄणां स्थापितं वशे ॥३३॥
वृत्तौ यत्र[8] सुकन्याभ्यां वैदेहीतनुसम्भवौ । प्रदेशे तत्र संवृत्तस्तुमुलस्तूर्यनिस्वनः ॥३४॥
वंशाः सकाहलाः शङ्खा भम्भाभेर्यः सझर्झराः । मनःश्रोत्रहरं नेदुर्व्याप्तदूरदिगन्तराः ॥३५॥
स्वायंवरीं समालोक्य विभूतिं लक्ष्मणात्मजाः । [9]शुशुचुर्वीक्ष्य देवेन्द्रीमिव क्षुद्रर्धयः सुराः ॥३६॥
नारायणस्य पुत्राः स्मो द्युतिकान्तिपरिच्छदाः । नवयौवनसम्पन्नाः सुसहाया बलोत्कटाः ॥३७॥
गुणेन केन हीनाः स्म यदेकमपि नो जनम् । परित्यज्य वृतावेतौ कन्याभ्यां जानकीसुतौ ॥३८॥
अथवा विस्मयः कोऽत्र किमपीदं जगद्गतम् । कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं सचराचरम् ॥३९॥
प्रागेव यदवाप्तव्यं येन यत्र यथा यतः । तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः ॥४०॥

वहाँ उन आठके सिवाय बलवान् तथा उत्कट चेष्टाके धारक जो लक्ष्मणके अन्य पुत्र थे वे क्रोधवश लवण और अंकुशकी ओर झपटनेके लिए तत्पर हो गये परन्तु उन सुन्दर कन्याओंको लक्ष्यकर उद्धत चेष्टा दिखानेवाली भाइयोंकी उस सेनाको पूर्वोक्त आठ प्रमुख वीरोंने उस प्रकार शान्त कर दिया जिस प्रकारकी मन्त्र चञ्चल सर्पोंके समूहको शान्त कर देते हैं ॥२८-२९॥ उन आठ भाइयोंने अन्य भाइयोंको समझाते हुए कहा कि 'भाइयो ! तुम सब इन दोनों भाइयोंके साथ शान्तिको प्राप्त होओ । हे भद्र जनो ! अब इन दोनों कन्याओंसे क्या कार्य किया जाना है ? स्त्रियाँ स्वभावसे ही कुटिल हैं फिर जिनका चित्त दूसरे पुरुषमें लग रहा है उनका तो कहना ही क्या है ? इसलिए ऐसा कौन उत्तम हृदयका धारक है जो उनके लिए विकारको प्राप्त हो । भले ही इन कन्याओंने देवियोंको जीत लिया हो फिर भी इनसे हम लोगोंको क्या प्रयोजन है ? इसलिए यदि अपना कल्याण करना चाहते हो तो इनकी ओरसे मनको लौटाओ'॥३०-३२॥ इस तरह उन आठ कुमारोंके वचनोंसे भाइयोंका वह समूह उस प्रकार वशीभूत हो गया जिस प्रकार कि लगामोंसे घोड़ोंका समूह वशीभूत हो जाता है ॥३३॥ जिस स्थानमें उन उत्तम कन्याओंके द्वारा सीताके पुत्र वरे गये थे वहाँ बाजोंका तुमुलशब्द होने लगा ॥३४॥ बहुत दूर तक दिग्-दिगन्तको व्याप्त करनेवाले, बाँसुरी, काहला, शंख, भंभा, भेरी तथा झर्झर आदि बाजे मन और कानोंको हरण करने वाले मनोहर शब्द करने लगे ॥३५॥ जिस प्रकार इन्द्रकी विभूति देख क्षुद्र ऋद्धिके धारक देव शोकको प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार स्वयंवरकी विभूति देख लक्ष्मणके पुत्र क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३६॥ वे सोचने लगे कि हम नारायणके पुत्र हैं, दीप्ति और कान्तिसे युक्त हैं, नवयौवनसे सम्पन्न हैं, उत्तम सहायकोंसे युक्त हैं तथा बलसे प्रचण्ड हैं ॥३७॥ हम लोग किस गुणमें हीन हैं कि जिससे हम लोगोंमेंसे किसी एकको भी इन कन्याओंने नहीं वरा किन्तु उसके विपरीत हम सबको छोड़ जानकीके पुत्रोंको वरा ॥३८॥ अथवा इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जगत्की ऐसी ही विचित्र चेष्टा है, कर्मोंकी विचित्रताके योगसे यह चराचर विश्व विचित्र ही जान पड़ता है ॥३९॥ जिसे जहाँ जिस प्रकार जिस कारणसे जो वस्तु पहले ही प्राप्त करने योग्य होती है उसे वहाँ उसी प्रकार उसी कारणसे वही वस्तु अवश्य प्राप्त होती है ॥४०॥

---

१. ततोऽष्टभिः म० । २. सुकन्याभिः म० ब० । ३. भुजङ्गमतुलं बलम् ज० । ४. सहृदयः ब०,क० । ५. विवर्तध्व- । ६. प्रग्रहैरपि म० । ७. तुरङ्गचञ्चलं म० । ८. यत्तु म० । ९. शुश्रुवु- म० ।

एवं लक्ष्मणपुत्राणां वृन्दे प्रारब्धशोचने । ऊचे रूपवतीपुत्रः प्रहस्य गतविस्मयः ॥४१॥
स्त्रीमात्रस्य कृते कस्मादेवं शोचत सत्वराः । चेष्टितादिति वो हास्यं परमं समजायत ॥४२॥
किमाभ्यां [1]निर्वृतेर्दूती लब्धा जैनेश्वरी द्युतिः । अबुधा इव यद्व्यर्थं संशोचत पुनः पुनः ॥४३॥
रम्भास्तम्भसमानानां निःसाराणां हतात्मनाम् । कामानां वशगाः शोकं हास्यं नो कर्तुमर्हथ ॥४४॥
सर्वे शरीरिणः कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिताः । न तत्कुरुथ किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥४५॥
गहने भवकान्तारे प्रणष्टाः प्राणधारिणः । ईदृंशि [2]यान्ति दुःखानि निरस्यत ततस्तकम् ॥४६॥
भ्रातरः कर्मभूरेषा जनकस्य प्रसादतः । द्यौरिहावगताऽस्माभिर्मोहवेष्टितबुद्धिभिः ॥४७॥
अङ्कस्थेन पितुर्बाल्ये वाच्यमानं पुरा मया । पुस्तके श्रुतमत्यन्तं सुस्वरं वस्तु सुन्दरम् ॥४८॥
भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः । प्राप्य तं स्वहितं यो न कुरुते स तु वञ्चितः ॥४९॥
ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम् । ज्ञानेन च शिवं जीवो दुःखदां गतिमंहसा ॥५०॥
पुनर्जन्म ध्रुवं ज्ञात्वा तपः कुर्मो न चेद् वयम् । भवाहन्त्या ततो भूयो दुर्गतिर्दुःखसङ्कटा ॥५१॥
एवं कुमारवीरास्ते प्रतिबोधमुपागताः । संसारसागराऽसातावेदनाऽऽवर्तभीतिगाः ॥५२॥
त्वरितं पितरं गत्वा प्रणम्य विनयस्थिताः । प्राहुर्मधुरमत्यर्थं रचिताञ्जलिकुड्मलाः ॥५३॥
तात नः शृणु विज्ञातं न विघ्नं कर्तुमर्हसि । दीक्षामुपेतुमिच्छामो व्रज तत्राऽनुकूलताम् ॥५४॥
विद्युदाकालिकं ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् । विलोक्यो[3]दीयतेऽस्माकमत्यन्तं परमं [4]भयम् ॥५५॥
कथञ्चिदधुना प्राप्ता बोधिरस्माभिरुत्तमा । यया नौभूतया पारं प्रयास्यामो भवोदधेः ॥५६॥

इस प्रकार जब लक्ष्मणके पुत्र शोक करने लगे तब जिसका आश्चर्य नष्ट हो गया था ऐसे रूपवतीके पुत्रने हँसकर कहा कि अरे भले पुरुषो ! स्त्री मात्रके लिए इस तरह क्यों शोक कर रहे हो ? तुम लोगोंकी इस चेष्टासे परम हास्य उत्पन्न होता है—अधिक हँसी आ रही है ॥४१-४२॥ हमें इन कन्याओंसे क्या प्रयोजन है ? हमें तो मुक्तिकी दूती स्वरूप जिनेन्द्रभगवान्‌की कान्तिकी प्राप्ति हो चुकी है अर्थात् हमारे मनमें जिनेन्द्र मुद्राका स्वरूप झूल रहा है। फिर क्यों मूर्खोंके समान तुम व्यर्थ ही बार-बार इसीका शोक कर रहे हो ? ॥४३॥ केलेके स्तम्भके समान निःसार तथा आत्माको नष्ट करनेवाले कामोंके वशीभूत हो तुम लोग शोक और हास्य करनेके योग्य नहीं हो ॥४४॥ सब प्राणी कर्मके वशमें पड़े हुए हैं इसलिए वह काम क्यों नहीं करते कि जिससे वह कर्म नष्ट हो जाता है ॥४५॥ इस संसार रूपी सघन वनमें भूले हुए प्राणी ऐसे दुःखोंको प्राप्त हो रहे हैं इसलिए उस संसार वनको नष्ट करो ॥४६॥ हे भाइयो ! यह कर्मभूमि है परन्तु पिताके प्रसादसे मोहाक्रान्त बुद्धि होकर हम लोग इसे स्वर्ग जैसा समझ रहे हैं ॥४७॥ पहले बाल्यावस्थामें पिताकी गोदमें स्थित रहनेवाले मैंने किसीके द्वारा पुस्तकमें बाँची गई एक बहुत ही सुन्दर वस्तु सुनी थी कि सब भवोंमें मनुष्यभव दुर्लभ भव है उसे पाकर जो अपना हित नहीं करता है वह वञ्चित रहता है—ठगाया जाता है ॥४८-४९॥ यह जीव पात्रदानसे ऐश्वर्यको, तपसे स्वर्गको, ज्ञानसे मोक्षको, और पापसे दुःखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥५०॥ 'पुनर्जन्म अवश्य होता है' यह जानकर भी यदि हम तप नहीं करते हैं तो फिरसे दुःखोंसे भरी हुई दुर्गति प्राप्त करनी होगी ॥५१॥ इस प्रकार संसार-सागरके मध्य दुःखानुभवरूपी भँवरसे भयभीत रहनेवाले वे वीरकुमार प्रतिबोधको प्राप्त हो गये॥५२॥ और शीघ्र ही पिताके पास जाकर तथा प्रणाम कर विनयसे खड़े हो हाथ जोड़ अत्यन्त मधुर स्वरमें कहने लगे कि हे पिताजी ! हमारी प्रार्थना सुनिए। आप विघ्न करनेके योग्य नहीं हैं। हम लोग दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं सो इसमें अनुकूलताको प्राप्त हूजिए ॥५३-५४॥ इस संसारको बिजलीके समान क्षणभङ्गुर तथा साररहित देखकर हम लोगोंको अत्यन्त तीव्र भय उत्पन्न हो रहा है ॥५५॥ हम लोग इस समय

---

१. निवृत्ते म० । २. यानि म०, ब० । ३. विलोक्य दीयते ब०, ख० । ४. रुषम् म०, ब० ।

आशीविषफणा[1]भीमान् कामान् शङ्कासुकाननम्[2] । हेतून् परमदुःखस्य वाञ्छामो दूरमुज्झितुम् ॥५७॥
नास्य माता पिता भ्राता बान्धवाः सुहृदोऽपि वा । सहायाः कर्मतन्त्रस्य परित्राणं शरीरिणः ॥५८॥
तात विद्मस्तवाऽस्मासु[3] वात्सल्यमुपमोज्झितम् । मातॄणां च परं ह्येतद्बन्धनं भववासिनाम् ॥५९॥
किं तर्हि सुचिरं सौख्यं भवद्वात्सल्यसंभवम् । भुक्त्वाऽपि विरहोऽवश्यं प्राप्यः क्रकचदारुणः ॥६०॥
अतृप्त एव भोगेषु जीवो दुर्मित्रविभ्रमः । इमं विमोक्ष्यते देहं किं प्राप्तं जायते तदा ॥६१॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्परमस्नेहविह्वलः । आघ्राय मस्तके पुत्रानभीक्ष्य च पुनः पुनः ॥६२॥
एते कैलासशिखरप्रतिमा हेमरत्नजाः । प्रासादाः कनकस्तम्भसहस्रपरिशोभिताः ॥६३॥
नानाकुट्टिमभूभागाश्चारुनिर्व्यूहसङ्गताः । सुसेव्या विमलाः कान्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥६४॥
मलयाचलसद्गन्धमारुताकृष्टषट्पदाः । स्नानादिविधिसम्पत्तियोग्यनिर्मलभूमयः ॥६५॥
शरच्चन्द्रप्रभा गौराः सुरस्त्रीसमयोषितः । गुणैः समाहिताः [4]सर्वैः कल्पप्रासादसन्निभाः ॥६६॥
वीणावेणुमृदङ्गादिसङ्गीतकमनोहराः । जिनेन्द्रचरितासक्तकथात्यन्तपवित्रिताः ॥६७॥
[5]उषित्वा सुखमेतेषु रमणीयेषु वत्सकाः । प्रतिपद्य कथं दीक्षां वत्स्यथारण्यपर्वताचलम् ॥६८॥
[6]सन्त्यज्य स्नेहनिघ्नं मां शोकतप्तां च मातरम् । न युक्तं वत्सका गन्तुं सेव्यतां तावदीशिता[7] ॥६९॥

किसी तरह उस उत्तम बोधिको प्राप्त हुए हैं कि नौकास्वरूप जिस बोधिके द्वारा संसार-सागरके उस पार पहुँचेंगे ।।५६।। जो आशीविष-सर्पके फनके समान भयङ्कर हैं, शङ्का अर्थात् भय जिनके प्राण हैं तथा जो परमदुःखके कारण हैं ऐसे भोगोंको हम दूरसे ही छोड़ना चाहते हैं ।।५७।। इस कर्माधीन जीवकी रक्षा करनेके लिए न माता सहायक है, न पिता सहायक है, न भाई सहायक है, न कुटुम्बीजन सहायक हैं और न मित्र लोग सहायक हैं ।।५८।। हे तात ! हम लोगोंपर आपका तथा माताओंका जो उपमारहित परम वात्सल्य है उसे हम जानते हैं और यह भी जानते हैं कि संसारी प्राणियोंके लिए यही बड़ा बन्धन है परन्तु आपके स्नेहसे होनेवाला सुख क्या चिरकाल तक रह सकता है ? भोगनेके बाद भी उसका विरह अवश्य प्राप्त करना होता है और ऐसा विरह कि जो करोंतके समान भयङ्कर होता है ।।५९–६०।। यह जीव भोगोंमें तृप्त हुए बिना ही कुमित्रकी तरह इस शरीरको छोड़ देगा तब क्या प्राप्त हुआ कहलाया ? ।।६१।।

तदनन्तर परमस्नेहसे विह्वल लक्ष्मण उन पुत्रोंको मस्तकपर सूँघकर तथा पुनः पुनः उनकी ओर देखकर बोले कि ये महल जो कि कैलासके शिखरके समान हैं, सुवर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित हैं, सुवर्णके हजारों खम्भोंसे सुशोभित हैं, जिनके फर्सोंकी भूमियाँ नानाप्रकारकी हैं, जो सुन्दर-सुन्दर छज्जोंसे सहित हैं, अच्छी तरह सेवन करने योग्य हैं, निर्मल हैं, सुन्दर हैं, सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित हैं, मलयाचल जैसी सुगन्धित वायुसे जिनमें भ्रमर आकृष्ट होते रहते हैं, जहाँ स्नानादि कार्योंके योग्य जुदी-जुदी उज्ज्वल भूमियाँ हैं, जो शरदृतुके चन्द्रमाके समान आभावाले हैं, शुभ्रवर्ण हैं, जिनमें देवाङ्गनाओंके समान स्त्रियोंका आवास है, जो सब प्रकारके गुणोंसे सहित हैं, स्वर्गके भवनोंके समान हैं, वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदिके संगीतसे मनोहर हैं और जिनेन्द्र भगवान्‌के चरित सम्बन्धी कथाओंसे अत्यन्त पवित्र हैं, सामने खड़े हैं सो हे बालको ! इन महलोंमें सुखसे रहकर अब तुम लोग दीक्षा धारणकर वन और पहाड़ोंके बीच कैसे रहोगे ? ।।६२–६८।। हे पुत्रो ! स्नेहाधीन मुझे तथा शोकसंतप्त माताको छोड़कर जाना योग्य नहीं है इसलिए ऐश्वर्यका सेवन करो ।।६९।।

---

१. फणान् भीमान् म० । २. शङ्कासुखानल -ब० । ३. तथास्मासु म० । ४. सर्वे म० । ५. उज्झित्वा म० । ६. त्यक्त्वा, संचत्य ज०, ख० । ७. तावदीशतां ब०, ख० ।

स्नेहापासनचित्तास्ते संविमृश्य क्षणं धिया । भवभीता हृषीकाऽऽप्यसौख्यैकान्तपराङ्मुखाः ॥७०॥
उदारवीरतादत्तमहालम्बनशालिनः । ऊचुः कुमारवृषभास्तत्त्वविन्यस्तचेतसः ॥७१॥
मातरः पितरोऽन्ये च संसारेऽनन्तशो गताः । [1]स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारकं गृहम् ॥७२॥
पापस्य परमारम्भं नानादुःखाभिवर्द्धनम् । गृहपञ्जरकं मूढाः सेवन्ते न प्रबोधिनः ॥७३॥
शारीरं मानसं दुःखं मा भूद्भूयोऽपि नो यथा । तथा सुनिश्चिताः कुर्मः किं वयं स्वस्य वैरिणः ॥७४॥
निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन् । मलिनत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् ॥७५॥
उत्थायोत्थाय षण्णां गृहाश्रमनिवासिनाम् । पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहिधर्मो महात्मभिः ॥७६॥
भुज्यतां तावदैश्वर्यमिति यत्प्रोक्तवानसि । तदन्धकारकूपे नः क्षिपसि ज्ञानवानपि ॥७७॥
पिबन्तं मृगकं यद्वद् व्याधो हन्ति तृषा जलम् । तथैव पुरुषं मृत्युर्हन्ति भोगैरतृप्तकम् ॥७८॥
विषयप्राप्तिसंसक्तमस्वतन्त्रमिदं जगत् । कामैराशीविषैः साकं क्रीडत्यज्ञमनौषधम् ॥७९॥
विषयामिषसंसक्ता मग्ना गृहजलाशये । रुजा बडिशयोगेन नरमीना व्रजन्त्यमुम् ॥८०॥
अत एव नृलोकेशो जगत्त्रितयवन्दितः । जगत्स्वकर्मणां वश्यं जगाद भगवानृषिः ॥८१॥
दुरन्तैस्तदलं तात प्रियसङ्गमलोभनैः । विचक्षणजनद्विष्टैस्तडिद्दण्डचलाचलैः ॥८२॥

तदनन्तर स्नेहके दूर करनेमें जिनके चित्त लग रहे थे, जो संसारसे भयभीत थे, इन्द्रियोंसे प्राप्त होने योग्य सुखोंसे एकान्तरूपसे विमुख थे, उदार वीरताके द्वारा दिये हुए आलम्बनसे जो सुशोभित थे तथा तत्त्व विचार करनेमें जिनके चित्त लग रहे थे ऐसे वे सब कुमार बुद्धि द्वारा क्षणभर विचार कर बोले कि इस संसारमें माता-पिता तथा अन्य लोग अनन्तों बार प्राप्त होकर चले गये हैं। यथार्थमें स्नेहरूपी बन्धनको प्राप्त हुए मनुष्योंके लिए यह घर एक बन्दी गृहके समान है ॥७०-७२॥ जिसमें पापका परम आरम्भ होता है तथा जो नाना दुःखोंको बढ़ानेवाला है ऐसे गृहरूपी पिंजड़ेकी मूर्ख मनुष्य ही सेवा करते हैं बुद्धिमान् नहीं ॥७३॥ जिस तरह शारीरिक और मानसिक दुःख हमें पुनः प्राप्त न हों उस तरह ही दृढ़ निश्चय कर हम कार्य करना चाहते हैं। क्या हम अपने आपके वैरी हैं ॥७४॥ गृहस्थ यद्यपि यह सोचता है कि मैं निर्दोष हूँ, मेरे पाप नहीं हैं, फिर भी वह रखे हुए शुक्लवस्त्रके समान मलिनताको प्राप्त हो ही जाता है ॥७५॥ यतश्च गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले मनुष्योंको उठ-उठकर पापमें प्रीति होती है इसीलिए महात्मा पुरुषोंने गृहस्थाश्रमका त्याग किया है ॥७६॥ आपने जो कहा है कि अच्छी तरह ऐश्वर्यका उपभोग करो सो आप हमें ज्ञानवान् होकर भी अन्धकूपमें फेंक रहे हैं ॥७७॥ जिस प्रकार प्याससे पानी पीते हुए हरिणको शिकारी मार देता है उसी प्रकार भोगोंसे अतृप्त मनुष्यको मृत्यु मार देती है ॥७८॥ विषयोंकी प्राप्तिमें आसक्त, परतन्त्र, अज्ञानी तथा औषधसे रहित यह संसार कामरूपी साँपोंके साथ क्रीड़ा कर रहा है।

भावार्थ—जिस प्रकार साँपोंके साथ खेलनेवाले अज्ञानी एवं औषधरहित मनुष्य मरणको प्राप्त होता है उसी प्रकार आस्रवबन्ध और संवर निर्जराके ज्ञानसे रहित यह जीव इन्द्रिय भोगोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है ॥७९॥ घररूपी जलाशयमें मग्न तथा विषयरूपी मांसमें आसक्त ये मनुष्यरूपी मच्छ रोगरूपी वंशीके योगसे मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥८०॥ इसीलिए मनुष्यलोकके स्वामी, लोकत्रयके द्वारा वन्दित भगवान् जिनेन्द्रने जगत्‌को अपने कर्मके आधीन कहा है। भावार्थ—भगवान् जिनेन्द्रने बताया है कि संसारके सब प्राणी स्वीकृत कर्मोंके आधीन हैं ॥८१॥ इसलिए हे तात ! जिनका परिणाम अच्छा नहीं है, प्रियजनोंका समागम जिनका प्रलोभन है, जो विद्वज्जनोंके द्वेषपात्र हैं तथा जो बिजलीके समान चञ्चल हैं ऐसे इन भोगोंसे पूरा पड़े अर्थात्

---

१. स्नेहबन्धनमेतद्धि चारकं नारकं गृहम् म०, ख० ।

ध्रुवं यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभिः समम् । अस्मन्नसत्स्वरूपेऽस्मिन्संसारे का रतिस्तदा ॥८३॥
अयं मे प्रिय इत्यास्था व्यामोहोपनिबन्धना[1] । एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदुःखभाक् ॥८४॥
वितथागमकुद्वीपे मोहसङ्गतपङ्कके । शोकसंतापफेनाढ्ये भवाऽऽवर्तसमाकुले ॥८५॥
व्याधिमृत्यूर्मिकल्लोले मोहपातालगह्वरे । क्रोधादिमकरक्रूरनक्रसंघातघट्टिते ॥८६॥
कुहेतुसमयोद्भूतनिर्ह्रादात्यन्तभैरवे । मिथ्यात्वमारुतोद्धूते दुर्गतिक्षारवारिणि ॥८७॥
नितान्तदुःसहोदारवियोगवडवानले । [2]सुचिरं तात खिन्नाः स्मो घोरे संसारसागरे ॥८८॥
नानायोनिषु संभ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम् । कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नाऽत्र सागरे ॥८९॥
ततः परिजनाकीर्णावापृच्छ्य पितरौ क्रमात् । अष्टौ कुमारवीरास्ते निर्जग्मुर्गृहचारकात् ॥९०॥
आसीन्निःकामता तेषामैश्वर्ये तथाविधे । बुद्धिर्जीर्णतृणे यद्वत्संसाराचारवेदिनाम् ॥९१॥
ते महेन्द्रोदयोद्यानं गत्वा संवेगकं ततः । महाबलमुनेः पार्श्वे अगृहुर्निरगारताम् ॥९२॥

आर्या

सर्वारम्भविरहिता विहरन्ति नित्यं निरम्बरा विधियुक्तम् ।
क्षान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरताः ॥९३॥

उपजातिः

सम्यक्तपोभिः प्रविधूय पापमध्यात्मयोगैः परिरुध्य पुण्यम् ।
ते क्षीणनिःशेषभवप्रपञ्चाः प्रापुः पदं जैनमनन्तसौख्यम् ॥९४॥

इनकी आवश्यकता नहीं है ॥८२॥ जब कि बन्धुजनोंके साथ विरह अवश्यंभावी है तब इस अटपटे संसारमें क्या प्रीति करना है ? ॥८३॥ 'यह मेरा प्यारा है' ऐसी आस्था केवल व्यामोहके कारण उत्पन्न होती है क्योंकि यह जीव अकेला ही गमनागमनके दुःखको प्राप्त होता है ॥८४॥ मिथ्याशास्त्र ही जिसमें खोटे द्वीप हैं, मोहरूपी कीचड़से जो युक्त है, जो शोक संतापरूपी फेनसे सहित है, जन्मरूपी भँवरोंके समूहसे व्याप्त है, व्याधि तथा मृत्युरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मोहरूपी गहरे गर्तोंसे सहित है, क्रोधादि कषाय रूपी क्रूर मकर और नाकोंके समूहसे लहरा रहा है, मिथ्या तर्कशास्त्रसे उत्पन्न शब्दोंसे अत्यन्त भयंकर है, मिथ्यात्व रूपी वायुके द्वारा कम्पित है, दुर्गतिरूपी खारे पानीसे सहित है और अत्यन्त दुःसह तथा उत्कट वियोग रूपी बड़वानलसे युक्त है ऐसे भयंकर संसार-सागरमें हे तात ! हम लोग बहुत समयसे खेद-खिन्न हो रहे हैं ॥८५-८८॥ नाना योनियोंमें परिभ्रमण करनेके बाद हम बड़ी कठिनाईसे मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए हैं इसलिए अब वह काम करना चाहते हैं कि जिससे पुनः इस संसार-सागरमें न डूबें ॥८९॥

तदनन्तर परिजनके लोगोंसे घिरे हुए माता-पितासे पूछकर वे आठों वीर कुमार क्रम-क्रमसे घर रूपी कारागारसे बाहर निकले ॥९०॥ संसार-स्वरूपको जाननेवाले, घरसे निकलते हुए उन वीरोंकी उस प्रकारके विशाल साम्राज्यमें ठीक उस तरहकी अनादर बुद्धि हो रही थी जिस प्रकार कि जीर्ण-तृणमें होती है ॥९१॥ तदनन्तर उन्होंने महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें जाकर संवेगपूर्वक महाबल मुनिके समीप निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली ॥९२॥ जो सब प्रकारके आरम्भसे रहित थे, दिगम्बर थे, क्षमा युक्त थे, दमन शील थे, सब झंझटोंसे मुक्त थे, निरपेक्ष थे और ध्यानमें तत्पर थे ऐसे वे परम योगी निरन्तर विहार करते रहते थे ॥९३॥ समीचीन तपके द्वारा पापको नष्ट कर, और अध्यात्मयोगके द्वारा पुण्यको रोककर जिन्होंने संसारका

---

१ निबन्धनः म० । २. सुचिरे म० ।

एतत् कुमाराष्टकमङ्गलं यः पठेद् विनीतः शृणुयाच्च भक्त्या ।
तस्य क्षयं याति समस्तपापं रविप्रभस्योदयते च चन्द्रः ॥९५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते कुमाराष्टकनिष्क्रमणाभिधानं नाम दशोत्तरशतं पर्व ॥११०॥

समस्त प्रपञ्च नष्ट कर दिया था ऐसे वे आठों मुनि अनन्त सुखसे युक्त निर्वाण पदको प्राप्त हुए ॥९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य विनीत हो भक्ति पूर्वक इन आठ कुमारोंके मङ्गल-मय चरितको पढ़ता अथवा सुनता है सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाले उस मनुष्यका सब पाप नष्ट हो जाता है तथा उत्तम चन्द्रमाका उदय होता है ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें आठ कुमारोंकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एक सौ दसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११०॥

एकादशोत्तरशतं पर्व

गणी वीरजिनेन्द्रस्य प्रथमः प्रथमः[2] सताम् । अवेदयन्मनोयातं प्रभामण्डलचेष्टितम् ॥१॥
[3]विद्याधरमहाकान्तकामिनीवीरुदुद्भवे । सौख्यपुष्पासवे सक्तः प्रभामण्डलषट्पदः ॥२॥
अचिन्तयदहं दीक्षां यद्युपैम्यपवाससाम् । तदैतदङ्गनापद्मखण्डं[4] [5]पद्मत्यसंशयम् ॥३॥
एतासां मत्समासक्तचेतसां विरहे मम । वियोगो भविताऽवश्यं प्राणैः सुखमपालितैः ॥४॥
दुस्त्यजानि दुरापानि कामसौख्यान्यवारितम् । भुक्त्वा श्रेयस्करं पश्चात् करिष्यामि ततः परम् ॥५॥
भोगैरुपार्जितं पापमत्यन्तमपि पुष्कलम् । सुध्यानवह्निनाऽवश्यं धक्ष्यामि क्षणमात्रतः ॥६॥
अत्र सेनां समावेश्य विमानक्रीडनं भजे । उद्वासयामि शत्रूणां नगराणि समन्ततः ॥७॥
मानशृङ्गोन्नतेर्भङ्गं करोमि रिपुखड्गिनाम् । स्थापयाम्युभयश्रेण्योर्वशे शासनकारिते ॥८॥
मेरोर्मरकतादीनां रत्नानां विमलेष्वलम् । शिलातलेषु रम्येषु क्रीडामि ललनान्वितः ॥९॥
एवमादीनि वस्तूनि ध्यायतस्तस्य [6]जानकेः । समतीयुर्मुहूर्त्तानि संवत्सरशतान्यलम् ॥१०॥
कृतमेतत्करोमीदं करिष्यामीदमित्यसौ । चिन्तयन्नात्मनोऽवेदी नायुः संहारमागतम् ॥११॥
अन्यदा सप्तमस्कन्धं प्रासादस्याधितिष्ठतः । अपसद्दशनिर्मूर्ध्नि तस्य कालं ततो गतः ॥१२॥
अशेषतो निजं वेत्ति जन्मान्तरविचेष्टितम् । दीर्घसूत्रस्तथाऽप्यात्मसमुद्धारे स नो स्थितः ॥१३॥

अथानन्तर वीर जिनेन्द्रके प्रथम गणधर सज्जनोत्तम श्री गौतमस्वामी मनमें आये हुए भामण्डलका चरित्र कहने लगे ॥१॥ विद्याधरोंकी अत्यन्त सुन्दर स्त्री रूपी लताओंसे उत्पन्न सुख रूपी फूलोंके आसवमें आसक्त भामण्डल रूपी भ्रमर इस प्रकार विचार करता रहता था कि यदि मैं दिगम्बर मुनियोंकी दीक्षा धारण करता हूँ तो यह स्त्रीरूपी कमलोंका समूह निःसन्देह कमलके समान आचरण करता है अर्थात् कमलके ही समान कोमल है ॥२-३॥ जिनका चित्त मुझमें लग रहा है ऐसी ये स्त्रियाँ मेरे विरहमें अपने प्राणोंका सुखसे पालन नहीं कर सकेंगी अतः उनका वियोग अवश्य हो जायगा ॥४॥ अतएव जिनका छोड़ना तथा पाना दोनों ही कठिन हैं ऐसे इन काम सम्बन्धी सुखोंको पहले अच्छी तरह भोग लूँ बादमें कल्याणकारी कार्य करूँ ॥५॥ यद्यपि भोगोंके द्वारा उपार्जित किया हुआ पाप अत्यन्त पुष्कल होगा तथापि उसे सुध्यान रूपी अग्निके द्वारा एक क्षणमें जला डालूँगा ॥६॥ यहाँ सेना ठहराकर विमानोंसे क्रीड़ा करूँ और सब ओर शत्रुओंके नगर उजाड़ कर दूँ ॥७॥ दोनों श्रेणियोंमें शत्रु रूपी गेंडा हाथियोंके मान रूपी शिखरकी जो उन्नति हो रही है उसका भंग करूँ तथा उन्हें आज्ञाके द्वारा किये हुए अपने वशमें स्थापित करूँ ॥८॥ और मेरु पर्वतके मरकत आदि मणियोंके निर्मल एवं मनोहर शिलातलोंपर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करूँ ॥९॥ इत्यादि वस्तुओंका विचार करते हुए उस भामण्डलके सैकड़ों वर्ष एक मुहूर्तके समान व्यतीत हो गये ॥१०॥ 'यह कर चुका, यह करता हूँ और यह करूँगा' वह यही विचार करता रहता था, पर अपनी आयुका अन्तिम अवसर आ चुका है यह नहीं विचारता था ॥११॥

एक दिन वह महलके सातवें खण्डमें बैठा था कि उसके मस्तक पर वज्र गिरा जिससे वह मृत्युको प्राप्त हो गया ॥१२॥ यद्यपि वह अपने जन्मान्तरकी समस्त चेष्टाको जानता था

---

१. आद्यः । २ श्रेष्ठः । ३. विद्याधरी -म० । ४. प्रेमखण्डं म० । ५. पद्ममिवाचरति । ६. जनकापत्यस्य भामण्डलस्य ।

तृष्णाविषादहन्तॄणां क्षणमप्यस्ति नो शमः । मूर्धोपकण्ठदत्ताङ्घ्रिर्मृत्युः कालमुदीक्षते ॥१४॥
अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिनः । हताशः कुरुते किं न जीवो विषयदासकः ॥१५॥
ज्ञात्वा जीवितमानाय्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् । स्वहिते वर्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थकः ॥१६॥
सहस्रेणापि शास्त्राणां किं येनात्मा न शाम्यति । सूक्तमेकपदेनाऽपि येनाऽऽत्मा शममश्नुते ॥१७॥
कर्तुमिच्छति सद्धर्मं न [1]करोति [2]यथाव्ययम् । दिवं यियासुर्विच्छिन्नपक्ष[3]काक इव श्रमम् ॥१८॥
विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेत्समीहितम् । न लोके विरही कश्चिद्भवेद्द्रविणोऽपि वा ॥१९॥
अतिथिं द्वारगतं साधुं गुरुवाक्यं प्रतिक्रियाम् । प्रतीक्ष्य सुकृतं चाशु नावसीदति मानवः ॥२०॥

आर्यागीतिः

नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखिनः प्रतिदिवसम् ।
रत्नमिव करतलस्थं भ्रश्यत्यायुः प्रमादतः प्राणभृतः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाऽऽचार्यप्रोक्ते भामण्डलपरलोकाभिगमनं नामैकादशोत्तरशतं पर्व ॥१११॥

तथापि इतना दीर्घसूत्री था कि आत्म-कल्याणमें स्थित नहीं हुआ ॥१३॥ तृष्णा और विषादको नष्ट करनेवाले मनुष्योंको क्षणभरके लिए भी शान्ति नहीं होती क्योंकि उनके मस्तकके समीप पैर रखनेवाला मृत्यु सदा अवसरकी प्रतीक्षा किया करता है ॥१४॥ क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाले इस अधम शरीरके लिए, विषयोंका दास हुआ यह नीच प्राणी क्या क्या नहीं करता है ? ॥१५॥ जो मनुष्य-जीवनको भङ्गुर जान समस्त परिग्रहका त्यागकर आत्महितमें प्रवृत्ति नहीं करता है वह अकृतकृत्य दशामें ही नष्ट हो जाता है ॥१६॥ उन हजार शास्त्रोंसे भी क्या प्रयोजन है जिससे आत्मा शान्त नहीं होती और वह एक पद भी बहुत है जिससे आत्मा शान्ति को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥ जिस प्रकार कटे पंखका काक आकाशमें उड़ना तो चाहता पर वैसा श्रम नहीं करता उसी प्रकार यह जीव सद्धर्म करना तो चाहता है पर यह जैसा चाहिए वैसा श्रम नहीं करता ॥१८॥ यदि उद्योगसे रहित मनुष्य इच्छानुकूल पदार्थको पाने लगें तो फिर संसारमें कोई भी विरही अथवा दरिद्र नहीं होना चाहिए ॥१९॥ जो मनुष्य द्वारपर आये हुए अतिथि साधुको आहार आदि दान देता है तथा गुरुओंके वचन सुन तदनुकूल शीघ्र आचरण करता है वह कभी दुःखी नहीं होता ॥२०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि नाना प्रकारके सैकड़ों व्यापारोंसे जिसका हृदय आकुल हो रहा है तथा इसीके कारण जो प्रतिदिन दुःखका अनुभव करता रहता है ऐसे प्राणीकी आयु हथेलीपर रखे रत्नके समान नष्ट हो जाती है ॥२१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें भामण्डलके परलोकगमनका वर्णन करनेवाला एक सौ ग्यारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१११॥

---

१. कर्णेति म० (?) २. तमप्ययम् म० । ३. पक्षः काक इव म० ।

द्वादशोत्तरशतं पर्व

अथ याति शनैः कालः पद्मचक्राङ्कराजयोः । परस्परमहास्नेहबद्धयोस्त्रिविधः[1] सुखम् ॥१॥
[2]परमैश्वर्यतानोरू राजीववनवर्तिनौ । यथा [3]चन्दनदत्तौ तौ मोदेते नरकुञ्जरौ ॥२॥
शुष्यन्ति सरितो यस्मिन् काले दावाग्निसंकुले । तिष्ठन्त्यभिमुखा भानोः श्रमणाः प्रतिमागताः ॥३॥
तत्र तावति रम्येषु जलयन्त्रेषु [4]सद्मसु । उद्यानेषु च निःशेषप्रियसाधनशालिषु ॥४॥
[5]चन्दनाम्बुमहामोदशीतशीकरवर्षिभिः । चामरैरुपवीज्यन्तौ तालवृन्तैश्च सत्तमैः ॥५॥
स्वच्छस्फटिकपट्टस्थौ[6] चन्दनद्रवचर्चितौ । जलार्द्रनलिनीपुष्पदलमूलौघसंस्तरौ ॥६॥
एलालवङ्गकर्पूरक्षोद[7]संसर्गशीतलम् । विमलं सलिलं स्वादु सेवमानौ मनोहरम् ॥७॥
विचित्रसत्कथादक्षवनिताजनसेवितौ । शीतकालमिवाऽऽनीतं बलाद्धारयतः शुचौ ॥८॥
योगिनः समये यत्र तरुमूलव्यवस्थिताः । क्षपयन्त्यशुभं कर्म धारानिर्धूतमूर्तयः ॥९॥
विलसद्विद्युदुद्योते तत्र मेघान्धकारिते । बृहद्घर्घरनीरौघे कूलमु[8]द्रुजसिन्धुके ॥१०॥
मेरुशृङ्गसमाकारवर्तिनौ वरवाससौ । कुङ्कुमद्रवदिग्धाङ्गावुपयुक्तामितागुरू ॥११॥
महाविलासिनीनेत्रभृङ्गौघकमलाकरौ । तिष्ठतः सुन्दरीक्रीडौ यक्षेन्द्राविव तौ सुखम् ॥१२॥

अथानन्तर पारस्परिक महास्नेहसे बँधे राम-लक्ष्मणका, उष्ण वर्षा और शीतके भेदसे तीन प्रकारका काल धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था ॥१॥ परम ऐश्वर्यके समूहरूपी कमलवनमें विद्यमान रहनेवाले वे दोनों पुरुषोत्तम चन्दनसे लिप्त हुएके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ जिस समय नदियाँ सूख जाती हैं, वन दावानलसे व्याप्त हो जाते हैं और प्रतिमायोगको धारण करनेवाले मुनि सूर्यके सम्मुख खड़े रहते हैं। उस समय राम-लक्ष्मण, जलके फव्वारोंसे युक्त सुन्दर महलोंमें तथा समस्त प्रिय उपकरणोंसे सुशोभित उद्यानोंमें क्रीड़ा करते थे ॥३-४॥ चन्दनमिश्रित जलके महासुगन्धित शीतलकणोंको बरसानेवाले चमरों तथा उत्तमोत्तम पङ्खोंसे वहाँ उन्हें हवा की जाती थी। वहाँ वे स्फटिकके स्वच्छ पटियोंपर बैठते थे, चन्दनके द्रवसे उनके शरीर चर्चित रहते थे, जलसे भीगे कमलपुष्पोंकी कलियोंके समूहसे बने बिस्तरोंपर शयन करते थे। इलायची लौंग कपूरके चूर्णके संसर्गसे शीतल निर्मल स्वादिष्ट और मनोहर जलका सेवन करते थे, और नानाप्रकारकी कथाओंमें दक्ष स्त्रियाँ उनकी सेवा करती थीं। इस प्रकार ऐसा जान पड़ता था मानो वे ग्रीष्म कालमें भी शीतकालको पकड़कर बलात् धारण कर रहे थे ॥५-८॥

जिनका शरीर जलकी धाराओंसे धुल गया है ऐसे मुनिराज जिस समय वृक्षोंके मूलमें बैठकर अपने अशुभ कर्मोंका क्षय करते हैं ॥९॥ जहाँ कहीं कौंधती हुई बिजलीके द्वारा प्रकाश फैल जाता है तो कहीं मेघोंके द्वारा अन्धकार फैला हुआ है, जहाँ जलके प्रवाह विशाल घर्-घर् शब्द करते हुए बहते हैं और जहाँ किनारोंको ढहाकर बहा ले जानेवाली नदियाँ बहती हैं, उस वर्षाकालमें वे मेरुके शिखरके समान उन्नत महलोंमें विद्यमान रहते थे, उत्तम वस्त्र धारण करते थे, कुङ्कुम-केशरके द्रवसे उनके शरीर लिप्त रहते थे, अपरिमित अगुरुचन्दनका वे उपयोग करते थे। महाविलासिनी स्त्रियोंके नेत्र रूप भ्रमर समूहके लिए वे कमलवनके समान सुखकारी थे और सुन्दरी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए यक्षेन्द्रके समान सुखसे विद्यमान रहते थे ॥१०-१२॥

---

१. शीतोष्णवर्षात्मकः। २. परमैश्वर्यतासानो राजीव -म। ३. नन्दनदत्तौ म०। ४. पद्मसु म०। ५. चन्दनार्द्र -म०। ६. पद्मस्थौ म०। ७. क्षोदः संसर्ग म०। ८. -मुद्गत -म०।

प्रालेयपटसंवीता धर्मध्यानस्थचेतसः । तिष्ठन्ति योगिनो यत्र निशि स्थण्डिलपृष्ठगाः ॥१३॥
तत्र काले महाचण्डशीतवाताहतद्रुमे । पद्माकरसमुत्सादे दापितोष्णकरोद्गमे ॥१४॥
प्रासादावनिकुक्षिस्थौ तिष्ठतस्तौ यथेप्सितम् । श्रीमद्युवतिवक्षोजक्रीडाकल्पनवक्षसौ ॥१५॥
वीणामृदङ्गवंशादिसम्भूतं मधुरस्वरम् । कुर्वाणौ मनसि स्वेच्छं परं श्रोत्ररसायनम् ॥१६॥
वाणीनिर्जितवीणाभिरनुकूलाभिरादरात् । सेव्यमानौ वरस्त्रीभिरमरीभिरिवामरौ ॥१७॥
नक्तं दिनं परिस्फीतभोगसम्पत्समन्वितौ । सुखं तौ नयतः कालं सर्वपुण्यानुभावतः ॥१८॥
एवं तौ तावदासेते पुरुषौ जगदुत्कटौ । अथ श्रीशैलवीरस्य वृत्तान्तं शृणु पार्थिव ॥१९॥
सेवते परमैश्वर्यं नगरे कर्णकुण्डले । पूर्वपुण्यानुभावेन स्वर्गीवानिलनन्दनः ॥२०॥
विद्याधरमहत्त्वेन[1] सहितः परमक्रियः । स्त्रीसहस्रपरीवारः स्वेच्छयाऽटति मेदिनीम् ॥२१॥
वरं विमानमारूढः[2] परमर्द्धिसमन्वितः । सत्काननादिषु श्रीमाँस्तदा क्रीडति देववत् ॥२२॥
अन्यदा जगदुन्मादहेतौ कुसुमहासिनि । वसन्तसमये [3]प्राप्ते प्रियामोदनभस्वति ॥२३॥
जिनेन्द्रभक्तिसंवीतमानसः पवनात्मजः । हृष्टः सम्प्रस्थितो मेरुमन्तःपुरसमन्वितः ॥२४॥
नानाकुसुमरम्याणि सेवितानि सुवासिभिः । कुलपर्वतसानूनि प्रस्थितः सोऽवतिष्ठते ॥२५॥
मत्तभृङ्गान्यपुष्टौघनादवन्ति[4] मनोहरैः । सरोभिर्दर्शनीयानि स वनानि च भूरिशः ॥२६॥
मिथुनैरुपभोग्यानि पत्रपुष्पफलैस्तथा । काननानि विचित्राणि रत्नोद्योतितपर्वतान्[5] ॥२७॥

जिस कालमें रात्रिके समय धर्मध्यानमें लीन, एवं वनके खुले चबूतरोंपर बैठे मुनिराज बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत हो स्थित रहते हैं, जहाँ अत्यन्त शीत वायुसे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, कमलोंके वन सूख जाते हैं और जहाँ लोग सूर्योदयको अत्यन्त पसन्द करते हैं ऐसे शीतकालमें वे महलोंके गर्भगृहमें इच्छानुसार रहते थे, उनके वक्षःस्थल तरुण स्त्रियोंके स्तनोंकी क्रीड़ाके आधार थे, वीणा, मृदङ्ग, बाँसुरी आदिसे उत्पन्न, कानोंके लिए उत्तम रसायनस्वरूप मधुरस्वरको वे अपनी इच्छानुसार करते थे, जिन्होंने अपनी वाणीसे वीणाको जीत लिया था ऐसी अनुकूल स्त्रियाँ बड़े आदरसे उनकी सेवा करती थीं और इसीलिए वे देवियोंके द्वारा सेवित देवोंके समान जान पड़ते थे। इस प्रकार वे पुण्यकर्मके प्रभावसे रातदिन अत्यधिक भोगसम्पदासे युक्त रहते हुए सुखसे समय व्यतीत करते थे ॥१३-१८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि इस तरह वे दोनों लोकोत्तम पुरुष सुखसे विद्यमान थे। हे राजन्! अब वीर हनूमान्‌का वृत्तान्त सुन ॥१९॥ पूर्वपुण्यके प्रभावसे हनूमान् कर्णकुण्डल नगरमें देवके समान परम ऐश्वर्यका उपभोग कर रहा था ॥२०॥ विद्याधरोंके माहात्म्यसे सहित तथा उत्तमोत्तम क्रियाओंसे युक्त हनूमान् हजारों स्त्रियोंका परिवार लिये इच्छानुसार पृथ्वीमें भ्रमण करता था ॥२१॥ उत्तम विमानपर आरूढ तथा उत्तम विभूतिसे युक्त श्रीमान् हनूमान् उत्तम वन आदि प्रदेशोंमें देवके समान क्रीड़ा करता था ॥२२॥

अथानन्तर किसी समय जगत्‌के उन्मादका कारण, फूलोंसे सुशोभित एवं प्रिय सुगन्धित वायुके संचारसे युक्त वसन्तऋतु आई ॥२३॥ सो उस समय जिनेन्द्र भक्तिसे जिसका चित्त व्याप्त था ऐसा हर्षसे भरा हनूमान् अन्तःपुरके साथ मेरुपर्वतकी ओर चला ॥२४॥ वह बीचमें नाना प्रकारके फूलोंसे मनोहर और देवोंके द्वारा सेवित कुलाचलोंके शिखरोंपर ठहरता जाता था ॥२५॥ जिनमें मदोन्मत्त भ्रमर और कोयलोंके समूह शब्द कर रहे थे, तथा जो मनोहर सरोवरोंसे दर्शनीय थे ऐसे अनेकों वन, पत्र, पुष्प और फलोंके कारण जो स्त्री-पुरुषोंके युगलसे

---

१. सहस्रेण म० । २. -मारूढाः म० । ३. प्रेम-म० । ४. मत्तभृङ्गान्यपुष्टौघा नादयन्ति म० । ५. पर्वताः म०, ब० ।

सरितो विशदद्वीपा नितान्तविमलाम्भसः । वापीः प्रवरसोपानास्तटस्थोत्तुङ्गपादपाः ॥२८॥
नानाजलजकिञ्जल्ककिर्मीरसलिलानि च । सरांसि मधुरस्वानैः सेवितानि पतत्रिभिः ॥२९॥
महातरङ्गसङ्गोत्थफेनमालाट्टहासिनीः । महायादोगणाकीर्णा बहुचित्रा महानदीः ॥३०॥
विलसद्वनमालाभिर्युक्तान्युपवनैर्वरैः । मनोहरणदक्षाणि चित्राण्यायतनानि च ॥३१॥
[1]जिनेन्द्रवरकूटानि नानारत्नमयानि च । कल्मषक्षोददक्षाणि युक्तमानान्यनेकशः ॥३२॥
एवमादीनि वस्तूनि वीक्षमाणः शनैः शनैः । सेव्यमानश्च कान्ताभिर्यात्यसौ परमोदयः ॥३३॥
नभःशिरःसमारूढो विमानशिखरस्थितः । दर्शयन् याति तद्वस्तु [2]कान्तां हृष्टतनूरुहः ॥३४॥
पश्य पश्य प्रिये धामान्यतिरम्याणि मन्दरे । स्नपनानि जिनेन्द्राणाममूनि शिखरान्तिके ॥३५॥
नानारत्नशरीराणि भास्करप्रतिमानि च । शिखराणि मनोज्ञानि तुङ्गानि विपुलानि च ॥३६॥
गुहा मनोहरद्वारा गम्भीरा रत्नदीपिताः । परस्परसमाकीर्णा दीधितीरतिदूरगाः ॥३७॥
इदं महीतले रम्यं भद्रशालाह्वयं वनम् । मेखलायामिदं तच्च नन्दनं प्रथितं भुवि ॥३८॥
इदं वक्षःप्रदेशस्थ कल्पद्रुमलतात्मकम्[3] । नानारत्नशिलाशोभि वनं सौमनसं स्थितम् ॥३९॥
[4]जिनागारसहस्राढ्यं त्रिदशक्रीडनोचितम् । पाण्डुकाख्यं वनं भाति शिखरे सुमनोहरम् ॥४०॥
अच्छिन्नोत्सवसन्तानमहमिन्द्रजगत्समम् । यक्षकिन्नरगन्धर्वसङ्गीतपरिनादितम् ॥४१॥
सुरकन्यासमाकीर्णमप्सरोगणसङ्कुलम् । विचित्रगणसम्पूर्णं दिव्यपुष्पसमन्वितम् ॥४२॥
सुमेरोः शिखरे रम्ये स्वभावसमवस्थिते । इदमालोक्यते जैनं भवनं परमाद्भुतम् ॥४३॥

सेवनीय थे ऐसे विचित्र वन, रत्नोंसे जगमगाते हुए पर्वत, जिनमें निर्मल टापू थे तथा अत्यन्त स्वच्छ पानी भरा था ऐसी नदियाँ, जिनमें उत्तम सीढ़ियाँ लगी थीं तथा जिनके तटोंपर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े थे ऐसी वापिकाएँ, नानाप्रकारके कमलोंकी केशरसे जिनका पानी चित्र-विचित्र हो रहा था तथा जो मधुर शब्द करनेवाले पक्षियोंसे सेवित थे ऐसे सरोवर, जो बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके साथ उठी हुई फेनपङ्क्तिसे मानो अट्टहास कर रही थीं तथा जो बड़े-बड़े जल-जन्तुओंसे व्याप्त थीं ऐसी अनेक आश्चर्योंसे भरी महानदियाँ, सुशोभित वन-पंक्तियों एवं उत्तमोत्तम उपवनोंसे युक्त तथा मनको हरण करनेमें निपुण नाना प्रकारके भवन, और नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित, पाप नष्ट करनेमें समर्थ तथा योग्य प्रमाणसे युक्त अनेकों जिनकूट इत्यादि वस्तुओंको देखता तथा स्त्रियोंके द्वारा सेवित होता हुआ परम अभ्युदयका धारक हनूमान् धीरे-धीरे चला जा रहा था ॥२६–३३॥ जो आकाशमें बहुत ऊँचे चढ़कर विमानके शिखरपर स्थित था तथा जिसके रोमाञ्च निकल रहे थे ऐसा वह हनूमान् स्त्रीके लिए तत् तत् वस्तुएँ दिखाता हुआ जा रहा था ॥३४॥ वह कहता जाता था कि हे प्रिये ! देखो देखो, सुमेरु पर्वतपर शिखरके समीप वे कितने सुन्दर स्थान हैं वहीं जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेक हुआ करते हैं ॥३५॥ ये नाना रत्नोंसे निर्मित; सूर्य तुल्य, मनोहर, ऊँची और बड़े-बड़े शिखर देखो ॥३६॥ इन मनोहर द्वारोंसे युक्त तथा रत्नों से आलोकित गम्भीर गुफाओं और परस्पर एक दूसरेसे मिली, दूर-दूर तक फैलनेवाली किरणों को देखो ॥३७॥ यह पृथिवीतलपर मनोहर भद्रशाल वन है, यह मेखलापर स्थित जगत्प्रसिद्ध नन्दन वन है, यह उपरितन प्रदेशके वक्षःस्थलस्वरूप, कल्पवृक्ष और कल्पवेलोंसे तन्मय एवं नाना रत्नमयी शिलाओंसे सुशोभित सौमनस वन है, और यह उसके शिखरपर हजारों जिन-मन्दिरोंसे युक्त देवोंकी क्रीड़ाके योग्य पाण्डुक नामका अत्यन्त मनोहर वन है ॥३८–४०॥ यह सुमेरुके स्वाभाविक सुरम्य शिखरपर परम आश्चर्योंसे भरा हुआ वह जिनमन्दिर दिखाई देता है कि जिसमें उत्सवोंकी परम्परा कभी टूटती ही नहीं है, जो अहमिन्द्र लोकके समान है, यक्ष

---

१. जिनेन्द्रनर-म० । २. समुद्धूततनूरुहः म० । ३. लतान्तकम् म० । ४. जिनागारं सहस्राढ्यं ।

ज्वलज्ज्वलनसन्ध्याकमेघवृन्दसमप्रभम् । जाम्बूनदमयं भानुकूटप्रतिममुन्नतम् ॥४४॥
अशेषोत्तमरत्नौघभूषितं परमाकृति[1] । मुक्तादामसहस्राढ्यं बुद्बुदादर्शशोभितम् ॥४५॥
किङ्किणीपट्टलम्बूषप्रकीर्णकविराजितम् । प्राकारतोरणोत्तुङ्गगोपुरैः परमैर्युतम् ॥४६॥
नानावर्णचलत्केतुकाञ्चनस्तम्भभासुरम् । गम्भीरं चारुनिर्व्यूहमशक्याशेषवर्णनम् ॥४७॥
पञ्चाशद्योजनायामं षट्त्रिंशन्मानमुत्तमम् । इदं जिनगृहं कान्ते सुमेरोर्मुकुटायते ॥४८॥
इति शंसन्महादेव्यै समीपत्वमुपागतः । अवतीर्य विमानाग्राच्चक्रे हृष्टः प्रदक्षिणाम् ॥४९॥
तत्र सर्वातिशेषस्तु महैश्वर्यसमन्वितम् । नक्षत्रग्रहताराणां शशाङ्कमिव मध्यगम् ॥५०॥
केसर्यासनमूर्धस्थं स्फुरत्स्फारस्वतेजसम् । शुभ्राभ्रशिखरस्याग्रे शरदीव दिवाकरम् ॥५१॥
प्रतिबिम्बं जिनेन्द्रस्य सर्वलक्षणसङ्गतम् । सान्तःपुरो नमश्चक्रे रचिताञ्जलिमस्तकः ॥५२॥
जिनेन्द्रदर्शनोद्भूतमहासम्मदसम्पदाम् । विद्याधरवरस्त्रीणां धृतिरासीदलं परा ॥५३॥
उत्पन्नघनरोमाञ्चा विपुलाऽऽयतलोचनाः । भक्त्या परमया युक्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥५४॥
महाकुलप्रसूतास्ताः स्त्रियः परमचेष्टिताः । चक्रुः पूजां जिनेन्द्राणां त्रिदशप्रमदा इव ॥५५॥
जाम्बूनदमयैः पद्मैः पद्मरागमयैस्तथा । चन्द्रकान्तमयैश्चापि स्वभावकुसुमैरिति ॥५६॥
सौरभाक्रान्तदिक्चक्रैर्गन्धैश्च परमोज्ज्वलैः । पवित्रद्रव्यसम्भूतैर्धूपैश्चाकुलकोटिभिः[2] ॥५७॥

किन्नर और गन्धर्वोंके संगीतसे शब्दायमान है, देवकन्याओंसे व्याप्त है, अप्सराओंके समूहसे आकीर्ण है, नाना प्रकारके गणोंसे परिपूर्ण है और दिव्य पुष्पोंसे सहित है ॥४१-४३॥ जो जलती हुई अग्निके समान लाल-लाल सन्ध्यासे युक्त मेघ समूहके समान प्रभासे युक्त है, स्वर्णमय है, सूर्यकूटके समान है, उन्नत है, सब प्रकारके उत्तम रत्नोंके समूहसे भूषित है, उत्तम आकृतिवाला है, हजारों मोतियोंकी मालाओंसे सहित है, छोटे-छोटे गोले और दर्पणोंसे सुशोभित है, छोटी-छोटी घंटियां, रेशमी वस्त्र, फन्नूस और चमरोंसे अलंकृत है, उत्तमोत्तम प्राकार, तोरण, और ऊँचे गोपुरोंसे युक्त है, जिस पर नाना रंगकी पताकाएँ फहरा रही हैं, जो सुवर्णमय खम्भोंसे सुशोभित है, गम्भीर है, सुन्दर छज्जोंसे युक्त है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन करना अशक्य है, जो पचास योजन लम्बा है और छत्तीस योजन चौड़ा है। हे कान्ते! ऐसा यह जिन-मन्दिर सुमेरु पर्वतके मुकुटके समान जान पड़ता है ॥४४-४८॥

इस प्रकार महादेवीके लिए मन्दिरकी प्रशंसा करता हुआ हनूमान् जब मन्दिरके समीप पहुँचा तब विमानके अग्रभागसे उतरकर हर्षित होते हुए उसने सर्वप्रथम प्रदक्षिणा दी ॥४९॥ तदनन्तर अन्य सबको छोड़ उसने अन्तःपुरके साथ हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनेन्द्र भगवान्‌की उस प्रतिमाको नमस्कार किया कि जो महान् ऐश्वर्यसे सहित थी, नक्षत्र ग्रह और ताराओंके बीचमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित थी, सिंहासनके अग्रभागपर स्थित थी, जिसका अपना विशाल तेज देदीप्यमान था, जो सफ़ेद मेघके शिखरके अग्रभागपर स्थित शरत्कालीन सूर्यके समान थी, तथा सब लक्षणोंसे सहित थी ॥५०-५२॥ जिनेन्द्र-दर्शनसे जिन्हें महाहर्ष रूप सम्पत्तिकी उद्भूति हुई थी ऐसी विद्याधरराजकी स्त्रियोंको दर्शन कर बड़ा संतोष उत्पन्न हुआ ॥५३॥ तदनन्तर जिनके सघन रोमाञ्च निकल आये थे, जिनके लम्बे नेत्र हर्षातिरेकसे और भी अधिक लम्बे दिखने लगे थे, जो उत्कृष्ट भक्तिसे युक्त थीं, सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित थीं, महाकुलमें उत्पन्न थीं, तथा परमचेष्टाको धारण करनेवाली थीं ऐसी उन विद्याधरियोंने देवाङ्गनाओंके समान जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५४-५५॥ सुवर्णमय, पद्मराग मणिमय तथा चन्द्रकान्तमणिमय कमल, तथा अन्य स्वाभाविक पुष्प, सुगन्धिसे दिङ्मण्डलको व्याप्त करनेवाली

---

१. परमाकृतिम् म० । २. उच्चधूमशिखैः श्री० टि० ।

भक्तिकल्पितसान्निध्यै रत्नदीपैर्महाशिखैः । चित्रवल्युपहारैश्च[1] जिनानानर्च मारुतिः ॥५८॥
ततश्चन्दनदिग्धाङ्गः कुङ्कुमस्थासकाचितः । [2]सूत्रपत्रोर्णसंवीताशेषो विगतकल्मषः ॥५९॥
वानराङ्कस्फुरज्ज्योतिश्चक्रमौलिर्महामनाः । प्रमोदपरमस्फीतनेत्रांशुनिचिताननः ॥६०॥
ध्यात्वा जिनेश्वरं स्तुत्वा स्तोत्रैरघविनाशनैः । सुरासुरगुरोर्बिम्बं जिनस्य परमं मुहुः ॥६१॥
ततः सविभ्रमस्थाभिरप्सरोभिरमीक्षितः । विधाय [3]वल्लकीमङ्के गेयामृतमुदाहरत् ॥६२॥
जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविकासिनयना जनाः । नियमावहितात्मानः शिवं निदधते करे ॥६३॥
न तेषां दुर्लभं किञ्चित् कल्याणं शुद्धचेतसाम् । ये जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मङ्गलदर्शनाः ॥६४॥
श्रावकान्वयसम्भूतिर्भक्तिर्जिनवरे दृढा । समाधिनाऽवसानं च पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥६५॥
उपवीण्येति सुचिरं भूयः स्तुत्वा समर्च्य च । विधाय वन्दनां भक्तिमादधानो नवां नवाम् ॥६६॥
अप्रयच्छन् जिनेन्द्राणां पृष्ठं स्पष्टसुचेतसाम् । अनिच्छन्निव विश्रब्धो निर्ययावर्हदालयात् ॥६७॥
ततो विमानमारुह्य स्त्रीसहस्रसमन्वितः । मेरोः प्रदक्षिणं चक्रे ज्योतिर्देव इवोत्तमः ॥६८॥
शैलराज इव प्रीत्या श्रीशैलः सुन्दरक्रियः । करोति स्म तदा मेरोरापृच्छामिव पश्चिमाम् ॥६९॥
प्रकीर्य वरपुष्पाणि सर्वेषु जिनवेश्मसु । जगाम मन्थरं व्योम्नि भरतक्षेत्रसम्मुखः ॥७०॥
ततः परमरागाक्ता सन्ध्याऽऽश्लिष्य दिवाकरम् । अस्तक्षितिभृदावासं भेजे खेदनिनीषया ॥७१॥

परम उज्ज्वल गन्ध जिसकी धूमशिखा बहुत ऊँची उठ रही थी ऐसा पवित्र द्रव्यसे उत्पन्न धूप, भक्तिसे समीपमें लाकर रक्खे हुए बड़ी-बड़ी शिखाओंवाले दीपक, और नाना प्रकारके नैवेद्यसे हनूमान्ने जिनेन्द्रदेवकी पूजा की ॥५६-५८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे व्याप्त था, जो केशरके तिलकोंसे युक्त था, जिसका शरीर वस्त्रसे आच्छादित था, जिसके पाप छूट गये थे, जिसका मुकुट वानर चिह्नसे चिह्नित एवं स्फुरायमान किरणोंके समूहसे युक्त था और हर्षके कारण अत्यधिक विस्तृत नेत्रोंकी किरणोंसे जिसका मुख व्याप्त था ऐसे हनूमान्ने जिनेन्द्र भगवान्का ध्यान कर, तथा पापको नष्ट करनेवाले स्तोत्रोंसे सुरासुरोंके गुरु श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी बार-बार उत्तम स्तुति की ॥५९-६१॥ तदनन्तर विलास-विभ्रमके साथ बैठी हुई अप्सराएँ जिसे देख रहीं थी ऐसे हनुमान्ने वीणा गोदमें रख संगीत रूपी अमृत प्रकट किया ॥६२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने अपने नेत्र जिनेन्द्र भगवान्की पूजामें लगा रक्खे हैं तथा जिनकी आत्मा नियम पालनमें सावधान है ऐसे मनुष्य कल्याणको सदा अपने हाथमें रखते हैं ॥६३॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की पूजामें लीन हैं तथा उनके मङ्गलमय दर्शन करते हैं ऐसे निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंके लिए कोई भी कल्याण दुर्लभ नहीं है ॥६४॥ श्रावकके कुलमें जन्म होना, जिनेन्द्र भगवान्में सुदृढ़ भक्ति होना, और समाधिपूर्वक मरण होना, यही मनुष्य जन्मका पूर्ण फल है ॥६५॥ इस तरह चिरकाल तक वीणा बजाकर, बार-बार स्तुति और पूजा कर, वन्दना कर तथा नयी-नयी भक्तिकर आत्मज्ञ जिनेन्द्र भगवान्के लिए पीठ नहीं देता हुआ हनूमान् नहीं चाहते हुए की तरह विश्रब्ध हो जिन-मन्दिरसे बाहर निकला ॥६६-६७॥ तदनन्तर हजारों स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर उसने उत्तम ज्यौतिषीदेवके समान मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा दी ॥६८॥ उस समय सुन्दर क्रियाओंको धारण करनेवाला हनूमान् एक दूसरे गिरिराजके समान प्रेमवश, मानो सुमेरुसे जानेकी अन्तिम आज्ञा ही ले रहा हो ॥६९॥ तदनन्तर सब जिन-मन्दिरोंपर उत्तम फूल बरषाकर भरतक्षेत्रकी ओर धीरे-धीरे आकाशमें चला ॥७०॥

अथानन्तर परमराग (अत्यधिक लालिमा पक्षमें उत्कट प्रेम) से युक्त सन्ध्या सूर्यका आलिङ्गनकर खेद दूर करनेकी इच्छासे ही मानो अस्ताचलके ऊपर निवासको प्राप्त हुई ॥७१॥

---

१. चित्रवल्युपहारेण-म० । २. सूत्रपत्रार्णं ख० । पटोलको वस्त्रं वा श्री० टि० । ३. वीणाम् ।

कृष्णपक्षे तदा रात्रिस्ताराबन्धुभिरावृता । रहिता चन्द्रनाथेन नितान्तं न विराजते ॥७२॥
अवतीर्य ततस्तेन सुरदुन्दुभिनामनि । शैलपादे परं रम्ये सैन्यमावासितं शनैः ॥७३॥
तत्र पद्मोत्पलामोदवाहिमन्थरमारुते[1] । सुखं जिनकथाऽऽसक्ता यथास्वं सैनिकाः स्थिताः ॥७४॥
अथोपरि विमानस्य निषण्णः शिखरान्तिके । प्राग्भारचन्द्रशालायाः कैलासाधित्यकोपमे ॥७५॥
ज्योतिष्पथात्समुत्क्रान्ततत्प्रस्फुरितप्रभम् । ज्योतिर्बिम्बं मरुत्सूनुरालोकत[2] तमोऽभवत् ॥७६॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं संसारे नास्ति तत्पदम् । यत्र न क्रीडति स्वेच्छं मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥७७॥
तडिदुल्कातरङ्गातिभङ्गुरं जन्म सर्वतः । देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥७८॥
अनन्तशो न भुक्तं यत्संसारे चेतनावता । न तदस्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥७९॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम् । एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥८०॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रशः । अवाप्यते मनुष्यत्वं कष्टं नष्टमनाप्तवत् ॥८१॥
विनश्वरसुखासक्ताः सौहित्यपरिवर्जिताः । परिणामं प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥८२॥
चलान्युत्पथवृत्तानि दुःखदानि पराणि च । इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥८३॥
[3]आनायेन यथा दीना बध्यन्ते मृगपक्षिणः । तथा विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनो जनाः ॥८४॥
आशीविषसमानैर्यो रमते विषयैः समम् । परिणामे स मूढात्मा दह्यते दुःखवह्निना ॥८५॥
को ह्येकदिवसं राज्यं वर्षमन्विष्य यातनाम् । प्रार्थयेत विमूढात्मा तद्वद्विषयसौख्यभाक् ॥८६॥

वह समय कृष्ण पक्षका था, अतः तारारूपी बन्धुओंसे आवृत और चन्द्रमारूपी पतिसे रहित रात्रि अत्यधिक सुशोभित नहीं हो रही थी इसलिए उसने आकाशसे उतर सुरदुन्दुभि नामक परम मनोहर प्रत्यन्त पर्वतपर धीरेसे अपनी सेना ठहरा दी ॥७२-७३॥ जहाँ कमलों और नील कमलोंकी सुगन्धिको धारण करनेवाली वायु धीरे-धीरे बह रही थी ऐसे उस प्रत्यन्त पर्वतपर जिनेन्द्रभगवानकी कथामें लीन सैनिक यथायोग्य सुखसे ठहर गये ॥७४॥

अथानन्तर हनूमान् कैलास पर्वतके ऊपरी मैदानके समान विमानकी चन्द्रशाला सम्बन्धी शिखरके समीप सुखसे बैठा था कि उसने बहुत ऊँचे आकाशसे गिरते हुए तथा क्षण एकमें अन्धकार रूप हो जाने वाले देदीप्यमान कान्तिके धारक ज्योतिर्बिम्बको देखा ॥७५-७६॥ देखते ही वह विचार करने लगा कि हाय हाय बड़े दुःखकी बात है कि इस संसारमें वह स्थान नहीं है जहाँ देवसमूहके बीच भी मृत्यु इच्छानुसार क्रीड़ा नहीं करती हो ॥७७॥ जहाँ देवोंका भी जन्म सब ओरसे बिजली, उल्का और तरङ्गके समान अत्यन्त भङ्गुर है वहाँ अन्य प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥७८॥ इस प्राणीने संसारमें अनन्तबार जिस सुख-दुःखका अनुभव नहीं किया है वह तीन लोकमें भी नहीं है ॥७९॥ अहो ! यह मोहकी बड़ी प्रबल महिमा है कि यह जीव इतने समय तक दुःखसे भटकता रहा है ॥८०॥ हजारों उत्सर्पिणियों और अपसर्पिणियोंमें कष्ट सहित भ्रमण करनेके बाद मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है सो खेद है कि वह उस प्रकार नष्ट हो गई कि जिस प्रकार मानो प्राप्त ही न हुई हो ॥८१॥ विनाशी सुखोंमें आसक्त प्राणी कभी तृप्तिको प्राप्त नहीं होते और उसी अतृप्त दशामें संतापसे परिपूर्ण अन्तिम अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं ॥८२॥ चञ्चल, कुमार्गमें प्रवृत्ति करने वाली और अत्यन्त दुःखदायी इन्द्रियाँ जिन-मार्गका आश्रय लिए बिना शान्त नहीं होतीं ॥८३॥ जिस प्रकार दीन मृग और पक्षी जालसे बद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार ये मोही प्राणी विषय-जालसे बद्ध होते हैं ॥८४॥ जो मनुष्य सर्पके समान विषयोंके साथ क्रीड़ा करता है वह मूर्ख फलके समय दुःख रूपी अग्निसे जलता है ॥८५॥ जैसे कोई मनुष्य वर्षभर कष्ट भोगकर एक दिनके राज्यकी अभिलाषा करे वैसे ही विषय-सुखका उपभोग करने-

१. मारुताः म० । २. हनुमान् । ३. अनाप्येनं म०, ज० ।

कदाचिद् [1]बुध्यमानोऽपि मोहतस्करवञ्चितः । न करोति जनः स्वार्थं किमतः कष्टमुत्तमम् ॥८७॥
भुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसञ्चितम् । पश्चान्मुषितवद्दीनो दुःखी भवति चेतनः ॥८८॥
भुक्त्वापि [2]त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते । शेषकर्मसहायः सन् चेतनः क्वापि गच्छति [3] ॥८९॥
[4]एतदेवं प्रतीक्ष्येण त्रिजगत्पतिनोदितम् । यथा जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः शत्रुरेव वा ॥९०॥
तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः । विप्रयोगः सहामीभिरवश्यं येन जायते ॥९१॥
प्रियं जनमिमं त्यक्त्वा करोमि न तपो यदि । तदा सुभूमचक्रीव मरिष्याम्यवितृप्तकः ॥९२॥
श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा योषिद्गुणसमन्विताः । अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धा मदाहितमनोरथाः ॥९३॥
कथमेतास्त्यजामीति सञ्चिन्त्य विमनाः क्षणम् । अश्रावयदुपालम्भं हृदयस्य प्रबुद्धधीः ॥९४॥

अज्ञातच्छन्दः (?)

दीर्घं कालं रन्त्वा नाके गुणयुवतीभिः [5]सुविभूतिभिः ।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसमं भूयः [6]प्रमदवरललितवनिताजनैः [7]परिललितः ॥९५॥

अज्ञातच्छन्दः (?)

को वा यातस्तृप्तिं जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
नानाजन्मभ्रान्त श्रान्त व्रज हृदय शममपि किमाकुलितं भवेत् ॥९६॥

वाला यह मूर्ख प्राणी, चिरकाल तक कष्ट भोगकर थोड़े समयके लिए सुखकी आकांक्षा करता है ॥८६॥ यद्यपि यह प्राणी जानता हुआ भी मोहरूपी चोरके द्वारा ठगाया जाता है तथापि कभी आत्मकल्याण नहीं करता इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ? ॥८७॥ यह प्राणी मनुष्यभवमें संचित धर्मका स्वर्गमें उपभोगकर पश्चात् लुटे हुए मनुष्यके समान दीन और दुःखी हो जाता है ॥८८॥ यह जीव देवों सम्बन्धी भोग भोगकर भी पुण्यके क्षीण होनेपर अवशिष्ट कर्मोंकी सहायतासे जहाँ कहीं चला जाता है ॥८९॥ पूज्यवर त्रिलोकीनाथने यही कहा है कि इस प्राणीका बन्धु अथवा शत्रु अपना कर्म ही है ॥९०॥ इसलिए जिनके साथ अवश्य ही वियोग होता है ऐसे उन निन्दित तथा अत्यन्त कठोर भोगोंसे पूरा पड़े—उनकी हमें आवश्यकता नहीं है ॥९१॥ यदि मैं इन प्रियजनोंका त्यागकर तप नहीं करता हूँ तो सुभूम चक्रवर्तीके समान अतृप्त दशामें मरूँगा ॥९२॥ 'जो हरिणियोंके समान नेत्रोंवाली हैं, स्त्रियोंके गुणोंसे सहित हैं, अत्यन्त कठिनाईसे छोड़ने योग्य हैं, भोली हैं और मुझपर जिनके मनोरथ लगे हुए हैं ऐसी इन श्रीमती स्त्रियोंको कैसे छोड़ूँ' ऐसा विचारकर यद्यपि वह क्षणभरके लिए बेचैन हुआ तथापि वह तत्काल ही प्रबुद्ध बुद्धि हो हृदयके लिए इस प्रकार उलाहना देने लगा ॥९३-९४॥ कि हे हृदय ! जिसने दीर्घकाल तक स्वर्गमें उत्तम विभूतिकी धारक गुणवती स्त्रियोंके साथ रमण किया तथा मनुष्य-लोकमें भी जो अत्यधिक हर्षसे भरी सुन्दर स्त्रियोंसे लालित हुआ ऐसा कौन मनुष्य नदियोंसे समुद्रके समान नाना प्रकारके विषय-सुख सम्बन्धी प्रीतिसे सन्तुष्ट हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए हे नाना जन्मोंमें भटकनेवाले श्रान्त हृदय ! शान्तिको प्राप्त हो, व्यर्थ ही आकुलित क्यों हो

---

१. वध्यमानोऽपि म० । २. त्रिदशान् म० । ३. गच्छसि म० । ४. एतदेवं प्रतीक्ष्येण म० 'पूज्यः प्रतीक्ष्यः' इत्यमरः । ५. समनुभूतिभिः म० । ६. प्रमदवरवनिताजनैः म० । ७. खपुस्तके ९४-९५ तमश्लोकयोः क्रमभेदो वर्तते ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

किं न श्रुता नरकभीमविरोधरौद्रास्तीव्रासिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गाः ।
रागोद्भवेन जनितं घनकर्मपङ्कं यन्नेच्छसि क्षपयितुं तपसा समस्तम् ॥९७॥
आसीन्निरर्थकतमो धिगतीतकालो [1]दीर्घेऽसुखार्णवजले पतितस्य निन्द्ये[2] ।
आत्मानमद्य भवपञ्जरसन्निरुद्धं[3] मोचामि[4] लब्धशुभमार्गमतिप्रकाशः ॥९८॥

आर्या

इति कृतनिश्चयचेताः परिदृष्टयथार्थजीवलोकविवेकः ।
रविरिव गतघनसङ्गस्तेजस्वी गन्तुमुद्यतोऽहं मार्गम् ॥९९॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते हनुमन्निर्वेदं नाम द्वादशोत्तरशतं पर्व ॥११२॥

रहा है ? ॥९५-९६॥ हे हृदय ! क्या नरकके भयंकर विरोधसे दुःखदायी एवं तीक्ष्ण असिपत्र वनसे संकट पूर्ण दुर्गम मार्ग, तूने सुने नहीं हैं कि जिससे रागोत्पत्तिसे उत्पन्न समस्त सघनकर्म रूपी पङ्कको तू तपके द्वारा नष्ट करनेकी इच्छा नहीं कर रहा है ॥९७॥ धिक्कार है कि दीर्घ तथा निन्दनीय दुःखरूपी सागरमें डूबे हुए मेरा अतीतकाल सर्वथा निरर्थक हो गया। अब आज मुझे शुभ मार्ग और शुभ बुद्धिका प्रकाश प्राप्त हुआ है इसलिए संसार रूपी पिंजड़ेके भीतर रुके आत्माको मुक्त करता हूँ—भव-बन्धनसे छुड़ाता हूँ ॥९८॥ इस प्रकार जिसने हृदयमें दृढ़ निश्चय किया है तथा जीव लोकका जिसने यथार्थ विवेक देख लिया है ऐसा मैं मेघके संसर्गसे रहित सूर्यके समान तेजस्वी होता हुआ सन्मार्गपर गमन करनेके लिए उद्यत हुआ हूँ ॥९९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हनूमान्‌के वैराग्यका वर्णन करनेवाला एक सौ बारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११२॥

---

१. दीर्घः सुखार्णवजले म० । दीर्घ सुखार्णव-ज० । २. निन्द्यः म० । ३. विरुद्धं म० । ४. मोक्ष्यामि म० ।

त्रयोदशोत्तरशतं पर्व

अथ रात्रावतीतायां तपनीयनिभो रविः । जगदुद्योतयामास दीप्त्या साधुर्यथा गिरा ॥१॥
नक्षत्रगणमुत्सार्य बोधिता नलिनाकराः । रविणा जिननाथेन भव्यानां निचया इव ॥२॥
आपृच्छत [1]सखीन् [2]वातिर्महासंवेगसङ्गतः । निःस्पृहात्मा यथापूर्वं भरतोऽयन् तपोवनम् ॥३॥
ततः कृपणलोलाक्षाः[3] परमोद्वेगवाहिनः[4] । नाथं विज्ञापयन्ति स्म सचिवाः प्रेमनिर्भराः ॥४॥
अनाथान् देव नो कर्तुमस्मानर्हसि सद्गुण । प्रभो प्रसीद भक्तेषु क्रियतामनुपालनम् ॥५॥
जगाद मारुतिर्यूयं परमप्यनुवर्तिनः । अनर्थबान्धवा एव मम नो हितहेतवः ॥६॥
उत्तरन्तं भवाम्भोधिं तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये । हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थतः ॥७॥
माता पिता सुहृद्भ्राता न तदाऽगात्सहायताम् । यदा नरकवासेषु प्राप्तं दुःखमनुत्तमम् ॥८॥
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य बोधिं च जिनशासने । प्रमादो नोचितः कर्तुं निमेषमपि धीमतः ॥९॥
[5]समुष्यापि परं प्रीतैर्भवद्भिः सह भोगवत् । अवश्यंभावुकस्तीव्रो विरहः कर्मनिर्मितः ॥१०॥
देवासुरमनुष्येन्द्रा स्वकर्मवशवर्तिनः । कालदावानलालीढाः के वा न प्रलयं गताः ॥११॥
पल्योपमसहस्राणि त्रिदिवेऽनेकशो मया । भुक्ता भोगा न चाऽतृप्यं वह्निः शुष्केन्धनैरिव ॥१२॥
गताऽऽगमविधेर्दातृ मत्तोऽपि सुमहाबलम् । अपरं नाम कर्माऽस्ति जाता तनुर्ममाऽक्षमा ॥१३॥

अथानन्तर रात्रि व्यतीत होनेपर स्वर्णके समान सूर्यने दीप्तिसे जगत्को उस तरह प्रकाशमान कर दिया जिस तरह कि साधु वाणीके द्वारा प्रकाशमान करता है ॥१॥ सूर्यने नक्षत्र-समूहको हटाकर कमलोंके समूहको उस तरह विकसित कर दिया जिस तरह कि जिनेन्द्रदेव भव्योंके समूहको विकसित कर देता है ॥२॥ जिस प्रकार पहले तपोवनको जाते हुए भरतने अपने मित्रजनोंसे पूछा था उसी प्रकार महासंवेगसे युक्त, तथा निःस्पृह चित्त हनूमान्ने मित्रजनोंसे पूछा ॥३॥ तदनन्तर जिनके नेत्र अत्यन्त दीन तथा चञ्चल थे, जो परम उद्वेगको धारण कर रहे थे एवं जो प्रेमसे भरे हुए थे ऐसे मन्त्रियोंने स्वामीसे प्रार्थना की कि हे देव ! आप हम लोगोंको अनाथ करनेके योग्य नहीं हैं। हे उत्तम गुणोंके धारक प्रभो ! भक्तोंपर प्रसन्न हूजिए और उनका पालन कीजिए ॥४-५॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने कहा कि तुम लोग परम अनुयायी होकर भी हमारे अनर्थकारी बान्धव हो हितकारी नहीं ॥६॥ जो संसार-समुद्रसे पार होते हुए मनुष्यको उसीमें गिरा देते हैं वे हितकारी कैसे कहे जा सकते हैं ? वे तो यथार्थमें वैरी ही हैं ॥७॥ जब मैंने नरकवासमें बहुत भारी दुःख पाया था तब माता-पिता, मित्र, भाई—कोई भी सहायताको प्राप्त नहीं हुए थे—किसीने सहायता नहीं की थी ॥८॥ दुर्लभ मनुष्य-पर्याय और जिन-शासनका ज्ञान प्राप्तकर बुद्धिमान् मनुष्यको निमेष मात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं है ॥९॥ परम प्रीतिसे युक्त आप लोगोंके साथ रहकर जिस प्रकार भोगकी प्राप्ति हुई है उसी प्रकार अब कर्म-निर्मित तीव्र विरह भी अवश्यंभावी है ॥१०॥ अपने-अपने कर्मके आधीन रहनेवाले ऐसे कौन देवेन्द्र असुरेन्द्र अथवा मनुष्येन्द्र हैं जो काल रूपी दावानलसे व्याप्त हो विनाशको प्राप्त न हुए हों ? ॥११॥ मैंने स्वर्गमें अनेकों बार हजारों पल्य तक भोग भोगे हैं फिर भी सूखे ईन्धनसे अग्निके समान तृप्त नहीं हुआ ॥१२॥ गमनागमनको देनेवाला

---

१. सखीं म० । २. वातस्यापत्यं पुमान् वातिः हनूमान् । ३. लोभाख्याः ख० । लोभाक्षाः म० । ४. वाहिताः म० । ५. मनुष्योऽपि परं प्रीतैर्भवद्भिः सहभोगवान् ब० ।

देहिनो यत्र मुह्यन्ति दुर्गतं भवसङ्कटम् । विलङ्घ्य गन्तुमिच्छामि पदं गर्भविवर्जितम्[1] ॥१४॥
वज्रसारतनौ तस्मिन्नेवं कृतविचेष्टिते । अभूदन्तःपुरस्त्रीणां महानाक्रन्दितध्वनिः ॥१५॥
समाश्वास्य विषादार्तं प्रमदाजनमाकुलम् । वचोभिर्बोधने शक्तैर्नानावृत्तान्तशंसिभिः ॥१६॥
तनयांश्च समाधाय राजधर्मे यथाक्रमम् । सर्वान्नियोगकुशलः शुभात्रस्थितमानसः ॥१७॥
सुहृदां चक्रवालेन महता परितो वृतः । विमानभवनाद् राजा निर्ययौ वायुनन्दनः ॥१८॥
नरयानं समारुह्य रत्नकाञ्चनभासुरम् । बुद्बुदादर्शलम्बूषचित्रचामरसुन्दरम् ॥१९॥
सुपुण्डरीकसङ्काशं बहुभक्तिविराजितम् । चैत्योद्यानं यतः श्रीमान् प्रस्थितः परमोदयः ॥२०॥
विलसत्केतुमालाढ्यं तस्य यानमुदीक्ष्य तत् । ययौ हर्षविषादं च जनः सक्ताश्रुलोचनः ॥२१॥
तत्र चैत्यमहोद्याने विचित्रद्रुममण्डिते । सारिकाचञ्चरीकान्यपुष्टकोलाहलाकुले ॥२२॥
नानाकुसुमकिञ्जल्कसुगन्धिसततायने । संयतो धर्मरत्नाख्यस्तदा तिष्ठति कीर्तिमान् ॥२३॥
धर्मरत्नमहाराशिमत्यन्तोत्तमयोगिनम् । यथा बाहुबली पूर्वं भावप्लावितमानसः ॥२४॥
नरयानात् समुत्तीर्य हनूमानाससाद तम् । भगवन्तं नभोयातं [2]चारणर्षिगणावृतम् ॥२५॥
प्रणम्य भक्तिसम्पन्नः कृत्वा गुरुमहं परम् । जगाद शिरसि न्यस्य कराराजीवकुड्मलम् ॥२६॥
उपेत्य भवतो दीक्षां निर्मुक्ताङ्गो महामुने । अहं विहर्तुमिच्छामि प्रसादः क्रियतामिति ॥२७॥

यह कर्म मुझसे भी अधिक महाबलवान् है । मेरा शरीर तो अब अक्षम—असमर्थ हो गया है ॥१३॥ प्राणी जिस दुर्गम जन्म संकटको पाकर मोहित हो जाते हैं—स्वरूपको भूल जाते हैं। मैं उसे उल्लङ्घनकर गर्भातीत पदको प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१४॥

इस प्रकार वज्रमय शरीरको धारण करनेवाले हनूमान्‌ने जब अपनी दृढ़ चेष्टा दिखाई तब उसके अन्तःपुरकी स्त्रियोंमें रुदनका महाशब्द उत्पन्न हो गया ॥१५॥ तदनन्तर समझानेमें समर्थ एवं नाना प्रकारके वृत्तान्तोंका निरूपण करनेवाले वचनोंके द्वारा विषादसे पीडित, व्यग्र स्त्रियोंको सान्त्वना देकर तथा समस्त पुत्रोंको यथाक्रमसे राजधर्ममें लगाकर व्यवस्थापटु तथा शुभ कार्यमें मनको स्थिर करने वाले राजा हनूमान्, मित्रोंके बहुत बड़े समूहसे परिवृत हो विमानरूपी भवनसे बाहर निकले ॥१६–१८॥ जो रत्न और सुवर्णसे देदीप्यमान थी, छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस तथा नाना प्रकारके चमरोंसे सुन्दर थी और दिव्य-कमलके समान नाना प्रकारके वेलबूटोंसे सुशोभित थी ऐसी पालकीपर सवार हो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला श्रीमान् हनूमान् जिस ओर मन्दिरका उद्यान था उसी ओर चला ॥१९–२०॥ जिसपर पताकाएँ फहरा रही थीं तथा जो मालाओंसे सहित थीं ऐसी उसकी पालकी देखकर लोग हर्ष तथा विषाद दोनोंको प्राप्त हो रहे थे और दोनों ही कारणोंसे उनके नेत्रोंमें आँसू छलक रहे थे ॥२१॥ जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे मण्डित था, मैना, भ्रमर तथा कोयलके कोलाहलसे व्याप्त था और जिसमें नाना फूलोंकी केशरसे सुगन्धित वायु बह रही थी ऐसे मन्दिरके उस महोद्यानमें उस समय धर्मरत्न नामक यशस्वी मुनि विराजमान थे ॥२२–२३॥

जिनका मन वैराग्यकी भावनासे आप्लुत था ऐसे बाहुबली जिस प्रकार पहले धर्मरूपी रत्नोंकी महाराशि स्वरूप अत्यन्त उत्तम योगी—श्री ऋषभ जिनेन्द्रके समीप गये थे उसी प्रकार वैराग्य भावनासे आप्लुत हृदय हनूमान् पालकीसे उतरकर आकाशगामी एवं चारणर्षियोंसे आवृत उन भगवान् धर्मरत्न नामक मुनिराजके समीप पहुँचा ॥२४–२५॥ पहुँचते ही उसने प्रणाम किया, बहुत बड़ी गुरुपूजा की और तदनन्तर हस्तरूपी कमल-कुड्मलोंको शिरपर धारण कर कहा कि हे महामुने ! मैं आपसे दीक्षा लेकर तथा शरीरसे ममता छोड़ निर्द्वन्द्व विहार करना

---

१. विवर्तिनम् म० । २. नभोयानं म० ।

यतिराहोत्तमं युक्तमेवमस्तु सुमानसः । जगन्निःसारमालोक्य क्रियतां स्वहितं परम् ॥२८॥
अशाश्वतेन देहेन विहत्तुं[1] शाश्वतं पदम् । परमं तव कल्याणी मतिरेषा समुद्गता ॥२९॥
इत्यनुज्ञां मुनेः प्राप्य संवेगरभसान्वितः । कृतप्रणमनस्तुष्टः पर्यङ्कासनमाश्रितः ॥३०॥
मुकुटं कुण्डले हारमवशिष्टं विभूषणम् । समुत्ससर्ज वस्त्रं च मानसं च परिग्रहम् ॥३१॥
दयितानिगडं भित्त्वा दग्ध्वा जालं ममत्वजम् । छित्त्वा स्नेहमयं पाशं त्यक्त्वा सौख्यं विषोपमम् ॥३२॥
वैराग्यदीपशिखया मोहध्वान्तं निरस्य च । कमप्यपकरं दृष्ट्वा शरीरमतिभङ्गुरम् ॥३३॥
स्वयं सुसुकुमाराभिर्जितपद्माभिरुत्तमम् । उत्तमाङ्गरुहो नीत्वा करशाखाभिरुत्तमः ॥३४॥
निःशेषसङ्गनिर्मुक्तो मुक्तिलक्ष्मीं समाश्रितः । महाव्रतधरः श्रीमाञ्छ्रीशैलः शुशुभेतराम् ॥३५॥
निर्वेदप्रभुरागाभ्यां प्रेरितानि महात्मनाम् । शतानि सप्त साग्राणि पञ्चाशद्भिः सुचेतसाम् ॥३६॥
विद्याधरनरेन्द्राणां महासंवेगवर्तिनाम् । स्वपुत्रेषु पदं दत्त्वा प्रतिपन्नानि योगिताम् ॥३७॥
विद्युद्गत्यादिनामानः परमप्रीतमानसाः । मुक्तसर्वकलङ्कास्ते श्रिताः श्रीशैलविभ्रमम् ॥३८॥
कृत्वा परमकारुण्यं विप्रलापं महाशुचम् । वियोगानलसन्तप्ताः परं निर्वेदमागताः ॥३९॥
प्रथितां बन्धुमत्याख्यामुपगम्य महत्तराम् । प्रयुज्य विनयं भक्त्या विधाय महमुत्तमम् ॥४०॥
श्रीमत्यो भवतो भीता धीमत्यो नृपयोषितः । महद्भूषणनिर्मुक्ताः शीलभूषाः प्रवव्रजुः ॥४१॥
बभूव विभवस्तासां तदा जीर्णतृणोपमः । महामहाजनः प्रायो रतिवह्निरतो भृशम् ॥४२॥

चाहता हूँ अतः मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥२६-२७॥ यह सुन उत्तम हृदयके धारक मुनिराजने कहा कि बहुत अच्छा, ऐसा ही हो, जगत्को निःसार देख अपना परम कल्याण करो ॥२८॥ विनश्वर शरीरसे अविनाशी पद प्राप्त करनेके लिए जो तुम्हारी कल्याणरूपिणी बुद्धि उत्पन्न हुई है यह बहुत उत्तम बात है ॥२९॥

इस प्रकार मुनिकी आज्ञा पाकर जो वैराग्यके वेगसे सहित था, जिसने प्रणाम किया था, और जो संतुष्ट होकर पद्मासनसे विराजमान था ऐसे हनूमान्ने मुकुट, कुण्डल, हार तथा अन्य आभूषण, वस्त्र और मानसिक परिग्रहको तत्काल छोड़ दिया ॥३०-३१॥ उसने स्त्री रूपी बेड़ी तोड़ डाली थी, ममतासे उत्पन्न जालको जला दिया था, स्नेह रूपी पाश छेद डाली थी, सुखको विषके समान छोड़ दिया था, अत्यन्त भङ्गुर शरीरको अद्भुत अपकारी देख वैराग्य रूपी दीपककी शिखासे मोहरूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया था, और कमलको जीतनेवाली अपनी सुकुमार अङ्गुलियोंसे शिरके बाल नोच डाले थे। इस प्रकार समस्त परिग्रहसे रहित, मुक्ति रूपी लक्ष्मीके सेवक, महाव्रतधारी, और वैराग्य लक्ष्मीसे युक्त उत्तम हनूमान् अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥३२-३४॥ उस समय वैराग्य और स्वामिभक्तिसे प्रेरित, उदारात्मा, शुद्ध हृदय और महासंवेगमें वर्तमान सातसौ पचास विद्याधर राजाओंने अपने-अपने पुत्रोंके लिए राज्य देकर मुनिपद धारण किया ॥३५-३७॥ इस प्रकार जिनके चित्त अत्यन्त प्रसन्न थे, तथा जिनके सब कलंक छूट गये थे ऐसे वे विद्युद्गति आदि नामको धारण करनेवाले मुनि हनूमान्की शोभाको प्राप्त थे अर्थात् उन्हींके समान शोभायमान थे ॥३८॥

तदनन्तर जो वियोगरूपी अग्निसे संतप्त थीं, महाशोकदायी अत्यन्त करुण विलाप कर परम निर्वेद—वैराग्यको प्राप्त हुई थीं, श्रीमती थीं, संसारसे भयभीत थीं, धीमती थीं, महा-आभूषणोंसे रहित थीं, और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाली थीं ऐसी राजस्त्रियोंने बन्धुमती नामकी प्रसिद्ध आर्यिकाके पास जाकर तथा भक्ति पूर्वक नमस्कार और उत्तम पूजा कर दीक्षा धारण कर ली ॥३९-४१॥ उस समय उन सबके लिए वैभव जीर्णतृणके समान जान पड़ने लगा

---

१. परम् म० ।

व्रतगुप्तिसमित्युच्चैः शैलः श्रीशैलपुङ्गवः। महातपोधनो धीमान् गुणशीलविभूषणः ॥४३॥

आर्याच्छन्दः

धरणीधरैः प्रहृष्टैरुपगीतो वन्दितोऽप्सरोभिश्च।
अमलं समयविधानं सर्वज्ञोक्तं समाचर्य ॥४४॥
निर्दग्धमोहनिचयो जैनेन्द्रं प्राप्य पुष्कलं ज्ञानविधिम्।
निर्वाणगिरावसिधच्छ्रीशैलः श्रमणसत्तमः पुरुषरविः ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते हनुमन्निर्वाणाभिधानं नाम त्रयोदशोत्तरशतं पर्व ॥११३॥

था सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम पुरुष राग करने वालोंसे अत्यन्त विरक्त रहते ही हैं ॥४२॥ इस प्रकार जो व्रत, गुप्ति और समितिके मानो उच्च पर्वत थे ऐसे श्री हनूमान् मुनि महातप रूपी धनके धारक, धीमान् और गुण तथा शील रूपी आभूषणोंसे सहित थे ॥४३॥ हर्षसे भरे बड़े-बड़े राजा जिनकी स्तुति करते थे, अप्सराएँ जिन्हें नमस्कार करती थीं, जिन्होंने मोहकी राशि भस्म कर दी थी, जो मुनियोंमें उत्तम थे, तथा पुरुषोंमें सूर्यके समान थे ऐसे श्रीशैल महामुनिने सर्वज्ञ प्रतिपादित निर्मल आचारका पालन कर तथा जिनेन्द्र सम्बन्धी पूर्णज्ञान प्राप्तकर निर्वाण गिरिसे सिद्ध पद प्राप्त किया ॥४४-४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें हनूमान्के निर्वाणका वर्णन करनेवाला एकसौ तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११३॥

चतुर्दशोत्तरशतं पर्व

प्रव्रज्यामष्टवीराणां ज्ञात्वा वायुसुतस्य च । रामो जहास किं भोगो भुक्तस्तैः कातरैरिति ॥१॥
सन्तं सन्त्यज्य ये भोगं प्रव्रजन्त्यायतेक्षणाः । नूनं ग्रहगृहीतास्ते वायुना वा वशीकृताः ॥२॥
नूनं तेषां न विद्यन्ते कुशला वैद्यवार्तिकाः[1] । यतो मनोहरान् कामान्परित्यज्य व्यवस्थिताः ॥३॥
एवं भोगमहासङ्गसौख्यसागरसेविनः । आसीत्तस्य जडा बुद्धिः कर्मणा वशमीयुषः ॥४॥
[2]भुज्यमानाऽल्पसौख्येन संसारपदमीयुषाम्[3] । प्रायो विस्मयते सौख्यं श्रुतमप्यतिसंसृति[4] ॥५॥
एवं तयोर्महाभोगमग्नयोः प्रेमबद्धयोः[5] । पद्मवैकुण्ठयोः कालो धर्मकुण्ठो विवर्तते ॥६॥
अथान्यदा समायातः सौधर्मेन्द्रो महाद्युतिः । ऋद्ध्या परमया युक्तो धैर्यगाम्भीर्यसंस्थितः ॥७॥
सेवितः सचिवैः सर्वैर्नानालङ्कारधारिभिः । कार्तस्वरमहाशैल इव गण्डमहीधरैः ॥८॥
सुखं तेजःपरिच्छन्ने निषण्णः सिंहविष्टरे । सुमेरुशिखरस्थस्य चैत्यस्य श्रियमुद्वहन् ॥९॥
चन्द्रादित्योत्तमोद्योतरत्नालङ्कृतविग्रहः । मनोहरेण रूपेण जुष्टो नेत्रसमुत्सवः ॥१०॥
बिभ्राणो विमलं हारं तरङ्गितमहाप्रभम्[6] । प्रवाहमिव सैतोदं श्रीमान्निषधभूधरः ॥११॥
हारकुण्डलकेयूरप्रभृत्युत्तमभूषणैः । समन्तादावृतो देवैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१२॥

अथानन्तर लक्ष्मणके आठ वीर कुमारों और हनूमानकी दीक्षाका समाचार सुन श्रीराम यह कहते हुए हँसे कि अरे ! इन लोगोंने क्या भोग भोगा ? ॥१॥ जो दूरदर्शी मनुष्य, विद्यमान भोगको छोड़कर दीक्षा लेते हैं जान पड़ता है कि वे ग्रहोंसे आक्रान्त हैं अथवा वायुके वशीभूत हैं। भावार्थ—या तो उन्हें भूत लगे हैं या वे वायुकी बीमारीसे पीड़ित हैं ॥२॥ जान पड़ता है कि ऐसे लोगोंकी ओषधि करने वाले कुशल वैद्य नहीं हैं इसीलिए तो वे मनोहर भोगोंको छोड़ बैठते हैं ॥३॥ इस प्रकार भोगोंके महासंगसे होने वाले सुख रूपी सागरमें निमग्न तथा चारित्र-मोहनीय कर्मके वशीभूत श्रीरामचन्द्रकी बुद्धि जड़ रूप हो गई थी ॥४॥ भोगनेमें आये हुए अल्प सुखसे उपलक्षित संसारी प्राणियोंको यदि किसीके लोकोत्तर सुखका वर्णन सुननेमें भी आता है तो प्रायः वह आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥५॥ इस प्रकार महाभोगोंमें निमग्न तथा प्रेमसे बँधे हुए उन राम-लक्ष्मणका काल चारित्र रूपी धर्मसे निरपेक्ष होता हुआ व्यतीत हो रहा था ॥६॥

अथानन्तर किसी समय महा कान्तिसे युक्त, उत्कृष्ट ऋद्धिसे सहित, धैर्य और गाम्भीर्यसे उपलक्षित सौधर्मेन्द्र देवोंकी सभामें आकर विराजमान हुआ ॥७॥ नाना अलंकारोंको धारण करने वाले समस्त मन्त्री उसकी सेवा कर रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो अन्य छोटे पर्वतोंसे परिवृत सुमेरु महापर्वत ही हो ॥८॥ कान्तिसे आच्छादित सिंहासनपर बैठा हुआ वह सौधर्मेन्द्र सुमेरुके शिखरपर विराजमान जिनेन्द्रकी शोभाको धारण कर रहा था ॥९॥ चन्द्रमा और सूर्यके समान उत्तम प्रकाश वाले रत्नोंसे उसका शरीर अलंकृत था। वह मनोहर रूपसे सहित तथा नेत्रोंको आनन्द देने वाला था ॥१०॥ जिसकी बहुतभारी कान्ति फैल रही थी ऐसे निर्मल हारको धारण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो सीतोदा नदीके प्रवाहको धारण करता हुआ निषध पर्वत ही हो ॥११॥ हार, कुण्डल, केयूर आदि उत्तम आभूषणोंको धारण करने

---

१. वैद्यवातिकाः म० । २. कपुस्तके एष श्लोको नास्ति । ३. -मीयुषः म० । ४. संसृतिः । ५. प्रेमबन्धयोः म० । ६. महाप्रभः म० ।

चन्द्रनक्षत्रसादृश्यं चाद्य मानुषगोचरम् । उक्तं यतोऽन्यथाकल्पज्योतिषामन्तरं महत् ॥१३॥
महाप्रभावसम्पन्नो दिशो दश निजौजसा । भासयन्परमोदात्तस्तरुर्जैनेश्वरो यथा ॥१४॥
अशक्यवर्णनो भूरि संवत्सरशतैरपि । अप्यशेषैर्जनैर्जिह्वासहस्रैरपि सर्वदा ॥१५॥
लोकपालप्रधानानां सुराणां चारुचेतसाम् । यथाऽऽसनं निषण्णानां पुराणमिदमभ्यधात् ॥१६॥
येनैषोऽत्यन्तदुःसाध्यः संसारः परमासुरः । निहतो ज्ञानचक्रेण महारिः सुखसूदनः ॥१७॥
अर्हन्तं तं परं भक्त्या भावपुष्पैरनन्तरम् । नाथमर्चयताऽशेषदोषकक्षविभावसुम् ॥१८॥
कषायोग्रतरङ्गाढ्यात् कामग्राहसमाकुलात् । यः संसारार्णवाद् भव्यान् समुत्तारयितुं क्षमः ॥१९॥
यस्य प्रजातमात्रस्य मन्दरे त्रिदशेश्वराः । अभिषेकं निषेवन्ते परं क्षीरोदवारिणा ॥२०॥
अर्चयन्ति च भक्त्याढ्यास्तदेकाग्रानुवर्तिनः । पुरुषार्थाऽऽहितस्वान्ताः परिवर्गसमन्विताः ॥२१॥
विन्ध्यकैलासवक्षोजां पारावारोर्मिमेखलाम् । यावत्तस्थौ महीं त्यक्त्वा गृहीत्वा सिद्धियोषिताम् ॥२२॥
महामोहतमश्छन्नं धर्महीनमपार्थिवम् । येनेदमेत्य नाकाग्रादालोकं प्रापितं जगत् ॥२३॥
अत्यन्ताद्भुतवीर्येण येनाष्टौ कर्मशत्रवः । क्षपिताः क्षणमात्रेण हरिणेवेह दन्तिनः ॥२४॥

वाले देव उस सौधर्मेन्द्रको सब ओरसे घेरे हुए थे इसलिए वह नक्षत्रोंसे आवृत चन्द्रमाके समान जान पड़ता था ॥१२॥ इन्द्र तथा देवोंके लिए जो चन्द्रमा और नक्षत्रोंका सादृश्य कहा है वह मनुष्यकी अपेक्षा है क्योंकि स्वर्गके देव और ज्योतिषी देवोंमें बड़ा अन्तर है। भावार्थ—मनुष्य-लोकमें चन्द्रमा और नक्षत्र उज्ज्वल दिखते हैं इसलिए इन्द्र तथा देवोंको उनका दृष्टान्त दिया है यथार्थमें चन्द्रमा नक्षत्र रूप ज्योतिषी देवोंसे स्वर्गवासी देवोंकी ज्योति अधिक है और देवोंकी ज्योतिसे इन्द्रोंकी ज्योति अधिक है ॥१३॥ वह इन्द्र स्वयं महाप्रभावसे सम्पन्न था और अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान कर रहा था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र सम्बन्धी अत्यन्त ऊँचा अशोक वृक्ष ही हो ॥१४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यदि सब लोग मिल-कर हजारों जिह्वाओंके द्वारा निरन्तर उसका वर्णन करें तो सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन पूरा नहीं हो सकता ॥१५॥

तदनन्तर उस इन्द्रने, यथायोग्य आसनोंपर बैठे लोकपाल आदि शुद्ध हृदयके धारक देवोंके समक्ष इस पुराणका वर्णन किया ॥१६॥ पुराणका वर्णन करते हुए उसने कहा कि अहो देवो ! जिन्होंने अत्यन्त दुःसाध्य, सुखको नष्ट करनेवाले तथा महाशत्रु स्वरूप इस संसाररूपी महाअसुरको ज्ञानरूपी चक्रके द्वारा नष्ट कर दिया है और जो समस्त दोष रूपी अटवीको जलानेके लिए अग्निके समान हैं उन परमोत्कृष्ट अर्हन्त भगवानकी तुम निरन्तर भक्तिपूर्वक भाव रूपी फूलोंसे अर्चा करो ॥१७–१८॥ कषायरूपी उन्नत तरङ्गोंसे युक्त तथा कामरूपी मगर-मच्छोंसे व्याप्त संसार रूपी सागरसे जो भव्य जीवोंको पार लगानेमें समर्थ हैं, उत्पन्न होते ही जिनका इन्द्र लोग सुमेरु पर्वतपर क्षीरसागरके जलसे उत्कृष्ट अभिषेक करते हैं। तथा भक्तिसे युक्त, मोक्ष पुरुषार्थमें चित्तको लगानेवाले एवं अपने-अपने परिजनोंसे सहित इन्द्र लोग तदेकाग्र चित्त होकर जिनकी पूजा करते हैं ॥१९–२१॥ विन्ध्य और कैलाश पर्वत जिसके स्तन हैं तथा समुद्रकी लहरें जिसकी मेखला हैं ऐसी पृथिवी रूपी स्त्रीका त्यागकर तथा मुक्ति रूपी स्त्रीको लेकर जो विद्यमान हैं ॥२२॥ महामोह रूपी अन्ध-कारसे आच्छादित, धर्महीन तथा स्वामी हीन इस संसारको जिन्होंने स्वर्गके अग्रभागसे आकर उत्तम प्रकाश प्राप्त कराया था ॥२३॥ और जिस प्रकार सिंह हाथियोंको नष्ट कर देता है उसी प्रकार अत्यन्त अद्भुत पराक्रमको धारण करने वाले जिन्होंने आठ कर्म रूपी शत्रुओंको क्षणभरमें

---

१. कल्पं-म० ।

जिनेन्द्रो भगवानर्हन् स्वयम्भूः शम्भुरूर्जितः । स्वयम्प्रभो महादेवः स्थाणुः कालञ्जरः शिवः ॥२५॥
महाहिरण्यगर्भश्च देवदेवो महेश्वरः । सद्धर्मचक्रवर्ती च विभुस्तीर्थंकरः कृती ॥२६॥
संसारसूदनः सूरिर्ज्ञानचक्षुर्भवान्तकः । एवमादिर्यथार्थाख्यो गीयते यो मनीषिभिः ॥२७॥
[1]निगूढप्रकटस्वार्थैरभिधानैः सुनिर्मलैः । स्तूयते स मनुष्येन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च सुभक्तिभिः ॥२८॥
प्रसादाद्यस्य नाथस्य कर्ममुक्ताः शरीरिणः । त्रैलोक्याग्रेऽवतिष्ठन्ते यथावत्प्रकृतिस्थिताः ॥२९॥
इत्यादि यस्य माहात्म्यं स्मृतमप्यघनाशनम् । पुराणं परमं दिव्यं सम्मदोद्भवकारणम् ॥३०॥
महाकल्याणमूलस्य स्वार्थकांक्षणतत्पराः । तस्य देवाधिदेवस्य भक्ता भवत सन्ततम् ॥३१॥
[2]अनादिनिधने जन्तुः प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः । दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं धिक् कश्चिदपि मुह्यति ॥३२॥
चतुर्गतिमहावर्ते महासंसारमण्डले । पुनर्बोधिः कुतस्तेषां ये द्विषन्त्यर्हदक्षरम् ॥३३॥
कृच्छ्रान्मानुषमासाद्य यः स्याद्बोधिविवर्जितः । पुनर्भ्राम्यत्यपुण्यात्मा सः स्वयंरथचक्रवत् ॥३४॥
अहो धिङ्मानुषे लोके गतानुगतिकैर्जनैः । जिनेन्द्रो नादृतः कैश्चित्संसारारिनिषूदनः ॥३५॥
मिथ्यातपः समाचर्य भूत्वा देवो लवर्धिकः[3] । च्युत्वा मनुष्यतां प्राप्य कष्टं द्रुह्यति जीवकः ॥३६॥
कुधर्माशयसक्तोऽसौ महामोहवशीकृतः । न जिनेन्द्रं महेन्द्राणामपीन्द्रं [4]प्रतिपद्यते ॥३७॥
विषयामिषलुब्धात्मा जन्तुर्मनुजतां गतः । मुह्यते मोहनीयेन कर्मणा कष्टमुत्तमम् ॥३८॥
अपि दुर्दैवयोगाद्यैः स्वर्गं प्राप्य कुतापसः । स्वहीनतां परिज्ञाय दह्यते चिन्तयाऽऽतुरः ॥३९॥
रत्नद्वीपोपमे रम्ये तदा धिङ्मन्दबुद्धिना । मयार्हच्छासने किं नु श्रेयो न कृतमात्मनः ॥४०॥

नष्ट कर दिया है ॥२४॥ जिनेन्द्र-भगवान्, अर्हन्त, स्वयंभू, शम्भु, ऊर्जित, स्वयंप्रभ, महादेव, स्थाणु, कालंजर, शिव, महाहिरण्यगर्भ, देवदेव, महेश्वर, सद्धर्म चक्रवर्ती, विभु, तीर्थंकर, कृति, संसारसूदन, सूरि, ज्ञानचक्षु और भवान्तक इत्यादि यथार्थ नामोंसे विद्वज्जन जिनकी स्तुति करते हैं ॥२५-२७॥ उत्तम भक्तिसेयुक्त नरेन्द्र और देवेन्द्र गूढ़ तथा अगूढ़ अर्थको धारण करने वाले अत्यन्त निर्मल शब्दों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं ॥२८॥ जिनके प्रसादसे जीव कर्मरहित हो तीन लोकके अग्रभागमें स्वस्वभावमें स्थित रहते हुए विद्यमान रहते हैं ॥२९॥ जिनका इस प्रकारका माहात्म्य स्मृतिमें आनेपर भी पापका नाश करनेवाला है और जिनका परम दिव्य पुराण हर्षकी उत्पत्तिका कारण है ॥३०॥ हे आत्मकल्याणके इच्छुक देवजनो! उन महा-कल्याणके मूल देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्‌के तुम सदा भक्त होओ ॥३१॥ इस अनादि-निधन संसारमें अपने कर्मोंसे प्रेरित हुआ कोई विरला मनुष्य ही दुर्लभ मनुष्य पर्यायको प्राप्त करता है परन्तु धिक्कार है कि वह भी मोहमें फँस जाता है ॥३२॥ जो 'अर्हन्त' इस अक्षरसे द्वेष करते हैं उन्हें चतुर्गति रूप बड़ी-बड़ी आवर्तोंसे सहित इस संसाररूपी महासागरमें रत्नत्रयकी प्राप्ति पुनः कैसे हो सकती है? ॥३३॥ जो बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव पाकर रत्नत्रयसे वर्जित रहता है, वह पापी रथके चक्रके समान स्वयं भ्रमण करता रहता है ॥३४॥ अहो धिक्कार है कि इस मनुष्य-लोकमें कितने ही गतानुगतिक लोगोंमें संसार-शत्रुको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का आदर नहीं किया ॥३५॥ यह जीव मिथ्या तपकर अल्प ऋद्धिका धारक देव होता है और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पर्याय पाता है फिर भी खेद है कि द्रोह करता है ॥३६॥ महामोहके वशीभूत हुआ यह जीव, मिथ्याधर्ममें आसक्त हो बड़े-बड़े इन्द्रोंके इन्द्र जो जिनेन्द्र भगवान् हैं उन्हें प्राप्त नहीं होता ॥३७॥ विषय रूपी मांसमें जिसकी आत्मा लुभा रही है ऐसा यह प्राणी मनुष्य पर्याय कर्मको पाकर मोहनीयके द्वारा मोहित हो रहा है, यह बड़े कष्टकी बात है ॥३८॥ मिथ्यातप करनेवाला प्राणी दुर्दैवके योगसे यदि स्वर्ग भी प्राप्त कर लेता है तो वहाँ अपनी हीनताका अनुभव करता हुआ चिन्तातुर हो जलता रहता है ॥३९॥ वहाँ वह सोचता है कि अहो! रत्नद्वीपके

१. निगूढः प्रकटः म० । २. अनादिनिधनो म० । ३. बलर्द्धिकः म० । ४. प्रतिपद्यन्ते म० ।

हा धिक्कुशास्त्रनिवहैस्तैश्च वाक्पटुभिः खलैः । पापैर्मानिभिरुन्मार्गे पातितः पतितैः कथम् ॥४१॥
एवं मानुष्यमासाद्य जैनेन्द्रमतमुत्तमम् । दुर्विज्ञेयमधन्यानां जन्तूनां दुःखभागिनाम् ॥४२॥
महर्धिकस्य देवस्य च्युतस्य स्वर्गतो भवेत् । आर्हती दुर्लभा बोधिर्देहिनोऽन्यस्य किं पुनः ॥४३॥
धन्यः सोऽनुगृहीतश्च मानुषत्वे भवोत्तमे । यः करोत्यात्मनः श्रेयो बोधिमासाद्य नैष्ठिकीम् ॥४४॥
तत्रैवात्मगतं प्राह सुरश्रेष्ठो विभावसुः । कदा नु खलु मानुष्यं प्राप्स्यामि स्थितिसंक्षये ॥४५॥
विषयारिं परित्यज्य स्थापयित्वा वशे मनः । नीत्वा कर्म प्रयास्यामि तपसा गतिमार्हताम् ॥४६॥
तत्रैको विबुधः प्राह स्वर्गस्थस्येदृशी मतिः । अस्माकमपि सर्वेषां नृत्वं प्राप्य विमुह्यति ॥४७॥
यदि प्रत्ययसे नैतत् ब्रह्मलोकात् परिच्युतम् । मानुष्यैश्वर्यसंयुक्तं पद्माभं किं न पश्यसि ॥४८॥
अत्रोवाच महातेजाः शचीपतिरसौ स्वयम् । सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महादृढः ॥४९॥
हस्तपादाङ्गबद्धस्य मोक्षः स्यादसुधारिणः । स्नेहबन्धनबद्धस्य कुतो मुक्तिर्विधीयते ॥५०॥
योजनानां सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत् । शक्तो नाङ्गुलमप्येकं बद्धः स्नेहेन मानवः ॥५१॥
अस्य लाङ्गलिनो नित्यमनुरक्तो गदायुधः । अतृप्तो दर्शने कृत्यं जीवितेनाऽपि वाञ्छति ॥५२॥
निमेषमपि नो यस्य विकलं हलिनो मनः । स तं लक्ष्मीधरं त्यक्तुं शक्नोति सुकृतं[1] कथम् ॥५३॥

समान सुन्दर जिन-शासनमें पहुँचकर भी मुझ मन्दबुद्धिने आत्माका हित नहीं किया अतः मुझे धिक्कार है ॥४०॥ हाय हाय धिक्कार है कि मैं उन मिथ्या शास्त्रोंके समूह तथा वचन-रचनामें चतुर, पापी, मानी तथा स्वयं पतित दुष्ट मनुष्योंके द्वारा कुमार्गमें कैसे गिरा दिया गया ? ॥४१॥ इस प्रकार मनुष्य-भव पाकर भी अधन्य तथा निरन्तर दुःख उठानेवाले मनुष्योंके लिए यह उत्तम जिन-शासन दुर्ज्ञेय ही बना रहता है ॥४२॥ स्वर्गसे च्युत हुए महर्द्धिक देवके लिए भी जिनेन्द्र प्रतिपादित रत्नत्रयका पाना दुर्लभ है फिर अन्य प्राणीकी तो बात ही क्या है ? ॥४३॥ सब पर्यायोंमें उत्तम मनुष्य-पर्यायमें निष्ठापूर्ण रत्नत्रय पाकर जो आत्माका कल्याण करता है वही धन्य है तथा वही अनुगृहीत—उपकृत है ॥४४॥

उसी सभामें बैठा हुआ इन्द्ररूपी सूर्य, मन-ही-मन कहता है कि यहाँकी आयुपूर्ण होनेपर मैं मनुष्य-पर्यायको कब प्राप्त करूँगा ? ॥४५॥ कब विषयरूपी शत्रुको छोड़कर मनको अपने वश कर, तथा कर्मको नष्टकर तपके द्वारा मैं जिनेन्द्र सम्बन्धी गति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करूँगा ॥४६॥ यह सुन देवोंमें से एक देव बोला कि जब तक यह जीव स्वर्गमें रहता है तभी तक उसके ऐसा विचार होता है, जब हम सब लोग भी मनुष्य-पर्यायको पा लेते हैं तब यह सब विचार भूल जाता है ॥४७॥ यदि इस बातका विश्वास नहीं है तो ब्रह्मलोकसे च्युत तथा मनुष्योंके से युक्त राम-बलभद्रको जाकर क्यों नहीं देख लेते ? ॥४८॥

इसके उत्तरमें महातेजस्वी इन्द्रने स्वयं कहा कि सब बन्धनोंमें स्नेहका बन्धन अत्यन्त दृढ़ है ॥४९॥ जो हाथ-पैर आदि अवयवोंसे बँधा है ऐसे प्राणीको मोक्ष हो सकता है परन्तु स्नेहरूपी बन्धनसे बँधे प्राणीको मोक्ष कैसे हो सकता है ? ॥५०॥ बेड़ियोंसे बँधा मनुष्य हजारों योजन भी जा सकता है परन्तु स्नेहसे बँधा मनुष्य एक अङ्गुल भी जानेके लिए समर्थ नहीं है ॥५१॥ लक्ष्मण, राममें सदा अनुरक्त रहता है वह इसके दर्शन करते-करते कभी तृप्त ही नहीं होता और अपने प्राण देकर भी उसका कार्य करना चाहता है ॥५२॥ पलभरके लिए भी जिसके दूर होनेपर रामका मन बेचैन हो उठता है वह उस उपकारी लक्ष्मणको छोड़नेके लिए

---

१. सुष्ठु करोतीति सुकृत् तम् ।

छन्दः (?)

कर्मणामिदमीदृशमीहितं बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम् ।
अन्यथा श्रुतसर्वनिजायतिः कः करोति न हितं सचेतनः ॥५४॥
एवमेतदहो त्रिदशाः स्थितं देहिनामपरमत्र किमुच्यताम् ।
कृत्यमत्र भवारिविनाशनं यत्नमेत्य परमं सुचेतसा ॥५५॥

मालिनीच्छन्दः

इति सुरपतिमार्गं तत्त्वमार्गानुरक्तं जिनवरगुणसङ्गात्यन्तपूतं मनोज्ञम् ।
रविशशिमरुदाद्याः प्राप्य चेतोविशुद्धा भवभयमभिजग्मुर्मानवत्वाभिकाङ्क्षाः ॥५६॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते रविषेणाचार्यप्रणीते शक्रसुरसंकथाभिधानं नाम चतुर्दशोत्तरशतं पर्व ॥११४॥

कैसे समर्थ हो सकता है ? ॥५३॥ कर्मकी यह ऐसी ही अद्भुत चेष्टा है कि बुद्धिमान् मनुष्य भी विमोहको प्राप्त हो जाता है अन्यथा जिसने अपना समस्त भविष्य सुन रक्खा है ऐसा कौन सचेतन प्राणी आत्महित नहीं करता ॥५४॥ इस प्रकार अहो देवो ! प्राणियोंके विषयमें यहाँ और क्या कहा जाय ? इतना ही निश्चित हुआ कि उत्तम प्रयत्न कर अच्छे हृदयसे संसार रूपी शत्रुका नाश करना चाहिए ॥५५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार यथार्थ मार्गसे अनुरक्त एवं जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंके संगसे अत्यन्त पवित्र, सुरपतिके द्वारा प्रदर्शित मनोहर मार्गको पाकर जिनके चित्त विशुद्ध हो गये थे तथा जो मनुष्य-पर्याय प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखते थे ऐसे सूर्य, चन्द्र तथा कल्पवासी आदि देव संसारसे भयको प्राप्त हुए ॥५६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें इन्द्र और देवोंके बीच हुई कथाका वर्णन करनेवाला एकसौ चौदहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११४॥

पञ्चदशोत्तरशतं पर्व

अथाऽऽसनं विमुञ्चन्तं शक्रं नत्वा सुरासुराः । यथायथं ययुश्चित्रं वहन्तो भावमुत्कटम् ॥१॥
कुतूहलतया द्वौ तु विबुधौ कृतनिश्चयौ । पद्मनारायणस्नेहमीहमानौ परीक्षितुम् ॥२॥
क्रीडैकरसिकात्मानावन्योन्यप्रेमसङ्गतौ । पश्यावः प्रीतिमनयोरित्यागातां प्रधारणाम् ॥३॥
दिवसं विश्वसित्येकमप्यस्यादर्शनं न यः । मरणे पूर्वजस्यासौ हरिः किन्नु विचेष्टते ॥४॥
शोकविह्वलितस्यास्य वीक्षमाणौ विचेष्टितम् । परिहासं क्षणं कुर्वो गच्छावः कोशलां पुरीम् ॥५॥
शोकाकुलं मुखं विष्णोर्जायते कीदृशं तु तत् । कस्मै कुप्यति याति क्व करोति किमु भाषणम् ॥६॥
कृत्वा प्रधारणामेतां रत्नचूलो दुरीहितः । नामतो मृगचूलश्च विनीतां नगरीं गतौ ॥७॥
[1]तत्रैत्याकुरतां पद्मभवने क्रन्दितध्वनिम् । समस्तान्तःपुरस्त्रीणां दिव्यमायासमुद्भवम् ॥८॥
प्रतीहारसुहृन्मन्त्रिपुरोहितपुरोगमाः । अधोमुखा ययुर्विष्णुं जगुश्च [2]बलपञ्चताम् ॥९॥
मृतो राघव इत्येतद्वाक्यं श्रुत्वा गदायुधः । मन्दप्रभञ्जनाधूतनीलोत्पलनिभेक्षणः ॥१०॥
हा किमिदं समुद्भूतमित्यर्धकृतजल्पनः । मनोवितानतां प्राप्तः सहसाऽश्रूण्यमुञ्चत[3] ॥११॥
ताडितोऽशनिनेवाऽसौ काञ्चनस्तम्भसंश्रितः । सिंहासनगतः पुस्तकर्मन्यस्त इव स्थितः ॥१२॥
अनिमीलितनेत्रोऽसौ तथाऽवस्थितविग्रहः । दधार जीवतो रूपं क्वापि प्रहितचेतसः ॥१३॥
वीक्ष्य निर्गतजीवं तं [4]भ्रातृमृत्यनलाहतम् । त्रिदशौ व्याकुलीभूतौ जीवितुं दातुमक्षमौ ॥१४॥

अथानन्तर आसनको छोड़ते हुए इन्द्रको नमस्कारकर नाना प्रकारके उत्कट भावको धारण करनेवाले सुर और असुर यथायोग्य स्थानोंपर गये ॥१॥ उनमेंसे राम और लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा करनेके लिए चेष्टा करनेवाले, क्रीड़ाके रसिक तथा पारस्परिक प्रेमसे सहित दो देवोंने कुतूहलवश यह निश्चय किया, यह सलाह बाँधी कि चलो इन दोनोंकी प्रीति देखें ॥२-३॥ जो उनके एक दिनके भी अदर्शनको सहन नहीं कर पाता है ऐसा नारायण अपने अग्रजके मरणका समाचार पाकर देखें क्या चेष्टा करता है ? शोकसे विह्वल नारायणकी चेष्टा देखते हुए क्षण-भरके लिए परिहास करें। चलो, अयोध्यापुरी चलें और देखें कि विष्णुका शोकाकुल मुख कैसा होता है ? वह किसके प्रति क्रोध करता है और क्या कहता है ? ऐसी सलाहकर रत्नचूल और मृगचूल नामके दो दुराचारी देव अयोध्याकी ओर चले ॥४-७॥ वहाँ जाकर उन्होंने रामके भवन-में दिव्य मायासे अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोंके रुदनका शब्द कराया तथा ऐसी विक्रिया की कि द्वारपाल, मित्र, मन्त्री, पुरोहित तथा आगे चलनेवाले अन्य पुरुष नीचा मुख किये लक्ष्मणके पास गये और रामकी मृत्युका समाचार कहने लगे। उन्होंने कहा कि 'हे नाथ ! रामकी मृत्यु हुई है'। यह सुनते ही लक्ष्मणके नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नीलोत्पलके वनसमान चञ्चल हो उठे ॥८-१०॥ 'हाय यह क्या हुआ ?' वे इस शब्दका आधा उच्चारण ही कर पाये थे कि उनका मन शून्य हो गया और वे अश्रु छोड़ने लगे ॥११॥ वज्रसे ताड़ित हुए के समान वे स्वर्णके खम्भेसे टिक गये और सिंहासनपर बैठे-बैठे ही मिट्टीके पुतलेकी तरह निश्चेष्ट हो गये ॥१२॥ उनके नेत्र यद्यपि बन्द नहीं हुए थे तथापि उनका शरीर ज्योंका त्यों निश्चेष्ट हो गया। वे उस समय उस जीवित मनुष्यका रूप धारणकर रहे थे जिसका कि चित्त कहीं अन्यत्र लगा हुआ है ॥१३॥ भाईकी मृत्यु रूपी अग्निसे ताड़ित लक्ष्मणको निर्जीव देख दोनों देव बहुत व्याकुल

१. तत्रत्यं कुरुतां म०, ज० । २. राममृत्युम् । ३. सहसाभून्नमुञ्चत म० । ४. मृत्य्वनलाहतम् म० ।

नूनमस्येदृशो मृत्युर्विधिनेति कृताशयौ । विषादविस्मयाऽऽपूर्णौ सौधर्मं मरुधी गतौ ॥१५॥
पश्चात्तापाऽनलज्वालाकात्स्न्योपालीढमानसौ[1] । न तत्र तौ धृतिं जातु[2] सम्प्राप्तौ निन्दितात्मकौ ॥१६॥
अप्रेक्ष्यकारिणां पापमानसानां हतात्मनाम् । अनुष्ठितं स्वयं कर्म जायते तापकारणम् ॥१७॥
दिव्यमायाकृतं कर्म तदा ज्ञात्वा तथाविधम् । प्रसादयितुमुद्युक्ताः सौमित्रिं प्रवराः स्त्रियः ॥१८॥
कयाऽकृतज्ञया नाथ मूढयाऽस्यपमानितः । सौभाग्यगर्ववाहिन्या परमं दुर्विदग्धया ॥१९॥
प्रसीद मुच्यतां कोपो देव दुःखासिकापि वा । ननु यत्र जने कोपः क्रियतां तत्र [3]यन्मतम् ॥२०॥
इत्युक्त्वा काश्चिदालिङ्ग्य परमप्रेमभूमिकाः । निपेतुः पादयोर्नानाचाटुजल्पनतत्पराः ॥२१॥
काश्चिद्वीणां विधायाङ्के तद्‌गुणग्रामसङ्गतम् । जगुर्मधुरमत्यन्तं प्रसादनकृताशयाः ॥२२॥
काश्चिदाननमालोक्य कृतप्रियशतोद्यताः । समाभाषयितुं यत्नं सर्वसन्दोहतोऽभवन् ॥२३॥
स्तनोपपीडमाश्लिष्य काश्चिद् विमलविभ्रमाः । कान्तस्य कान्तमाजिघ्रन् गण्डं कुण्डलमण्डितम् ॥२४॥
ईषत्पादं समुद्धृत्य काश्चिन्मधुरभाषिताः । चक्रुः शिरसि संफुल्लकमलोदरसन्निभम् ॥२५॥
काश्चिदर्भकसारङ्गीलोचनाः कर्तुमुद्यताः । सोन्मादविभ्रमक्षिप्तकटाक्षोत्पलशेखरम् ॥२६॥
जम्भज्जृम्भायताः काश्चित्तदाननकृतेक्षणाः । मन्दं बभञ्जुरङ्गानि स्वनन्त्यखिलसन्धिषु ॥२७॥
एवं विचेष्टमानानां तासामुत्तमयोषिताम् । यत्नोऽनर्थकतां[4] प्राप तत्र चैतन्यवर्जिते ॥२८॥

हुए परन्तु वे जीवन देनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥१४॥ 'निश्चय ही इसकी इसी विधिसे मृत्यु होनी होगी' ऐसा विचारकर विषाद और आश्चर्यसे भरे हुए दोनों देव निष्प्रभ हो सौधर्म स्वर्ग चले गये ॥१५॥ पश्चात्ताप रूपी अग्निकी ज्वालासे जिनका मन समस्तरूपसे व्याप्त हो रहा था तथा जिनकी आत्मा अत्यन्त निन्दित थी ऐसे वे दोनों देव स्वर्गमें कभी धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे अर्थात् रात-दिन पश्चात्तापकी ज्वालामें झुलसते रहते थे ॥१६॥ सो ठीक ही है क्योंकि विना विचारे काम करनेवाले नीच, पापी मनुष्योंका किया कार्य उन्हें स्वयं सन्तापका कारण होता है ॥१७॥

तदनन्तर 'यह कार्य लक्ष्मणने अपनी दिव्य मायासे किया है' ऐसा जानकर उस समय उनकी उत्तमोत्तम स्त्रियाँ उन्हें प्रसन्न करनेके लिए उद्यत हुईं ॥१८॥ कोई स्त्री कहने लगी कि हे नाथ ! सौभाग्यके गर्वको धारण करनेवाली किस अकृतज्ञ, मूर्ख और कुचतुर स्त्रीने आपका अपमान किया है ? ॥१९॥ हे देव ! प्रसन्न हूजिए, क्रोध छोड़िए तथा यह दुःखदायी आसन भी दूर कीजिए । यथार्थमें जिसपर आपका क्रोध हो उसका जो चाहें सो कीजिए ॥२०॥ यह कहकर परम प्रेमकी भूमि तथा नाना प्रकारके मधुर वचन कहनेमें तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ आलिङ्गन कर उनके चरणोंमें लोट गईं ॥२१॥ प्रसन्न करनेकी भावना रखनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें वीणा रख उनके गुण-समूहसे सम्बन्ध रखनेवाला अत्यन्त मधुर गान गाने लगीं ॥२२॥ सैकड़ों प्रिय वचन कहनेमें तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ उनका मुख देख वार्तालाप करानेके लिए सामूहिक यत्न कर रही थीं ॥२३॥ उज्ज्वल शोभाको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ स्तनोंको पीड़ित करनेवाला आलिङ्गन कर पतिके कुण्डलमण्डित सुन्दर कपोलको सूँघ रही थीं ॥२४॥ मधुर भाषण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ, विकसित कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर उनके पैरको कुछ ऊपर उठाकर शिरपर रख रही थीं ॥२५॥ बालमृगीके समान चञ्चल नेत्रोंको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उन्माद तथा विभ्रमके साथ छोड़े हुए कटाक्ष रूपी नील कमलोंका सेहरा बनानेके लिए ही मानो उद्यत थीं ॥२६॥ लम्बी जमुहाई लेनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उनके मुखकी ओर दृष्टि डालकर धीरे-धीरे अँगड़ाई ले रही थीं और अँगुलियोंकी संधिया चटका रही थीं ॥२७॥ इस प्रकार चेष्टा करने वाली उन उत्तम स्त्रियोंका सब यत्न चेतनारहित

१. कर्मागालीढ म० । २. जातौ म० । ३. यन्मनः म० । ४. -नर्थकतः म० ।

तानि सप्तदश स्त्रीणां सहस्राणि हरेर्द्रुतः । मन्दमारुतनिर्धूतचित्राम्बुजवनश्रियम्[1] ॥२९॥
तस्मिंस्तथाविधे नाथे स्थिते कृच्छ्रसमागतः[2] । व्याकुले मनसि स्त्रीणां निदधे संशयः पदम् ॥३०॥
सुदुश्चिन्तं च दुर्भाष्यं भावं दुःश्रवमेव च । कृत्वा मनसि मुग्धाक्ष्यः पस्पृशुर्मोहसङ्गताः ॥३१॥
सुरेन्द्रवनिताचक्रसमचेष्टिततेजसाम् । तदा शोकाभितप्तानां नैतासां चारुताऽभवत् ॥३२॥
श्रुत्वाऽन्तश्चरवक्त्रेभ्यस्तं वृत्तान्तं तथाविधम् । ससम्भ्रमं परिप्राप्तः पद्माभः सचिवैर्वृतः ॥३३॥
अन्तःपुरं प्रविष्टश्च परमाप्तजनावृतः । ससम्भ्रमैर्जनैर्दृष्टो विक्षिप्तविरलक्रमः ॥३४॥
ततोऽपश्यदतिक्रान्तकान्तद्युतिसमुद्भवम् । वदनं धरणीन्द्रस्य प्रभातशशिपाण्डुरम् ॥३५॥
न सुश्लिष्टमिवात्यन्तं परिभ्रष्टं स्वभावतः । [3]तत्कालभग्नमूलाम्बुरुहसाम्यमुपागतम् ॥३६॥
अचिन्तयच्च किं नाम कारणं येन मे स्वयम् । आस्ते रुष्टो विषादी च किञ्चिद्विनतमस्तकः ॥३७॥
उपसृत्य च सस्नेहं मुहुराघ्राय मूर्द्धनि । हिमाऽऽहतनगाकारं पद्मस्तं परिषस्वजे ॥३८॥
चिह्नानि जीवमुक्तस्य पश्यन्नपि समन्ततः । अमृतं लक्ष्मणं मेने काकुत्स्थः स्नेहनिर्भरः ॥३९॥
नताङ्गयष्टिरावक्रा ग्रीवा दोःपरिघौ[4] श्लथौ । [5]प्राणनाकुञ्चनोन्मेषप्रभृतीहोज्झिता तनुः ॥४०॥

लक्ष्मणके विषयमें निरर्थकपनेको प्राप्त हो गया ॥२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय लक्ष्मणकी सत्रह हजार स्त्रियाँ मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नाना प्रकारके कमल वनकी शोभा धारण कर रही थीं ॥२९॥

तदनन्तर जब लक्ष्मण उसी प्रकार स्थित रहे आये तब बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुए संशयने उन स्त्रियोंके व्यग्र मनमें अपना पैर रक्खा ॥३०॥ मोहमें पड़ी हुई वे भोली-भाली स्त्रियाँ मनमें ऐसा विचार करती हुई उनका स्पर्श कर रही थीं कि सम्भव है हमलोगोंने इनके प्रति मनमें कुछ खोटा विचार किया हो, कोई न कहने योग्य शब्द कहा हो, अथवा जिसका सुनना भी दुःखदायी है, ऐसा कोई भाव किया हो ॥३१॥ इन्द्राणियोंके समूहके समान चेष्टा और तेजको धारण करनेवाली वे स्त्रियाँ उस समय शोकसे ऐसी संतप्त हो गई कि उनकी सब सुन्दरता समाप्त हो गई ॥३२॥

अथानन्तर अन्तःपुरचारी प्रतिहारोंके मुखसे यह समाचार सुन मन्त्रियोंसे घिरे राम घबड़ाहटके साथ वहाँ आये ॥३३॥ उस समय घबड़ाये हुए लोगोंने देखा कि परम प्रामाणिक जनोंसे घिरे राम जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए अन्तःपुरमें प्रवेश कर रहे हैं ॥३४॥ तदनन्तर उन्होंने जिसकी सुन्दर कान्ति निकल चुकी थी और जो प्रातःकालीन चन्द्रमाके समान पाण्डुर वर्ण था ऐसा लक्ष्मणका मुख देखा ॥३५॥ वह मुख पहलेके समान व्यवस्थित नहीं था, स्वभावसे बिलकुल भ्रष्ट हो चुका था, और तत्काल उखाड़े हुए कमलकी सदृशताको प्राप्त हो रहा था ॥३६॥ वे विचार करने लगे कि ऐसा कौन-सा कारण आ पड़ा कि जिससे आज लक्ष्मण मुझसे रूखा तथा विषादयुक्त हो शिरको कुछ नीचा झुकाकर बैठा है ॥३७॥ रामने पास जाकर बड़े स्नेहसे बार-बार उनके मस्तकपर सूँघा और तुषारसे पीड़ित वृक्षके समान आकारवाले उनका बार-बार आलिङ्गन किया ॥३८॥ यद्यपि राम सब ओरसे मृतकके चिह्न देख रहे थे तथापि स्नेहसे परिपूर्ण होनेके कारण वे उन्हें अमृत अर्थात् जीवित ही समझ रहे थे ॥३९॥ उनकी शरीर-यष्टि झुक गई थी, गरदन टेढ़ी हो गई थी, भुजा रूपी अर्गल ढीले पड़ गये थे और शरीर, साँस लेना, हस्त-पादादिक अवयवोंको सिकोड़ना तथा नेत्रोंका टिमकार पड़ना आदि

१.-श्रियाम् म० । २. समागताः म० । ३. तत्कालतरु-म० । ४. वक्रग्रीवा म० । ५. प्राणाना-म० । प्राणानां ज० ।

ईदृशं लक्ष्मणं वीक्ष्य विमुक्तं स्वशरीरिणा । उद्वेगोरुभयाक्रान्तः प्रसिष्वेदापराजितः[1] ॥४१॥
अथाऽसौ दीनदीनास्यो मूर्च्छमानो मुहुर्मुहुः । बाष्पाकुलेक्षणोऽपश्यदस्याङ्गानि समन्ततः ॥४२॥
न क्षतं नखरेखाया अपि तुल्यमिहेक्ष्यते[2] । [3]अवस्थामीदृशीं केन भवेदयमुपागतः ॥४३॥
इति ध्यायन् समुद्भूतवेपथुस्तद्विदं जनम् । आह्वाययद्विषण्णात्मा तूर्णं विद्वानपि स्वयम् ॥४४॥
यदा वैद्यगणैः सर्वैर्मन्त्रौषधिविशारदैः । प्रतिशिष्टः कलापारैः परीक्ष्य धरणीधरः ॥४५॥
तदाहताशतां प्राप्तो रामो मूर्च्छां समागतः । [4]पर्यासे वसुधापृष्ठे छिन्नमूलस्तरुर्यथा ॥४६॥
हारैश्चन्दननीरैश्च तालवृन्तानिलैर्निभैः । कृच्छ्रेण त्याजितो मोहं [5]विललाप सुविह्वलः ॥४७॥
समं शोकविषादाभ्यामसौ पीडनमाश्रितः । उत्ससर्ज यदश्रूणां प्रवाहं [6]पिहितानवम् ॥४८॥
बाष्पेण [7]पिहितं वक्त्रं रामदेवस्य लक्षितम् । विरलाम्भोदसंवीतचन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥४९॥
अत्यन्तविक्लवीभूतं तमालोक्य तथाविधम् । वितानतां परिप्रापदन्तःपुरमहार्णवः ॥५०॥
दुःखसागरनिर्मग्नाः शुष्यदङ्गा वरस्त्रियः । भृशं व्यानशिरे बाष्पाऽऽक्रन्दाभ्यां रोदसी समम् ॥५१॥
हा नाथ भुवनानन्द सर्वसुन्दरजीवित । प्रयच्छ दयितां वाचं क्वासि यातः किमर्थकम् ॥५२॥
अपराधादृते कस्मादस्मानेवं विमुञ्चसि । नन्वाऽऽगः सत्यमप्यास्ते जने [8]तिष्ठति नो चिरम् ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा तद्वृत्तं लवणाङ्कुशौ । विषादं परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥५४॥

चेष्टाओंसे रहित हो गया था ॥४०॥ इस प्रकार लक्ष्मणको अपनी आत्मासे विमुक्त देख उद्वेग तथा तीव्र भयसे आक्रान्त राम पसीनासे तर हो गये ॥४१॥

अथानन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन हो रहा था, जो बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे, और जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, ऐसे राम सब ओरसे उनके अंगोंको देख रहे थे ॥४२॥ वे कह रहे थे कि इस शरीरमें कहीं नखकी खरोंच बराबर भी तो घाव नहीं दिखाई देता फिर यह ऐसी अवस्थाको किसके द्वारा प्राप्त कराया गया ?—इसकी यह दशा किसने कर दी ? ॥४३॥ ऐसा विचार करते-करते रामके शरीरमें कँप-कँपी छूटने लगी तथा उनकी आत्मा विषादसे भर गई। यद्यपि वे स्वयं विद्वान् थे तथापि उन्होंने शीघ्र ही इस विषयके जानकार लोगोंको बुलवाया ॥४४॥ जब मन्त्र और औषधिमें निपुण, कलाके पारगामी समस्त वैद्योंने परीक्षा कर उत्तर दे दिया तब निराशाको प्राप्त हुए राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और उखड़े वृक्षके समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥४५-४६॥ जब हार, चन्दन मिश्रित जल और तालवृन्तके अनुकूल पवनके द्वारा बड़ी कठिनाईसे मूर्च्छा छुड़ाई गई तब अत्यन्त विह्वल हो विलाप करने लगे ॥४७॥ चूँकि राम शोक और विषादके द्वारा साथ ही साथ पीड़ाको प्राप्त हुए थे इसीलिए वे मुखको आच्छादित करनेवाला अश्रुओंका प्रवाह छोड़ रहे थे ॥४८॥ उस समय आँसुओंसे आच्छादित रामका मुख बिरले-बिरले मेघोंसे ढँके चन्द्रमण्डलके समान जान पड़ता था ॥४९॥ उस प्रकारके गम्भीर हृदय रामको अत्यन्त दुःखी देख अन्तःपुर रूपी महासागर निर्मर्याद अवस्थाको प्राप्त हो गया अर्थात् उसके शोककी सीमा नहीं रही ॥५०॥ जो दुःखरूपी सागरमें निमग्न थीं तथा जिनके शरीर सूख गये थे ऐसी उत्तम स्त्रियोंने अत्यधिक आँसू और रोनेकी ध्वनिसे पृथिवी तथा आकाशको एक साथ व्याप्त कर दिया था ॥५१॥ वे कह रही थीं कि हा नाथ ! हा जगदानन्द ! हा सर्वसुन्दर जीवित ! प्रिय वचन देओ, कहाँ हो ? किस लिए चले गये हो ? ॥५२॥ इस तरह अपराधके बिना ही हमलोगोंको क्यों छोड़ रहे हो ? और अपराध यदि सत्य भी हो तो भी वह मनुष्यमें दीर्घ काल तक नहीं रहता ॥५३॥

इसी बीचमें यह समाचार सुनकर परम विषादको प्राप्त हुए लवण और अंकुश इस प्रकार

---

१. रामः । २. -मिहेक्ष्यते म० । ३. अवस्थां कीदृशीं म० । ४. पर्यासो म० । ५. विललापि म० । ६. विहितानवम् म० । ७. विहितं म० । ८. तिष्ठति म०, ज० ।

धिगसारं मनुष्यत्वं नाऽतोऽस्त्यन्यन्महाधमम् । मृत्युर्यंत्कृत्यवस्कन्दं यदज्ञातो निमेषतः ॥५५॥
यो न निर्व्यूहितं शक्यः सुरविद्याधरैरपि । नारायणोऽप्यसौ नीतः कालपाशेन [1]वश्यताम् ॥५६॥
आनाय्येव शरीरेण किमनेन धनेन च । अवधार्येति सम्बोधं वैदेहीजावुपेयतुः ॥५७॥
पुनर्गर्भाशयाद् भीतौ नत्वा तातक्रमद्वयम् । महेन्द्रोदयमुद्यानं शिबिकाऽवस्थितौ गतौ ॥५८॥
तत्रामृतस्वराभिख्यं शरणीकृत्य संयतम् । बभूवतुर्महाभागौ श्रमणौ लवणाङ्कुशौ ॥५९॥
गृह्णतोरनयोर्दीक्षां तदा सत्तमचेतसोः । पृथिव्यामभवद् बुद्धिर्मृत्तिकागोलकाहिता ॥६०॥
एकतः पुत्रविरहो भ्रातृमृत्युश्चान्यतः । इति शोकमहावर्ते पराववर्त राघवः ॥६१॥
राज्यतः पुत्रतश्चापि स्वभूताज्जीवितादपि । तथाऽपि [2]दयितोऽतोऽस्य परं लक्ष्मीधरः प्रियः ॥६२॥

आर्यागीतिच्छन्दः

कर्मनियोगेनैवं प्राप्तेऽवस्थामशोभनामाप्तजने ।
[3]सशोकं वैराग्यं च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ताः पुरुषाः ॥६३॥
कालं प्राप्य जनानां किञ्चिच्च निमित्तमात्रकं परभावम् ।
सम्बोधरविरुदेति स्वकृतविपाकेऽन्तरङ्गहेतौ जाते ॥६४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लवणाङ्कुशतपोऽभिधानं नाम पञ्चदशोत्तरशतं पर्व ॥११५॥

विचार करने लगे कि सारहीन इस मनुष्य-पर्यायको धिक्कार हो। इससे बढ़कर दूसरा महानीच नहीं है क्योंकि मृत्यु बिना जाने ही निमेषमात्रमें इसपर आक्रमण कर देती है ॥५४-५५॥ जिसे देव और विद्याधर भी वश नहीं कर सके थे ऐसा यह नारायण भी कालके पाशसे वशीभूत अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥५६॥ इन नश्वर शरीर और नश्वर धनसे हमें क्या आवश्यकता है ? ऐसा विचारकर सीताके दोनों पुत्र प्रतिबोधको प्राप्त हो गये ॥५७॥ तदनन्तर 'पुनः गर्भवासमें न जाना पड़े' इससे भयभीत हुए दोनों वीर, पिताके चरण-युगलको नमस्कार कर पालकीमें बैठ महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें चले गये ॥५८॥ वहाँ अमृतस्वर नामक मुनिराजकी शरण प्राप्तकर दोनों बड़भागी मुनि हो गये ॥५९॥ उत्तम चित्तके धारक लवण और अंकुश जब दीक्षा ग्रहण कर रहे थे तब विशाल पृथिवीके ऊपर उनको मिट्टीके गोलेके समान अनादरपूर्ण बुद्धि हो रही थी ॥६०॥ एक ओर पुत्रोंका विरह और दूसरी ओर भाईकी मृत्युका दुःख—इस प्रकार राम शोक रूपी बड़ी भँवरमें घूम रहे थे ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि रामको लक्ष्मण राज्यसे, पुत्रसे, स्त्रीसे और अपने द्वारा धारण किये जीवनसे भी कहीं अधिक प्रिय थे ॥६२॥ संसारमें मनुष्य नाना प्रकारके हृदयके धारक हैं इसीलिए कर्मयोगसे आप्तजनोंके ऐसी अशोभन अवस्थाको प्राप्त होनेपर कोई तो शोकको प्राप्त होते हैं और कोई वैराग्यको प्राप्त होते हैं ॥६३॥ जब समय पाकर स्वकृत कर्मका उदयरूप अन्तरङ्ग निमित्त मिलता है तब बाह्यमें किसी भी परपदार्थका निमित्त पाकर जीवोंके प्रतिबोध रूपी सूर्य उदित होता है उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा विरचित पद्मपुराणमें लक्ष्मणका मरण और लवणांकुशके तपका वर्णन करनेवाला एकसौ पन्द्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११५॥

---

१. पश्यताम् म० । २. दयितातोऽस्य म० । ३. स (निः) शोकं वैराग्यं म० । स न शोकं वैराग्यं च ब० ।

षोडशोत्तरशतं पर्व

कालधर्मं परिप्राप्ते राजन् लक्ष्मणपुङ्गवे । त्यक्तं युगप्रधानेन रामेण व्याकुलं जगत् ॥१॥
[1]स्वरूपमृदु सद्गन्धं स्वभावेन हरेर्वपुः । जीवेनाऽपि परित्यक्तं न पद्माभस्तदाऽत्यजत् ॥२॥
आलिङ्गति निधायाङ्के मार्ष्टि जिघ्रति [2]निकूजति । निषीदति समाधाय सस्पृहं भुजपञ्जरे ॥३॥
अवाप्नोति न विश्वासं क्षणमप्यस्य मोचने । बालोऽमृतफलं यद्वत् स तं मेने महाप्रियम् ॥४॥
विललाप च हा भ्रातः किमिदं युक्तमीदृशम् । यत्परित्यज्य मां गन्तुं मतिरेकाकिना कृता ॥५॥
ननु नाऽहं किमु ज्ञातस्तवः त्वद्विरहासहः । यन्मां निक्षिप्य दुःखाग्नावकस्मादिदमीहसे ॥६॥
हा तात किमिदं क्रूरं परं व्यवसितं त्वया । यदसंत्राप्य मे लोकमन्यं दत्तं प्रयाणकम् ॥७॥
प्रयच्छ सकृदप्याशु वत्स प्रतिवचोऽमृतम् । दोषाद् किं नाऽसि किं क्रुद्धो ममापि सुविनीतकः ॥८॥
कृतवानसि नो जातु मानं मयि मनोहर । अन्य एवाऽसि किं जातो वद वा किं मया कृतम् ॥९॥
दूरादेवान्यदा दृष्ट्वा दत्त्वाऽभ्युत्थानमादृतः[3] । रामं सिंहासने कृत्वा महीपृष्ठं न्यसेवथः[4] ॥१०॥
अधुना मे [5]शिरस्यस्मिन्निन्दुकान्तनखावली । पादेऽपि लक्ष्मणन्यस्ते रुषे मृष्यति नो कथम् ॥११॥
देव त्वरितमुत्तिष्ठ मम पुत्रौ वनं गतौ । दूरं न गच्छतो यावत्तावत्तावानयामहे ॥१२॥
त्वया विरहिता एताः कृतार्तकुररीरवाः । भवद्गुणग्रहग्रस्ता विलोलन्ति महीतले ॥१३॥
भ्रष्टहारशिरोरत्नमेखलाकुण्डलादिकम् । आक्रन्दन्तं प्रियालोकं वारयस्याकुलं न किम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लक्ष्मणके मृत्युको प्राप्त होनेपर युग-प्रधान रामने इस व्याकुल संसारको छोड़ दिया ॥ १ ॥ उस समय स्वरूपसे कोमल और स्वभाव सुगन्धित नारायणका शरीर यद्यपि निर्जीव हो गया था तथापि राम उसे छोड़ नहीं रहे थे ॥२॥ वे उसका आलिङ्गन करते थे, गोदमें रखकर उसे पोंछते थे, सूँघते थे, चूमते थे और बड़ी उमंग के साथ भुजपंजरमें रखकर बैठते थे ॥३॥ इसके छोड़नेमें वे क्षणभरके लिए भी विश्वासको प्राप्त नहीं होते थे। जिस प्रकार बालक अमृत फलको महाप्रिय मानता है। उसी प्रकार वे उस मृत शरीर को महाप्रिय मानते थे ॥४॥ कभी विलाप करने लगते कि हाय भाई ! क्या तुझे यह ऐसा करना उचित था। मुझे छोड़कर अकेले ही तूने चल दिया ॥५॥ क्या तुझे यह विदित नहीं कि मैं तेरे विरहको सहन नहीं कर सकता जिससे तू मुझे दुःख रूपी अग्निमें डालकर अकस्मात् यह करना चाहता है ॥६॥ हाय तात ! तूने यह अत्यन्त क्रूर कार्य क्यों करना चाहा जिससे कि मुझसे पूछे बिना ही परलोकके लिए प्रयाण कर दिया ॥७॥ हे वत्स ! एक बार तो प्रत्युत्तर रूपी अमृत शीघ्र प्रदान कर। तू तो बड़ा विनयवान् था फिर दोषके बिना ही मेरे ऊपर भी कुपित क्यों हो गया है ? ॥८॥ हे मनोहर ! तूने मेरे ऊपर कभी मान नहीं किया, फिर अब क्यों अन्य-रूप हो गया है ? कह, मैंने क्या किया है ? ॥९॥ तू अन्य समय तो रामको दूरसे ही देखकर आदरपूर्वक खड़ा हो जाता था और उसे सिंहासनपर बैठाकर स्वयं पृथिवीपर नीचे बैठता था ॥१०॥ हे लक्ष्मण ! इस समय चन्द्रमाके समान सुन्दर नखावलीसे युक्त तेरा पैर मेरे मस्तकपर रखा है फिर भी तू क्रोध ही करता है क्षमा क्यों नहीं करता ? ॥११॥ हे देव ! शीघ्र उठ, मेरे पुत्र वनको चले गये हैं सो जब तक वे दूर नहीं पहुँच जाते हैं तब तक उन्हें वापिस ले आवें ॥१२॥ तुम्हारे गुण ग्रहणसे ग्रस्त ये स्त्रियाँ तुम्हारे बिना कुररीके समान करुण शब्द करती हुई पृथिवीतलमें लोट रही हैं ॥१३॥ हार, चूड़ामणि, मेखला तथा कुण्डल आदि आभूषण नीचे गिर गये हैं ऐसी

१. स्वरूपं मृदु म० । २. चुम्बति । ३. -माहृतः म० । ४. निषेचय म० । ५. सरस्यस्मिन् ।

किं करोमि क्व गच्छामि त्वया विरहितोऽधुना । स्थानं तन्नानुपश्यामि जायते यत्र निर्वृतिः ॥१५॥
आसेचनकमेतत्ते पश्याम्यद्यापि वक्त्रम् । अनुरक्तात्मकं तत्किं त्यक्तुं समुचितं तव ॥१६॥
मरणव्यसने भ्रातुरपूर्वोऽयं ममाङ्गकम् । दग्धुं शोकानलः सक्तः किं करोमि विपुण्यकः ॥१७॥
न कृशानुर्दहत्येवं नैवं शोषयते विषम् । उपमानविनिर्मुक्तं यथा भ्रातुः परायणम् ॥१८॥
अहो लक्ष्मीधर क्रोधधैर्यं संहर साम्प्रतम् । वेलाऽतीताऽनगाराणां महर्षीणामियं हि सा ॥१९॥
अयं रविरुपैत्यस्तं वीक्षस्वैतानि साम्प्रतम् । पद्मानि त्वत्सनिद्राक्षिसमानि सरसां जले ॥२०॥
शय्यां व्यरचयत् क्षिप्रं कृत्वा विष्णुं भुजान्तरे । व्यापारान्तरनिर्मुक्तः स्वप्तुं रामः प्रचक्रमे ॥२१॥
श्रवणे देवसद्भावं ममैकस्य निवेदय । केनासि कारणेनैतामवस्थामीदृशीमितः ॥२२॥
प्रसन्नचन्द्रकान्तं ते वक्त्रमासीन्मनोहरम् । अधुना विगतच्छायं कस्मादीदृगिदं स्थितम् ॥२३॥
मृदुप्रभञ्जनाऽऽधूतकरपल्लवसन्निभे । आस्तां निरीक्षणे कस्मादधुना म्लानिमागते ॥२४॥
ब्रूहि ब्रूहि किमिष्टं ते सर्वं सम्पादयाम्यहम् । एवं न शोभसे विष्णो सव्यापारं मुखं कुरु ॥२५॥
देवी सीता स्मृता किन्ते समदुःखसहायिनी । परलोकं गता साध्वी विषण्णोऽसि भवेत्ततः ॥२६॥
विषादं मुञ्च लक्ष्मीश विरुद्धा खगसंहतिः । अवस्कन्दागता सेयं साकेतामवगाहते ॥२७॥
क्रुद्धस्यापीदृशं वक्त्रं मनोहर न जातुचित् । तवाऽऽसीदधुना वत्स मुञ्च मुञ्च विचेष्टितम् ॥२८॥

करुण रुदन करती हुई इन व्याकुल स्त्रियोंको मना क्यों नहीं करते हो ? ॥१४॥ अब तेरे बिना क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? वह स्थान नहीं देखता हूँ जहाँ पहुँचनेपर सन्तोष उत्पन्न हो सके ॥१५॥ जिसे देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी ऐसे तेरे इस मुखको मैं अब भी देख रहा हूँ फिर अनुरागसे भरे हुए मुझे छोड़ना क्या तुझे उचित था ? ॥१६॥ इधर भाईपर मरणरूपी संकट पड़ा है उधर यह अपूर्व शोकाग्नि मेरे शरीरको जलानेके लिए तत्पर है, हाय मैं अभागा क्या करूँ ? ॥१७॥ भाईका उपमातीत मरण शरीरको जिस प्रकार जलाता और सुखाता है उस प्रकार न अग्नि जलाती है और न विष सुखाता है ॥१८॥ अहो लक्ष्मण ! इस समय क्रोधकी आसक्तिको दूर करो । यह गृहत्यागी मुनियोंके संचारका समय निकल गया ॥१९॥ देखो, यह सूर्य अस्त होने जा रहा है और तालाबोंके जलमें कमल तुम्हारे निद्रा निमीलित नेत्रोंके समान हो रहे हैं ॥२०॥ यह कहकर अन्य सब कामोंसे निवृत्त रामने शीघ्र ही शय्या बनाई और लक्ष्मणको छातीसे लगा सोनेका उपक्रम किया ॥२१॥ वे कहते कि हे देव ! इस समय मैं अकेला हूँ। आप मेरे कानमें अपना अभिप्राय बता दो कि किस कारणसे तुम इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ? ॥२२॥ तुम्हारा मनोहर मुख तो उज्ज्वल चन्द्रमाके समान सुन्दर था पर इस समय यह ऐसा कान्तिहीन कैसे हो गया ? ॥२३॥ तुम्हारे नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित पल्लवके समान थे फिर इस समय म्लानिको प्राप्त कैसे हो गये ? ॥२४॥ कह, कह, तुझे क्या इष्ट है ? मैं सब अभी ही पूर्ण किये देता हूँ । हे विष्णो ! तू इस प्रकार शोभा नहीं देता, मुखको व्यापारसहित कर अर्थात् मुखसे कुछ बोल ॥२५॥ क्या तुझे सुख-दुःखमें सहायता देनेवाली सीता देवीका स्मरण हो आया है परन्तु वह साध्वी तो परलोक चली गई है क्या इसी लिए तुम विषादयुक्त हो ॥२६॥ हे लक्ष्मीपते ! विषाद छोड़ो, देखो विद्याधरोंका समूह विरुद्ध होकर आक्रमणके लिए आ पहुँचा है और अयोध्यामें प्रवेश कर रहा है ॥२७॥ हे मनोहर ! कभी क्रुद्ध दशामें भी तुम्हारा ऐसा मुख नहीं हुआ फिर अब क्यों रहा है ? हे वत्स ! ऐसी विरुद्ध चेष्टा अब तो छोड़ो ॥२८॥

१. वैमुख्यम्, मरणमित्यर्थः । २. विषण्णासि म० । ३. विद्याधरसमूहः ।

प्रसीदैव [1]तवावृत्तपूर्वं पादौ नमाम्यहम् । ननु ख्यातोऽखिले लोके मम त्वमनुकूलने ॥२९॥
असमानप्रकाशस्त्वं जगद्दीपः समुन्नतः । [2]बलिनाऽकालवातेन प्रायो निर्वापितोऽभवत् ॥३०॥
राजराजत्वमासाद्य नीत्वा लोकं महोत्सवम् । अनाथीकृत्य तं कस्माद् भवितागमनं तव ॥३१॥
चक्रेण द्विषतां चक्रं जित्वा सकलमूर्जितम् । कथं नु सहसेऽद्य त्वं कालचक्रपराभवम् ॥३२॥
राजश्रिया तवाराजद्यदिदं सुन्दरं वपुः । तदद्यापि तथैवेदं शोभते जीवितोज्झितम् ॥३३॥
निद्रां राजेन्द्र मुञ्चस्व समतीता विभावरी । निवेदयति सन्ध्येयं परिप्राप्तं दिवाकरम् ॥३४॥
सुप्रभातं जिनेन्द्राणां लोकालोकावलोकिनाम् । अन्येषां भव्यपद्मानां शरणं मुनिसुव्रतः ॥३५॥
प्रभातमपि जानामि ध्वान्तमेतदहं परम् । वदनं यन्नरेन्द्रस्य पश्यामि गतविभ्रमम् ॥३६॥
उत्तिष्ठ मा चिरं स्वाप्सीर्मुञ्च निद्रां विचक्षण । आश्रयावः सभास्थानं तिष्ठ सामन्तदर्शने ॥३७॥
प्राप्तो विनिद्रतामेष सशोकः कमलाकरः । [3]कस्मादभ्युत्थितस्त्वं नु निद्रितं सेवते भवान् ॥३८॥
विपरीतमिदं जातु त्वया नैवमनुष्ठितम् । उत्तिष्ठ राजकृत्येषु भवावहितमानसः ॥३९॥
भ्रातस्त्वयि चिरं सुप्ते जिनवेश्मसु नोचिताः । क्रियन्ते चारुसङ्गीता भेरीमङ्गलनिःस्वनाः ॥४०॥
श्लथप्रभातकर्तव्याः करुणासक्तचेतसः । उद्वेगं परमं प्राप्ता यतयोऽपि त्वयीदृशे ॥४१॥
वीणावेणुमृदङ्गादिनिस्वानपरिवर्जिता । त्वद्वियोगाकुलीभूता नगरीयं न राजते ॥४२॥

प्रसन्न होओ, देखो मैंने कभी तुझे नमस्कार नहीं किया किन्तु आज तेरे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। अरे ! तू तो मुझे अनुकूल रखनेके लिए समस्त लोकमें प्रसिद्ध है ॥२९॥ तू अनुपम प्रकाशका धारी बहुत बड़ा लोकप्रदीप है सो इस असमयमें चलनेवाली प्रचण्ड वायुके द्वारा प्रायः बुझ गया है ॥३०॥ तुमने राजाधिराज पद पाकर लोकको बहुत भारी उत्सव प्राप्त कराया था अब उसे अनाथकर तुम्हारा जाना किस प्रकार होगा ? ॥३१॥ अपने चक्ररत्नके द्वारा शत्रुओंके समस्त सबल दलको जीतकर अब तुम कालचक्रका पराभव क्यों सहन करते हो ॥३२॥ तुम्हारा जो सुन्दर शरीर पहले राजलक्ष्मीसे जैसा सुशोभित था वैसा ही अब निर्जीव होनेपर भी सुशोभित है ॥३३॥ हे राजेन्द्र ! उठो, निद्रा छोड़ो, रात्रि व्यतीत हो गई, यह सन्ध्या सूचित कर रही है कि अब सूर्यका उदय होनेवाला है ॥३४॥

लोकालोकको देखनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का सदा सुप्रभात है तथा भगवान् मुनिसुव्रतदेव अन्य भव्य जीवरूपी कमलोंके लिए शरणस्वरूप हैं ॥३५॥ इस प्रभातको भी मैं परम अन्धकार स्वरूप ही जानता हूँ क्योंकि मैं तुम्हारे मुखको चेष्टारहित देख रहा हूँ ॥३६॥ हे चतुर ! उठ, देर तक मत सो, निद्रा छोड़, चल सभास्थलमें चलें, सामन्तोंको दर्शन देनेके लिए सभास्थलमें बैठ ॥३७॥ देख, यह शोकसे भरा कमलाकर विनिद्र अवस्थाको प्राप्त हो गया है—विकसित हो गया है पर तू विद्वान् होकर भी निद्राका सेवन क्यों कर रहा है ? ॥३८॥ तूने कभी ऐसी विपरीत चेष्टा नहीं की अतः उठ और राजकार्योंमें सावधानचित्त हो ॥३९॥ हे भाई ! तेरे बहुत समय तक सोते रहनेसे जिन-मन्दिरोंमें सुन्दर सङ्गीत तथा भेरियोंके माङ्गलिक शब्द आदि उचित क्रियाएँ नहीं हो रही हैं ॥४०॥ तेरे ऐसे होनेपर जिनके प्रातःकालीन कार्य शिथिल हो गये ऐसे दयालु मुनिराज भी परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे हैं ॥४१॥ तुम्हारे वियोगसे दुःखी हुई यह नगरी वीणा बाँसुरी तथा मृदङ्ग आदिके शब्दसे रहित होनेके कारण सुशोभित नहीं

१. तवावृत्तपर्वं म० । २. चलिताकाल म० । ३. कस्मादभ्युदितत्वं तु निन्दितं म० ।

आर्याच्छन्दः

पूर्वोपचितमशुभं नूनं मे कर्म पाकमायातम् ।
भ्रातृवियोगव्यसनं प्राप्तोऽस्मि यदीदृशं कष्टम् ॥४३॥
युद्ध इव शोकभाजश्चेतन्यसमागमानन्दम् ।
उत्तिष्ठ मानवरवे कुरु सकृदत्यन्तखिन्नस्य ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते रामदेवविप्रलापं नाम षोडशोत्तरशतं पर्व ॥११६॥

हो रही है ॥४२॥ जान पड़ता है कि मेरा पूर्वोपार्जित पाप कर्म उदयमें आया है इसीलिए मैं भाईके वियोगसे दुःखपूर्ण ऐसे कष्टको प्राप्त हुआ हूँ ॥४३॥ हे मानव सूर्य ! जिस प्रकार तूने पहले युद्धमें सचेत हो मुझ शोकातुरके लिए आनन्द उत्पन्न किया था उसी प्रकार अब भी उठ और अत्यन्त खेदसे खिन्न मेरे लिए एक बार आनन्द उत्पन्न कर ॥४४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें श्रीरामदेवके विप्रलापका वर्णन करनेवाला एक सौ सोलहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११६॥

सप्तदशोत्तरशतं पर्व

ततो विदितवृत्तान्ताः सर्वे विद्याधराधिपाः । सह स्त्रीभिः समायातास्त्वरिताः कोशलां पुरीम् ॥१॥
विभीषणः समं पुत्रैश्चन्द्रोदरनृपात्मजः । समेतः परिवर्गेण सुग्रीवः शशिवर्द्धनः ॥२॥
बाष्पविप्लुतनेत्रास्ते सम्भ्रान्तमनसोऽविशन् । भवनं पद्मनाभस्य भरिताञ्जलयो नताः ॥३॥
विषादिनो विधिं कृत्वा पुरस्तात्ते महीतले । उपविश्य क्षणं स्थित्वा मन्दं व्यज्ञापयन्निदम् ॥४॥
देव यद्यपि दुर्मोचः शोकोऽयं परमासजः । ज्ञातज्ञेयस्तथापि त्वमेनं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥५॥
एवमुक्त्वा स्थितेष्वेषु वचः प्रोचे विभीषणः । परमार्थस्वभावस्य लोकतत्त्वविचक्षणः ॥६॥
अनादिनिधना राजन् स्थितिरेषा व्यवस्थिता । अधुना नेयमस्यैव प्रवृत्ता भुवनोदरे ॥७॥
जातेनाऽवश्यमर्त्तव्यमत्र संसारपञ्जरे । प्रतिक्रियाऽस्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ॥८॥
आनाय्ये[1] नियतं देहे शोकस्यालम्बनं मुधा । उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ॥९॥
आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम् । प्रयच्छति ततः शोकं न राजन् कर्त्तुमर्हसि ॥१०॥
नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् । उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्रासाम्यानि बुद्बुदैः ॥११॥
लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः । [2]नष्टा योनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ॥१२॥
गर्भाक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणबिन्दुचलाचले । क्लेदकैकससङ्घाते काऽऽस्था मर्त्यशरीरके ॥१३॥
अजरामरणंमन्यः किं शोचति जनो मृतम् । मृत्युदंष्ट्रान्तरक्लिष्टमात्मानं किं न शोचति ॥१४॥

समाचार मिलनेपर समस्त विद्याधर राजा अपनी स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरी आये ॥१॥ अपने पुत्रोंके साथ विभीषण, राजा विराधित, परिजनोंसे सहित सुग्रीव और चन्द्रवर्धन आदि सभी लोग आये ॥२॥ जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा मन घबड़ाये हुए थे ऐसे सब लोगोंने अञ्जलि बाँधे-बाँधे रामके भवनमें प्रवेश किया ॥३॥ विषादसे भरे हुए सब लोग योग्य शिष्टाचारकी विधि कर रामके आगे पृथिवीतलपर बैठ गये और क्षणभर चुपचाप बैठनेके बाद धीरे-धीरे यह निवेदन करने लगे कि हे देव ! यद्यपि परम इष्टजनके वियोगसे उत्पन्न हुआ यह शोक दुःखसे छूटने योग्य है तथापि आप पदार्थके ज्ञाता हैं अतः इस शोकको छोड़नेके योग्य हैं ॥४-५॥ इस प्रकार कहकर जब सब लोग चुप बैठ गये तब परमार्थ स्वभाववाले आत्माके लौकिक स्वरूपके जाननेमें निपुण विभीषण निम्नाङ्कित वचन बोला ॥६॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यह स्थिति अनादिनिधन है । संसारके भीतर आज इन्हीं एककी यह दशा नहीं हुई है ॥७॥ इस संसाररूपी पिंजड़ेके भीतर जो उत्पन्न हुआ है उसे अवश्य मरना पड़ता है। नाना उपायोंके द्वारा भी मृत्युका प्रतिकार नहीं किया जा सकता ॥८॥ जब यह शरीर निश्चित ही विनश्वर है तब इसके विषयमें शोकका आश्रय लेना व्यर्थ है । यथार्थमें बात यह है कि जो कुशलबुद्धि मनुष्य हैं वे आत्महितके उपायोंमें ही प्रवृत्ति करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! परलोक गया हुआ कोई मनुष्य रोनेसे उत्तर नहीं देता इसलिए आप शोक करनेके योग्य नहीं हैं ॥१०॥ स्त्री और पुरुषके संयोगसे प्राणियोंके शरीर उत्पन्न होते हैं और पानीके बबूलेके समान अनायास ही नष्ट हो जाते हैं ॥११॥ पुण्यक्षय होनेपर जिनका वैक्रियिक शरीर नष्ट हो गया है ऐसे लोकपालसहित इन्द्रों को भी स्वर्गसे च्युत होना पड़ता है ॥१२॥ गर्भके क्लेशोंसे युक्त, रोगोंसे व्याप्त, तृणके ऊपर स्थित बूँदके समान चञ्चल तथा मांस और हड्डियोंके समूह स्वरूप मनुष्यके तुच्छ शरीरमें क्या आदर करना है ? ॥१३॥ अपने आपको अजर-अमर मानता हुआ यह मनुष्य मृत

१. अनार्ये ब, अनाय्ये ख०, अनायो क० । २. नष्टयोनिजवेदानां म० ।

यदा निधनमस्यैव केवलस्य तदा सति । उच्चैराक्रन्दितुं युक्तं न सामान्ये पराभवे ॥१५॥
यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा । तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ॥१६॥
अभीष्टसङ्गमाकाङ्क्षो मुधा शुष्यति शोकवान् । शबरार्त्त इवारण्ये चमरः केशलोभतः ॥१७॥
सर्वैरेभिर्यदास्माभिरितो गम्यं वियोगतः । तदा किं क्रियते शोकः प्रथमं तत्र निर्गते ॥१८॥
लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः । मृत्योर्वज्राग्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गकः ॥१९॥
लोकनाथं विमुच्यैकं कश्चिदन्यः श्रुतस्त्वया । पाताले भूतले वा यो न जातो मृत्युनाऽर्दितः ॥२०॥
संसारमण्डलापन्नं दह्यमानं सुगन्धिना । सदा च विन्ध्यदावाभं भुवनं किं न वीक्षसे ॥२१॥
पर्यट्य भवकान्तारं प्राप्य [1]कामभुजिष्यताम् । मत्तद्विपा इवाऽऽयान्ति कालपाशस्य वश्यताम् ॥२२॥
धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् । अशाश्वततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ॥२३॥
सुरमानवनाथानां चयाः शतसहस्रशः । निधनं समुपानीताः कालमेघेन वह्नयः ॥२४॥
दूरमम्बरमुल्लङ्घ्य समापत्य रसातलम् । स्थानं [2]तत्र प्रपश्यामि [3]यत्र मृत्योरगोचरः[4] ॥२५॥
षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारतं जगत् । धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ॥२६॥
वज्रर्षभवपुर्बद्धा [5]अप्यवध्याः सुरासुरैः । नन्वनित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥२७॥

व्यक्तिके प्रति क्यों शोक करता है ? वह मृत्युको डाँढ़ोंके बीच क्लेश उठानेवाले अपने आपके प्रति शोक क्यों नहीं करता ? ॥१४॥ यदि इन्हीं एकका मरण होता तब तो जोरसे रोना उचित था परन्तु जब यह मरण सम्बन्धी पराभव सबके लिए समानरूपसे प्राप्त होता है तब रोना उचित नहीं है ॥१५॥ जिस समय यह प्राणी उत्पन्न होता है उसी समय मृत्यु इसे आ घेरती है। इस तरह जब मृत्यु सबके लिए साधारण धर्म है तब शोक क्यों किया जाता है ? ॥१६॥ जिस प्रकार जङ्गलमें भीलके द्वारा पीड़ित चमरी मृग—बालोंके लोभसे दुःख उठाता है उसी प्रकार इष्ट पदार्थोंके समागमकी आकांक्षा रखनेवाला यह प्राणी शोक करता हुआ व्यर्थ ही दुःख उठाता है ॥१७॥ जब हम सभी लोगोंको वियुक्त होकर यहाँसे जाना है तब सर्वप्रथम उनके चले जानेपर शोक क्यों किया जा रहा है ? ॥१८॥ अरे, इस प्राणीका साहस तो देखो जो यह सिंहके सामने मृगके समान वज्रदण्डके धारक यमके आगे निर्भय होकर बैठा है ॥१९॥ एक लक्ष्मीधरको छोड़कर समस्त पाताल अथवा पृथिवीतलपर किसी ऐसे दूसरेका नाम आपने सुना कि जो मृत्युसे पीड़ित नहीं हुआ हो ॥२०॥ जिस प्रकार सुगन्धिसे उपलक्षित विन्ध्याचलका वन, दावानलसे जलता है उसी प्रकार संसारके चक्रको प्राप्त हुआ यह जगत् कालानलसे जल रहा है, यह क्या आप नहीं देख रहे हैं ? ॥२१॥ संसाररूपी अटवीमें घूमकर तथा कामकी आधीनता प्राप्तकर ये प्राणी मदोन्मत्त हाथियोंके समान कालपाशकी आधीनताको प्राप्त करते हैं ॥२२॥ यह प्राणी धर्मका मार्ग प्राप्तकर यद्यपि स्वर्ग पहुँच जाता है तथापि नश्वरताके द्वारा उस तरह नीचे गिरा दिया जाता है जिस प्रकार कि नदीके द्वारा तटका वृक्ष ॥२३॥ जिस प्रकार प्रलयकालीन मेघके द्वारा अग्नियाँ नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार नरेन्द्र और देवेन्द्रोंके लाखों समूह कालरूपी मेघके द्वारा नाशको प्राप्त हो चुके हैं ॥२४॥ आकाशमें बहुत दूर तक उड़कर और नीचे रसातलमें बहुत दूर तक जाकर भी मैं उस स्थानको नहीं देख सका हूँ जो मृत्युका अगोचर न हो ॥२५॥ छठवें कालकी समाप्ति होनेपर यह समस्त भारतवर्ष नष्ट हो जाता है और बड़े-बड़े पर्वत भी विशीर्ण हो जाते हैं तब फिर मनुष्यके शरीरकी तो कथा ही क्या है ? ॥२६॥ जो वज्रमय शरीरसे युक्त थे तथा सुर और असुर भी जिन्हें मार नहीं सकते थे ऐसे लोगोंको भी अनित्यताने प्राप्त कर लिया है फिर केलेके भीतरी भागके समान निःसार मनुष्योंकी तो बात ही

---

१. मदनपारवश्यम् । २. तत्र म० । ३. यत्र म० । ४. 'यत्र मृत्युरगोचरः' इति शुद्धं प्रतिभाति । ५. अप्यवन्ध्या०म० ।

जनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् । पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं[1] द्विजोत्तमः[2] ॥२८॥
हा भ्रातर्दयिते पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः । कालाहिना जगद्भेको ग्रासतामुपनीयते ॥२९॥
करोम्येतत्करिष्यामि वदत्येवमनिष्टधीः । जनो विशति कालास्यं भीमं पोत इवार्णवम् ॥३०॥
जनं भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि । द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्ततः ॥३१॥
परे स्वजनमानी यः कुरुते स्नेहसम्मतिम् । विशति क्लेशवह्निं स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ॥३२॥
स्वजनौघाः परिप्राप्ताः संसारे येऽसुधारिणाम् । सिन्धुसैकतसङ्घाता अपि सन्ति न तत्समाः ॥३३॥
य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा । स एव रिपुतां प्राप्तो हन्यते तु महारुषा ॥३४॥
पीतौ पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे । त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मांसमत्र धिक् ॥३५॥
स्वामीति पूजितः पूर्वं यः शिरोनमनादिभिः । स एव दासतां प्राप्तो हन्यते पादताडनैः ॥३६॥
विभोः पश्यत मोहस्य [3]शक्तिं येन वशीकृतः । जनोऽन्विष्यति संयोगं हस्तेनेव महोरगम् ॥३७॥
प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विष्टपे न स विद्यते । यत्र जीवः परिप्राप्तो न मृत्युं जन्म एव वा ॥३८॥
ताम्रादिकलिलं पीतं जीवेन नरकेषु यत् । [4]स्वयम्भूरमणे तावत् सलिलं न हि विद्यते ॥३९॥
वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृतः । मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशोऽत्यन्तदूरतः ॥४०॥
परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्द्धसंहतिः । ज्योतिषां मार्गमुल्लङ्घ्य यायात्सा यदि रुध्यते ॥४१॥

क्या है ? ॥२७॥ जिस प्रकार पातालके अन्दर छिपे हुए नागको गरुड़ खींच लेता है उसी प्रकार मातासे आलिङ्गित प्राणीको भी मृत्यु हर लेती है ॥२८॥ हाय भाई ! हाय प्रिये ! हाय पुत्र ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ यह अत्यन्त दुःखी संसाररूपी मेंढक, कालरूपी साँपके द्वारा अपना ग्रास बना लिया जाता है ॥२९॥ 'मैं यह कर रहा हूँ और यह आगे करूँगा' इस प्रकार दुर्बुद्धि मनुष्य कहता रहता है फिर भी यमराजके भयंकर मुखमें उस तरह प्रवेश कर जाता है जिस तरह कि कोई जहाज समुद्रके भीतर ॥३०॥ यदि भवान्तरमें गये हुए मनुष्यके पीछे यहाँके लोग जाने लगें तो फिर शत्रु मित्र—किसीके भी साथ कभी वियोग ही न हो ॥३१॥ जो परको स्वजन मानकर उसके साथ स्नेह करता है वह नरकुञ्जर अवश्य ही दुःखरूपी अग्निमें प्रवेश करता है ॥३२॥ संसारमें प्राणियोंको जितने आत्मीयजनोंके समूह प्राप्त हुए हैं समस्त समुद्रोंकी बालूके कण भी उनके बराबर नहीं हैं। भावार्थ—असंख्यात समुद्रोंमें बालूके जितने कण हैं उनसे भी अधिक इस जीवके आत्मीयजन हो चुके हैं ॥३३॥ नाना प्रकारकी प्रियचेष्टाओंको करनेवाला यह प्राणी, अन्य भवमें जिसका बड़े लाड़-प्यारसे लालन-पालन करता है वही दूसरे भवमें इसका शत्रु हो जाता है और तीव्र क्रोधको धारण करनेवाले उसी प्राणीके द्वारा मारा जाता है ॥३४॥ जन्मान्तरमें जिस प्राणीके स्तन पिये हैं, इस जन्ममें भयभीत एवं मारे हुए उसी जीवका माँस खाया जाता है, ऐसे संसारको धिक्कार है ॥३५॥ 'यह हमारा स्वामी है' ऐसा मानकर जिसे पहले शिरोनमन—शिर झुकाना आदि विनयपूर्ण क्रियाओंसे पूजित किया था वही इस जन्ममें दासताको प्राप्त होकर लातोंसे पीटा जाता है ॥३६॥ अहो ! इस सामर्थ्यवान् मोहकी शक्ति तो देखो जिसके द्वारा वशीभूत हुआ यह प्राणी इष्टजनोंके संयोगको उस तरह ढूँढ़ता फिरता है जिस तरह कि कोई हाथसे महानागको ॥३७॥ इस संसारमें तिलमात्र भी वह स्थान नहीं है जहाँ यह जीव मृत्यु अथवा जन्मको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥३८॥ इस जीवने नरकोंमें ताँबा आदिका जितना पिघला हुआ रस पिया है उतना स्वयंभूरमण समुद्रमें पानी भी नहीं है ॥३९॥ इस जीवने सूकरका भव धारणकर जितने विष्ठाको अपना भोजन बनाया है मैं समझता हूँ कि वह हजारों विन्ध्याचलोंसे भी कहीं बहुत अधिक अत्यन्त ऊँचा होगा ॥४०॥ इस जीवने परस्पर एक दूसरेको मारकर जो मस्तकोंका समूह काटा है यदि उसे एक जगह रोका जाय—एक

१. सर्पम् । २. गरुडः । ३. शक्तिर्येन म० । ४. स्वयंभूरमणो म० ।

शर्कराधरणीयातैर्दुःखं प्राप्तमनुत्तमम् । श्रुत्वा तत्कस्य रोचेत मोहेन सह मित्रता ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

यस्य कृतेऽपि [1]निमेषं नेच्छति दुःखानि विषयसुखसंसक्तः ।
पर्यटति च संसारे ग्रस्तो मोहग्रहेण मत्तवदात्मा ॥४३॥
एतद् दग्धशरीरं युक्तं त्यक्तुं कषायचिन्तायासम् ।
अन्यस्मादन्यतरं[2] किं पुनरीदृग्विधं कलेवरभारम् ॥४४॥
इत्युक्तोऽपि विविक्तं खेचररविणा विपश्चिता रामः ।
नोज्झति लक्ष्मणमूर्तिं गुरोरिवाऽऽज्ञां विनीतात्मा ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लक्ष्मणवियोगविभीषणसंसारस्थितिवर्णनं नाम सप्तदशोत्तरशतं पर्व ॥११७॥

स्थानपर इकट्ठा किया जाय तो वह ज्योतिषी देवोंके मार्गको भी उल्लंघन कर आगे जा सकता है ॥४१॥ नरक-भूमिमें गये हुए जीवोंने जो भारी दुःख उठाया है उसे सुन मोहके साथ मित्रता करना किसे अच्छा लगेगा ? ॥४२॥ विषय-सुखमें आसक्त हुआ यह प्राणी जिस शरीरके पीछे पलभरके लिए भी दुःख नहीं उठाना चाहता तथा मोहरूपी ग्रहसे ग्रस्त हुआ पागलके समान संसारमें भ्रमण करता रहता है, ऐसे कषाय और चिन्तासे खेद उत्पन्न करनेवाले इस शरीरको छोड़ देना ही उचित है क्योंकि इनका यह ऐसा शरीर क्या अन्य शरीरसे भिन्न है—विलक्षण है ? ॥४३-४४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि विद्याधरोंमें सूर्य स्वरूप बुद्धिमान् विभीषणने यद्यपि रामको इस तरह बहुत कुछ समझाया था तथापि उन्होंने लक्ष्मणका शरीर उस तरह नहीं छोड़ा जिस तरह कि विनयी शिष्य गुरुकी आज्ञा नहीं छोड़ता है ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके वियोगको लेकर विभीषणके द्वारा संसारकी स्थितिका वर्णन करने वाला एकसौ सत्रहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११७॥

---

१. निमिषं दुःखानि म० । २. -दन्यतरं पुनरीदृग् म० ।

अष्टादशोत्तरशतं पर्व

सुग्रीवाद्यैस्ततो भूपैर्विज्ञप्तं देव साम्प्रतम् । चितां कुर्मो नरेन्द्रस्य देहं संस्कारमापय ॥१॥
कलुषात्मा जगादासौ मातृभिः पितृभिः समम् । चितायामाशु दह्यन्तां भवन्तः सपितामहाः ॥२॥
यः कश्चिद् विद्यते बन्धुर्युष्माकं पापचेतसाम् । भवन्त एव तेनाऽमा व्रजन्तु निधनं द्रुतम् ॥३॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छामः प्रदेशं लक्ष्मणाऽपरम् । शृणुमो नेदृशं यत्र खलानां कटुकं वचः ॥४॥
एवमुक्त्वा तनुं भ्रातुर्जिघृक्षोरस्य सत्वरम् । पृष्ठस्कन्धादि राजानो ददुः सम्भ्रमवर्त्तिनः ॥५॥
अविश्वसन् स तेभ्यस्तु स्वयमादाय लक्ष्मणम् । प्रदेशमपरं यातः शिशुर्विषफलं यथा ॥६॥
जगौ बाष्पपरीताक्षो भ्रातः किं सुप्यते चिरम् । उत्तिष्ठ वर्त्तते वेला स्नानभूमिर्निषेव्यताम् ॥७॥
इत्युक्त्वा तं मृतं कृत्वा साश्रये स्नानविष्टरे । अभ्यषिञ्चन्महामोहो हेमकुम्भाम्भसा चिरम् ॥८॥
अलङ्कृत्य च निःशेषभूषणैर्मुकुटादिभिः । सदाज्ञोऽज्ञापयत् क्षिप्रं भुक्तिभूसत्कृतानिति ॥९॥
नानारत्नशरीराणि जाम्बूनदमयानि च । भाजनानि विधीयन्तां अन्नं चाऽऽनीयतां परम् ॥१०॥
समुपाह्रियतामच्छा बाढं कादम्बरी वरा । विचित्रमुपदंशं[1] च रसबोधनकारणम् ॥११॥
एवमाज्ञां समासाद्य परिवर्गेण सादरम् । तथाविधं कृतं सर्वं नाथबुद्ध्यनुवर्त्तिना ॥१२॥
[2]लक्ष्मणस्यान्तरास्यस्य राघवः पिण्डमादधे । न त्वविशज्जिनेन्द्रोक्तमभव्यश्रवणे यथा । ॥१३॥

अथानन्तर सुग्रीव आदि राजाओंने कहा कि हे देव ! हम लोग चिता बनाते हैं सो उसपर राजा लक्ष्मीधरके शरीरको संस्कार प्राप्त कराइए ॥१॥ इसके उत्तरमें कुपित होकर रामने कहा कि चितापर माताओं, पिताओं और पितामहोंके साथ आप लोग ही जलें ॥२॥ अथवा पाप पूर्ण विचार रखनेवाले आप लोगोंका जो भी कोई इष्ट बन्धु हो उसके साथ आप लोग ही शीघ्र मृत्युको प्राप्त हों ॥३॥ इस प्रकार अन्य सब राजाओंको उत्तर देकर वे लक्ष्मणके प्रति बोले कि भाई लक्ष्मण ! उठो, उठो, चलो दूसरे स्थानपर चलें। जहाँ दुष्टोंके ऐसे वचन नहीं सुनने पड़ें ॥४॥ इतना कहकर वे शीघ्र ही भाईका शरीर उठाने लगे तब घबड़ाये हुए राजाओंने उन्हें पीठ तथा कन्धा आदिका सहारा दिया ॥५॥ राम, उन सबका विश्वास नहीं रखते थे इसलिए स्वयं अकेले ही लक्ष्मणको लेकर उस तरह दूसरे स्थानपर चले गये जिस तरह कि बालक विषफलको लेकर चला जाता है ॥६॥ वहाँ वे नेत्रोंमें आँसू भरकर कहे कि भाई ! इतनी देर क्यों सोते हो ? उठो, समय हो गया, स्नान-भूमिमें चलो ॥७॥ इतना कहकर उन्होंने मृत लक्ष्मणको आश्रयसहित (टिकनेके उपकरणसे सहित) स्नानकी चौकीपर बैठा दिया और स्वयं महामोहसे युक्त हो सुवर्णकलशमें रक्खे जलसे चिरकाल उसका अभिषेक करते रहे ॥८॥ तदनन्तर मुकुट आदि समस्त आभूषणोंसे अलंकृत कर, भोजन-गृहके अधिकारियोंको शीघ्र ही आज्ञा दिलाई कि नाना रत्नमय एवं स्वर्णमय पात्र इकट्ठे कर उनमें उत्तम भोजन लाया जाय ॥९-१०॥ उत्तम एवं स्वच्छ मदिरा लाई जाय तथा रससे भरे हुए नाना प्रकारके स्वादिष्ट व्यञ्जन उपस्थित किये जावें। इस प्रकार आज्ञा पाकर स्वामीकी इच्छानुसार काम करनेवाले सेवकोंने आदरपूर्वक सब सामग्री लाकर रख दी ॥११-१२॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके मुखके भीतर भोजनका ग्रास रक्खा। पर वह उस तरह भीतर प्रविष्ट नहीं हो सका, जिस तरह कि जिनेन्द्र भगवान्‌का वचन अभव्यके कानमें प्रविष्ट

---

१. व्यञ्जनम्। २. लक्ष्मणस्य + अन्तर् + आस्यस्य इतिच्छेदः।

ततोऽवदद् यदि क्रोधो मयि देव कृतस्त्वया । ततोऽस्यात्र किमायातममृतस्वादिनोऽन्धसः ॥१४॥
इयं श्रीधर ते नित्यं दयिता मदिरोत्तमा । इमां तावत् पिब न्यस्तां चषके विकचोत्पले ॥१५॥
इत्युक्त्वा तां मुखे न्यस्य चकार सुमहादरः । कथं विशतु सा तत्र चार्वी संक्रान्तचेतने ॥१६॥
इत्यशेषं क्रियाजातं जीवतीव स लक्ष्मणे । चकार स्नेहमूढात्मा मोघं निर्वेदवर्जितः ॥१७॥
गीतैः स चारुभिर्वेणुवीणानिस्वनसङ्गतैः । परासुरपि रामाज्ञां प्रापितश्च लक्ष्मणः ॥१८॥
चन्दनार्चितदेहं तं दोर्भ्यामुद्यम्य सस्पृहः । कृत्वाङ्के मस्तकेऽचुम्बत् पुनर्गण्डे पुनः करे ॥१९॥
अपि लक्ष्मण किन्ते स्यादिदं सञ्जातमीदृशम् । न येन मुञ्चसे निद्रां सकृदेव निवेदय ॥२०॥
इति स्नेहग्रहाविष्टो यावदेष विचेष्टते । महामोहकृतासङ्गे कर्मण्युदयमागते ॥२१॥
तावद्विदितवृत्तान्ता रिपवः क्षोभमागताः । परे तेजसि काकास्ते गर्जन्तो विपदा इव ॥२२॥
विरोधिताशया दूरं सामर्षा सुन्दनन्दनम् । चारुरत्नाख्यमाजग्मुरसौ कुलिशमालिनम् ॥२३॥
ऊचे च [1]मद्गुरोर्येन मीत्वा सोदरकारकौ । पातालनगरे चासौ राज्येऽस्थापि विराधितः ॥२४॥
वानरध्वजिनीचन्द्रं सुग्रीवं प्राप्य बान्धवम् । उदन्तोऽलम्भि कान्ताया रामेणाऽऽर्तिमता ततः ॥२५॥
उदन्वन्तं समुल्लङ्घ्य नभोगैर्यानवाहनैः । द्वीपा विध्वंसितास्तेन लङ्कां जेतुं युयुत्सुना ॥२६॥

नहीं होता है ॥१३॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि हे देव ! तुम्हारा मुझपर क्रोध है तो यहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट इस भोजनने क्या बिगाड़ा ? इसे तो ग्रहण करो ॥१४॥ हे लक्ष्मीधर ! तुम्हें यह उत्तम मदिरा निरन्तर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नील कमलसे सुशोभित पान-पात्रमें रखी हुई इस मदिराको पिओ ॥१५॥ ऐसा कहकर उन्होंने बड़े आदरके साथ वह मदिरा उनके मुखमें रख दी पर वह सुन्दर मदिरा निश्चेतन मुखमें कैसे प्रवेश करती ॥१६॥ इस प्रकार जिनकी आत्मा स्नेहसे मूढ़ थी तथा जो वैराग्यसे रहित थे ऐसे रामने जीवित दशाके समान लक्ष्मणके विषयमें व्यर्थ ही समस्त क्रियाएँ कीं ॥१७॥ यद्यपि लक्ष्मण निष्प्राण हो चुके थे तथापि रामने उनके आगे वीणा बाँसुरी आदिके शब्दोंसे सहित सुन्दर संगीत कराया ॥१८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे चर्चित था ऐसे लक्ष्मणको बड़ी इच्छाके साथ दोनों भुजाओं-से उठाकर रामने अपनी गोदमें रख लिया और उनके मस्तक कपोल तथा हाथका बार-बार चुम्बन किया ॥१९॥ वे उनसे कहते कि हे लक्ष्मण, तुझे यह ऐसा हो क्या गया जिससे तू नींद नहीं छोड़ता, एक बार तो बता ॥२०॥ इस प्रकार महामोहसे सम्बद्ध कर्मका उदय आने-पर स्नेह रूपी पिशाचसे आक्रान्त राम जब तक यहाँ यह चेष्टा करते हैं तब तक वहाँ यह वृत्तान्त जान शत्रु उस तरह क्षोभको प्राप्त हो गये जिस तरह कि परम तेजअर्थात् सूर्यको आच्छादित करनेके लिए गरजते हुए काले मेघ ॥२१-२२॥ जिनके अभिप्रायमें बहुत दूर तक विरोध समाया हुआ था तथा जो अत्यधिक क्रोधसे सहित थे ऐसे शत्रु, शम्बूकके भाई सुन्दके पुत्र चारुरत्नके पास गये और चारुरत्न उन सबको साथ ले इन्द्रजित्के पुत्र वज्रमालीके पास गया ॥२३॥ उसे उत्तेजित करता हुआ चारुरत्न बोला कि लक्ष्मणने हमारे काका और बाबा दोनोंको मारकर पाताल लंकाके राज्यपर विराधितको स्थापित किया ॥२४॥ तदनन्तर वानर-वंशियोंकी सेनाको हर्षित करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप एवं भाईके समान हितकारी सुग्रीवको पाकर विरहसे पीड़ित रामने अपनी स्त्री सीताका समाचार प्राप्त किया ॥२५॥ तत्पश्चात् लंका-को जीतनेके लिए युद्ध करनेके इच्छुक रामने विद्याधरोंके साथ विमानों द्वारा समुद्रको लाँघकर

---

१. मद्गुरौ येन नीत्वा सोदरकारकौ म० । मीत्वा = हत्वा, सोदरकारकौ मम भ्रातृजनकौ श्री० टि०, मम गुरुः सुन्दस्तस्य सोदरम् ।

सिंहतार्क्ष्यमहाविद्ये रामलक्ष्मणयोस्तयोः । उत्पन्ने बन्दितां नीतास्ताभ्यामिन्द्रजितादयः ॥२७॥
चक्ररत्नं समासाद्य येनाऽघाति दशाननः । अधुना कालचक्रेण लक्ष्मणोऽसौ निपातितः ॥२८॥
आसंस्तस्य भुजच्छायां श्रित्वा मत्ता प्लवङ्गमाः । साम्प्रतं लूनपक्षास्ते परमास्कन्द्यतां गताः ॥२९॥
अद्यास्ति द्वादशः पक्षो राघवस्येयुषः शुचम् । प्रेताङ्गं वहमानस्य व्यामोहः कोऽपरोऽस्त्वतः ॥३०॥
यद्यप्यप्रतिमल्लोऽसौ हलरत्नादिमर्दनः । तथापि लङ्घितुं शक्यः शोकपङ्कगतोऽभवत् ॥३१॥
तस्यैव बिभिमस्त्वस्य न आत्वन्यस्य कस्यचित् । यस्यानुजेन विध्वस्ता सर्वास्मद्वंशसङ्गतिः ॥३२॥
अथैन्द्रजितिराकर्ण्य व्यसनं स्वोरुगोत्रजम् । प्रतिद्यासितमार्गेण जज्वाल क्षुब्धमानसः ॥३३॥
आज्ञाप्य सचिवान् सर्वान् भेर्या संयति राजितान् । प्रययौ प्रति साकेतं सुन्दतोकसमन्वितः ॥३४॥
सैन्याकूपारगुप्तौ तौ सुग्रीवं प्रति कोपितौ[1] । पद्मनाभमयासिष्टां प्रकोपयितुमुद्यतौ ॥३५॥
वज्रमालिनमायातं श्रुत्वा सौन्दिसमन्वितम् । सर्वे विद्याधराधीशा रघुचन्द्रमशिश्रियन् ॥३६॥
वितानतां परिप्राप्ता क्षुब्धाऽयोध्या समन्ततः । लवणाङ्कुशयोर्यद्वदागमे भीतिवेपिता ॥३७॥
अरातिसैन्यमभ्यर्णमालोक्य रघुभास्करः । कृत्वाङ्के लक्ष्मणं सत्त्वं वहमानस्तथाविधम् ॥३८॥
उपनीतं समं बाणैर्वज्रावर्तमहाधनुः । आलोकत स्वभावस्थं कृतान्तभ्रूलतोपमम् ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे नाके जातो विष्टरवेपथुः । कृतान्तवक्त्रदेवस्य जटायुस्त्रिदशस्य च ॥४०॥

अनेक द्वीप नष्ट किये ॥२६॥ राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी एवं गरुडवाहिनी नामक विद्याएँ प्राप्त हुईं। उनके प्रभावसे उन्होंने इन्द्रजित आदिको बन्दी बनाया ॥२७॥ तथा जिस लक्ष्मणने चक्र-रत्न पाकर रावणको मारा था इस समय वही लक्ष्मण कालके चक्रसे मारा गया है ॥२८॥ उसकी भुजाओंकी छाया पाकर वानरवंशी उन्मत्त हो रहे थे पर इस समय वे पक्ष कट जानेसे अत्यन्त आक्रमणके योग्य अवस्थाको प्राप्त हुए हैं। शोकको प्राप्त हुए रामको आज बारहवाँ पक्ष है वे लक्ष्मणके मृतक शरीरको लिये फिरते हैं अतः कोई विचित्र प्रकारका मोह—पागलपन उनपर सवार है ॥२९–३०॥ यद्यपि हल-मुसल आदि शस्त्रोंको धारण करनेवाले राम अपनी सानी नहीं रखते तथापि इस समय शोकरूपी पंकमें फँसे होनेके कारण उनपर आक्रमण करना शक्य है ॥३१॥ यदि हमलोग डरते हैं तो एक उन्हींसे डरते हैं और किसीसे नहीं जिनके कि छोटे भाई लक्ष्मणने हमारे वंशकी सब संगति नष्ट कर दी ॥३२॥

अथानन्तर इन्द्रजितका पुत्र वज्रमाली अपने विशाल वंशपर उत्पन्न पूर्व संकटको सुनकर क्षुभित हो उठा और प्रसिद्ध मार्गसे प्रज्वलित होने लगा अर्थात् क्षत्रिय कुल प्रसिद्ध तेजसे दमकने लगा ॥३३॥ वह मन्त्रियोंको आज्ञा दे तथा भेरीके द्वारा सब लोगोंको युद्धमें इकट्ठाकर सुन्दपुत्र चारुरत्नके साथ अयोध्याकी ओर चला ॥३४॥ जो सेना रूपी समुद्रसे सुरक्षित थे तथा सुग्रीवके प्रति जिनका क्रोध उमड़ रहा था ऐसे वे दोनों—वज्रमाली और चारुरत्न, रामको कुपित करनेके लिए उद्यत हो उनकी ओर चले ॥३५॥ चारुरत्नके साथ वज्रमालीको आया सुन सब विद्याधर राजा रामचन्द्रके पास आये ॥३६॥ उस समय अयोध्या किंकर्तव्यमूढ़ताको प्राप्त हो सब ओरसे क्षुभित हो उठी तथा जिस प्रकार लवणांकुशके आनेपर भयसे काँपने लगी थी उसी प्रकार भयसे काँपने लगी ॥३७॥ अनुपम पराक्रमको धारण करनेवाले रामने जब शत्रुसेनाको निकट देखा तब वे मृत लक्ष्मणको गोदमें रख बाणोंके साथ लाये हुए उस वज्रावर्त नामक महाधनुषकी ओर देखने लगे कि जो अपने स्वभावमें स्थित था तथा यमराजकी भ्रुकुटि रूपी लताके समान कुटिल था ॥ ३८–३९॥

इसी समय स्वर्गमें कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा जटायु पक्षीके जीव जो देव हुए थे उनके

---

१. कोपिनौ म० ।

विमाने यत्र सम्भूतो जटायुस्त्रिदशोत्तमः । तस्मिन्नेव कृतान्तोऽपि तस्यैव विभुतां गतः ॥४१॥
कृतान्तस्त्रिदशोऽवोचद् भो गीर्वाणपते कुतः । इमं यातोऽसि संरम्भं सोऽगदद्योजितावधिः ॥४२॥
यदाऽहमभवं गृध्रस्तदा येनेष्टपुत्रवत् । लालितः शोकतप्तं तमेति शत्रुबलं महत् ॥४३॥
ततः कृतान्तदेवोऽपि प्रयुज्यावधिलोचनम् । अधोभूयिष्ठदुःखार्त्तो बभाषे चातिभासुरः ॥४४॥
सखे सत्यं समाप्त्येष प्रभुरासीत् सुवत्सलः । प्रसादादस्य भूपृष्ठे कृतं दुर्लङ्घितं मया ॥४५॥
भाषितश्चाहमेतेन गहनात्परमोचनम् । तदिदं जातमेतस्य तदेह्येनमिमो लघु ॥४६॥
इत्युक्त्वा प्रचलन्नीलकेशकुन्तलसंहतीं[1] । स्फुरत्किरीटभाचक्रौ विलसन्मणिकुण्डलौ ॥४७॥
माहेन्द्रकल्पतो देवौ श्रीमन्तौ प्रति कोसलाम् । जग्मतुः परमोद्योगौ प्रतिपक्षविचक्षणौ ॥४८॥
सामानिकं कृतान्तोऽगाद् व्रज त्वं द्विषतां बलम् । विमोहय रघुश्रेष्ठं रक्षितुं[2] तु व्रजाम्यहम् ॥४९॥
ततो जटायुर्गीर्वाणः कामरूपविवर्त्तकृत् । सुधीरुदारमत्यन्तं परसैन्यममोहयत् ॥५०॥
आगच्छतामरातीनामयोध्यामीक्षितां पुरः । पुनः प्रदर्शयामास पर्वतं पृष्ठतः पुनः ॥५१॥
निरस्याऽऽराद्धीयांस्तां शत्रुखेचरवाहिनीम् । आरेभे रोदसी व्याप्तुमयोध्याभिरनन्तरम् ॥५२॥
अयोध्यैव विनीतेयमियं सा कोशला पुरी । अहो सर्वमिदं जातं नगरीगहनात्मकम् ॥५३॥
इति वीक्ष्य महीपृष्ठं खं चायोध्यासमाकुलम् । मानोन्नतया वियुक्तं तद्वीक्ष्यापक्रममभूद्बलम् ॥५४॥

आसन कम्पायमान हुए ॥४०॥ जिस विमानमें जटायुका जीव उत्तम देव हुआ था उसी विमानमें कृतान्तवक्त्र भी उसीके समान वैभवका धारी देव हुआ था ॥४१॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि हे देवराज ! आज इस क्रोधको क्यों प्राप्त हुए हो ? इसके उत्तरमें अवधिज्ञानको जोड़नेवाले जटायुके जीवने कहा कि जब मैं गृध्र पर्यायमें था तब जिसने प्रिय पुत्रके समान मेरा लालन-पालन किया था आज उसके संमुख शत्रुकी बड़ी भारी सेना आ रही है और वह स्वयं भाईके मरणसे शोक-संतप्त है ॥४२-४३॥ तदनन्तर कृतान्तवक्त्रके जीवने भी अवधिज्ञान रूपी लोचनका प्रयोगकर नीचे होनेवाले अत्यधिक दुःखसे दुःखी तथा क्रोधसे देदीप्यमान होते हुए कहा कि मित्र, सच है वह हमारा भी स्नेही स्वामी रहा है । इसके प्रसादसे मैंने पृथिवीतलपर अनेक दुर्दान्त चेष्टाएँ की थीं ॥४४-४५॥ इसने मुझसे कहा भी था कि संकटसे मुझे छुड़ाना । आज वह संकट इसे प्राप्त हुआ है इसलिए आओ शीघ्र ही इसके पास चलें ॥४६॥

इतना कहकर जिनके काले-काले केश तथा कुन्तलोंका समूह हिल रहा था, जिनके मुकुटोंका कान्तिचक्र देदीप्यमान हो रहा था, जिनके मणिमय कुण्डल सुशोभित थे, जो परम उद्योगी थे तथा शत्रुका पक्ष नष्ट करनेमें निपुण थे ऐसे वे दोनों श्रीमान् देव, माहेन्द्र स्वर्गसे अयोध्याकी ओर चले ॥४७-४८॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि तुम तो जाकर शत्रु सेनाको मोहित करो—उसकी बुद्धि भ्रष्ट करो और मैं रामकी रक्षा करनेके लिए जाता हूँ ॥४९॥ तदनन्तर इच्छानुसार रूपपरिवर्तित करनेवाले बुद्धिमान् जटायुके जीवने शत्रुकी उस बड़ी भारी सेनाको मोहयुक्त कर दिया—भ्रममें डाल दिया ॥५०॥ 'यह अयोध्या दिख रही है' ऐसा सोचकर जो शत्रु उसके समीप आ रहे थे उस देवने मायासे उनके आगे और पीछे बड़े-बड़े पर्वत दिखलाये । तदनन्तर अयोध्याके निकट खड़े होकर उसने शत्रु विद्याधरोंकी समस्त सेनाका निराकरण किया और पृथिवी तथा आकाश दोनोंको अयोध्या नगरियोंसे अविरल व्याप्त करना शुरू किया ॥५१-५२॥ जिससे 'यह अयोध्या है, यह विनीता है, यह कोशलापुरी है, इस तरह वहाँकी समस्तभूमि और आकाश अयोध्या नगरियोंसे तन्मय हो गया ॥५३॥ इस

१. संहरी म० । २. रक्षेतं तु म०, ज० ।

वभणुश्चाधुना केन प्रकारेण स्वजीवितम् । धारयामः परा यत्र काऽप्येषा रामदेवता ॥५५॥
ईदृशी विक्रिया शक्तिः कुतो विद्याधरर्द्धिषु । किमिदं कृतमस्माभिरनालोचितकारिभिः ॥५६॥
विरुद्धा अपि हंसस्य[1] खद्योताः किं नु कुर्वते । यस्यामीषुसहस्राप्तं परिजाज्वल्यते जगत् ॥५७॥
प्रपलायितुकामानामपि नः साम्प्रतं सखे । नास्ति मार्गः सुभीमेऽस्मिन्बले स्तृणाति विष्टपम् ॥५८॥
महान्न मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानवः । कदाचिदेति कल्याणं स्वकर्मपरिपाकतः ॥५९॥
बुद्बुदा इव यद्यस्मिन्नूर्मीभिः सैनिकोर्मिभिः । आनीताः स्म प्रविध्वंसं किं भवेदर्जितं ततः ॥६०॥
इत्यन्योन्यकृताऽऽलापमुद्भूतपृथुवेपथु[2] । विद्याधरबलं सर्वं जातमत्यन्तविह्वलम् ॥६१॥
विक्रियाक्रीडनं कृत्वा जटायुरिति पार्थिव । पलायनपथं तेषां दक्षिणं कृपया ददौ ॥६२॥
प्रस्पन्दमानचित्तास्ते कम्पमानशरीरकाः । भृशं ते खेचरा नेशुः श्येनत्रस्ता द्विजा इव ॥६३॥
तस्मै विभीषणायाऽग्रे दास्यामो नु किमुत्तरम् । का वा शोभाऽधुनाऽस्माकमत्यन्तोपहतात्मनाम् ॥६४॥
छायया दर्शयिष्यामः कया वक्त्रं स्वदेहिनाम् । कुतो वा धृतिरस्माकं का वा जीवितशेमुषी ॥६५॥
अवधार्येति सव्रीडस्तस्मिन्निन्द्रजितात्मजः । प्राप्तो विरागमैश्वर्ये विभूतिं वीक्ष्य दैविकीम् ॥६६॥
समेतश्चारुरत्नेन स्निग्धकैश्च सभूमिभिः । रतिवेगमुनेः पार्श्वे विरोषः श्रमणोऽभवत् ॥६७॥
दृष्ट्वाऽनन्तरदेहांस्तान्निर्मुक्तकलुषान्नृपान् । विद्युत्प्रहरणं देवः समहार्षीत् प्रभीषणः ॥६८॥

प्रकार पृथिवी और आकाश दोनोंको अयोध्याओंसे व्याप्त देखकर शत्रुओंकी वह सेना अभिमान-से रहित हो आपत्तिमें पड़ गई ॥५४॥ सेनाके लोग परस्पर कहने लगे कि जहाँ यह राम नामका कोई अद्भुत देव विद्यमान है वहाँ अब हम अपने प्राण किस तरह धारण करें—जीवित कैसे रहें? ॥५५॥ विद्याधरोंकी ऋद्धियोंमें ऐसी विक्रिया शक्ति कहाँसे आई? बिना विचारे काम करने-वाले हमलोगोंने यह क्या किया? ॥५६॥ जिसकी हजार किरणोंसे व्याप्त हुआ जगत् सब ओर-से देदीप्यमान हो रहा है, बहुतसे जुगनूँ विरुद्ध होकर भी उस सूर्यका क्या कर सकते हैं? ॥५७॥ जबकि यह भयंकर सेना समस्त जगत्में व्याप्त हो रही है तब हे सखे! हम भागना भी चाहें तो भी भागनेके लिए मार्ग नहीं है ॥५८॥ मरनेमें कोई बड़ा लाभ नहीं है क्योंकि जीवित रहनेवाला मनुष्य कदाचित् अपने कर्मोंके उदयवश कल्याणको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ यदि हम इन सैनिक रूपी तरङ्गोंके द्वारा बबूलोंके समान नाशको भी प्राप्त हो गये तो उससे क्या मिल जायगा? ॥६०॥ इस प्रकार जो परस्पर वार्तालाप कर रही थी तथा जिसे अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसी वह विद्याधरोंकी समस्त सेना अत्यन्त विह्वल हो गई ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! तदनन्तर जटायुके जीवने इस तरह विक्रिया द्वारा क्रीड़ाकर दयापूर्वक उन विद्याधर शत्रुओंको दक्षिण दिशाकी ओर भागनेका मार्ग दे दिया ॥६२॥ इस प्रकार जिनके चित्त चञ्चल थे तथा जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसे वे सब विद्याधर बाजसे डरे पक्षियोंके समान बड़े वेगसे भागे ॥६३॥

अब आगे विभीषणके लिए क्या उत्तर देंगे? इस समय जिनकी आत्मा एक दम दीन हो रही है ऐसे हम लोगोंकी क्या शोभा है? ॥६४॥ हम अपने ही लोगोंको क्या कान्ति लेकर मुख दिखावेंगे? हम लोगोंको धैर्य कहाँ हो सकता है? अथवा जीवित रहनेकी इच्छा ही हम लोगोंको कहाँ हो सकती है? ॥६५॥ ऐसा निश्चय कर उनमें जो इन्द्रजितका पुत्र व्रजमाली था वह लज्जासे युक्त हो गया। यतश्च वह देवोंका प्रभाव देख चुका था अतः उसे अपने ऐश्वर्यमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। फल स्वरूप वह सुन्दके पुत्र चारुरत्न तथा अन्य स्नेही जनोंके साथ, क्रोध छोड़ रतिवेग नामक मुनिके पास साधु हो गया ॥६६–६७॥ भयभीत करनेके लिए जटायुका

---

१. सूर्यस्य। 'हंसः पक्ष्यात्मसूर्येषु' इत्यमरः। २. वेपथुः म०।

दृष्ट्वाथोद्विग्नचित्तः स कृतावधिनियोजनः । अहोऽमी [1]प्रतिबोधाढ्याः संवृत्ताः परमर्षयः ॥६९॥
दोषांस्तदास्मिन्दासित्वा[2] साधूनां विमलात्मनाम् । महादुःखं परिप्राप्तं तिर्यक्षु नरकेषु च ॥७०॥
यस्यानुबन्धमद्यापि [3]सहे शत्रोर्दुरात्मनः । येन स्तोकेन न भ्रान्तः पुनर्दीर्घं भवार्णवम् ॥७१॥
इति सञ्चिन्त्य शान्तात्मा स्वं निवेद्य यथाविधि । प्रणम्य भक्तिसम्पन्नः सुधीः साधूनमर्षयत् ॥७२॥
तथा कृत्वा च साकेतामगाद् यत्र विमोहितः । भ्रातृशोकेन काकुत्स्थः शिशुवत्परिचेष्टते ॥७३॥
आकल्पान्तरमापन्नं सिञ्चन्तं शुष्कपादपम् । पद्मनाभप्रबोधार्थं कृतान्तं वीक्ष्य सादरम् ॥७४॥
जटायुः शीरमासाद्य गोकलेवरयुग्मके । बीजं शिलातले वप्तुमुद्यतः [4]प्राजनं दधत् ॥७५॥
[5]कृपीटपूरितां कुम्भीं कृतान्तस्तत्पुरोऽमथत् । जटायुश्चक्रमारोप्य सिकतां पर्यपीडयत् ॥७६॥
अन्यानि चार्थहीनानि कार्याणि त्रिदशाविमौ । चक्रतुः स ततो गत्वा पप्रच्छेति क्रमान्वितम् ॥७७॥
परेतं सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् । कलेवरे[6] हलं प्राश्णि बीजं हारयसे कुतः ॥७८॥
नीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता । वालुकापीडनाद्बाल स्नेहः सञ्जायतेऽथ किम् ॥७९॥
केवलं श्रम एवात्र फलं नाण्वपि काङ्क्षितम् । लभ्यते किमिदं व्यर्थं समारब्धं विचेष्टितम् ॥८०॥
ऊचतुस्तौ क्रमेणैतं पृच्छावश्चापि सत्यतः । जीवेन रहितामेतां तनुं वहसि किं वृथा ॥८१॥

जीव देव, विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र लेकर उन सबको दक्षिणकी ओर खदेड़ रहा था सो उन सब राजाओंको नग्न तथा क्रोधरहित देख उसने अपना विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र संकुचित कर लिया ॥६८॥ उद्विग्न चित्तका धारी वह देव अवधिज्ञानका प्रयोगकर विचार करने लगा कि अहो ! ये सब तो प्रतिबोधको प्राप्त हो परम ऋषि हो गये हैं ॥६९॥ उस समय (राजा दण्डककी पर्यायमें) मैंने निर्दोष आत्माके धारी साधुओंको दोष दिया था—घानीमें पिलवाया था सो उसके फल स्वरूप तिर्यञ्चों और नरकोंमें मैंने बहुत भारी दुःख उठाया है। तथा अब भी उसी दुष्ट शत्रुका संस्कार भोग रहा हूँ परन्तु वह संस्कार इतना थोड़ा रह गया है कि उसके निमित्तसे पुनः दीर्घ संसारमें भ्रमण नहीं करना पड़ेगा ॥७०-७१॥ ऐसा विचारकर उस बुद्धिमान्ने शान्त हो अपने आपका परिचय दिया और भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन मुनियोंसे क्षमा माँगी ॥७२॥

तदनन्तर इतना सब कर, वह अयोध्यामें वहाँ पहुँचा जहाँ भाईके शोकसे मोहित हो राम बालकके समान चेष्टा कर रहे थे ॥७३॥ वहाँ उसने बड़े आदरसे देखा कि कृतान्तवक्त्रका जीव रामको समझानेके लिए वेष बदलकर एक सूखे वृक्षको सींच रहा है ॥७४॥ यह देख जटायुका जीव भी दो मृतक बैलोंके शरीरपर हल रखकर परेना हाथमें लिये शिलातलपर बीज बोनेका उद्यम करने लगा ॥७५॥ कुछ समय बाद कृतान्तवक्त्रका जीव रामके आगे जलसे भरी मटकीको मथने लगा और जटायुका जीव घानीमें बालू डाल पेलने लगा ॥७६॥ इस प्रकार इन्हें आदि लेकर और भी दूसरे-दूसरे निरर्थक कार्य इन दोनों देवोंने रामके आगे किये । तदनन्तर रामने यथाक्रमसे उनके पास जाकर पूछा कि अरे मूर्ख ! इस मृत वृक्षको क्यों सींच रहा है ? मृतक कलेवरपर हल क्यों रक्खे हुए हैं ?, पत्थरपर बीज क्यों बरबाद करता है ? पानीके मथनेमें मक्खनकी प्राप्ति कैसे होगी ? और रे बालक ! बालूके पेलनेसे क्या कहीं तेल उत्पन्न होता है ? इन सब कार्योंमें केवल परिश्रम ही हाथ रहता है इच्छित फल तो परमाणु बराबर भी नहीं मिलता फिर यह व्यर्थकी चेष्टा क्यों प्रारम्भ कर रक्खी है ॥७७-८०॥

तदनन्तर क्रमसे उन दोनों देवोंने कहा कि हम भी एक यथार्थ बात आपसे पूछते हैं

---

१. प्रीतिबोधाढ्याः म० । २. दापित्वा म० । ३. मोह-म० । ४. 'प्राजनं तोदनं तोत्त्रम्' इत्यमरः । ५. कुमीढ म० । ६. कलेवरं म० ।

लक्ष्मणाङ्गं ततो दोर्भ्यामालिङ्ग्य वरलक्षणम् । इदं जगाद भूदेवः कलुषीभूतमानसः ॥८२॥
भो भो कुत्सयते कस्मात् सौमित्रिं पुरुषोत्तमम् । अमङ्गलाभिधानस्य किं ते दोषो न विद्यते ॥८३॥
कृतान्तेन समं यावद् विवादोऽस्येति वर्त्तते । जटायुस्तावदायातो वहन्नरकलेवरम् ॥८४॥
तं दृष्ट्वाऽभिमुखं रामो बभाषे केन हेतुना । कलेवरमिदं स्कन्धे वहसे मोहसङ्गतः ॥८५॥
तेनोक्तमनुयुङ्क्षे मां कस्मान्न त्वं विचक्षणः । यतः प्राणनिमेषादिमुक्तं वहसि विग्रहम् ॥८६॥
बालाग्रमात्रकं दोषं परस्य क्षिप्रमीक्षसे । मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथं दोषान्न पश्यसि ॥८७॥
दृष्ट्वा भवन्तमस्माकं परमा प्रीतिरुद्गता । सदृशः सदृशेष्वेव रज्यन्तीति सुभाषितम् ॥८८॥
सर्वेषामस्मदादीनां यथेप्सितविधायिनाम् । भवान् पूर्वं पिशाचानां त्वं राजा परमेप्सितः ॥८९॥
उन्मत्तेन्द्रध्वजं दत्त्वा भ्रमामः सकलां महीम् । उन्मत्तां प्रवणीकुर्मः समस्तां प्रत्यवस्थिताम् ॥९०॥
एवमुक्तमनुश्रित्य मोहे शिथिलतां गते । गुरुवाक्यभवं चाऽन्यत् स्मृत्वा ह्रीमानभून्नृपः[1] ॥९१॥
मुक्तमोहघनव्रातः प्रतिबोधमरीचिभिः । नृपदाशार्णाभर्त्ता राजते परमं तदा ॥९२॥
घनपङ्कविनिर्मुक्तमिव शारदमम्बरम् । विमलं तस्य सञ्जातं मानसं सत्त्वसङ्गतम् ॥९३॥
स्मृतैरमृतसम्पन्नैर्हृतशोको गुरूदितैः । पुरेव नन्दनस्वास्थ्यं दधानः शुशुभेतराम् ॥९४॥
अवलम्बितधीरत्वस्तैरेव पुरुषोत्तमः । छायां प्राप यथा मेरुर्जिनाभिषववारिभिः ॥९५॥

कि आप इस जीवरहित शरीरको व्यर्थ ही क्यों धारण कर रहे हैं ? ॥८१॥ तब जिनका मन कलुषित हो रहा था ऐसे श्री रामदेवने उत्तम लक्षणोंके धारक लक्ष्मणके शरीरका भुजाओंसे आलिङ्गनकर कहा कि अरे अरे ! तुम पुरुषोत्तम लक्ष्मणकी बुराई क्यों करते हो ? ऐसे अमाङ्गलिक शब्दके कहनेमें क्या तुम्हें दोष नहीं लगता ? ॥८२-८३॥ इस प्रकार जब तक रामका कृतान्तवक्त्रके जीवके साथ उक्त विवाद चल रहा था तब तक जटायुका जीव एक मृतक मनुष्यका शरीर लिये हुए वहाँ आ पहुँचा ॥८४॥ उसे सामने खड़ा देख रामने उससे पूछा कि तू मोह युक्त हुआ इस मृत शरीरको कन्धे पर क्यों रक्खे हुए है ? ॥८५॥ इसके उत्तरमें जटायुके जीवने कहा कि तुम विद्वान् होकर भी हमसे पूछते हो पर स्वयं अपने आपसे क्यों नहीं पूछते जो श्वासोच्छ्वास तथा नेत्रोंकी टिमकार आदिसे रहित शरीरको धारण कर रहे हो ॥८६॥ दूसरेके तो बालके अग्रभाग बराबर सूक्ष्म दोषको जल्दीसे देख लेते हो पर अपने मेरुके शिखर बराबर बड़े-बड़े दोषोंको भी नहीं देखते हो ? ॥८७॥ आपको देखकर हम लोगोंको बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ क्यों कि यह सूक्ति भी है कि सदृश प्राणी अपने ही सदृश प्राणीमें अनुराग करते हैं ॥८८॥ इच्छानुसार कार्य करनेवाले हम सब पिशाचोंके आप सर्वप्रथम मनोनीत राजा हैं ॥८९॥ हम उन्मत्तोंके राजाकी ध्वजा लेकर समस्त पृथिवीमें घूमते फिरते हैं और उन्मत्त तथा प्रतिकूल खड़ी समस्त पृथिवीको अपने अनुकूल करने जाते हैं ॥९०॥ इस प्रकार देवोंके वचनोंका आलम्बन पाकर रामका मोह शिथिल हो गया और वे गुरुओंके वचनोंका स्मरण कर अपनी मूर्खतापर लज्जित हो उठे ॥९१॥ उस समय जिनका मोहरूपी मेघ-समूहका आवरण दूर हो गया था ऐसे राजा रामचन्द्र रूपी चन्द्रमा प्रतिबोधरूपी किरणोंसे अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥९२॥ उस समय धैर्यगुणसे सहित रामका मन मेघ-रूपी कीचड़से रहित शरद् ऋतुके आकाशके समान निर्मल हो गया था ॥९३॥ स्मरणमें आये तथा अमृतसे निर्मितकी तरह मधुर गुरुओंके वचनोंसे जिनका शोक हर लिया गया था ऐसे राम उस समय उस तरह अत्यधिक सुशोभित हुए थे जिस तरह कि पहले पुत्रोंके मिलाप-सम्बन्धी सुखको धारण करते हुए सुशोभित हुए थे ॥९४॥ उस समय उन्हीं गुरुओंके वचनोंसे जिन्होंने धैर्य धारण किया था

१. श्रीमानभून्नृपः म० ।

[1]प्रालेयवातसम्पर्कविमुक्ताम्भोजखण्डवत् । प्रजह्लादे विशुद्धात्मा विमुक्तकलुषाशयः ॥९६॥
महान्तध्वान्तसम्मूढो भानोः प्राप्त इवोदयम् । महाक्षुदर्दितो लेभे परमान्नमिवेप्सितम् ॥९७॥
तृषा परमया ग्रस्तो महासर इवागमत् । महौषधमिव प्रापदत्यन्तव्याधिपीडितः ॥९८॥
यानपात्रमिवासादत्तर्तु[2]कामो महार्णवम् । उत्पथप्रतिपन्नः सन्मार्गं प्राप्येव नागरः ॥९९॥
गन्तुमिच्छन्निजं देशं महासार्थमिव श्रितः[3] । निर्गन्तुं चारकादिच्छोर्भग्नेव सुदृढाऽर्गला ॥१००॥
जिनमार्गस्मृतिं प्राप्य पद्मनाभः प्रमोदवान् । अधारयत् परां कान्तिं प्रबुद्धकमलेक्षणः ॥१०१॥
मन्यमानः स्वमुत्तीर्णमन्धकूपोदरादिव । भवान्तरमिव प्राप्तो मनसीदं समादधे ॥१०२॥
अहो तृणाग्रसंसक्तजलबिन्दुचलाचलम् । मनुष्यजीवितं यद्वत्क्षणान्नाशमुपागतम् ॥१०३॥
भ्रमताऽत्यन्तकृच्छ्रेण चतुर्गतिभवान्तरे । नृशरीरं मया प्राप्तं कथं मूढोऽस्म्यनर्थकः ॥१०४॥
कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्थाः कस्य बान्धवाः । संसारे सुलभं [4]ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ॥१०५॥
इति ज्ञात्वा प्रबुद्धं तं मायां संहृत्य तौ सुरौ । चक्रतुर्देवशीमृद्धिं लोकविस्मयकारिणीम् ॥१०६॥
अपूर्वः प्रववौ वायुः सुखस्पर्शः सुसौरभः । नभो यानैर्विमानैश्च व्याप्तमत्यन्तसुन्दरैः ॥१०७॥
गीयमाने सुरस्त्रीभिर्वीणानिःस्वनसङ्गतम् । आत्मीयं चरितं रामः शृणोति स्म क्रमस्थितम् ॥१०८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवः कृतान्तोऽमा जटायुषा । रामं पप्रच्छ किं नाथ प्रेरिताः दिवसाः सुखम् ॥१०९॥

ऐसे पुरुषोत्तम राम, जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्माभिषेकके जलसे मेरुके समान कान्तिको प्राप्त हुए थे ॥९५॥ जिनकी आत्मा विशुद्ध थी तथा अभिप्राय कलुषतासे रहित था ऐसे राम उस समय तुषारकी वायुसे रहित कमल वनके समान आह्लादसे युक्त थे ॥९६॥ उस समय उन्हें ऐसा हर्ष हो रहा था मानो महान् गाढ़ अन्धकारमें भूला व्यक्ति सूर्यके उदयको प्राप्त होगया हो, अथवा तीव्र क्षुधासे पीड़ित व्यक्ति इच्छानुकूल उत्तम भोजनको प्राप्त हुआ हो ॥९७॥ अथवा तीव्र प्याससे ग्रस्त मनुष्य किसी महासरोवरको प्राप्त हुआ हो अथवा अत्यधिक रोगसे पीड़ित मनुष्य महौषधिको प्राप्त होगया हो ॥९८॥ अथवा महासागरको पार करनेके लिए इच्छुक मनुष्यको जहाज मिल गई हो अथवा कुमार्गमें पड़ा नागरिक सुमार्गमें आ गया हो ॥९९॥ अथवा अपने देशको जानेके लिए इच्छुक मनुष्य व्यापारियोंके किसी महासंघमें आ मिला हो अथवा कारा-गृहसे निकलनेके लिए इच्छुक मनुष्यका मजबूत अर्गल टूट गया हो ॥१००॥ जिन मार्गका स्मरण पाकर राम हर्षसे खिल उठे और फूले हुए कमलके समान नेत्रोंको धारण करते हुए परम कान्तिको धारण करने लगे ॥१०१॥ उन्होंने मनमें ऐसा विचार किया कि जैसे मैं अन्धकूपके मध्यसे निकल कर बाहर आया हूँ अथवा दूसरे ही भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥१०२॥ वे विचार करने लगे कि अहो, तृणके अग्रभागपर स्थित जलकी बूँदोंके समान चञ्चल यह मनुष्यका जीवन क्षणभरमें नष्ट हो जाता है ॥१०३॥ चतुर्गति रूप संसारके बीच भ्रमण करते हुए मैंने बड़ी कठिनाईसे मनुष्य-शरीर पाया है फिर व्यर्थ ही क्यों मूर्ख बन रहा हूँ ? ॥१०४॥ ये इष्ट स्त्रियाँ किसकी हैं ? ये धन, वैभव किसके हैं ? और ये भाई-बान्धव किसके हैं ? संसारमें ये सब सुलभ हैं परन्तु एक बोधि ही अत्यन्त दुर्लभ है ॥१०५॥

इस प्रकार श्री रामको प्रबुद्ध जान कर उक्त दोनों देवोंने अपनी माया समेट ली तथा लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाली देवोंकी विभूति प्रकट की ॥१०६॥ सुखकर स्पर्शसे सहित तथा सुगन्धिसे भरी हुई अपूर्व वायु बहने लगी और आकाश अत्यन्त सुन्दर वाहनों और विमानोंसे व्याप्त हो गया ॥१०७॥ देवाङ्गनाओं द्वारा वीणाके मधुर शब्दके साथ गाया हुआ अपना क्रम-पूर्ण चरित श्री रामने सुना ॥१०८॥ इसी बीचमें कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवके साथ

१. प्रालेयवास-म० । २. तनुकामो-म० । ३. श्रिताः म० । ४. विधि-म० ।

एवमुक्तो जगौ राजा पृच्छथः किं शिवं मम । तेषां सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः ॥११०॥
भवन्तावस्मि पृच्छामि कौ युवां सौम्यदर्शनौ । केन वा कारणेनेदं कृतमीदृग्विचेष्टितम् ॥१११॥
ततो जटायुर्देवोऽगादिति जानासि भूपते । गृध्रोऽरण्ये यदाशिष्ये शमिष्यामि मुनीक्षणात् ॥११२॥
लालयिष्ये च यत्तत्र भ्रात्रा देव्या सह त्वया । सीता हृता हनिष्ये च रावणेनाऽभियोगकृत् ॥११३॥
यच्च कर्णजपः शोकविह्वलेन त्वया प्रभो । दापिष्यते नमस्कारः पञ्चसत्पुरुषाश्रितः ॥११४॥
सोऽहं भवत्प्रसादेन समारोहं त्रिविष्टपम् । तथाविधं परित्यज्य दुःखं तिर्यग्भवोद्भवम् ॥११५॥
सुरसौख्यैर्महोदारै[1]र्मोहितेन मया गुरो । [2]अविज्ञेन हि न ज्ञाता तवासाता गतेयती ॥११६॥
अवसानेऽधुना देव त्वत्कर्मकृतचेतनः । किञ्चित्किल प्रतीकारं समनुष्ठातुमागतः ॥११७॥
ऊचे कृतान्तदेवोऽपि गत्वा किञ्चित् सुवेशताम् । सोऽहं नाथ कृतान्ताख्यः सेनानीरभवं तव ॥११८॥
स्मर्तव्योऽसि त्वया कृच्छ्रे इति युद्ध्योदितं त्वया । विधातुं तदहं स्वामिन् भवदन्तिकमागतः ॥११९॥
विलोक्य [3]वैबुधीमृद्धिं भूतभोगचरा जनाः । परमं विस्मयं प्राप्ता बभूवुर्विमलाशयाः ॥१२०॥
रामो जगाद सेनान्यमप्रमेयं सुरेशिनाम् । उद्धीसरतो भद्रौ प्रत्यनीकस्थितात्मनाम् ॥१२१॥
तौ युवामागतौ नाकान्मां प्रबोधयितुं सुरौ । महाप्रभावसम्पन्नावत्यन्तशुद्धमानसौ ॥१२२॥
इति सम्भाष्य तौ रामो निष्क्रान्तः शोकसङ्कटात् । सरयूरोधसंवृत्त्या लक्ष्मणं समिधीकरत् ॥१२३॥

मिलकर श्री रामसे पूछा कि हे नाथ ! क्या ये दिन सुखसे व्यतीत हुए ? देवोंके ऐसा पूछनेपर राजा रामचन्द्रने उत्तर दिया कि मेरा सुख क्या पूछते हो ? समस्त सुख तो उन्हींको प्राप्त है जो मुनि पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१०९-११०॥ मैं आपसे पूछता हूँ कि सौम्य दर्शन वाले आप दोनों कौन हैं ? और किस कारण आप लोगोंने ऐसी चेष्टा की ? ॥१११॥ तदनन्तर जटायुके जीव देवने कहा कि हे राजन् ! जानते हैं आप, जब मैं वनमें गीध था और मुनिराजके दर्शनसे शान्तिको प्राप्त हुआ था ॥११२॥ वहाँ आपने भाई लक्ष्मण और देवी—सीताके साथ मेरा लालन-पालन किया था। सीता हरी गई थी और उसमें मैं रुकावट डालनेवाला था अतः रावणके द्वारा मारा गया था ॥११३॥ हे प्रभो ! उस समय शोकसे विह्वल होकर आपने मेरे कानमें पञ्च परमेष्ठियोंसे सम्बन्ध रखने वाला पञ्च नमस्कार मन्त्रका जाप दिलाया था ॥११४॥ मैं वही जटायु, आपके प्रसादसे उस प्रकारके तिर्यञ्च गति सम्बन्धी दुःखका परित्याग कर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ था ॥११५॥ हे गुरो ! देवोंके अत्यन्त उदार महासुखोंसे मोहित होकर मुझ अज्ञानीने नहीं जाना कि आपपर इतनी विपत्ति आई है ॥११६॥ हे देव ! जब आपकी विपत्तिका अन्त आया तब आपके कर्मोदयने मुझे इस ओर ध्यान दिलाया और कुछ प्रतीकार करनेके लिए आया हूँ ॥११७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रका जीव भी कुछ अच्छा-सा वेष धारणकर बोला कि हे नाथ ! मैं आपका कृतान्तवक्त्र सेनापति था ॥११८॥ आपने कहा था कि 'कष्टके समय मेरा स्मरण रखना' सो हे स्वामिन् ! आपका वही आदेश बुद्धिगतकर आपके समीप आया हूँ ॥११९॥ उस समय देवोंकी उस ऋद्धिको देख भोगी मनुष्य परम आश्चर्यको प्राप्त होते हुए निर्मलचित्त हो गये ॥१२०॥ तदनन्तर रामने कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा देवोंके अधिपति जटायुके जीवोंसे कहा कि अहो भद्र पुरुषो ! तुम दोनों विपत्तिग्रस्त जीवोंका उद्धार करनेवाले हो ॥१२१॥ देखो, महाप्रभावसे सम्पन्न एवं अत्यन्त शुद्ध हृदयके धारक तुम दोनों देव मुझे प्रबुद्ध करनेके लिए स्वर्गसे यहाँ आये ॥१२२॥ इस प्रकार उन दोनोंसे वार्तालाप कर शोकरूपी संकटसे पार हुए रामने सरयू नदीके तटपर लक्ष्मणका दाह संस्कार किया ॥१२३॥

१. मदोदारै-म० । २. ज्ञानेनावधिना ज्ञात्वाऽसाताऽऽगतेदृशी म० । ३. देवसम्बन्धिनीं ।

परं विबुद्धभावश्च विषादपरिवर्जितः । जगाद धर्ममर्यादापालनार्थमिदं वचः ॥१२४॥

उपजातिः

शत्रुघ्न राज्यं कुरु मर्त्यलोके तपोवनं सम्प्रविशाम्यहं तु ।
सर्वस्पृहादूरितमानसात्मा पदं समाराधयितुं जिनानाम् ॥१२५॥
रागादहं नो खलु भोगलुब्धः मनस्तु निःसङ्गसमाधिराज्ये ।
समाश्रयिष्यामि सदैव देव त्वया समं नास्ति गतिर्ममान्या ॥१२६॥
कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु सम्बन्धिषु बान्धवेषु ।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्नृरवे भवेऽस्मिन् ॥१२७॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते लक्ष्मणसंस्कारकरणं कल्याणमित्रदेवाभिगमाभिधानं नामाष्टादशोत्तरशतं पर्व ॥११८॥

तदनन्तर वैराग्यपूर्ण हृदयके धारक विषादरहित रामने धर्म-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले निम्नाङ्कित वचन शत्रुघ्नसे कहे ॥१२४॥ उन्होंने कहा कि हे शत्रुघ्न ! तुम मनुष्यलोकका राज्य करो। सब प्रकारकी इच्छाओंसे जिसका मन और आत्मा दूर हो गई है ऐसा मैं मुक्ति पदकी आराधना करनेके लिए तपोवनमें प्रवेश करता हूँ ॥१२५॥ इसके उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा कि देव ! मैं रागके कारण भोगोंमें लुब्ध नहीं हूँ। मेरा मन निर्ग्रन्थ समाधिरूपी राज्यमें लग रहा है इसलिए मैं आपके साथ उसी निर्ग्रन्थ समाधि रूप राज्यको प्राप्त करूँगा। इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नहीं है ॥१२६॥ हे नरसूर्य ! इस संसारमें मनको हरण करनेवाले कामोपभोगोंमें, मित्रोंमें, सम्बन्धियोंमें, भाई-बान्धवोंमें, अभीष्ट वस्तुओंमें तथा स्वयं अपने आपके जीवनमें किसे तृप्ति हुई है ? ॥१२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें लक्ष्मणके संस्कारका वर्णन करनेवाला एक सौ अठारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११८॥

एकोनविंशोत्तरशतं पर्व

ततस्तस्य वचनं श्रुत्वा हितमत्यन्तनिश्चितम् । मनसा क्षणमालोच्य सर्वकर्तव्यदक्षिणम् ॥१॥
विलोक्याऽऽसीनमासन्नमनङ्गलवणात्मजम् । क्षितीश्वरपदं तस्मै ददौ स परमर्द्धिकम् ॥२॥
[1]अनन्तलवणः सोऽपि पितृतुल्यगुणक्रियः । प्रणताऽखिलसामन्तो जातः कुलधुरावहः ॥३॥
परं प्रतिष्ठितः सोऽयमनुरागप्रतापवान्[2] । [3]धरणीमङ्गलं सर्वमापच्च विजयो यथा ॥४॥
सुभूषणाय पुत्राय लङ्काराज्यं विभीषणः । सुग्रीवोऽपि निजं राज्यमङ्गदाङ्गभुवे ददौ ॥५॥
ततो दाशरथी रामः सविषान्नमिवेक्षितम् । कलत्रमिव चागस्वि[4] राज्यं भरतवज्जहौ ॥६॥
एकं निःश्रेयसस्याङ्गं देवासुरनमस्कृतम् । साधकैर्मुनिभिर्जुष्टं सममानगुणोदितम् ॥७॥
जन्ममृत्युपरित्रस्तः श्लथकर्मकलङ्कभृत् । विधिमार्गं वृणोति स्म मुनिसुव्रतदेशितम् ।८॥
बोधिं सम्प्राप्य काकुत्स्थः क्लेशभावविनिर्गतः । अदीपिष्टाधिकं मेघव्रजनिःसृतभानुवत् ॥९॥
अथार्हद्दासनामानं श्रेष्ठिनं द्रष्टुमागतम् । कुशलं सर्वसङ्घस्य पप्रच्छेह सदः[5]स्थितः ॥१०॥
उवाच स महाराज व्यसनेन तवाऽमुना । व्यथनं परमं प्राप्ता यतयोऽपि महीतले ॥११॥
अवबुध्य विबन्धात्मा किल व्योमचरो मुनिः । सुव्रतो भगवान् प्राप मुनिसुव्रतवंशभृत् ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुघ्नके हितकारी और दृढ़ निश्चयपूर्ण वचन सुनकर राम क्षणभरके लिए विचारमें पड़ गये । तदनन्तर मनसे विचार कर अनङ्गलवणके पुत्रको समीपमें बैठा देख उन्होंने उसीके लिए परम ऋद्धिसे युक्त राज्यपद प्रदान किया ॥१-२॥ जो पिताके समान गुण और क्रियाओंसे युक्त था, तथा जिसे समस्त सामन्त प्रणाम करते थे ऐसा वह अनन्तलवण भी कुलका भार उठानेवाला हुआ ॥३॥ परम प्रतिष्ठाको प्राप्त एवं उत्कट अनुराग और प्रतापको धारण करनेवाले अनन्तलवणने विजय बलभद्रके समान पृथिवीतलके समस्त मङ्गल प्राप्त किये ॥४॥ विभीषणने लंकाका राज्य अपने पुत्र सुभूषणके लिए दिया और सुग्रीवने भी अपना राज्य अङ्गदके पुत्रके लिए प्रदान किया ॥५॥

तदनन्तर जिस प्रकार पहले भरतने राज्य छोड़ दिया था उसी प्रकार रामने राज्यको विष मिले अन्नके समान अथवा अपराधी स्त्रीके समान देखकर छोड़ दिया ॥६॥ जो जन्म-मरणसे भयभीत थे तथा जो शिथिलीभूत कर्म कलङ्कको धारणकर रहे थे ऐसे श्रीरामने भगवान् मुनि-सुव्रतनाथके द्वारा प्रदर्शित आत्म-कल्याणका एक वही मार्ग चुना जो कि मोक्षका कारण था, सुर-असुरोंके द्वारा नमस्कृत था, साधक मुनियोंके द्वारा सेवित था तथा जिसमें माध्यस्थ्य भाव रूप गुणका उदय होता था ॥७-८॥ बोधिको पाकर क्लेश भावसे निकले राम, मेघ-मण्डलसे निर्गत सूर्यके समान अत्यधिक देदीप्यमान हो रहे थे ॥९॥

अथानन्तर राम सभामें विराजमान थे उसी समय अर्हद्दास नामका एक सेठ उनके दर्शन करनेके लिए आया था, सो रामने उससे समस्त मुनिसंघकी कुशल पूछी ॥१०॥ सेठने उत्तर दिया कि हे महाराज ! आपके इस कष्टसे पृथिवीतलपर मुनि भी परम व्यथाको प्राप्त हुए हैं ॥११॥ उसी समय मुनिसुव्रत भगवान्‌की वंश-परम्पराको धारण करनेवाले निर्बन्ध आत्माके धारक, आकाशगामी भगवान् सुव्रत नामक मुनि रामकी दशा जान वहाँ आये ॥१२॥

---

१. अनंगलवणः म० । २. अनुरागं प्रतापवान् म०, क० । ३. धरणीमण्डले सर्वे सावथं विजयो यथा म०, क० । धरणीमण्डले सर्वे स्युरर्व्वविजया यथा ज० । ४. सापराधं । ५. सदःस्थितम् म० ।

इति श्रुत्वा महामोदप्रजातपुलकोद्गमः । विस्तारिलोचनः श्रीमान् सम्प्राप्तस्तेऽन्तिकं यतेः ॥१३॥
भूखेचरमहाराजैः सेव्यमानो महोदयः । विजयः[1] स्वर्णकुम्भं वा सुभक्तियुतमागमत् ॥१४॥
गुणप्रवरनिर्ग्रन्थसहस्रकृतपूजनम् । प्रणनामोपसृत्यैव शिरसा रचिताञ्जलिः ॥१५॥
दृष्ट्वा स तं महात्मानं मुक्तिकारणमुत्तमम् । अज्ञे निमग्नमात्मानममृतस्येव सागरे ॥१६॥
अविधं महिमानं च परं श्रद्धातिपूरितः । पूर्वं यथा महापद्मः सुव्रतस्यैव योगिनः ॥१७॥
सर्वादरार्थितात्मानो[2] विद्याधरगणा अपि । ध्वजतोरणतूर्यार्घसङ्गीत[3]र्व्यधुः परम् ॥१८॥
त्रियामायामतीतायां भास्करेऽभिनिवेदिते । प्रणम्य राघवः साधून् वव्रे निर्ग्रन्थदीक्षणम् ॥१९॥
निर्धूतकल्मषस्त्यक्तरागद्वेषो यथाविधि । प्रसादात्तव योगीन्द्र विहर्तु[4] महमुन्मनाः ॥२०॥
अवोचत गणाधीशः परमं नृप साम्प्रतम् । किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसादिना ॥२१॥
सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम् । मनीषितं परं युक्तं जिनधर्मं वगाहितुम् ॥२२॥
एवं प्रभाषिते साधौ विरागी भववस्तुनि । दत्तं प्रदक्षिणं चक्रे [4]मुनेर्मेरौ यथा रविः ॥२३॥
समुत्पन्नमहाबोधिः महासंवेगकङ्कटः । बद्धकक्षो महाधृत्या कर्माणि क्षपणोद्यतः ॥२४॥
आशापाशं समुच्छिद्य निर्दह्य स्नेहपञ्जरम् । भित्त्वा [5]कलत्रहिञ्जीरं मोहदर्पं निहत्य च ॥२५॥

मुनि आये हैं यह सुन अत्यधिक हर्षके कारण जिन्हें रोमाञ्च निकल आये थे तथा जिनके नेत्र फूल गये थे ऐसे श्रीराम मुनिके समीप गये ॥१३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिस प्रकार पहले विजय बलभद्र स्वर्ण कुम्भ नामक मुनिराज के समीप गये थे उसी प्रकार भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओंके द्वारा सेवित एवं महाभ्युदयके धारक राम सुभक्तिके साथ सुव्रत मुनिके पास पहुँचे। गुणोंके श्रेष्ठ हजारों निर्ग्रन्थ जिनकी पूजा कर रहे थे ऐसे उन मुनिके पास जाकर रामने हाथ जोड़ शिरसे नमस्कार किया ॥१४-१५॥ मुक्तिके कारणभूत उन उत्तम महात्माके दर्शन कर रामने अपने आपको ऐसा जाना मानो अमृतके सागरमें ही निमग्न होगया होऊँ ॥१६॥ जिस प्रकार पहले महापद्म चक्रवर्तीने मुनिसुव्रत भगवान् की परम महिमा की थी उसी प्रकार श्रद्धासे भरे श्रीमान् रामने उन सुव्रत नामक मुनिराजकी परम महिमा की ॥१७॥ सब प्रकारके आदर करनेमें योग देने वाले विद्याधरोंने भी ध्वजा तोरण अर्घदान तथा संगीत आदिकी उत्कृष्ट व्यवस्था की थी ॥१८॥

तदनन्तर रात व्यतीत होनेपर जब सूर्योदय हो चुका तब रामने मुनियोंको नमस्कार कर निर्ग्रन्थ दीक्षा देनेकी प्रार्थना की ॥१९॥ उन्होंने कहा कि हे योगिराज ! जिसके समस्त पाप दूर होगये हैं तथा राग-द्वेषका परिहार हो चुका है ऐसा मैं आपके प्रसादसे विधिपूर्वक विहार करनेके लिए उत्कण्ठित हूँ ॥२०॥ इसके उत्तरमें मुनिसंघके स्वामीने कहा कि हे राजन् ! तुमने बहुत अच्छा विचार किया, विनाशसे नष्ट हो जाने वाले इस समस्त परिकरसे क्या प्रयोजन है ? ॥२१॥ सनातन, निराबाध तथा उत्तम अतिशयसे युक्त सुखको देने वाले जिनधर्ममें अवगाहन करनेकी जो तुम्हारी भावना है वह बहुत उत्तम है ॥२२॥ मुनिराजके इस प्रकार कहनेपर संसारकी वस्तुओंमें विराग रखनेवाले रामने उन्हें उस प्रकार प्रदक्षिणा दी जिस प्रकार कि सूर्य सुमेरु पर्वतकी देता है ॥२३॥ जिन्हें महाबोधि उत्पन्न हुई थी, जो महासंवेग रूपी कवचको धारण कर रहे थे और जो कमर कसकर बड़े धैर्यके साथ कर्मोंका क्षय करनेके लिए उद्यत हुए थे ऐसे श्री राम आशारूपी पाशको छोड़कर, स्नेहरूपी पिजड़ेको जलाकर, स्त्री रूपी सांकलको तोड़कर, मोहका घमण्ड चूरकर, और आहार, कुण्डल, मुकुट तथा वस्त्रको

---

१. विजयनामा प्रथमबलभद्रो यथा स्वर्णकुम्भमुनेः पार्श्वं जगाम तथेति भावः। २. सर्वदारार्थितात्मानो म० । ३. संगीताविव्यधुः परम् म०, संगीताद्विर्व्यधुः परम् ब०, ख० । ४. मुनि-म० । ५. स्त्रीश्रृङ्खलाम् ।

आहारं कुण्डलं मौक्तिमपनीयाम्बरं तथा । परमार्थार्पितस्वान्तस्तनुकम्ममलावलिः ॥२६॥
श्वेताब्जसुकुमाराभिरङ्गुलीभिः शिरोरुहान् । निरावकार काकुत्स्थः पर्यङ्कासनमास्थितः ॥२७॥
रराज सुतरां रामस्त्यक्ताशेषपरिग्रहः । [1]सैंहिकेयविनिर्मुक्तो [2]हंसमण्डलविभ्रमः ॥२८॥
शीलव्रतनिलयीभूतो गुप्तो गुप्त्याऽभिरूपया । पञ्चकं समितेः प्राप्तः पञ्चसर्वव्रतं श्रितः ॥२९॥
षड्जीवकायरक्षस्थो दण्डत्रितयसूदनः । सप्तभीतिविनिर्मुक्तः षोडशाष्टमदार्दनः ॥३०॥
श्रीवत्सभूषितोरस्को गुणभूषणमानसः । जातः सुश्रमणः पद्मो मुक्तितत्त्वविधौ दृढः ॥३१॥
अदृष्टविग्रहैर्देवैराजघ्ने सुरदुन्दुभिः । दिव्यप्रसूनवृष्टिश्च विविक्तैर्भक्तितत्परैः ॥३२॥
निष्क्रामति तदा रामे गृहिभावोरुकल्मषात् । चक्रे कल्याणमित्राभ्यां देवाभ्यां परमोत्सवः ॥३३॥
भूदेवे तत्र निष्क्रान्ते सनृपा भूविचराः । चिन्तान्तरमिदं जग्मुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३४॥
विभूतिरत्नमीदृक्षं यत्र त्यक्त्वाऽतिदुस्त्यजम् । देवैरपि [3]कृतस्वार्थो रामदेवोऽभवन्मुनिः ॥३५॥
तत्रास्माकं परित्याज्यं किमिवास्ति प्रलोभकम् । तिष्ठामः केवलं येन व्रतेच्छाविकलात्मकाः ॥३६॥
एवमादि परिध्याय कृत्वान्तःपरिदेवनम् । संवेगिनो [4]निराक्रान्ता बहवो गृहबन्धनात् ॥३७॥
छित्त्वा रागमयं पाशं निहत्य द्वेषवैरिणम् । सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः शत्रुघ्नः श्रमणोऽभवत् ॥३८॥
विभीषणोऽथ सुग्रीवो नीलश्चन्द्रनखो नलः । क्रव्यो विराधिताद्याश्च निरीयुः खेचरेश्वराः ॥३९॥
विद्याभृतां परित्यज्य विद्यां प्राव्राज्यमीयुषाम् । केषाञ्चिच्चारणी लब्धिर्भूयोजन्माऽभवत्पुनः ॥४०॥

छोड़कर पर्यङ्कासनसे विराजमान होगये । उनका हृदय परमार्थके चिन्तनमें लग रहा था, उनके शरीरपर मलका पुञ्ज लग रहा था, और उन्होंने श्वेत कमलके समान सुकुमार अंगुलियोंके द्वारा शिरके बाल उखाड़ कर फेंक दिये थे ॥२४-२७॥ जिनका सब परिग्रह छूट गया था ऐसे राम उस समय राहुके चङ्गुलसे छूटे हुए सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२८॥ जो शीलव्रतके घर थे, उत्तम गुप्तियोंसे सुरक्षित थे , पञ्च समितियोंको प्राप्त थे और पाँच महाव्रतोंकी सेवा करते थे ॥२९॥ छह कामके जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर थे, मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति रूप तीन प्रकारके दण्डको नष्ट करने वाले थे, सप्त भयसे रहित थे, आठ प्रकारके मदको नष्ट करने वाले थे ॥३०॥ जिनका वक्षस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे अलंकृत था, गुणरूपी आभूषणोंके धारण करनेमें जिनका मन लगा था और जो मुक्तिरूपी तत्त्वके प्राप्त करनेमें सुदृढ़ थे ऐसे राम उत्तम श्रमण होगये ॥३१॥ जिनका शरीर दिख नहीं रहा था ऐसे देवोंने देवदुन्दुभि बजाई, तथा भक्ति प्रकट करनेमें तत्पर पवित्र भावनाके धारक देवोंने दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की ॥३२॥ उस समय श्री रामके गृहस्थावस्था रूपी महापापसे निष्क्रान्त होनेपर कल्याणकारी मित्र— कृतान्तवक्त्र और जटायुके जीवरूप देवोंने महान् उत्सव किया ॥३३॥ वहाँ श्री रामके दीक्षित होनेपर राजाओं सहित समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर आश्चर्यसे चकितचित्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि देवोंने भी जिनका कल्याण किया ऐसे राम देव जहाँ इस प्रकारकी दुस्त्यज विभूतिको छोड़कर मुनि हो गये वहाँ हम लोगोंके पास छोड़नेके योग्य प्रलोभन है ही क्या ? जिसके कारण हम व्रतकी इच्छासे रहित हैं ॥३४-३६॥ इस प्रकार विचारकर तथा हृदयमें अपनी आसक्तिपर दुःख प्रकटकर संवेगसे भरे अनेकों लोग घरके बन्धनसे निकल भागे ॥३७॥

शत्रुघ्न भी रागरूपी पाशको छेदकर, द्वेषरूपी वैरीको नष्टकर तथा समस्त परिग्रहसे निर्मुक्त हो श्रमण हो गया ॥३८॥ तदनन्तर विभीषण, सुग्रीव, नील, चन्द्रनख, नल, क्रव्य तथा विराधित आदि अनेक विद्याधर राजा भी बाहर निकले ॥३९॥ जिन विद्याधरोंने विद्याका परि-

---

१. राहुविनिर्मुक्तः । २. सूर्यमण्डलविभ्रमः । ३. स्वार्थैः म० । ४. निर्गताः ।

एवं श्रीमति निष्क्रान्ते रामे जातानि षोडश । श्रमणानां सहस्राणि साधिकानि महीपते ॥४१॥
सप्तविंशतिसहस्राणि प्रधानवरयोषिताम् । श्रीमतीश्रमणीपार्श्वे बभूवुः परमार्यिकाः ॥४२॥
अथ पद्माभनिर्ग्रन्थो गुरोः प्राप्यानुमोदनम् । एकाकी विहतद्वन्द्वो विहारं प्रतिपन्नवान् ॥४३॥
गिरिगह्वरदेशेषु भीमेषु क्षुब्धचेतसाम् । क्रूरश्वापदशब्देषु रात्रौ वासमसेवत ॥४४॥
गृहीतोत्तमयोगस्य विधिसद्भावसङ्गिनः । तस्यामेवास्य शर्वर्यामवधिज्ञानमुद्गतम् ॥४५॥
आलोकत यथाऽवस्थं रूपि येनाखिलं जगत् । यथा पाणितलन्यस्तं विमलं स्फटिकोपलम् ॥४६॥
ततो विदितमेतेनापरतो लक्ष्मणो यथा । विक्रियां तु मनो नास्य गतं विच्छिन्नबन्धनम् ॥४७॥
समा शतं कुमारत्वे मण्डलित्वे शतत्रयम् । चत्वारिंशच्च विजये यस्य संवत्सरा मताः ॥४८॥
एकादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च । अब्दानां षष्टिरन्या च साम्राज्यं येन सेवितम् ॥४९॥
योऽसौ वर्षसहस्राणि प्राप्य द्वादश [1]भोगिताम् । ऊनानि पञ्चविंशत्या वितृप्तिरवरं गतः ॥५०॥
देवयोस्तत्र नो [2]दोषः सर्वाकारेण विद्यते । तथा हि प्राप्तकालोऽयं भ्रातृमृत्व्यपदेशतः ॥५१॥
अनेकं मम तस्यापि विविधं जन्म तद्गतम् । वसुदत्तादिकं मोहपरायत्तितचेतसः ॥५२॥
एवं सर्वमतिक्रान्तमज्ञासीत् पद्मसंयतः । धैर्यमत्युत्तमं बिभ्रद्व्रतशीलधराधरः ॥५३॥
परया लेश्यया युक्तो गम्भीरो गुणसागरः । बभूव स महाचेताः सिद्धिलक्ष्मीपरायणः ॥५४॥
युष्मानपि वदाम्यस्मिन् सर्वानिह समागतान् । रमध्वं तत्र सन्मार्गे रतो यत्र रघूत्तमः ॥५५॥

त्यागकर दीक्षा धारण की थी उनमेंसे कितने ही लोगोंको पुनः चारणऋद्धि उत्पन्न हो गई थी ॥४०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय रामके दीक्षा लेनेपर कुछ अधिक सोलह हजार साधु हुए और सत्ताईस हजार प्रमुख प्रमुख स्त्रियाँ श्रीमती नामक साध्वीके पास आर्यिका हुईं ॥४१-४२॥

अथानन्तर गुरुकी आज्ञा पाकर श्रीराम निर्ग्रन्थ मुनि, सुख-दुःखादिके द्वन्द्वको दूरकर एकाकी विहारको प्राप्त हुए ॥४३॥ वे रात्रिके समय पहाड़ोंकी उन गुफाओंमें निवास करते थे जो चञ्चल चित्त मनुष्योंके लिए भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जहाँ क्रूर हिंसक जन्तुओंके शब्द व्याप्त हो रहे थे ॥४४॥ उत्तम योगके धारक एवं योग्य विधिका पालन करनेवाले उन मुनिको उसी रातमें अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥४५॥ उस अवधिज्ञानके प्रभावसे वे समस्त रूपी जगत्को हथेलीपर रखे हुए निर्मल स्फटिकके समान ज्यों-का-त्यों देखने लगे ॥४६॥ उस अवधिज्ञानके द्वारा उन्होंने यह भी जान लिया कि लक्ष्मण परभवमें कहाँ गया परन्तु यतश्च उनका मन सब प्रकारके बन्धन तोड़ चुका था इसलिए विकारको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ वे सोचने लगे कि देखो, जिसके सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्थामें और चालीस वर्ष दिग्विजयमें व्यतीत हुए ॥४८॥ जिसने ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष तक साम्राज्य पदका सेवन किया ॥४९॥ और जिसने पच्चीस कम बारह हजार वर्ष भोगीपना प्राप्तकर व्यतीत किये वह लक्ष्मण अन्तमें भोगोंसे तृप्त न होकर नीचे गया ॥५०॥ लक्ष्मणके मरणमें उन दोनों देवोंका कोई दोष नहीं है, यथार्थमें भाईकी मृत्युके बहाने उसका वह काल ही आ पहुँचा था ॥५१॥ जिसका चित्त मोहके आधीन था ऐसे मेरे तथा उसके वसुदत्तको आदि लेकर अनेक प्रकारके नाना जन्म साथ-साथ बीत चुके हैं ॥५२॥ इस प्रकार व्रत और शीलके पर्वत तथा उत्तम धैर्यको धारण करनेवाले पद्ममुनिने समस्त बीती बात जान ली ॥५३॥ वे पद्ममुनि उत्तम लेश्यासे युक्त, गम्भीर, गुणोंके सागर, उदार हृदय एवं मुक्ति रूपी लक्ष्मीके प्राप्त करनेमें तत्पर थे ॥५४॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैं यहाँ आये हुए तुम सब लोगोंसे भी कहता हूँ कि तुम लोग

---

१. योगिताम् म० । २. द्वेषः म० ।

जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतत्पराः । जना बिभ्रति सर्व्यार्थं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ॥५६॥
जिनाक्षरमहारत्ननिधानं प्राप्य भो जनाः । कुलिङ्गसमयं सर्वं परित्यजत दुःखदम् ॥५७॥
कुग्रन्थैर्मोहितात्मानः सदम्भकलुषक्रियाः । जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यतः ॥५८॥
[1]नानोपकरणं दृष्ट्वा साधनं शक्तिवर्जिताः । निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखराः परे ॥५९॥
व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यैः पुरस्कृताः । प्रखिन्नतनवो भारं वहन्ति मृतका इव ॥६०॥

आर्यागीतिः

ऋषयस्ते खलु येषां परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धिः ।
तस्मात्ते निर्ग्रन्थाः साधुगुणैरन्विता बुधैः संसेव्याः ॥६१॥
श्रुत्वा बलदेवस्य त्यक्त्वा भोगं परं विमुक्तिग्रहणम् ।
भवत भवभावशिथिला व्यसनरवेस्तापमाप्नुत न पुनर्यत्नात् ॥६२॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाऽऽचार्यप्रणीते बलदेवनिष्क्रमणाभिधानं नाम एकोनविंशोत्तरशतं पर्व ॥११९॥

उसी मार्गमें रमण करो जिसमें कि रघूत्तम—राममुनि रमण करते थे ॥५५॥ जिन-शासनमें शक्ति और भक्तिपूर्वक प्रवृत्त रहनेवाले मनुष्य, जिस समस्त प्रयोजनकी प्राप्ति होती है ऐसे मुक्तिपदके निकटवर्ती जन्मको प्राप्त होते हैं ॥५६॥ हे भव्य जनो ! तुम सब जिनवाणी रूपी महारत्नोंके खजानेको पाकर कुलिङ्गियोंके दुःखदायी समस्त शास्त्रोंका परित्याग करो ॥५७॥ जिनकी आत्मा खोटे शास्त्रोंसे मोहित हो रही है तथा जो कपट सहित कलुषित क्रिया करते हैं ऐसे मनुष्य जन्मान्धोंकी तरह कल्याण मार्गको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं ॥५८॥ कितने ही शक्तिहीन बकवादी मनुष्य नाना उपकरणोंको साधन समझ 'इनके ग्रहणमें दोष नहीं है' ऐसा कहकर उन्हें ग्रहण करते हैं सो वे कुलिङ्गी हैं । मूर्ख मनुष्य उन्हें व्यर्थ ही आगे करते हैं वे खिन्न शरीर होते हुए बोझा ढोनेवालोंके समान भारको धारण करते हैं ॥५९-६०॥ वास्तवमें ऋषि वे ही हैं जिनकी परिग्रहमें और उसकी याचनामें बुद्धि नहीं है । इसलिए उत्तम गुणोंके धारक निर्मल निर्ग्रन्थ साधुओंकी ही विद्वज्जनोंकी सेवा करनी चाहिए । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे भव्य-जनो ! इस तरह बलदेवका चरित सुनकर तथा संसारके कारणभूत समस्त उत्तम भोगोंका त्याग-कर यत्नपूर्वक संसारवर्धक भावोंसे शिथिल होओ जिससे फिर कष्टरूपी सूर्यके संतापको प्राप्त न हो सको ॥६१-६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें बलदेवकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एकसौ उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११९॥

---

१. नानोपकरणा म०, ज० ।

विंशोत्तरशतं पर्व

एवमादीन् गुणान् राजन् बलदेवस्य योगिनः । धरणोऽप्यक्षमो वक्तुं जिह्वाकोटिविकारगः ॥१॥
उपोष्य द्वादशं सोऽथ धीरो विधिसमन्वितः । नन्दस्थलीं पुरीं भेजे पारणार्थं महातपाः ॥२॥
तरुणं [1]तरणिं दीप्त्या द्वितीयमिव भूधरम् । अन्यं दाक्षायणीनाथमगम्यमिव भास्वतः ॥३॥
शीध्रस्फटिकसंशुद्धहृदयं पुरुषोत्तमम् । मूर्त्येव सङ्गतं धर्ममनुरागं त्रिलोकगम् ॥४॥
आनन्दमिव सर्वेषां गत्वैकत्वमिव स्थितम् । महाकान्तिप्रवाहेण प्लावयन्तमिव क्षितिम् ॥५॥
धवलाम्भोजखण्डानां पूरयन्तमिवाम्बरम् । तं वीक्ष्य नगरीलोकः समस्तः क्षोभमागतः ॥६॥
अहो चित्रमहो चित्रं भो भो पश्यत पश्यत । अदृष्टपूर्वमीदृक्षमाकारं भुवनातिगम् ॥७॥
अयं कोऽपि महोक्षेति आयातीह सुसुन्दरः । प्रलम्बदोर्युगः श्रीमानपूर्वनरमन्दरः ॥८॥
अहो धैर्यमहो सत्त्वमहो रूपमहो द्युतिः । अहो कान्तिरहो शान्तिरहो मुक्तिरहो गतिः ॥९॥
कोऽयमीदृक्कुतः कस्मिन् समभ्येति मनोहरः । युगान्तरस्थिरन्यस्तशान्तदृष्टिः समाहितः ॥१०॥
उदारपुण्यमेतेन कतरन्मण्डितं कुलम् । कुर्यादनुग्रहं कस्य गृह्णानोऽन्नं सुकर्मणः ॥११॥
सुरेन्द्रसदृशं रूपं कुतोऽत्र भुवने परम् । अक्षोभ्यसत्त्वशैलोऽयं रामः पुरुषसत्तमः ॥१२॥
एतैत चेतसो दृष्टेर्जन्मनः कर्मणो मतेः । कुरुध्वं चरितार्थत्वं देहस्य चरितस्य च ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस तरह योगी बलदेवके गुणोंका वर्णन करनेके लिए एक करोड़ जिह्वाओंकी विक्रिया करनेवाला धरणेन्द्र भी समर्थ नहीं है ॥१॥ तदनन्तर पाँच दिनका उपवासकर धीर वीर महातपस्वी योगी राम पारणा करनेके लिए विधिपूर्वक—ईर्यासमितिसे चार हाथ पृथिवी देखते हुए नन्दस्थली नगरीमें गये ॥२॥ वे राम अपनी दीप्तिसे ऐसे जान पड़ते थे मानो तरुण सूर्य ही हों, स्थिरतासे ऐसे लगते थे मानो दूसरा पर्वत ही हों, शान्त स्वभावके कारण ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्यके अगम्य दूसरा चन्द्रमा ही हों, उनका हृदय धवल स्फटिकके समान शुद्ध था, वे पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे, ऐसे जान पड़ते थे मानो मूर्तिधारी धर्म ही हों, अथवा तीन लोकके जीवोंका अनुराग ही हों, अथवा सब जीवोंका आनन्द एकरूपताको प्राप्त होकर स्थिति हुआ हो, वे महाकान्तिके प्रवाहसे पृथिवीको तर कर रहे थे, और आकाशको सफेद कमलोंके समूहसे पूर्ण कर रहे थे । ऐसे श्रीरामको देख नगरीके समस्त लोग क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३-६॥ लोग परस्पर कहने लगे कि अहो ! आश्चर्य देखो, अहो आश्चर्य देखो जो पहले कभी देखनेमें नहीं आया ऐसा यह लोकोत्तर आकार देखो ॥७॥ यह कोई अत्यन्त सुन्दर महावृषभ यहाँ आ रहा है, अथवा जिसकी दोनों लम्बी भुजाएँ नीचे लटक रही हैं ऐसा यह कोई अद्भुत मनुष्य रूपी मंदराचल है ॥८॥ अहो, इनका धैर्य धन्य है, सत्त्व-पराक्रम धन्य है, रूप धन्य है, कान्ति धन्य है, शान्ति धन्य है, मुक्ति धन्य है. और गति धन्य है ॥९॥ जो एक युग प्रमाण अन्तरपर बड़ी सावधानीसे अपनी शान्तदृष्टि रखता है ऐसा यह कौन मनोहर पुरुष यहाँ कहाँसे आ रहा है ॥१०॥ उदार पुण्यको प्राप्त हुए इसके द्वारा कौनसा कुल मण्डित हुआ है—यह किस कुलका अलंकार है ? और आहार ग्रहणकर किसपर अनुग्रह करता है ? ॥११॥ इस संसारमें इन्द्रके समान ऐसा दूसरा रूप कहाँ हो सकता है ? अरे ! जिनका पराक्रम रूपी पर्वत क्षोभ रहित है ऐसे ये पुरुषोत्तम राम हैं ॥१२॥ आओ आओ

---

१. तरणिर्दीप्त्या म० ।

इतिदर्शनसक्तानां पौराणां पृथुविस्मयः । समाकुलः समुत्तस्थौ रमणीयः परं ध्वनिः ॥१४॥
प्रविष्टे नगरीं रामे यथासमयचेष्टितैः । नारीपुरुषसङ्घातै रथ्याः मार्गाः प्रपूरिताः ॥१५॥
विचित्रभक्ष्यसम्पूर्णपात्रहस्ताः समुत्सुकाः । प्रवराः प्रमदास्तस्थुः गृहीतकरकाम्भसः ॥१६॥
दृढं परिकरं बद्ध्वा मनोज्ञजलपूरितम् । आदाय कलशं पूर्णमाजग्मुर्बहवो नराः ॥१७॥
इतः स्वामिन्नितः स्वामिन् स्थीयतामिह सन्मुने । प्रसादाद्भूयतामत्र विचेरुरिति सद्गिरः ॥१८॥
अमाति हृदये हर्षे हृष्टदेहरुहोऽपरे । उत्कृष्टक्ष्वेडितास्फोटसिंहनादानजीजनन् ॥१९॥
मुनीन्द्र जय वर्द्धस्व नन्द पुण्यमहीधर । एवं च पुनरुक्ताभिर्वाग्भिरापूरितं नभः ॥२०॥
अमत्रमानय क्षिप्रं स्थालमालोकय द्रुतम् । जाम्बूनदमयीं पात्रीमविलम्बितमाहर ॥२१॥
क्षीरमानीयतामिक्षुः सन्निधीक्रियतां दधि । राजते भाजने भव्ये लघु स्थापय पायसम् ॥२२॥
शर्करां कर्करां कर्कामरं कुरु करण्डके । कर्पूरपूरितां क्षिप्रं पूरकापटलं नय ॥२३॥
रसालां कलशे सारां तरसा विधिवद्धिते । मोदकान् परमोदारान् प्रमोदादेहि दक्षिणे ॥२४॥
एवमादिभिरालापैराकुलैः कुलयोषिताम् । पुरुषाणां च तन्मध्ये पुरमासीत्तदात्मकम् ॥२५॥
अतिपात्यपि नो कार्यं मन्यते, नार्भका अपि । आलोक्यन्ते तदा तत्र सुमहासम्भ्रमैर्जनैः ॥२६॥
वेगिभिः पुरुषैः कैश्चिदागच्छद्भिः सुसङ्कटे । पात्यन्ते विशिखामार्गे जना भाजनपाणयः ॥२७॥
एवमत्युन्नतस्वान्तं कृतसम्भ्रान्तचेष्टितम् । उन्मत्तमिव संवृत्तं नगरं तत्समन्ततः ॥२८॥
कोलाहलेन लोकस्य यतस्तेन च तेजसा । आलानविपुलस्तम्भान् बभञ्जुः कुञ्जरा अपि ॥२९॥

इन्हें देखकर अपने चित्त, दृष्टि, जन्म, कर्म, बुद्धि, शरीर और चरितको सार्थक करो। इस प्रकार श्रीरामके दर्शनमें लगे हुए नगरवासी लोगोंका बहुत भारी आश्चर्यसे भरा सुन्दर कोलाहल-पूर्ण शब्द उठ खड़ा हुआ ॥१३-१४॥

तदनन्तर नगरीमें रामके प्रवेश करते ही समयानुकूल चेष्टा करनेवाले नर-नारियोंके समूहसे नगरके लम्बे-चौड़े मार्ग भर गये ॥१५॥ नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे परिपूर्ण पात्र जिनके हाथमें थे तथा जो जलकी झारी धारण कर रही थी ऐसी उत्सुकतासे भरी अनेक उत्तम स्त्रियाँ खड़ी हो गईं ॥१६॥ अनेकों मनुष्य पूर्ण तैयारीके साथ मनोज्ञ जलसे भरे पूर्ण कलश ले-लेकर आ पहुँचे ॥१७॥ 'हे स्वामिन्! यहाँ आइए, हे स्वामिन्! यहाँ ठहरिए, हे मुनिराज! प्रसन्नतापूर्वक यहाँ विराजिए' इत्यादि उत्तमोत्तम शब्द चारों ओर फैल गये ॥१८॥ हृदयमें हर्षके नहीं समानेपर जिनके शरीरमें रोमाञ्च निकल रहे थे ऐसे कितने ही लोग जोर-जोरसे अस्पष्ट सिंहनाद कर रहे थे ॥१९॥ हे मुनीन्द्र! जय हो, हे पुण्यके पर्वत! वृद्धिंगत होओ तथा समृद्धिमान् होओ' इस प्रकारके पुनरुक्त वचनोंसे आकाश भर गया था ॥२०॥ 'शीघ्र ही बर्तन लाओ, स्थालको जल्दी देखो, सुवर्णकी थाली जल्दी लाओ, दूध लाओ, गन्ना लाओ, दही पासमें रक्खो, चांदीके उत्तम बर्तनमें शीघ्र ही खीर रक्खो, शीघ्र ही खड़ी शक्कर-मिश्री लाओ, इस बर्तनमें कर्पूरसे सुवासित शीतल जल भरो, शीघ्र ही पूड़ियोंका समूह लाओ, कलशमें शीघ्र ही विधिपूर्वक उत्तम शिखरिणी रखो, अरी, चतुरे! हर्षपूर्वक उत्तम बड़े बड़े लड्डू दे' इत्यादि कुलाङ्गनाओं और पुरुषोंके शब्दोंसे वह नगर तन्मय हो गया ॥२१-२५॥ उस समय उस नगरमें लोग इतने संभ्रममें पड़े हुए थे कि भारी जरूरतके कार्यको भी लोभ नहीं मानते थे और न कोई बच्चोंको ही देखते थे ॥२६॥ सकड़ी गलियोंमें बड़े वेगसे आनेवाले कितने ही लोगोंने हाथोंमें बर्तन लेकर खड़े हुए मनुष्य गिरा दिये ॥२७॥ इस प्रकार जिसमें लोगोंके हृदय अत्यन्त उन्नत थे तथा जिसमें हड़बड़ाहटके कारण विरुद्ध चेष्टाएँ की जा रही थीं ऐसा वह नगर सब ओरसे उन्मत्तके समान हो गया था ॥२८॥ लोगोंके उस भारी

तेषां कपोलपालीषु पालिता विपुलाश्चिरम् । प्लावयन्तः पयःपूरा गण्डश्रोत्रविनिर्गताः ॥३०॥
उत्कर्णनेत्रमध्यस्थतारकाः कवलत्यजः । उद्ग्रीवा वाजिनस्तस्थुः कृतगम्भीरहेषिताः ॥३१॥
आकुलाश्वचलोकेन [1]कृतानुगमनाः परे । चक्रुस्त्याकुलं लोकं त्रस्तास्त्रुटितबन्धनाः ॥३२॥
एवंविधो जनो यावद्भवद्दानतत्परः । परस्परमहाक्षोभपरिपूरणचञ्चलः ॥३३॥
तावच्छ्रुत्वा घनं घोरं क्षुब्धसागरसन्निभम् । प्रासादान्तर्गतो राजा प्रतिनन्दीत्यमन्दितः ॥३४॥
सहसा क्षोभमापन्नः किमेतदिति सत्वरम् । हर्म्यमूर्धानमारुक्षत् परिच्छदसमन्वितः ॥३५॥
ततः प्रधानसाधुं तं वीक्ष्य लोकविशेषकम् । कलङ्कपङ्कनिर्मुक्तशशाङ्कधवलच्छविम् ॥३६॥
आज्ञापयद् बहून् वीरान् यथैनं मुनिसत्तमम् । प्रणिपत्य द्रुतं प्रीत्या परिप्रापयतात्र मे ॥३७॥
यदाज्ञापयति स्वामीत्युक्त्वा प्रव्रजितास्ततः । राजमानवसिंहास्ते समुत्सारितजन्तवः ॥३८॥
गत्वा व्यज्ञापयन्नेवं मस्तकन्यस्तपाणयः । मुनिं मधुरवाणीकास्तत्कान्तिहृतचेतसः ॥३९॥
भगवन्नीप्सितं[2] वस्तु गृहाणेत्यस्मदीश्वरः । विज्ञापयति भक्त्या त्वां सदनं तस्य गम्यताम् ॥४०॥
अपथ्येन विवर्णेन विरसेन रसेन च । पृथग्जनप्रणीतेन किमनेन तवान्धसा ॥४१॥
एह्यागच्छ महासाधो प्रसादं कुरु याचितः । अन्नं यथेप्सितं स्वैरमुपभुङ्क्ष्व निराकुलम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा दातुमुद्युक्ता भिक्षां प्रवरयोषितः । विषण्णचेतसो राजपुरुषैरपसारिताः ॥४३॥
उपचारप्रकारेण जातं ज्ञात्वान्तरायकम् । राजपौरान्नतः साधुः सर्वतोऽभूत्पराङ्मुखः ॥४४॥

कोलाहल और तेजके कारण हाथियोंने भी बाँधनेके खम्भे तोड़ डाले ॥२९॥ उनकी कपोल-पालियोंमें जो मदजल अधिक मात्रामें चिरकालसे सुरक्षित था वह गण्डस्थल तथा कानोंके विवरोंसे निकल-निकलकर पृथिवीको तर करने लगा ॥३०॥ जिनके कान खड़े थे, जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ नेत्रोंके मध्यमें स्थित थीं, जिन्होंने घास खाना छोड़ दिया था, और जिनकी गरदन ऊपरकी ओर उठ रही थी ऐसे घोड़े गम्भीर हिनहिनाहट करते हुए भयभीत दशामें खड़े थे ॥३१॥ जिन्होंने भयभीत होकर बन्धन तोड़ दिये थे तथा जिनके पीछे पीछे घबड़ाये हुए सईस दौड़ रहे थे ऐसे कितने ही घोड़ोंने मनुष्योंको व्याकुल कर दिया ॥३२॥ इस प्रकार जब तक दान देनेमें तत्पर मनुष्य पारस्परिक महाक्षोभसे चञ्चल हो रहे थे तब तक क्षुभित सागरके समान उनका घोर शब्द सुनकर महलके भीतर स्थित प्रतिनन्दी नामका राजा कुछ रुष्ट हो सहसा क्षोभको प्राप्त हुआ और 'यह क्या है' इस प्रकार शब्द करता हुआ परिकरके साथ शीघ्र ही महलकी छतपर चढ़ गया ॥३३–३५॥

तदनन्तर महलकी छतसे लोगोंके तिलक और कलंक रूपी पङ्कसे रहित चन्द्रमाके समान धवल कान्तिके धारक उन प्रधान साधुको देखकर राजाने बहुतसे वीरोंको आज्ञा दी कि शीघ्र ही जाकर तथा प्रीतिपूर्वक नमस्कार कर इन उत्तम मुनिराजको यहाँ मेरे पास लेआओ ॥३६–३७॥ 'स्वामी जो आज्ञा करें' इस प्रकार कह कर राजाके प्रधान पुरुष, लोगोंकी भीड़को चीरते हुए उनके पास गये ॥३८॥ और वहाँ जाकर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मधुर वाणीसे युक्त और उनकी कान्तिसे हृत चित्त होते हुए इस प्रकार निवेदन करने लगे कि ॥३९॥ हे भगवन्! इच्छित वस्तु ग्रहण कीजिए' इस प्रकार हमारे स्वामी भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हैं सो उनके घर पधारिए ॥४०॥ अन्य साधारण मनुष्योंके द्वारा निर्मित अपथ्य, विवर्ण और विरस भोजनसे आपको क्या प्रयोजन है ॥४१॥ हे महासाधो! आओ प्रसन्नता करो, और इच्छानुसार निराकुलता पूर्वक अभिलषित आहार ग्रहण करो ॥४२॥ ऐसा कहकर भिक्षा देनेके लिए उद्यत उत्तम स्त्रियोंको राजाके सिपाहियोंने दूर हटा दिया जिससे उनके चित्त विषाद युक्त हो गये ॥४३॥ इस तरह उपचारकी विधिसे उत्पन्न हुआ अन्तराय जानकर मुनिराज, राजा

---

१. कृतानुग गताः परे म० । २. -मीप्सितं म० ।

नगर्यास्तत्र निर्याति यतावतियतात्मनि । पूर्वस्मादपि सञ्जातः सङ्क्षोभः परमो जने ॥४५॥

उत्कण्ठाकुलहृदयं कृत्वा लोकं [1]समस्तमस्तसुखः ।
गत्वा श्रमणोऽरण्यं गहनं नक्तं समाचचार प्रतिमाम् ॥४६॥

दृष्ट्वा तथाविधं तं पुरुषरविं चारुचेष्टितं नयनहरम् ।
जाते पुनर्वियोगे तिर्यञ्चोऽप्युत्तमामधृतिमाजग्मुः ॥४७॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पुरसंक्षोभाभिधानं नाम विंशोत्तरशतं पर्व ॥१२०॥

तथा नगरवासी दोनोंके अन्नसे विमुख होगये ॥४४॥ तदनन्तर अत्यन्त यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करने वाले मुनिराज जब नगरीसे वापिस लौट गये तब लोगोंमें पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक क्षोभ होगया ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने इन्द्रिय सम्बन्धी सुखका त्याग कर दिया था ऐसे मुनिराजने समस्त मनुष्योंको उत्कण्ठासे व्याकुलहृदय कर सघन वनमें चले गये और वहाँ उन्होंने रात्रि भरके लिए प्रतिमा योग धारण कर लिया अर्थात् सारी रात कायोत्सर्गसे खड़े रहे ॥४६॥ सुन्दर चेष्टाओंके धारक नेत्रोंको हरण करने वाले तथा पुरुषोंमें सूर्य समान उन वैसे मुनिराजको देखनेके बाद जब पुनः वियोग होता था तब तिर्यञ्च भी अत्यधिक अधीरताको प्राप्त हो जाते थे ॥४७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें नगरके क्षोभका वर्णन करने वाला एकसौ बीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥१२०॥

---

१. समस्तसुखसङ्गः ब० ।

एकविंशोत्तरशतं पर्व

अथ द्वादशमादाय द्वितीयं मुनिपुङ्गवः । सहिष्णुरितरागम्यं चकार समवग्रहम् ॥१॥
अस्मिन् मृगकुलाकीर्णे वने या मम जायते । भिक्षा तामेव गृह्णामि सन्निवेशं विशामि न ॥२॥
इति तत्र समारूढे मुनौ घोरमुपग्रहम्[1] । दुष्टाश्वेन हृतो राजा प्रतिनन्दी प्रसूतिना ॥३॥
अन्विष्यन्ती जनौघेभ्यो हृतिमार्गं समाकुला । स्थूरीपृष्ठसमारूढा महिषी प्रभवाह्वया ॥४॥
किं भवेदिति भूयिष्ठं चिन्तयन्ती त्वरावती । प्रातिष्ठतानुमार्गेण भटचक्रसमन्विता ॥५॥
ह्रियमाणस्य भूपस्य सरः संवृत्तमन्तरे । तत्र पङ्के ययुर्मग्नः कलत्र इव गेहिकाः ॥६॥
ततः प्राप्ता वरारोहा वीक्ष्य पद्मादिमत्सरः । किञ्चित्स्मितानना ऽवोचत्साध्वेवाश्वो[2] नृपाव्यधात् ।
अपाहरिष्यथ नो चेदद्रक्ष्यत ततः कुतः । सरो नन्दनपुष्पाढ्यमभिकाङ्क्षितदर्शनम् ॥८॥
सफलोद्यानयात्राऽथो याता यत्सुमनोहरम् । वनान्तरमिदं दृष्टमासेचनकदर्शनम् ॥९॥
इति नर्मपरं कृत्वा जल्पितं प्रियसङ्गता । सखीजनावृता तस्थौ सरसस्तस्य[3] रोधसि ॥१०॥
प्रक्रीड्य विमले तोये विधाय कुसुमोच्चयम् । परस्परमलंकृत्य दम्पती भोजने स्थितौ ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे साधुरुपवासविधिं गतः । तयोः सन्निधिमासीदत् क्रियामार्गविशारदः ॥१२॥
तं समीक्ष्य समुद्भूतप्रमदः पुलकान्वितः । अभ्युत्तस्थौ सपत्नीको राजा परमसम्भ्रमः ॥१३॥

अथानन्तर कष्ट सहन करने वाले, मुनिश्रेष्ठ श्री रामने पाँच दिनका दूसरा उपवास लेकर यह अवग्रह किया कि मृग समूहसे भरे हुए इस वनमें मुझे जो भिक्षा प्राप्त होगी उसे ही मैं ग्रहण करूँगा—भिक्षाके लिए नगरमें प्रवेश नहीं करूँगा ॥१-२॥ इस प्रकार कठिन अवग्रह लेकर जब मुनिराज वनमें विराजमान थे तब एक प्रतिनन्दी नामका राजा दुष्ट घोड़ेके द्वारा हरा गया ॥३॥ तदनन्तर उसकी प्रभवा नामकी रानी शोकातुर हो मनुष्योंके समूहसे हरणका मार्ग खोजती हुई घोड़ेपर चढ़कर निकली। अनेक योधाओंका समूह उसके साथ था। 'क्या होगा? कैसे राजाका पता चलेगा?' इस प्रकार अत्यधिक चिन्ता करती हुई वह बड़े वेगसे उसी मार्गसे निकली ॥४-५॥ हरे जानेवाले राजाके बीचमें एक तालाब पड़ा सो वह दुष्ट अश्व उस तालाबकी कीचड़में उस तरह फँस गया जिस तरह कि गृहस्थ स्त्रीमें फँस रहता है ॥६॥ तदनन्तर सुन्दरी रानी, वहाँ पहुँचकर और कमल आदिसे युक्त सरोवरको देखकर कुछ मुसकराती हुई बोली कि राजन्! घोड़ाने अच्छा ही किया ॥७॥ यदि आप इस घोड़ेके द्वारा नहीं हरे जाते तो नन्दन वन जैसे पुष्पोंसे सहित यह सुन्दर सरोवर कहाँ पाते? इसके उत्तर में राजाने कहा कि हाँ यह उद्यान-यात्रा आज सफल हुई जब कि जिसके देखनेसे तृप्ति नहीं होती ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनके मध्य तुम आ पहुँची ॥८-९॥ इस प्रकार हास्यपूर्ण वार्ता-कर पतिके साथ मिली रानी, सखियोंसे आवृत हो उसी सरोवरके किनारे ठहर गई ॥१०॥

तदनन्तर निर्मल जलमें क्रीड़ा कर, फूल तोड़कर तथा परस्पर एक दूसरेको अलंकृत कर जब दोनों दम्पति भोजन करनेके लिए बैठे तब इसी बीचमें उपवासकी समाप्तिको प्राप्त एवं साधुकी क्रियामें निपुण मुनिराज राम, उनके समीप आये ॥११-१२॥ उन्हें देख जिसे हर्ष उत्पन्न हुआ था, तथा रोमाञ्च उठ आये थे ऐसा राजा रानीके साथ घबड़ा कर उठकर

---

१. मुपग्रहे म०, ज० । २. साध्वेवाश्वो नृपाविधत् म० । साध्विवाश्वो नृपाविधत् ज० । ३. रोधिता म० ।

प्रणम्य स्थीयतामत्र भगवन्निति शब्दवान् । संशोध्य भूतलं चाऽके कमलादिभिरर्चितम् ॥१४॥
सुगन्धिजलसम्पूर्णं पात्रमुद्धृत्य भामिनी । देवी वारि ददौ राजा पादावक्षालयन्मुनेः ॥१५॥
शुचिश्चामोदसर्वाङ्गस्ततो राजा महादरः । क्षैरेयादिकमाहारं सद्गन्धरसदर्शनम् ॥१६॥
हेमपात्रगतं कृत्वा श्रद्धया परयान्वितः । श्राद्धं स्म परिवेवेष्टि पात्रे परममुत्तमे ॥१७॥
ततोऽन्नं दीयमानं तद्वृद्धिमेत्यभिभाजनम् । सुदानकारणादाप्तमनोरथगुणोपमम् ॥१८॥
तुष्ट्यादिभिर्गुणैर्युक्तं ज्ञात्वा दातारमुत्तमम् । प्रहृष्टमनसो देवा विहायस्यभ्यनन्दयन् ॥१९॥
अनुकूलो ववौ वायुः पञ्चवर्णा सुसौरभाम् । पुष्पवृष्टिममुञ्चन्त प्रमथाः प्रमदान्विताः ॥२०॥
चित्रश्रोत्रहरो जज्ञे पुष्करे[1] दुन्दुभिस्वनः । अप्सरोगणसङ्गीतप्रवरध्वनिसङ्गतः ॥२१॥
तुष्टाः कन्दर्पिणो देवाः कृतानेकविधस्वनाः । चकार बहुलं व्योम्नि ननृतुश्च समाकुलम् ॥२२॥
अहो दानमहो दानमहो पात्रमहो विधिः । अहो देयमहो दाता साधु साधु परं कृतम् ॥२३॥
वर्द्धस्व जय नन्देतिप्रभृतिः परमाकुलः । विहायोमण्डपव्यापी निःस्वनस्त्रैदशोऽभवत् ॥२४॥
नानारत्नसुवर्णादिपरमद्रविणात्मिका । पपात वसुधारा च द्योतयन्ती दिशो दश ॥२५॥
पूजामवाप्य देवेभ्यो मुनेर्देशव्रतानि च । विशुद्धदर्शनो राजा पृथिव्यामाप गौरवम् ॥२६॥

एवं सुदानं विनियोज्य पात्रे भक्तिप्रणम्रो नृपतिः सजानिः[2] ।
वहन्नितान्तं परमं प्रमोदं मनुष्यजन्माऽऽप्तफलं विवेद ॥२७॥

खड़ा होगया ॥१३॥ उसने प्रणाम कर कहा कि हे भगवन् ! खड़े रहिए, तदनन्तर पृथिवीतलको शुद्ध कर उसे कमल आदिसे पूजित किया ॥१४॥ रानीने सुगन्धित जलसे भरा पात्र उठाकर जल दिया और राजाने मुनिके पैर धोये ॥१५॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर हर्षसे युक्त था ऐसे उज्ज्वल राजाने बड़े आदरके साथ उत्तम गन्ध रस और रूपसे युक्त खीर आदिक आहार सुवर्ण पात्रमें रक्खा और उसके बाद उत्कृष्ट श्रद्धासे सहित हो वह उत्तम आहार उत्तम पात्र अर्थात् मुनिराजको समर्पित किया ॥१६-१७॥ तदनन्तर जिस प्रकार दयालु मनुष्यका दान देनेका मनोरथ बढ़ता जाता है उसी प्रकार मुनिके लिए दिया जाने वाला अन्न उत्तम दानके कारण बर्तनमें वृद्धिको प्राप्त होगया था। भावार्थ—श्री राम मुनि अक्षीणऋद्धिके धारक थे इसलिए उन्हें जो अन्न दिया गया था वह अपने बर्तनमें अक्षीण हो गया था ॥१८॥ दाताको श्रद्धा तुष्टि भक्ति आदि गुणोंसे युक्त उत्तम दाता जानकर देवोंने प्रसन्नचित्त हो आकाशमें उसका अभिनन्दन किया अर्थात् पञ्चाश्चर्य किये ॥१९॥ अनुकूल—शीतल मन्द सुगन्धित वायु चली, देवोंने हर्षित हो पाँच वर्णकी सुगन्धित पुष्पवृष्टि की, आकाशमें कानोंको हरने वाला नाना प्रकारका दुन्दुभि नाद हुआ, अप्सराओंके संगीतकी उत्तम ध्वनि उस दुन्दुभिनादके साथ मिली हुई थी, संतोषसे युक्त कन्दर्प जातिके देवोंने अनेक प्रकारके शब्द किये तथा आकाशमें नानारस पूर्ण अनेक प्रकारका नृत्य किया ॥२०-२२॥ अहो दान, अहो पात्र, अहो विधि, अहो देव, अहो दाता तथा धन्य धन्य आदि शब्द आकाशमें किये गये ॥२३॥ बढ़ते रहो, जय हो, तथा समृद्धिमान् होओ आदि देवोंके विशाल शब्द आकाश-रूपी मण्डपमें व्याप्त होगये ॥२४॥ इनके सिवाय नाना प्रकारके रत्न तथा सुवर्णादि उत्तम द्रव्योंसे युक्त धनकी वृष्टि दशों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई पड़ी ॥२५॥ विशुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक राजा प्रतिनन्दी देवोंसे पूजा तथा मुनिसे देशव्रत प्राप्त कर पृथिवीमें गौरवको प्राप्त हुआ ॥२६॥ इस प्रकार भक्तिसे नम्रीभूत भार्या सहित राजाने सुपात्रके लिए दान देकर अत्यधिक हर्षका

---

१. आकाशे । २. जायासहितः ।

रामोऽपि कृत्वा समयोदितार्थं विविक्तशय्यासनमध्यवर्ती ।
तपोऽतिदीप्तो विजहार युक्तं महीं रविः प्राप्त इव द्वितीयः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते दानप्रसङ्गाभिधानं नामैकविंशोत्तरशतं पर्व ॥१२१॥

अनुभव किया और मनुष्य जन्मको सफल माना ॥२७॥ इधर श्री रामने भी आगममें कहे अनुसार प्रवृत्ति कर, एकान्त स्थानमें शयनासन किया तथा तपसे अत्यन्त देदीप्यमान हो पृथिवीपर उस तरह योग्य विहार किया कि जिस तरह मानो दूसरा सूर्य ही पृथिवीपर आ पहुँचा हो ॥२८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें श्रीरामके आहार दानका वर्णन करने वाला एकसौ इक्कीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२१॥

द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व

भगवान् बलदेवोऽसौ प्रशान्तरतिमत्सरः । अत्युग्रं तपश्चक्रे सामान्यजनदुःसहम् ॥१॥
[1]अष्टमाद्युपवासस्थः [2]समध्यस्थे विरोचने । पर्युपास्यत गोपाद्यैररण्ये गोचरं भ्रमन् ॥२॥
व्रतगुप्तिसमित्याद्यसमयज्ञो जितेन्द्रियः । साधुवात्सल्यसम्पन्नः स्वाध्यायनिरतः सुकृत् ॥३॥
लब्धानेकमहालब्धिरपि निर्विक्रियः परः । परीषहभटं मोहं पराजेतुं समुद्यतः ॥४॥
तपोऽनुभावतः शान्तैर्व्याघ्रैः सिंहैश्च वीक्षितः । विस्तारिलोचनोद्ग्रीवैर्मृगाणां च कदम्बकैः ॥५॥
निःश्रेयसगतस्वान्तः स्पृहासक्तिविवर्जितः । प्रयत्नपरमं मार्गे विजहार वनान्तरे ॥६॥
शिलातलस्थितो जातु पर्यङ्कासनसंस्थितः । ध्यानान्तरं विवेशासौ भानुर्मेघान्तरं यथा ॥७॥
मनोज्ञे क्वचिदुद्देशे प्रलम्बितमहाभुजः । अस्थान्मन्दरनिष्कम्पचित्तः प्रतिमया प्रभुः ॥८॥
युगान्तर्न्यस्तेक्षणः श्रीमान् प्रशान्तो विहरन् क्वचित् । वनस्पतिनिवासाभिः सुरस्त्रीभिरपूज्यत ॥९॥
एवं निरुपमात्मासौ तपश्चक्रे तथाविधम् । कालेऽस्मिन् दुःषमे शक्यं ध्यातुमप्यपरैर्नयत् ॥१०॥
ततोऽसौ विहरन् साधुः [3]प्राप्तः कोटिशिलां क्रमात् । नमस्कृत्योद्धृता पूर्वं भुजाभ्यां लक्ष्मणेन या ॥११॥
महात्मा तां समारुह्य प्रच्छिन्नस्नेहबन्धनः । तस्थौ प्रतिमया रात्रौ कर्मक्षपणकोविदः ॥१२॥

अथानन्तर जिनके राग-द्वेष शान्त हो चुके थे ऐसे श्री भगवान् बलदेवने सामान्य मनुष्यों के लिए अशक्य अत्यन्त कठिन तप किया ॥१॥ जब सूर्य आकाशके मध्यमें चमकता था तब तेल आदिका उपवास धारण करनेवाले राम वनमें आहारार्थ भ्रमण करते थे और गोपाल आदि उनकी उपासना करते थे ॥२॥ वे व्रत गुप्ति समिति आदिके प्ररूपक शास्त्रोंके जाननेवाले थे, जितेन्द्रिय थे, साधुओंके साथ स्नेह करनेवाले थे, स्वाध्यायमें तत्पर थे, अनेक उत्तम कार्योंके विधायक थे, अनेक महाऋद्धियाँ प्राप्त होनेपर भी निर्विकार थे, अत्यन्त श्रेष्ठ थे, परीषह रूपी योद्धा तथा मोहको जीतनेके लिए उद्यत रहते थे, तपके प्रभावसे व्याघ्र और सिंह शान्त होकर उनकी ओर देखते थे, जिनके नेत्र हर्षसे विस्तृत थे तथा जिन्होंने अपनी गरदन ऊपरको ओर उठा ली थी ऐसे मृगोंके झुण्ड बड़े प्रेमसे उन्हें देखते थे, उनका चित्त मोक्षमें लग रहा था, तथा जो इच्छा और आसक्तिसे रहित थे । इस प्रकार उत्तम गुणोंको धारण करनेवाले भगवान् राम वनके मध्य बड़े प्रयत्नसे—ईर्यासमितिपूर्वक मार्गमें विहार करते थे ॥३-६॥ कभी शिलातल-पर खड़े होकर अथवा पर्यङ्कासनसे विराजमान होकर उस तरह ध्यानके भीतर प्रवेश करते थे जिस तरह कि सूर्य मेघोंके भीतर प्रवेश करता है ॥७॥ वे प्रभु कभी किसी सुन्दर स्थानमें दोनों भुजाएँ नीचे लटकाकर मेरुके समान निष्कम्पचित्त हो प्रतिमायोगसे विराजमान होते थे ॥८॥ कहीं अत्यन्त शान्त एवं वैराग्य रूपी लक्ष्मीसे युक्त राम जूडा प्रमाण भूमिको देखते हुए विहार करते थे और वनस्पतियोंपर निवास करनेवाली देवाङ्गनाएँ उनकी पूजा करती थीं ॥९॥ इस प्रकार अनुपम आत्माके धारक महामुनि रामने जो उस प्रकार कठिन तप किया था, इस दुःषम नामक पञ्चम कालमें अन्य मनुष्य उसका ध्यान नहीं कर सकते हैं ॥१०॥ तदनन्तर विहार करते हुए राम क्रम-क्रमसे उस कोटिशिलापर पहुँचे जिसे पहले लक्ष्मणने नमस्कारकर अपनी भुजाओंसे उठाया था ॥११॥ जिन्होंने स्नेहका बन्धन तोड़ दिया था तथा जो कर्मोंका क्षय करनेके लिए उद्यत थे ऐसे महात्मा श्री राम उस शिलापर आरूढ़ हो रात्रिके समय प्रतिमा-योगसे विराजमान हुए ॥१२॥

---

१. अष्टम्याद्युप-म० । २. स्वमध्यस्थे म० । ३. प्राप्त-म० ।

अथासावच्युतेन्द्रेण [1]प्रयुक्तावधिचक्षुषा । उदारस्नेहयुक्तेन सीतापूर्वेण वीक्षितः ॥१३॥
आत्मनो भवसंवर्तं संस्मृत्य च यथाक्रमम् । जिनशासनमाहात्म्य प्रभवं च महोत्तमम् ॥१४॥
दध्यौ सोऽयं नराधीशो रामो भुवनभूषणः । योऽभवन्मानुषे लोके स्त्रीभूतायाः पतिर्मम ॥१५॥
पश्य कर्मविचित्रत्वान्मानसस्य विचेष्टितम् । अन्यथाकाङ्क्षितं पूर्वमन्यथा काङ्क्ष्यतेऽधुना ॥१६॥
कर्मणः पश्यताधामं ही शुभाशुभयोः पृथक् । विचित्रं जन्म लोकस्य यत्साक्षादिदमीक्ष्यते ॥१७॥
जगतो विस्मयकरौ सीरिचक्रायुधाविमौ । जातावूर्ध्वाधरस्थानभाजावुचितकर्मतः ॥१८॥
एकः प्रक्षीणसंसारो ज्येष्ठश्चरमदेहधृक् । द्वितीयः पूर्णसंसारो निरये दुःखितोऽभवत् ॥१९॥
विषयैरवितृप्तात्मा लक्ष्मणो दिव्यमानुषैः । अधोलोकमनुप्राप्तः कृतपापोऽभिमानतः ॥२०॥
राजीवलोचनः श्रीमानेषोऽसौ लाङ्गलायुधः । विप्रयोगेन सौमित्रेरुपेतः शरणं जिने ॥२१॥
बहिः शत्रून् पराजित्य हलरत्नेन सुन्दरः । इन्द्रियाण्यधुना जेतुमुद्यतो ध्यानशक्तितः ॥२२॥
तदस्य क्षपकश्रेणिमारूढस्य करोमि यत् । इह येन वयस्यो मे ध्यानभ्रष्टोऽभिजायते ॥२३॥
ततोऽनेन सह प्रीत्या महामैत्रीसमुत्थया । मेरुं नन्दीश्वरं वाऽपि सुखं यास्यामि शोभया ॥२४॥
विमानशिखरारूढौ विभूत्या परयाऽन्वितौ । अन्योन्यं वेदयिष्यावो दुःखानि च सुखानि च ॥२५॥
[2]सौमित्रिमधरप्राप्तमानेतुं प्रतिबुद्धताम् । सह तेनागमिष्यामि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥२६॥
इदमन्यच्च सञ्चिन्त्य सीतादेवः स्वयंप्रभः । सौधर्मकल्पमन्येन समागादारणाच्युतात् ॥२७॥

अथानन्तर जिसने अवधिज्ञान रूपी नेत्रका प्रयोग किया था तथा जो अत्यधिक स्नेहसे युक्त था ऐसे सीताके पूर्व जीव अच्युत स्वर्गके प्रतीन्द्रने उन्हें देखा ॥१३॥ उसी समय उसने अपने पूर्व भव तथा जिन शासनके महोत्तम माहात्म्यको क्रमसे स्मरण किया ॥१४॥ स्मरण करते ही उसे ध्यान आ गया कि ये संसारके आभूषण स्वरूप वे राजा राम हैं जो मनुष्य लोकमें जब मैं सीता थी तब मेरे पति थे ॥१५॥ वह प्रतीन्द्र विचार करने लगा कि अहो कर्मोंकी विचित्रतासे होनेवाली मनकी विविध चेष्टाको देखो जो पहले अन्य प्रकारकी इच्छा थी और अब अन्य प्रकारकी इच्छा हो रही है ॥१६॥ अहो ! कार्योंकी शुभ अशुभ कर्मोंमें जो पृथक् पृथक् प्रवृत्ति है उसे देखो । लोगोंका जन्म विचित्र है जो कि यह साक्षात् ही दिखाई देता है ॥१७॥ ये बलभद्र और नारायण जगत्को आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले थे पर अपने-अपने योग्य कर्मोंके प्रभावसे ऊर्ध्व तथा अधःस्थान प्राप्त करनेवाले हुए अर्थात् एक लोकके ऊर्ध्व भागमें विराजमान होंगे और एक अधोलोकमें उत्पन्न हुआ ॥१८॥ इनमें एक बड़ा तो क्षीण संसारी तथा चरम शरीरी है और दूसरा छोटा—लक्ष्मण, पूर्ण संसारी नरकमें दुःखी हो रहा है ॥१९॥ दिव्य तथा मनुष्य सम्बन्धी भोगोंसे जिसकी आत्मा तृप्त नहीं हुई ऐसा लक्ष्मण पापकर अभिमानके कारण नरकमें दुःखी हो रहा है ॥२०॥ यह कमललोचन श्रीमान् बलभद्र, लक्ष्मणके वियोगसे जिनेन्द्र भगवान्की शरणमें आया है ॥२१॥ यह सुन्दर, पहले हलरत्नसे बाह्य शत्रुओंको पराजित कर अब ध्यानकी शक्तिसे इन्द्रियोंको जीतनेके लिए उद्यत हुआ है ॥२२॥ इस समय यह क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ है इसलिए मैं ऐसा काम करता हूँ कि जिससे यह मेरा मित्र ध्यानसे भ्रष्ट हो जाय ॥२३॥ [और मोक्ष न जाकर स्वर्गमें ही उत्पन्न हो] तब महामित्रतासे उत्पन्न प्रीतिके कारण इसके साथ सुखपूर्वक मेरुपर्वत और नन्दीश्वर द्वीपको जाऊँगा उस समयकी शोभा ही निराली होगी । विमानके शिखरपर आरूढ़ तथा परम विभूतिके सहित हम दोनों एक दूसरेके लिए अपने दुःख और सुख बतलावेंगे ॥२४–२५॥ फिर अधोलोकमें पहुँचे हुए लक्ष्मणको प्रतिबुद्धता प्राप्त करानेके लिए शुभकार्यके करनेवाले उन्हीं रामके साथ जाऊँगा ॥२६॥ यह तथा इसी

१. प्रत्युक्ता-म० । २. सौमित्रिमथ सम्प्राप्त-म० ।

तत्रावतरति स्फीतं तन्महानन्दनायते । वनं यत्र स्थितः साधुर्ध्यानयोगेन राघवः ॥२८॥
बहुपुष्परजोवाही ववौ वायुः सुखावहः । कोलाहलरवो रम्यः पक्षिणां सर्वतोऽभवत् ॥२९॥
प्रबलं चञ्चरीकाणां चञ्चलं बकुले कुलम् । प्रघुष्टं [1]परपुष्टानां पुष्टं घुष्टं कदम्बकैः ॥३०॥
[2]रुरुवुः सारिकाश्चारुनानास्वरविशारदाः । चिक्रीडुर्विशदस्वानाः शुकाः सम्प्राप्तकिंशुकाः ॥३१॥
मञ्जर्यः सहकाराणां विरेजुर्भ्रमरान्विताः । [3]तीरिका इव संशाता[4] नूतनाश्चित्तजन्मनः ॥३२॥
कुसुमैः कर्णिकाराणामरण्यं पिञ्जरीकृतम् । पीतपिष्टातकेनेव कर्तुं क्रीडनमुद्यतम् ॥३३॥
अनपेक्षितगण्डूषमदिरानेकदौहृदः । ववृषे [5]बकुलः प्रावृट् नभोभवकुलैरिव ॥३४॥
जानकीवेषमास्थाय कामरूपः सुरोत्तमः । समीपं रामदेवस्य मन्थरं गन्तुमुद्यतः ॥३५॥
मनोऽभिरमणे तस्मिन् वने जनविवर्जिते । विचित्रपादपव्राते सर्वर्तुकुसुमाकुले ॥३६॥
सीता किल महाभागा पर्यटन्ती सुखं वनम् । अकस्मादग्रतः साधोः सुन्दरी समदृश्यत ॥३७॥
अवोचत च दृष्टोऽसि कथञ्चिदपि राघव । भ्रमन्त्या विष्टपं सर्वं मया पुण्येन भूरिणा ॥३८॥
वियोगोर्मिसङ्कीर्णे स्नेहमन्दाकिनीह्रदे । प्राप्तां सुवदनां नाथ मां सन्धारय साम्प्रतम् ॥३९॥
विचेष्टितैः सुमिष्टोक्तैर्ज्ञात्वा मुनिमकम्पनम् । मोहपापार्जितस्वान्ता पुरःपार्श्वानुवर्तिनी ॥४०॥
मनोभवज्वरग्रस्ता वेपमानशरीरिका । स्फुरितारुणतुङ्गौष्ठी जगादैवं मनोरमा ॥४१॥
अहं देवासमीक्ष्यैव तदा पण्डितमानिनी । दीक्षिता त्वां परित्यज्य विहरामि तपस्विनी ॥४२॥

प्रकारका अन्य विचारकर सीताका जीव स्वयंप्रभ देव, अन्य देवोंके साथ आरुणाच्युत कल्पसे उतरकर सौधर्म कल्पमें आया ॥२७॥ तदनन्तर सौधर्म कल्पसे चलकर वह पृथिवीके उस विस्तृत वनमें उतरा जो कि नन्दन वनके समान जान पड़ता था और जहाँ महामुनि रामचन्द्र ध्यान लगाकर विराजमान थे ॥२८॥ उस वनमें अनेक फूलोंकी परागको धारण करनेवाली सुखदायक वायु बह रही थी और सब ओर पक्षियोंका मनोहर कल-कल शब्द हो रहा था ॥२९॥ बकुल वृक्षके ऊपर भ्रमरोंका सबल समूह चञ्चल हो रहा था तथा कोकिलाओंके समूह जोरदार मधुर शब्द कर रहे थे ॥३०॥ नाना प्रकारके सुन्दर शब्द प्रकट करनेमें निपुण मैनाएँ मनोहर शब्द कर रहीं थीं और पलाश वृक्षोंपर बैठे शुक स्पष्ट शब्दोंका उच्चारण करते हुए क्रीड़ा कर रहे थे ॥३१॥ भ्रमरोंसे सहित आमोंकी मञ्जरियाँ कामदेवके नूतन तीक्ष्ण बाणोंके समान जान पड़ती थीं ॥३२॥ कनेरके फूलोंसे पीला-पीला दिखनेवाला वन ऐसा जान पड़ता था मानो पीले रङ्गके चूर्णसे क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३३॥ मदिराके गण्डूषरूपी दौहृदकी उपेक्षा करनेवाला बकुल वृक्ष ऐसा बरस रहा था जैसा कि वर्षा काल मेघोंके समूहसे बरसता है ॥३४॥

अथानन्तर इच्छानुसार रूप बदलनेवाला वह स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र जानकीका वेष रख मदमाती चालसे रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३५॥ वह वन मनको हरण करनेवाला, एकान्त, नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त एवं सब ऋतुओंके फूलोंसे व्याप्त था ॥३६॥ तदनन्तर सुखपूर्वक वनमें घूमती हुई सीता महादेवी, अकस्मात् उक्त साधुके आगे प्रकट हुई ॥३७॥ वह बोली कि हे राम ! समस्त जगत्में घूमती हुई मैंने बहुत भारी पुण्यसे जिस किसी तरह आपको देख पाया है ॥३८॥ हे नाथ ! वियोगरूपी तरङ्गोंसे व्याप्त स्नेहरूपी गङ्गाकी धारमें पड़ी हुई मुझ सुवदनाको आप इस समय सहारा दीजिए—डूबनेसे बचाइए ॥३९॥ जब उसने नाना प्रकारकी चेष्टाओं और मधुर वचनोंसे मुनिको अकम्प समझ लिया तब मोहरूपी पापसे जिसका चित्त ग्रसा था, जो कभी मुनिके आगे खड़ी होती थी और कभी दोनों बगलोंमें आ सकती थी, जो काम ज्वरसे ग्रस्त थी, जिसका शरीर काँप रहा था और जिसका लाल-लाल ऊँचा ओंठ फड़क रहा था ऐसी मनोहारिणी सीता उनसे बोली कि हे देव, अपने आपको

१. कोकिलानाम् । २. रुरुदुः म० । ३. बाणा इव । ४. तीक्ष्णा । ५. बकुलैः म० ।

सद्विद्याधरकन्याभिस्ततश्चास्मि हृता सती । अवोचे संविपश्चिद्भिरिदं विविधदर्शनैः ॥४३॥
अलं प्रव्रज्यया तावद् [1]वयस्येयं विरुद्धया । इयमत्यन्तवृद्धानां पूज्यते ननु[2] नैष्ठिकी ॥४४॥
यौवनोढा तनुः क्वेयं क्व चेदं दुष्करं व्रतम् । [3]शशलक्ष्मणदीधित्या भिद्यते किं महीधरः ॥४५॥
गच्छामस्त्वां पुरस्कृत्य वयं सर्वाः समाहिताः । बलदेवं वरिष्यामस्तव देवि समाश्रयात् ॥४६॥
अस्माकमपि सर्वासां त्वमग्रमहिषी भव । क्रीडामः सह रामेण जम्बूद्वीपतले सुखम् ॥४७॥
अत्रान्तरे समं प्राप्ता नानालङ्कारभूषिताः । भूयःसहस्रसंख्यानाः कन्या दिव्यश्रियान्विताः ॥४८॥
राजहंसवधूलीला मनोज्ञगतिविभ्रमाः । सीतेन्द्रविक्रियाजन्या जग्मुः पद्मसमीपताम् ॥४९॥
वदन्त्यो मधुरं काश्चित्परपुष्टस्वनादपि । विरेजिरेतरां कन्याः साक्षाल्लक्ष्म्य इव स्थिताः ॥५०॥
मनःप्रह्लादनकरं परं श्रोत्ररसायनम् । दिव्यं गेयामृतं चक्रुर्वंशवीणास्वनानुगम् ॥५१॥
भ्रमरासितकेश्यस्ताः चणांशुसमतेजसः । सुकुमारास्तनूदर्यः पीनोन्नतपयोधराः ॥५२॥
चारुशृङ्गारहासिन्यो नानावर्णसुवाससः । विचित्रविभ्रमालापाः कान्तिपूरितपुष्कराः ॥५३॥
कामयाञ्चक्रिरे मोहं सर्वतोऽवस्थिता मुनेः । श्रीबाहुबलिनः पूर्वं यथा त्रिदशकन्यकाः ॥५४॥
आकृष्य बकुलं काचिच्छायाऽसौ[4] चिन्वती क्वचित् । उद्वेजितालिचक्रेण श्रमणं शरणं स्थिता ॥५५॥
काश्चित्किल [5]विवादेन कृतपक्षपरिग्रहाः । पप्रच्छुर्निर्णयं देव किंनामाऽयं वनस्पतिः ॥५६॥

पण्डिता माननेवाली मैं उस समय बिना विचारे ही आपको छोड़कर दीक्षिता हो गई और तपस्विनी बनकर इधर-उधर विहार करने लगी ॥४०–४२॥ तदनन्तर विद्याधरोंकी उत्तम कन्याएँ मुझे हरकर ले गईं। वहाँ उन विदुषी कन्याओंने नाना उदाहरण देते हुए मुझसे कहा कि ऐसी अवस्थामें यह विरुद्ध दीक्षा धारण करना व्यर्थ है क्योंकि यथार्थमें यह दीक्षा अत्यन्त वृद्धा स्त्रियोंके लिए ही शोभा देती है ॥४३–४४॥ कहाँ तो यह यौवनपूर्ण शरीर और कहाँ यह कठिन व्रत ? क्या चन्द्रमाकी किरणसे पर्वत भेदा जा सकता है ? ॥४५॥ हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और हे देवि ! तुम्हारे आश्रयसे बलदेवको वरेंगी—उन्हें अपना भर्ता बनावेंगी ॥४६॥ हम सभी कन्याओंके बीच तुम प्रधान रानी होओ। इस तरह रामके साथ हम सब जम्बूद्वीपमें सुखसे क्रीड़ा करेंगी ॥४७॥ इसी बीचमें नाना अलंकारोंसे भूषित तथा दिव्य लक्ष्मीसे युक्त हजारों कन्याएँ वहाँ आ पहुँचीं ॥४८॥ राजहंसीके समान जिनकी सुन्दर चाल थी ऐसी सीतेन्द्रकी विक्रियासे उत्पन्न हुईं वे सब कन्याएँ रामके समीप गईं ॥४९॥ कोयलसे भी अधिक मधुर बोलनेवाली कितनी ही कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो साक्षात् लक्ष्मी ही स्थित हों ॥५०॥ कितनी ही कन्याएँ मनको आह्लादित करनेवाले, कानोंके लिए उत्तम रसायन स्वरूप तथा बाँसुरी और वीणाके शब्दसे अनुगत दिव्य संगीतरूपी अमृतको प्रकट कर रही थीं। जिनके केश भ्रमरोंके समान काले थे, जिनकी कान्ति बिजलीके समान थी, जो अत्यन्त सुकुमार और कृशोदरी थीं, स्थूल और उन्नत स्तनोंको धारण करनेवाली थीं, सुन्दर शृंगार पूर्ण हास्य करनेवालीं थी, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र पहने हुई थीं, नाना प्रकारके हाव-भाव तथा आलाप करनेवाली थीं और कान्तिसे जिन्होंने आकाशको भर दिया था ऐसी वे सब कन्याएँ मुनिके चारों ओर स्थित हो उस तरह मोह उत्पन्न कर रही थीं, जिस तरह कि पहले बाहुबलीके आसपास खड़ी देव-कन्याएँ ॥५१–५४॥ कोई एक कन्या छायाकी खोज करती हुई बकुल वृक्षके नीचे पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने उस वृक्षको खींच दिया जिससे उसपर बैठे भ्रमरोंके समूह उड़कर उस कन्याकी ओर झपटे और उनसे भयभीत हो वह कन्या मुनिकी शरणमें जा खड़ी हुई ॥५५॥ कितनी ही कन्याएँ किसी

---

१. वयस्येव म०, ख० । २. न तु म० । ३. बललक्ष्मणदीधित्या म०, शललक्ष्मणदीर्धित्या ज०, क०, ख० । ४. छायासौ । ५. विषादेन म०, ज० ।

दूरस्थमाधवीपुष्पग्रहणच्छद्मना परा । स्रंसमानांशुका बाहुमूलं क्षणमदर्शयत् ॥५७॥
आबध्य मण्डलीमन्याश्चकिताकरपल्लवाः । सहस्रतालसङ्गीता रासकं दातुमुद्यताः ॥५८॥
नितम्बफलके काचिद्नभःस्वच्छारुणांशुके । चण्डातकं नभोनीलं चकार किल लज्जया ॥५९॥
एवंविधक्रियाजालैरितरस्वान्तहारिभिः । अक्षोभ्यत न पद्माभः पवनैरिव मन्दरः ॥६०॥
ऋजुदृष्टिर्विशुद्धात्मा परीषहगणाशनिः । प्रविष्टो [1]धवलध्यानप्रथमं सुप्रभो यथा ॥६१॥
तस्य सत्त्वपदन्यस्तं चित्तमत्यन्तनिर्मलम् । समेतमिन्द्रियैरासीदात्मनः प्रवणं परम् ॥६२॥
कुर्वन्तु वाञ्छितं [2]बाह्याः क्रियाजालमनकेधा । प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणा ॥६३॥
यदा सर्वप्रयत्नेन ध्यानप्रत्यूहलालसः । चेष्टां चकार सीतेन्द्रः सुरमायाविकल्पिताम् ॥६४॥
अत्रान्तरे मुनिः पूर्वमत्यन्तशुचिरागमत् । अनादिकर्मसङ्घातं विमुर्दग्धुं समुद्यतः ॥६५॥
कर्मणः प्रकृतीः षष्टिं निधूय दृढनिश्चयः । क्षपकश्रेणिमारुक्षदुत्तरां पुरुषोत्तमः ॥६६॥
माघशुक्लस्य पक्षस्य द्वादश्यां निशि पश्चिमे । यामे केवलमुत्पन्नं ज्ञानं तस्य महात्मनः ॥६७॥
[3]सर्वद्रोचिसमुद्भूते तस्य केवलचक्षुषि । लोकालोकद्वयं जातं गोष्पदप्रतिमं प्रभोः ॥६८॥
ततः सिंहासनाकम्पप्रयुक्तावधिचक्षुषः । सप्रणामं सुराधीशाः प्रचेलुः सम्भ्रमान्विताः ॥६९॥
आजग्मुश्च महाभूत्या महासङ्घातवर्तिनः । विधातुमुद्यताः श्राद्धाः केवलोत्पत्तिपूजनम् ॥७०॥

वृक्षके नामको लेकर विवाद करती हुई अपना पक्ष लेकर मुनिराजसे निर्णय पूछने लगीं कि देव ! इस वृक्षका क्या नाम है ? ॥५६॥ जिसका वस्त्र खिसक रहा था ऐसी किसी कन्याने ऊँचाईपर स्थित माधवी लताका फूल तोड़नेके छलसे अपना बाहुमूल दिखाया ॥५७॥ जिनके हस्तरूपी पल्लव हिल रहे थे तथा जो हजारों प्रकारके तालोंसे युक्त संगीत कर रही थीं ऐसी कितनी ही कन्याएँ मण्डली बाँधकर रासक क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत थीं ॥५८॥ किसी कन्याने जलके समान स्वच्छ लाल वस्त्रसे सुशोभित अपने नितम्बतटपर लज्जाके कारण आकाशके समान नील वर्णका लँहगा पहन रक्खा था ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अन्य मनुष्योंके चित्तको हरण करनेवाली इस प्रकारकी क्रियाओंके समूहसे राम उस तरह क्षोभको प्राप्त नहीं हुए जिस प्रकार कि वायुसे मेरुपर्वत क्षोभको प्राप्त नहीं होता है ॥६०॥ उनकी दृष्टि अत्यन्त सरल थी, आत्मा अत्यन्त शुद्ध थी और वे स्वयं परीषहोंके समूहको नष्ट करनेके लिए वज्र स्वरूप थे, इस तरह वे सुप्रभके समान शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेमें प्रविष्ट हुए ॥६१॥ उनका हृदय सत्त्व गुणसे सहित था, अत्यन्त निर्मल था, तथा इन्द्रियोंके समूहके साथ आत्माके ही चिन्तनमें लग रहा था ॥६२॥ बाह्य मनुष्य इच्छानुसार अनेक प्रकारकी क्रियाएँ करें परन्तु परमार्थके विद्वान् मनुष्य आत्मकल्याणसे च्युत नहीं होते ॥६३॥ ध्यानमें विघ्न डालनेकी लालसासे युक्त सीतेन्द्र, जिस समय सर्व प्रकारके प्रयत्नके साथ देवमायासे निर्मित चेष्टा कर रहा था उस समय अत्यन्त पवित्र मुनिराज अनादि कर्म समूहको जलानेके लिए उद्यत थे ॥६४-६५॥ दृढ़ निश्चयके धारक पुरुषोत्तम, कर्मोंकी साठ प्रकृतियाँ नष्टकर उत्तरवर्ती क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ हुए ॥६६॥ माघ शुक्ल द्वादशीके दिन रात्रिके पिछले पहरमें उन महात्माको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६७॥ सर्वदर्शी केवलज्ञान रूपी नेत्रके उत्पन्न होनेपर उन प्रभुके लिए लोक अलोक दोनों ही गोष्पदके समान तुच्छ हो गये ॥६८॥

तदनन्तर सिंहासनके कम्पित होनेसे जिन्होंने अवधिज्ञानरूपी नेत्रका प्रयोग किया था ऐसे सब इन्द्र संभ्रम के साथ प्रणाम करते हुए चले ॥६९॥ तदनन्तर जो देवोंके महा समूहके बीच वर्तमान थे, श्रद्धासे युक्त थे और केवलज्ञानकी उत्पत्तिकी पूजा करनेके लिए

---

१. धवलं ध्यानप्रथमं म० । २. बाह्यक्रिया । ३. सर्वद्रव्य-म० ।

दृष्ट्वा रामं समासीनं घातिकर्मविनाशनम् । प्रणेमुर्भक्तिसम्पन्नाश्चारणर्षिसुरासुराः ॥७१॥
तस्य जातात्मरूपस्य वन्द्यस्य भुवनेश्वरैः । जातं समवसरणं समग्रं परमेष्ठिनः ॥७२॥
ततः स्वयम्प्रभाभिख्यः सीतेन्द्रः केवलार्चनम् । कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मुनिमक्षमयन्मुहुः ॥७३॥
क्षमस्व भगवन् दोषं कृतं दुर्बुद्धिना मया । प्रसीद कर्मणामन्तं यच्छ मह्यमपि द्रुतम् ॥७४॥

आर्यागीतिः

एवमनन्तश्रीद्युति-कान्तियुतो नूनमनार्तमूर्तिर्भगवान् ।
कैवल्यसुखसमृद्धिं बलदेवोऽवाप्तवाञ्जिनोत्तमभक्त्या ॥७५॥
पूजामहिमानमरं कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य भक्त्या परया ।
प्रविहरति श्रमणरवौ जग्मुर्देवा यथाक्रमं प्रमदयुताः ॥७६॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मस्य केवलोत्पत्त्यभिधानं नाम
द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व ॥१२२॥

उद्यत थे ऐसे सब इन्द्र बड़े वैभवके साथ वहाँ आ पहुँचे ॥७०॥ घातिया कर्मोंका नाश करने वाले सिंहासनासीन रामके दर्शन कर चारणऋद्धिधारी मुनिराज तथा समस्त सुर और असुरोंने उन्हें प्रणाम किया ॥७१॥ जिन्हें आत्मरूपकी प्राप्ति हुई थी, तथा जो संसारके समस्त इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय थे ऐसे परमेष्ठी पदको प्राप्त श्री रामके सम्पूर्ण समवसरणकी रचना हुई ॥७२॥ तदनन्तर स्वयंप्रभ नामक सीतेन्द्रने केवलज्ञानकी पूजा कर मुनिराजको प्रदक्षिणा दी और बार-बार क्षमा कराई ॥७३॥ उसने कहा कि हे भगवन्! मुझ दुर्बुद्धिके द्वारा किया हुआ दोष क्षमा कीजिए, प्रसन्न हूजिए और मेरे लिए भी शीघ्र ही कर्मोंका अन्त प्रदान कीजिए अर्थात् मेरे कर्मोंका क्षय कीजिए ॥७४॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार अनन्त लक्ष्मी द्युति और कान्तिसे सहित तथा प्रसन्न मुद्राके धारक भगवान् बलदेवने श्री जिनेन्द्रदेवकी उत्तम भक्तिसे केवलज्ञान तथा अनन्त सुख रूपी समृद्धिको प्राप्त किया ॥७५॥ मुनियोंमें सूर्यके समान तेजस्वी श्री राम मुनि जब विहार करनेको उद्यत हुए तब हर्षसे भरे देव शीघ्र ही भक्तिपूर्वक पूजाकी महिमा, स्तुति तथा प्रणाम कर यथाक्रमसे अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥७६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराणमें श्री राममुनिको केवलज्ञान उत्पन्न होनेका वर्णन करनेवाला एकसौ बाईसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१२२॥

त्रयोविंशोत्तरशतं पर्व

अथ संस्मृत्य सीतेन्द्रो लक्ष्मीधरगुणार्णवम् । प्रतिबोधयितुं वाञ्छन् प्रतस्थे [1]वालुकाप्रभाम् ॥१॥
मानुषोत्तरमुल्लङ्घ्य गिरिं मर्त्यसुदुर्गमम् । रत्नप्रभामतिक्रम्य [2]शर्करां चापि मेदिनीम् ॥२॥
प्राप्तो ददर्श बीभत्सां कृच्छ्रातिशयदुःसहाम् । पापकर्मसमुद्भूतामवस्थां नरकाश्रिताम् ॥३॥
असुरत्वं गतो योऽसौ शम्बूको लक्ष्मणा हतः । व्याधदारकवत् सोऽत्र हिंसाक्रीडनमाश्रितः ॥४॥
आतृणेद् कांश्चिदुद्बाध्य कांश्चिद्भृत्यैरघातयत् । नारकानावृतान् कांश्चित्परस्परमयूयुधत् ॥५॥
केचिद् [3]बध्वाग्निकुण्डेषु क्षिप्यन्ते विकृतस्वराः । शाल्मलीषु नियुज्यन्ते केचित् प्रत्यङ्गकण्टकम् ॥६॥
ताड्यन्तेऽयोमयैः केचिन्मुसलैरभितः स्थितैः । स्वमांसरुधिरं केचित्खाद्यन्ते निर्दयैः सुरैः ॥७॥
गाढप्रहारनिर्भिन्नाः कृतभूतललोठनाः । श्वमार्जारहरिव्याघ्रैर्भक्ष्यन्ते पक्षिभिस्तथा ॥८॥
केचिच्छूलेषु भिद्यन्ते ताड्यन्ते घनमुद्गरैः । कुम्भ्यामन्ये निधीयन्ते ताम्रादिकलिलाम्भसि ॥९॥
करपत्रैर्विदार्यन्ते बद्ध्वा दारुषु निश्चलाः । केचित्कैश्चिच्च पाय्यन्ते ताम्रादिकलिलं बलात् ॥१०॥
केचिद्यन्त्रेषु पीड्यन्ते हन्यन्ते सायकैः परे । दन्ताक्षिरसनादीनां प्राप्नुवन्त्युद्धृतिं परे ॥११॥
एवमादीनि दुःखानि विलोक्य नरकाश्रिताम् । उत्पन्नपुरुकारुण्यः सोऽभूदमरपुङ्गवः ॥१२॥

अथानन्तर सीतेन्द्र, लक्ष्मणके गुणरूपी सागरका स्मरणकर उसे संबोधनेकी इच्छा करता हुआ बालुकाप्रभाकी ओर चला ॥१॥ मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुर्गम मानुषोत्तर पर्वतको लाँघकर तथा क्रमसे नीचे रत्नप्रभा और शर्कराप्रभाकी भूमिको भी उल्लंघनकर वह तीसरी बालुकाप्रभा भूमिमें पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने नारकियोंकी अत्यन्त घृणित कष्टकी अधिकतासे दुःसह एवं पाप कर्मसे उत्पन्न अवस्था देखी ॥२-३॥ लक्ष्मणके द्वारा मारा गया जो शम्बूक असुरकुमार हुआ था वह शिकारीके पुत्रके समान इस भूमिमें हिंसापूर्ण क्रीड़ा कर रहा था ॥४॥ वह कितने ही नारकियोंको ऊपर बाँधकर स्वयं मारता था, कितनों ही को सेवकोंसे मरवाता था और घिरे हुए कितने ही नारकियोंको परस्पर लड़ाता था ॥५॥ विरूप शब्द करने वाले कितने ही नारकी बाँधकर अग्निकुण्डोंमें फेंके जाते थे, और कितने ही जिनके अङ्ग-अङ्गमें काँटा लग रहे थे ऐसे सेमरके वृक्षोंपर चढ़ाये-उतारे जाते थे ॥६॥ कितने ही सब ओर खड़े हुए नारकियोंके द्वारा लोह-निर्मित मूसलोंसे कूटे जाते थे और कितने ही को निर्दय देवोंके द्वारा अपना मांस तथा रुधिर खिलाया जाता था ॥७॥ गाढ़ प्रहारसे खण्डित हो पृथिवी-तलपर लोटने वाले नारकी कुत्ते, बिलाव, सिंह, व्याघ्र तथा अनेक पक्षियोंके द्वारा खाये जा रहे थे ॥८॥ कितने ही शूलीपर चढ़ा कर भेदे जाते थे, कितने ही घनों और मुद्गरोंसे पीटे जाते थे, कितने ही ताँबाँ आदिके स्वरस रूपी जलसे भरी कुम्भियोंमें डाले जाते थे ॥९॥ लकड़ियाँ बाँध देनेसे निश्चल खड़े हुए कितने नारकी करोंतोंसे बिदारे जाते थे, और कितने ही नारकियोंको जबरदस्ती ताम्र आदि धातुओंका पिघला द्रव पिलाया जाता था ॥१०॥ कितने ही कोल्हुओंमें पेले जाते थे, कितने ही बाणोंसे छेदे जाते थे, और कितने ही दाँत, नेत्र तथा जिह्वाके उपाड़ने-का दुःख प्राप्त कर रहे थे ॥११॥ इस प्रकार नारकियोंके दुःख देखकर सीतेन्द्रको बहुत भारी दया उत्पन्न हुई ॥१२॥

---

१. शर्कराप्रभां म०, ज० । २. वालुकां म०, ज०, ख० । ३. वधाग्निकुण्डेषु म० ।

अग्निकुण्डाद् विनिर्यातमथालोकत लक्ष्मणम् । बहुधा नारकैरन्यैरर्द्यमानं समन्ततः ॥१३॥
सीदन्तं विकृतग्राहे भीमे वैतरणीजले । छिद्यमानं च कनकैरसिपत्रवनान्तरे ॥१४॥
वधाय चोद्यतं तस्य बाधमानं भयानकम् । क्रुद्धं बृहद्गदापाणिं हन्यमानं तथा परैः ॥१५॥
[1]प्रचोद्यमानं घोराक्षं [2]स्रवद्देहं बृहन्मुखम् । तेन देवकुमारेण शम्बूकेन दशाननम् ॥१६॥
अत्रान्तरे महातेजाः सीतेन्द्रः सन्निधिं गतः । तर्जयन् तत्र तीव्रं तं गणं भवनवासिनाम् ॥१७॥
अरे ! रे ! पाप शम्बूक प्रारब्धं किमिदं त्वया । कथमद्यापि ते नास्ति शमो निर्घृणचेतसः ॥१८॥
मुञ्च क्रूराणि कर्माणि भव स्वस्थः सुराधम । किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ॥१९॥
श्रुत्वेदं नारकं दुःखं जन्तोर्भयमुदीर्यते । प्रत्यक्षं किं पुनः कृत्वा त्रासस्तव न जायते ॥२०॥
शम्बूके प्रशमं प्राप्ते ततोऽसौ विबुधेश्वरः । प्रबोधयितुमुद्युक्तो यावत्तावदमी द्रुतम् ॥२१॥
अतिदारुणकर्माणश्चञ्चला दुर्ग्रहचेतसः । देवप्रभाभिभूताश्च नारकाः परिदुद्रुवुः ॥२२॥
रुरुदुश्चापरे दीना धाराश्रुगलिताननाः । धावन्तः पतिताः केचिद्गर्तेषु विषमेष्वलम् ॥२३॥
मा मा नश्यत सन्त्रस्ता निवर्तध्वं सुदुःखिताः । न भेतव्यं न भेतव्यं नारका भवत स्थिताः ॥२४॥
एवमुक्ताः सुरेन्द्रेण समाश्वासनचेतसा । प्राविशन्नन्धतमसं वेपमानाः समन्ततः ॥२५॥
भण्यमानास्ततो भूयः शक्रेणैषन्भयोज्झिताः । इत्युक्तास्ते ततः कृच्छ्रादवधानमुपागताः ॥२६॥

तदनन्तर उसने अग्निकुण्डसे निकले और अन्य अनेक नारकियोंके द्वारा सब ओरसे घेरकर नाना तरहसे दुःखी किये जानेवाले लक्ष्मणको देखा ॥१३॥ वहीं उसने देखा कि लक्ष्मण विक्रिया कृत मगर-मच्छोंसे व्याप्त वैतरणीके भयंकर जलमें छटपटा रहा है और असिपत्र वनमें शस्त्राकार पत्रोंसे छेदा जा रहा है ॥१४॥ उसने यह भी देखा कि लक्ष्मणको मारनेके लिए बाधा पहुँचाने वाला एक भयंकर नारकी कुपित हो हाथमें बड़ी भारी गदा लेकर उद्यत होरहा है तथा उसे दूसरे नारकी मार रहे हैं ॥१५॥ सीतेन्द्रने वहीं उस रावणको देखा कि जिसके नेत्र अत्यन्त भयंकर थे, जिसके शरीरसे मल-मूत्र झड़ रहे थे, जिसका मुख बहुत बड़ा था और शम्बूकका जीव असुरकुमार देव जिसे लक्ष्मणके विरुद्ध प्रेरणा दे रहा था ॥१६॥

तदनन्तर इसी बीचमें महातेजस्वी सीतेन्द्र, भवनवासियोंके उस दुष्ट समूहको डाँटे दिखाता हुआ पासमें पहुँचा ॥१७॥ उसने कहा कि अरे ! रे ! पापी शम्बूक ! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? तुझ निर्दयचित्तको क्या अब भी शान्ति नहीं है ? ॥१८॥ हे अधमदेव ! क्रूर कार्य छोड़, मध्यस्थ हो, अत्यन्त अनर्थके कारणभूत इस अभिमानसे क्या प्रयोजन सिद्ध होना है ? ॥१९॥ नरकके इस दुःखको सुनकर ही प्राणीको भय उत्पन्न हो जाता है, फिर तुझे प्रत्यक्ष देखकर भी भय क्यों नहीं उत्पन्न होता है ? ॥२०॥ तदनन्तर शम्बूकके शान्त हो जानेपर ज्योंही सीतेन्द्र संबोधनेके लिए तैयार हुआ त्योंही अत्यन्त क्रूर काम करनेवाले, चञ्चल एवं दुर्ग्रह चित्तके धारक वे नारकी देवकी प्रभासे तिरस्कृत हो शीघ्र ही इधर-उधर भाग गये ॥२१–२२॥ कितने ही दीन-हीन नारकी, धाराबद्ध पड़ते हुए आँसुओंसे मुखको गीला करते हुए रोने लगे, कितने ही दौड़ते-ही-दौड़ते अत्यन्त विषम गर्तोंमें गिर गये ॥२३ ॥ तब सान्त्वना देते हुए सीतेन्द्रने कहा कि 'अहो नारकियो ! भागो मत, भय-भीत मत होओ, तुम लोग बहुत दुःखी हो, लौटकर आओ, भय मत करो, भय मत करो, खड़े रहो' इस प्रकार कहनेपर भी वे भयसे काँपते हुए गाढ़ अन्धकारमें प्रविष्ट हो गये ॥२४–२५॥ तदनन्तर यही बात जब सीतेन्द्रने फिरसे कही तब कहीं उनका कुछ-कुछ भय कम हुआ और बड़ी

---

१. प्रबोध्यमानं ख०, ब० । २. घोराक्षस्रवद्देहं म० ।

महामोहहृतात्मानः कथं नरकसम्भवाः । एतयाऽवस्थया युक्ता न जानीथाऽऽत्मनो हितम् ॥२७॥
अदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विनः । रौद्रध्यानपराः प्राप्ता नरकस्थं प्रतिद्विषः ॥२८॥
भोगाधिकारसंसक्तास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिताः । विकर्मनिरता नित्यं सम्प्राप्ता दुःखमीदृशम् ॥२९॥
रमणीये विमानाग्रे ततो वीक्ष्य सुरोत्तमम् । सौमित्रिरावणौ पूर्वमप्राष्टां को भवानिति ॥३०॥
स तयोः सकलं वृत्तं पद्मामस्य तथाऽऽत्मनः । कर्मान्वितमभाषिष्ट विचित्रमिति सम्भवम् ॥३१॥
ततः श्रुत्वा स्ववृत्तान्तं प्रतिबोधमुपागतौ । उपशान्तात्मकौ दीनमेवं शुशुचतुस्तकौ ॥३२॥
धृतिः किं न कृता धर्मे तदा मानुषजन्मनि । अवस्थामिमकां येन प्राप्ताः स्मः पापकर्मभिः ॥३३॥
हा ! हा ! किं कृतमस्माभिरात्मदुःखपरं परम् । अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वार्थादपि हीयते ॥३४॥
त्वमेव धन्यो देवेन्द्र यस्त्यक्त्वा विषयस्पृहाम् । जिनवाक्यामृतं पीत्वा सम्प्राप्तोऽस्यमरेशताम् ॥३५॥
ततोऽसौ पुरुकारुण्यो मा भैष्टेति बहुस्वनम् । एतैत नरकान्नाकं नये युष्मानितीरयन् ॥३६॥
ततः परिकरं बध्वा ग्रहीतुं स्वयमुद्यतः । दुर्ग्रहास्तु विलीयन्ते तेऽग्निना नवनीतवत् ॥३७॥
सर्वोपायैरपीन्द्रेण ग्रहीतुं स्पष्टमेव च । न शक्यास्ते यथा भावाश्छायया दर्पणे स्थिताः ॥३८॥
ततस्तेऽत्यन्तदुःखार्त्ता जगदुर्देवमानिनः । पुराकृतानि कर्माणि तानि भोग्यान्यसंशयम् ॥३९॥

कठिनाईसे वे चित्तकी स्थिरताको प्राप्त हुए ॥२६॥ शान्त वातावरण होनेपर सीतेन्द्रने कहा कि महामोहसे जिनकी आत्मा हरी गई है ऐसे हे नारकियो ! तुम लोग इस दशासे युक्त होकर भी आत्माका हित नहीं जानते हो ? ॥२७॥ जिन्होंने लोकका अन्त नहीं देखा है, जो हिंसा, झूठ और परधनके हरणमें तत्पर हैं, रौद्रध्यानी हैं तथा नरकमें स्थित रहनेवालेके प्रति जिनकी द्वेष-बुद्धि है ऐसे लोग ही नरकमें आते हैं ॥२८॥ जो भोगोंके अधिकारमें संलग्न हैं, तीव्र क्रोधादि कषायोंसे अनुरञ्जित हैं और निरन्तर विरुद्ध कार्य करनेमें तत्पर रहते हैं ऐसे लोग ही इस प्रकारके दुःखको प्राप्त होते हैं ॥२९॥

अथानन्तर सुन्दर विमानके अग्रभागपर स्थित सुरेन्द्रको देखकर लक्ष्मण और रावणके जीवने सबसे पहले पूछा कि आप कौन हैं ? ॥३०॥ तब सुरेन्द्रने उनके लिए श्रीरामका तथा अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और साथ ही यह भी कहा कि कर्मानुसार यह सब विचित्र कार्य संभव हो जाते हैं ॥३१॥ तदनन्तर अपना वृत्तान्त सुनकर जो प्रतिबोधको प्राप्त हुए थे तथा जिनकी आत्मा शान्त हो गई थी ऐसे वे दोनों दीनता पूर्वक इस प्रकार शोक करने लगे ॥३२॥ कि अहो ! हम लोगोंने उस समय मनुष्य जन्ममें धर्ममें रुचि क्यों नहीं की ? जिससे पाप-कर्मोंके कारण इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ॥३३॥ हाय हाय, आत्माको दुःख देनेवाला यह क्या विकट कार्य हम लोगोंने कर डाला ? अहो ! यह सब मोहकी महिमा है कि जिसके कारण जीव आत्महितसे भ्रष्ट हो जाता है ॥३४॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हीं धन्य हो, जो विषयोंकी इच्छा छोड़ तथा जिन वाणीरूपी अमृतका पानकर देवोंकी ईशताको प्राप्त हुए हो ॥३५॥

तदनन्तर अत्यधिक करुणाको धारण करनेवाले देवेन्द्रने कई बार कहा कि 'डरो मत, डरो मत, आओ, आओ, मैं तुम लोगोंको नरकसे निकालकर स्वर्ग लिये चलता हूँ' ॥३६॥ तत्पश्चात् वह सुरेन्द्र कमर कसकर उन्हें स्वयं ले जानेके लिए उद्यत हुआ परन्तु वे पकड़नेमें न आये। जिस प्रकार अग्निमें तपानेसे नवनीत पिघलकर रह जाता है उसी प्रकार वे नारकी भी पिघलकर वहीं रह गये ॥३७॥ इन्द्रने उन्हें उठानेके लिए सभी प्रयत्न किये पर वे उठाये नहीं जा सके। जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्बित ग्रहणमें नहीं आते उसी प्रकार वे भी ग्रहणमें नहीं आ सके ॥३८॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखी होते हुए उन नारकियोंने कहा कि हे देव ! हम लोगोंके जो पूर्वोपार्जित कर्म हैं, वे निःसन्देह भोगनेके योग्य नहीं

विषयामिषलुब्धानां प्राप्तानां नरकासुखम्[1] । स्वकृतप्राप्तिवश्यानां किंकरिष्यन्ति देवताः ॥४०॥
एतत्स्वोपचितं कर्म भोक्तव्यं यन्नियोगतः । तदस्माकं न शक्नोषि दुःखान्मोचयितुं सुर ॥४१॥
परित्रायस्व सीतेन्द्र नरकं येन हेतुना । प्राप्स्यामो न पुनर्न हि त्वमस्माकं दयापरः ॥४२॥
देवो जगाद परमं शाश्वतं शिवमुत्तमम् । रहस्यमिव मूढानां प्रख्यातं भुवनत्रये ॥४३॥
कर्मप्रमथनं शुद्धं पवित्रं परमार्थदम् । अप्राप्तपूर्वमाप्तं वा दुर्गृहीतं प्रमादिनाम् ॥४४॥
दुर्विज्ञेयमभव्यानां बृहद्भवभयानकम् । कल्याणं दुर्लभं सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम् ॥४५॥
यदीच्छतात्मनः श्रेयस्तत एवं गतेऽपि हि । सम्यक्त्वं प्रतिपद्यस्व काले बोधिप्रदं शुभम् ॥४६॥
इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति न भूतं न भविष्यति । इह सेत्स्यन्ति सिद्ध्यन्ति सिषिधुश्च महर्षयः ॥४७॥
अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमैः । तथैवेति दृढं भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते[2] ॥४८॥
नयद्भिस्त्यादिभिर्वाक्यैः सम्यक्त्वं नरके स्थितम् । सुरेन्द्रः शोचितुं लग्नस्तथाप्युत्तमभोगभाक् ॥४९॥
तन्नवं कान्तिलावण्यशरीरमतिसुन्दरम् । निर्दग्धं कर्मणा पश्य नवोद्यानमिवाग्निना ॥५०॥
अविस्मीयत यां दृष्ट्वा भुवनं सकलं तदा । द्युतिः सा क्व गतोदात्ता चारुक्रीडितसंयुता ॥५१॥
कर्मभूमौ सुखास्वादस्य यस्य क्षुद्रस्य कारणे । ईदृग्दुःखार्णवे मग्ना भवन्तो दुरितक्रियाः ॥५२॥
इत्युक्तैः प्रतिपन्नं तैः सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । अनादिभवसंक्लिष्टैर्यन्न प्राप्तं कदाचन ॥५३॥

हैं ॥३९॥ जो विषयरूपी आमिषके लोभी होकर नरकके दुःखको प्राप्त हुए हैं तथा जो अपने द्वारा किये हुए कर्मोंके पराधीन हैं उनका देव लोग क्या कर सकते हैं ? ॥४०॥ यतश्च अपने द्वारा किया हुआ कर्म नियमसे भोगना पड़ता है इसलिए हे देव ! तुम हम लोगोंको दुःखसे छुड़ानेमें समर्थ नहीं हो ॥४१॥ हे सीतेन्द्र ! हमारी रक्षा करो, अब हम जिस कारण फिर नरकको प्राप्त न हों कृपाकर वह बात तुम हमें बताओ ॥४२॥

तदनन्तर देवने कहा कि जो उत्कृष्ट है, नित्य है, आनन्द रूप है, उत्तम है, मूढ़ मनुष्योंके लिए मानो रहस्यपूर्ण है, जगत्त्रयमें प्रसिद्ध है, कर्मोंको नष्ट करनेवाला है, शुद्ध है, पवित्र है, परमार्थको देनेवाला है, जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है और यदि प्राप्त हुआ भी है तो प्रमादी मनुष्य जिसकी सुरक्षा नहीं रख सके हैं, जो अभव्य जीवोंके लिए अज्ञेय है और दीर्घ संसारको भय उत्पन्न करनेवाला है, ऐसा सबल एवं दुर्लभ सम्यग्दर्शन ही आत्माका सबसे बड़ा कल्याण है ॥४३-४५॥ यदि आप लोग अपना भला चाहते हैं तो इस दशामें स्थित होनेपर भी सम्यक्त्व को प्राप्त करो । यह सम्यक्त्व समयपर बोधिको प्रदान करनेवाला एवं शुभरूप है ॥४६॥ इससे बढ़कर दूसरा कल्याण न है, न था, न होगा । इसके रहते ही महर्षि सिद्ध होंगे, अभी हो रहे हैं और पहले भी हुए थे ॥४७॥ महा उत्तम अरहन्त जिनेन्द्र भगवान्‌ने जीवादि पदार्थोंका जैसा निरूपण किया है वह वैसा ही है । इस प्रकार भक्तिपूर्वक दृढ़ श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है ॥४८॥ इत्यादि वचनोंके द्वारा नरकमें स्थित उन लोगोंको यद्यपि सीतेन्द्रने सम्यग्दर्शन प्राप्त करा दिया था तथापि उत्तम भोगोंका अनुभव करनेवाला वह सीतेन्द्र उनके प्रति शोक करनेमें लीन था ॥४९॥ उसकी आँखोंमें उनका पूर्वभव झूल गया और उसे ऐसा लगने लगा कि देखो, जिस प्रकार अग्निके द्वारा नवीन उद्यान जल जाता है उसी प्रकार इनका कान्ति और लावण्य पूर्ण सुन्दर शरीर कर्मके द्वारा जल गया है ॥५०॥ जिसे देख उस समय सारा संसार आश्चर्यमें पड़ जाता था । इनकी वह उदात्त तथा सुन्दर क्रीड़ाओंसे युक्त कान्ति कहाँ गई ? ॥५१॥ वह उनसे कहने लगा कि देखो कर्मभूमिके उस क्षुद्र सुखके कारण आप लोग पापकर इस दुःखके सागरमें निमग्न हुए हैं ॥५२॥ इस प्रकार सीतेन्द्रके कहनेपर अनादि भवोंमें क्लेश उठानेवाले

१. नरकासुखम् म० । २. -मिष्यतः ब०, ज०, क० । -मिष्यत ख० ।

एतस्मिन्नन्तरे दुःखमनुभूय निकाचितम् । उद्गत्य प्राप्य मानुष्यमुपेमः शरणं जिनम् ॥५४॥
अहोऽतिपरमं देव त्वयाऽस्मभ्यं हितं कृतम् । यत्सम्यग्दर्शने रम्ये समेत्य विनियोजिताः ॥५५॥
हे सीतेन्द्र महाभाग ! गच्छ गच्छारणाच्युतम् । शुद्धधर्मफलं स्फीतमनुभूय शिवं भज ॥५६॥
एवमुक्तः सुरेन्द्रोऽसौ शोकहेतुविवर्जितः । तथापि परमर्द्धिश्च सः शोचत्यान्तरात्मना ॥५७॥
दत्त्वा तेषां समाधानं पुनर्बोधिप्रदं शुभम् । महासुकृतभाग्धीरः समारोहन्निजास्पदम् ॥५८॥
शङ्कितात्मा च संवृत्तश्चतुःशरणतत्परः । बहुशश्च करोति स्म पद्ममेरुप्रदक्षिणम् ॥५९॥
तद्वीक्ष्य नारकं दुःखं स्मृत्वा च विबुधोत्तमः । वेपितात्मा विमानेऽपि ध्वनिमालब्ध तं सुधीः ॥६०॥
प्रकम्पमानहृदयः श्रीमच्चन्द्रनिभाननः । उद्युक्तो भरतक्षेत्रे भूयोऽवसरितुं सुधीः ॥६१॥
सम्पतद्भिर्विमानौघैः समीरसमवर्त्तिभिः । तुरङ्गमहरिद्वीपमतङ्गजघटाकुलैः ॥६२॥
नानावर्णाम्बरधरैर्हरिजक्मुकुटोज्ज्वलैः । विचित्रवाहनारूढैर्ध्वजच्छत्रातिशोभितैः ॥६३॥
शतघ्नीशक्तिचक्रासिधनुःकुन्तगदाधरैः । व्रजद्भिः सर्वतः कान्तैरमरैः साप्सरोगणैः ॥६४॥
मृदङ्गदुन्दुभिस्वानैर्वेणुवीणास्वनान्वितैः । जयनन्दरवोन्मिश्रैरापूर्यत तदा नभः ॥६५॥
जगाम शरणं पद्मं सीतेन्द्रः परमोदयः । कृताञ्जलिपुटो भक्त्या प्रणनाम पुनः पुनः ॥६६॥
एवं च स्तवनं कर्तुमारेभे विनयान्वितः । संसारतारणोपायप्रतिपत्तिदृढाशयः ॥६७॥

उन लोगोंने वह उत्तम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया जो कि उन्हें पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था ॥५३॥ उन्होंने कहा कि इस बीचमें जिसका छूटना अशक्य है ऐसे इस दुःखको भोगकर जब यहाँ से निकलेंगे तब मनुष्य भव धारणकर श्री जिनेन्द्र देवकी शरण रहेंगे ॥५४॥ अहो देव ! तुमने हम सबका बड़ा हित किया जो यहाँ आकर उत्तम सम्यग्दर्शनमें लगाया है ॥५५॥ हे महाभाग ! सीतेन्द्र ! जाओ जाओ अपने आरणाच्युत कल्पको जाओ और शुद्ध धर्मका विशाल फल भोगकर मोक्षको प्राप्त होओ ॥५६॥ इस प्रकार उन सबके कहनेपर यद्यपि वह सीतेन्द्र शोकके कारणोंसे रहित हो गया था तथापि परम ऋद्धिको धारण करनेवाला वह मन ही मन शोक करता जाता था ॥५७॥ तदनन्तर महान् पुण्यको धारण करनेवाला वह धीर-वीर सुरेन्द्र, उन सबके लिए बोधि दायक शुभ उपदेश देकर अपने स्थानपर आरूढ हो गया ॥५८॥

नरकसे निकलकर जिसकी आत्मा अत्यन्त भयभीत हो रही थी ऐसा वह सीतेन्द्र मन ही मन अरहन्त सिद्ध साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारकी शरणको प्राप्त हुआ और अनेकों बार उसने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाएँ दीं ॥५९॥ नरकगतिके उस दुःखको देखकर, स्मरणकर, तथा वहाँके शब्दका ध्यानकर वह सुरेन्द्र विमानमें भी काँप उठता था ॥६०॥ जिसका हृदय काँप रहा था तथा जिसका मुख शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान था, ऐसा वह बुद्धिमान् सुरेन्द्र फिरसे भरत क्षेत्रमें उतरनेके लिए उद्यत हुआ ॥६१॥ उस समय वायुके समान वेगशाली घोड़े, सिंह तथा मदोन्मत्त हाथियोंके समूहसे युक्त, चलते हुए विमानोंसे और नाना रंगके वस्त्रोंको धारण करने वाले, वानर तथा माला आदिके चिह्नोंसे युक्त मुकुटोंसे उज्ज्वल, नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़, पताका तथा छत्र आदिसे शोभित शतघ्नी, शक्ति, चक्र, असि, धनुष, कुन्त और गदाको धारण करने वाले, सब ओर गमन करते हुए, अप्सराओंके समूहसे सहित सुन्दर देवोंसे और बाँसुरी तथा वीणाके शब्दोंसे सहित तथा जय जयकार, नन्द, वर्धस्व आदि शब्दोंसे मिश्रित मृदङ्ग और दुन्दुभि के नादसे आकाश भर गया था ॥६२-६५॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला सीतेन्द्र श्री राम केवलीकी शरणमें गया। वहाँ जाकर उसने हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम किया ॥६६॥ तदनन्तर संसार-सागर-से पार होनेके उपाय जाननेके लिए जिसका अभिप्राय दृढ़ था ऐसे उस विनयी सीतेन्द्रने श्री राम

ध्यानमारुतयुक्तेन तपःसंधुक्षितात्मना । त्वया जन्माटवी दग्धा दीप्तेन ज्ञानवह्निना ॥६८॥
शुद्धलेश्यात्रिशूलेन मोहनीयरिपुर्हतः । [1]दृढवैराग्यवज्रेण चूर्णितं स्नेहपञ्जरम् ॥६९॥
संशये वर्तमानस्य [2]भवारण्यविवर्तिनः । शरणं [3]भव मे नाथ मुनीन्द्र भवसूदन ॥७०॥
लब्धलब्धव्य ! सर्वज्ञ ! कृतकृत्य ! जगद्गुरो । परित्रायस्व पद्माभ मामत्याकुलमानसम् ॥७१॥
मुनिसुव्रतनाथस्य सम्यगासेव्य शासनम् । संसारसागरस्य त्वं गतोऽन्तं तपसोरुणा ॥७२॥
राम युक्तं किमेतत्ते यदत्यन्तं विहाय माम् । एकेन गम्यते तुङ्गममलं पदमच्युतम् ॥७३॥
ततो मुनीश्वरोऽवोचन्मुञ्च रागं सुराधिप । मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम् ॥७४॥
अवलम्ब्य शिला कण्ठे दोर्भ्यां तर्तुं न शक्यते । नदी तद्वत्त रागाद्यैस्तरितुं संसृतिः क्षमा ॥७५॥
ज्ञानशीलगुणासङ्गैस्तीर्यते भवसागरः । ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्तिना ॥७६॥
आदिमध्यावसानेषु वेदितव्यमिदं बुधैः । सर्वेषां [4]यन्महातेजाः केवली ग्रसते गुणान् ॥७७॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि यथान्यत्कारणं नृप । सीतादेवो यदप्राक्षीद् बभाषे यच्च केवली ॥७८॥
क्वैते नाथ समस्तज्ञ भव्या दशरथादयः । लवणाङ्कुशयोः का वा दृष्टा नाथ त्वया गतिः ॥७९॥
सोऽवोचदानते कल्पे देवो दशरथोऽभवत् । केकया केकयी[5] चैव सुप्रजाश्चापराजिता ॥८०॥

केवलीकी इस तरह स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥६७॥ वह कहने लगा कि हे भगवन् ! आपने ध्यानरूपी वायुसे युक्त तथा तपके द्वारा की हुई देदीप्यमान ज्ञानरूपी अग्निसे संसाररूपी अटवीको दग्ध कर दिया है ॥६८॥ आपने शुद्ध लेश्यारूपी त्रिशूलके द्वारा मोहनीय कर्मरूपी शत्रुका घात किया है, और दृढ़ वैराग्यरूपी वज्रके द्वारा स्नेहरूपी पिंजड़ा चूर-चूर कर दिया है ॥६९॥ हे नाथ ! मैं सँसाररूपी अटवीके बीच पड़ा जीवन-मरणके संशयमें झूल रहा हूँ अतः हे मुनीन्द्र ! हे भवसूदन ! मेरे लिए शरण हूजिए ॥७०॥ हे राम ! आप प्राप्त करने योग्य सब पदार्थ प्राप्त कर चुके हैं, सब पदार्थोंके ज्ञाता हैं, कृतकृत्य हैं, और जगत्के गुरु हैं अतः मेरी रक्षा कीजिए, मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है ॥७१॥ श्री मुनिसुव्रतनाथके शासनकी अच्छी तरह सेवाकर आप विशाल तपके द्वारा संसार-सागरके अन्तको प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ हे राम ! क्या यह तुम्हें उचित है जो तुम मुझे बिलकुल छोड़ अकेले ही उन्नत निर्मल और अविनाशी पदको जा रहे हो ॥७३॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे सुरेन्द्र ! राग छोड़ो क्योंकि वैराग्यमें आरूढ मनुष्यकी मुक्ति होती है और रागी मनुष्यका संसारमें डूबना होता है ॥७४॥ जिस प्रकार कण्ठमें शिला बाँधकर भुजाओंसे नदी नहीं तैरी जा सकती उसी प्रकार रागादिसे संसार नहीं तिरा जा सकता ॥७५॥ जिसका चित्त निरन्तर ज्ञानमें लीन रहता है तथा जो गुरुजनोंके कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है ऐसा मनुष्य ही ज्ञानशील आदि गुणोंकी आसक्तिसे संसार-सागरको तैर सकता है ॥७६॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! विद्वानोंको यह समझ लेना चाहिए कि महाप्रतापी केवली आदि मध्य और अवसानमें अर्थात् प्रत्येक समय सब पदार्थोंके गुणोंको ग्रस्त करते हैं—जानते हैं ॥७७॥ हे राजन् ! अब इसके आगे सीतेन्द्रने जो पूछा और केवलीने जो उत्तर दिया वह सब कहूँगा ॥७८॥

सीतेन्द्रने केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! ये दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ हैं ? तथा लवण और अंकुशकी आपने कौन-सी गति देखी है ? अर्थात् ये कहाँ उत्पन्न होंगे ? ॥७९॥ तब केवलीने कहा कि राजा दशरथ आनत स्वर्गमें देव हुए हैं। इनके सिवाय सुमित्रा, कैकयी,

---

१. दृढं वैराग्य म० । २. भवाख्य म० । ३. भवने म० । ४. यान्महातेजाः म० । ५. कैकसी म० ।

जनकः कनकश्चैव सम्यग्दर्शनतत्पराः[1] । एते स्वशक्तियोगेन कर्मणा तुल्यभूतयः ॥८१॥
ज्ञानदर्शनतुल्यौ द्वौ श्रमणौ लवणाङ्कुशौ । विरजस्कौ महाभागौ यास्यतः पदमव्ययम् ॥८२॥
इत्युक्ते हर्षतोऽत्यन्तममरेन्द्रो महाद्युतिः । संस्मृत्य भ्रातरं स्नेहादपृच्छत्तस्य चेष्टितम् ॥८३॥
भ्राता तवापि इत्युक्ते सीतेन्द्रो दुःखितोऽभवत् । कृताञ्जलिपुटोऽपृच्छज्जातः क्वेति मुनीश्वर ॥८४॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचदच्युतेन्द्र मतं शृणु । चेष्टितेन गतो येन यत्पदं तव सोदरः ॥८५॥
अयोध्यायां कुलपतिर्बहुकोटिधनेश्वरः । मकरीदयिता कामभोगो वज्राङ्कसंज्ञकः ॥८६॥
अतिक्रान्तो बहुसुतैः पार्थिवोपमविभ्रमः । श्रुत्वा निर्वासितां सीतामिति चिन्तासमाश्रितः ॥८७॥
साऽत्यन्तसुकुमाराङ्गा गुणैर्दिव्यैरलङ्कृता । कान्नु प्राप्ता वनेऽवस्थामिति दुःखी ततोऽभवत् ॥८८॥
स्थिताद्रहृदयश्चासौ वैराग्यं परमाश्रितः । द्युतिसंज्ञमुनेः पार्श्वे निष्क्रान्तो द्विष्टसंसृतिः ॥८९॥
अशोकतिलकाभिख्यौ विनीतौ तस्य पुत्रकौ । निमित्तज्ञं द्युतिं प्रष्टुं पितरं जातुचिद्गतौ ॥९०॥
तत्रैव च तमालोक्य स्नेहाद् वैराग्यतोऽपि च । द्युतिमूले व्यतिक्रान्तावशोकतिलकावपि ॥९१॥
द्युतिः परं तपः कृत्वा प्राप्य संक्षयमायुषः । दत्त्वा सानुजनोत्कण्ठामूर्ध्वग्रैवेयकं गतः ॥९२॥
यथागुरुसमादिष्टं पिता-पुत्रौ त्रयस्तु ते । ताम्रचूडपुरं प्राप्तौ प्रस्थितौ वन्दितुं जिनम् ॥९३॥
पञ्चाशद्योजनं तत्र सिकतार्णवमीयुषाम् । अप्राप्तानां च तावन्तं घनकालः समागतः ॥९४॥

सुप्रजा (सुप्रभा) और अपराजिता (कौशल्या), जनक तथा कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि अपने-अपने सामर्थ्यके अनुसार बँधे हुए कर्मसे उसी आनत स्वर्गमें तुल्य विभूतिके धारक देव हैं ॥८०–८१॥ ज्ञान और दर्शनकी अपेक्षा समानता रखनेवाले लवण और अंकुश नामक दोनों महाभाग मुनि कर्मरूपी धूलिसे रहित हो अविनाशी पद प्राप्त करेंगे ॥८२॥ केवलीके इस प्रकार कहनेपर सीतेन्द्र हर्षसे अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ। तदनन्तर उसने स्नेह वश भाई—भामण्डलका स्मरणकर उसकी चेष्टा पूछी ॥८३॥ इसके उत्तरमें तुम्हारा भाई भी, इतना कहते ही सीतेन्द्र कुछ दुःखी हुआ। तदनन्तर उसने हाथ जोड़कर पूछा कि हे मुनिराज, वह कहाँ उत्पन्न हुआ है ? ॥८४॥ तदनन्तर पद्मनाभ (राम) ने कहा कि हे अच्युतेन्द्र ! तुम्हारा भाई जिस चेष्टासे जहाँ उत्पन्न हुआ है उसे कहता हूँ सो सुन ॥८५॥

अयोध्या नगरीमें अपने कुलका स्वामी अनेक करोड़का धनी, तथा मकरी नामक प्रियाके साथ कामभोग करनेवाला एक 'वज्राङ्क' नामका सेठ था ॥८६॥ उसके अनेक पुत्र थे तथा वह राजाके समान वैभवको धारण करनेवाला था। सीताको निर्वासित सुन वह इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ कि 'अत्यन्त सुकुमाराङ्गी तथा दिव्य गुणोंसे अलंकृत सीता वनमें किस अवस्थाको प्राप्त हुई होगी' ? इस चिन्तासे वह अत्यन्त दुःखी हुआ ॥८७–८८॥ तदनन्तर जिसके पास दयालु हृदय विद्यमान था, और जिसे संसारसे द्वेष उत्पन्न हो रहा था ऐसा वह वज्राङ्क सेठ परम वैराग्यको प्राप्त हो द्युति नामक मुनिराजके पास दीक्षित हो गया। इसकी दीक्षाका हाल घरके लोगोंको विदित नहीं था ॥८९॥ उसके अशोक और तिलक नामके दो विनयवान् पुत्र थे, सो वे किसी समय निमित्तज्ञानी द्युति मुनिराजके पास अपने पिताका हाल पूछनेके लिए गये ॥९०॥ वहीं पिताको देखकर स्नेह अथवा वैराग्यके कारण अशोक तथा तिलक भी उन्हीं द्युति मुनिराजके पादमूलमें दीक्षित हो गये ॥९१॥ द्युति मुनिराज परम तपश्चरणकर तथा आयु-का क्षय प्राप्तकर शिष्यजनोंको उत्कण्ठा प्रदान करते हुए ऊर्ध्व ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए ॥९२॥ यहाँ पिता और दोनों पुत्र मिलकर तीनों मुनि, गुरु के कहे अनुसार प्रवृत्ति करते हुऐ जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना करनेके लिए ताम्रचूडपुरकी ओर चले ॥९३॥ बीचमें पचास योजन प्रमाण बालूका समुद्र (रेगिस्तान) मिलता था सो वे इच्छित स्थान तक नहीं पहुँच पाये, बीचमें ही वर्षा-

---

१. तत्परः म० ।

तत्रैकं दुर्लभं प्राप्य [1]पात्रदानोदयोपमम् । बहुशाखोपशाखाढ्यमनोकहमिमे स्थिताः ॥९५॥
ततो जनकपुत्रेण व्रजता कोशलां पुरीम् । दृष्टास्ते मानसे चास्य जातमेतत्सुकर्मणः ॥९६॥
इमे समयरक्षार्थमिहास्थुर्विजने वने । प्राणसाधारणोच्चारं कर्तारः क्व नु साधवः ॥९७॥
इति सञ्चिन्त्य चात्यन्तनिकटं परमं पुरम् । कृतं [2]सविषयं तेन सद्विद्योदारशक्तिना ॥९८॥
स्थाने स्थाने च घोषादिसन्निवेशानदर्शयत् । स्वभावार्पितरूपश्च प्राणमद् विनयी मुनीन् ॥९९॥
काले देशे च भावेन [3]सतो गोचरमागतान् । [4]पर्युपास्त यथान्यायं सम्मदी परिवर्गवान् ॥१००॥
पुनश्चानुदकेऽरण्ये पर्युपासिष्ट संयतान् । अन्यांश्च भुवि सङ्क्लिष्टान् साधूनक्लिष्टसंयमान् ॥१०१॥
[5]पुण्यसागरवाणिज्यसेवका [6]मुक्तिभावने । दृष्टान्तत्वेन वक्तव्यास्तस्य धर्मानुरागिणः ॥१०२॥
अन्यदोद्यानयातोऽसौ[7] यथासुखमवस्थितः । शयने श्रीमान्मालिन्या पविना कालमाहृतः ॥१०३॥
ततः साधुप्रदानोत्थपुण्यतो मेरुदक्षिणे । कुरौ जातस्त्रिपल्यायुर्दिव्यलक्षणभूषितः ॥१०४॥
पात्रदानफलं तत्र महाविपुलतां गतम् । समं सुन्दरमालिन्या भुङ्क्तेऽसौ परमद्युतिः ॥१०५॥
पात्रभूतान्नदानाच्च शक्त्याढ्यास्तर्पयन्ति ते । ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥१०६॥
स्वर्गे भोगं प्रभुञ्जन्ति भोगभूमेश्च्युता नराः । तत्रस्थानां स्वभावोऽयं दानैर्भोगस्य सम्पदः ॥१०७॥

काल आगया ॥९४॥ उस रेगिस्तानमें जिसका मिलना अत्यन्त कठिन था तथा जो पात्र दानसे प्राप्त होनेवाले अभ्युदयके समान जान पड़ता था एवं जो अनेक शाखाओं और उपशाखाओंसे युक्त था ऐसे एक वृक्षको पाकर उसके आश्रय उक्त तीनों मुनिराज ठहर गये ॥९५॥

तदनन्तर अयोध्यापुरीको जाते समय जनकके पुत्र भामण्डलने वे तीनों मुनिराज देखे। देखते ही इस पुण्यात्माके मनमें यह विचार आया कि ये मुनि, आचारकी रक्षाके निमित्त इस निर्जन वनमें ठहर गये हैं परन्तु प्राण धारणके लिए आहार कहाँ करेंगे ? ॥९६-९७॥ ऐसा विचारकर सद्विद्याकी उत्तम शक्तिसे युक्त भामण्डलने बिलकुल पासमें एक अत्यन्त सुन्दर नगर बसाया जो सब प्रकारकी सामग्रीसे सहित था, स्थान-स्थानपर उसने घोष—अहीर आदिके रहनेके ठिकाने दिखलाये। तदनन्तर अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित हो उसने विनय पूर्वक मुनियोंके लिए नमस्कार किया ॥९८-९९॥ वह अपने परिजनोंके साथ वहीं रहने लगा तथा योग्य देश कालमें दृष्टिगोचर हुए सत्पुरुषोंको भावपूर्वक न्यायके साथ हर्षसहित भोजन कराने लगा ॥१००॥ इस निर्जन वनमें जो मुनिराज थे उन्हें तथा पृथिवीपर उत्कृष्ट संयमको धारण करनेवाले जो अन्य विपत्तिग्रस्त साधु थे उन सबको वह आहार आदि देकर संतुष्ट करने लगा ॥१०१॥ मुक्तिकी भावना रख पुण्यरूपी सागरमें वाणिज्य करनेवाले मनुष्योंके जो सेवक हैं धर्मानुरागी भामण्डलको उन्हींका दृष्टान्त देना चाहिए। अर्थात् मुनि तो पुण्यरूपी सागरमें वाणिज्य करनेवाले हैं और भामण्डल उनके सेवकके समान हैं ॥१०२॥ किसी एक दिन भामण्डल उद्यानमें गया था वहाँ अपनी मालिनी नामक स्त्रीके साथ वह शय्यापर सुखसे पड़ा था कि अचानक वज्रपात होनेसे उसकी मृत्यु हो गई ॥१०३॥ तदनन्तर मुनि-दानसे उत्पन्न पुण्यके प्रभावसे वह मेरु पर्वतके दक्षिणमें विद्यमान देवकुरुमें तीन पल्यकी आयुवाला दिव्य लक्षणोंसे भूषित उत्तम आर्य हुआ ॥१०४॥ इस तरह उत्तम दीप्तिको धारण करनेवाला वह आर्य, अपनी सुन्दर मालिनी स्त्रीके साथ उस देवकुरुमें महाविस्तारको प्राप्त हुए पात्रदानके फलका उपभोग कर रहा है ॥१०५॥ जो शक्तिसम्पन्न मनुष्य, पात्रोंके लिए अन्न देकर संतुष्ट करते हैं वे भोगभूमि पाकर परम पदको प्राप्त होते हैं ॥१०६॥ भोगभूमिसे च्युत हुए मनुष्य स्वर्गमें भोग भोगते

---

१. प्रान्तदीनोच्चयोपमम् म० । प्रान्तदीनोच्चयोपमम् (?) ज०, क० । २. सविषसम्पन्नं (?) म०, ३. सतां गोचरमागतां म० । सतां गोचरमागतं ज० । ४. भोजयामास, श्री० टि० । ५. ततो नगरवाणिज्य- ज०, पुण्यसागर-ख० । ६. शक्तिभावना क० । ७. प्रातोऽसौ म० ।

दानतो [1]सातप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षैककारणम् । इति श्रुत्वा पुनः पृष्टो रावणो वालुकां गतः ॥१०८॥
तथा नारायणो ज्ञातो लक्ष्मणोऽधोगतिं गतः । उत्थाय दुरितस्यान्ते नाथ कोऽनुभविष्यति ॥१०९॥
प्रापत्स्यते गतिं कां वा दशाननचरः [2]प्रभो । को नु वाऽहं भविष्यामीत्येवमिच्छामि वेदितुम् ॥११०॥
इति स्वयंप्रभे[3] प्रश्नं कृत्वा विदितचेतसि । सर्वज्ञो वचनं प्राह भविष्यद्भवसम्भवम् ॥१११॥
भविष्यतः स्वकर्माभ्युदयौ रावणलक्ष्मणौ । तृतीयनरकादेत्य अनुपूर्वाच्च मन्दरात् ॥११२॥
शृणु सीतेन्द्र निर्जित्य दुःखं नरकसम्भवम् । नगर्यां विजयावत्यां मनुष्यत्वेन चाप्स्यते ॥११३॥
गृहिण्यां रोहिणीनाम्न्यां सुनन्दस्य कुटुम्बिनः । सम्यग्दृष्टेः प्रियौ पुत्रौ क्रमेणैतौ भविष्यतः ॥११४॥
अर्हद्दासर्षिदासाख्यौ वेदितव्यौ च सद्गुणैः । अत्यन्तमहच्चेतस्कौ श्लाघनीयक्रियापरौ ॥११५॥
[4]गृहस्थविधिनाभ्यर्च्य देवदेवं जिनेश्वरम् । अणुव्रतधरौ काले सुग्रीवाणौ भविष्यतः ॥११६॥
पञ्चेन्द्रियसुखं तत्र चिरं प्राप्य मनोहरम् । च्युत्वा भूयश्च तत्रैव जनिष्येते महाकुले ॥११७॥
सद्दानेन हरिक्षेत्रं प्राप्य च त्रिदिवं गतौ । प्रच्युतौ पुरि तत्रैव नृपपुत्रौ भविष्यतः ॥११८॥
[5]तातः कुमारकीर्त्याख्यो लक्ष्मीस्तु जननी तयोः । वीरौ कुमारकावेतौ जयकान्तजयप्रभौ ॥११९॥
ततः परं तपः कृत्वा लान्तवं कल्पमाश्रितौ । विबुधोत्तमतां गत्वा भोक्ष्येते तन्मयं सुखम् ॥१२०॥
त्वमत्र भरतक्षेत्रे च्युतः सन्नारणाच्युतात् । सर्वरत्नपतिः श्रीमान् चक्रवर्ती भविष्यसि ॥१२१॥
तौ च स्वर्गच्युतौ देवौ पुण्यनिस्यन्दतेजसा । इन्द्राम्भोदरथाभिख्यौ तव पुत्रौ भविष्यतः ॥१२२॥

हैं क्योंकि वहाँके मनुष्योंका यह स्वभाव ही है। यथार्थमें दानसे भोगकी संपदाएँ प्राप्त होती हैं ॥१०७॥ दानसे सुखकी प्राप्ति होती है और दान स्वर्ग तथा मोक्षका प्रधान कारण है। इस प्रकार भामण्डलके दानका माहात्म्य सुनकर सीतेन्द्रने वालुकाप्रभा पृथिवीमें पड़े हुए रावण और उसी अधोभूमिमें पड़े लक्ष्मणके विषयमें पूछा कि हे नाथ ! यह लक्ष्मण पापका अन्त होनेपर नरकसे निकलकर क्या होगा ?, हे प्रभो ! वह रावणका जीव कौन गतिको प्राप्त होगा और मैं स्वयं इसके बाद क्या होऊँगा ? यह सब मैं जानना चाहता हूँ ॥१०८–११०॥ इस प्रकार प्रश्नकर जब स्वयंप्रभ नामका सीतेन्द्र उत्तर जाननेके लिए उद्यत चित्त हो गया तब सर्वज्ञ देवने उनके आगामी भवोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले वचन कहे ॥१११॥

उन्होंने कहा कि हे सीतेन्द्र ! सुन, स्वकृत कर्मके अभ्युदयसे सहित रावण और लक्ष्मण, नरक सम्बन्धी दुःख भोगकर तथा तीसरे नरकसे निकलकर मेरुपर्वतसे पूर्वकी ओर विजयावती नामक नगरीमें सुनन्द नामक सम्यग्दृष्टि गृहस्थकी रोहिणी नामक स्त्रीके क्रमशः अर्हद्दास और ऋषिदास नामके पुत्र होंगे। ये पुत्र सद्गुणोंसे प्रसिद्ध, अत्यधिक उत्सवपूर्ण चित्तके धारक और प्रशंसनीय क्रियाओंके करनेमें तत्पर होंगे ॥११२–११५॥ वहाँ गृहस्थकी विधिसे देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्की पूजाकर अणुव्रतके धारी होंगे और अन्तमें मरकर उत्तम देव होंगे ॥११६॥ वहाँ चिरकाल तक पञ्चेन्द्रियोंके मनोहर सुख प्राप्तकर वहाँसे च्युत हो उसी महाकुलमें पुनः उत्पन्न होंगे ॥११७॥ फिर पात्रदानके प्रभावसे हरिक्षेत्र प्राप्तकर स्वर्ग जावेंगे। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो उसी नगरमें राजपुत्र होंगे ॥११८॥ वहाँ इनके पिताका नाम कुमारकीर्ति और माताका नाम लक्ष्मी होगा तथा स्वयं ये दोनों कुमार जयकान्त और जयप्रभ नामके धारक होंगे ॥११९॥ तदनन्तर तप करके लान्तव स्वर्ग जावेंगे। वहाँ उत्तम देवपद प्राप्तकर तत्सम्बन्धी सुखका उपभोग करेंगे ॥१२०॥ हे सीतेन्द्र ! तू आरणाच्युत कल्पसे च्युत हो इस भरतक्षेत्रके रत्नस्थलपुर नामक नगरमें सब रत्नोंका स्वामी चक्ररथ नामका श्रीमान् चक्रवर्ती होगा ॥१२१॥ रावण और लक्ष्मणके जीव जो लान्तव स्वर्गमें देव हुए थे वे वहाँसे च्युत हो पुण्य रसके प्रभावसे तुम्हारे क्रमशः इन्द्रस्थ

---

१. भोग-म० । २. चरोपमम् म० । ३. सोऽयं प्रभोः म० । ४. एष श्लोकः म पुस्तके नास्ति । ५. ततः कुमारकीर्त्याख्यौ म० ।

आसीत् प्रतिरिपुर्योऽसौ दशवक्त्रो महाबलः । येनेमे भारते वास्ये त्रयः खण्डा वशीकृताः ॥१२३॥
न कामयेत्परस्य स्त्रीमकामामिति निश्चयः । अपि जीवितमत्याक्षीत्तत्सत्यमनुपालयन् ॥१२४॥
सोऽयमिन्द्ररथाभिख्यो भूत्वा धर्मपरायणः । प्राप्य श्रेष्ठान् भवान् कांश्चित्तिर्यङ्नरकवर्जितान् ॥१२५॥
स मानुष्यं समासाद्य दुर्लभं सर्वदेहिनाम् । तीर्थकृत्कर्मसङ्घातमर्जयिष्यति पुण्यवान् ॥१२६॥
ततोऽनुक्रमतः पूजामवाप्य भुवनत्रयात् । मोहादिशत्रुसङ्घातं निहत्यार्हन्तमाप्स्यति ॥१२७॥
रत्नस्थलपुरे कृत्वा राज्यं [1]चक्ररथस्त्वसौ । वैजयन्तेऽहमिन्द्रत्वमवाप्स्यति तपोबलात् ॥१२८॥
त्वं तस्य जिनेन्द्रस्य प्रच्युतः स्वर्गलोकतः । आद्यो गणधरः श्रीमानृद्धिप्राप्तो भविष्यति ॥१२९॥
ततः परमनिर्वाणं यास्यसीत्यमरेश्वरः । श्रुत्वा ययौ परां तुष्टिं भावितेनाऽन्तरात्मना ॥१३०॥
अयं तु लक्ष्मणो भावः सर्वज्ञेन निवेदितः । अम्भोदरथनामासौ भूत्वा चक्रधरात्मजः ॥१३१॥
चारून् कांश्चिद्भवान् भ्रान्त्वा धर्मसङ्गतचेष्टितः । विदेहे पुष्करद्वीपे शतपत्राह्वये पुरे ॥१३२॥
लक्ष्मणः स्वोचिते काले प्राप्य जन्माभिषेचनम् । चक्रपाणित्वमर्हत्त्वं लब्ध्वा निर्वाणमेष्यति ॥१३३॥
सम्पूर्णैः सप्तभिश्चाब्दैरहमप्यपुनर्भवः । गमिष्यामि गता यत्र साधवो भरतादयः ॥१३४॥
भविष्यद्भववृत्तान्तमवगम्य सुरोत्तमः । अपेतसंशयः श्रीमान्महाभावनयान्वितः ॥१३५॥
परिणूय नमस्कृत्य पद्मनाभं पुनः पुनः । तस्मिन्नुद्यति चैत्यानि वन्दितुं विहृतिं श्रितः ॥१३६॥
जिननिर्वाणधामानि परं भक्तः समर्चयन् । तथा नन्दीश्वरद्वीपे जिनेन्द्रार्चामहर्द्धिकः ॥१३७॥

और मेघरथ नामक पुत्र होंगे ॥१२२॥ जो पहले दशानन नामका तेरा महाबलवान् शत्रु था, जिसने भरतक्षेत्रके तीन खण्ड वश कर लिये थे, और जिसके यह निश्चय था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी उसे मैं नहीं चाहूँगा। निश्चय ही नहीं, जिसने जीवन भले ही छोड़ दिया था पर इस सत्यव्रतको नहीं छोड़ा था किन्तु उसका अच्छी तरह पालन किया था। वह रावणका जीव धर्मपरायण इन्द्ररथ होकर तिर्यञ्च और नरकको छोड़ अनेक उत्तम भव पा मनुष्य होकर सर्व प्राणियोंके लिए दुर्लभ तीर्थंकर नाम कर्मका बन्ध करेगा। तदनन्तर वह पुण्यात्मा अनुक्रमसे तीनों लोकोंके जीवोंसे पूजा प्राप्तकर मोहादि शत्रुओंके समूहको नष्टकर अर्हन्त पद प्राप्त करेगा ॥१२३-१२७॥ और तेरा जीव जो चक्ररथ नामका चक्रधर हुआ था वह रत्नस्थलपुरमें राज्यकर अन्तमें तपोबलसे वैजयन्त विमानमें अहमिन्द्र पदको प्राप्त होगा ॥१२८॥ वहीं तू स्वर्गलोकसे च्युत हो उक्त तीर्थंकरका ऋद्धिधारी श्रीमान् प्रथम गणधर होगा ॥१२९॥ और उसके बाद परम निर्वाणको प्राप्त होगा। इस प्रकार सुनकर सीताका जीव सुरेन्द्र, भावपूर्ण अन्तरात्मासे परमसंतोषको प्राप्त हुआ ॥१३०॥ सर्वज्ञ देवने लक्ष्मणके जीवका जो निरूपण किया था, वह मेघरथ नामका चक्रवर्तीका पुत्र होकर धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ कितने ही उत्तम भवोंमें भ्रमणकर पुष्करद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रके शतपत्र नामा नगरमें अपने योग्य समयमें जन्माभिषेक प्राप्तकर तीर्थंकर और चक्रवर्ती पदको प्राप्त हो निर्वाण प्राप्त करेगा ॥१३१-१३३॥ और मैं भी सात वर्ष पूर्ण होते ही पुनर्जन्मसे रहित हो वहाँ जाऊँगा जहाँ भरत आदि मुनिराज गये हैं ॥१३४॥

इस प्रकार आगामी भवोंका वृत्तान्त जानकर जिसका सब संशय दूर हो गया था, तथा जो महाभावनासे सहित था ऐसा सुरेन्द्र सीतेन्द्र, श्री पद्मनाभ केवलीकी बार-बार स्तुतिकर तथा नमस्कारकर उनके अभ्युदय युक्त रहते हुए चैत्यालयोंकी वन्दना करनेके लिए चला गया ॥१३५-१३६॥ वह अत्यन्त भक्त हो तीर्थंकरोंके निर्वाण-क्षेत्रोंकी पूजा करता, नन्दीश्वर द्वीपमें जिन-प्रतिमाओंकी अर्चा करता, देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्‌को निरन्तर मनमें धारण करता

१. चक्रधरस्त्वसौ ज० ।

देवदेवं जिनं बिभ्रन्मानसेऽसावनारतम् । केवलित्वमिव प्राप्तः परमं शर्म धारयन् ॥१३८॥
लुषितं कलुषं कर्म मन्यमानः सुसम्मदः । सुवृत्तः स्वर्गमारोहत् सुरसङ्घसमावृतः ॥१३९॥
स्वर्गं तेन तदा यातां[1] भ्रातृस्नेहात् पुरातनात् । भामण्डलचरो दृष्टः कुरौ सम्भाषितः[2] प्रियम् ॥१४०॥
तत्रारणाच्युते कल्पे सर्वकामगुणप्रदे । अमरीणां सहस्राणि रमयन्नीश्वरः स्थितः ॥१४१॥
दश सप्त च वर्षाणां सहस्राणि बलायुषः । चापानि षोडशोत्सेधः सानुजस्य प्रकीर्तितः ॥१४२॥
ईदृशमवधार्येदमन्तरं पुण्यपापयोः । पापं दूरं परित्यज्य वरं पुण्यमुपार्जितम् ॥१४३॥

आर्यागीतिः

पश्यत बलेन विभुना जिनेन्द्रवरशासने धृतिं प्राप्तेन ।
जन्मजरामरणमहारिपवो बलिनः पराजिताः पद्मेन ॥१४४॥
स हि जन्मजरामरणव्युच्छेदान्नित्यपरमकैवल्यसुखम् ।
अतिशयदुर्लभमनघं सम्प्राप्तो जिनवरप्रसादादतुलम् ॥१४५॥
मुनिदेवासुरवृषभैः स्तुतमहितनमस्कृतो निषूदितदोषः ।
प्रमदशतैरुपगीतो विद्याधरपुष्पवृष्टिभिर्दुर्लक्ष्यः ॥१४६॥
आराध्य जैनसमयं परमविधानेन पञ्चविंशत्यब्दान् ।
प्राप त्रिभुवनशिखरं [3]सिद्धपदं सर्वजीवनिकायललामम् ॥१४७॥
व्यपगतभवहेतुं तं योगधरं शुद्धभावहृदयधरं वीरम् ।
अनगारवरं भक्त्या प्रणमत रामं मनोऽभिरामं शिरसा ॥१४८॥

स्वयं केवली पदको प्राप्त हुए के समान परम सुखका अनुभव करता, पाप कर्मको भस्मीभूत मानता, हर्षित तथा सदाचारसे युक्त होता और देवोंके समूहसे आवृत होता हुआ स्वर्गलोक चला गया ॥१३७-१३९॥ उस समय उसने स्वर्ग जाते-जाते भाईके पुरातन स्नेहके कारण देवकुरुमें भामण्डलके जीवको देखा और उसके साथ प्रिय वार्तालाप किया ॥१४०॥ वह सीतेन्द्र सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले उस आरणाच्युत कल्पमें हजारों देवियोंके साथ रमण करता हुआ रहता था ॥१४१॥ रामकी आयु सत्रह हजार वर्षकी तथा उनके और लक्ष्मणके शरीरकी ऊँचाई सोलह धनुषकी थी ॥१४२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह पुण्य और पापका अन्तर जानकर पापको दूरसे ही छोड़कर पुण्यका ही संचय करना उत्तम है ॥१४३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! देखो जिनेन्द्र देवके उत्तम शासनमें धैर्यको प्राप्त हुए बलभद्र पदके धारी विभु रामचन्द्रने जन्म-जरा-मरण रूपी महाबलवान् शत्रु पराजित कर दिये ॥१४४॥ वे रामचन्द्र, श्री जिनेन्द्र देवके प्रसादसे जन्म-जरा-मरणका व्युच्छेदकर अत्यन्त दुर्लभ, निर्दोष, अनुपम, नित्य और उत्कृष्ट कैवल्य सुखको प्राप्त हुए ॥१४५॥ मुनीन्द्र देवेन्द्र और असुरेन्द्रोंके द्वारा जो स्तुत, महित तथा नमस्कृत हैं, जिन्होंने दोषोंको नष्ट कर दिया है, जो सैकड़ों प्रकारके हर्षसे उपगीत हैं तथा विद्याधरोंकी पुष्प - वृष्टियोंकी अधिकतासे जिनका देखना भी कठिन है ऐसे श्रीराम महामुनि, पच्चीस वर्ष तक उत्कृष्ट विधिसे जैनाचारकी आराधनाकर समस्त जीव समूहके आभरणभूत, तथा सिद्ध परमेष्ठियोंके निवास क्षेत्र स्वरूप तीन लोकके शिखरको प्राप्त हुए ॥१४६-१४७॥ हे भव्य जनो ! जिनके संसारके कारण—मिथ्या दर्शनादिभाव नष्ट हो चुके थे, जो उत्तम योगके धारक थे, शुद्ध भाव और शुद्ध हृदयके धारक थे, कर्मरूपी शत्रुओंके जीतनेमें वीर थे, मनको आनन्द देनेवाले थे और मुनियोंमें श्रेष्ठ थे उन भगवान् रामको शिरसे

---

१. यातं म०, यात्रा ब० । २. सम्भाषितप्रियम् म० । ३. सिद्धिपदम् म० ।

विजिततरुणार्कतेजसमधरीकृतपूर्णचन्द्रमण्डलं कान्तम् ।
सर्वोपमानभावव्यतिगमरूपातिरूढमूर्जितचरितम् ॥१४९॥
पूर्वस्नेहेन तथा सीतादेवाधिपेन धर्मस्थतया ।
परमहितं परमर्द्धिप्राप्तं पद्मं यतिप्रधानं नमत ॥१५०॥
योऽसौ बलदेवानामष्टमसङ्ख्यो नितान्तशुद्धशरीरः ।
श्रीमाननन्तबलभृन्नियमशतसहस्रभूषितो गतविकृतिः ॥१५१॥
तमनेकशीलगुणशतसहस्रधरमतिशुद्धकीर्तिमुदारम् ।
ज्ञानप्रदीपममलं प्रणमत रामं त्रिलोकनिर्गतयशसम् ॥१५२॥
निर्दग्धकर्मपटलं गम्भीरगुणार्णवं विमुक्तक्षोभम् ।
मन्दरमिव निष्कम्पं प्रणमत रामं यथोक्तचरितश्रमणम् ॥१५३॥
विनिहत्य कषायरिपून् येन त्यक्तान्यशेषतो द्वन्द्वानि ।
त्रिभुवनपरमेश्वरतां पद्म प्राप्तो जिनेन्द्रशासनसक्तः ॥१५४॥
निर्धूतकलुषरजसं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रमयम् ।
तं प्रणमत भवमथनं श्रमणवरं सर्वदुःखसंक्षयसक्तम् ॥१५५॥
चेष्टितमनघं चरितं करणं चारित्रमित्यमी यच्छब्दाः ।
पर्याया रामायणमित्युक्तं तेन चेष्टितं रामस्य ॥१५६॥
बलदेवस्य सुचरितं दिव्यं यो भावितेन मनसा नित्यम् ।
विस्मयहर्षाविष्टस्वान्तः प्रतिदिनमपेतशङ्कितकरणः ॥१५७॥
वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यं च ।
आकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति ॥१५८॥

प्रणाम करो ॥१४८॥ जिन्होंने तरुण सूर्यके तेजको जीत लिया था, जिन्होंने पूर्ण चन्द्रमाके मण्डलको नीचा कर दिया था, जो अत्यन्त सुदृढ था, पूर्व स्नेहके वश अथवा धर्ममें स्थित होनेके कारण सीताके जीव प्रतीन्द्रने जिनकी अत्यधिक पूजा की थी, तथा जो परम ऋद्धिको प्राप्त थे ऐसे मुनिप्रधान श्रीरामचन्द्रको नमस्कार करो ॥१४९–१५०॥ जो बलदेवोंमें आठवें बलदेव थे, जिनका शरीर अत्यन्त शुद्ध था, जो श्रीमान् थे, अनन्त बलके धारक थे, हजारों नियमोंसे भूषित थे और जिनके सब विकार नष्ट हो गये थे ॥१५१॥ जो अनेक शील तथा लाखों उत्तरगुणोंके धारक थे, जिनकी कीर्ति अत्यन्त शुद्ध थी, जो उदार थे, ज्ञानरूपी प्रदीपसे सहित थे, निर्मल थे और जिनका उज्ज्वल यश तीन लोकमें फैला हुआ था उन श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५२॥ जिन्होंने कर्मपटलको जला दिया था, जो गंभीर गुणोंके सागर थे, जिनका क्षोभ छूट गया था, जो मन्दरगिरिके समान अकम्प थे तथा जो मुनियोंका यथोक्त चारित्र पालन करते थे उन श्रीरामको नमस्कार करो ॥१५३॥ जिन्होंने कषायरूपी शत्रुओंको नष्टकर सुख-दुःखादि समस्त द्वन्द्वोंका त्याग कर दिया था, जो तीन लोककी परमेश्वरताको प्राप्त थे, जो जिनेन्द्र देवके शासनमें लीन थे, जिन्होंने पापरूपी रज उड़ा दी थी, जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे तन्मय हैं, संसारको नष्ट करनेवाले हैं, तथा समस्त दुःखोंका क्षय करनेमें तत्पर हैं ऐसे मुनिवर श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५४–१५५॥

चेष्टित, अनघ, चरित, करण और चारित्र ये सभी शब्द यतश्च पर्यायवाचक शब्द हैं अतः रामकी जो चेष्टा है वही रामायण कही गई है ॥१५६॥ जिसका हृदय आश्चर्य और हर्षसे आक्रान्त है तथा जिसके अन्तःकरणसे सब शङ्काएँ निकल चुकी हैं ऐसा जो मनुष्य प्रतिदिन भावपूर्ण मनसे बलदेवके चरित्रको बाँचता अथवा सुनता है उसकी आयु वृद्धिको प्राप्त होती है,

किं चान्यद्धर्मार्थी लभते धर्मं यशः परं यशसोऽर्थी ।
राज्यभ्रष्टो राज्यं प्राप्नोति न संशयोऽत्र कश्चित्कृत्यः ॥१५९॥
इष्टसमायोगार्थी लभते तं क्षिप्रतो धनं धनार्थी ।
जायार्थी वरपत्नीं पुत्रार्थी गोत्रनन्दनं प्रवरपुत्रम् ॥१६०॥
अक्लिष्टकर्मविधिना लाभार्थी लाभमुत्तमं सुखजननम् ।
कुशली विदेशगमने स्वदेशगमनेऽथवापि सिद्धसमीहः ॥१६१॥
व्याधिरुपैति प्रशमं ग्रामनगरवासिनः सुरास्तुष्यन्ति ।
नक्षत्रैः सह कुटिला अपि भान्वाद्या ग्रहा भवन्ति प्रीताः ॥१६२॥
दुश्चिन्तितानि दुर्भावितानि दुष्कृतशतानि यान्ति प्रलयम् ।
यत् किञ्चिदपरमशिवं तत्सर्वं क्षयमुपैति पद्मकथाभिः ॥१६३॥
यद्वा निहितं हृदये साधु तदाप्नोति रामकीर्तनासक्तः ।
इष्टं करोति भक्तिः सुदृढा सर्वज्ञभावगोचरनिरता ॥१६४॥
भवशतसहस्रसञ्चितमसौ हि दुरितं तृणेढि जिनवरभक्त्या ।
व्यसनार्णवमुत्तीर्य प्राप्नोत्यर्हत्पदं सुभावः क्षिप्रम् ॥१६५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

एतत् तत्सुसमाहितं सुनिपुणं दिव्यं पवित्राक्षरं
नानाजन्मसहस्रसञ्चितघनक्लेशौघनिर्णाशनम् ।
आख्यानैर्विविधैश्चितं सुपुरुषव्यापारसङ्कीर्तनं
भव्याम्भोजपरप्रहर्षजननं सङ्कीर्तितं भक्तितः ॥१६६॥

पुण्य बढ़ता है, तथा तलवार खींचकर हाथमें धारण करनेवाला भी शत्रु उसके साथ वैर नहीं करता है, अपितु शान्तिको प्राप्त हो जाता है ॥१५७–१५८॥ इसके सिवाय इसके बाँचने अथवा सुननेसे धर्मका अभिलाषी मनुष्य धर्मको पाता है, यशका अभिलाषी परमयशको पाता है, और राज्यसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य पुनः राज्यको प्राप्त करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए ॥१५९॥ इष्ट संयोगका अभिलाषी मनुष्य शीघ्र ही इष्टजनके संयोगको पाता है, धनका अर्थी धन पाता है। स्त्रीका इच्छुक उत्तम स्त्री पाता है और पुत्रका अर्थी गोत्रको आनन्दित करनेवाला उत्तम पुत्र पाता है ॥१६०॥ लाभका इच्छुक सरलतासे सुख देनेवाला उत्तम लाभ प्राप्त करता है, विदेश जानेवाला कुशल रहता है और स्वदेशमें रहनेवालेके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥१६१॥ उसकी बीमारी शान्त हो जाती है, ग्राम तथा नगरवासी देव संतुष्ट रहते हैं, तथा नक्षत्रोंके साथ साथ सूर्य आदि कुटिल ग्रह भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥१६२॥ रामकी कथाओंसे दुश्चिन्तित, तथा दुर्भावित सैकड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा इनके सिवाय जो कुछ अन्य अमङ्गल हैं वे सब क्षयको प्राप्त हो जाते हैं ॥१६३॥ अथवा हृदयमें जो कुछ उत्तम बात है राम-कथाके कीर्तनमें लीन मनुष्य उसे अवश्य पाता है, सो ठीक ही है क्योंकि सर्वज्ञदेव सम्बन्धी सुदृढ़ भक्ति इष्टपूर्ति करती ही है ॥१६४॥ उत्तम भावको धारण करनेवाला मनुष्य, जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे लाखों भावोंमें संचित पाप कर्मको नष्ट कर देता है, तथा दुःख रूपी सागरको पारकर शीघ्र ही अर्हन्त पदको प्राप्त करता है ॥१६५॥

ग्रन्थकर्त्ता श्री रविषेणाचार्य कहते हैं कि बड़ी सावधानीसे जिसका समाधान बैठाया गया है, जो दिव्य है, पवित्र अक्षरोंसे सम्पन्न है, नाना प्रकारके हजारों जन्मोंमें संचित अत्यधिक क्लेशोंके समूहको नष्ट करनेवाला है, विविध प्रकारके आख्यानों–अवान्तर कथाओंसे व्याप्त है, सत्पुरुषोंकी चेष्टाओंका वर्णन करनेवाला है, और भव्य जीवरूपी कमलोंके परम हर्षको करने

निर्दिष्टं सकलैर्नतेन भुवनैः श्रीवर्द्धमानेन यत्
सत्यं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः
श्रेयःसाधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम् ॥१६७॥
ज्ञाताशेषकृतान्तसन्मुनिमनःसोपानपर्वावली
पारम्पर्यसमाश्रितं सुवचनं सारार्थमत्यद्भुतम् ।
आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि-
स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदःशिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥१६८॥
सम्यग्दर्शनशुद्धिकारणगुरुश्रेयस्करं पुष्कलं
विस्पष्टं परमं पुराणममलं श्रीमत्प्रबोधिप्रदम् ।
रामस्याद्भुतविक्रमस्य सुकृतो माहात्म्यसङ्कीर्तनं
श्रोतव्यं सततं विचक्षणजनैरात्मोपकारार्थिभिः ॥१६९॥

छन्दः (१)

हलचक्रभृतोर्द्विषोऽनयोश्च प्रथितं वृत्तमिदं समस्तलोके ।
कुशलं कलुषं च तत्र बुद्ध्या शिवमार्गाकुरुतेऽशिवं विहाय ॥१७०॥
अपि नाम शिवं गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकरं शिवेतरम् ।
तद्विषयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिवं तेन न शान्तये कदाचित् ॥१७१॥

वाला है ऐसा यह पद्मचरित मैंने भक्ति वश ही निरूपित किया है ॥१६६॥ श्री पद्ममुनिका जो चरित मूलमें सब संसारसे नमस्कृत श्रीवर्धमान स्वामीके द्वारा कहा गया, फिर इन्द्रभूति गणधरके द्वारा सुधर्मा और जम्बू स्वामीके लिए कहा गया तथा उनके बाद उनके शिष्योंके शिष्य श्री उत्तरवाग्मी अर्थात् श्रेष्ठवक्ता श्री कीर्तिधर मुनिके द्वारा प्रकट हुआ तथा जो कल्याण और साधुसमाधिकी वृद्धि करनेवाला है, ऐसा यह पद्मचरित सर्वोत्तम मङ्गल स्वरूप है ॥१६७॥ यह पद्मचरित, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता उत्तम मुनियोंके मनकी सोपान परम्पराके समान नाना पर्वोंकी परम्परासे युक्त है, सुभाषितोंसे भरपूर है, सारपूर्ण है तथा अत्यन्त आश्चर्यकारी है। इन्द्र गुरुके शिष्य श्री दिवाकर यति थे, उनके शिष्य अर्हद्यति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और उनका शिष्य मैं रविषेण हूँ ॥१६८॥ जो सम्यग् दर्शनकी शुद्धता-के कारणोंसे श्रेष्ठ है, कल्याणकारी है, विस्तृत है, अत्यन्त स्पष्ट है, उत्कृष्ट है, निर्मल है, श्री-सम्पन्न है, रत्नत्रय रूप बोधिका दायक है, तथा अद्भुत पराक्रमी पुण्यस्वरूप श्री रामके माहा-त्म्यका उत्तम कीर्तन करनेवाला है ऐसा यह पुराण आत्मोपकारके इच्छुक विद्वज्जनोंके द्वारा निरन्तर श्रवण करनेके योग्य है ॥१६९॥

बलभद्र नारायण और इनके शत्रु रावणका यह चरित्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध है। इसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके चरित्रोंका वर्णन है। इनमें बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धि द्वारा विचार कर अच्छे अंशको ग्रहण करते हैं और बुरे अंशको छोड़ देते हैं ॥१७०॥ जो अच्छा चरित्र है वह गुणोंको बढ़ानेवाला है और जो बुरा चरित्र है वह कष्टोंकी वृद्धि करनेवाला है, इनमें से जिस मनुष्यको जिस विषयकी इच्छा हो वह उसीके साथ मित्रताको करता है अर्थात् गुणोंको चाहने वाला अच्छे चरित्रसे मित्रता बढ़ाता है और कष्ट चाहनेवाला बुरे चरित्रसे मित्रता करता है।

यदि तावदसौ नभश्चरेन्द्रो व्यसनं प्राप पराङ्गनाहिताशः ।
निधनं गतवाननङ्गरोगः[1] किमुतान्यो रतिरङ्गनानुभावः (?) ॥१७२॥
सततं सुखसेवितोऽप्यसौ यद् दशवक्त्रो वरकामिनीसहस्रैः ।
अवितृप्तमतिर्विनाशमागादितरस्तृप्तिमुपेष्यतीति मोहः ॥१७३॥
स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा परकान्ताभिरतिं करोति पापः ।
व्यसनार्णवमत्युदारमेष प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः ॥१७४॥
व्रजत त्वरिता जना भवन्तो बलदेवप्रमुखाः पदं गता यत्र ।
जिनशासनभक्तिरागरक्ताः सुदृढं प्राप्य यथाबलं सुवृत्तम् ॥१७५॥
सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम् ।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थं समुपैत्ययं स्वभावः ॥१७६॥
कुकृतं प्रथमं सुदीर्घरोषः परपीडाभिरतिर्वचश्च रूक्षम् ।
सुकृतं विनयः श्रुतं च शीलं सदयं वाक्यममत्सरः शमश्च ॥१७७॥
न हि कश्चिदहो ददाति किञ्चिद्द्रविणारोग्यसुखादिकं जनानाम् ।
अपि नाम यदा सुरा ददन्ते बहवः किन्तु विदुःखितास्तदेते ॥१७८॥
बहुधा गदितेन [2]किन्त्वनेन पदमेकं सुबुधा निबुध्य यत्नात् ।
बहुभेदविपाककर्मसूक्तं तदुपायाप्तिविधौ सदा रमध्वम् ॥१७९॥

अनुष्टुप्

उपायाः परमार्थस्य कथितास्तत्त्वतो बुधाः ।
सेव्यन्तां शक्तितो येन निष्क्रामत भवार्णवात् ॥१८०॥

इससे इतना सिद्ध है कि बुरा चरित्र कभी शान्तिके लिए नहीं होता ॥१७१॥ जब कि परस्त्रीकी आशा रखनेवाला विद्याधरोंका राजा-रावण कष्टको प्राप्त होता हुआ अन्तमें मरणको प्राप्त हुआ तब साक्षात् रति-क्रीड़ा करनेवाले अन्य काम रोगीकी तो कथा ही क्या है ? ॥१७२॥ हजारों उत्तमोत्तम स्त्रियाँ जिसकी निरन्तर सेवा करती थीं ऐसा रावण भी जब अतृप्तबुद्धि होता हुआ मरणको प्राप्त हुआ तब अन्य मनुष्य तृप्तिको प्राप्त होगा यह कहना मोह ही है ॥१७३॥ अपनी स्त्रीके हितकारी सुखको छोड़कर जो पापी पर-स्त्रियोंमें प्रेम करता है वह सूखी लकड़ीके समान दुःखरूपी बड़े सागरमें नियमसे प्रवेश करता है ॥१७४॥ अहो भव्य जनो ! तुम लोग जिन-शासनकी भक्तिरूपी रङ्गमें रँगकर तथा शक्तिके अनुसार सुदृढ़ चारित्रको ग्रहणकर शीघ्र ही उस स्थानको जाओ जहाँ कि बलदेव आदि महापुरुष गये हैं ॥१७५॥ पुण्यके फलसे यह जीव उच्च पद तथा उत्तम सम्पत्तियोंका भण्डार प्राप्त करता है और पापके फलसे कुगति सम्बन्धी दुःख पाता है यह स्वभाव है ॥१७६॥ अत्यधिक क्रोध करना, परपीड़ामें प्रीति रखना, और रूक्ष वचन बोलना यह प्रथम कुकृत अर्थात् पाप है और विनय, श्रुत, शील, दया सहित वचन, अमात्सर्य और क्षमा ये सब सुकृत अर्थात् पुण्य हैं ॥१७७॥ अहो ! मनुष्योंके लिए धन आरोग्य तथा सुखादिक कोई नहीं देता है । यदि यह कहा जाय कि देव देते हैं तो वे स्वयं अधिक संख्यामें दुःखी क्यों हैं ? ॥१७८॥ बहुत कहनेसे क्या ? हे विद्वज्जनो ! यत्नपूर्वक एक प्रमुख आत्म पदको तथा नाना प्रकारके विपाकसे परिपूर्ण कर्मोंके स्वरसको अच्छी तरह जानकर सदा उसीकी प्राप्तिके उपायोंमें रमण करो ॥१७९॥ हे विद्वज्जनो ! हमने इस ग्रन्थमें परमार्थकी प्राप्तिके उपाय कहे हैं सो उन्हें शक्तिपूर्वक काममें लाओ जिससे संसाररूपी सागरसे पार हो

---

१. -नतंगरागः म० । २. किन्त्वनेन म० ।

छन्दः (?)

इति जीवविशुद्धिदानदक्षं परितः शास्त्रमिदं नितान्तरम्यम् ।
सकले भुवने रविप्रकाशं स्थितमुद्योतितसर्ववस्तुसिद्धम् ॥१८१॥
द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे[1] चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥१८२॥

अनुष्टुप्

कुर्वन्त्वथात्र सान्निध्यं सर्वाः समयदेवताः । कुर्वाणाः सकलं लोकं जिनभक्तिपरायणम् ॥१८३॥
कुर्वन्तु[2] वचने[3] रक्षां समये सर्ववस्तुषु । सर्वादरसमायुक्ता भव्या लोकसुवत्सलाः ॥१८४॥
व्यञ्जनान्तं स्वरान्तं वा किञ्चिन्नामेह कीर्तितम् । अर्थस्य वाचकः शब्दः शब्दो वाक्यमिति स्थितम् ॥
लक्षणालङ्कृती वाच्यं प्रमाणं छन्द आगमः । सर्वं चामलचित्तेन ज्ञेयमत्र[4] मुखागतम् ॥१८६॥
इदमष्टादश प्रोक्तं सहस्राणि प्रमाणतः । शास्त्रमानुष्टुपश्लोकैस्त्रयोविंशतिसङ्गतम् ॥१८७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे बलदेवसिद्धिगमनाभिधानं
नाम त्रयोविंशोत्तरशतं पर्व ॥१२३॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

सको ॥१८०॥ इस प्रकार यह शास्त्र जीवोंके लिए विशुद्धि प्रदान करनेमें समर्थ, सब ओरसे अत्यन्त रमणीय, और समस्त विश्वमें सूर्यके प्रकाशके समान सब वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाला है ॥१८१॥ जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेन्द्रके मोक्ष जानेके बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छह माह बीत जानेपर श्री पद्‌ममुनिका यह चरित्र लिखा गया है ॥१८२॥ मेरी इच्छा है कि समस्त श्रुतदेवता जिन शासन देव, निखिल विश्वको जिन-भक्तिमें तत्पर करते हुए यहाँ अपना सांनिध्य प्रदान करें ॥१८३॥ वे सब प्रकारके आदरसे युक्त, लोकस्नेही भव्य देव समस्त वस्तुओंके विषयमें अर्थात् सब पदार्थोंके निरूपणके समय अपने वचनोंसे आगमकी रक्षा करें ॥१८४॥ इस ग्रन्थमें व्यञ्जनान्त अथवा स्वरान्त जो कुछ भी कहा गया है वही अर्थका वाचक शब्द है, और शब्दोंका समूह ही वाक्य है, यह निश्चित है ॥१८५॥ लक्षण, अलंकार, अभिधेय, लक्ष्य और व्यङ्ग्यके भेदसे तीन प्रकारका वाच्य, प्रमाण, छन्द तथा आगम इन सबका यहाँ अवसरके अनुसार वर्णन हुआ है सो शुद्ध हृदयसे उन्हें जानना चाहिए ॥१८६॥ यह पद्‌मचरित ग्रन्थ अनुष्टुप् श्लोकोंकी अपेक्षा अठारह हजार तेईस श्लोक प्रमाण कहा गया है ॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य प्रणीत पद्‌मपुराणमें बलदेवकी
सिद्धि-प्राप्तिका वर्णन करनेवाला एकसौ तेईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२३॥

---

१. सिद्धे चरितं म० । २. कुर्वंते म० । ३. वचने म० । ४. मुखागतम् क०, सुसङ्गतम् ख० ।

टीकाकर्तृप्रशस्तिः

दशार्णासरितस्तीरे पारग्रामो विराजते । यत्र लीलाधरो जैनो न्यवात्सीच्छ्रावकव्रतः ॥१॥
पुत्रास्तस्य त्रयोऽभूवन् जैनधर्मपरायणाः । गल्लीलालो ततो नन्दू-लालः सद्धर्मभूषितः ॥२॥
प्यारेलालस्ततो श्रेयो वात्सल्यामृतसागरः । गल्लीलालस्य भार्यासीज्जानकी जानकीसमा ॥३॥
तयोः पुत्रास्त्रयो जाताः सौहार्दार्णवसन्निभाः । [1]आलम्बेन्दुरभूदाद्यो लटोरेलालनामकः ॥४॥
मध्यमः सूनुरन्यश्च पन्नालालाभिधो बुधः । ताते दिवङ्गते माता सूनूनादाय सागरम् ॥५॥
समागता सनाभेर्हि साहाय्यं समवाप्य सा । आलम्बेन्दुस्ततो यातः स्वल्पायुर्यममन्दिरम् ॥६॥
माता विपत्तिमायाता सार्धं पुत्रद्वयेन सा । वर्णिना पूज्यपादेन पन्नालालः प्रवेशितः ॥७॥
सागरस्थं महाविद्यालयं प्रज्ञाविभूषितः । माता द्वितीयपुत्रेण गृहभारं बभार सा ॥८॥
विद्यालये पठन् पन्नालालो विनयभूषितः । अचिरेणैव कालेन विद्वानासीद् गुरुप्रियः ॥९॥
लोकनाथस्ततश्छेदीलालः पण्डितमण्डनः । कपिलेश्वरो मुकुन्दश्च बाबूरामः कुशाग्रधीः ॥१०॥
एषां पादप्रसादेन शब्दविद्यामहोदधिः । काव्यविद्यामहासिन्धुस्तेनोत्तीर्णः सुखेन हि ॥११॥
सम्यक्त्वालङ्कृतस्वान्तो दयापीयूषसागरः । दयाचन्द्रो महाप्राज्ञो धर्मन्यायमहाबुधः ॥१२॥
धर्मन्यायगुरुस्तस्य बभूवाह्लाददायकः । धर्मे न्याये च साहित्ये 'शास्त्री' पदविभूषितः ॥१३॥
साहित्याचार्यपदवीं लब्धवानचिरं ततः । विद्यालये स्वकीये च वर्णिना सूक्ष्मदर्शिना ॥१४॥
कारितोऽध्यापकस्तस्मिन्नध्यापनपटुः प्रियः । सुखं बिभर्ति भारं स्व मध्यमेन सनाभिनः ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रूर-कृतान्तेन स्वमालयम् । आनीतो मध्यमस्तस्य सनाभिः सहजप्रियः ॥१६॥
तेन दुःखातिभारेण स्वान्ते कष्टंभरन्नसौ । चिन्तयन् कर्मवैचित्र्यं चकारात्मकृतिं तथा ॥१७॥
ग्रन्थाः सुरचितास्तेन रचनापटुबुद्धिना । केचित् सम्पादिताः केचिदनुवादेन भूषिताः ॥१८॥
सूरिणा रविषेणेन रचितं सुरभाषया । चरितं पद्मनाभस्य लोकत्रयमणीयते ॥१९॥
माहात्म्यं तस्य किं ब्रूमः स्वरुच्याधीयतां स्वयम् । अध्येतुर्हृदयं शीघ्रं महानन्देन पूर्यते ॥२०॥
सम्यक्त्वं जायते नूनं तत्स्वाध्यायपटोः सदा । टीका विरचिता तस्य पन्नालालेन तेन हि ॥२१॥
टीकानिर्माणवेलायामानन्दोऽलम्भि तेन यः । कथ्यते स कया वाचा हृदयालयमध्यगः ॥२२॥
आषाढासितसप्तम्यां रविवारदिने तथा । यामिन्याः पश्चिमे यामे टीका पूर्णा बभूव सा ॥२३॥
भूतवसुभूतयुग्म(२४८४)-वर्षे वीराब्दसंज्ञिते पूर्णा । टीका बुधजनचेतः कुमुदकलापप्रहर्षिणी सेयम् ॥२४॥
पुराणाब्धिरगम्योऽयमर्थवीचिविभूषितः । सर्वथा शरणंमन्ये रविषेणं महाकविम् ॥२५॥
जिनागमस्य मिथ्यार्थो माभून्मे करयुग्मतः । इति चिन्ताभरं चित्ते संवहामि निरन्तरम् ॥२६॥
तथाप्येतद् विजानामि गम्भीरः शास्त्रसागरः । क्षुद्रोऽहमल्पविज्ञानो गृहभारकदर्थितः ॥२७॥
पदे पदे त्रुटिं कुर्यां ततो हे बुधबान्धवाः । क्षमध्वं मां, न मे चित्तं जिनवाक्यविदूषकम् ॥२८॥

ग्रन्थोऽयं समाप्तः

---

१. आलमचन्द्रः ।

श्लोकानुक्रमणिका

[इ]

[ऊ]

[ऋ]

[ए]

[ध]

[फ]

[ब]

[श]